गीता दर्शन, भाग तीन

अनुक्रम

अध्याय 6
1. कृष्ण का संन्यास, उत्सवपूर्ण संन्यास............................................3
2. आसक्ति का सम्मोहन...........................................................................27
3. मालकियत की घोषणा.............................................................................49
4. ज्ञान विजय है...................................................................................70
5. हृदय की अंतर-गुफा............................................................................89
6. अंतर्यात्रा का विज्ञान...............................................................105
7. अपरिग्रही चित्त............................................................................125
8. योगाभ्यास--गलत को काटने के लिए....................................................143
9. योग का अंतर्विज्ञान.....................................................................163 10..............................................................................चित्त वृत्ति निरोध
....................................................................................................... 179
11..............................................................................दुखों में अचलायमान
....................................................................................................... 197
12......................................................................................मन साधन बन जाए
....................................................................................................... 215
13....................................................पदार्थ से प्रतिक्रमण--परमात्मा पर
....................................................................................................... 232
14..........................................................................अहंकार खोने के दो ढंग
....................................................................................................... 248
15............................................................सर्व भूतों में प्रभु का स्मरण
....................................................................................................... 266
16.....................................................................................मन का रूपांतरण
....................................................................................................... 281
17................................................................................वैराग्य और अभ्यास
....................................................................................................... 299
18.........................................................................................तंत्र और योग
....................................................................................................... 317
19...................................................................................यह किनारा छोड़ें
....................................................................................................... 334
20........................................................................................आंतरिक संपदा
....................................................................................................... 349
21................................................................श्रद्धावान योगी श्रेष्ठ है
....................................................................................................... 367

अध्याय 7

1. अनन्य निष्ठा ........................................................................379
22.........................................................................परमात्मा की खोज
.......................................................................................397
23.........................................................................अदृश्य की खोज
.......................................................................................414
24.........................................................................आध्यात्मिक बल
.......................................................................................434
25.................................................................प्रकृति और परमात्मा
.......................................................................................451
26.........................................................................जीवन अवसर है
.......................................................................................471
27...................................................................मुखौटों से मुक्ति
.......................................................................................489
28.........................................................................श्रद्धा का सेतु
.......................................................................................508
29.........................................................................निराकार का बोध
.......................................................................................514
30.................................................................धर्म का सारः शरणागति
.......................................................................................531

गीता दर्शन, भाग तीन
गीता दर्शन अध्याय 6
पहला प्रवचन

कृष्ण का संन्यास, उत्सवपूर्ण संन्यास

श्रीमद्भगवद्गीता अथ षष्ठोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच
अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः।। 1।।
श्रीकृष्ण भगवान बोले, हे अर्जुन, जो पुरुष कर्म के फल को न चाहता हुआ करने योग्य कर्म करता है, वह संन्यासी और योगी है और केवल अग्नि को त्यागने वाला संन्यासी, योगी नहीं है; तथा केवल क्रियाओं को त्यागने वाला भी संन्यासी, योगी नहीं है।

कृष्ण के साथ इस पृथ्वी पर एक नए संन्यास की धारणा का जन्म हुआ। संन्यास सदा से संसार-विमुख धारा थी--संसार के विरोध में, शत्रुता में। जीवन का निषेध, कृष्ण के पहले तक संन्यास की व्याख्या थी; लाइफ निगेटिव था। जो छोड़ दे सब--कर्म को, गृह को, जीवन के सारे रूप को--निष्क्रिय हो जाए, पलायन में चला जाए, हट जाए जीवन से, वैसा ही व्यक्ति संन्यासी था। कृष्ण ने संन्यास को बहुत नया आयाम, एक न्यू डायमेंशन दिया। वह नया आयाम इस सूत्र में कृष्ण अर्जुन से कहते हैं।
अर्जुन के मन में भी यही ख्याल था संन्यास का। अर्जुन भी यही सोचता था
कि सब छोड़कर चला जाऊं, तो जीवन संन्यास को उपलब्ध हो जाएगा। अर्जुन भी सोचता था, कर्तव्य छोड़ दूं, करने योग्य है वह छोड़ दूं, कुछ भी न करूं, अक्रिय हो जाऊं, निष्क्रिय हो जाऊं, अकर्म में चला जाऊं, तो संन्यास को उपलब्ध हो जाऊंगा। लेकिन कृष्ण ने उससे इस सूत्र में कहा है, फल की आकांक्षा न करते हुए जो कर्म को करता है, उसे ही मैं संन्यासी कहता हूं। उसे नहीं, जो कर्म को छोड़ देता है मात्र, लेकिन फल की आकांक्षा जिसकी शेष रहती है। जो बाह्य रूपों को छोड़ देता है, लेकिन अंतर जिसका पुराना का पुराना ही बना रह जाता है, उसे मैं संन्यासी नहीं कहता हूं।
तो संन्यास की इस धारणा में दो बातें समझ लेनी जरूरी हैं। एक तो संन्यास का बहिर रूप है; लेकिन एक संन्यास की अंतरात्मा भी है। पुराना संन्यास बहिर रूप पर बहुत जोर देता था। कृष्ण का संन्यास अंतरात्मा के रूपांतरण पर, इनर ट्रांसफार्मेशन पर जोर देता है।
कर्म को छोड़ना बहुत कठिन नहीं है। आलसी भी कर्म को छोड़कर बैठ जाते हैं। और इसलिए, अगर पुराने संन्यास की धारणा ने आलसियों को आकर्षित किया हो, तो बहुत आश्चर्य नहीं है। और इसलिए, अगर पुराने संन्यास की धारणा को मानने वाले समाज धीरे-धीरे आलसी हो गए हों, तो भी आश्चर्य नहीं है। जो कुछ भी नहीं करना चाहते हैं, उनके लिए पुराने संन्यास में बड़ा रस मालूम होता है। कुछ न करना कोई बड़ी उपलब्धि नहीं है।
इस जगत में कोई भी कुछ नहीं करना चाहता है। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जो कुछ करना चाहता है। लेकिन सारे लोग करते हुए दिखाई पड़ते हैं, इसलिए नहीं कि कर्म में बहुत रस है, बल्कि इसलिए कि फल बिना कर्म के नहीं मिलते हैं। हम कुछ चाहते हैं, जो बिना कर्म के नहीं मिलेगा। अगर यह तय हो कि हमें बिना कर्म किए, जो हम चाहते हैं, वह मिल सकता है, तो हम सभी कर्म छोड़ दें, हम सभी संन्यासी हो जाएं! लेकिन चाह पूरी करनी है, तो कर्म करना पड़ता है। यह मजबूरी है, इसलिए हम कर्म करते हैं।
कृष्ण इससे उलटी बात कह रहे हैं। वे यह कह रहे हैं, कर्म तो तुम करो और
फल की आशा छोड़ दो। हम कर सकते हैं आसानी से, कर्म न करें और फल की आशा करें। जो आसान है, वह यह मालूम पड़ता है कि हम कर्म तो न करें और फल की आशा करें। और अगर कोई फल पूरा कर दे, तो हम कर्म छोड़ने को सदा ही तैयार हैं। कृष्ण इससे ठीक उलटी ही बात कह रहे हैं। वे यह कह रहे हैं कि कर्म तो तुम करो ही, फल की

आशा छोड़ दो। यह फल की आशा छूट जाए, तो कृष्ण के अर्थों में संन्यास फलित होगा।
फल की आशा के बिना कर्म कौन कर पाएगा? कर्म करेगा ही कोई क्यों? दौड़ते हैं, इसलिए कि कहीं पहुंच जाएं। चलते हैं, इसलिए कि कोई मंजिल मिल जाए।
आकांक्षाएं हैं, इसलिए श्रम करते हैं; सपने हैं, इसलिए संघर्ष करते हैं।
कुछ पाने को दूर कोई तारा है, इसलिए जन्मों-जन्मों तक यात्रा करते हैं।
वह तारा तोड़ दो। कृष्ण कहते हैं, वह तारा तोड़ दो। नाव तो खेओ जरूर, लेकिन उस तरफ कोई किनारा है, उसका ख्याल छोड़ दो। पहुंचना है कहीं, यह बात छोड़ दो; पहुंचने की चेष्टा जारी रखो।
असंभव मालूम पड़ेगा। अति कठिन मालूम पड़ेगा। फिर नाव किसलिए चलानी है,
जब कोई तट पर पहुंचना नहीं!
पर कृष्ण बहुत अदभुत बात कहते हैं। वे यह कहते हैं कि नाव चलाने से कोई तट पर नहीं पहुंचता, जन्मों-जन्मों तक चलकर भी कोई मंजिल पर नहीं पहुंचता, आकांक्षाएं करने से कोई आकांक्षाएं पूरी होती नहीं हैं। लेकिन जो आदमी नाव चलाए और किनारे पर पहुंचने का ख्याल छोड़ दे, उसे बीच मझधार भी किनारा बन जाती है। और जो आदमी कल की आशा छोड़ दे और आज कर्म करे, कर्म ही उसका फल बन जाता है, कर्म ही उसका रस बन जाता है। फिर कर्म और फल में समय का व्यवधान नहीं होता। फिर अभी कर्म और अभी फल।
संन्यास जीवन का त्याग नहीं है कृष्ण के अर्थों में, जीवन का परम भोग है।
जीवन का रहस्य ही यही है कि हम जिसे पाना चाहते हैं, उसे हम नहीं पा पाते हैं। जिसके पीछे हम दौड़ते हैं, वह हमसे दूर हटता चला जाता है। जिसके लिए हम प्रार्थनाएं करते हैं, वह हमारे हाथ के बाहर हो जाता है। जीवन करीब-करीब ऐसा है, जैसे मैं मुट्ठी में हवा को बांधूं। जितने जोर से कसता हूं मुट्ठी को, हवा उतनी मुट्ठी के बाहर हो जाती है। खुली मुट्ठी में हवा होती है, बंद मुट्ठी में हवा नहीं होती। हालांकि जिसने मुट्ठी बांधी है, उसने हवा बांधने को बांधी है।
जीवन को जो लोग जितनी वासनाओं-आकांक्षाओं में बांधना चाहते हैं, जीवन उतना ही हाथ के बाहर हो जाता है। अंत में सिवाय रिक्तता, फ्रस्ट्रेशन, विषाद के कुछ भी हाथ नहीं पड़ता है।
कृष्ण कहते हैं, खुली रखो मुट्ठी; आकांक्षा से बांधो मत, इच्छा से बांधो मत। जीओ, लेकिन किसी आगे भविष्य में कोई फल मिलेगा, इसलिए नहीं। फिर किसलिए? हम पूछना चाहेंगे कि फिर किसलिए जीओ?
कृष्ण कहते हैं, जीना अपने में ही आनंद है।
जीने के लिए कल की इच्छा से बांधना नासमझी है। जीना अपने में ही आनंद है। यह पल भी काफी आनंदपूर्ण है। और तब श्रम ही अपने में आनंद हो जाए, कर्म ही अपने में आनंद हो जाए, तो कुछ आश्चर्य नहीं है।
लेकिन कृष्ण के समय तक सारा संन्यास भगोड़ा, एस्केपिस्ट था, पलायनवादी था। हट जाओ। जहां-जहां दुख है, वहां-वहां से हट जाओ। जहां-जहां पीड़ा है, वहां-वहां से हट जाओ। लेकिन कृष्ण कहते हैं, पीड़ा स्थान की वजह से नहीं है; पीड़ा वासना के कारण है। वही उनकी बुनियादी खोज है।
पीड़ा इसलिए नहीं है कि आप बाजार में बैठे हो; और जंगल में बैठोगे, तो सुख हो जाएगा। अगर आप जिस भांति दुकान पर बैठे हो, उसी भांति मंदिर में बैठ गए, तो कोई सुख न होगा। आप ही तो मंदिर में बैठ जाओगे! आप बाजार में थे; आप ही जंगल में बैठ जाओगे। आपमें कोई फर्क न हुआ, तो जंगल में उतनी ही पीड़ा है, जितनी बाजार में दुकान पर थी।
सवाल यह नहीं है कि जगह बदल ली जाए। जगह का कोई भी संबंध नहीं है। जहां
आज आपकी दुकान है, कल कभी वहां जंगल रहा था। और कल कभी कोई संन्यास लेकर उस जंगल में आकर बैठ गया होगा। जगह वही है; अब वहां दुकान है। जहां आज जंगल है, कल दुकान हो जाएगी। जहां आज दुकान है, कल जंगल हो जाएगा। जगहों में कोई अंतर नहीं है। जमीन ने तय नहीं कर रखा है कि कहां जंगल हो और कहां दुकान हो। दुकान तय होती है मन से, स्थान से नहीं। दुकान तय होती है मनःस्थिति से, परिस्थिति से नहीं।

कृष्ण कहते हैं, अगर तुम तुम ही रहे, तो तुम कहीं भी भाग जाओ, दुख तुम्हारे साथ पहुंच जाएगा। वह तुम्हारे भीतर है, वह तुममें है, वह तुम्हारी वासना में है, वह तुम्हारी इच्छा में है। जहां इच्छा है, वहां दुख छाया की तरह पीछा करेगा। इसलिए भागो जंगल में, गुफाओं में, हिमालय पर, कैलाश पर। दुख को तुम पाओगे कि वह तुम्हारे साथ मौजूद है। खोलोगे आंख, पाओगे, सामने खड़ा है। बंद करोगे आंख, पाओगे, भीतर बैठा है।
दुख उस चित्त में निवास करता है, जो वासना में जीता है।
फिर यह भी मजे की बात है कि जो आदमी संसार छोड़कर भागता है, वह भी वासनाएं छोड़कर नहीं भागता। वह भी किसी वासना के लिए संसार छोड़कर भागता है। इस बात को भी थोड़ा ठीक से समझ लेना जरूरी है। वह पाना चाहता होगा मोक्ष, पाना चाहता होगा परमात्मा, पाना चाहता होगा स्वर्ग, पाना चाहता होगा शांति, पाना चाहता होगा आनंद। लेकिन पाना जरूर चाहता है।
नीत्शे ने कहीं बहुत व्यंग्य किया है उन सारे लोगों पर, जो जीवन को छोड़कर भागते हैं। उसने कहा है कि तुम अजीब हो पागल! तुम कहते हो, हम इच्छाओं को छोड़कर भागते हैं, लेकिन मैंने एक भी ऐसा आदमी नहीं देखा जो किसी इच्छा के लिए न भाग रहा हो। यहां इच्छाएं छोड़ता है, वहां इच्छाएं पाने के लिए भागता है! और अगर किसी इच्छा के लिए ही इच्छा छोड़ी गई, तो इच्छा कहां छोड़ी गई है? ऐसे तो कोई भी छोड़ देता है।
एक आदमी को सिनेमा जाना होता है, तो दुकान छोड़कर जाता है। एक आदमी को वेश्या को खरीदना होता है, तो कुछ छोड़कर खरीदना होता है। जीवन की इकॉनामी है। एक ही चीज से आप सब चीजें नहीं खरीद सकते। एक चीज छोड़नी पड़ती है, तो दूसरी चीज खरीद सकते हैं। जीवन का अपना अर्थशास्त्र है।
आपके खीसे में एक रुपया पड़ा हुआ है। रुपया बहुत चीजें खरीद सकता है।
जब तक नहीं खरीदा है, तब तक रुपया बहुत चीजें खरीद सकता है। लेकिन जब खरीदने जाएंगे, तो एक ही चीज खरीद सकता है। जब आप एक चीज खरीदेंगे, तो बाकी जो चीजें रुपया खरीद सकता था, उनका त्याग हो गया। अगर आपने एक रुपए से टिकट खरीद ली और रात जाकर सिनेमा में बैठ गए, तो आप एक रुपए से और जो खरीद सकते थे, उस सबका आपने त्याग कर दिया। आप भी त्याग करके वहां गए हैं। हो सकता है, बच्चे को दवा की जरूरत हो, आपने उसका त्याग कर दिया। हो सकता है, पत्नी के तन पर कपड़ा न हो, उसको पकड़े की जरूरत हो, आपने उसका त्याग कर दिया। हो सकता है, आपका खुद का पेट भूखा हो, लेकिन आपने अपनी भूख का त्याग कर दिया।
जगत में जीवन की एक इकॉनामी है, अर्थशास्त्र है। यहां एक इच्छा पूरी करनी हो, तो दूसरी इच्छाएं छोड़नी पड़ती हैं। तो जो आदमी संसार की इच्छाएं छोड़कर जंगल चला जाता है, पूछना जरूरी है, वह क्या पाने वहां जा रहा है? कहेगा, परमात्मा को पाने जा रहा हूं, आत्मा को पाने जा रहा हूं, आनंद को पाने जा रहा हूं। लेकिन इच्छाओं को छोड़कर अगर किसी इच्छा को पाने ही जा रहे हैं, तो आप संन्यासी नहीं हैं।
कृष्ण कहते हैं संन्यासी उसे, जो किसी इच्छा के लिए और इच्छाओं को नहीं छोड़ता, जो इच्छाओं को ही छोड़ देता है। इस फर्क को ठीक से समझ लें। किसी इच्छा के लिए छोड़ना, तो सभी से हो जाता है। नहीं, इच्छाओं को ही छोड़ देता है।
हम कहेंगे कि इच्छा छूटी कि कर्म छूट जाएगा! हम कहेंगे कि इच्छा अगर छूट जाए, तो फिर हम कर्म क्यों करेंगे? यह भी हमारा इच्छा से भरा हुआ मन सवाल उठाता है। क्योंकि हमने बिना इच्छा के कभी कोई कर्म नहीं किया है। लेकिन कृष्ण गहरा जानते हैं। वे जानते हैं कि इच्छा छूट जाए, तो भी कर्म नहीं छूटेगा, सिर्फ गलत कर्म छूट जाएगा। यह दूसरा सूत्र इस सूत्र में समझ लेने जैसा है।
इसलिए वे कहते हैं, जो करने योग्य है, वही कर्म। जैसे ही इच्छा छूटी कि गलत कर्म छूट जाएगा, ठीक कर्म नहीं छूटेगा। क्योंकि ठीक कर्म जीवन से वैसे ही निकलता है, जैसे झरने सागर की तरफ बहते हैं। ठीक कर्म जीवन में वैसे ही खिलता है, जैसे वृक्षों में फूल खिलते हैं। ठीक कर्म जीवन का स्वभाव है। गलत कर्म जीवन का स्वभाव नहीं है। इच्छाओं के कारण गलत कर्म जीवन करने को मजबूर होता है। जो आदमी चोरी करता है, वह भी ऐसा अनुभव नहीं करता कि मैं चोर हूं। बड़े से बड़ा चोर भी ऐसा ही अनुभव करता है कि मजबूरी में

मैंने चोरी की है; मैं चोर नहीं हूं। बड़े से बड़ा चोर भी ऐसा ही अनुभव करता है कि ऐसा दबाव था परिस्थिति का कि मुझे चोरी करनी पड़ी है, वैसे मैं चोर नहीं हूं। बुरे से बुरा कर्म करने वाला भी ऐसा नहीं मानता कि मैं बुरा हूं। वह ऐसा ही मानता है, एक्सिडेंट है बुरा कर्म।
आज तक पृथ्वी पर ऐसा एक भी आदमी नहीं हुआ, जिसने कहा हो कि मैं बुरा आदमी हूं। वह इतना ही कहता है, आदमी तो मैं अच्छा हूं, लेकिन दुर्भाग्य कि परिस्थितियों ने मुझे बुरा करने को मजबूर कर दिया।
लेकिन परिस्थितियां! उसी परिस्थिति में बुद्ध भी पैदा हो जाते हैं; उसी परिस्थिति में एक डाकू भी पैदा हो जाता है; उसी परिस्थिति में एक हत्यारा भी पैदा हो जाता है। एक ही घर में भी तीन लोग तीन तरह के पैदा हो जाते हैं। बिल्कुल एक-सी परिस्थिति भी एक-से आदमी पैदा नहीं कर पाती। परिस्थिति भेद कम डालती है; इच्छाएं भेद ज्यादा डालती हैं।
इच्छाएं इतनी मजबूत हों, तो हम सोचते हैं कि एक इच्छा पूरी होती है, थोड़ा-सा बुरा भी करना हो, तो कर लो। इच्छा की गहरी पकड़ बुरा करने के लिए राजी करवा लेती है। बुरा काम भी कोई आदमी किसी अच्छी इच्छा को पूरा करने के लिए करता है। बुरा काम भी किसी अच्छी इच्छा को पूरा करने के लिए अपने मन को समझा लेता है कि इच्छा इतनी अच्छी है, साध्य इतना अच्छा है, इसलिए अगर थोड़े गलत मार्ग भी पकड़े गए, तो बुरा नहीं है। और ऐसा नहीं है कि छोटे-छोटे साधारणजन ऐसा सोचते हैं, बड़े बुद्धिमान कहे जाने वाले लोग भी ऐसा ही सोचते हैं। मार्क्स या लेनिन जैसे लोग भी ऐसा ही सोचते हैं कि अगर अच्छे अंत के लिए बुरा साधन उपयोग में लाया जाए, तो कोई हर्जा नहीं है; ठीक है। लेकिन हम जो करना चाहते हैं, वह तो अच्छा ही करना चाहते हैं।
बुरे से बुरे आदमी की भी तर्क-शैली यही है कि जो मैं करना चाहता हूं,
वह तो अच्छा ही है। अगर मैं एक मकान बना लेना चाहता हूं और उसकी छाया में दोपहर विश्राम करना चाहता हूं, तो बुरा क्या है! सहज, स्वाभाविक, मानवीय है। फिर इसके लिए थोड़ी कालाबाजारी करनी पड़ती है, थोड़ी चोरी करनी पड़ती है, थोड़ी रिश्वत देनी पड़ती है, वह मैं दे लेता हूं। क्योंकि उसके बिना यह नहीं हो सकेगा।
कृष्ण कहते हैं कि जिस आदमी की इच्छाएं छूट जाएं, उस आदमी के बुरे कर्म तत्काल छूट जाते हैं। लेकिन अच्छे कर्म नहीं छूटते।
अच्छा कर्म वही है--उसकी परिभाषा अगर मैं देना चाहूं, तो ऐसी देना पसंद करूंगा--अच्छा कर्म वही है, जो बिना इच्छा के भी चल सके। और बुरा कर्म वही है, जो इच्छा के पैरों के बिना न चल सके। जिस कर्म को चलाने के लिए इच्छा जरूरी हो, वह बुरा है; और जिस कर्म को चलाने के लिए इच्छा बिल्कुल भी गैर-जरूरी हो, वह कर्म अच्छा है। अच्छे का एक ही अर्थ है, जीवन के स्वभाव से निकले, जीवन से निकले।
कृष्ण कहते हैं, अगर इच्छाएं छोड़ दे कोई और सिर्फ कर्म करे, तो उसे मैं संन्यासी कहता हूं।
यह बड़ी इसोटेरिक, बड़ी गुह्य व्याख्या है। साधारणतः यही दिखाई पड़ता है संन्यासी और गृहस्थ का फर्क कि गृहस्थ वह है जो घर में रहे, संन्यासी वह है जो घर छोड़ दे। कृष्ण की परिभाषा में उलटा भी हो सकता है। घर में रहने वाला भी संन्यासी हो सकता है, घर छोड़ने वाला भी गृहस्थ हो सकता है।
कृष्ण की परिभाषा थोड़ी गहन है। अगर कोई आदमी घर छोड़ दे, किसी इच्छा के लिए, तो वह गृहस्थ है। और अगर कोई आदमी घर में चुपचाप रहा आए बिना किसी इच्छा के, तो वह संन्यासी है। अगर कोई आदमी अपने घर में बिना इच्छाओं के जीने लगे, तो घर आश्रम हो गया। और अगर कोई आदमी आश्रम में जाकर नई इच्छाओं के आस-पास जाल बुनने लगे, तो वह घर हो गया।
ऐसा संन्यासी आपने देखा है, जिसकी इच्छा न हो? अगर ऐसा संन्यासी नहीं देखा जिसकी इच्छा न हो, तो समझना कि आपने संन्यासी ही नहीं देखा है।
आदमी का मन, बहुत रूपों में अपने को बचाने में कुशल है। सब तरफ से अपने
को बचाने में कुशल है। विपरीत स्थितियों में भी अपने को बचा लेता है। जंगल में भी बैठ जाएं, तो वहां भी इच्छा के जाल बुनता रहता है। मंदिर में, तीर्थ में भी बैठकर इच्छाओं के जाल बुनता रहता है। मन का काम ही इच्छाओं के जाल निर्मित करना है।

अगर हम ऐसा कहें कि मन ऐसा वृक्ष है, जिस पर इच्छाओं के पत्ते लगते हैं, लगते ही चले जाते हैं। एक पत्ता कुम्हलाया, गिरा नहीं कि नए पत्ते के पीके निकलने शुरू हो गए, अंकुरित होने लगे। अगर और गहरे में देखें, तो पुराना पत्ता गिरता तभी है, जब उसके नीचे से नया पत्ता उसे गिराने के लिए धक्के देने लगता है। एक इच्छा छूटती तभी है, जब दूसरी इच्छा जगह बनाने के लिए मांग करती है कि मुझे जगह खाली करो। एक इच्छा हटती तभी है, जब उससे भी प्रबल इच्छा धक्के देकर जगह बनाती है। मन में इच्छाएं निर्मित होती चली जाती हैं।
कृष्ण कहते हैं, इच्छाएं न हों, तो संन्यासी हो जाएगा। मैं आपसे कहता हूं, जिसमें इच्छाएं न रहीं, उसमें मन भी न रहा। क्योंकि मन और इच्छाएं एक ही चीज का नाम है। मन समस्त इच्छाओं का जोड़ है, समस्त कामनाओं का जोड़, समस्त तृष्णाओं का जोड़। अगर इच्छाएं न रही, तो मन न रहा।
कृष्ण कहते हैं, जिसके पास मन न रहा, वह संन्यासी है। कर्म न रहा, नहीं;
मन न रहा, वह संन्यासी है।
बुरे कर्म तो गिर जाएंगे, क्योंकि बुरे कर्म बिना इच्छाओं के कोई भी नहीं कर सकता।
इसमें एक बहुत गहन आस्था भी प्रकट की गई है।
कृष्ण की मनुष्य पर निष्ठा अपरिसीम है। इतनी निष्ठा शायद ही किसी दूसरे व्यक्ति की पृथ्वी पर कभी रही हो। जो आदमी भी मानता है कि तुम्हें अच्छा होना पड़ेगा, उस आदमी की आदमी पर बहुत निष्ठा नहीं है। कृष्ण की निष्ठा है कि आदमी तो अच्छा है, सिर्फ मन मौजूद न हो, तो आदमी की अच्छाई में कोई कमी ही नहीं है। वह अच्छा है ही। वह स्वभावतः अच्छा है। वह शुभ है। इतनी ही शर्त काफी है कि वह इच्छाएं छोड़ दे और उसके भीतर शुभ का जन्म हो जाएगा। वह बिल्कुल शुद्ध, पवित्रतम, निर्दोष, निष्कलंक प्रकट हो जाएगा। उसकी इनोसेंस, उसका निर्दोषपन जाहिर हो जाएगा।
जैसे दर्पण पर धूल जम गई हो और धूल को किसी ने पोंछ दिया हो और दर्पण शुद्ध हो जाए। लेकिन क्या आप कहेंगे कि जब दर्पण पर धूल थी, तब दर्पण अशुद्ध हो गया था? आपको तस्वीर नहीं दिखाई पड़ती थी, यह बात दूसरी है।
लेकिन दर्पण तब भी अशुद्ध नहीं हो गया था। दर्पण तब भी पूरा ही दर्पण था। सिर्फ धूल की एक पर्त थी कि तस्वीर दिखाई नहीं पड़ती थी। दर्पण में धूल कहीं घुस नहीं गई थी, प्रवेश नहीं कर गई थी, बाहर ही बाहर थी। फूंक मार दी, झाड़ दी। धूल हट गई, दर्पण साफ हो गया।
कृष्ण की दृष्टि में आदमी दर्पण की तरह शुद्ध है। इच्छाएं करता है, तो धूल इकट्ठी कर लेता है चारों तरफ, इच्छाओं के कण इकट्ठे कर लेता है।
अभी पश्चिम में इस बात पर काफी चिंतन-मनन चलता है कि जब आदमी इच्छाएं करता है, तो क्या उसके मन में कोई अंतर पड़ता है इच्छाओं के करने से? जब एक आदमी क्रोध से भरता है, तब उसके पास वही मन रहता है, जो क्रोध करने के पहले था? जब एक आदमी क्षमा से भरता है, तब उसके पास वही मन रहता है, जो क्रोध के वक्त था?
तो अब मनोविज्ञान कहता है कि मन तो वही रहता है, लेकिन मन के आस-पास की चीजें बदल जाती हैं। जब आदमी क्रोध से भरता है, तो शरीर की ग्रंथियां ऐसे जहर को छोड़ देती हैं, जो मन को चारों तरफ से घेर लेता है, पायजनस कर देता है, जैसे दर्पण को धूल घेर ले। और जब आदमी प्रेम से भरता है, तो उसकी रस-ग्रंथियां उसके सारे शरीर से उस अमृत को छोड़ देती हैं; तब भी मन वही रहता है, लेकिन उसके चारों तरफ रस की धार बहने लगती है--उसी आदमी के पास।
कृष्ण और भी गहरी बात कहते हैं। वे कहते हैं कि आदमी की चेतना तो निर्दोष है ही। बस, तुमने चाहा कि दोष इकट्ठे होने शुरू हुए। वे भी बाहर ही इकट्ठे होते हैं, भीतर प्रवेश नहीं करते। एक क्षण को भी कोई इच्छाएं छोड़ दे, तो वे सारे दोष गिर जाते हैं। और तब बुरा कर्म असंभव हो जाता है। लेकिन शुभ कर्म जारी रहता है। सच तो यह है कि जो शक्ति हमारे बुरे कर्म में लगती है, वह सारी शक्ति बच जाती है और शुभ कर्म में समायोजित हो जाती है।
कृष्ण के लिए, कर्म इच्छाओं के कारण से नहीं होते; कर्म जीवन के स्वभाव की स्फुरणा है; जीवन की एनर्जी से होते हैं। जहां शक्ति है, वहां कर्म आएगा। क्योंकि शक्ति कर्म में प्रकट होना चाहती है।

यह परमात्मा इतने बड़े विराट जगत में प्रकट होता है, यह उसकी ऊर्जा है, शक्ति है, जो प्रकट होना चाहती है। जमीन से एक पत्थर हटा लिया और एक फव्वारा फूटने लगा। यह फव्वारा कहीं जाने को नहीं फूट रहा है। इसके भीतर ऊर्जा है, वह प्रकट होना चाहती है।
आदमी की अगर इच्छाएं गिर जाएं, तो उसके जीवन की पूरी ऊर्जा शुभ में प्रकट होना चाहती है। इच्छाओं रहित चेतना शुभ की ऊर्जा को प्रकट करने लगती है।
तो कृष्ण कहते हैं, बुरे कर्म गिर जाएंगे। जो करने योग्य है, वही किया
जा सकेगा। इसको ही मैं संन्यास कहता हूं। उसको नहीं कि जिसने अग्नि छोड़ दी।
उन दिनों अग्नि को छोड़ना बहुत बड़ी घटना थी। इसको थोड़ा ख्याल में ले लें। यह सूत्र जब कहा गया, तब अग्नि को छोड़ना बहुत बड़ी घटना थी। आज हमारे मन में ख्याल आएगा कि यह क्या बात कहते हैं कृष्ण कि जिसने अग्नि छोड़ दी! आज हमारे लिए अग्नि उतनी बड़ी घटना नहीं है। लेकिन जिस दिन यह बात कही गई थी, उस दिन अग्नि उतनी ही बड़ी घटना थी, जितनी अगर हम आज सोचना चाहें, तो सिर्फ एक ही बात ख्याल में आ सकती है। जैसे आज अगर हम कहें कि जिस व्यक्ति ने यंत्रों का उपयोग छोड़ दिया! आज अगर पैरेलल, समानांतर कोई बात कहना चाहें; अगर आज हम कहें कि जिस व्यक्ति ने यंत्रों का उपयोग छोड़ दिया!
तो आप सोचें कि यंत्र के उपयोग छोड़ने में करीब-करीब जीवन का सब कुछ छूट जाएगा। क्योंकि आज जीवन को यंत्र ने सब तरफ से घेर लिया है। वह आदमी ट्रेन में नहीं बैठ सकेगा। वह आदमी माइक से नहीं बोल सकेगा। वह आदमी चश्मा नहीं लगा सकेगा। वह आदमी कपड़ा नहीं पहन सकेगा। सब यंत्र पर निर्भर है। वह आदमी फाउंटेनपेन से नहीं लिख सकेगा। वह आदमी जाकर नाई से बाल नहीं बनवा सकेगा। थोड़ा सोचें कि जिस आदमी ने यंत्र का उपयोग छोड़ दिया, उसके जीवन में क्या बच रहेगा? कुछ नहीं बच रहेगा।
उस दिन अग्नि इतनी ही बड़ी घटना थी। तो उस दिन कृष्ण कहते हैं कि जिसने अग्नि छोड़ दी। उस दिन सब कुछ अग्नि पर निर्भर थाः भोजन, जीवन की सुरक्षा, जीवन की व्यवस्था। अग्नि बहुत बड़ी घटना थी। जब तक अग्नि नहीं थी आदमी के पास, तब तक आदमी इतना असुरक्षित था, कहना चाहिए, सभ्य नहीं था। आदमी सभ्य हुआ अग्नि के साथ।
अग्नि नहीं थी, तो मांसाहार भोजन के अतिरिक्त और कोई उपाय न था। या कच्चे फल खा लेता, या मांस खा लेता। अग्नि थी, तो भोजन पकाकर उसने खाना शुरू किया। अग्नि नहीं थी, तो दिनभर ही घूम-फिर सकता था। रात होते ही खतरे में पड़ जाता था। चारों तरफ जंगली जानवर थे, उनका भय था। रातभर आधे लोगों को पहरा देना पड़ता, आधे लोग सोते। तब भी खतरा हमेशा मौजूद रहता। सभ्य होने का मौका नहीं था। खाना और रात सो लेना, दो काम जीवन की सारी ऊर्जा ले लेते थे। अग्नि ने आकर बड़ा उपाय कर दिया। अग्नि ने सुरक्षा दे दी। जंगल का आदमी चारों तरफ अग्नि जलाकर बीच में आराम से सोने लगा। अग्नि पहला देवता था, आदमी को सभ्य करने वाला। सभ्यता आई अग्नि के साथ।
तो जिस जिन यह सूत्र कहा गया, उस दिन अग्नि ने जीवन को चारों तरफ से इसी तरह सिविलाइज किया था, सभ्य किया था, जैसे आज यंत्रों ने किया हुआ है। अग्नि छोड़ दे जो उस दिन, उसका सब छूट जाता था। सब! उसके हाथ में कुछ बचता नहीं था। वह सभ्य जीवन से हट जाता था। वह असभ्य जीवन की ओर, वन की ओर, अरण्य की ओर हट जाता था। वह उसी दुनिया में लौट जाता, जहां अग्नि के पहले आदमी रहता था, गुफाओं में। हाथ से खाना नहीं पकाता था। आग जलाकर ठंड से अपने को नहीं बचाता था। वह वहां लौट जाता था। अग्नि छोड़ने का अर्थ यह है, गुफा-मानव की ओर वापस लौट जाए कोई।
तो भी कृष्ण कहते हैं, वह संन्यासी नहीं है। क्योंकि अगर यह कृत्य भी किसी वासना से प्रेरित होकर हो रहा है, तो संन्यास नहीं है।
कृष्ण कहते हैं, वासनाशून्य कृत्य। कोई भी कृत्य वासना से शून्य हो जाए, फिर चाहे वह कृत्य कितना ही बड़ा हो। अर्जुन युद्ध में जाने को खड़ा है।
कृष्ण कहते हैं, तू युद्ध में जा। अगर फल की आकांक्षा छोड़कर जा सके, तो यह युद्ध भी संन्यास है। फिर कोई हर्ज नहीं है।

अजीब बात कहते हैं! जो आदमी सब कुछ छोड़कर जंगल की गुफा में चला जाए, उसे कहते हैं, वह भी संन्यास नहीं। अर्जुन जो युद्ध में खड़ा है, युद्ध में लड़े, उससे कहते हैं, यह भी संन्यास है!
कृष्ण का यह वक्तव्य बहुत सोचने जैसा है। सैद्धांतिक अर्थों में उतना मूल्यवान नहीं, जितना व्यावहारिक अर्थों में मूल्यवान है। अगर भविष्य में इस पृथ्वी पर कोई भी संन्यास बचेगा, तो वह कृष्ण का संन्यास बच सकता है, और कोई संन्यास बच नहीं सकता है। क्योंकि अगर आज कोई मान ले पुराने संन्यास की धारणा को; पृथ्वी पर साढ़े तीन अरब लोग हैं, अगर ये छोड़कर जंगल में चले जाएं, तो जंगल में सिर्फ मेला भर जाएगा, और कुछ भी नहीं होगा! ये जहां जाएंगे, वहीं जंगल नहीं रहेगा। ये कहीं भी चले जाएं, ये जहां जाएंगे, वहीं जंगल सपाट हो जाएगा।
यह साढ़े तीन अरब लोगों की पृथ्वी, जो रोज बढ़ती जा रही है। इस सदी के पूरे होते-होते और एक अरब संख्या बढ़ जाएगी। और वैज्ञानिक कहते हैं कि अगर सौ वर्ष इसी तरह संख्या बढ़ती रही, तो आदमी को कोहनी हिलाने की जगह नहीं बचेगी। सब जगह, जहां भी जाएगा, कोई हाथ चारों तरफ लगा रहेगा। अब भागकर आप नहीं जा सकेंगे।
तो फिर क्या होगा संन्यास का? पुराना गुहा वाला संन्यास तो फिर नहीं
हो सकेगा। तो फिर इस पृथ्वी पर संन्यास ही नहीं होगा? तब जो जीवन का एक बहुत अमृत-फूल नष्ट हो जाएगा। तब तो जीवन की एक बहुत अदभुत सुगंध--क्योंकि जिसने संन्यास नहीं जाना, उसने जीवन नहीं जाना--वह नष्ट हो जाएगा, वह खो जाएगा। कृष्ण का संन्यास बच सकता है।
इसलिए मुझे कई बार लगता है कि गीता भविष्य के लिए बहुत सार्थक होती चली जाएगी। उसकी दृष्टि भविष्य के लिए रोज अनुकूल पड़ती चली जाएगी। कृष्ण रोज करीब आते चले जाएंगे। क्योंकि वे गहरी बात कर रहे हैं। वे कह रहे हैं, कहीं कोई जाने की जरूरत नहीं है। जहां हो वहीं, सिर्फ एक शर्त पूरी करो और तुम गृहस्थ न रह जाओगे। एक शर्त पूरी करो, और तुम संन्यासी हो जाओगे। और वह शर्त है कि तुम वासना मत करो, फल की आकांक्षा मत करो।
कठिन होगा समझना कि फल की आकांक्षा कैसे न करें! चौबीस घंटे के लिए प्रयोग करके देखें, तो ख्याल में आ जाएगा, अन्यथा शायद जीवनभर समझने से ख्याल में न आ सके।
कुछ चीजें हैं इस जीवन में, जो प्रयोग करने से तत्काल समझ में आ जाती हैं। मुंह पर कोई शक्कर का एक टुकड़ा रख दे, और तत्काल समझ में आता है कि स्वाद क्या है। एक जरा-सा टुकड़ा, एक क्षण की भी देर नहीं लगती, पूरा शरीर खबर देता है कि क्या है। और जिस आदमी ने नहीं स्वाद लिया हो, उसे हम पूरे के पूरे जीवनभर समझाते रहें कि स्वाद क्या है; वह कहेगा, आप कहते हैं, सब ठीक है। लेकिन फिर भी स्वाद क्या है, अभी समझ में नहीं आया। उसमें समझ की कोई गलती नहीं है। समझ का काम ही नहीं है; अनुभव का काम है। कुछ बातें हैं, जो समझ से समझ में आती हैं। बेकार बातें समझने से समझ में आ जाती हैं। गहरी और काम की बातें सिर्फ अनुभव से समझ में आती हैं, समझने से समझ में नहीं आतीं। कृष्ण कहते हैं, फल की आकांक्षा छोड़ दो।
हजारों साल से हम सुन रहे हैं। गीता इतनी परिचित है, जितनी और कोई किताब परिचित नहीं है। मुझसे कोई बोला कि गीता तो इतनी परिचित है, आप गीता पर क्यों बोलते हैं? मैंने कहा कि मैं इसीलिए बोलता हूं, क्योंकि मैं मानता हूं कि गीता के संबंध में बड़ा भ्रम हो गया है कि परिचित है। पढ़ ली, तो हम सोचते हैं, परिचित है। गीता से ज्यादा अपरिचित किताब मुश्किल है। एक अर्थ में ठीक है कि परिचित है। सभी लोगों के घरों में रखी है और धूल इकट्ठी करती है। सभी लोगों को पता है कि गीता में क्या लिखा है।
काश, सभी लोगों को पता होता, तो यह दुनिया बिल्कुल दूसरी हो सकती थी! नहीं, पता नहीं है। शब्द पता हैं। शायद अर्थ भी पता है, क्योंकि अर्थ शब्दकोश में मिल जाता है। अभिप्राय पता नहीं है, क्या प्रयोजन है!
ये कृष्ण कहते हैं कि तू फल कि आकांक्षा छोड़ दे और कर्म कर।
मैं आपसे कहूंगा, एक चौबीस घंटे के लिए--दुनिया नष्ट नहीं हो जाएगी--एक दिन प्रयोग कर लें। सुबह छः बजे से दूसरे दिन सुबह छः बजे तक फल की आकांक्षा छोड़ दें और कर्म करें। और आपकी जीभ पर स्वाद आ जाएगा। और आपको

पता चलेगा कि कर्म हो सकता है, फल की आकांक्षा के बिना भी। और पहली दफे आपके जीवन में ऐसा कर्म होगा, जिसको हम टोटल एक्ट, पूर्ण कर्म कह सकते हैं। क्योंकि मन कहीं नहीं दौड़ेगा; फल की कोई आकांक्षा नहीं है। और एक बार आपको स्वाद आ जाए, तो मैं आपको भरोसा दिलाता हूं कि वे चौबीस घंटे फिर कभी खतम नहीं होंगे। छः बजे शुरू जरूर होगी यात्रा, लेकिन दूसरे छः फिर कभी नहीं बजेंगे।
एक बार स्वाद आ जाए, तो आपको पता चले कि इतने निकट जीवन के, इतना बड़ा सागर था आनंद का, हमने कभी नजर न की; हम चूकते ही चले गए। हमारी गर्दन ही तिरछी हो गई है। हम भागते ही चले जाते हैं। बस, चूकते चले जाते हैं। देख ही नहीं पाते कि किनारे कोई एक और स्वाद भी है जीवन का। कभी-कभी उसकी झलक मिलती है किन्हीं कृत्यों में।
कभी आप अपने बच्चे के साथ खेल रहे हैं, कोई फल की आकांक्षा नहीं होती। कभी आपने ख्याल किया है कि बच्चे के साथ खेलने में कैसा आह्लाद! हां, अगर बड़े के साथ खेल रहे हैं, तो उतना आह्लाद नहीं होगा, क्योंकि बड़े के साथ खेल भी काम बन जाता है। बाजी! हार-जीत शुरू हो जाती है। फल की आकांक्षा आ जाती है। बाप अपने छोटे-से बेटे के साथ खेल रहा है। कभी आपने किसी बाप को अपने छोटे बेटे के साथ खेलते देखा? वैसे यह घटना दुर्लभ होती जाती है।
बाप अपने छोटे बेटे के साथ खेल रहा है। हराने का कोई सवाल नहीं उठता। हराने का ख्याल भी नहीं उठता। हां, खेल में हार जाने का मजा जरूर वह लेता है। जमीन पर लेट गया है, बेटे को छाती पर बिठा लिया है। बेटा नाच रहा है खुश होकर; बाप को उसने हरा दिया है!
सभी बेटे बाप को हराना चाहते हैं। और जो बाप जिद्द करते हैं, वे मुश्किल में पड़ जाते हैं। और जो बाप होशियार हैं, वे खुद जमीन पर लेट जाते हैं और हार जाते हैं। और उनके बच्चे बाद में पछताते हैं कि बाप ने बहुत गहरी मजाक कर दी। लेकिन तब कोई आकांक्षा नहीं है, सिर्फ उस छोटे-से खेल में सब समा गया है।
मेरे एक मित्र जापान के एक घर में मेहमान थे। सुबह घर के बच्चों ने उनको आकर खबर दी कि हमारे घर में विवाह हो रहा है, आप शाम सम्मिलित हों। उन्हें थोड़ी हैरानी हुई, क्योंकि बहुत छोटे बच्चे थे। तो उन्होंने सोचा कि कुछ गुड्डा-गुड्डी का विवाह करते होंगे। उन्होंने कहा, मैं जरूर सम्मिलित होऊंगा। लेकिन सांझ के पहले घर के बड़े-बूढ़ों ने भी आकर निमंत्रण दिया कि घर में विवाह है, आप सम्मिलित हों। तब वे समझे कि मुझसे भूल हो गई। लेकिन जब सांझ को घर के हाल में गए, जहां कि सब बैंड-बाजा सजा था, तो देखा कि वहां दूल्हा तो नहीं है। वहां तो गुड्डा ही रखा है और बारात तैयार हो रही है! गांव के आस-पास के बूढ़े भी इकट्ठे हुए हैं; बारात बाहर निकल आई है। तब उन्होंने एक बूढ़े से पूछा कि यह क्या मामला है? मैं तो सोचता था कि बच्चों के खेल बच्चों के लिए शोभा देते हैं, आप लोग इसमें सब सम्मिलित हैं! तो उस बूढ़े ने हंसकर कहा कि अब हमें बड़ों के खेल भी बच्चों के खेल ही मालूम पड़ते हैं। बड़ों के खेल भी! अब तो जब असली दूल्हा भी बारात लेकर चलता है, तब भी हम जानते हैं कि खेल ही है। तो इस खेल में गंभीरता से सम्मिलित होने में हमें कोई हर्ज नहीं है। दोनों बराबर हैं।
गांव के बूढ़े भी सम्मिलित हुए हैं। मेरे मित्र तो परेशान ही रहे। सोचा कि सांझ खराब हो गई। मैंने उनसे पूछा कि आप करते क्या सांझ को, अगर खराब न होती तो? रेडियो खोलकर सुनते, सिनेमा देखते, राजनीति की चर्चा करते? सुबह जो अखबार में पढ़ा था, उसकी जुगाली करते? क्या करते? करते क्या? कहा, नहीं, करता तो कुछ नहीं। तो फिर मैंने कहा कि बेकार चली गई, यह ख्याल कैसे पैदा हो रहा है? बेकार जरूर चली गई, क्योंकि उस घंटेभर में आपको एक मौका मिला था, जब कि आकांक्षा फल की कोई भी न थी, तब आपको एक खेल में सम्मिलित होने का मौका मिला था, वह आप चूक गए। मैंने कहा, दोबारा जाना। कोई निमंत्रण न भी दे, तो भी सम्मिलित हो जाना। और उस घंटेभर इस बारात को आनंद से जीना, तो शायद एक क्षण में वह दिखाई पड़े, जो कि फलहीन कर्म है।
खेल में कभी फलहीन कर्म की थोड़ी-सी झलक मिलती है। लेकिन नहीं मिलती है, हमने खेलों को नष्ट कर दिया है। हमने खेलों को भी काम बना दिया है।

उनमें भी हम तनाव से भर जाते हैं। जीतने की आकांक्षा इतनी प्रबल हो जाती है कि खेल का सब मजा ही नष्ट हो जाता है।
नहीं, कभी चौबीस घंटे एक प्रयोग करके देखें, और वह प्रयोग आपकी जिंदगी
के लिए कीमती होगा। उस प्रयोग को करने के पहले इस सूत्र को पढ़ें, फिर प्रयोग को करने के बाद इस सूत्र को पढ़ें, तब आपको पता चलेगा कि कृष्ण क्या कह रहे हैं। और एक काम भी अगर आप फल के बिना करने में समर्थ हो जाएं, तो आपकी पूरी जिंदगी पर फलाकांक्षाहीन कर्मों का विस्तार हो जाएगा। वही विस्तार संन्यास है।
होगा क्या? अगर आप फल की आकांक्षा न करें, तो क्या बनेगा, क्या मिट जाएगा?
नहीं, प्रत्येक को ऐसा लगता है कि सारी पृथ्वी उसी पर ठहरी हुई है! अगर उसने कहीं फल की आकांक्षा न की, तो कहीं ऐसा न हो कि सारा आकाश गिर जाए। छिपकली भी घर में ऐसा ही सोचती है मकान पर टंगी हुई कि सारा मकान उस पर सम्हला हुआ है। अगर वह कहीं जरा हट गई, तो कहीं पूरा मकान न गिर जाए!
हम भी वैसा ही सोचते हैं। हमसे पहले भी इस जमीन पर अरबों लोग रह चुके
और इसी तरह सोच-सोचकर मर गए। न उनके कर्मों का कोई पता है, न उनके फलों का आज कोई पता है। न उनकी हार का कोई अर्थ है, न उनकी जीत का कोई प्रयोजन है। सब मिट्टी में खो जाते हैं। लेकिन थोड़ी देर मिट्टी बहुत पागलपन कर लेती है। थोड़ी देर बहुत उछल-कूद; जैसे लहर उठती है सागर में, थोड़ी देर बहुत उछल-कूद; उछल-कूद हो भी नहीं पाती कि गिर जाती है वापस। ऐसे ही हम हैं।
कृष्ण कहते हैं कि जानो तुम कि जिस परमात्मा ने तुम्हें पैदा किया या जिस परमात्मा की तुम एक लहर हो, जिसने तुम्हें जीवन की ऊर्जा दी, वही तुमसे कर्म करवाता रहा है, वही तुमसे कर्म करवाता रहेगा। तुम जल्दी मत करो। तुम अपने सिर पर व्यर्थ का बोझ मत लो। तुम उसी पर छोड़ दो। तुम इसकी भी फिक्र छोड़ दो कि कल क्या होगा! जो होगा कल, वह कल देख लेंगे। जो आज हो रहा है, तुम उसमें राजी रहो। तुम अपने को पूरा छोड़ दो। जैसे कोई पानी में अपने को छोड़ दे और बह जाए। तैरे नहीं, बह जाए; जस्ट फ्लोटिंग। तैरने का भी श्रम मत करो। बस, बह जाओ। जीवन तुम्हें जो दे, उसमें चुपचाप बह जाओ। कोई आकांक्षा कल की मत बांधो, कोई फल निश्चित मत करो, कोई कर्म की नियति मत बांधो, वह प्रभु पर छोड़ दो। वह उस पर छोड़ दो, जो समग्र को जी रहा है। और ऐसा करते ही व्यक्ति संन्यासी हो जाता है।
संन्यासी वह है, जिसने कहा कि कर्म मैं करूंगा, फल तेरे हाथ। संन्यासी
वह है, जिसने कहा कि शक्ति तूने मुझे दी है, तो काम करवा ले। न मुझे कल का पता है, न मुझे बीते कल का कोई पता है। न मुझे यह भी पता है कि क्या मेरे हित में है और क्या मेरे अहित में है। मुझे कुछ भी पता नहीं है। बाकी तू सम्हाल। जिसने जीवन की परम सत्ता को कहा कि सब तू सम्हाल; मुझमें जो ऊर्जा है, उससे जो काम लेना है, वह काम ले ले। काम मैं करूंगा, फल की बातचीत मुझसे मत कर। ऐसा व्यक्ति संन्यासी है। सच, ऐसा ही व्यक्ति संन्यासी है। संन्यास का अर्थ ही यही है कि जिसने अपनी अस्मिता का बोझ अलग कर दिया, जिसने अपने अहंकार का बोझ अलग रख दिया, जिसने कहा कि अब समर्पित हूं। समर्पण संन्यास है।
समर्पित व्यक्ति फल की आकांक्षा नहीं करता। क्योंकि हम जानते ही नहीं
कि क्या ठीक है और क्या गलत है। क्या होना चाहिए और क्या नहीं होना चाहिए, यह भी हमें पता नहीं है।
एक अरेबिक कहावत है कि अगर परमात्मा सबकी आकांक्षाएं पूरी कर दे, तो लोग इतने दुख में पड़ जाएं, जिसका कोई हिसाब नहीं। उस कहावत के पीछे फिर बाद में एक सूफी कहानी वहां प्रचलित हुई, वह मैं आपसे कहूं, फिर हम दूसरे सूत्र पर बात करें।
सुना है मैंने, एक आदमी ने यह कहावत पढ़ ली कि परमात्मा आकांक्षाएं पूरी कर दे आदमियों की, तो आदमी बड़ी मुसीबत में पड़ जाएं। उसकी बड़ी कृपा है कि वह आपकी आकांक्षाएं पूरी नहीं करता। क्योंकि अज्ञान में की गई आकांक्षाएं खतरे में ही ले जा सकती हैं। उस आदमी ने कहा, यह मैं नहीं मान सकता हूं। उसने परमात्मा की बड़ी पूजा, बड़ी प्रार्थना की। और जब परमात्मा ने आवाज दी कि तू इतनी पूजा-प्रार्थना किसलिए कर रहा है? तो उसने कहा कि

मैं इस कहावत की परीक्षा करना चाहता हूं। तो आप मुझे वरदान दें और मैं आकांक्षाएं पूरी करवाऊंगा; और मैं सिद्ध करना चाहता हूं, यह कहावत गलत है। परमात्मा ने कहा कि तू कोई भी तीन इच्छाएं मांग ले, मैं पूरी कर देता हूं। उस आदमी ने कहा कि ठीक। पहले मैं घर जाऊं, अपनी पत्नी से सलाह कर लूं। अभी तक उसने सोचा नहीं था कि क्या मांगेगा, क्योंकि उसे भरोसा ही नहीं
था कि यह होने वाला है कि परमात्मा आकर कहेगा। आप भी होते, तो भरोसा नहीं होता कि परमात्मा आकर कहेगा। जितने लोग मंदिर में जाकर प्रार्थना करते हैं, किसी को भरोसा नहीं होता। कर लेते हैं। शायद! परहेप्स! लेकिन शायद मौजूद रहता है।
तय नहीं किया था; बहुत घबड़ा गया। भागा हुआ पत्नी के पास आया। पत्नी से बोल कि कुछ चाहिए हो तो बोल। एक इच्छा तेरी पूरी करवा देता हूं। जिंदगीभर तेरा मैं कुछ पूरा नहीं करवा पाया। पत्नी ने कहा कि घर में कोई कड़ाही नहीं है। उसे कुछ पता नहीं था कि क्या मामला है। घर में कड़ाही नहीं है; कितने दिन से कह रही हूं। एक कड़ाही हाजिर हो गई। वह आदमी घबड़ाया। उसने सिर पीट लिया कि मूर्ख, एक वरदान खराब कर दिया! इतने क्रोध में आ गया कि कहा कि तू तो इसी वक्त मर जाए तो बेहतर है। वह मर गई। तब तो वह बहुत घबड़ाया। उसने कहा कि यह तो बड़ी मुसीबत हो गई। तो उसने कहा, हे भगवान, वह एक और जो इच्छा बची है; कृपा करके मेरी स्त्री को जिंदा कर दें।
ये उनकी तीन इच्छाएं पूरी हुईं। उस आदमी ने दरवाजे पर लिख छोड़ा है कि
वह कहावत ठीक है।
हम जो मांग रहे हैं, हमें भी पता नहीं कि हम क्या मांग रहे हैं। वह तो पूरा नहीं होता, इसलिए हम मांगे चले जाते हैं। वह पूरा हो जाए, तो हमें पता चले। नहीं पूरा होता, तो कभी पता नहीं चलता है।
कृष्ण कहते हैं, मांगो ही मत। क्योंकि जिसने तुम्हें जीवन दिया, वह तुमसे ज्यादा समझदार है। तुम अपनी समझदारी मत बताओ। डोंट बी टू वाइज। बहुत बुद्धिमानी मत करो। जिसने तुम्हें जीवन दिया और जिसके हाथ से चांद-तारे चलते हैं और अनंत जीवन जिससे फैलता है और जिसमें लीन हो जाता है, निश्चित, इतना तो तय ही है कि वह हमसे ज्यादा समझदार है। और अगर वह भी नासमझ है, तो फिर हमें समझदार होने की चेष्टा करनी बिल्कुल बेकार है। कृष्ण कहते हैं, उस पर छोड़ दो। तुम किए चले जाओ; सब उस पर छोड़ दो।
और बड़ा आश्चर्य तो यह है कि जो छोड़ देता है, वह सब पा लेता है जो मिलने जैसा है। और जो नहीं छोड़ता--इस अरेबियन कहावत में उस आदमी के हाथ में कड़ाही तो कम से कम हाथ लग गई--लेकिन जो नहीं छोड़ता है, उसके हाथ में कड़ाही भी लगती होगी, इसका कोई भरोसा नहीं।
संन्यासी वह है, जिसने फल का ख्याल ही छोड़ दिया, जो आज जी रहा है, यहीं। क्या आप सोच सकते हैं कि बिना फल के आप कुछ गलत काम कर सकेंगे? अगर चोर
को भरोसा न हो कि रुपए मिल सकेंगे; तिजोरी लूट ही लूंगा, फल पा ही लूंगा; चोर चोरी करने जा सकेगा? असंभव है। आपके जीवन से बुरा कर्म तत्क्षण गिर जाएगा, अगर आकांक्षा और फल की कामना गिर गई। फिर भी जीवन की ऊर्जा काम करेगी। लेकिन तब प्रभु का हाथ बन जाती है जीवन की ऊर्जा, और वैसा प्रभु के हाथ बने हुए आदमी को कृष्ण संन्यासी कहते हैं।

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव।
न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन।। 2।।
इसलिए हे अर्जुन, जिसको संन्यास ऐसा कहते हैं, उसी को तू योग जान, क्योंकि संकल्पों को न त्यागने वाला कोई भी पुरुष योगी नहीं होता।

संकल्पों को न त्यागने वाला पुरुष योगी नहीं होता है। और संकल्पों को
जो त्याग दे, वही संन्यासी है।
संकल्प क्यों है हमारे मन में? संकल्प क्या है? इच्छा हो, तो संकल्प पैदा होता है। कुछ पाना हो तो पाने की चेष्टा, कुछ पाना हो तो पाने की शक्ति अर्जित करनी होती है। संकल्प है वासना को पूरा करने की तीव्रता, वासना को पूरा करने के लिए तीव्र आयोजन। संकल्प विल है। जब मैं कुछ पाना

चाहता हूं, तो अपने को दांव पर लगाता हूं। अपने को दांव पर लगाना संकल्प है।
जुआरी संकल्पवान होते हैं। भारी संकल्प करते हैं। सब कुछ लगा देते हैं कुछ पाने के लिए। हम सब भी जुआरी हैं। मात्रा कम-ज्यादा होती होगी। दांव छोटे-बड़े होते होंगे। लगाने की सामर्थ्य कम-ज्यादा होती होगी। हम सब लगाते हैं। अपनी इच्छाओं पर दांव लगाना ही पड़ता है। सिर्फ जुआरी वही नहीं है, जिसकी कोई फलाकांक्षा नहीं है। वह जुआरी नहीं है। उसके पास दांव पर लगाने का कोई सवाल नहीं है। कोई उसका दांव नहीं है। हम तो संकल्प करेंगे ही।
कृष्ण कहते हैं, सब संकल्प छोड़ दे, वही योगी है, वही संन्यासी है।
संकल्प तभी छूटेंगे, जब कुछ पाने का ख्याल न रह जाए। नहीं तो संकल्प जारी रहेंगे। मन चौबीस घंटे संकल्प के आस-पास अपनी शक्ति इकट्ठी करता रहता है। जो इच्छाएं संकल्प के बिना रह जाती हैं, वे इंपोटेंट, नपुंसक रह जाती हैं। हमारे भीतर बहुत इच्छाएं पैदा होती हैं। सभी इच्छाएं संकल्प नहीं बनतीं। इच्छाएं बहुत पैदा होती हैं, फिर किसी इच्छा के साथ हम अपनी ऊर्जा को, अपनी शक्ति को लगा देते हैं, तो वह इच्छा संकल्प हो जाती है। निष्क्रिय पड़ी हुई इच्छाएं धीरे-धीरे सपने बनकर खो जाती हैं। जिसके पीछे हम अपनी शक्ति लगा देते हैं, अपने को लगा देते हैं, वह इच्छा संकल्प बन जाती है।
संकल्प का अर्थ है, जिस इच्छा को पूरा करने के लिए हमने अपने को दांव
पर लगा दिया। तब वह डिजायर न रही, विल हो गई। और जब कोई संकल्प से भरता है, तब और भी गहन खतरे में उतर जाता है। क्योंकि अब इच्छा, मात्र इच्छा न रही कि मन में उसने सोचा हो कि महल बन जाए। अब वह महल बनाने के लिए जिद्द पर भी अड़ गया। जिद्द पर अड़ने का अर्थ है कि अब इस इच्छा के साथ उसने अपने अहंकार को जोड़ा। अब वह कहता है कि अगर इच्छा पूरी होगी, तो ही मैं हूं। अगर इच्छा पूरी न हुई, तो मैं बेकार हूं। अब उसका अहंकार इच्छा को पूरा करके अपने को सिद्ध करने की कोशिश करेगा। जब इच्छा के साथ अहंकार संयुक्त होता है, तो संकल्प निर्मित होता है।
अहंकार, मैं, जिस इच्छा को पकड़ लेता है, फिर हम उसके पीछे पागल हो जाते हैं। फिर हम सब कुछ गंवा दें, लेकिन इस इच्छा को पूरा करना बंद नहीं कर सकते। हम मिट जाएं। अक्सर ऐसा होता है कि अगर आदमी का संकल्प पूरा न हो पाए, तो आदमी आत्महत्या कर ले। कहे कि इस जीने से तो न जीना बेहतर है। पागल हो जाए। कहे कि इस मस्तिष्क का क्या उपयोग है! संकल्प।
लेकिन साधारणतः हम सभी को सिखाते हैं संकल्प को मजबूत करने की बात। अगर स्कूल में बच्चा परीक्षा उत्तीर्ण नहीं कर पा रहा है, तो शिक्षक कहता है, संकल्पवान बनो। मजबूत करो संकल्प को। कहो कि मैं पूरा करके रहूंगा। दांव पर लगाओ अपने को। अगर बेटा सफल नहीं हो पा रहा है, तो बाप कहता है कि संकल्प की कमी है। चारों तरफ हम संकल्प की शिक्षा देते हैं। हमारा पूरा तथाकथित संसार संकल्प के ही ऊपर खड़ा हुआ चलता है।
कृष्ण बिल्कुल उलटी बात कहते हैं। वे कहते हैं, संकल्पों को जो छोड़ दे बिल्कुल। संकल्प को जो छोड़ दे, वही प्रभु को उपलब्ध होता है। संकल्प को छोड़ने का मतलब हुआ, समर्पण हो जाए। कह दे कि जो तेरी मर्जी। मैं नहीं हूं। समर्पण का अर्थ है कि जो हारने को, असफल होने को राजी हो जाए।
ध्यान रखें, फलाकांक्षा छोड़ना और असफल होने के लिए राजी होना, एक ही बात है। असफल होने के लिए राजी होना और फलाकांक्षा छोड़ना, एक ही बात है। जो जो भी हो, उसके लिए राजी हो जाए; जो कहे कि मैं हूं ही नहीं सिवाय राजी होने के, एक्सेप्टिबिलिटी के अतिरिक्त मैं कुछ भी नहीं हूं। जो भी होगा, उसके लिए मैं राजी हूं। ऐसा ही व्यक्ति संन्यासी है।
तो संन्यासी का तो अर्थ हुआ, जो भीतर से बिल्कुल मिट जाए; जो भीतर से बिल्कुल मर जाए। संन्यास एक गहरी मृत्यु है, एक बहुत गहरी मृत्यु।
एक मृत्यु से तो हम परिचित हैं, जब शरीर मर जाता है। लेकिन वह मृत्यु नहीं है। वह सिर्फ धोखा है। क्योंकि फिर मन नए शरीर निर्मित कर लेता है।
वह सिर्फ वस्त्रों का परिवर्तन है। वह सिर्फ पुराने घर को छोड़कर नए घर में प्रवेश है।

इसलिए जो जानते हैं, वे मृत्यु को मृत्यु नहीं कहते, सिर्फ नए जीवन का प्रारंभ कहते हैं। जो जानते हैं, वे तो योग को मृत्यु कहते हैं। वे तो संन्यास को मृत्यु कहते हैं।
वस्तुतः आदमी भीतर से तभी मरता है, जब वह तय कर लेता है कि अब मेरा कोई संकल्प नहीं, मेरी कोई फल की आकांक्षा नहीं, मैं नहीं। जैसे ही कोई व्यक्ति यह कहने की हिम्मत जुटा लेता है कि अब मैं नहीं हूं, तू ही है, उस क्षण महामृत्यु घटित होती है।
और ध्यान रहे, उस महामृत्यु से ही महाजीवन का आविर्भाव होता है। जैसे बीज टूटता है, तो अंकुर बनता है, वृक्ष बनता है। अंडा टूटता है, तो उसके भीतर से जीवन बाहर निकलता है; पंख फैलाता है, आकाश में उड़ जाता है। ऐसे ही हम भी एक बंद बीज हैं, अहंकार के सख्त बीज। जब अहंकार की यह पर्त टूट जाए और यह बीज की खोल टूट जाए, तो ही हमारे भीतर से एक महाजीवन का पक्षी पंख फैलाकर उड़ता है विराट आकाश की ओर।
लेकिन हम तो इस बीज को बचाने में लगे रहते हैं। हम उन पागलों की तरह हैं, जो बीज को बचाने में लग जाएं। बीज को बचाने से कुछ होगा? सिर्फ सड़ेगा। बीज को बचाना पागलपन है। बीज बचाने के लिए नहीं, तोड़ने के लिए है। बीज मिटाने के लिए है। क्योंकि बीज मिटे, तो अंकुर हो। अंकुर हो, तो अनंत बीज लगें। अहंकार हमारा बीज है, सख्त गांठ।
और ध्यान रहे, बीज की खोल जो काम करती है, वही काम अहंकार करता है। बीज
की सख्त खोल क्या काम करती है? वह जो भीतर है कोमल जीवन, उसको बचाने का काम करती है। वह सेफ्टी मेजर है, सुरक्षा का उपाय है। वह जो खोल है सख्त, वह भीतर कुछ कोमल छिपा है, उसको बचाने की व्यवस्था है।
लेकिन बचाने की व्यवस्था अगर टूटने से इनकार कर दे, तो आत्महत्या बन जाएगी। जैसे कि हम एक सिपाही को युद्ध के मैदान पर कवच पहना देते हैं लोहे के। वह बचाने की व्यवस्था है कि बाहर से हमला हो, तो बच जाए। लेकिन फिर कवच इतना सख्त हो जाए और प्राणों पर इस तरह कस जाए कि जब सिपाही युद्ध से घर लौटे, तब भी कवच छोड़ने को राजी न हो; बिस्तर पर सोए, तो भी कवच को पकड़े रखे; और कह दे कि अब मैं कवच कभी नहीं निकालूंगा; तो वह कवच उसकी कब्र बन जाएगी। वह मरेगा उसी कवच में, जो बचाने के लिए था।
बीज की सख्त खोल, उसके भीतर कोमल जीवन छिपा है, उसको बचाने की व्यवस्था है। उस समय तक बचाने की व्यवस्था है, जब तक उस बीज को ठीक जमीन न मिल जाए। जब ठीक जमीन मिल जाए, तो वह बीज टूट जाए, सख्त खोल मिट जाए, गल जाए, हट जाए; अंकुरित हो जाए अंकुर; निकल आए कोमल जीवन। सूर्य को छूने की यात्रा पर चल पड़े।
ठीक हमारा अहंकार भी हमारे बचाव की व्यवस्था है। हमारा अहंकार भी हमारे बचाव की व्यवस्था है। जब तक ठीक भूमि न मिल जाए, वह हमें बचाए। ठीक भूमि कब मिलेगी?
अधिक लोग तो बीज ही रहकर मर जाते हैं। उनको कभी ठीक भूमि मिलती हुई मालूम नहीं पड़ती। उस ठीक भूमि का नाम ही धर्म है। जीवन की सारी खोज में जितने जल्दी आप धर्म के रहस्य को समझ लें, उतने जल्दी आपको ठीक भूमि मिल जाए।
यह मैं गीता पर बात कर रहा हूं इसी आशय से कि शायद आपके किसी बीज को भूमि की तलाश हो। कृष्ण की बात में, कहीं हवा में, वह भूमि मिल जाए। इस चर्चा के बहाने कहीं कोई स्वर आपको सुनाई पड़ जाए और वह भूमि मिल जाए, जिसमें आपका बीज अपने को तोड़ने को राजी हो जाए।
इसलिए तो कृष्ण पूरे समय अर्जुन से कह रहे हैं कि तू अपने को छोड़ दे,
तू अपने को तोड़ दे।
सारा धर्म यही कहता है। सारी दुनिया के धर्म यही कहते हैं। चाहे कुरान, चाहे बाइबिल, चाहे महावीर, चाहे बुद्ध। दुनिया में जिन्होंने भी धर्म की बात कही है, उन्होंने कहा है कि तुम मिटो। अगर तुम अपने को बचाओगे, तो तुम परमात्मा को खो दोगे। और तुम अगर अपने को मिटाने को राजी हो गए, तो तुम परमात्मा हो जाओगे। मिटो! अपने को मिटा डालो!
तुम ही तुम्हारे लिए बाधा हो। अब इस खोल को तोड़ो। इस खोल को कई जन्मों
तक खींच लिया। अब तुम्हारी आदत हो गई खोल को खींचने की। अब तुम समझते हो कि

मैं खोल हूं। अब तुम, भीतर का वह जो कोमल जीवन है, उसको भूल ही चुके हो। वह जो आत्मा है, बिल्कुल भूल गई है और शरीर को ही समझ लिया है कि मैं हूं। वह जो चेतना है, बिल्कुल भूल गई है और मन की वासनाओं को ही समझ लिया है कि मैं हूं। अब इस खोल को तोड़ो, इस खोल को छोड़ दो।
लेकिन हम संकल्प करके इस खोल को बचाए चले जाते हैं। संकल्प इस खोल को बचाने की चेष्टा है। हम कहते हैं, मैं अपने को बचाऊंगा। हम सब एक-दूसरे से लड़ रहे हैं, ताकि कोई हमें नष्ट न कर दे। हम सब संघर्ष में लीन हैं, ताकि हम बच जाएं।
डार्विन ने कहा है कि यह सारा जीवन स्ट्रगल फार सरवाइवल है। यह सब बचाव का संघर्ष है। और वे ही बचते हैं, जो सर्वाधिक योग्य हैं। सरवाइवल आफ दि फिटेस्ट। वे जो सर्वाधिक योग्य हैं, वे ही बचते हैं।
लेकिन अगर डार्विन ने कभी कृष्ण को समझा होता, तो कृष्ण कुछ दूसरा सूत्र कहते हैं। कृष्ण कहते हैं कि जो श्रेष्ठतम हैं, वे तो अपने को बचाते ही नहीं। और जो मिटते हैं, वे ही बचते हैं।
जीसस से पूछा होता डार्विन ने, तो जीसस भी यही कहते कि अगर तुमने बचाया अपने को, तो खो दोगे। और अगर खोने को राजी हो गए, तो बच जाओगे।
धर्म कहता है कि हमने खोल को समझ लिया अंकुर, तो हम भूल में पड़ गए। यह खोल ही है। और आप मत मिटाओ, इससे अंतर नहीं पड़ता। खोल तो मिटेगी। खोल को तो मिटना ही पड़ेगा। सिर्फ एक जीवन का अवसर व्यर्थ हो जाएगा। फिर नई खोल, और फिर आप उस खोल को पकड़ लेना कि यह मैं हूं, और फिर आप एक जीवन के अवसर को खो देना!
संकल्प हमारी बचाने की चेष्टा है। हर आदमी अपने को बचाने में लगा है। आदमी ही क्यों, छोटे से छोटा प्राणी भी अपने को बचाने में लगा है। छोटा-सा पक्षी भी बचा रहा है। छोटा-सा कीड़ा-मकोड़ा भी बचा रहा है। एक पत्थर भी अपनी सुरक्षा कर रहा है। सब अपनी सुरक्षा कर रहे हैं। अगर हम पूरे जीवन की धारा को देखें, तो हर एक अपनी सुरक्षा में लगा है।
संन्यास असुरक्षा में उतरना है, ए जंप इनटु दि इनसिक्योरिटी। संन्यास
का अर्थ है, अपने को बचाने की कोशिश बंद। अब हम मरने को राजी हैं। हम बचाते ही नहीं हैं, क्योंकि हम कहते हैं कि बचाकर भी कौन अपने को बचा पाया है! कृष्ण कहते हैं, संकल्पों को छोड़ देता है जो, वही योगी है।
लेकिन एक आदमी कहता है कि मैंने संकल्प किया है कि मैं परमात्मा को पाकर रहूंगा। फिर यह आदमी संन्यास नहीं पा सकेगा। अभी इसका संकल्प है। यह तो परमात्मा को भी एक एडीशन बनाना चाहता है अपनी संपत्ति में। इसके पास एक मकान है, दुकान है, इसके पास सर्टिफिकेट्स हैं, बड़ी नौकरी है, बड़ा पद है। यह कहता है कि सब है अपने पास, अपनी मुट्ठी में भगवान भी होना चाहिए! ऐसे नहीं चलेगा। ऐसे नहीं चलेगा, ऐसे सब तरह का फर्नीचर अपने घर में है; यह भगवान नाम का फर्नीचर भी अपने घर में होना चाहिए! ताकि हम मुहल्ले-पड़ोस के लोगों को दिखा सकें कि पोर्च में देखो, बड़ी कार खड़ी है। घर में मंदिर बनाया है, उसमें भगवान है। सब हमारे पास है। भगवान भी हमारा परिग्रह का एक हिस्सा है।
जो भी संकल्प करेगा, वह भगवान को नहीं पा सकेगा। क्योंकि संकल्प का मतलब ही यह है कि मैं मौजूद हूं। और जहां तक मैं मौजूद है, वहां तक परमात्मा को पाने का कोई उपाय नहीं है। बूंद कहे कि मैं बूंद रहकर और सागर को पा लेना चाहती हूं, तो आप उससे क्या कहिएगा, कि तुझे गणित का पता नहीं है। बूंद कहे, मैं बूंद रहकर सागर को पा लेना चाहती हूं! बूंद कहे, मैं तो सागर को अपने घर में लाकर रहूंगी! तो सागर हंसता होगा। आप भी हंसेंगे। बूंद नासमझ है। लेकिन जहां आदमी का सवाल है, आपको हंसी नहीं आएगी। आदमी कहता है, मैं तो बचूंगा और परमात्मा को भी पा लूंगा। यह वैसा ही पागलपन है, जैसे बूंद कहे कि मैं तो बचूंगी और सागर को पा लूंगी।
अगर बूंद को सागर को पाना हो, तो बूंद को मिटना पड़ेगा, उसे खुद को खोना पड़ेगा। वह बूंद सागर में गिर जाए, मिट जाए, तो सागर को पा लेगी। और कोई उपाय नहीं है। अन्यथा कोई मार्ग नहीं है। आदमी भी अपने को खो दे, तो परमात्मा को पा ले। बूंद की तरह है, परमात्मा सागर की तरह है। आदमी अपने को बचाए और कहे कि मैं परमात्मा को पा लूं--पागलपन है। बूंद पागल हो गई है। लेकिन बूंद पर

हम हंसते हैं, आदमी पर हम हंसते नहीं हैं। जब भी कोई आदमी कहता है, मैं परमात्मा को पाकर रहूंगा, तो वह आदमी पागल है। वह पागल होने के रास्ते पर चल पड़ा है। मैं ही तो बाधा है।
कबीर ने कहा है कि बहुत खोजा। खोजते-खोजते थक गया; नहीं पाया उसे। और पाया तब, जब खोजते-खोजते खुद खो गया। जिस दिन पाया कि मैं नहीं हूं, अचानक पाया कि वह है। ये दोनों एक साथ नहीं होते। इसलिए कबीर ने कहा, प्रेम गली अति सांकरी, ता में दो न समाय। वह दो नहीं समा सकेंगे वहां। या तो वह या मैं।
संकल्प है मैं का बचाव। वह जो ईगो है, अहंकार है, वह अपने को बचाने के लिए जो योजनाएं करता है, उनका नाम संकल्प है। वह अपने को बचाने के लिए जिन फलों की आकांक्षा करता है, उन आकांक्षाओं को पूरा करने की जो व्यवस्था करता है, उसका नाम संकल्प है।
नीत्शे ने एक किताब लिखी है, उस किताब का नाम ठीक इससे उलटा है। किताब
का नाम है, दि विल टु पावर--शक्ति का संकल्प। और नीत्शे कहता है, बस, एक ही जीवन का असली राज है और वह है, शक्ति का संकल्प। संकल्प किए चले जाओ। और शक्ति, और शक्ति, और ज्यादा शक्ति--चाहे धन, चाहे यश, चाहे पद, चाहे ज्ञान-- लेकिन और शक्ति चाहिए। बस, जीवन का एक ही राज है, नीत्शे कहता है कि और शक्ति चाहिए। उसका संकल्प किए चले जाओ। जो संकल्प करेगा, वह जीत जाएगा। जो नहीं करेगा, वह हार जाएगा। और जो हार जाएं, उन्हें मिटा डालो। उनको बचाने की भी कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि वे जीवन के काम के नहीं हैं। जो जीत जाएं, उन्हें बचाओ।
नीत्शे जो कह रहा है, वह संकल्प की फिलासफी है; वह संकल्प का दर्शन है। इसलिए नीत्शे ने कहीं कहा है कि मैं एक ही सौंदर्य जानता हूं। जब मैं सिपाहियों को रास्ते पर चलते देखता हूं और उनकी संगीनें सूरज की रोशनी में चमकती हैं, बस, इससे ज्यादा सुंदर चीज मैंने कोई नहीं देखी। निश्चित ही, जब संगीन चमकती है रास्ते पर, तो इससे ज्यादा सुंदर प्रतीक अहंकार का और कोई नहीं हो सकता। नीत्शे कहता है, मैंने कोई और इससे महत्वपूर्ण संगीत नहीं सुना। जब सिपाहियों के युद्ध के मैदान की तरफ जाते हुए जूतों की आवाज रास्तों पर लयबद्ध पड़ती है, इससे सुंदर संगीत मैंने कोई नहीं सुना। निश्चित ही, अहंकार अगर कोई संगीत बनाए, तो जूतों की लयबद्ध आवाज के अलावा और क्या संगीत बना सकता है! अगर अहंकार कोई संगीत, कोई मेलोडी, अगर अहंकार कभी कोई मोजार्ट और बीथोवन पैदा करे, अगर अहंकार कभी कोई बड़ा संगीतज्ञ, तानसेन पैदा करे, तो अहंकार जो संगीत बनाएगा, वह जूतों की आवाज से ही निकलेगा। वह जो आर्केस्ट्रा होगा, उसमें जूतों के सिवाय कुछ भी नहीं होगा। संगीनें हो सकती हैं, जूते हो सकते हैं। संगीनों की चमकती हुई धार हो सकती है, जूतों की लयबद्ध आवाज हो सकती है। लेकिन नीत्शे ठीक कहता है। संकल्प का यही परिणाम है, संकल्प का यही अर्थ है। वह अहंकार की बेतहाशा पागल दौड़ है।
कृष्ण कहते हैं, लेकिन संकल्प जहां है... ।
इसलिए बहुत-से लोगों को--यह मैं आपको इंगित करना उचित समझूंगा--बहुत-
से लोगों को यह भ्रांति हुई है कि नीत्शे और कृष्ण के दर्शन में मेल है। क्योंकि नीत्शे भी युद्धवादी है और कृष्ण भी अर्जुन को कहते हैं, युद्ध में तू जा। इससे बड़ी भ्रांति हुई है। लेकिन उन्हें पता नहीं कि दोनों की जीवन की मूल-दृष्टि बहुत अलग है!
कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि तू युद्ध में जाने के योग्य तभी होगा, जब तेरा कोई संकल्प न रहे। तू युद्ध में जाने के योग्य तभी होगा, जब तेरी कोई कामना न रहे। तू युद्ध में जाने की तभी योग्यता पाएगा, जब तू न रहे। संन्यासी की तरह युद्ध में जा।
कृष्ण का युद्ध धर्मयुद्ध है। बहुत और ही अर्थ है उसका। और जब नीत्शे कहता है कि युद्ध में जा, तो वह कहता है, युद्ध का अर्थ ही है, दूसरे को नष्ट करने की आकांक्षा। युद्ध का अर्थ ही है, स्वयं को सिद्ध करने का प्रयास।
युद्ध का अर्थ ही है कि मैं हूं, और तुझे नहीं रहने दूंगा। युद्ध एक संघर्ष है अहंकार की घोषणा का।

तो जिन लोगों ने भी नीत्शे और कृष्ण के बीच तालमेल बिठालने की कोशिश
की है, वे एकदम नासमझी से भरे हुए वक्तव्य हैं। नीत्शे और कृष्ण के बीच कोई तालमेल नहीं हो सकता, बिल्कुल विपरीत लोग हैं। शर्तें उनकी अलग हैं। कृष्ण अर्जुन को युद्ध पर भेज सकते हैं, जब अर्जुन बिल्कुल शून्यवत हो जाए। और अगर शून्य लड़ेगा, तो अधर्म के लिए नहीं लड़ सकता। अधर्म के लिए लड़ने के लिए शून्य को क्या कारण है? शून्य अगर लड़ेगा, तो धर्म के लिए ही लड़ सकता है। क्योंकि धर्म स्वभाव है। और शून्य स्वभाव में जीने लगता है। वह स्वभाव से लड़ सकता है।
इसलिए कृष्ण ने अगर अर्जुन को इस युद्ध के लिए कहा कि तू जा युद्ध में,
तो युद्ध में जाने के पहले बड़ी शर्तें हैं उनकी। वे शर्तें अर्जुन पूरी करे, तो ही युद्ध की पात्रता आती है। वह शर्तें पूरी कर दे, तो अर्जुन में कुछ भी नहीं रह जाता जो अर्जुन का है, अर्जुन परमात्मा का हाथ बन जाता है। जो भी ये शर्तें पूरी कर देगा, वह परमात्मा का हाथ हो जाता है। वह एक सिर्फ बांस की पोंगरी हो गया, जिसमें गीत प्रभु का होगा अब। वह तो सिर्फ खाली जगह है, जिससे गीत बहेगा--एक पैसेज, एक मार्ग, एक जगह, एक रास्ता। बस, इससे ज्यादा नहीं।
संकल्प सब छोड़ दे कोई। और संकल्प तभी छोड़ेगा, जब इच्छाएं छोड़ दे। इसलिए पहले सूत्र में कृष्ण ने कहा, इच्छाएं न हों। तब दूसरे सूत्र में कहते हैं, संकल्प न हों। अगर इच्छाएं होंगी, तो संकल्प तो पैदा होंगे ही। इच्छाएं जहां होंगी, वहां संकल्प भी आरोपित होंगे।
संकल्प का अर्थ है, जिस इच्छा ने आपके अहंकार में जड़ें पकड़ लीं, जिस इच्छा ने आपके अहंकार को अपना सहयोगी बना लिया, जिस इच्छा ने आपके अहंकार को परसुएड कर लिया, फुसला लिया कि आओ मेरे साथ, चलो मेरे पीछे, मैं तुझे स्वर्ग पहुंचा देती हूं। अहंकार जिस इच्छा के पीछे चलकर स्वर्ग पाने की खोज करने लगा, वही संकल्प है।
इसलिए पहले सूत्र में कहा, इच्छाएं न हों; दूसरे सूत्र में कहा, संकल्प न हों; तब संन्यास है।
तो संन्यास का अर्थ संकल्प नहीं है। संन्यास का अर्थ समर्पण है-- समर्पण, सरेंडर।
मंदिर में तो जाकर हम भी परमात्मा के चरणों में सिर रख देते हैं। लेकिन जरा गौर से खोजकर देखेंगे, तो बहुत हैरान होंगे। यह शरीर वाला सिर तो नीचे रखा रहता है, लेकिन असली सिर पीछे खड़ा हुआ देखता रहता है कि मंदिर में और भी कोई देखने वाला है या नहीं! अगर कोई देखने वाला होता है, तो मंत्रोच्चार जोर से होता है। अगर कोई देखने वाला न हो, तो जल्दी निपटाकर आदमी चला जाता है। वह असली अहंकार तो पीछे खड़ा रहता है। वह परमात्मा के चरणों में भी सिर नहीं झुकाता है।
असल में, हमारे जीवन का सारा ढंग सिर झुकाने का नहीं है। जीवन का सारा ढंग सिर को अकड़ाने का है। कभी-कभी झुकाते हैं, मजबूरी में! लेकिन वह अस्थायी उपाय होता है। इसलिए जिस आदमी ने आपसे सिर झुकवा लिया, उसको आपसे सदा सावधान रहना चाहिए। क्योंकि आप कभी इसका बदला चुकाएंगे। जिस आदमी ने कभी आपके सामने सिर झुकाया हो, अब उससे जरा बचकर रहना। आपने एक दुश्मन बना लिया है। वह आपसे बदला लेगा। क्योंकि सिर मन मर्जी से नहीं झुकाता। सिर मन बड़ी बेमर्जी से झुकाता है। और प्रतीक्षा करता है कि कब मौका मिल जाए। कब मौका मिल जाए कि मैं भी इस सिर को झुकवा लूं!
जब तक मन है, तब तक सिर नहीं झुक सकेगा। और जहां मन नहीं है, वहां सिर झुका ही हुआ है। वहां खड़ा हुआ सिर भी झुका ही हुआ है।
कृष्ण जब कहते हैं, संकल्प न रहे, तो वे यह कह रहे हैं कि भीतर वह अहंकार न रह जाए, जो क्रिस्टलाइज करता है सब संकल्पों को।
भीतर मैं का स्वर जारी रहता है चौबीस घंटे। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि
आप मैं न बोलें। न! न बोलने से काम नहीं चलेगा, बोलना तो पड़ेगा ही। लेकिन जब आप बोलते हों कि मैं, तब भी जानें कि भीतर कोई मैं सघन न हो पाए। भीतर कोई मैं मजबूत न हो पाए। मैं यह सिर्फ शब्द में रहे, भाषा में रहे, व्यवहार में रहे, भीतर गहरा न हो पाए। लेकिन हमारी हालत उलटी है। हम अक्सर बाहर से मैं का उपयोग न भी करें, तो भी भीतर मैं मौजूद रहता है!

हुबार्ड करके एक विचारक है। उसने एक छोटा-सा अभ्यास विकसित किया है साधकों के लिए। और वह अभ्यास यह है कि दिन में तुम ख्याल रखो कि कितनी बार मैं का उपयोग किया; इसे नोट करते रहो। तो हुबार्ड के साधक अपनी जेब में एक नोट बुक लिए रहते हैं और दिनभर वे आंकड़े लगाते रहते हैं कि कितना मैं का उपयोग किया। दंग रह जाते हैं देखकर कि दिनभर में इतना मैं! इतनी बार मैं बोले!
फिर हुबार्ड कहता है, इसका होश रखो। होश रखने से मैं का उपयोग कम होता चला जाता है। आज सौ दफे हुआ। कल नब्बे दफे हुआ। दो-चार महीने में वह दो-चार दफे होता है। चार-छः महीने में वह शून्यवत हो जाता है। लेकिन तब साधक को पता चलता है कि मैं का उपयोग न भी करो, तो भी भीतर मैं खड़ा है। तब पता चलता है, तब ख्याल में आता है कि मैं का उपयोग मत करो, तो भी मैं खड़ा है।
रास्ते पर आप चले जा रहे हैं। कोई नहीं है, तो आप और ढंग से चलते हैं। फिर दो आदमी रास्ते पर निकल आए, आपका मैं मौजूद हो गया। भीतर कुछ हिला; भीतर कुछ तैयार हो गया। टाई वगैरह उसने ठीक कर ली; कपड़े उसने ठीक किए; चल पड़ा। बाथरूम में आप होते हैं तब? कल ख्याल करना। बाथरूम में वही आदमी रहता है, जो बैठकखाने में रहता है? तब आपको पता चलेगा कि बाथरूम में और कोई स्नान करता है; बैठकखाने में और कोई बैठता है! आप ही। आप ही जब बैठकखाने में होते हैं, तो कोई और होते हैं। आप ही जब बाथरूम में होते हैं, तो कोई और होते हैं।
बाथरूम में कोई देख नहीं रहा है, इसलिए मैं को थोड़ी देर के लिए छुट्टी है। अभी इसकी कोई जरूरत नहीं, क्योंकि मैं का सदा दूसरे के सामने मजा है, दूसरे के सामने लिया गया मजा है। बाथरूम में छुट्टी दे देते हैं। लेकिन बाथरूम में अगर आईना लगा है, तो आपको जरा मुश्किल पड़ेगी। क्योंकि आईने में देखकर आप दो काम करते हैं। दिखाई पड़ने वाले का भी और देखने वाले का भी। दो हो जाते हैं, दो मौजूद हो जाते हैं आईने के साथ। आईने के सामने खड़े होकर फिर सब बदल जाता है।
सूक्ष्म, भीतर, चौबीस घंटे बोलें, न बोलें, मैं की एक धारा सरक रही है।
एक बहुत अंतर्धारा, अंडर करेंट है। उसके प्रति सजग होना जरूरी है। उसके प्रति सजग हो जाएं, तो धीरे-धीरे आप समझ सकते हैं कि वही धारा संकल्पों को पैदा करवाती है। क्योंकि बिना संकल्प के वह धारा एक्चुअलाइज नहीं हो सकती।
ऐसा समझें कि जैसे आकाश में भाप के बादल उड़ रहे हैं। जब तक उनको ठंडक न मिले, तब तक वे पानी न बन सकेंगे, आकाश में उड़ते रहेंगे। ठंडक मिले, तो पानी बन जाएंगे। और ठंडक मिले, तो बर्फ बन जाएंगे।
ठीक हमारे मन में भी अंतर्धारा बड़ी बारीक बहती रहती है, भाप की तरह, अहंकार की। इस भाप की तरह बहने वाली अहंकार की जो बदलियां हमारे भीतर हैं, उनका हमें तब तक मजा नहीं आता, जब तक कि वे प्रकट होकर पानी न बन जाएं। पानी ही नहीं, जब तक वे बर्फ की तरह सख्त, जमकर दिखाई न पड़ने लगें सारी दुनिया को, तब तक हमें मजा नहीं आता।
तो अहंकार ऐसे कर्म करेगा, जिनके द्वारा बादल पानी बन जाएं। ऐसे कर्म करेगा, जिनके द्वारा पानी सख्त बर्फ, पत्थर बन जाए; तब लोगों को दिखाई पड़ेगा। तो अगर आप अकेले हैं, तब आपके भीतर अहंकार बादलों की तरह होता है। जब आप दूसरों के साथ हैं, तब पानी की तरह हो जाता है। और अगर आप कुछ धन पाने में समर्थ हो गए, कुछ पद पाने में सफल हो गए, कुछ स्कूल से शिक्षा जुटा ली, कुछ कूड़ा-कबाड़ इकट्ठा करने में अगर आप सफल हो गए, तो फिर आपका पानी बिल्कुल बर्फ, ठोस पत्थर के बर्फ की तरह जम जाता है, फ्रोजन। फिर वह साफ दिखाई पड़ने लगता है। दिखाई ही नहीं पड़ने लगता है, गड़ने लगता है दूसरों को।
और जब तक अहंकार दूसरे को गड़ने न लगे, तब तक आपको मजा नहीं आता। तब तक मजा आ नहीं सकता। जब तक आपका अहंकार दूसरे की छाती में चुभने न लगे, तब तक मजा नहीं आता। मजा तभी आता है, जब दूसरे की छाती में घाव बनाने लगे। और दूसरा कुछ भी न कर पाए, तड़फकर रह जाए, और आपका अहंकार उसकी छाती में घाव बनाए। तब आप बिल्कुल विनम्र हो सकते हैं। तब आप कह सकते हैं, मैं तो कुछ भी नहीं हूं। भीतर मजा ले सकते हैं उसकी छाती में चुभने का, और ऊपर से हाथ जोड़कर कह सकते हैं कि मैं तो कुछ भी नहीं हूं, सीधा-सादा आदमी हूं!

यह जो हमारे संकल्पों की, अहंकारों की, वासनाओं की अंतर्धारा है, इस अंतर्धारा को ही विसर्जित कोई करे, तो संन्यास उपलब्ध होता है। इसलिए संन्यास एक विज्ञान है। एक-एक इंच विज्ञान है। संन्यास कोई ऐसी बात नहीं है कि आप कहीं अंधेरे में पड़ी कोई चीज है कि बस उठा लिए। संन्यास एक विज्ञान है, एक साइंस है। और आपके पूरे चित्त का रूपांतरण हो, एक-एक इंच आपका चित्त बदले, आधार से बदले शिखर तक, तभी संन्यास फलित होता है।
आधार क्या है? आधार है फल की आकांक्षा। प्रक्रिया क्या है? प्रक्रिया
है संकल्प। उपलब्धि क्या है? उपलब्धि है अहंकार। ये तीन शब्द ख्याल ले लेंः फल की आकांक्षा, संकल्प की प्रक्रिया, अहंकार की सिद्धि। आधार में फल की आकांक्षा, मार्ग में संकल्पों की दौड़, अंत में अहंकार की सिद्धि।
यह हमारा गृहस्थ जीवन का रूप है। जो भी ऐसे जी रहा है, वह गृहस्थ है।
जो इन तीन के बीच जी रहा है, वह गृहस्थ है। जो इन तीन के बाहर जीना शुरू कर दे, वह संन्यस्त है।
कहां से शुरू करेंगे? वहीं से शुरू करें, जहां से कृष्ण कहते हैं। फल
की आकांक्षा से शुरू करें, क्योंकि वहां लड़ाई सबसे आसान है। क्योंकि अभी बादल है वहां, पानी भी नहीं बना है। बर्फ बन गया, तो बहुत मुश्किल हो जाएगा। फिर बर्फ को पहले पिघलाओ, पानी बनाओ। फिर पानी को गर्म करो, भाप बनाओ। और तभी भाप से मुक्त हुआ जा सकता है, आकाश में छोड़कर आप भाग सकते हो कि अब छुटकारा हुआ। वहीं से शुरू करें।
बहुत कुछ तो आपके भीतर बर्फ बन चुका होगा। अभी उसके साथ हमला मत बोलें। बहुत कुछ अभी पानी होगा। प्रक्रिया चल रही होगी बर्फ बनने की, अभी उसको भी मत छुएं। अभी तो उन बादलों की तरफ देखें, जिनको आप पानी बना रहे हैं। जिन आकांक्षाओं को अभी आप नए संकल्प दे रहे हैं, उनकी तरफ देखें। उन आकांक्षाओं के प्रति सजग हों और लौटकर पीछे देखें कि इतनी आकांक्षाएं पूरी कीं, पाया क्या? इतने फल पाए, फिर भी निष्फल हैं।
अगर पचास साल की उम्र हो गई, तो लौटकर पीछे देखें कि पचास साल में इतना पाने की कोशिश की, इतना पा भी लिया, फिर भी पहुंचे कहां? पाया क्या? और अगर पचास साल और मिल जाएं, तो भी हम क्या करेंगे? हम वही पुनरुक्त कर रहे हैं। जिसके पास दस रुपए थे, उसने सौ कर लिए हैं। सौ की जगह वह हजार कर लेगा। हजार होंगे, दस हजार कर लेगा। दस हजार होंगे, लाख कर लेगा। लेकिन दस हजार जब कोई सुख न दे पाए! और जब एक रुपया पास में था, तो ख्याल था कि दस रुपए भी हो जाएं, तो बहुत सुख आ जाएगा। दस हजार भी कोई सुख न ला पाए, तो दस लाख भी कैसे सुख ला पाएंगे?
लौटकर पीछे देखें। और अपने अतीत को समझकर, अपने भविष्य को पुनः धोखा न देने दें। नहीं तो भविष्य रोज धोखा देता है। भविष्य रोज विश्वास दिलाता है कि नहीं हुआ कल, कोई बात नहीं; कल हो जाएगा। वही उसका सीक्रेट है आपको पकड़े रखने का। कहता है, कोई फिक्र नहीं; हजार रुपए से नहीं हो सका, हजार में कभी होता ही नहीं; लाख में होता है। जब लाख हो जाएंगे, तब यही मन कहेगा, लाख में कभी होता ही नहीं; दस लाख में होता है। यह मन कहे चला जाएगा। इस मन ने कभी भी नहीं छोड़ा कि कहना बंद किया हो। जिनको पूरी पृथ्वी का राज्य मिल गया, उनसे भी इसने नहीं छोड़ा कि तुम तृप्त हो गए हो। उनको भी कहा कि इतने से क्या होगा?
अभी देख रहे हैं आप, अमेरिका और रूस के बीच एक जी-जान की बाजी चली पिछले दो-तीन वर्षों में कि चांद पर पहुंच जाएं। इस जमीन पर साम्राज्य बढ़ाकर देख लिया, कुछ बहुत रस मिला नहीं। अब चांद पर साम्राज्य बढ़ाना है! चांद पर झंडा गाड़ देना है। वह किसी की छाती में झंडा गाड़ना है। मंगल पर कल गाड़ देंगे। होगा क्या?
हम गणित को ही नहीं समझते, उसको फैलाए चले जाते हैं। गणित सीधा और साफ
है कि फल की दौड़ से सुख का कोई भी संबंध नहीं है। संबंध ही नहीं है। सुख का संबंध है कर्म में रस लेने से। सुख का संबंध फल में रस लेने से जरा भी नहीं है। सच तो यह है कि जिसने फल में लिया रस, मिलेगा उसे दुख।
फल में रस, दुख उसकी निष्पत्ति है। जितना ज्यादा फल में रस लिया, उतना ज्यादा दुख मिलेगा। दो कारण से दुख मिलेगा। अगर फल नहीं मिला, तो दुख मिलेगा। यह दुख मिलेगा कि फल नहीं मिल पाया, मैं हार गया। पराजित, पददलित।

अगर मिल गया, तो भी दुख मिलेगा, क्योंकि मिलते ही पता चलेगा कि इतनी मेहनत की, इतना श्रम उठाया और यह मिल भी गया और फिर भी कुछ नहीं मिला!
फल दो तरह से दुख लाता है। हारे हुओं को भी और जीते हुओं को भी। हारे हुओं को कहता है कि फिर कोशिश करो, तो जीत जाओगे। जीते हुओं को कहता है कि किसी और चीज पर कोशिश करो। यह मकान तो बना लिया, ठीक है। एक हवाई जहाज और खरीद लो। क्योंकि हवाई जहाज के बिना कभी किसी को सुख मिला? हवाई जहाज जिसको मिल जाता है, उसे कुछ हुआ नहीं। कुछ और कर डालो।
और कुछ लोग ऐसी जगह पहुंच जाते हैं एक दिन, जहां कुछ करने को नहीं बचता। सब कुछ उनके पास हो जाता है। आज अमेरिका में वैसी हालत हो गई है। कुछ लोग तो उस जगह पहुंच गए हैं, जिनके पास सब है, अतिरिक्त है। तो अमेरिका में जो आज चीजें बेचने वाले लोग हैं, वे मन की तरकीब को जानते हैं। वे क्या कहते हैं? वे लोगों को समझाते हैं कि एक मकान से कहीं सुख मिला? सुख उनको मिलता है, जिनके पास दो मकान हैं। वह एक ही मकान में पति-पत्नी रह रहे हैं कुल जमा, उसमें बीस कमरे हैं। वह उनको समझा रहा है--वह जो जमीन बेचने वाला, मकान बेचने वाला आदमी--कि एक मकान से कहीं सुख मिलता है?
अमेरिका के मकानों का विज्ञापन अखबारों में देखें, तो आपको बहुत हैरानी होगी। अखबारों में विज्ञापन कहते हैं, कहीं एक मकान से सुख मिलता है? एक मकान और चाहिए हिल स्टेशन पर। जिनके पास दो मकान हैं, उनसे कहते हैं कि एक मकान और चाहिए समुद्र तट पर। वह मन की तरकीब का ख्याल है कि सुख! मन हमेशा कहता है कि सुख मिल सकता है। या तो तुमने गलत चीज में सोचा था पहले। इसी मन ने समझाया था वह भी। अब यही मन समझाता है कि दूसरी चीज चुनो। या मन कहता है--अगर हार गए, तो वह कहता है--हारने में तो दुख मिलता ही है, और संकल्प करो। और संकल्प करो, तो जीत जाओगे।
मन के इस गणित को समझेंगे आप, तो कृष्ण का महागणित समझ में आ सकेगा। वह संन्यास का है, वह बिल्कुल उलटा है। वह यह है कि मन की इस प्रक्रिया में जो उलझा, वह सिवाय दुख के और कहीं भी नहीं पहुंचता है।
सुख है। ऐसा नहीं कि सुख नहीं है। सुख निश्चित है, लेकिन उसकी प्रक्रिया दूसरी है। उसकी प्रक्रिया है कि बर्फ को पानी बनाओ, पानी को भाप बनाओ। भाप से छुटकारा, नमस्कार कर लो। भाप से कहो कि जाओ; यात्रा पर निकल जाओ आकाश की।
अहंकार को संकल्पों में बदलो, संकल्पों को कामनाओं में कामनाओं का छुटकारा कर दो। अहंकार को गलाओ, संकल्प का पानी बनाओ। संकल्प को भी आंच दो, ज्ञान की आंच दो, उसको भाप बन जाने दो। वह बादल बनकर तुमसे हट जाए। उसके बाहर हो जाओ।
और जिस दिन भी कोई व्यक्ति ऐसी स्थिति में आ जाता है--और कोई भी आ सकता है, क्योंकि सभी उस स्थिति के हकदार हैं। वह कृष्ण कुल अर्जुन से ही कहते हों, ऐसा नहीं है। कोई भी, जिसके जीवन में चिंतना आ गई हो, उसके लिए सिवाय इसके कोई भी मार्ग नहीं है। जिसने सोचा हो जरा भी, उसके लिए सिवाय इसके कोई मार्ग नहीं है।
और अगर आपको अब तक यह पता न चला हो कि इच्छाओं के मार्ग से सुख नहीं आता है, तो आप समझना कि आपने अभी सोचना शुरू नहीं किया। अगर आपको अभी यह ख्याल न आया हो कि इच्छाएं दुख लाती हैं, तो आप समझना कि अभी आपके सोचने की शुरुआत नहीं हुई। क्योंकि जो आदमी भी सोचना शुरू करेगा, जीवन की पहली बुनियादी बात उसको यह ख्याल में आएगी। यह पहला चरण है सोचने का कि इच्छाएं कभी भी सुख लाती नहीं, दुख में ले जाती हैं। फिर सुख कहां है?
तो दो उपाय हैं। या तो हम समझें कि फिर सुख है ही नहीं; या फिर एक उपाय
यह है कि सुख इच्छाओं के अतिरिक्त कहीं हो सकता है। इसके पहले कि हम निर्णय करें कि सुख है ही नहीं, कुछ क्षण इच्छाओं के बिना जीकर देख लें। ऐसे भी कुछ लोग हैं, जो कहते हैं, सुख है ही नहीं; दुख ही है। जैसे फ्रायड कहेगा, दुख ही है। आप ज्यादा से ज्यादा इतना कर सकते हैं कि सहने योग्य दुख उठाएं, ज्यादा मत उठाएं। या ऐसा कर सकते हैं कि अपने को इस योग्य बना लें कि सब दुखों को सह सकें। सुख है नहीं। फ्रायड कहता है, कहीं कोई सुख नहीं है। ज्यादा और कम दुख हो सकता है; ज्यादा सहने वाला कम सहने वाला आदमी हो सकता है। लेकिन दुख ही है।

लेकिन फ्रायड का यह वक्तव्य अवैज्ञानिक है। एक तरफ से फ्रायड ठीक कहता है, क्योंकि जितना उसने समझा, सभी इच्छाएं दुख में ले जाती हैं। इसलिए उसका यह वक्तव्य ठीक है कि दुख ही है। लेकिन फ्रायड को उस क्षण का कोई भी पता नहीं है, जो इच्छाओं के बाहर जीया जा सकता है। एक क्षण का भी उसे कोई पता नहीं है, जो इच्छाओं के बाहर जीया जा सकता है।
जिनको पता है, बुद्ध को या कृष्ण को, वे हंसेंगे फ्रायड पर कि तुम जो कहते हो, आधी बात सच कहते हो। इच्छाओं में कोई सुख संभव नहीं है। लेकिन सुख संभव नहीं है, यह मत कहो। क्योंकि इच्छाओं के बिना आदमी संभव है। और इच्छाओं के बिना जो आदमी संभव है, उसके जीवन में सुख की ऐसी वर्षा हो जाती है--कल्पनातीत! स्वप्न भी नहीं देखा था, इतने सुख की वर्षा चारों ओर से हो जाती है। जैसे ही इच्छाएं हटीं, और सुख आया।
अगर इसे मैं ऐसा कहूं, तो शायद आसानी होगी समझने में। सुख और इच्छा में वैसा ही संबंध है, जैसा प्रकाश और अंधेरे में। अगर इसे ठीक से समझना चाहें, तो ऐसा समझें कि सुख के विपरीत दुख नहीं है, सुख के विपरीत इच्छाएं हैं। सुख का जो अपोजिट पोल है, वह दुख नहीं है। सुख का जो विरोधी है, वह इच्छा है। कमरे में दीया जलाया; अंधेरा नहीं रहा। कमरे में दीया बुझाया; अंधेरा भर गया। इच्छाएं भरी हों, अंधेरा भरा है। दीया जलाएं, इच्छाहीन मन को जलाएं, अंधेरा खो जाएगा। अंधेरे में दुख है; इच्छाओं में दुख है। कृष्ण जिस संन्यास की बात कर रहे हैं, वह कोई उदास, जीवन से हारा हुआ, थका हुआ, आदमी नहीं है। कृष्ण जिस संन्यास की बात कर रहे हैं, वह हंसता हुआ, नाचता हुआ संन्यास है। उस संन्यास के होठों पर बांसुरी है।
वह संन्यास वैसा नहीं है, जैसा हम चारों तरफ देखते हैं संन्यासियों को--उदास, मुर्दा, मरने के पहले मर गए, जैसे अपनी-अपनी कब्र खोदे हुए बैठे हैं! कृष्ण उस संन्यास की बात नहीं कर रहे हैं। बड़े जीवंत, लिविंग, तेजस्वी संन्यास की बात कर रहे हैं; नाचते हुए संन्यास की; जीवन को आलिंगन कर ले, ऐसे संन्यास की। भागता नहीं है, ऐसे संन्यास की। हंसते हुए, आनंदित संन्यास की।
ध्यान रहे, जो आदमी इच्छाओं की कामना को तो नहीं छोड़ेगा, फल की कामना
को नहीं छोड़ेगा, सिर्फ जीवन और कर्म के जीवन से भागेगा, वह उदास हो जाएगा। दुखी तो नहीं रहेगा, उदास हो जाएगा। इस फर्क को भी थोड़ा ख्याल में ले लेना आपके लिए उपयोगी होगा।
उदास उस आदमी को कहता हूं मैं, जो सुखी तो नहीं है, और दुखी होने का भी उपाय नहीं पा रहा है। उदास वह आदमी है, जो सुखी तो नहीं है, लेकिन दुखी होने का भी उपाय नहीं पा रहा है। अगर उसको दुख भी मिल जाए, तो थोड़ी-सी राहत मिले। बंद हो गया है सब तरफ से। सुख की कोई यात्रा शुरू नहीं हुई, दुख की यात्रा बंद कर दी। हीरे-जवाहरात हाथों में नहीं आए, कंकड़-पत्थर रंगीन थे, खेल-खिलौने थे, उनको सम्हालकर छाती से बैठे थे, उनको भी फेंक दिया। ऐसा आदमी उदास हो जाता है।
कंकड़-पत्थर सम्हाले बैठे हैं आप। भूल-चूक से मैं आपके रास्ते से गुजर आया और आपसे कह दिया, क्या कंकड़-पत्थर रखे हो? अरे, पकड़ना है तो हीरे- जवाहरात पकड़ो! छोड़ो कंकड़-पत्थर। आप मेरी बातों में आ गए, फेंक दिए कंकड़-पत्थर। कंकड़-पत्थर का बोझ तो कम हो जाएगा, उनसे आने वाली दुख-पीड़ा भी कम हो जाएगी। कंकड़-पत्थर चोरी चले जाते, तो जो पीड़ा होती, वह भी नहीं होगी। कंकड़-पत्थर खो जाते, तो जो दर्द होता, वह भी नहीं होगा। कंकड़-पत्थर कोई चुरा न ले जाए, उसकी जो चिंता होती है, वह भी नहीं होगी। रात आसानी से सो जाएंगे। लेकिन खाली हाथ! हीरे जवाहरात, कंकड़-पत्थर फेंकने से नहीं आते। खाली हाथ उदास हो जाएंगे।
जिस चित्त में सुख का आगमन नहीं हुआ और दुख की स्थिति को छोड़कर भाग खड़ा हुआ, वह उदास हो जाता है। उदासी एक निगेटिव स्थिति है। वहां दुख भी नहीं है; और सुख का कोई रास्ता नहीं मिल रहा। और जो भी रास्ता मिलता है, वह फिर दुख की तरफ ले जाता है। तो वहां जाना नहीं है। सुख का कोई रास्ता नहीं मिलता। तो आंख बंद करके अपने को सम्हालकर खड़े रहना है। इस सम्हालकर खड़े रहने में उदासी पैदा होती है। संन्यास जो इतना उदास हो गया, उदासीन, उसका कारण यही है।

कृष्ण नहीं कहेंगे यह; मैं भी नहीं कहूंगा। मैं कहता हूं, कंकड़-पत्थर फेंकने की उतनी फिक्र मत करो। हीरे-जवाहरात मौजूद हैं, उनको देखने की फिक्र करो। जैसे ही वे दिखाई पड़ेंगे, कंकड़-पत्थर हाथ से छूट जाएंगे, छोड़ने नहीं पड़ेंगे। और उनके दिखाई पड़ने पर जीवन में जैसे कि बिजली कौंध गई हो, ऐसे आनंद की लहर दौड़ जाएगी।
संन्यासी अगर आनंदित नहीं है, आह्लादित नहीं है, नाचता हुआ नहीं है, प्रफुल्लित नहीं है, तो संन्यासी नहीं है।
लेकिन वैसा संन्यासी, सिर्फ कृष्ण जो कहते हैं, उस तरह से हो सकता है। कर्म को छोड़ा कि आप उदास हुए; क्योंकि आपके जीवन की जो ऊर्जा है, जो एनर्जी है, वह कहां जाएगी! उसे प्रकट होना चाहिए, उसे अभिव्यक्त होना चाहिए। अगर हम किसी झाड़ पर पाबंदी लगा दें कि तू फूल नहीं खिला सकेगा; बंद रख अपने फूलों को! तो झाड़ बहुत मुश्किल में पड़ जाएगा, क्योंकि ऊर्जा का क्या होगा? ऐसे ही वह आदमी मुश्किल में पड़ जाता है, जो कर्म को छोड़ देता है; जीवन
को छोड़कर भाग जाता है। प्रकट होने का उपाय नहीं रह जाता। सब झरने भीतर बंद हो जाते हैं; भीतर ही घूमने लगते हैं; विक्षिप्त करने लगते हैं। चित्त को ग्लानि और उदासी से भर जाते हैं; अनंत अपराधों से भर जाते हैं, पश्चात्तापों से भर जाते हैं। और फिर, फिर वही वासनाएं वापस मन को खींचने लगती हैं, क्योंकि उनका कोई तो अंत नहीं हुआ है।
कृष्ण कहते हैं, कर्म करो पूरा, छोड़ दो फल का ख्याल। कर्म को इतनी पूर्णता से करो कि फल के ख्याल के लिए जगह भी न रह जाए। और तब एक नए तरह का आनंद भीतर खिलना शुरू हो जाता है। हीरे प्रकट होने लगते हैं; फिर कंकड़-पत्थर अपने आप छूटते चले जाते हैं।
जो भी करें, उसे पूरा। अगर भोजन भी कर रहे हैं, तो इतने आनंद से और इतना पूरा कि भोजन करते वक्त चित्त में और कुछ भी न रह जाए। सुन रहे हैं मुझे, तो इतना पूरा कि सुनते वक्त चित्त में और कुछ भी न रह जाए। बोल रहे हैं, तो इतना पूरा कि बोलना ही मैं हो जाऊं; बोलते वक्त और कुछ भी भीतर न रह जाए। अगर कर्म इतनी तीव्रता से और पूर्णता से किए जाएं, तो आपका फल अपने आप छूटने लगेगा। फल के लिए जगह न रह जाएगी मन में बैठने की।
कर्महीन क्षणों में ही फल भीतर प्रवेश करता है। निष्क्रिय क्षणों में
ही फल भीतर घुसता है। और आकांक्षाएं मन को पकड़ती हैं और हम कल का सोचने लगते हैं कि कल क्या करें? जिसके पास अभी करने को कुछ नहीं होता, जिसकी शक्ति अभी में पूरी नहीं डूब पाती, उसकी शक्ति कल की योजना बनाने लगती है। आज और अभी और इस क्षण में अपनी पूरी शक्ति को जो लगा दे, फल को प्रवेश करने का मौका नहीं रह जाता।
और एक बार पूरे कर्म का आनंद आ जाए, तो फल आपसे हाथ भी जोड़े कि मुझे भीतर आ जाने दो, तो भी आप उसे भीतर नहीं आने देंगे। आप उससे कहेंगे, बात समाप्त। वह नाता टूट गया। पहचान लिया मैंने कि तुम आते हो सुख की आशा लेकर; दे जाते हो दुख! तुम्हारा चेहरा, जब तुम दूर होते हो, तो मालूम पड़ता है सुख है; और जब तुम छाती से लग जाते हो, तब पता चलता है दुख है। तुम धोखेबाज हो। फल की आकांक्षा धोखेबाज है, प्रवंचना है।
ये तीन बातें--फल की आकांक्षा, संकल्प की प्रक्रिया, अहंकार का सघन होना--ये तीन गृहस्थी की व्यवस्थाएं हैं। इन तीन के जो बाहर है, वह संन्यस्त है।
आज इतना ही।
लेकिन पांच मिनट रुकेंगे। इसके आगे के सूत्र पर हम कल सुबह बात करेंगे। अभी पांच मिनट रुकेंगे। जिस आनंदित संन्यासी की मैंने बात कही और कृष्ण जिसकी बात कर रहे हैं, वे हमारे संन्यासी यहां इकट्ठे हैं; वे आपको प्रसाद देंगे आनंद का। पांच मिनट वे यहां नाचेंगे आनंद से। आप पांच मिनट बैठकर ताली बजाकर उनके आनंद में सहभागी हों और उनका प्रसाद लेकर जाएं। कोई भी उठेगा नहीं, कोई भी जाएगा नहीं।

गीता दर्शन, भाग तीन
गीता दर्शन अध्याय 6
दूसरा प्रवचन

आसक्ति का सम्मोहन

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते।। 3।।
और समत्वबुद्धिरूप योग में आरूढ़ होने की इच्छा वाले मननशील पुरुष के लिए योग की प्राप्ति में, निष्काम भाव से कर्म करना ही हेतु कहा है और योगारूढ़ हो जाने पर उस योगारूढ़ पुरुष के लिए सर्वसंकल्पों का अभाव ही कल्याण में हेतु कहा है।

समत्वबुद्धि योग का सार है। समत्वबुद्धि को सबसे पहले समझ लेना उपयोगी है। साधारणतः मन हमारा अतियों में डोलता है, एक्सट्रीम्स में डोलता है। या तो एक अति पर हम होते हैं, या दूसरी अति पर होते हैं। या तो हम किसी के प्रेम में पागल हो जाते हैं, या किसी की घृणा में पागल हो जाते हैं। या तो हम धन को पाने के लिए विक्षिप्त होते हैं, या फिर हम त्याग के लिए विक्षिप्त हो जाते हैं। लेकिन बीच में ठहरना अति कठिन मालूम होता है। मित्र बनना आसान है, शत्रु भी बनना आसान है; लेकिन मित्रता और शत्रुता दोनों के बीच में ठहर जाना अति कठिन है। और जो दो के बीच में ठहर जाए, वह समत्व को उपलब्ध होता है।
जीवन सब जगह द्वंद्व है। जीवन के सब रूप द्वंद्व के ही रूप हैं। जहां
भी डालेंगे आंख, जहां भी जाएगा मन, जहां भी सोचेंगे, वही पाएंगे कि दो अतियां मौजूद हैं। इस तरफ गिरेंगे, तो खाई मिल जाएगी; उस तरफ गिरेंगे, तो कुआं मिल जाएगा। दोनों के बीच में बहुत पतली धार है। वहां जो ठहर जाता है, वही योग को उपलब्ध होता है। दो के बीच, द्वंद्व के बीच जो पतली धार है, द्वंद्व के बीच जो संकीर्ण मार्ग है, वही संकीर्ण मार्ग समत्वबुद्धि है। समत्वबुद्धि का अर्थ है, संतुलन; द्वंद्व के बीच सम हो जाना। जैसे कभी देखा हो दुकान पर दुकानदार को तराजू में सामान को तौलते। जब दोनों पलड़े बिल्कुल एक से हो जाएं और तराजू का कांटा सम पर ठहर जाए--न इस तरफ झुकता हो बाएं, न उस तरफ झुकता हो दाएं; न बाएं जाए; न दाएं जाए, न लेफ्टिस्ट हो, न राइटिस्ट हो--बीच में ठहर जाए, तो समत्वबुद्धि उपलब्ध होती है।
कृष्ण कहते हैं, समत्वबुद्धि योग का सार है।
कृष्ण उसे योगी न कहेंगे, जो किसी एक अति को पकड़ ले। वह भोगी के विपरीत
हो सकता है, योगी नहीं हो सकता। त्यागी हो सकता है। अगर शब्दकोश में खोजने जाएंगे, तो भोगी के विपरीत जो शब्द लिखा हुआ मिलेगा, वह योगी है। शब्दकोश में भोगी के विपरीत योगी शब्द लिखा हुआ मिल जाएगा। लेकिन कृष्ण भोगी के विपरीत योगी को नहीं रखेंगे। कृष्ण भोगी के विपरीत त्यागी को रखेंगे। योगी तो वह है, जिसके ऊपर न भोग की पकड़ रही, न त्याग की पकड़ रही। जो पकड़
के बाहर हो गया। जो द्वंद्व में सोचता ही नहीं; निर्द्वंद्व हुआ। जो नहीं कहता कि इसे चुनूंगा; जो नहीं कहता कि उसे चुनूंगा। जो कहता है, मैं चुनता ही नहीं; मैं चुनाव के बाहर खड़ा हूं। वह च्वाइसलेस, चुनावरहित है। और जो चुनावरहित है, वही संकल्परहित हो सकेगा। जहां चुनाव है, वहां संकल्प है। मैं कहता हूं, मैं इसे चुनता हूं। अगर मैं यह भी कहता हूं कि मैं त्याग
को चुनता हूं, तो भी मैंने किसी के विपरीत चुनाव कर लिया। भोग के विपरीत कर लिया। अगर मैं कहता हूं, मैं सादगी को चुनता हूं, तो मैंने वैभव और विलास के विपरीत निर्णय कर लिया। जहां चुनाव है, वहां अति आ जाएगी। चुनाव मध्य में कभी भी नहीं ठहरता है। चुनाव सदा ही एक छोर पर ले जाता है। और एक बार चुनाव शुरू हुआ, तो आप अंत आए बिना रुकेंगे नहीं।
और भी एक मजे की बात है कि अगर कोई व्यक्ति चुनाव करके एक छोर पर चला जाए, तो बहुत ज्यादा देर उस छोर पर टिक न सकेगा; क्योंकि जीवन टिकाव है ही नहीं। शीघ्र ही दूसरे छोर की आकांक्षा पैदा हो जाएगी। इसलिए जो लोग दिन-रात भोग में डूबे रहते हैं, वे भी किन्हीं क्षणों में त्याग की कल्पना और

सपने कर लेते हैं। और जो लोग त्याग में डूबे रहते हैं, वे भी किन्हीं क्षणों में भोग के और भोगने के सपने देख लेते हैं। वह दूसरा विकल्प भी सदा मौजूद रहेगा। उसका वैज्ञानिक कारण है।
द्वंद्व सदा अपने विपरीत से बंधा रहता है; उससे मुक्त नहीं हो सकता। मैं जिसके विपरीत चुनाव किया हूं, वह भी मेरे मन में सदा मौजूद रहेगा। अगर मैंने कहा कि मैं आपको चुनता हूं उसके विपरीत, तो जिसके विपरीत मैंने आपको चुना है, वह आपके चुनाव में सदा मेरे मन में रहेगा। आपका चुनाव आपका ही चुनाव नहीं है, किसी के विपरीत चुनाव है। वह विपरीत भी मौजूद रहेगा।
और मन के नियम ऐसे हैं कि जो भी चीज ज्यादा देर ठहर जाए, उससे ऊब पैदा
हो जाती है। तो जो मैंने चुना है, वह बहुत देर ठहरेगा मैं ऊब जाऊंगा। और ऊबकर मेरे पास एक ही विकल्प रहेगा कि उसके विपरीत पर चला जाऊं। और मन ऐसे ही एक द्वंद्व से दूसरे द्वंद्व में भटकता रहता है।
जब कृष्ण कहते हैं, समत्व, तो अगर हम ठीक से समझें, तो समत्व को वही उपलब्ध होगा, जो मन को क्षीण कर दे। क्योंकि मन तो चुनाव है। बिना चुनाव के मन एक क्षण भी नहीं रह सकता।
जब मैंने आपसे कहा कि तराजू का कांटा जब बीच में ठहर जाता है, तब अगर
हम दूसरी तरह से कहना चाहें, तो हम यह भी कह सकते हैं कि तराजू अब नहीं है। क्योंकि तराजू का काम तौलना है। और जब कांटा बिल्कुल बीच में ठहर जाता है, तो तौलने का काम बंद हो गया; चीजें समतुल हो गईं। तौलने का तो मतलब यह है कि तराजू खबर दे। लेकिन अब दोनों पलड़े थिर हो गए और कांटा बिल्कुल बीच में आ गया, समतुलता आ गई, तो वहां तराजू का काम समाप्त हो गया। समतुल तराजू, तराजू होने के बाहर हो गया। ऐसे ही मन का काम अतियों का चुनाव है।
अगर ठीक से हम समझें, अगर हम मनोवैज्ञानिक से पूछें, तो वह कहेगा, मन
का विकास ही चुनाव की वजह से पैदा हुआ। और इसीलिए आदमी के पास सबसे ज्यादा विकसित मन है, क्योंकि आदमी के पास सबसे ज्यादा चुनाव की आकांक्षा है। पशु बहुत चुनाव नहीं करते, इसलिए बहुत मन उनमें पैदा नहीं होता। पक्षी बहुत चुनाव नहीं करते। पौधे बहुत चुनाव नहीं करते। आदमी की सामर्थ्य यही है कि वह चुन सकता है। वह कह सकता है, यह भोजन मैं करूंगा और वह भोजन मैं नहीं करूंगा। पशु तो वही भोजन करते चले जाएंगे, जो प्रकृति ने उनके लिए चुन दिया है।
अगर यहां हजार तरह की घास लगी हो और आप भैंस को छोड़ दें, तो भैंस उसी घास को चुन-चुनकर चर लेगी जो प्रकृति ने उसके लिए तय किया है, बाकी घास को छोड़ देगी। भैंस खुद चुनाव नहीं करेगी, इसलिए भैंस के पास मन भी पैदा नहीं होगा।
सारी प्रकृति मनुष्य को छोड़कर मन से रहित है। ठीक से समझें, तो मनुष्य
हम कहते ही उसे हैं, जिसके पास मन है। मनुष्य शब्द का भी वही अर्थ है, मन वाला।
मनुष्य में और पशुओं में इतना ही फर्क है कि पशुओं के पास कोई मन नहीं
और मनुष्य के पास मन है। मनुष्य इसलिए मनुष्य नहीं कहलाता कि मनु का बेटा है, बल्कि इसलिए मनुष्य कहलाता है कि मन का बेटा है; मन से ही पैदा होता है। वह उसका गौरव भी है, वही उसका कष्ट भी है। वही उसकी शान भी है, वही उसकी मृत्यु भी है। मन के कारण वह पशुओं से ऊपर उठ जाता है। लेकिन मन के कारण ही वह परमात्मा नहीं हो पाता।
यह दूसरी बात भी ख्याल में ले लें।
मन के कारण वह पशुओं के ऊपर उठ जाता है। लेकिन मन के ही कारण वह परमात्मा नहीं हो पाता। पशुओं से ऊपर उठना हो, तो मन का होना जरूरी है। और अगर मनुष्य के भी ऊपर उठना हो और परमात्मा को स्पर्श करना हो, तो मन का पुनः न हो जाना जरूरी है। यद्यपि मनुष्य जब मन को खो देता है, तो पशु नहीं होता, परमात्मा हो जाता है।
मनुष्य मन को जान लिया, और तब छोड़ता है। पशु ने मन को जाना नहीं, उसका उसे कोई अनुभव नहीं है। अनुभव के बाद जब कोई चीज छोड़ी जाती है, तो हम उस अवस्था में नहीं पहुंचते जब अनुभव नहीं हुआ था, बल्कि उस अवस्था में पहुंच जाते हैं जो अनुभव के अतीत है।

मन है चुनाव, च्वाइस--यह या वह। मन सोचता है ईदर-आर की भाषा में। इसे चुनूं या उसे चुनूं! दुकान पर आप खड़े हैं; मन सोचता है, इसे चुनूं, उसे चुनूं! समाज में आप खड़े हैं; मन सोचता है, इसे प्रेम करूं, उसे प्रेम करूं! प्रतिपल मन चुनाव कर रहा है, यह या वह। सोते-जागते, उठते-बैठते, मन कांटे की तरह डोल रहा है तराजू के। कभी यह पलड़ा भारी हो जाता है, कभी वह पलड़ा भारी हो जाता है।
और ध्यान रहे, जिस चीज को मन चुनता है, बहुत जल्दी उससे ऊब जाता है। मन ठहर नहीं सकता। इसलिए मन अक्सर जिसे चुनता है, उसके विपरीत चला जाता है। आज जिसे प्रेम करते हैं, कल उसे घृणा करने लगते हैं। आज जिसे मित्र बनाया, कल उसे शत्रु बनाने में लग जाते हैं। जो बहुत गहरा जानते हैं, वे तो कहेंगे, मित्र बनाना शत्रु बनाने की तैयारी है। इधर बनाया मित्र कि शत्रु बनने की तैयारी शुरू हो गई। मन लौटने लगा।
थियोडर रेक अमेरिका का एक बहुत विचारशील मनोवैज्ञानिक था। उसने लिखा है, मन के दो ही सूत्र हैं, इनफैचुएशन और फ्रस्ट्रेशन। उसने लिखा है, मन के दो ही सूत्र हैं, किसी चीज के प्रति आसक्त हो जाना और फिर किसी चीज से विरक्त हो जाना।
या तो मन आसक्त होगा, या विरक्त होगा। या तो पकड़ना चाहेगा, या छोड़ना चाहेगा। या तो गले लगाना चाहेगा, या फिर कभी नहीं देखना चाहेगा। मन ऐसी दो अतियों के बीच डोलता रहेगा। इन दो अतियों के बीच डोलने वाले मन का ही नाम संकल्पात्मक, संकल्प से भरा हुआ।
जहां संकल्प है, वहां विकल्प सदा पीछे मौजूद रहता है। जब आप किसी को मित्र बना रहे हैं, तब आपके मन का एक हिस्सा उसमें शत्रुता खोजने में लग जाता है, फौरन लग जाता है! आपने किसी को प्रेम किया और मन का दूसरा हिस्सा तत्काल उसमें घृणा के आधार खोजने में लग जाता है। आपने किसी को सुंदर कहा और मन का दूसरा हिस्सा तत्काल तलाश करने लगता है कि कुरूप क्या-क्या है! आपने किसी के प्रति श्रद्धा प्रकट की और मन का दूसरा हिस्सा फौरन खोजने लगता है कि अश्रद्धा कैसे प्रकट करूं!
मन का दूसरा पलड़ा मौजूद है, भला ऊपर उठ गया हो, अभी वजन उस पर न हो। लेकिन वह भी वजन की तलाश शुरू कर देगा। और ज्यादा देर नहीं लगेगी कि नीचे का पलड़ा थक जाएगा, हल्का होना चाहेगा। ऊपर का उठा पलड़ा भी थक जाएगा और भारी होना चाहेगा। और हम एक पलड़े से दूसरे पलड़े पर वजन रखते हुए जिंदगी गुजार देंगे। इस पलड़े से वजन उठाएंगे, उस पलड़े पर रख देंगे। उस पलड़े से वजन उठाएंगे, इस पलड़े पर रख देंगे। पूरी जिंदगी, मन के एक अति से दूसरी अति पर बदलने में बीत जाती है।
कृष्ण कहते हैं, उसे कहता हूं मैं योगी, जो समत्वबुद्धि को उपलब्ध हो।
जो पलड़ों पर वजन रखना बंद कर दे। इस बचकानी, नासमझ हरकत को बंद कर दे और कहे कि मैं इस किस जाल में पड़ गया! जो तराजू के पलड़ों से अपनी आइडेंटिटी, अपना तादात्म्य तोड़ दे। और तराजू जहां ठहर जाता है, जहां समतुल हो जाता है, वहां आ जाए, मध्य में। दो अतियों के बीच, ठीक मध्य को जो खोज ले; न मित्र, न शत्रु; जो बीच में रुक जाए।
यह बड़ा अदभुत क्षण है, बीच में रुक जाने का। और एक बार इस बीच में रुकने का जिसे आनंद आ गया--और इस बीच में रुकने के अतिरिक्त कहीं कोई आनंद नहीं है। क्योंकि जब भी एक पलड़े पर भार होता है, तभी चित्त में तनाव हो जाता है।
जब भी आप कुछ चुनते हैं, चित्त में उत्तेजना शुरू हो जाती है। सच तो यह
है कि उत्तेजना के बिना चुन ही नहीं सकते। उत्तेजना से ही चुनते हैं; उद्विग्न हो जाते हैं। और जब भी उत्तेजना से चुनते हैं, तभी मन के लिए पीड़ा के लिए निमंत्रण दे दिया, दुख को बुलावा दे दिया। फिर थोड़ी देर में ऊब होगी, फिर थोड़ी देर में परेशान होंगे। फिर इससे विपरीत चुनेंगे, यह सोचकर कि जब इसमें कुछ सुख न मिला, तो शायद विपरीत में मिल जाए।
मन का गणित ऐसा है। वह कहता है, इसमें सुख नहीं मिला, तो इससे उलटे को चुन लो। शायद उसमें सुख मिल जाए! उसमें सुख नहीं मिला, तो फिर उलटे को चुन लो। और मन निरंतर, जिसको हम अनुभव कर लेते हैं, उससे ऊब जाता है; और उससे विपरीत, जिसका हम अनुभव नहीं करते, उसके लिए लालायित बना रहता है।

और स्मृति हमारी बड़ी कमजोर है। ऐसा नहीं है कि जिसे हम आज ऊबकर छोड़ रहे हैं, उसे हम फिर पुनः कल न चुन लेंगे। स्मृति हमारी बड़ी कमजोर है। कल फिर हम उसे चुन सकते हैं। जिसे हमने आज ऊबकर छोड़ दिया है और विपरीत को पकड़ लिया है, कल हम विपरीत से भी ऊब जाएंगे और फिर इसे पकड़ लेंगे। स्मृति बड़ी कमजोर है।
असल में अतियों से भरे हुए चित्त में स्मृति होती ही नहीं। अतियों से भरे चित्त में तो विपरीत का आकर्षण ही होता है। कभी लौटकर जिंदगी को देखें। आपकी जिंदगी में आप उन्हीं-उन्हीं चीजों को बार-बार चुनते हुए मालूम पड़ेंगे।
आज सांझ किया है क्रोध; मन पछताया। क्रोध करते ही मन पछताना शुरू कर देता है। वह विपरीत है। वह दूसरी अति है। इधर क्रोध जारी हुआ, उधर मन ने पछताने की तैयारी शुरू की। क्रोध हुआ, आग जली, उत्तेजित हुए, पीड़ित-परेशान हुए। फिर मन दुखी हुआ, रोया, पराजित हुआ, पछताया। पछताने में दूसरी अति छू ली। लेकिन ध्यान रखना, पछताकर फिर आप क्रोध करने की तैयारी में पड़ेंगे। कल सांझ तक आप फिर तैयारी कर लेंगे क्रोध की। वह कल जो पछताए थे, उसकी स्मृति नहीं रह जाएगी।
कितनी बार पछताए हैं! पश्चात्ताप कोई नई घटना नहीं है। वही किया है रोज-रोज; फिर पछताए हैं। फिर वही करेंगे, फिर पछताएंगे। और कभी यह ख्याल न आएगा कि इतनी बार पश्चात्ताप किया, कोई परिणाम तो होता नहीं।
तो अगर आप इतना भी कर लें कि अब क्रोध तो करूंगा, लेकिन पश्चात्ताप नहीं करूंगा, तो भी आप बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे। क्योंकि अगर आपने पश्चात्ताप नहीं किया, तो फिर मन फिर से क्रोध की तैयारी नहीं कर पाएगा। यह आपको उलटा लगेगा। लेकिन जीवन की धारा ऐसी है।
आपसे मैं कहता हूं, क्रोध मत छोड़ें, पश्चात्ताप ही छोड़ दें सिर्फ। फिर
आप क्रोध नहीं कर पाएंगे, क्योंकि पश्चात्ताप पुनः क्रोध की तैयारी है। क्रोध छोड़ दें, तो पश्चात्ताप नहीं कर पाएंगे, क्योंकि पश्चात्ताप की कोई जरूरत न रह जाएगी। पश्चात्ताप छोड़ दें, तो क्रोध नहीं कर पाएंगे, क्योंकि पश्चात्ताप के बिना क्रोध को भूलना असंभव है। फिर क्रोध के पलड़े पर ही बैठे रह जाएंगे; फिर दूसरे पलड़े पर जाना तराजू के बहुत मुश्किल है। और मन एक ही पलड़े पर बैठा नहीं रह सकता; बहुत घबड़ा जाएगा, बहुत परेशान हो जाएगा। और अगर आपने इतना ही तय कर लिया कि मैं पछताऊंगा नहीं, तो मन के लिए एक ही उपाय है कि वह मध्य में चला जाए, जहां कोई पलड़ा नहीं है।
लेकिन मन धोखा देता है। मन कहता है, क्रोध किया है, पछताओ। और मन यह भी समझाता है, और न मालूम कितने लोग समझाते रहते हैं--साधु हैं, संन्यासी हैं--सारे मुल्क में समझाते रहते हैं, बिल्कुल अवैज्ञानिक बात। वे कहते हैं, क्रोध किया है, तो पश्चात्ताप करो। पश्चात्ताप से, वे कहेंगे कि तुम्हारा क्रोध मिट जाएगा। कभी किसी का नहीं मिटा। वे कहते हैं, क्रोध किया, तो पश्चात्ताप करो; पश्चात्ताप से क्रोध मिट जाएगा। क्रोध नहीं मिटेगा, सिर्फ क्रोध को पुनः करने की सामर्थ्य पैदा हो जाएगी। करके देखें और आप पाएंगे कि पुनः आप समर्थ हो गए।
क्रोध से जो थोड़ा-सा दंश पैदा हुआ था, पीड़ा आई थी, वह फिर मिट गई। क्रोध
से जो अहंकार को थोड़ी-सी चोट लगी थी कि मैं कैसा बुरा आदमी हूं, वह फिर मिट गई। पश्चात्ताप से फिर लगा कि मैं तो अच्छा आदमी हूं। पश्चात्ताप करके आप पुनः उसी स्थिति में आ गए, जैसा क्रोध करने के पहले थे। आपने स्टेटस को, पुनः-पुनः पुरानी स्थिति में अपने को स्थापित कर लिया। अब आप फिर क्रोध कर सकते हैं। अब आप बुरे आदमी नहीं हैं। अब आप क्रोध कर सकते हैं।
द्वंद्व! और जो मैंने क्रोध के लिए कहा, वही मन की सभी वृत्तियों के लिए लागू है। सभी वृत्तियों के लिए लागू है। कृष्ण कहते हैं, बीच में है योग। ये दोनों ही अयोग हैं--क्रोध भी, पश्चात्ताप भी; प्रेम भी, घृणा भी। बीच में है योग; वहीं है, जहां संतुलन है।
क्या करें? संतुलन में कैसे ठहर जाएं? कहां रुकें?
जब भी एक पलड़े से दूसरे पलड़े पर जाने की तैयारी हो रही हो, तब दूसरे पलड़े पर न जाएं। जल्दी न करें। दूसरे पलड़े पर न जाएं। अगर क्रोध है, तो

क्रोध में ही ठहर जाएं; पश्चात्ताप पर जल्दी न करें जाने की। क्रोध में ही ठहर जाएं।
ठहर न सकेंगे। मन का नियम नहीं है ठहरने का। अगर पश्चात्ताप पर जाने
से आपने रोक लिया, तो भी मन जाएगा। लेकिन जाने का, तीसरा एक ही उपाय है कि वह पलड़े के बाहर चला जाए।
इसलिए जो आदमी क्रोध कर सके, वह क्रोध में ही ठहर जाए। बुरा है क्रोध बहुत। ठहर नहीं सकेंगे, हटना पड़ेगा। रुक न सकेंगे, उतरना ही पड़ेगा। लेकिन जल्दी न करें दूसरी अति पर जाने की। तो फिर एक ही विकल्प रह जाएगा अपने आप, आपको मध्य में जाने के अलावा कहीं जाने की गति न रह जाएगी।
जो भी चित्त का रोग है, उसी रोग में ठहर जाएं। भागें मत; जल्दी न करें। विपरीत रोग को न पकड़ें; वहीं ठहर जाएं। मन के ठहरने का नियम नहीं है; वह तो जाएगा। आप उसको द्वंद्व में भर न जाने दें, तो वह मध्य में चला जाएगा। इसे प्रयोग करें और आप हैरान हो जाएंगे।
लेकिन जैसे ही क्रोध हुआ कि मन दूसरा कदम उठाकर पश्चात्ताप के पलड़े में रखना शुरू कर देता है। आदमी का आधा हिस्सा क्रोध करता है, आधा हिस्सा पश्चात्ताप की तैयारी करने लगता है। क्रोध करते हुए आदमी को देखें। उसके चेहरे पर ख्याल रखें, तो आप फौरन उसके चेहरे पर धूप-छाया पाएंगे। वह क्रोध भी कर रहा है, सकुचा भी रहा है; तैयारी भी कर रहा है कि पश्चात्ताप कर ले। अभी हाथ मारने को उठाया था; थोड़ी देर में हाथ जोड़कर माफी मांग लेगा। निपटा दिया! वह मन के द्वंद्व में पूरा एक कोने से दूसरे कोने में चला गया। इस मन की द्वंद्वात्मकता को, डायलेक्टिक्स को समझ लेना जरूरी है।
मार्क्स ने तो कहा है कि समाज डायलेक्टिकल है, द्वंद्वात्मक है। समाज द्वंद्व से जीता है। लेकिन ऐसा दिन तो कभी आ सकता है, जब समाज द्वंद्व से न जीए। मार्क्स के खुद के ख्याल से भी अगर कभी साम्यवाद दुनिया में आ जाए, तो कोई द्वंद्व नहीं रह जाएगा। फिर नान-डुअलिस्टिक हो जाएगा समाज। नान-डायलेक्टिकल हो जाएगा; द्वंद्व नहीं होगा। लेकिन मन कभी भी, किसी स्थिति में भी गैर-द्वंद्वात्मक नहीं हो सकता। द्वंद्व रहेगा। हां, मन ही न रह जाए--उसके सूत्र कृष्ण कह रहे हैं--वह बात दूसरी है। मन रहेगा, तो द्वंद्व रहेगा। मन ही न रह जाए, तो द्वंद्वहीनता आ जाएगी।
इसलिए कृष्ण के सूत्र को अगर कोई ठीक से समझे, तो मार्क्स का साम्यवाद दुनिया में तब तक नहीं आ सकता, जब तक कि दुनिया में बड़े पैमाने पर ऐसे लोग न हों, जिनके पास मन न रह जाए। नहीं तो द्वंद्व जारी रहेगा। द्वंद्व बच नहीं सकता।
समाज में जो द्वंद्व दिखाई पड़ते हैं, वे व्यक्ति के ही मन के द्वंद्वों का विस्तार है। जब तक भीतर मन द्वंद्वात्मक है, डायलेक्टिकल है, तब तक हम कोई ऐसा समाज निर्मित नहीं कर सकते, जिसमें द्वंद्व समाप्त हो जाए। हां, द्वंद्व बदल जाएगा। अमीर-गरीब का न रहेगा, तो सत्ताधारी कमीसार और गैर-सत्ताधारी का हो जाएगा। पद वाले का और गैर-पद वाले का हो जाएगा। धन का न रहेगा, सौंदर्य का हो जाएगा, बुद्धि का हो जाएगा।
और बड़े मजे की बात है! पुराने जमाने में लोग कहते थे कि धन तो भाग्य से मिलता है। कल अगर समाजवाद दुनिया में आ जाए, तो कोई सुंदर होगा, कोई असुंदर होगा। किसी के सुंदर होने से उतनी ही ईर्ष्या जगेगी, जितनी किसी के धनी होने से जगती रही है। फिर साम्यवाद क्या कहेगा कि सुंदर होना कैसे हो जाता है? कहेगा, भाग्य से हो जाता है। कहेगा, प्रकृति से हो जाता है।
फिर एक आदमी बुद्धिमान होगा और एक आदमी बुद्धिहीन होगा। और बुद्धिहीन सत्ता में तो नहीं पहुंच पाएंगे; बुद्धिमान सत्ता में पहुंच जाएंगे। फिर समाजवाद क्या कहेगा? कि ये बुद्धिमान सत्ता में पहुंच गए। आखिर बुद्धिमान और बुद्धिहीन को समान हक होना चाहिए। पर यह बुद्धिमान सत्ता में पहुंच जाता है। तब एक ही उत्तर रह जाएगा कि बुद्धिमान के लिए हम कैसे बंटवारा करें! वह शायद भाग्य से ही है। वह बुद्धिमान है पैदाइश से, और तुम बुद्धिमान नहीं हो पैदाइश से।
द्वंद्व बदल जाएंगे। द्वंद्व नहीं बदलेगा; द्वंद्व जारी रहेगा। क्योंकि मन द्वंद्वात्मक है। लेकिन मार्क्स को ख्याल भी नहीं था मन का, उसे तो ख्याल था समाज की व्यवस्था का।

बुद्ध या कृष्ण या महावीर या क्राइस्ट को हम पूछें, तो वे कहेंगे, समाज की व्यवस्था तो मन का फैलाव है। हां, उस दिन समाज समतुल हो सकता है, जिस दिन व्यक्ति योगारूढ़ हो जाएं, बड़े पैमाने पर। इतने बड़े पैमाने पर व्यक्ति योगारूढ़ हो जाएं कि जो योगारूढ़ नहीं हैं, वे अर्थहीन हो जाएं; उनका होना, न होना व्यर्थ हो जाए। पर अभी तो एकाध आदमी कभी करोड़ में योगारूढ़ हो जाए, तो बहुत है। इसलिए जो सिर्फ सपने देखते हैं, वे कह सकते हैं कि कभी ऐसा हो जाएगा कि सब लोग योगारूढ़ हो जाएं। यह दिखाई नहीं पड़ता। यह संभावना बड़ी असंभव मालूम पड़ती है।
यह आशा बड़ी निराशा से भरी मालूम पड़ती है कि समाज किसी दिन समतुल हो जाए। क्योंकि अभी तो हम व्यक्ति को भी समबुद्धि का नहीं बना पाते हैं। समाज तो बड़ी घटना है। और समाज तो बदलती हुई घटना है। एक व्यक्ति भी हम निर्मित नहीं कर पाते हैं, जो कि सम हो जाए। इसलिए साम्य कभी समाज में हो जाए, यह असंभव मालूम पड़ता है। जब तक व्यक्ति का चित्त पूरी समता को उपलब्ध न हो--और एक व्यक्ति के चित्त के समता को उपलब्ध होने से कुछ भी नहीं होता। क्योंकि कुछ कृष्ण और महावीर और कुछ बुद्ध सदा समता को उपलब्ध होते रहे हैं। लेकिन इसके अतिरिक्त कोई भी मार्ग नहीं है।
मन दुख लाएगा ही, क्योंकि मन द्वंद्व लाएगा। जहां होगा द्वंद्व, वहां होगा संघर्ष, वहां होगी कलह, वहां होगा द्वेष, वहां होगी उत्तेजना, वहां होगा तनाव; वहां पीड़ा सघन होगी, वहां संताप घना होगा, वहां जीवन नर्क होगा। मन नर्क का निर्माता है। मन के रहते कोई स्वर्ग में प्रवेश नहीं कर सकता। क्योंकि मन ही नर्क है। लेकिन अगर कोई सम हो जाए... ।
तो कभी छोटे-छोटे प्रयोग करके देखें सम होने के। बहुत छोटे-छोटे प्रयोग करके देखें; उनसे ही रास्ता धीरे-धीरे साफ हो सकता है।
कभी स्नान करके खड़े हैं। ख्याल करें, तो आप हैरान होंगे कि या तो आपका वजन बाएं पैर पर है या दाएं पैर पर है। थोड़ा-सा ख्याल करें आंख बंद करके, तो आप पाएंगे, वजन बाएं पैर पर है या दाएं पैर पर है। अगर पता चले कि आपके शरीर का वजन बाएं पैर पर है, तो थोड़ी देर रुके हुए देखते रहें। आप थोड़ी देर में पाएंगे कि वजन दाएं पैर पर हट गया। अगर दाएं पैर पर वजन मालूम पड़े, तो वैसे ही खड़े रहें और पीछे अंदर देखते रहें कि वजन दाएं पैर पर है। क्षण में ही आप पाएंगे कि वजन बाएं पैर पर हट गया। मन इतने जोर से बदल रहा है भीतर। वह एक पैर पर भी एक क्षण खड़ा नहीं रहता। बाएं से दाएं पर चला जाता है; दाएं से बाएं पर चला जाता है।
अब अगर इस छोटे-से अनुभव में आप एक प्रयोग करें, उस स्थिति में अपने को ऐसा समतुल करके खड़ा करें कि न वजन बाएं पैर पर हो, न दाएं पैर पर; दोनों पैरों के बीच में आ जाए। यह बहुत छोटा-सा प्रयोग आपसे कह रहा हूं। वजन दोनों के बीच आ जाए।
एक क्षण को भी उसकी झलक आपको मिलेगी, तो आप हैरान हो जाएंगे। और मिलेगी झलक। क्योंकि जब बाएं पर जा सकता है और दाएं पर जा सकता है, तो बीच में क्यों नहीं रह सकता! कोई कारण नहीं है, कोई बाधा नहीं है, सिर्फ पुरानी आदत के अतिरिक्त। एक क्षण को आप ऐसे अपने को समतुल करें कि बीच में रह गए, न बाएं पर वजन है, न दाएं पर। और जिस क्षण आपको पता चलेगा कि बीच में है, उसी क्षण आपको लगेगा कि शरीर नहीं है। एकदम लगेगा, बाडीलेसनेस हो गई है; शरीर में कोई भार न रहा। शरीर जैसे निर्भार हो गया। ऐसा लगेगा, जैसे आकाश में चाहें तो उड़ सकते हैं! उड़ नहीं सकेंगे; लेकिन लगेगा ऐसा कि चाहें तो उड़ सकते हैं। ग्रेविटेशन नहीं मालूम होता। ग्रेविटेशन तो है, जमीन तो अभी भी खींच रही है। लेकिन जमीन का जो भार है, वह असली भार नहीं है। असली भार तो मन का है, जो निरंतर द्वंद्व, हर छोटी चीज में द्वंद्व को खड़ा करता है।
इस छोटे-से प्रयोग को भी अगर रोज पंद्रह मिनट कर पाएं, तो तीन महीने में आप उस स्थिति में आ जाएंगे, जब दोनों पैर के बीच में आपको खड़े होने का अनुभव शुरू हो जाएगा। तो इस छोटे-से सूत्र से आपको मन को समत्वबुद्धि में ले जाने का आधार मिल जाएगा। तब जब भी मन और कहीं भी बायां-दायां चुनना चाहे, तब आप वहां भी बीच में ठहर पाएंगे। लेकिन बीच में ठहरने का अनुभव कहीं से तो शुरू करना पड़े। कठिन बात मैंने नहीं कही है, बहुत सरल कही है। क्योंकि और चीजें बहुत कठिन हैं।

और चीजें बहुत कठिन हैं। मित्र न बनाएं, शत्रु न बनाएं--बड़ा कठिन मालूम पड़ेगा। मन ने किसी को देखा नहीं कि बनाना शुरू कर देता है। आपको थोड़ी देर बाद पता चलता है; मन उसके पहले बना चुका होता है। अजनबी आदमी भी आपके कमरे में प्रवेश करता है, आपका मन चौंककर निर्णय ले चुका होता है। निर्णय आपको भी बाद में जाहिर होते हैं। मन कह देता है, पसंद नहीं है यह आदमी। अभी मिले भी नहीं, बात भी नहीं हुई, चीत भी नहीं हुई; अभी पहचाना भी नहीं, लेकिन मन ने कह दिया कि पसंद नहीं है। पुराने अनुभव होंगे।
मन के पास अपने अनुभव हैं। कभी इस शकल के आदमी ने कुछ गाली दे दी होगी।
कि इस आदमी के शरीर से जैसी गंध आ रही है, वैसे आदमी ने कभी अपमान कर दिया होगा। कि इस आदमी की आंखों में जैसा रंग है, वैसी आंखों ने कभी क्रोध किया होगा। कोई एसोसिएशन इस आदमी से तालमेल खाता होगा। मन ने कह दिया कि सावधान! यह आदमी तुर्की टोपी लगाए हुए है, मुसलमान है। यह आदमी तिलक लगाए हुए है, हिंदू है। जरा सावधान! यही आदमी मस्जिद में आग लगा गया था; कि यही आदमी मंदिर को तोड़ गया था। सावधान!
यह बहुत अचेतन है, यह आपके होश में नहीं घटता है। होश में घटने लगे, तब
तो घट ही न पाए। यह आपकी बेहोशी में घटता है। आपके भीतर उन अंधेरे कोनों में घट जाता है यह निर्णय, जिनके प्रति आप भी सचेतन नहीं हैं। आप तो थोड़ी देर बाद सचेतन होंगे; देर लगेगी। इस आदमी से बातचीत होगी। और आपके मन ने जो निर्णय ले लिया, उस निर्णय के अनुसार मन इस आदमी में वे-वे बातें खोज लेगा, जो आपने निर्णय लिया है।
आमतौर से आप सोचते हैं कि आप सोच-समझकर निर्णय लेते हैं। लेकिन जो मन
को समझते हैं, वे कहते हैं, निर्णय आप पहले लेते हैं, सोच-समझ सब पीछे का बहाना है।
एक आदमी के प्रेम में आप पड़ जाते हैं। आपसे कोई पूछे, क्यों पड़ गए? तो
आप कहते हैं, उसकी शकल बहुत सुंदर है, कि उसकी वाणी बहुत मधुर है। लेकिन मनोवैज्ञानिक कहते हैं, प्रेम में आप पहले पड़ जाते हैं, ये तो सिर्फ बाद के रेशनलाइजेशंस हैं।
अगर कोई पूछे कि क्यों प्रेम में पड़ गए? तो आप इतने समझदार नहीं हैं कि
आप यह कह सकें कि मुझे पता नहीं क्यों प्रेम में पड़ गया! बस, पड़ गया हूं! समझदारी दिखाने के लिए आप कहेंगे कि इसकी शकल देखते हैं, कितनी सुंदर है! लेकिन इसी की शकल को देखकर कोई घृणा में पड़ जाता है। इसी की शकल को देखकर कोई दुश्मन हो जाता है। कहते हैं, देखते हैं, इसकी आवाज कितनी मधुर है! इसी की आवाज सुनकर किसी को रातभर नींद नहीं आती। और आपको भी कितने दिन आएगी, कहना पक्का नहीं है। महीने, दो महीने, तीन महीने, चार महीने बाद हो सकता है, डायवोर्स की दरख्वास्त लेकर खड़े हों। यही आवाज बहुत कर्णकटु हो जाए, जो बहुत मधुर मालूम पड़ी थी।
क्या हो गया? आवाज वही है, आप वही हैं, चेहरा वही है। इससे बड़ी सुगंध आती थी, अब दुर्गंध आने लगी। नाक-नक्श वही है, लेकिन पहले बिल्कुल संगमरमर मालूम होता था, अब बिल्कुल मिट्टी मालूम होने लगा। हो क्या गया?
कुछ हो नहीं गया। मन भीतर पहले निर्णय ले लेता है; पीछे आपकी बुद्धि उसका अनुसरण करती रहती है।
फ्रायड का कहना है--और फ्रायड मन को जितना जानता है, कम लोग जानते हैं-- कहना है कि मनुष्य अपने सब निर्णय अंधेरे में और अचेतन में लेता है। और उसकी सब बुद्धिमत्ता झूठी और बेईमानी है। सब बातें वह जो कहता है कि मैंने बड़ी सोच-समझकर की हैं, कोई सोच-समझकर नहीं करता। बातें पहले कर लेता है, पीछे सोच-समझ का जाल खड़ा करता है।
हम ऐसे मकान बनाने वाले हैं--मकान बनाने के लिए स्ट्रक्चर खड़ा करना पड़ता है न बाहर! चारों तरफ बांस-लकड़ियां बांधनी पड़ती हैं, फिर मकान बनता है। लेकिन मन का मकान उलटा बनता है। पहले मकान बन जाता है, फिर हम बाहर लकड़ियां वगैरह बांध देते हैं।
पहले मन निर्णय ले लेता है, फिर पीछे हम बुद्धि के सब बांस इकट्ठे करके खड़ा करते हैं, ताकि कोई यह न कह सके कि हम निर्बुद्धि हैं। किसी की छोड़ दें, हम न कह सकें अपने को ही कि हम निर्बुद्धि हैं। हम बुद्धिमान हैं।
हमने जो भी निर्णय लिया है, बहुत सोच-समझकर लिया है।

कोई निर्णय आप सोच-समझकर नहीं ले रहे हैं। क्योंकि जो आदमी सोच-समझकर निर्णय लेगा, वह एक ही निर्णय लेता है, वह जो कृष्ण ने कहा है, वह समत्व का निर्णय लेता है। वह कोई दूसरा निर्णय कभी लेता ही नहीं।
द्वंद्व के सब निर्णय नासमझी के निर्णय हैं। निर्द्वंद्व होने का निर्णय ही समझदारी का निर्णय है। वे जो भी समझदार हैं, उन्होंने एक ही निर्णय लिया है कि द्वंद्व के बाहर हम खड़े होते हैं। और जिसने कहा कि मैं द्वंद्व के बाहर खड़ा होता हूं, वह मन के बाहर खड़ा हो जाता है। और जो मन के बाहर खड़ा हो गया, उसकी शांति की कोई सीमा नहीं; क्योंकि अब उत्तेजना का कोई उपाय न रहा।
उत्तेजना आती थी द्वंद्व से, चुनाव से, च्वाइस से। अब कोई उत्तेजना का कारण नहीं। अब कोई टेंशन, अब कोई तनाव पैदा करने वाले बीज न रहे। अब वह बाहर है। अब वह शांत है। अब वह मौन है। अब वह जीवन को देख सकता है, ठीक जैसा जीवन है। अब वह अपने भीतर झांक सकता है ठीक उन गहराइयों तक, जहां तक गहराइयां हैं। और ऐसा व्यक्ति जो अपने भीतर पूर्ण गहराइयों तक झांक पाता है--योगारूढ़, योग को आरूढ़, योग को उपलब्ध।
योग का प्रारंभ है समत्व, लेकिन जैसे ही समत्व फलित हुआ कि आदमी योगारूढ़ हो जाता है। योगारूढ़ का अर्थ है, अपने में ठहर गया।
हम योग अरूढ़ हैं। हम च्युत हैं। हम कहीं-कहीं डोलते फिरते हैं। वह जगह
भर छोड़ देते हैं, जहां हमें ठहरना चाहिए। कभी बाएं पर, कभी दाएं पर, मध्य में कभी भी नहीं। मध्य में ही आत्मा है। बाएं भी शरीर है, दाएं भी शरीर है। जब बाएं पैर पर जोर पड़ता है, तब शरीर के एक हिस्से पर जोर पड़ता है। और जब दाएं पैर पर जोर पड़ता है, तब भी शरीर के एक हिस्से पर जोर पड़ता है। अगर आप दोनों पैर के बीच में ठहर पाए, तो आप शरीर के बाहर ठहर गए; आप आत्मा में ठहर गए। तब किसी शरीर के हिस्से पर जोर नहीं पड़ता है।
और ऐसा ही सब चीजों के लिए है। घृणा भी मन का हिस्सा है, प्रेम भी मन का हिस्सा है। अगर दोनों के बाहर ठहर गए, तो आत्मा में ठहर गए। क्रोध भी मन है, और क्षमा भी मन है। दोनों के बाहर ठहर गए, तो मन के बाहर ठहर गए।
इन दोनों के बाहर ठहरे हुए व्यक्ति को कृष्ण कहते हैं, योगारूढ़, योग में ठहरा हुआ, योग में थिर।
ऐसी थिरता जीवन के समस्त राज को खोल जाती है। ऐसी थिरता जीवन के सब द्वार खोल देती है। हम पहली बार अस्तित्व की गहराइयों से संबंधित होते हैं। पहली बार हम उतरते हैं वहां, जहां जीवन का मंदिर है, या जहां जीवन का देवता निवास करता है। पहली बार हम परमात्मा में छलांग लगाते हैं।
योग के पंख मिल जाएं जिसे, वही परमात्मा में छलांग लगा पाता है। लेकिन योग के पंख उसे ही मिलते हैं, जिसे समत्व का हृदय मिल जाए। नहीं तो योग के पंख नहीं मिलते। समत्व से शुरू करना जरूरी है।
ऐसा व्यक्ति संकल्पों से क्षीण हो जाता है, कृष्ण कहते हैं।
संकल्प की जरूरत ही नहीं रह जाती। संकल्प की जरूरत ही तब पड़ती है, जब मुझे कुछ चुनाव करना हो। कहता हूं, यह चाहता हूं, तो फिर पाने के लिए मन को जुटाना पड़ता है। कहता हूं, धन पाना है, तो फिर धन की यात्रा पर मन को दौड़ाना पड़ता है। चाहता हूं कि हीरे की खदानें खोजनी हैं, तो फिर खदानों की यात्रा पर शक्ति को नियोजित करना पड़ता है। नियोजित शक्ति का नाम संकल्प है। इच्छा सिर्फ प्रारंभ है। अकेली इच्छा से कुछ भी नहीं होता। फिर सारी ऊर्जा जीवन की उस दिशा में बहनी चाहिए।
मैं हाथ में तीर लिए खड़ा हूं, सामने वृक्ष पर पक्षी बैठा है। अभी तीर चलेगा नहीं, अभी पक्षी मरेगा नहीं। मन में पहले इच्छा पैदा होनी चाहिए, इस पक्षी का भोजन कर लूं, या इस पक्षी को कैद करके अपने घर में इसकी आवाज को बंद कर लूं, कि इस पक्षी के सुंदर पंखों को अपने पिंजड़े में, कारागृह में डाल दूं। इच्छा पैदा होनी चाहिए, इस पक्षी की मालकियत की। पर अकेली इच्छा से कुछ भी न होगा। इच्छा आपमें रही आएगी, पक्षी बैठा हुआ गीत गाता रहेगा वृक्ष पर। इच्छा आपके भीतर जाल बुनती रहेगी, पक्षी वृक्ष पर बैठा रहेगा। नहीं; इच्छा को संकल्प बनना चाहिए। संकल्प का मतलब है, सारी ऊर्जा नियोजित होनी चाहिए। हाथ तीर पर पहुंच जाना चाहिए। तीर पक्षी पर लग जाना चाहिए। सारी एकाग्रता, सारी मन की शक्ति, सारे शरीर की शक्ति तीर में

समाहित हो जानी चाहिए। जब तीर चढ़ गया प्रत्यंचा पर, पक्षी पर ध्यान आ गया, तो इच्छा न रही, संकल्प हो गया। हां, अभी भी लौट सकते हैं। अभी भी संकल्प छूट नहीं गया है। लेकिन अगर तीर छूट गया हाथ से, तो फिर लौट नहीं सकते। संकल्प अगर चल पड़ा यात्रा पर, प्रत्यंचा के बाहर हो गया, तो फिर लौट नहीं सकते।
तो संकल्प की दो अवस्थाएं हैं। एक अवस्था, जहां से लौट सकते हैं; और एक अवस्था, जहां से लौट नहीं सकते। हमारे सौ में से निन्यानबे संकल्प ऐसी ही अवस्था में होते हैं, जहां से लौट सकते हैं। जिन-जिन संकल्पों से लौट सकते हैं, लौट जाएं। संकल्प से लौटेंगे, तो इच्छा रह जाएगी। हमारी सौ प्रतिशत इच्छाएं ऐसी हैं, जिनसे हम लौट सकते हैं। निन्यानबे प्रतिशत संकल्प ऐसे हैं, जिनसे हम लौट सकते हैं। केवल उन्हीं संकल्पों से लौटना मुश्किल है, जिनके तीर हमारी प्रत्यंचा के बाहर हो गए।
मैं उस क्रोध से भी वापस लौट सकता हूं, जो अभी मेरी वाणी नहीं बना। मैं
उस क्रोध से भी वापस लौट सकता हूं, जो अभी मुखर नहीं हुआ। लेकिन जो क्रोध गाली बन गया और मेरे होठों से बाहर हो गया, उससे वापस लौटने का कोई उपाय न रहा; तीर छूट गया है।
लेकिन जिन संकल्पों के तीर छूट गए हैं, तीर छूट गया, अब पक्षी को लगेगा
और पक्षी गिरेगा मरकर, तो भी मैं इतना तो कर ही सकता हूं, संकल्प को व्यर्थ कर सकता हूं। लौट तो नहीं सकता, लेकिन व्यर्थ कर सकता हूं। व्यर्थ करने का मतलब यह है कि पक्षी पर मालकियत न करूं। जिस इच्छा को लेकर संकल्प निर्मित हुआ था, उस इच्छा को पूरा न करूं। अभी भी तीर खींचा जा सकता है पक्षी से। अभी भी पक्षी के घाव ठीक किए जा सकते हैं। अभी भी पक्षी को पिंजड़े में न डाला जाए, इसका आयोजन किया जा सकता है। अभी भी पक्षी जिंदा हो, तो उसे मुक्त आकाश में छोड़ा जा सकता है।
तो जो संकल्प तीर की तरह निकल गए हों, उन संकल्पों को अनडन करने के लिए
जो भी किया जा सके, वह साधक को करना चाहिए, उनको व्यर्थ करने के लिए। जो संकल्प अभी प्रत्यंचा पर चढ़े हैं, प्रत्यंचा ढीली छोड़कर तीरों को वापस तरकस में पहुंचा देना चाहिए। जो संकल्प इच्छा रह जाएं, उन इच्छाओं के द्वंद्व को समझ लेना चाहिए कि चुनाव से पैदा हो रहे हैं। और दाएं और बाएं के बीच में खड़ा हो जाना चाहिए। और कहना चाहिए, मैं चुनूंगा नहीं। मैं एक ही चुनाव करता हूं कि मैं चुनूंगा नहीं। टु बी च्वाइसलेस इ.ज दि ओनली च्वाइस। एक ही चुनाव है मेरा कि अब मैं चुनाव नहीं करता।
इच्छाओं के बादल थोड़ी देर में ही बिखर जाएंगे और तिरोहित हो जाएंगे।
और अगर आप बाएं और दाएं के बीच में खड़े हो गए, तो समत्व का अनुभव होगा। और समत्व का अनुभव योगारूढ़ होने का द्वार खोल देता है। वहां कोई संकल्प नहीं है; वहां कोई विकल्प नहीं है। वहां परिपूर्ण मौन, परिपूर्ण शून्य है। उसी शून्य में परम साक्षात्कार है।
कृष्ण के सभी सूत्र परम साक्षात्कार के विभिन्न द्वारों पर चोट करते हैं। वे अर्जुन को कहते हैं कि तू समत्वबुद्धि को उपलब्ध हो जा, फिर तू योगारूढ़ हो जाएगा। और फिर योगारूढ़ होकर तेरे सारे संकल्प गिर जाएंगे, सब विकल्प गिर जाएंगे; तेरे चित्त की सारी चिंताएं गिर जाएंगी। तू निश्चिंत हो जाएगा। सच तो यह है कि तू चित्तातीत हो जाएगा। चित्त ही तेरा न रह जाएगा, मन ही तेरा न रह जाएगा। अगर ऐसा कहें, तो कह सकते हैं कि फिर तू अर्जुन न रह जाएगा, आत्मा ही रह जाएगा।
और जिस दिन कोई सिर्फ आत्मा रह जाता है, उसी दिन जान पाता है अस्तित्व
के आनंद को, वह जो समाधि है अस्तित्व की, वह जो एक्सटैसी है, वह जो मंगल है, वह जो सौंदर्य है गहन--सत्य, स्वयं में छिपा--उसके उदघाटन को। परम है संगीत उसका, परम है काव्य उसका।
लेकिन जानने के पहले एक तैयारी से गुजरना जरूरी है। उसी तैयारी का नाम योग है। उस तैयारी की सिद्धि को पा लेना योगारूढ़ हो जाना है। उस तैयारी की प्रक्रिया समत्वबुद्धि है।

प्रश्नः ओशो, इस श्लोक में कहे गए शमः अर्थात सर्वसंकल्पों के अभाव में और निर्विचार अवस्था में क्या कोई भेद है अथवा दोनों एक ही हैं? कृपया इस पर प्रकाश डालें।

निर्विचार और निःसंकल्प क्या इन दोनों में कोई भेद है या दोनों एक हैं?
जहां तक अंत का संबंध है, दोनों एक हैं। जहां तक सिद्धि का संबंध है, दोनों एक हैं। जहां तक उपलब्धि का संबंध है, दोनों एक हैं। जहां पूर्ण होता है निःसंकल्प होना या निर्विचार होना, वहां एक ही अनुभूति रह जाती है--शून्य की, निराकार की, परम की। लेकिन जहां तक मार्ग का संबंध है, दोनों में भेद है। जहां तक मार्ग का संबंध है, दोनों में भेद है। जहां तक मैथडॉलाजी का, विधि का संबंध है, वहां दोनों में भेद है।
निर्विचार की प्रक्रिया भिन्न है निःसंकल्प होने की प्रक्रिया से। निःसंकल्प होने की प्रक्रिया है, समत्वबुद्धि, द्वंद्व के बीच में ठहर जाना। निःसंकल्प होने की, संकल्पातीत होने की, संकल्पशून्य होने की विधि है--जो मैंने अभी आपसे कही--समबुद्धि को उपलब्ध हो जाना। निर्विचार होने की प्रक्रिया है, साक्षित्व को उपलब्ध हो जाना।
परिणाम एक होंगे। निर्विचार होने की प्रक्रिया है, साक्षी हो जाना विचार के। कैसा ही विचार हो, उस विचार के केवल विटनेस हो जाना, देखने वाले हो जाना, दर्शक बन जाना। खेल में होते हुए, खेल के दर्शक हो जाना। जैसे नाटक को देखते हैं, ऐसा अपने मन को देखने लगना। विचारों की जो धारा बहती है, उसके किनारे, जैसे रास्ता चल रहा है, लोग चल रहे हैं, उसके किनारे बैठकर रास्ते को देखने लगा कोई। ऐसे किनारे बैठकर, मन के विचारों की धारा को देखने लगना।
विचारों के प्रति जागरूकता विधि है। और जो विचारों के प्रति जागरूक होगा, वह वहीं पहुंच जाएगा निर्विचार होकर, निराकार में। लेकिन उन दोनों के छलांग के स्थान अलग-अलग हैं। और व्यक्ति व्यक्ति के टाइप, प्रकार पर निर्भर करता है कि कौन-सा उचित होगा।
जैसे उदाहरण के लिए, कुछ लोग हैं, जो इच्छाओं जैसी चीज ज्यादा करते ही नहीं, विचार ही करते हैं। इंटलेक्चुअल्स, बुद्धि की दुनिया में जीने वाले लोग इच्छाओं के जाल में बहुत नहीं पड़ते। अक्सर गहन बुद्धि में जीने वाला आदमी बहुत आस्टेरिटी में, तपश्चर्या में जीता है।
आइंस्टीन! अब आइंस्टीन से अगर आप कहो कि चुनाव मत करो, तो वह कहेगा, चुनाव हम करते ही कहां! अगर आइंस्टीन से आप कहो कि न काली कार चुनो, न नीली कार चुनो; वह कहता है कि हमने कभी ख्याल ही नहीं किया कि कौन-सी कार काली है और कौन-सी नीली है!
आइंस्टीन का जीवन तो एक तपस्वी का जीवन है। भोजन करते वक्त भी उसकी पत्नी को ही ख्याल रखना पड़ता है कि नमक ज्यादा तो नहीं है, शक्कर ज्यादा तो नहीं है, क्योंकि वह तो खा लेगा। वह जीता है विचार की दुनिया में, वहीं दौड़ता रहता है।
डाक्टर राममनोहर लोहिया एक दफा आइंस्टीन को मिलने गए थे। ग्यारह बजे
का वक्त उनकी पत्नी ने दिया था कि आप ठीक ग्यारह बजे आ जाएं; और जरा-सी भी देर की, तो कठिनाई होगी। तो लोहिया ने सोचा कि शायद कोई बहुत जरूरी काम होगा ग्यारह के बाद आइंस्टीन को। वे भागे हुए ठीक ग्यारह बजे पहुंचे, लेकिन सिर्फ एक मिनट की देरी हो गई।
तो उनकी पत्नी ने कहा कि आप तो चूक गए। पर उन्होंने कहा, एक ही मिनट! मुझे दरवाजे पर भी वे दिखाई नहीं पड़े। वे गए कहां? उसकी पत्नी ने कहा कि वे बाथरूम में चले गए। उन्होंने कहा, आप भी क्या बात करती हैं! मैं प्रतीक्षा कर सकता हूं। उसने कहा, लेकिन कोई हिसाब नहीं कि वे कब निकलें। उन्होंने कहा, बाथरूम में कितना नहाते हैं? उसने कहा, नहाने का तो सवाल कहां है! कई दफा तो बिना नहाए निकल आते हैं! तो बाथरूम में करते क्या हैं? वे वही करते हैं, जो चौबीस घंटे करते हैं। टब में लेट जाते हैं; सोचना शुरू कर देते हैं। नहाना तो भूल जाते हैं!

छः घंटे बाद वे निकले। बड़े आनंदित बाहर आए। कोई गणित की पहेली हल हो गई। डाक्टर लोहिया ने पूछा कि गणित की पहेली आप क्या बाथरूम में हल करते हैं? तो आइंस्टीन ने कहा कि एक्सपैंडिंग यूनिवर्स का जो सिद्धांत मैंने विकसित किया कि जगत निरंतर फैल रहा है, ठहरा हुआ नहीं है, जैसे कि कोई गुब्बारे में हवा भर रहा हो और गुब्बारा बड़ा होता जाए, ऐसा जगत बड़ा होता जा रहा है; ठहरा हुआ नहीं है। जगत रोज बड़ा हो रहा है। आइंस्टीन के सिद्धांत को समर्थन मिल पाया और सही सिद्ध हुआ। तो आइंस्टीन ने कहा कि यह सिद्धांत मैंने अपने बाथरूम के टब में बैठकर साबुन के बबूले उठाते वक्त, जब साबुन के बबूले बड़े होते, तब मुझे ख्याल आया। यह साबुन के बबूले अपने टब में बनाते हुए और बबूलों से खेलते वक्त मुझे ख्याल आया कि यह जगत एक्सपैंडिंग हो सकता है।
हमारे पास तो जो शब्द है ब्रह्म, उसका मतलब ही होता है, एक्सपैंशन। इस मुल्क के ऋषि तो सदा से यह कहते रहे हैं कि जगत फैल रहा है, जगत ठहरा हुआ नहीं है। ब्रह्मांड का अर्थ ही होता है, जो फैलता चला जाए। जो रुके ही नहीं, फैलता ही चला जाए। स्वभाव ही जिसका फैलाव है।
पर आइंस्टीन को यह ख्याल उसके बाथरूम में मिला। ऐसे लोग इच्छाओं में नहीं जीते, विचारों में जीते हैं। थोड़ा फर्क है। ऐसे लोग इच्छाओं में नहीं जीते, विचारों में जीते हैं। इनके लिए, दो इच्छाओं के बीच ठहर जाओ, इस सूत्र का बहुत अर्थ नहीं होगा। इनके लिए, विचारों के प्रति सजग हो जाओ, इसका ज्यादा अर्थ होगा।
तो जो इंटलेक्चुअल टाइप है, जो बुद्धिवादी टाइप है, जिसका प्रकार बुद्धि में जीने का है, वासनाओं में जीने का नहीं--बुद्धि भी वासना है, पर बहुत विभिन्न प्रकार है उसके जीने का--उसके लिए तो निर्विचार की साधना है। लेकिन अधिकतम लोग विचारों में नहीं जीते; अधिकतम लोग वासनाओं में जीते हैं। कभी कोई आइंस्टीन जीता है विचार में। अधिक लोग वासनाओं में जीते हैं। अगर आप विचार भी करते हैं, तो किसी वासना के लिए। और आइंस्टीन जैसे आदमी अगर कभी वासना भी करते हैं, तो किसी विचार के लिए।
इस फर्क को ख्याल में ले लें।
अगर आप विचार भी करते हैं, तो किसी वासना के लिए। आप चाहते हैं, एक बड़ा मकान हो जाए, तो विचार करते हैं कि कैसे हो जाए? क्या धंधा करूं? कैसे धन कमाऊं? अगर आइंस्टीन को कभी बड़े मकान का भी विचार आता है, तो वह तभी आता है, जब उसको लगता है कि उसकी प्रयोगशाला छोटी पड़ गई है। अब इसमें विचार ठीक से नहीं हो पा रहा है। वह सोचता है, कोई बड़ी प्रयोगशाला मिल जाए। अगर आइंस्टीन जैसा आदमी बड़े मकान की वासना भी करता है, तो किसी विचार के कारण। और हम अगर कभी बैठकर थोड़ा विचार भी करते हैं, तो किसी वासना के कारण। यह भेद है। जिनकी वासना इंफेटिकली तेज है, उनके लिए कृष्ण जो कह रहे हैं, वह ठीक कह रहे हैं।
अर्जुन विचार वाला आदमी नहीं है, इच्छाओं वाला आदमी है, योद्धा है। विचार से बहुत लेन-देन नहीं है उसको। और आइंस्टीन जैसा विचार में खो जाए, तो युद्ध न कर पाएगा। युद्ध का सूत्र ही है कि विचार मत करना, लड़ना। विचार किया, तो लड़ाई कठिन हो जाएगी; हार सुनिश्चित हो जाएगी। युद्ध में तो वह आदमी जीतता है, जो विचार नहीं करता, समग्र रूप से लड़ता है। विचार करता ही नहीं।
जापान में योद्धाओं का एक समूह है, समुराई। समुराई शिक्षक सिखाते हैं
कि अगर तुमने एक क्षण भी विचार किया, तो तुम चूक जाओगे। तलवार चलाओ, विचार मत करो। जब लड़ रहे हो, तो तलवार चलाओ, विचार मत करो। अगर जरा-सा विचार किया, तो तलवार उतनी देर के लिए चूक जाएगी; उतनी देर में दुश्मन तो छाती में तलवार डाल देगा।
तो अगर कभी दो समुराई योद्धा उतर जाते हैं तलवार के युद्ध में, तो बड़ी मुश्किल हो जाती है जीत-हार तय करना। क्योंकि दोनों ही निर्विचार लड़ते हैं एक अर्थ में, विचार नहीं करते, सीधा लड़ते हैं। और लड़ना इंट्यूटिव होता है, क्योंकि विचार तो होता नहीं कि कहां चोट करूं! जहां से पूरे प्राण कहते हैं चोट करो, वहीं चोट होती है। चोट होने में और विचार करने में फासला नहीं होता। चोट ही विचार है।

और बड़ी हैरानी की बात है कि समुराई योद्धाओं का अनुभव है यह कि दूसरा व्यक्ति, दुश्मन जब हमला करता है, तो वह कहां हमला करेगा, पूरे प्राण अपने आप वहां तलवार को उठा देते हैं बचाव के लिए। विचार में तो देर लग जाएगी। विचार में तो थोड़ी देर लग जाएगी। विचार में टाइम गैप होगा ही।
अगर आप मुझ पर तलवार से हमला कर रहे हैं और मैंने सोचा कि पता नहीं, यह हमला कहां करेंगे--गर्दन पर, कि कमर में, कि छाती में! मैंने इतनी देर विचार किया, तलवार की गति तेज है, इतनी देर में तलवार गर्दन काट गई होगी।
विचार का मौका नहीं है। यहां तो मुझे बिना विचार के तलवार चलाने की सुविधा है, बस। तलवार वहां पहुंच जानी चाहिए, जहां तलवार पहुंच रही है दुश्मन की। इसमें विचार की बाधा, इसमें विचार का व्यवधान नहीं होना चाहिए।
तो अर्जुन तो समुराई है। उसकी तो सारी प्रक्रिया पूरे प्राणों से लड़ने की है। वासनाएं उसके जीवन में हैं, विचार का बहुत सवाल नहीं है।
इसलिए कृष्ण उससे कह रहे हैं कि तू दो वासनाओं के बीच में सम हो जा। दो वासनाओं के बीच में सम हो जाए अर्जुन, तो योगारूढ़ हो जाए।

आइंस्टीन को योगारूढ़ होना हो, तो वासनाओं में सम होने का कोई सवाल नहीं। आइंस्टीन कहेगा, वासनाएं हैं कहां? होश भी नहीं है उसे वासना का। एक मित्र के घर एक रात भोजन के लिए गया था। ग्यारह बजे भोजन समाप्त हो गया। फिर बाहर बरांडे में बैठकर मित्र के साथ गपशप चलती रही। आइंस्टीन अनेक बार अपनी घड़ी देखता है, फिर वह सिर खुजलाकर फिर बातचीत में लग जाता है। मित्र बड़ा परेशान है। बारह बज गए, एक बज गए। अब मित्र की हिम्मत भी नहीं है कहने की कि आइंस्टीन जैसे व्यक्ति को कहे कि अब आप जाइए; अब मैं सोऊं! फिर दो बज गए। और हैरानी इससे और बढ़ जाती है कि आइंस्टीन कई दफा अपनी घड़ी देखता है। फिर घड़ी देखकर सिर खुजलाकर फिर बैठा रह जाता है। वह मित्र बड़ा परेशान है कि घड़ी भी देख लेते हैं! उनको पता भी है कि दो बज गए।
फिर आखिर में मित्र ने कहा कि क्या आज सोइएगा नहीं? आइंस्टीन ने कहा, यही तो मैं सोच रहा हूं बार-बार घड़ी देखकर कि आप जाएंगे कब! उसने कहा कि आप हद कर रहे हैं! यह घर मेरा है। आइंस्टीन ने कहा, माफ करो; मुझे बहुत पक्का नहीं रह जाता कि घर किसका है। मैं जाता हूं। मैं बार-बार घड़ी इसीलिए देख रहा हूं कि अब जाओ! आप जाएंगे कब?
अब जिस आदमी को यह ख्याल न रह जाता हो कि कौन-सा घर मेरा है, वह घर बनाने की वासनाओं में नहीं पड़ सकता। वह कोई सवाल नहीं है; वह प्रश्न नहीं है; वह उसके चित्त का हिस्सा नहीं है।
मोटे दो विभाजन हम कर सकते हैं। एक वे, जो विचार में जीते हैं, बुद्धि में। एक वे, जो वृत्ति में जीते हैं, वासना में। उन दोनों के बीच भी एक पतला विभाजन है; वे, जो भाव में जीते हैं, भावना में। ये तीन मोटे विभाजन हैं। इन तीनों के लिए अलग-अलग प्रक्रियाएं हैं।
वृत्ति में जो जीता है, वासना में--और अधिकतम लोग वृत्ति में जीते हैं,
सौ में से निन्यानबे लोग; इससे कम नहीं। अधिकतम लोग वृत्ति में जीते हैं। उनके लिए सूत्र है कि वे दो वृत्तियों, दो वासनाओं के बीच में सम हों। बहुत थोड़े-से लोग, आधा परसेंट सौ में से, विचार में जीते हैं। उनके लिए सूत्र है कि वे विचार के प्रति सजग हों। और आधा प्रतिशत लोग, बहुत कम लोग, भावना में जीते हैं। उनके लिए भी सूत्र है कि वे भाव के प्रति स्मरण से भरें। इन तीनों में थोड़े-थोड़े फर्क हैं।
विचार से जिसको निर्विचार की तरफ जाना है, उसे अवेयरनेस, विचार के प्रति जागरूकता। भाव से जिसे निर्भाव में जाना है, उसे भाव के प्रति माइंडफुलनेस, स्मृति, होश। थोड़ा फर्क है। जागरूकता में और स्मृति में थोड़ा फर्क है। और जिन्हें वृत्तियों से जाना है, उन्हें समत्व, समबुद्धि, दो के द्वंद्व के बीच ठहर जाना।
एक दो शब्द बीच के सूत्र के लिए और कह दूं। वे जो भावना में जीते हैं; न
तो वासना में जीते, न विचार में जीते, भावना में जीते हैं। जिनके लिए न तो बहुत किसी प्रयोगशाला से अर्थ है, न किसी गणित की खोज करनी है, न कोई दर्शनशास्त्र की पहेली हल करनी है। सिद्धांतों से जिन्हें लेना-देना

नहीं। न जिन्हें कोई बड़ा राज्य बनाना है, न कोई बड़े भवन बनाने हैं। लेकिन जो भाव में जीते हैं, प्रेम में, क्रोध में, जो भाव में जीते हैं।
जैसे कि उमर खय्याम ने अपनी रुबाइयात में कहा है कि वृक्ष हो छायादार, साथ में सुराही हो सुरा की, और प्रिय तुम निकट हो, काव्य की कोई पुस्तक पास हो, तो मैंने सब जगत जीत लिया है; फिर कुछ और चाहिए नहीं। गीत को कभी हम काव्य की पुस्तक से पढ़ लेंगे; सुरा को कभी हम पी लेंगे; और फिर तारों से भरे आकाश के नीचे आलिंगन में निमग्न होकर सो जाएंगे। छायादार वृक्ष हो, इतना काफी है। किसी बड़े मकान की कोई आकांक्षा नहीं है।
अब यह उमर खय्याम जिस टाइप की बात कर रहा है, वह भावनाशील। जिंदगी में प्रेम हो, गीत हो, छायादार वृक्ष हो, तो पर्याप्त। न बहुत विचार का सवाल है, न वह इस विचार में पड़ेगा कि शराब पीना चाहिए कि नहीं पीना चाहिए; न वह इस वृत्ति और वासना में पड़ेगा कि वृक्ष के नीचे कहीं कोई प्रेम हो सकता है, महल होना चाहिए। नहीं; प्रेम है, तो वृक्ष महल हो गया। और ऐसे व्यक्ति को अगर प्रेम नहीं मिला, तो बड़ा महल भी वीरान हो जाएगा। यह भाव के तल पर जीने वाला व्यक्ति है। यह भी बहुत कम है। यह भी बहुत कम है! एक काव्य की पुस्तक पास में हो, उमर खय्याम कहता है, तो बस काफी है। कभी गीत गा लेंगे उससे निकालकर।
ऐसे व्यक्ति को जो प्रक्रिया है, बुद्ध ने उस प्रक्रिया को नाम दिया है, राइट माइंडफुलनेस, सम्यक स्मृति। इस बात का होश, इस बात की स्मृति कि यह प्रेम है, यह घृणा है, यह क्रोध है, यह राग है। इस बात की पूरी स्मृति, इसका पूरा एकाग्र बोध। यह क्या है? यह जो मैं कर रहा हूं, यह क्या है?
अगर भाव के प्रति कोई एकाग्र स्मृति को उपलब्ध हो जाए और जान पाए कि
यह प्रेम है, तो वह बहुत चकित हो जाएगा। क्योंकि वह पाएगा कि जैसे ही वह होश से भरा कि यह प्रेम है, वैसे ही उसे दिखाई पड़ा कि यही घृणा भी है। ट्रांसपैरेंट हो जाएगा, पारदर्शी हो जाएगा प्रेम, और उसके पार घृणा खड़ी दिखाई पड़ेगी। जैसे ही उसे दिखाई पड़ा, यह क्रोध है, अगर उसने गौर से देखा, तो फौरन पीछे पश्चात्ताप, क्षमा भी खड़ी हुई दिखाई पड़ जाएगी। ट्रांसपैरेंट हो जाएंगे भाव।
भाव बहुत ट्रांसपैरेंट हैं, बहुत पारदर्शी हैं, कांच की तरह हैं। वासनाएं पत्थर की तरह हैं, नान-ट्रांसपैरेंट हैं, उनके आर-पार कुछ नहीं दिखाई पड़ता। वृत्तियां बहुत ठोस हैं। भाव बहुत तरल, भाव बहुत झीने हैं, उनके आर-पार दिखाई पड़ सकता है। वृत्तियों के आर-पार कुछ दिखाई नहीं पड़ता। वृत्तियों के तो, दो वृत्तियों के बीच में आप खड़े हों, तो द्वार मिलेगा। दो पत्थर हैं वे। लेकिन भाव में अगर आप सजग हो जाएं, तो भाव में से ही आप को पार दिखाई पड़ने लगेगा। भाव कांच की तरह झीने हैं, दिखाई पड़ सकता है उनके पार; पारदर्शी हैं।
विचार के प्रति सजगता, भाव के प्रति स्मृति, वासना के प्रति समत्व। परिणाम एक होगा। ये भेद, तीन तरह के लोग हैं पृथ्वी पर, इसलिए हैं। परिणाम एक होगा।
निर्विचार हो जाएं, कि निर्भाव, कि निःसंकल्प। जो बचेगा, वह निराकार है। आप एक ही गंगा में कूदेंगे, लेकिन घाट अलग-अलग होंगे। घाट आपका अपना होगा। जब तक घाट पर खड़े हैं, तब तक फर्क होगा। गंगा में कूद गए, फिर कोई फर्क नहीं होगा। फिर आप क्या फर्क करेंगे कि मैं अलग घाट से कूदा था, इसलिए मेरी गंगा अलग है! कि तुम अलग घाट से कूदे थे, इसलिए तुम्हारी गंगा अलग है! घाट तो उसी क्षण छूट गया, जब आप गंगा में कूदे। लेकिन घाट के फर्क हैं। अगर हम ठीक से समझें, तो सारी दुनिया के धर्म, घाट के फर्क हैं।
जैन बहुत ठीक शब्द उपयोग करते हैं अपने उपदेष्टाओं के लिए, जिन्होंने ज्ञान दिया। उनको वे कहते हैं, तीर्थंकर। तीर्थंकर का अर्थ होता है, घाट बनाने वाला, तीर्थ बनाने वाला। उसका इतना ही मतलब होता है कि इस आदमी ने एक घाट और बनाया, जिससे लोग कूद सकते हैं। दावा गंगा का नहीं है, दावा सिर्फ घाट का है। इसलिए दावा बिल्कुल ठीक है। दावा यह नहीं है कि इस आदमी ने गंगा बनाई। दावा इतना ही है कि इस आदमी ने एक घाट और बनाया, जहां से नाव छोड़ी जा सकती है। और भी घाट हैं, उनका कोई इनकार नहीं है।

इसलिए महावीर ने किसी घाट का इनकार नहीं किया। कहा, और भी घाट हैं। उनसे भी कोई जा सकता है। इसलिए महावीर को बहुत कम समझ सके लोग, क्योंकि महावीर किसी को गलत ही न कहेंगे। वे कहेंगे कि वह भी ठीक है; वह भी एक घाट है।
ठीक विपरीत कहने वाले को, जो कहता है कि मैं तुम्हारे तो बिल्कुल विपरीत खड़ा हूं; तुम इस तरफ घाट बनाए हो, मैंने उस तरफ घाट बनाया है, हम दोनों एक कैसे हो सकते हैं? महावीर उससे भी कहते हैं कि नाव छोड़ो, तो हम एक ही गंगा में पहुंच जाएंगे। तुम जो ठीक अपोजिट, विपरीत खड़े हो। उस तरफ घाट बनाया तुमने। ठीक है। उस तरफ के उतरने वालों के लिए वही उपयोगी होगा। इस तरफ वाले उस तरफ के घाट से कैसे उतरेंगे? और उस तरफ के लोग इस तरफ के घाट से कैसे उतरेंगे?
तो महावीर कहते हैं, कहीं से भी घाट हो, गंगा में, सत्य की गंगा में, अस्तित्व की गंगा में उतर जाएं। तो कहते हैं, सभी ठीक हैं। एक ही बात को महावीर गलत कहते हैं। वे कहते हैं, जब भी कोई घाट वाला कहता है कि बस, यही घाट है, तब गलत कहता है। बस, एक बात गलत है। जब कोई कहता है, यही घाट ठीक है, और सब घाटों को गलत कहता है, तभी गलत कहता है। बाकी कोई गलती नहीं है। घाट बिल्कुल ठीक है, दावा गलत है। उस घाट से भी उतर सकते हैं। लेकिन बस दावा यह गलत है कि इसी घाट से उतर सकते हैं। महावीर कहते हैं, इतना ही कहो, इससे भी उतर सकते हैं। यह मत कहो, इसी से उतर सकते हैं। बस इसी में हिंसा आ जाएगी। दूसरे घाटों को इनकार हो जाएगा।
और सब घाट बड़े छोटे हैं, गंगा बहुत बड़ी है। पूरी गंगा पर घाट बनाना भी मुश्किल है। हालांकि सभी धर्म कोशिश करते हैं कि पूरी गंगा पर मेरा ही घाट बन जाए! बन नहीं पाता। जब तक घाट बनता है, तब तक अक्सर गंगा अपनी धारा बदल देती है। कभी बन नहीं पाता है।
गंगा बड़ी है। अस्तित्व की गंगा विराट है। हम एक छोटे-से कोने में घाट बनाने में सफल हो जाएं, वह भी बहुत है। उससे भी हम छलांग लगा सकें, वह भी बहुत है।
तीन प्रकार के घाट मूल रूप से भिन्न हैं--भाव वाला, विचार वाला, वासना वाला। कृष्ण ने जो यह सूत्र कहा है, यह वासना वाले के लिए है। समत्व के घाट से वह योगारूढ़ हो सकता है।

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।
सर्वसंकल्प संन्यासी योगारूढस्तदोच्यते।। 4।।
और जिस काल में न तो इंद्रियों के भोगों में आसक्त होता है तथा न कर्मों में ही आसक्त होता है, उस काल में सर्वसंकल्पों का त्यागी पुरुष योगारूढ़ कहा जाता है।

न इंद्रियों में आसक्ति है जिसकी, न कर्मों में; ऐसे क्षण में, जहां ये
दो आसक्तियां शेष नहीं हैं--ऐसे क्षण में ऐसा पुरुष योगारूढ़ कहा जाता है। दो बातों को थोड़ा-सा समझ लेना उपयोगी है, इंद्रियों में आसक्ति नहीं
है जिसकी और न कर्मों में। दोनों संयुक्त हैं। इंद्रियों में आसक्ति हो, तो ही कर्मों में आसक्ति होती है। इंद्रियों में आसक्ति न हो, तो कर्मों में आसक्ति का कोई उपाय नहीं है। इसलिए कृष्ण जब भी कुछ कहते हैं, तो उसमें एक वैज्ञानिक प्रक्रिया की सीढ़ी होती है। पहले कहते हैं, इंद्रियों में आसक्ति नहीं जिसकी। इंद्रियों में आसक्ति नहीं, तो कर्म में आसक्ति हो ही नहीं सकती। कर्म की सारी आसक्ति, इंद्रिय की आसक्ति का फैलाव है।
आप अगर धन इकट्ठा कर रहे हैं और धन को इकट्ठा करने में जो कर्म करना पड़ता है, उसमें बड़े आसक्त हैं, तो ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जो सिर्फ कर्म करने के लिए आसक्त हो। धन इंद्रियों के लिए जो दे सकता है, उसका आश्वासन ही आसक्ति का कारण है। धन इंद्रियों के लिए जो दे सकता है, उसका आश्वासन ही कर्म का आकर्षण है।
अगर कल पता चल जाए कि धन अब कुछ भी नहीं खरीद सकता, तो सारा आकर्षण क्षीण हो जाएगा। तब दुकान पर बैठकर आप दो पैसे ज्यादा छीन लें ग्राहक से, इसकी उत्सुकता में न रह जाएंगे। कभी भी न थे। दो पैसे छीनने को कोई भी

उत्सुक न था। दो पैसे में कुछ मूल्य है! मूल्य क्या है? मूल्य इंद्रियों की तृप्ति है। धन का ठीक-ठीक जो मूल्य है, वैल्यू है, वह इकॉनामिक नहीं है, वह आर्थिक नहीं है। धन की गहरी मूल्यवत्ता मानसिक है। धन का वास्तविक मूल्य अर्थशास्त्री तय नहीं करते राजधानियों में बैठकर। धन का वास्तविक मूल्य मन की वासनाएं तय करती हैं, इंद्रियां तय करती हैं।
इसलिए महावीर जैसा व्यक्ति अगर धन नहीं साथ रखता, तो उसका कारण धन का त्याग नहीं है। उसका गहरा कारण इंद्रियों के लिए तृप्ति के आयोजन की जो आकांक्षा है, उसका विसर्जन है। फिर धन को रखने का कोई कारण नहीं रह जाता। फिर वह सिर्फ बोझ हो जाएगा। उसको ढोने की नासमझी महावीर नहीं करेंगे।
धन के लिए आदमी इतना आकुल-व्याकुल श्रम करता है। इतना दौड़ता है। वह इंद्रियों के लिए दौड़ रहा है। धन में भरोसा है, विश्वास है। धन खरीद सकता है सब कुछ। धन सेक्स खरीद सकता है। धन भोजन खरीद सकता है। धन वस्त्र खरीद सकता है। धन मकान खरीद सकता है। धन सुविधा खरीद सकता है। धन जो खरीद सकता है, उसमें ही धन का मूल्य है। धन सब कुछ खरीद सकता है। सिर्फ सुख को छोड़कर, धन सब कुछ खरीद सकता है।
लेकिन अगर यह आपको पता चल जाए कि धन सुख नहीं खरीद सकता, तो धन की दौड़ बंद हो जाए। इसलिए धन आश्वासन देता है कि मैं सुख खरीद सकता हूं। मैं ही सुख खरीद सकता हूं! खरीदता है दुख, लेकिन आश्वासन सुख का है।
सभी नर्कों के द्वार पर जो तख्ती लगी है, वह स्वर्गों की लगी है। इसलिए जरा सम्हलकर भीतर प्रवेश करना। तख्ती तो स्वर्ग की लगी है। नर्क वाले लोग इतने तो होशियार हैं ही कि बाहर जो दरवाजे पर नेम-प्लेट लगाएं, वह स्वर्ग की लगाएं। नहीं तो कौन प्रवेश करेगा? लिखा हो साफ कि यहां नर्क है, कोई प्रवेश नहीं करेगा।
तो आप इस भ्रम में मत रहना कि नर्क के द्वार पर दो हड्डियों का क्रास बनाकर और एक मुर्दे का चेहरा लगा होगा और लिखा होगा, डेंजर, इनफिनिट वोल्टेज! ऐसा कुछ नहीं लिखा होगा। लिखा है, स्वर्ग। आओ, कल्पवृक्ष यहीं है! तभी तो कोई नर्क के द्वार में प्रवेश करेगा। द्वार तो सब स्वर्ग के ही प्रवेश करते हैं लोग, पहुंच जाते हैं नर्क में, यह बात दूसरी है। द्वार तो सभी स्वर्ग के मालूम होते हैं।
इंद्रियां तृप्ति चाहती हैं। धन तृप्ति को दिलाने का आश्वासन दिलाता है। जीवन कर्म में रत हो जाता है। कर्म की आसक्ति, मूल में इंद्रियों की ही तृप्ति के लिए दौड़ है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, इंद्रियों में जिसकी आसक्ति न रही।
किसकी न रहेगी इंद्रियों में आसक्ति? हम तो जानते ही नहीं कि इंद्रियों के जोड़ के अलावा भी हममें कुछ और है। है कुछ और? अगर आंख फूट जाए मेरी--आपकी नहीं कह रहा--अगर मेरी आंख फूट जाए, मेरे कान टूट जाएं, मेरे हाथ कट जाएं, मेरी जीभ न हो, मेरी नाक न हो, तो मैं क्या हूं? कुछ भी न रहा। इन पांच इंद्रियों के जोड़ से अगर मेरी एक-एक इंद्रिय निकाल ली जाए, तो पीछे क्या बचेगा? कुछ भी बचता हुआ मालूम नहीं पड़ता।
आदमी की आंख चली जाती है, तो आधा आदमी चला जाता है। कान चले जाते हैं,
तो और गया। हाथ चले जाते हैं, तो और गया। अगर हमारी पांचों इंद्रियां छीनी जा सकें और हमें किसी तरह जिंदा रखा जा सके, तो हममें क्या बचेगा? कुछ भी नहीं बचेगा। क्योंकि हमारा सारा अनुभव इंद्रियों के अनुभव का जोड़ है। अगर हमें लगता है कि मैं कुछ हूं, तो वह मेरी इंद्रियों का जोड़ है।
तो जिसको ऐसा लगता है कि मैं इंद्रियों का जोड़ हूं, वह पुरुष कहीं इंद्रियों की आसक्ति से मुक्त हो सकेगा? अगर मैं इंद्रियों का जोड़ हूं, तो इंद्रियों की आसक्ति से मुक्त होना तो सिर्फ आत्मघात है; और कुछ भी नहीं। मैं मर जाऊंगा, और क्या होगा!
लेकिन कृष्ण तो कहते हैं कि इंद्रियों की आसक्ति से जो पार हो गया, वह योगारूढ़ हो गया। वे कहते हैं, मर नहीं जाएगा, बल्कि वही पूरे अर्थों में जीवन को पाएगा।
पर हमें उस जीवन का कोई भी पता नहीं है। हमें तो इंद्रियों का जोड़ ही हमारा जीवन है। अगर हमारी इंद्रियों के अनुभव एक-एक करके हटा दिए जाएं, तो पीछे जीरो, शून्य बचेगा, कुछ भी नहीं बचेगा। हाथ कुछ भी नहीं लगेगा। सब जोड़

कट जाएगा। तो हम कैसे इंद्रियों से, इंद्रियों की आसक्ति से मुक्त हो जाएं? इंद्रियों की आसक्ति से मुक्त होने के लिए पहला सूत्र ख्याल में रखें, तभी हो सकेंगे।
जब कोई इंद्रिय मांग करे, जब कोई इंद्रिय चुनाव करे, जब कोई इंद्रिय भोग करे, जब कोई इंद्रिय तृप्ति के लिए आतुर होकर दौड़े, तब आपको कुछ करना पड़ेगा इस सत्य को पहचानने के लिए कि मैं इंद्रिय नहीं हूं।
जब आप भोजन करते हैं, तो आप भोजन की इंद्रिय ही हो जाते हैं। उस समय थोड़ा स्मरण रखना जरूरी है, सच में मैं भोजन कर रहा हूं? भोजन करते वक्त चौंककर एक बार देखना जरूरी है, मैं भोजन कर रहा हूं? कहीं भी भीतर खोजें, मैं भोजन कर रहा हूं?
तो आपको एक फर्क दिखाई पड़ेगा। आप भोजन कर ही नहीं रहे हैं; आप तो भोजन
से बहुत दूर हैं। शरीर भोजन कर रहा है। भोजन आपको छूता भी नहीं कहीं। आपकी कांशसनेस को, आपकी चेतना को कहीं स्पर्श भी नहीं करता है। कर भी नहीं सकता है।
चेतना को कोई पदार्थ कैसे स्पर्श करेगा! लेकिन चेतना चाहे, तो पदार्थ
के प्रति आसक्त हो सकती है। पदार्थ स्पर्श नहीं करता; लेकिन चेतना चाहे, तो आकर्षित हो सकती है। चेतना चाहे, तो पदार्थ के साथ अपने को बंधन में अनुभव कर सकती है, बंधा हुआ मान सकती है।
जब आप भोजन करते हैं, तो कहते हैं, मैं भोजन कर रहा हूं। भूल जरा और गहरी है; जब आपको भूख लगती है, तभी से शुरू हो जाती है। तब आप कहते हैं, मुझे भूख लगी है। थोड़ा गौर से देखें, आपको कभी भी भूख लगी है? आप कहेंगे, निश्चित ही, रोज लगती है। फिर भी मैं आपसे कहता हूं, आपको भूख कभी भी नहीं लगी; भ्रांति हुई है। भूख तो शरीर को ही लगती है। आपको सिर्फ पता चलता है कि शरीर को भूख लगी है। लेकिन इतनी लंबी प्रक्रिया में आप नहीं जाते। सीधी छलांग लगा देते हैं कि मुझे भूख लगी है। भूख शरीर को लगती है, आप सिर्फ कांशस होते हैं कि शरीर को भूख लगी है। आप सिर्फ होश से भरते हैं कि शरीर को भूख लगी है। लेकिन चूंकि शरीर को आपने माना मैं, इसलिए आप कहते हैं कि मुझे भूख लगी है।
अब जब भूख लगे, तो आप गौर से देखें कि आपकी चेतना, जिसे पता चलता है कि भूख लगी है और आपका शरीर जहां भूख लगती है, ये एक चीजें नहीं हैं; दो चीजें हैं। जब पैर में चोट लगती है, तो आपको चोट नहीं लगती। आपको पता चलता है कि शरीर को चोट लगी है। लेकिन भाषा ने बड़ी भ्रांतियां खड़ी कर दी हैं। भाषा में संक्षिप्त, हम कहते हैं, मुझे चोट लगी है। अगर सिर्फ भाषा की भूल हो, तब तो ठीक है। लेकिन गहरे में चेतना की भूल हो जाती है।
जब आप जवान होते हैं, तो कहते हैं, मैं जवान हो गया। जब आप बूढ़े होते हैं, तो कहते हैं, मैं बूढ़ा हो गया। वही भूल है। वह जो भूख वाली भूल है, वह फैलती चली जाती है। आप जरा भी बूढ़े नहीं हुए। आंख बंद करके पता लगाएं कि चेतना बूढ़ी हो गई? चेतना पर कहीं भी बुढ़ापे की झुर्रियां न दिखाई पड़ेंगी। और चेतना पर कहीं भी बुढ़ापे का कोई झुकाव नहीं आया होगा। चेतना वैसी की वैसी है, जैसे बच्चे में थी। जन्म के वक्त जितनी ताजी थी, मरते वक्त भी उतनी ही ताजी होती है।
चेतना बासी होती ही नहीं। लेकिन शरीर बासा होता चला जाता है। शरीर जीर्ण-जर्जर होता चला जाता है। और हम चौबीस घंटे की पुरानी भ्रांति को दोहराए चले जाते हैं कि मैं शरीर हूं, इसलिए आदमी रोता है कि मैं बूढ़ा हो गया।
चेतना कभी बूढ़ी नहीं होती। और इसीलिए, अगर आपकी आंख बंद रखी जाएं, और आपको आपके शरीर का पता न चलने दिया जाए, और सालभर बीत जाए, दस साल बीत जाएं; आपको भोजन दे दिया जाए, लेकिन कभी दर्पण न देखने दिया जाए, तो क्या दस साल बाद आप सिर्फ भीतर चेतना के अनुभव से कह सकेंगे कि मैं दस साल बूढ़ा हो गया? आप न कह सकेंगे। आपको पता ही नहीं चलेगा।
इसीलिए कई दफे बड़ी भूलें हो जाती हैं। कई दफे भूलें हो जाती हैं। कई दफे किन्हीं गहरे क्षणों में बूढ़े भी बच्चों के जैसा व्यवहार कर जाते हैं। वह इसीलिए कर जाते हैं, और कोई कारण नहीं है। भीतर चेतना तो कभी बूढ़ी

होती नहीं, ऊपर की खोल ही बूढ़ी होती है। इसलिए कभी-कभी बूढ़े भी जवानों जैसा व्यवहार कर जाते हैं, उसका कारण वही है। भीतर चेतना कभी बूढ़ी नहीं होती। और वैज्ञानिक हार्मोन्स खोज ही लिए हैं, आज नहीं कल वे इंजेक्शन तैयार कर ही लेंगे कि एक बूढ़े आदमी को इंजेक्शन दे दिया, उसकी दस साल उम्र कम हो गई! एक इंजेक्शन दिया, उसकी बीस साल उम्र कम हो गई! शरीर के हार्मोन बदले जाएं, तो साठ साल का आदमी अपने को तीस साल का अनुभव जिस दिन करने लगेगा, उस दिन बड़ी मुश्किल होगी उसको। शरीर तो साठ साल का ही मालूम पड़ेगा। लेकिन हार्मोन के बदल जाने से उसकी आइडेंटिटी फिर बदलेगी। वह तीस साल जैसा व्यवहार करना शुरू कर देगा।
चेतना की कोई उम्र नहीं है। शरीर की जैसी उम्र हो जाए, चेतना अपने को वैसा ही मान लेती है। चेतना को सिर्फ होश है। और होश का हम दुरुपयोग कर रहे हैं। होश से हम दो काम कर सकते हैं। होश से हम चाहें तो शरीर के साथ अपने को एक मान सकते हैं; यह अज्ञान है। होश से हम चाहें तो शरीर से अपने को भिन्न मान सकते हैं; यही ज्ञान है।
इंद्रियों की आसक्ति से वही मुक्त होगा, जो शरीर से अपने को भिन्न मानने में समर्थ हो जाए।
तो उपाय करें, जिनसे आपके और शरीर के भिन्नता का बोध तीखा और प्रखर होता चला जाए। जब भूख लगे, तो कहें जोर से कि मेरे शरीर को भूख लगी है। और जब भोजन से तृप्ति हो जाए, तो कहें जोर से कि मेरा शरीर तृप्त हुआ। जब नींद आए, तो कहें कि मेरे शरीर को नींद आती है। और जब बीमार पड़ जाएं, तो कहें कि मेरा शरीर बीमार पड़ा। इसे जोर से कहें, ताकि आप भी इसे गौर से सुन सकें और इस अनुभव को गहरा करते चले जाएं। ज्यादा देर नहीं होगी कि आपको यह प्रतीति सघन होने लगेगी।
ये सारी प्रतीतियां सजेशंस हैं हमारे। हम कहते हैं, मैं शरीर हूं बार-बार, तो यह सजेशन बन जाता है, यह मंत्र बन जाता है। हम हिप्नोटाइज्ड हो जाते हैं। मानने लगते हैं, शरीर हो गए। कहें जोर से, तो हिप्नोटिज्म टूट जाएगा, सम्मोहन टूट जाएगा; डिहिप्नोटाइज्ड हो जाएंगे। और जान पाएंगे कि मैं शरीर नहीं हूं।
जिस दिन जान पाएंगे, मैं शरीर नहीं हूं, उसी दिन इंद्रियों की आसक्ति विदा हो जाएगी। और जिस दिन इंद्रियों की आसक्ति विदा होती है, उसी दिन कर्म में कोई आसक्ति नहीं रह जाती। क्या इसका यह मतलब है कि फिर भूख लगेगी, तो आप भोजन नहीं करेंगे? नहीं।
हां, इसका यह मतलब जरूर है कि फिर भूख लगेगी, तो ही आप भोजन करेंगे। और इसका यह मतलब जरूर है कि जब भूख समाप्त हो जाएगी, तब आप तत्काल भोजन बंद कर देंगे। इसका यह मतलब भी जरूर है कि तब आप ज्यादा भोजन न कर सकेंगे। और इसका यह मतलब भी जरूर है कि तब आप गलत भोजन भी न कर सकेंगे।
गलत, और ज्यादा, और व्यर्थ का भोजन जो हम लादे चले जाते हैं, वह हमारी इंद्रियों की आसक्ति से पैदा होता है, शरीर की भूख से नहीं। मांसाहार किए चले जाते हैं, शराब पीए चले जाते हैं, कुछ भी खाए चले जाते हैं, उसका कारण भूख नहीं है। उसका कारण इंद्रियों की आसक्ति है।
हां, इंद्रियों की आसक्ति चली जाए, तो भूख तो लगेगी; और मैं आपसे कहूं
कि और भी शुद्धतर भूख की प्रतीति होगी। और भी शुद्धतर! लेकिन तब आप भोजन तभी कर सकेंगे, जब भूख लगेगी। अभी तो जब भोजन दिख जाए, तभी भूख लग जाती है। भोजन न भी दिखे, तो मन में ही भोजन की कल्पना चलती है और भूख लग जाती है। अभी तो हमारी अधिक भूख फैलेसियस है, धोखे की है।
जो लोग शरीरशास्त्र का अध्ययन करते हैं, वे कहते हैं कि अधिक लोग, भूख नहीं लगती है, तब खा लेते हैं; और उसी की वजह से हजारों बीमारियां पैदा होती हैं। समय से खा लेते हैं, कि बस हो गया वक्त भोजन का, तो भोजन कर लेते हैं। फिर स्वाद से खा लेते हैं, क्योंकि अच्छा लग रहा है, स्वादिष्ट लग रहा है, तो और डाले चले जाते हैं! और कभी इस बात की फिक्र नहीं करते कि भूख का क्या हाल है!
भूख से कोई संबंध हमारे भोजन का नहीं रह गया है। भोजन एक मानसिक विलास
बन गया है। भूख एक शारीरिक जरूरत है, भूख एक आवश्यकता है। भोजन एक वासना बन

गई है। हमने भूख के अतिरिक्त भी भोजन में रस पैदा कर लिए हैं, वे जो इंद्रियों की आसक्ति से आते हैं।
सभी तरफ ऐसा हुआ है। कामवासना के संबंध में भी ऐसा हुआ है। पशु भी हमसे ज्यादा संयत व्यवहार करते हैं कामवासना में। पीरियाडिकल है। एक अवधि होती है, तब पशु कामातुर होता है। लेकिन मनुष्य अकेला पशु है पृथ्वी पर, जो चौबीस घंटे, सालभर कामातुर होता है। चौबीस घंटे! पशु जब कामातुर होता है, तब मादा नर को या नर मादा को खोजता है। मनुष्य अलग है। उसको नारी दिख जाए, पुरुष दिख जाए, कामातुर हो जाता है। उलटा है। कामातुरता पहले आ जाती है पशु में, तब खोज शुरू होती है। मनुष्य को पहले आब्जेक्ट दिखाई पड़ जाए, विषय दिखाई पड़ जाए, और कामातुरता पैदा हो जाती है।
मेरे एक मित्र बड़े शिकारी हैं, बहुत सिंहों और बहुत शेरों का शिकार किया है। उनके घर मैं मेहमान था। उनसे मैं पूछने लगा कि कभी आपने किसी शेर को या सिंह को भोजन कर लेने के बाद भोजन में उत्सुक पाया? उन्होंने कहा, कभी नहीं। भोजन पर हम बैठे थे। उनके भोजन को देखकर ही मैंने उनसे यह पूछा था। मित्र के भोजन को देखकर! वे खाए ही चले जा रहे थे। उनको देखकर ही मैंने पूछा था। उनको फिर भी ख्याल नहीं आया।
उन्होंने कहा, आप यह क्यों पूछते हैं? मैंने कहा, मैं इसलिए पूछता हूं
कि मैं देख रहा हूं कि भोजन की जरूरत बहुत देर पहले पूरी हो गई है। वैसे भी आपके शरीर में इतना इकट्ठा है कि महीने दो महीने भोजन न करें, तो कोई भूख नहीं लगेगी। लेकिन आप खाए चले जा रहे हैं! इसलिए मैं आपसे पूछता हूं कि किसी शेर को आपने भोजन करने के बाद उत्सुक देखा? उन्होंने कहा कि नहीं देखा। भोजन करने के बाद तो शेर के पास बकरी भी खड़ी रहे, तो वह देखता भी नहीं। लेकिन आदमी के पास मिठाई रखी रहे, तो न भी देखे फिर भी देखता रहता है। न देखे फिर भी देखता रहता है!
इंद्रियासक्ति शरीर को विकृत व्यवस्था दे जाती है। ऐसा व्यक्ति, जिसकी इंद्रिय की आसक्ति नहीं है, उसको भी भूख लगेगी। लेकिन भूख शुद्ध होगी। और भूख वहीं तक होगी, जहां तक आवश्यकता है। और आवश्यकताएं बहुत कम हैं। वासनाएं अनंत हैं; आवश्यकताएं बड़ी सीमित हैं। स्वाद का कोई अंत नहीं। भोजन तो बहुत थोड़ा काफी है।
और जीवन की समस्त दिशाओं में ऐसा ही परिणाम होगा। सब तरफ शुद्धतम आवश्यकताएं रह जाएंगी। कुछ आवश्यकताएं ऐसी हैं, जो व्यक्ति की आवश्यकताएं ही नहीं हैं। उनसे व्यक्ति मुक्त हो जाएगा। जैसे सेक्स। यह बहुत मजे की बात है कि भोजन आपके शरीर की आवश्यकता है, लेकिन आपने कभी सोचा न होगा कि कामवासना आपकी आवश्यकता नहीं है। कामवासना समाज की आवश्यकता है। अगर आप भोजन न करें, तो आप मर जाएंगे। और अगर आप में कामवासना न रहे, तो संतति मर जाएगी, आगे समाज की धारा मर जाएगी। सेक्स जो है, बायोलाजिकल है। आपकी आवश्यकता नहीं है उतनी, जितनी प्रकृति आपसे किसी को पैदा करवा लेगी, इसके पहले कि आप मरें। वह प्रकृति की जरूरत है।
और जो व्यक्ति यह जान लेता है कि मैं इंद्रियों के पार हूं, वह यह भी जान लेता है कि मैं प्रकृति के पार हूं। वह प्रकृति के चंगुल और जाल के बाहर हो जाता है।
तो जैसे भोजन तो जारी रहेगा, लेकिन काम तिरोहित हो जाएगा। यह मैंने फर्क करने को कहा कि हमारी आवश्यकताओं में भी भेद हैं। जिस व्यक्ति की इंद्रिय-आसक्ति मिट गई, उसकी भूख शुद्ध होकर सीमित, स्वाभाविक हो जाएगी। उसका काम शुद्ध होकर राम की ओर गतिमान हो जाएगा। उसकी कामवासना विलीन हो जाएगी। क्योंकि वह व्यक्ति की जरूरत ही नहीं है, वह प्रकृति की जरूरत है। आप मर जाएं, इसके पहले प्रकृति आपसे इतना काम ले लेना चाहती है कि अपनी जगह किसी को छोड़ जाएं। बस, उससे आपका कोई प्रयोजन नहीं है। वह आपकी जरूरत नहीं है गहरे में।
लेकिन इंद्रिय से भरा हुआ मन उलटा सोचेगा। वह सोचेगा, एक बार भूखा रह जाए, राजी हो जाएगा, लेकिन कामवासना से रुकने को राजी नहीं रहेगा। भूख छोड़ देगा, धन छोड़ देगा, स्वास्थ्य छोड़ देगा, लेकिन कामवासना के पीछे पड़ा रहेगा। वे विकृत हो गई इंद्रियां हैं।

जैसे ही इंद्रियां प्रकृतिस्थ होंगी, सुकृत होंगी, सहज होंगी, वैसे
ही जो व्यक्ति की आवश्यकता है, वह सरल हो जाएगी। और जो व्यक्ति की आवश्यकता नहीं है, वह तिरोहित हो जाएगी।
ऐसे व्यक्ति के कर्म का क्या होगा?
कर्म के प्रति उसकी आसक्ति खो जाएगी, लेकिन कर्म बंद नहीं होगा। और जब कर्म के प्रति आसक्ति खोती है, तो जो गलत कर्म हैं, वे विदा हो जाते हैं; और जो सही कर्म हैं, वे और भी बड़ी ऊर्जा से सक्रिय हो जाते हैं। धीरे-धीरे व्यक्ति के जीवन में शुभ कर्म रह जाते हैं, अशुभ कर्म तिरोहित हो जाते हैं।
आज इतना ही।
लेकिन पांच मिनट रुकेंगे। पांच मिनट और। फिर हम रात बात करेंगे आगे सूत्रों पर। पांच मिनट संन्यासी कीर्तन करेंगे। आपमें से भी जो सम्मिलित होना चाहें, वे सम्मिलित हो सकते हैं। जो बैठे हैं, वे भी इतना तो साथ दें कि तालियां बजाएं, उनका गीत दोहराएं। पांच मिनट उनके भजन का प्रसाद ले लें, फिर हम विदा हो जाएंगे।

गीता दर्शन, भाग तीन
गीता दर्शन अध्याय 6
तीसरा प्रवचन

मालकियत की घोषणा

उद्धरेदात्मनाऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।। 5।।
और यह योगारूढ़ता कल्याण में हेतु कही है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि अपने द्वारा आपका संसार समुद्र से उद्धार करे और अपने आत्मा को अधोगति में न पहुंचावे। क्योंकि यह जीवात्मा आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है अर्थात और कोई दूसरा शत्रु या मित्र नहीं है।

योग परम मंगल है। परम मंगल इस अर्थ में कि केवल योग के ही माध्यम से जीवन के सत्य की और जीवन के आनंद की उपलब्धि है। परम मंगल इस अर्थ में भी कि योग की दिशा में गति करता व्यक्ति अपना मित्र बन जाता है। और योग के विपरीत दिशा में गति करने वाला व्यक्ति अपना ही शत्रु सिद्ध होता है। कृष्ण कह रहे हैं अर्जुन से, उचित है, समझदारी है, बुद्धिमत्ता है इसी में कि व्यक्ति अपनी आत्मा का अधोगमन न करे, ऊर्ध्वगमन करे।
और ये दोनों बातें संभव हैं। इस बात को ठीक से समझ लेना जरूरी है। व्यक्ति की आत्मा स्वतंत्र है नीचे यात्रा करने के लिए भी, ऊपर यात्रा करने के लिए भी। स्वतंत्रता में सदा ही खतरा भी है। स्वतंत्रता का अर्थ ही होता है, अपने अहित की भी स्वतंत्रता। अगर कोई आपसे कहे कि आप सिर्फ वही करने में स्वतंत्र हैं, जो आपके हित में है; वह करने में आप स्वतंत्र नहीं हैं, जो आपके हित में नहीं है--तो आपकी स्वतंत्रता का कोई भी अर्थ नहीं होगा। कोई अगर मुझसे कहे कि मैं स्वतंत्र हूं सिर्फ धर्म करने में और अधर्म करने के लिए स्वतंत्र नहीं हूं, तो उस स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं होगा; वह परतंत्रता का ही एक रूप है।
मनुष्य की आत्मा स्वतंत्र है। और जब भी हम कहते हैं, कोई स्वतंत्र है,
तो दोनों दिशाओं की स्वतंत्रता उपलब्ध हो जाती है--बुरा करने की भी, भला करने की भी। दूसरे के साथ बुरा करने की स्वतंत्रता, अपने साथ बुरा करने की स्वतंत्रता बन जाती है। और दूसरे के साथ भला करने की स्वतंत्रता, अपने साथ भला करने की स्वतंत्रता बन जाती है।
मनुष्य चाहे तो अंतिम नर्क के दुख तक यात्रा कर सकता है; और चाहे--वही मनुष्य, ठीक वही मनुष्य, जो अंतिम नर्क को छूने में समर्थ है--चाहे तो मोक्ष के अंतिम सोपान तक भी यात्रा कर सकता है।
ये दोनों दिशाएं खुली हैं। और इसीलिए मनुष्य अपना मित्र भी हो सकता
है और अपना शत्रु भी। हम में से बहुत कम लोग हैं जो अपने मित्र होते हैं, अधिक तो अपने शत्रु ही सिद्ध होते हैं। क्योंकि हम जो भी करते हैं, उससे अपना ही आत्मघात होता है, और कुछ भी नहीं।
किसे हम कहें कि अपना मित्र है? और किसे हम कहें कि अपना शत्रु है?
एक छोटी-सी परिभाषा निर्मित की जा सकती है। हम ऐसा कुछ भी करते हों, जिससे दुख फलित होता है, तो हम अपने मित्र नहीं कहे जा सकते। स्वयं के लिए दुख के बीज बोने वाला व्यक्ति अपना शत्रु है। और हम सब स्वयं के लिए दुख के बीज बोते हैं।
निश्चित ही, बीज बोने में और फसल काटने में बहुत वक्त लग जाता है। इसलिए हमें याद भी नहीं रहता कि हम अपने ही बीजों के साथ की गई मेहनत की फसल काट रहे हैं। अक्सर फासला इतना हो जाता है कि हम सोचते हैं, बीज तो हमने बोए थे अमृत के, न मालूम कैसा दुर्भाग्य कि फल जहर के और विष के उपलब्ध हुए हैं!
लेकिन इस जगत में जो हम बोते हैं, उसके अतिरिक्त हमें कुछ भी न मिलता है, न मिलने का कोई उपाय है।
हम वही पाते हैं, जो हम अपने को निर्मित करते हैं। हम वही पाते हैं, जिसकी हम तैयारी करते हैं। हम वहीं पहुंचते हैं, जहां की हम यात्रा करते

हैं। हम वहां नहीं पहुंच सकते, जहां की हमने यात्रा ही न की हो। यद्यपि हो सकता है, यात्रा करते समय हमने अपने मन में कल्पना की मंजिल कोई और बनाई हो। रास्तों को इससे कोई प्रयोजन नहीं है।
मैं नदी की तरफ जा रहा हूं। मन में सोचता हूं कि नदी की तरफ जा रहा हूं। लेकिन अगर बाजार की तरफ चलने वाले रास्ते पर चलूंगा, तो मैं कितना ही सोचूं कि मैं नदी की तरफ जा रहा हूं, मैं पहुंचूंगा बाजार। सोचने से नहीं पहुंचता है आदमी; किन रास्तों पर चलता है, उनसे पहुंचता है। मंजिलें मन में तय नहीं होतीं, रास्तों से तय होती हैं।
आप कोई भी सपना देखते रहें। अगर आपने बीज नीम के बो दिए हैं, तो सपने
आप शायद ले रहे हों कि कोई स्वादिष्ट मधुर फल लगेंगे। आपके सपनों से फल नहीं निकलते। फल आपके बोए गए बीजों से निकलते हैं। इसलिए आखिर में जब नीम के कड़वे फल हाथ में आते हैं, तो शायद आप दुखी होते हैं और पछताते हैं। सोचते हैं, मैंने तो बीज बोए थे अमृत के, फल कड़वे कैसे आए?
ध्यान रहे, फल ही कसौटी है, परीक्षा है बीज की। फल ही बताता है कि बीज आपने कैसे बोए थे। आपने कल्पना क्या की थी, उससे बीजों को कोई प्रयोजन नहीं है।
हम सभी आनंद लाना चाहते हैं जीवन में, लेकिन आता कहां है आनंद! हम सभी शांति चाहते हैं जीवन में, लेकिन मिलती कहां है शांति! हम सभी चाहते हैं कि सुख, महासुख बरसे, पर बरसता कभी नहीं है।
तो इस संबंध में एक बात इस सूत्र से समझ लेनी जरूरी है कि हमारी चाह से नहीं आते फल; हम जो बोते हैं, उससे आते हैं।
हम चाहते कुछ हैं, बोते कुछ हैं। हम बोते जहर हैं और चाहते अमृत हैं! फिर जब फल आते हैं, तो जहर के ही आते हैं, दुख और पीड़ा के ही आते हैं, नर्क ही फलित होता है।
हम सब अपने जीवन को देखें, तो ख्याल में आ सकता है। जीवनभर चलकर हम सिवाय दुख के गड्ढों के और कहीं भी नहीं पहुंचते मालूम पड़ते हैं। रोज दुख घना होता चला जाता है। रोज रात कटती नहीं, और बड़ी होती चली जाती है। रोज मन पर और संताप के कांटे फैलते चले जाते हैं। फूल आनंद के कहीं खिलते हुए मालूम नहीं पड़ते। पैरों में पत्थर बंध जाते हैं दुख के। पैर नृत्य नहीं कर पाते हैं उस खुशी में, जिस खुशी की हम तलाश में हैं। फिर कहीं न कहीं हम--हम ही--क्योंकि और कोई नहीं है; हम ही कुछ गलत बो लेते हैं। उस गलत बोने में ही हम अपने शत्रु सिद्ध होते हैं। बीज बोते वक्त ख्याल रखना, क्या बो रहे हैं।
बहुत हैरानी की बात है, एक आदमी क्रोध के बीज बोए, और शांति पाना चाहे!
और एक आदमी घृणा के बीज बोए, और प्रेम की फसल काटना चाहे! और एक आदमी चारों तरफ शत्रुता फैलाए, और चाहे कि सारे लोग उसके मित्र हो जाएं! और एक आदमी सब की तरफ गालियां फेंके, और चाहे कि शुभाशीष सारे आकाश से उसके ऊपर बरसने लगें!
पर आदमी ऐसी ही असंभव चाह करता है, दि इंपासिबल डिजायर! मैं गाली दूं
और दूसरा मुझे आदर दे जाए, ऐसी ही असंभव कामना हमारे मन में बैठी चलती है। मैं दूसरे को घृणा करूं और दूसरे मुझे प्रेम कर जाएं। मैं किसी पर भरोसा न करूं, और सब मुझ पर भरोसा कर लें। मैं सबको धोखा दूं, और मुझे कोई धोखा न दे। मैं सबको दुख पहुंचाऊं, लेकिन मुझे कोई दुख न पहुंचाए। यह असंभव है। जो हम बोएंगे, वह हम पर लौटने लगेगा।
और जीवन का सूत्र है कि जो हम फेंकते हैं, वही हम पर वापस लौट आता है। चारों ओर से हमारी ही फेंकी गई ध्वनियां प्रतिध्वनित होकर हमें मिल जाती हैं। देर लगती है। जाती है ध्वनि; टकराती है बाहर की दिशाओं से; वापस लौटती है। वक्त लग जाता है। जब तक लौटती है, तब तक हमें ख्याल भी नहीं रह जाता कि हमने जो गाली फेंकी थी, वही वापस लौट रही है।
बुद्ध का एक शिष्य मौग्गलायन एक रास्ते से गुजर रहा है। उसके साथ दस-पंद्रह संन्यासी और हैं। जोर से पैर में पत्थर लग जाता है रास्ते पर, खून बहने लगता है। मौग्गलायन आकाश की तरफ हाथ जोड़कर किसी आनंद-भाव में लीन हो जाता है। उसके चारों तरफ वे पंद्रह भिक्षु हैरानी में खड़े रह जाते हैं।

मौग्गलायन जब अपने ध्यान से वापस लौटता है, तो वे उससे पूछते हैं, आप क्या कर रहे थे? पैर में चोट लगी, पत्थर लगा, खून बहा, और आप कुछ ऐसे हाथ जोड़े थे, जैसे किसी को धन्यवाद दे रहे हों! मौग्गलायन ने कहा, बस, यह एक ही मेरा विष का बीज और बाकी रह गया था। मारा था किसी को पत्थर कभी, आज उससे छुटकारा हो गया। आज नमस्कार करके धन्यवाद दे दिया है प्रभु को कि अब मेरे कुछ भी बोए हुए बीज न बचे। यह आखिरी फसल समाप्त हो गई।
लेकिन अगर आपको रास्ते पर चलते वक्त पत्थर पैर में लग जाए, तो इसकी बहुत कम संभावना है कि आप ऐसा सोचें कि किसी बोए हुए बीज का फल हो सकता है। ऐसा नहीं सोच पाएंगे। संभावना यही है कि गली या रास्ते पर पड़े हुए पत्थर को भी आप एक गाली जरूर देंगे। पत्थर को भी! और कभी ख्याल भी न करेंगे कि पत्थर को दी गई गाली भी फिर बीज बो रहे हैं आप। पत्थर को दी गई गाली भी बीज बनेगी। सवाल यह नहीं है, किसको गाली दी। सवाल यह है कि आपने गाली दी। वह वापस लौटेगी। यह बहुत महत्वपूर्ण नहीं है कि किसको गाली दी। वह गाली वापस लौटेगी।
सुना है मैंने कि जीसस के पास एक आदमी आया। गांव का साधारण ग्रामीण किसान है। बैलों को गाली देने में बहुत ही कुशल है अपनी बैलगाड़ी में जोतकर। जीसस निकलते हैं गांव के रास्ते से। वह आदमी अपने बैलों को बेहूदी गालियां दे रहा है। बड़े आंतरिक संबंध बना रहा है गालियों से। जीसस उसे रोकते हैं और कहते हैं कि पागल, तू यह क्या कर रहा है! तो वह आदमी कहता है कि कोई बैल मुझे गाली वापस तो नहीं लौटा देंगे। तो क्या मेरा बिगड़ेगा?
वह आदमी ठीक कहता है। हमारा गणित बिल्कुल ऐसा ही है। जो आदमी गाली वापस नहीं लौटा सकता, उसे गाली देने में हर्ज क्या है? इसलिए अपने से कमजोर को देखकर हम सब गाली देते हैं। कभी तो हम बेवक्त भी गाली देते हैं, जब कि कोई जरूरत भी न हो। कमजोर दिखा, कि हमारा दिल मचल आता है कि थोड़ा इसको सता लो।
जीसस ने कहा कि बैलों को गाली तू दे रहा है, अगर वे गाली लौटा सकते, तो
कम खतरा था, क्योंकि निपटारा अभी हो जाता। लेकिन चूंकि वे गाली नहीं लौटा सकते, लेकिन गाली तो लौटेगी। तू महंगे सौदे में पड़ेगा। यह गाली देना छोड़। जीसस की तरफ उस आदमी ने देखा; जीसस की आंखों को देखा, उनके आनंद को, उनकी शांति को। उसने उनके पैर छुए और कहा कि मैं कसम लेता हूं कि अब मैं इन बैलों को गाली नहीं दूंगा।
जीसस दूसरे गांव चले गए। दो-चार दिन उस आदमी ने बड़ी मेहनत से अपने को रोका। लेकिन कसमों से दुनिया में कोई रुकावटें नहीं होतीं। कसम से कहीं कोई रुकावट होती है? समझ से रुकावट होती है। दो-चार दिन रोका अपने को, जबरदस्ती। खा ली थी कसम ईसा के प्रभाव में। दो-चार दिन में प्रभाव क्षीण हुआ, आदमी अपनी जगह वापस लौट आया। उसने कहा कि छोड़ो भी, ऐसे तो हम मुसीबत में पड़ जाएंगे। बैलगाड़ी चलाना मुश्किल हो गया है। हिसाब बैलगाड़ी चलाने का रखें कि गाली न देने का रखें! बैलों को जोतें कि अपने को जोते रहें! बैलों को सम्हालें कि खुद को सम्हालें! यह तो एक बहुत मुसीबत हो गई। गाली उसने वापस देनी शुरू कर दी। चार दिन जितनी रोकी थी, उतनी एक दिन में निकाल ली। रफा-दफा हुआ। मामला हल्का हुआ। मन उसका शांत हुआ।
कोई तीन-चार महीने बाद जीसस उस गांव से वापस निकल रहे हैं। उसको तो पता भी नहीं था कि यह आदमी फिर मिल जाएगा रास्ते पर। वह धुआंधार गालियां दे रहा है बैलों को। जीसस ने खड़े होकर राह के किनारे से कहा, मेरे भाई! उसने देखा जीसस को, उसने कहा बैलों से, देखो बैल, ये मैंने तुम्हें गालियां बताईं जैसी कि मैं तुम्हें पहले दिया करता था। बैलों से बोला, ये मैंने तुम्हें गालियां दीं जैसी कि मैं तुम्हें पहले दिया करता था। अब मेरे प्यारे बेटो, जरा तेजी से चलो।
जीसस ने कहा कि तू बैलों को ही धोखा नहीं दे रहा है, तू मुझे भी धोखा दे रहा है। और तू मुझे धोखा दे, इससे कुछ बहुत हर्जा नहीं है; तू अपने को धोखा दे रहा है। अंतिम धोखा तो खुद पर ही गिर जाता है। जीसस ने कहा, हो सकता है, मैं दुबारा इस गांव फिर कभी न आऊं। मैं माने लेता हूं कि तू बैलों को गालियां नहीं दे रहा था, सिर्फ बैलों को पुरानी याद दिला रहा था। लेकिन

किसलिए याद दिला रहा था! तू मुझे धोखा दे कि तू बैलों को धोखा दे, इसका बहुत अर्थ नहीं है। लेकिन तू अपने को ही धोखा दे रहा है।
जीवन में जब भी हम कुछ बुरा कर रहे हैं, तो हम किसी दूसरे के साथ कर रहे हैं, यह भ्रांति है आपकी। प्राथमिक रूप से हम अपने ही साथ कर रहे हैं। क्योंकि अंतिम फल हमें भोगने हैं। वह जो भी हम बो रहे हैं, उसकी फसल हमें काटनी है। इंच-इंच का हिसाब है। इस जगत में कुछ भी बेहिसाब नहीं जाता है।
अपने ही शत्रु हो जाते हैं हम, कृष्ण कहते हैं। उस क्षण में हम अपने शत्रु हो जाते हैं, जब हम कुछ ऐसा करते हैं, जिससे हम अपने को ही दुख में डालते हैं; अपने ही दुख में उतरने की सीढ़ियां निर्मित करते हैं।
तो ठीक से देख लेना, जो आदमी अपना शत्रु है, वही आदमी अधार्मिक है। अधार्मिक वह है, जो अपना शत्रु है। और जो अपना शत्रु है, वह किसी का मित्र तो कैसे हो सकेगा? जो अपना भी मित्र नहीं, वह किसका मित्र हो सकेगा! जो अपने लिए ही दुख के आधार बना रहा है, वह सबके लिए दुख के आधार बना देगा। पहला पाप अपने साथ शत्रुता है। फिर उसका फैलाव होता है। फिर अपने निकटतम लोगों के साथ शत्रुता बनती है, फिर दूरतम लोगों के साथ। फिर जहर फैलता चला जाता है। हमें पता भी नहीं चलता। जैसे कि झील में कोई, शांत झील में, एक पत्थर फेंक दे। पड़ती है चोट, पत्थर तो नीचे बैठ जाता है क्षणभर में, लेकिन झील की सतह पर उठी हुई लहरें दूर-दूर तक यात्रा पर निकल जाती हैं। पत्थर तो बैठ जाता है कभी का, लेकिन लहरें चलती चली जाती हैं अनंत तक।
ऐसे ही हम जो करते हैं, हम तो करके चुक भी जाते हैं। आपने एक गाली दे दी। बात खत्म हो गई। फिर आप गीता पढ़ने लगे। लेकिन वह गाली की जो रिपल्स, जो तरंगें पैदा हुईं, वे चल पड़ीं। वे न मालूम कितने दूर के छोरों को छुएंगी।
और जितना अहित उस गाली से होगा, उतने सारे अहित के लिए आप जिम्मेवार हो गए। आप कहेंगे, कितना अहित हो सकता है एक गाली से? अकल्पनीय अहित हो सकता है। और जितना अहित हो जाएगा इस विश्व के तंत्र में, उतने के लिए आप जिम्मेवार हो जाएंगे। और कौन जिम्मेवार होगा? आपने ही उठाईं वे लहरें। आपने ही पैदा किया वह सब। आपने ही बोया बीज। अब वह चल पड़ा। अब वह दूर-दूर तक फैल जाएगा। एक छोटी-सी दी गई गाली से क्या-क्या हो सकता है! अगर आपने अकेले में दी हो और किसी ने न सुनी हो, तब तो शायद आप सोचेंगे कि कुछ भी नहीं होगा इसका परिणाम।
लेकिन इस जगत में कोई भी घटना निष्परिणामी नहीं है। उसके परिणाम होंगे ही। कठिन मालूम पड़ेगा। किसी को गाली दी हो, उसका दिल दुखाया हो, तब तो हमने कोई शत्रुता खड़ी की है। लेकिन अंधेरे में गाली दे दी हो, तो उससे कोई शत्रुता पैदा हो सकती है? उससे भी पैदा होती है।

आप बहुत सूक्ष्म तरंगें पैदा करते हैं अपने चारों ओर। वे तरंगें फैलती हैं। उन तरंगों के प्रभाव में जो लोग भी आएंगे, वे गलत रास्ते पर धक्का खाएंगे। उन तरंगों के प्रभाव में गलत रास्ते पर धक्का खाएंगे।
अभी इस पर बहुत काम चलता है, सूक्ष्मतम तरंगों पर। और ख्याल में आता
है कि अगर गलत लोग एक जगह इकट्ठे हों, सिर्फ चुपचाप बैठे हों, कुछ न कर रहे हों, सिर्फ गलत हों, और आप उनके पास से गुजर जाएं, तो आपके भीतर जो गलत हिस्सा है, वह ऊपर आ जाता है। और जो ठीक हिस्सा है, वह नीचे दब जाता है। दोनों हिस्से आपके भीतर हैं। अगर कुछ अच्छे लोग बैठे हों एक जगह, प्रभु का स्मरण करते हों, कि प्रभु का गीत गाते हों, कि किन्हीं सदभावों के फूलों की सुगंध में जीते हों, कि सिर्फ मौन ही बैठे हों। जब आप उनके पास से गुजरते हैं--वही आप, जो गलत लोगों के पास से गुजरे थे, और आपका गलत हिस्सा ऊपर आ गया था--जब आप इन लोगों के पास से गुजरते हैं, तो दूसरी घटना घटती है। आपका गलत हिस्सा नीचे दब जाता है; आपका श्रेष्ठ हिस्सा ऊपर आ जाता है। आपकी संभावनाओं में इतने सूक्ष्मतम अंतर होते हैं। और हम चौबीस घंटे
जो कर रहे हैं, उसका कोई हिसाब नहीं रखता कि हम क्या कर रहे हैं। एक छोटा-सा गलत बोला गया शब्द कितने दूर तक कांटों को बो जाएगा, हमें कुछ पता नहीं है। बुद्ध अपने भिक्षुओं से कहते थे कि तुम चौबीस घंटे, राह पर तुम्हें कोई दिखे, तो उसके मंगल की कामना करना। वृक्ष भी मिल जाए, तो उसके मंगल की कामना करके उसके पास से गुजरना। पहाड़ भी दिख जाए, तो मंगल की कामना करके

उसके निकट से गुजरना। राहगीर दिख जाए अनजान, तो मंगल की कामना करके उसके पास से गुजरना।
एक भिक्षु ने पूछा, इससे क्या फायदा?
बुद्ध ने कहा कि इसके दो फायदे हैं। पहला तो यह कि तुम्हें गाली देने
का अवसर न मिलेगा; तुम्हें बुरा ख्याल करने का अवसर न मिलेगा। तुम्हारी शक्ति नियोजित हो जाएगी मंगल की दिशा में। और दूसरा फायदा यह कि जब तुम किसी के लिए मंगल की कामना करते हो, तो तुम उसके भीतर भी रिजोनेंस, प्रतिध्वनि पैदा करते हो। वह भी तुम्हारे लिए मंगल की कामना से भर जाता है।
अगर इस मुल्क ने राह पर चलते हुए अनजान आदमी को भी राम-राम करने की प्रक्रिया बनाई थी--वह शायद दुनिया में कहीं नहीं बनाई जा सकी। अंग्रेजी में या पश्चिम के मुल्कों में अगर वे कहते हैं गुड मार्निंग, तो वह शब्द बहुत साधारण है, सेकुलर है। उसका कोई बहुत मतलब नहीं है, सुबह अच्छी है। लेकिन इस मुल्क ने हजारों साल के अनुभव के बाद एक शब्द खोजा था नमस्कार के लिए, वह था, राम। राह पर कोई मिला है और हमने कहा, जय राम! उस आदमी से कोई मतलब नहीं है, जय राम जी का कोई मतलब नहीं है। यह राम का स्मरण है। उस आदमी को देखकर हमने प्रभु का स्मरण किया।
जो ठीक से नमस्कार करना जानते हैं, वे सिर्फ उच्चारण नहीं करेंगे, वे
उस आदमी में राम की प्रतिमा को भी देखकर गुजर जाएंगे। उन्होंने उस आदमी को देखकर प्रभु को स्मरण किया। उस आदमी की मौजूदगी प्रभु के स्मरण की घटना बन गई। इस मौके को छोड़ा नहीं; इस मौके पर एक शुभ कामना पैदा की गई, प्रभु के स्मरण की घड़ी पैदा की गई।
और हो सकता है, वह आदमी शायद राम को मानता भी न हो, जानता भी न हो, लेकिन उत्तर में वह भी कहेगा, जय राम। उसके भीतर भी कुछ ऊपर आएगा। और अगर राह से, पुराने गांव की राह से गुजरते हैं, तो राह पर पच्चीस दफा जय राम कर लेना पड़ता है।
जीवन बहुत छोटी-छोटी घटनाओं से निर्मित होता है।
मंगल की कामना या प्रभु का स्मरण, आपके भीतर जो श्रेष्ठ है, उसको ऊपर लाता है; और दूसरे के भीतर जो श्रेष्ठ है, उसे भी ऊपर लाता है। जब आप किसी के सामने दोनों हाथ जोड़कर सिर झुका देते हैं, तो आप उसको भी झुकने का एक अवसर देते हैं। और झुकने से बड़ा अवसर इस जगत में दूसरा नहीं है, क्योंकि झुका हुआ सिर कुछ भी बुरा नहीं सोच पाता। झुका हुआ सिर गाली नहीं दे पाता। गाली देने के लिए अकड़ा हुआ सिर चाहिए।
और कभी आपने ख्याल किया हो या न किया हो, लेकिन अब आप ख्याल करना। जब किसी को हृदयपूर्वक नमस्कार करके सिर झुकाएं और कल्पना भी कर सकें अगर कि परमात्मा दूसरी तरफ है, तो आप अपने में भी फर्क पाएंगे और उस आदमी में भी फर्क पाएंगे। वह आदमी आपके पास से गुजरा, तो आपने उसको पारस का काम किया, उसके भीतर कुछ आपने सोना बना दिया। और जब आप किसी के लिए पारस का काम करते हैं, तो दूसरा भी आपके लिए पारस बन जाता है।
जीवन संबंध है, रिलेशनशिप है। हम संबंधों में जीते हैं। हम अपने चारों तरफ अगर पारस का काम करते हैं, तो यह असंभव है कि बाकी लोग हमारे लिए पारस न हो जाएं। वे भी हो जाते हैं।
अपना मित्र वही है, जो अपने चारों ओर मंगल का फैलाव करता है, जो अपने चारों ओर शुभ की कामना करता है, जो अपने चारों ओर नमन से भरा हुआ है, जो अपने चारों ओर कृतज्ञता का ज्ञापन करता चलता है।
और जो व्यक्ति दूसरों के लिए मंगल से भरा हो, वह अपने लिए अमंगल से कैसे भर सकता है! जो दूसरों के लिए भी सुख की कामना से भरा हो, वह अपने लिए दुख की कामना से नहीं भर सकता। अपना मित्र हो जाता है। और अपना मित्र हो जाना बहुत बड़ी घटना है। जो अपना मित्र हो गया, वह धार्मिक हो गया। अब वह ऐसा कोई भी काम नहीं कर सकता, जिससे स्वयं को दुख मिले।
तो अपना हिसाब रख लेना चाहिए कि मैं ऐसे कौन-कौन से काम करता हूं, जिससे मैं ही दुख पाता हूं। दिन में हम हजार काम कर रहे हैं; जिनसे हम दुख पाते हैं, हजार बार पा चुके हैं। लेकिन कभी हम ठीक से तर्क नहीं समझ पाते हैं जीवन का कि हम इन कामों को करके दुख पाते हैं। वही बात, जो आपको हजार

बार मुश्किल में डाल चुकी है, आप फिर कह देते हैं। वही व्यवहार, जो आपको हजार बार पीड़ा में धक्के दे चुका है, आप फिर कर गुजरते हैं। वही सब दोहराए चले जाते हैं यंत्र की भांति।
जिंदगी एक पुनरुक्ति से ज्यादा नहीं मालूम पड़ती, जैसा हम जीते हैं, एक मैकेनिकल रिपीटीशन। वही भूलें, वही चूकें। नई भूल करने वाले आविष्कारी आदमी भी बहुत कम हैं। बस, पुरानी भूलें ही हम किए चले जाते हैं। इतनी बुद्धि भी नहीं कि एकाध नई भूल करें। पुराना; कल किया था वही; परसों भी किया था वही! आज फिर वही करेंगे। कल फिर वही करेंगे।
इसके प्रति सजग होंगे, अपनी शत्रुता के प्रति सजग होंगे, तो अपनी मित्रता का आधार बनना शुरू होगा।
कृष्ण या बुद्ध या महावीर या क्राइस्ट जैसे लोग अपने लिए, अपने लिए ही इतने आनंद का रास्ता बनाते हैं, जिसका कोई हिसाब नहीं है। ऊपर से हमें लगता है कि ये लोग बिल्कुल त्यागी हैं; लेकिन मैं आपसे कहता हूं, इनसे ज्यादा परम स्वार्थी और कोई भी नहीं है।
हम त्यागी कहे जा सकते हैं, क्योंकि हमसे ज्यादा मूढ़ कोई भी नहीं है। हम, जो भी महत्वपूर्ण है, उसका त्याग कर देते हैं; और जो व्यर्थ है, उस कचरे को इकट्ठा कर लेते हैं। और ये बहुत होशियार लोग हैं। ये, जो व्यर्थ है, उस सबको छोड़ देते हैं; जो सार्थक है, उसको बचा लेते हैं।
जीसस एक गांव के बाहर ठहरे हुए हैं। सांझ का वक्त है। उस गांव के पंडित-पुरोहितों को बड़ी तकलीफ है जीसस के आने से। सदा होती है। जब भी कोई जानने वाला पैदा हो जाता है, तो झूठे जानने वालों को तकलीफ शुरू हो जाती है। जो स्वाभाविक है। उसमें कुछ आश्चर्य नहीं है। पंडित तो जानते हैं किताबों से। जीसस जानते हैं जीवन से। तो किताबों से जानने वाला आदमी, जीवन से जानने वाले आदमी के सामने फीका पड़ जाता है, कठिनाई में पड़ जाता है, मुश्किल में पड़ जाता है।
गांव के पंडित परेशान हैं। उन्होंने कहा कि जीसस को फंसाने का कोई उपाय खोजना जरूरी है। उन्होंने बड़ा इंतजाम किया और उपाय खोज लिया। उपाय की कोई कमी नहीं है। वे गांव से एक स्त्री को पकड़ लाए, जो कि व्यभिचार में पकड़ी गई थी। यहूदियों की पुरानी धर्म की किताब में लिखा है कि जो स्त्री व्यभिचार में पकड़ी जाए, उसको पत्थर मारकर मार डालना चाहिए।
तो उस स्त्री को वे ले आए जीसस के पास और उन्होंने कहा कि यह किताब है हमारी पुरानी, धर्मग्रंथ की। इसमें लिखा है कि जो स्त्री व्यभिचार करे, उसे पत्थर मारकर मार डालना चाहिए। आप क्या कहते हैं? इस स्त्री ने व्यभिचार किया है। यह पूरा गांव गवाह है।
यह जीसस को दिक्कत में डालने के लिए बड़ा सीधा उपाय था। अगर जीसस कहें
कि ठीक है, पुरानी किताब को मानकर पत्थरों से मार डालो इसे; तो जीसस के उस वचन का क्या होगा, जिसमें जीसस ने कहा है कि जो तुम्हें एक चांटा मारे, तुम उसके सामने दूसरा गाल कर दो। और जो तुम्हारा कोट छीने, उसे कमीज भी दे दो। और अपने शत्रुओं को भी प्रेम करो। उन सब वचनों का क्या होगा? तो जीसस को कठिनाई खड़ी हो जाएगी। और अगर जीसस कहें कि नहीं, पत्थर मार नहीं सकते इसे। माफ कर दो, क्षमा कर दो। तो हम कहेंगे, तुम हमारी धर्म-पुस्तक के विपरीत बात कहते हो! तो तुम धर्म के दुश्मन हो।
लेकिन उन्हें पता नहीं था कि जीसस जैसे आदमी को मुट्ठियों में बांधना आसान नहीं होता। पारे की तरह होते हैं ऐसे लोग। मुट्ठी बांधी कि बाहर निकल जाते हैं।
जीसस ने कहा कि बिल्कुल ठीक कहती है पुरानी किताब! पत्थर हाथ में उठा
लो और इस स्त्री को पत्थरों से मार डालो। वे तो बड़े हैरान हुए। उन्होंने तो सोचा भी न था कि यह होगा। पर जीसस ने कहा, ख्याल रखें, पहला आदमी वह हो पत्थर मारने वाला, जिसने व्यभिचार न किया हो और व्यभिचार का विचार न किया हो।
कोई आदमी नहीं था उस गांव में, जिसने व्यभिचार का विचार न किया हो। किस गांव में ऐसा आदमी है! जो लोग आगे खड़े थे साफे-पगड़ियां वगैरह बांधकर, पत्थर हाथ में लिए, वे धीरे-धीरे भीड़ में पीछे सरकने लगे। यह तो उपद्रव की बात है। जो पीछे खड़े थे, वे तो भाग खड़े हुए। उन्होंने कहा कि यहां ठहरना

ठीक नहीं है। थोड़ी देर में वह नदी का तट खाली हो गया था। वह स्त्री थी और जीसस थे।
जब सारे लोग जा चुके, तो उस स्त्री ने जीसस से पूछा कि आप मुझे जो सजा दें, मैं लेने को तैयार हूं; मैं व्यभिचारी हूं। मुझ पर कृपा करें और मुझे सजा दें। जीसस ने कहा, मुझे माफ कर। परमात्मा न करे कि मैं किसी का निर्णायक बनूं, क्योंकि मैं किसी को अपना निर्णायक नहीं बनाना चाहता हूं। जीसस ने कहा, परमात्मा न करे कि मैं किसी का निर्णायक बनूं। क्योंकि मैं किसी को अपना निर्णायक नहीं बनाना चाहता हूं। जीसस का वचन है, जज यी नाट, दैट यी शुड नाट बी जज्ड। तुम किसी के निर्णायक मत बनो, ताकि कोई तुम्हारा कभी निर्णायक न बने।
मैं कौन हूं! मैं इतना अहंकार कैसे करूं कि तेरा निर्णय करूं! मैं हूं कौन! तू जान, तेरा परमात्मा जाने। मैं कौन हूं! मैं तेरे बीच में खड़ा होने वाला कौन हूं! मैं अगर तुझे जरा ऊंची जगह पर खड़े होकर भी देखूं, तो पापी हो गया। मैं कौन हूं! मैं कोई भी नहीं हूं। और फिर तूने खुद स्वीकार किया कि तू व्यभिचारिणी है, तो तू पाप से मुक्त हो गई, बात समाप्त हो गई।
स्वीकृति मुक्ति है। अस्वीकृति में पाप छिपता है, स्वीकृति में विसर्जित हो जाता है।
जीसस ने कहा कि मुझे मत उलझा। मैं तेरा निर्णायक नहीं बनूंगा, क्योंकि मैं नहीं चाहता कि कोई मेरा निर्णय करे।
जो आप नहीं चाहते कि दूसरे आपके साथ करें, कृपा करके वह आप दूसरों के साथ न करें। जीसस की पूरी नई बाइबिल का सार एक ही वचन है, दूसरों के साथ वह मत करें, जो आप नहीं चाहते कि दूसरे आपके साथ करें। और अगर इस वाक्य को ठीक से समझ लें, तो कृष्ण का सूत्र समझ में आ जाए।
और कई बार ऐसा मजेदार होता है कि कृष्ण के किसी वाक्य की व्याख्या बाइबिल में होती है। और बाइबिल के किसी वाक्य की व्याख्या गीता में होती है। कभी कुरान के किसी सूत्र की व्याख्या वेद में होती है। कभी वेद के किसी सूत्र की व्याख्या कोई यहूदी फकीर करता है। कभी बुद्ध का वचन चीन में समझा जाता है। और कभी चीन में लाओत्से का कहा गया वचन हिंदुस्तान का कोई कबीर समझता है।
लेकिन धर्मों ने इतनी दीवालें खड़ी कर दी हैं इन सबके बीच कि इनके बीच
जो बहुत आंतरिक संबंध के सूत्र दौड़ते हैं, उनका हमें कोई स्मरण नहीं रहा। नहीं तो हर मंदिर और मस्जिद के नीचे सुरंग होनी चाहिए, जिसमें से कोई भी मंदिर से मस्जिद में जा सके। और हर गुरुद्वारे के नीचे से मंदिर को जोड़ने वाली सुरंग होनी चाहिए, कि कभी भी किसी की मौज आ जाए, तो तत्काल गुरुद्वारे से मंदिर या मस्जिद या चर्च में जा सके। लेकिन सुरंगों की तो बात दूर, ऊपर के रास्ते भी बंद हैं, सब रास्ते बंद हैं।
अपना मित्र दूसरों के साथ वही करेगा, जो वह चाहता है कि दूसरे उसके साथ करें। अपना शत्रु दूसरों के साथ वही करेगा, जो वह चाहता है कि दूसरे कभी उसके साथ न करें। और जो अपना मित्र हो गया, वह योग की यात्रा पर निकल पड़ा है। और आत्मा अपनी मित्र भी हो सकती है, शत्रु भी हो सकती है।
ध्यान रखना, शत्रु होना सदा आसान है। शत्रु होने के लिए क्या करना पड़ता है, कभी आपने ख्याल किया है! अगर आपको किसी का शत्रु होना है, तो एक सेकेंड में हो सकते हैं। और अगर मित्र होना है, तो पूरा जन्म भी ना काफी है। अगर आपको किसी का शत्रु होना है, तो क्षण की भी तो जरूरत नहीं है, क्षण भी काफी है। एक जरा-सा शब्द और शत्रुता की पूरी की पूरी व्यवस्था हो जाएगी। लेकिन अगर आपको किसी का मित्र होना है, तो पूरा जीवन भी ना काफी है, नाट इनफ। पूरी जिंदगी श्रम करने के बाद भी कहीं कोई चीज, अभी दरार बाकी रह जाएगी, जो पूरी नहीं हो पाती।
मित्रता बड़ी साधना है, शत्रुता बच्चों का खेल है। इसलिए हम शत्रुता में आसानी से उतर जाते हैं। और खुद के साथ मित्रता तो बहुत ही कठिन है। दूसरे के साथ इतनी कठिन है, खुद के साथ तो और भी कठिन है।
आप कहेंगे, क्यों? दूसरे के साथ इतनी कठिन है, तो खुद के साथ और भी कठिन क्यों होगी? खुद के साथ तो आसान होनी चाहिए। हम तो सब समझते हैं कि हम सब अपने को प्रेम करते ही हैं।

भ्रांति है वह बात, फैलेसी है, झूठ है। हममें से ऐसा आदमी बहुत मुश्किल है, जो अपने को प्रेम करता हो। क्योंकि जो अपने को प्रेम कर ले, उसकी जिंदगी में बुराई टिक नहीं सकती; असंभव है। अपने को प्रेम करने वाला शराब पी सकता है? अपने को प्रेम करने वाला क्रोध कर सकता है?
बुद्ध निकलते हैं एक रास्ते से और एक आदमी बुद्ध को गालियां देता है।
तो बुद्ध के साथ एक भिक्षु है आनंद, वह कहता है कि आप मुझे आज्ञा दें, तो मैं इस आदमी को ठीक कर दूं। तो बुद्ध बहुत हंसते हैं। तो आनंद पूछता है, आप हंसते क्यों हैं? वह आदमी भी पूछता है, आप हंसते क्यों हैं? तो बुद्ध कहते हैं, मैं आनंद की बात सुनकर हंसता हूं। यह भी बड़ा पागल है। दूसरे की गलती के लिए खुद को सजा देना चाहता है। बुद्ध कहते हैं, दूसरे की गलती के लिए खुद को सजा देना चाहता है। आनंद ने कहा, मैं समझा नहीं! बुद्ध ने कहा, गाली उसने दी, क्रोध तू करना चाहता है! सजा तू भोगेगा। क्रोध तो अपने में आग लगाना है।
हम सब क्रोध को भलीभांति जानते हैं। क्रोध से बड़ी सजा क्या हो सकती है? लेकिन दूसरा गाली देता है, हम क्रोध करते हैं। बुद्ध कहते हैं, दूसरे की गलती के लिए खुद को सजा!
हम सब वही कर रहे हैं। मित्रता अपने साथ कोई भी नहीं है। और अपने साथ मित्रता इसलिए भी कठिन है कि दूसरा तो विजिबल है, दूसरा तो दिखाई पड़ता है; हाथ फैलाया जा सकता है दोस्ती का। लेकिन खुद तो बहुत इनविजिबल, अदृश्य सत्ता है; वहां तो हाथ फैलाने का भी उपाय नहीं है। दूसरे मित्र को तो कुछ भेंट दी जा सकती है, कुछ प्रशंसा की जा सकती है, कुछ दोस्ती के रास्ते बनाए जा सकते हैं, कुछ सेवा की जा सकती है। खुद के साथ तो कोई भी रास्ते नहीं हैं। खुद के साथ तो शुद्ध मैत्री का भाव ही! और कोई रास्ता नहीं है, और कोई सेतु नहीं है। अगर हो समझ, अंडरस्टैंडिंग ही सिर्फ सेतु बनेगी। उतनी समझ हममें नहीं है।
हम सब नासमझी में जीते हैं। लेकिन नासमझी में इतनी अकड़ से जीते हैं कि समझ को आने का दरवाजा भी खुला नहीं छोड़ते। असल में नासमझ लोगों से ज्यादा स्वयं को समझदार समझने वाले लोग नहीं होते! और जिसने अपने को समझा कि बहुत समझदार हैं, समझना कि उसने द्वार बंद कर लिए। अगर समझदारी उसके दरवाजे पर दस्तक भी दे, तो वह दरवाजा खोलने वाला नहीं है। वह खुद ही समझदार है! हमारी समझदारी का सबसे गलत जो आधार है, वह यह है कि हम अपने को प्रेम करते ही हैं। यह बिल्कुल झूठ है। अगर हम अपने को प्रेम करते होते, तो दुनिया की यह हालत नहीं हो सकती थी, जैसी हालत है। अगर हम अपने को प्रेम करते होते, तो आदमी पागल न होते, आत्महत्याएं न करते। अगर हम अपने को प्रेम करते होते, तो दुनिया में इतना मानसिक रोग न होता।
चिकित्सक कहते हैं कि इस समय कोई सत्तर प्रतिशत रोग मानसिक हैं। वे अपने को घृणा करने से पैदा हुए रोग हैं। हम सब अपने को घृणा करते हैं। हजार तरह से अपने को सताते हैं। सताने के नए-नए ढंग ईजाद करते हैं! अपने को दुख और पीड़ा देने की भी नई-नई व्यवस्थाएं खोजते हैं। यद्यपि हम सबके पीछे बहुत तर्क इंतजाम कर लेते हैं।
यह तो चिकित्सक कहते हैं कि सत्तर प्रतिशत बीमारियां आदमी अपने को सजा देने के लिए विकसित कर रहा है। लेकिन मनस-चिकित्सक कहते हैं कि यह आंकड़ा छोटा है अभी; अंडरएस्टिमेशन है। असली आंकड़ा और बड़ा है। और अगर आंकड़ा किसी दिन ठीक गया, तो निन्यानबे प्रतिशत बीमारियां मनुष्य अपने को सजा देने के लिए ईजाद करता है।
इतनी घृणा है खुद के साथ! वह हमारे हर कृत्य में प्रकट होती है। हर कृत्य में! जो भी हम करते हैं--एक बात ध्यान में रख लेना, तो कसौटी आपके पास हो जाएगी--जो भी आप करते हैं, करते वक्त सोच लेना, इससे मुझे सुख मिलेगा या दुख? अगर आपको दिखता हो, दुख मिलेगा और फिर भी आप करने को तैयार हैं, तो फिर आप समझ लेना कि अपने को घृणा करते हैं। और क्या कसौटी हो सकती है?
मुंह से गाली निकलने के लिए तैयार हो गई है; पंख फड़फड़ाकर खड़ी हो गई है जबान पर; उड़ने की तैयारी है। सोच लेना एक क्षण कि इससे अपने को दुख मिलेगा या सुख! दूसरे की मत सोचना, क्योंकि दूसरे की सोचने में धोखा हो जाता है। आदमी सोचता है, दूसरे को दुख मिलेगा या सुख! यह मत सोचना। पहले तो अपना ही

सोच लेना कि इससे मुझे दुख मिलेगा या सुख! और अगर आपको पता चले कि दुख मिलेगा, और फिर भी आप गाली दो, तो फिर क्या कहा जाए, आप अपने को प्रेम करते हैं!
नहीं, हम सोचने का मौका भी नहीं देते। नहीं तो डर यह है कि कहीं ऐसा न
हो कि गाली न दे पाएं।
गुरजिएफ एक बहुत अदभुत फकीर हुआ। उसने अपने संस्मरणों में लिखा है कि मेरा बाप मरा, तो उसके पास मुझे देने को कुछ भी न था। लेकिन वह मुझे इतनी बड़ी संपदा दे गया है जिसका कोई हिसाब नहीं है। जब भी वह किसी से यह कहता, तो वह चौंकता। क्योंकि वह पूछता कि तुम कहते हो, तुम्हारे बाप के पास कुछ भी न था, फिर वह क्या संपदा दे गया?
तो गुरजिएफ कहता कि मैं ज्यादा से ज्यादा नौ-दस साल का था, जब मेरे बाप
की मृत्यु हुई। मैं सबसे छोटा बेटा था। सभी को बुलाकर मेरे बाप ने कान में कुछ कहा। मुझे भी बुलाया और मेरे कान में कहा कि तू अभी ज्यादा नहीं समझ सकता, लेकिन तू जो समझ सकता है, उतनी बात मैं तुझसे कह देता हूं। और ध्यान रख, अगर इतनी बात तूने समझ ली, तो जिंदगी में और कुछ समझने की जरूरत न पड़ेगी। छोटी-सी बात, जो तेरी समझ में आ जाए, वह मैं तुझसे यह कहे जाता हूं। मरते हुए बाप का ख्याल रखना, इतनी-सी बात को मान लेना। मेरे पास देने को और कुछ भी नहीं है।
तो गुरजिएफ, उस छोटे-से बच्चे ने कहा कि आप कहें, भरसक मैं चेष्टा करूंगा। उसके बाप ने कहा, बहुत कठिन काम तुझे नहीं दूंगा, क्योंकि तेरी उम्र ही कितनी है! इतना ही कहता हूं तुझसे कि जब भी कोई ऐसा काम करने का ख्याल आए, जिससे तुझे या दूसरे को दुख होगा, तो चौबीस घंटे रुक जाना, फिर तू करना। उस लड़के ने पूछा, फिर मैं कर सकता हूं? उसके बाप ने कहा कि तू पूरी ताकत से करना। और बाप हंसा और मर गया।
गुरजिएफ अपने संस्मरणों में लिखता है, मैं जिंदगी में कोई बुरा काम नहीं कर पाया। मेरे बाप ने मुझे धोखा दे दिया। उसने कहा, चौबीस घंटे बाद कर लेना। लेकिन चौबीस घंटा तो बहुत वक्त है, चौबीस सेकेंड भी कोई बुरा काम करते वक्त रुक जाए, तो नहीं कर सकता। चौबीस सेकेंड भी! क्योंकि उतने में ही होश आ जाएगा कि मैं अपनी दुश्मनी कर रहा हूं। इसलिए बुरा काम हम बहुत शीघ्रता से करते हैं; देर नहीं लगाते।
अगर एक मित्र को संन्यास लेना है, तो वह पूछता है कि एक साल और रुक जाऊं! उसको जुआ खेलना है, तो वह नहीं पूछता। अगर उसे संन्यास लेना है, तो वह पूछता है कि एक साल रुक जाएं, तो कोई हर्ज है? लेकिन उसे क्रोध करना होता है, तब वह एक सेकेंड नहीं रुकता। बहुत आश्चर्यजनक है। अच्छा काम करना हो, तो आप पूछते हैं, थोड़ा स्थगित कर दें तो कोई हर्ज है? और बुरा काम करना हो तो! तो तत्काल कर लेते हैं। तत्काल। एक सेकेंड नहीं चूकते! क्यों?
वह बुरा काम अगर एक सेकेंड चूके, किया नहीं जा सकेगा। और उसे करना है, इसलिए एक सेकेंड स्थगित करना ठीक नहीं है। और अच्छे काम को करना नहीं है, इसलिए जितना स्थगित कर सकें, उतना अच्छा है। जितना टाल सकें, उतना अच्छा है।
हम अच्छे कामों को टालते चले जाते हैं कल पर और बुरे काम करते चले जाते हैं आज। और एक दिन आता है कि मौत कल को छीन लेती है। बुरे कामों का ढेर लग जाता है; अच्छे काम का कोई हाथ में हिसाब ही नहीं होता।
मैंने सुना है, एक आदमी मरा, एक बहुत करोड़पति। जैसी उसकी आदत थी, गवर्नर के घर में भी जाता था, तो संतरी उसको रोक नहीं सकता था। प्रधानमंत्री के घर में जाता था, तो संतरी हटकर खड़ा हो जाता था। उसने तो सोचा ही नहीं कि नर्क की तरफ जाने का कोई सवाल है। सीधा स्वर्ग के दरवाजे पर पहुंच गया। जोर से जाकर दरवाजा खटखटाया। दरवाजा खुला न देखकर नाराज हो गया।
द्वारपाल ने झांककर देखा और कहा कि महाशय, इतने जोर से दरवाजा मत खटखटाइए। पर उस आदमी ने कहा कि मुझे भीतर आने दो। द्वारपाल उसे भीतर ले गया। पूछा द्वारपाल ने कि ऐसा कौन सा काम किया है, जिसकी वजह से स्वर्ग में इतनी तेजी से आ रहे हैं! द्वारपाल ने जाकर दफ्तर में कहा कि जरा इन महाशय

के नाम का पता लगाएं, क्योंकि अभी तो हमें कोई खबर भी नहीं है कि इस तरह का आदमी स्वर्ग में आने को है! इनके हिसाब में कुछ है?
बड़ा लंबा हिसाब था। पोथे के पोथे थे। दफ्तर का क्लर्क थक गया उलट-उलटकर। पर उसने कहा कि कहीं कोई ऐसी चीज दिखाई नहीं पड़ती। हां, कई जगह इस आदमी ने अच्छे संकल्प करने की योजना बनाई; लेकिन पीछे लिखा है, स्थगित, पोस्टपोंड! यह कई दफे स्वर्ग मिलते-मिलते चूक गया। कई दफे इसने योजना बनाई कि ऐसा कर दूं, फिर इसने स्थगित कर दिया।
फिर भी, उस द्वारपाल ने कहा कि बेचारा इतनी मेहनत करके आ गया है, थोड़ा खोज लो, शायद कोई थोड़ी-बहुत जगह, इसने कुछ न कुछ किया हो। बड़ा खोजकर पता चला कि इस आदमी ने एक नया पैसा किसी भिखारी को कभी दान दिया था। लेकिन कोष्ठक में यह भी लिखा है कि भिखारी को नहीं दिया था, इसके साथ दो-तीन आदमी खड़े थे, वे क्या कहेंगे अगर एक पैसे के लिए भी इनकार करेगा, इसलिए दिया था। मगर दिया था। इसने एक पैसा दिया था, वह स्थगित नहीं किया था। कारण दूसरा था, लेकिन भिखारी को एक पैसा इसने दिया था।
उस करोड़पति के चेहरे पर थोड़ी रौनक आई। लगा कि कुछ आसार स्वर्ग में प्रवेश के बनते हैं। उस क्लर्क ने कहा, लेकिन इतने से आधार पर! और वह भी धोखे का आधार, क्योंकि इसने भिखारी को दिया ही नहीं, इसने अपने मित्रों को दिया है। दिखाई पड़ा कि भिखारी को दिया है।
इसलिए तो भिखारी, आप अकेले हों, तो आपसे भीख नहीं मांगते। दो-चार मित्र हों, तो पकड़ लेते हैं। जानते हैं तरकीब, कि भिखारी को कौन देता है! वह दो-चार जो आदमी पास खड़े हैं, उनकी शर्मिंदगी में, कि क्या कहेंगे कि यह आदमी एक पैसा नहीं दे पा रहा है, आप भी दे देते हैं। और आप दे देते हैं, तो उनको भी देना पड़ता है कि अब यह आदमी क्या कहेगा! मगर यह आपसी लेन-देन है, इसका भिखारी से कोई भी संबंध नहीं है।
फिर भी इसने दिया था, तो क्या करें? तो उस क्लर्क ने कहा, एक ही उपाय है। वह एक पैसा इसे वापस कर दिया जाए और नर्क की तरफ वापस भेज दिया जाए। इस आदमी ने बड़ी टेक्निकल गड़बड़ खड़ी कर दी है। एक दफा और स्थगित कर देता, तो इसका क्या बिगड़ता था! टेक्निकल भूल हो गई है।
हम स्थगित किए चले जाते हैं, जो भी शुभ है उसे। शायद मौत के बाद हम करेंगे। और जो अशुभ है, उसे हम आज कर लेते हैं, कि पता नहीं, कल वक्त मिला कि न मिला।
मित्र वह है अपना, जो अशुभ को स्थगित कर दे और शुभ को कर ले। और शत्रु
वह है अपना, जो शुभ को स्थगित कर दे और अशुभ को कर ले। एक क्षण रुककर देख लेना कि जिस चीज से दुख आता हो, उसे आप कर रहे हैं? तो फिर अपने शत्रु हैं। और जो अपना शत्रु है, उसकी अधोयात्रा जारी है। वह नीचे गिरेगा, गिरता चला जाएगा--अंधकार और महा अंधकार, पीड़ा और पीड़ा। वह अपने ही हाथ से अपने को नर्क में धकाता चला जाएगा।
लेकिन जो व्यक्ति अपना मित्र बन जाता है, वह ऊपर की ऊर्ध्व-यात्रा पर निकल जाता है। उसकी यात्रा दीए की ज्योति की तरह आकाश की तरफ होने लगती है। वह फिर पानी की तरह गड्ढों में नहीं उतरता, अग्नि की तरह आकाश की तरफ उठने लगता है।
यह जो ऊपर उठती हुई चेतना है, यही योग है। अपना मित्र होना ही योग है। अपना शत्रु होना ही अयोग है। ऊपर की तरफ बढ़ते चले जाना ही आनंद है।
कृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं कि योग है मंगल अर्जुन; और सार सूत्र है कि आत्मा स्वतंत्र है। अपना अहित भी कर सकती है, हित भी। अहित करना आसान, क्योंकि गड्ढे में उतरना आसान। हित करना कठिन, क्योंकि पर्वत शिखर की ऊंची चढ़ाई है। लेकिन जो अपना मित्र बन जाए, वह जीवन में मुक्ति को अनुभव कर पाता है। और जो अपना शत्रु बन जाए, वह जीवन में रोज बंधनों, कारागृहों में गिरता चला जाता है।
इस सूत्र को अपने जीवन में कहीं-कहीं रुककर उपयोग करके देखना, तो ख्याल में आ सकेगा। कुछ चीजें हैं, जिन्हें समझ लेना काफी नहीं, जिन्हें प्रयोग करना जरूरी है। ये सब के सब लेबोरेटरी मेथड्स हैं, यह जो भी कृष्ण कह रहे हैं अर्जुन से।

कृष्ण उन लोगों में से नहीं हैं, जो एक शब्द भी व्यर्थ कहें। वे उन लोगों में से नहीं हैं, जो शब्दों का आडंबर रचें। वे उन लोगों में से नहीं हैं, जिन्हें कुछ भी नहीं कहना है और फिर भी कहे चले जा रहे हैं। वे कोई राजनीतिक नेता नहीं हैं।
कृष्ण उतना ही कह रहे हैं, जितना अत्यंत आवश्यक है, और जितने के बिना नहीं चल सकेगा। प्रयोगात्मक हैं उनके सारे वक्तव्य। एक-एक सूत्र एक-एक जीवन के लिए प्रयोग बन सकता है।
और एक सूत्र पर भी प्रयोग कर लें, तो धीरे-धीरे पूरी गीता, बिना पढ़े, आपके सामने खुल जाएगी। और पूरी गीता पढ़ जाएं और प्रयोग कभी न करें, तो गीता बंद किताब रहेगी। वह कभी खुल नहीं सकती। उसे खोलने की चाबी कहीं से प्रयोग करना है।
इस सूत्र को समझें, जांचें, अपने मित्र हैं कि शत्रु! बस इस छोटे-से सूत्र को जांचते चलें और थोड़े ही दिन में आप पाएंगे कि आपको अपनी शत्रुता इंच-इंच पर दिखाई पड़ने लगी है। कदम-कदम पर आप अपने दुश्मन हैं। और अब तक की पूरी जिंदगी आपने अपनी दुश्मनी में बिताई है। और फिर रोकर चिल्लाते हैं कि मैं अभागा हूं; दुख में मरा जा रहा हूं। अपने ही हाथ से कोड़े मारते हैं अपनी ही पीठ पर, लहूलुहान कर लेते हैं। और दूसरे हाथ से लहू पोंछते हैं और कहते हैं कि मेरा भाग्य! अपने ही हाथ से दुख निर्मित करते हैं और फिर चिल्लाते हैं, मेरी नियति!
नहीं, कोई नियति नहीं है, आप ही हैं। और अगर कोई नियति है, तो वह आपके द्वारा ही काम करती है। और आप उस नियति को मार्ग देने में परम स्वतंत्र हैं, क्योंकि आप परमात्मा के हिस्से हैं।
आपकी स्वतंत्रता में रत्तीभर कमी नहीं है। आप इतने स्वतंत्र हैं कि नर्क जा सकते हैं; आप इतने स्वतंत्र हैं कि स्वर्ग निर्मित कर सकते हैं। आप इतने स्वतंत्र हैं कि आपके एक-एक पैर पर एक-एक स्वर्ग बस जाए। और आप इतने स्वतंत्र भी हैं कि आपके एक-एक पैर पर एक-एक नर्क निर्मित हो जाए। और सब आप पर निर्भर है। आपके अतिरिक्त कोई भी जिम्मेवार नहीं है।
तो अपने मित्र हैं या शत्रु, इसे थोड़ा सोचना, देखना। और धीरे-धीरे आप पाएंगे कि शत्रु होना मुश्किल होने लगेगा, मित्र होना आसान होने लगेगा।
और तब इस सूत्र को पढ़ना। तब इस सूत्र के अर्थ, अभिप्राय प्रकट होते हैं।

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्।। 6।।
उस जीवात्मा का तो वह आप ही मित्र है, कि जिस जीवात्मा द्वारा मन और इंद्रियों सहित शरीर जीता हुआ है, और जिसके द्वारा मन और इंद्रियों सहित शरीर नहीं जीता गया है, उसका वह आप ही शत्रु के सदृश, शत्रुता में बर्तता है।

इंद्रियों और शरीर को जिसने जीता है, वह अपना मित्र हो पाता है। और जिसे अपनी इंद्रियों और अपने शरीर पर कोई भी वश, कोई भी काबू नहीं, वह अपना शत्रु सिद्ध होता है।
मित्रता और शत्रुता को दूसरे आयाम से समझें। इस सूत्र में दूसरे आयाम से, दूसरी दिशा से मित्रता और शत्रुता के सूत्र को समझाने की कोशिश है। शरीर और इंद्रियां जिसके परतंत्र नहीं हैं; जिसकी इंद्रियां कुछ कहती हैं, जिसका शरीर कुछ कहता है; जिसका मन कुछ कहता है; और स्वयं की जिसकी कोई आवाज नहीं है। कभी इंद्रियों की मान लेता है, कभी शरीर की मान लेता है, कभी मन की मान लेता है, लेकिन खुद की अपनी कोई भी समझ नहीं है। वह ठीक स्वभावतः वैसी ही स्थिति में हो जाएगा, जैसे कोई रथ चलता हो। सारथी सोया हो। लगामें टूटी पड़ी हों। सब घोड़े अपनी-अपनी दिशाओं में जाते हों, जिसे जहां जाना हो! घोड़ों को बांधने का, निकट लेने का, एक-सूत्र रखने का, एक दिशा पर चलाने की कोई व्यवस्था न हो। सारथी सोया हो। लगामें टूटी पड़ी हों। घोड़े अपनी-अपनी जगह जाते हों। कोई बाएं चलता हो, कोई दाएं चलता हो। कोई चलता ही न हो। कोई दौड़ता हो, कोई बैठा हो। तो जैसी स्थिति उस रथ की हो जाए, और जैसी स्थिति उस रथ में बैठे हुए मालिक की हो जाए, वैसी स्थिति हमारी हो जाती है।

कभी आपने ख्याल न किया होगा कि आपकी इंद्रियां एक-दूसरे के विपरीत मांग करती हैं, और आप दोनों की मान लेते हैं। आपका शरीर और मन विपरीत मांग करते हैं, और आप दोनों की मान लेते हैं। शरीर कहता है, रुक जाओ, अब खाना मत डालो, क्योंकि पेट में तकलीफ शुरू हो गई। और मन कहता है, स्वाद बहुत अच्छा आ रहा है; थोड़ा डाले चले जाओ। आप दोनों की माने चले जाते हैं। आप देखते नहीं कि आप क्या कर रहे हैं! एक कदम बाएं चलते हैं, साथ ही एक कदम दाएं भी चल लेते हैं। एक कदम आगे जाते हैं, एक कदम पीछे भी आ जाते हैं!
एक ही साथ विपरीत काम किए चले जाते हैं, क्योंकि विपरीत इंद्रियों और विपरीत वासनाओं की साथ ही स्वीकृति दे देते हैं। एक हाथ बढ़ाते हैं किसी से दोस्ती का, दूसरे हाथ में छुरा दिखा देते हैं--एक साथ! किसी को हाथ जोड़कर नमस्कार करते हैं, और भीतर से उसको गाली दिए चले जाते हैं कि इस दुष्ट की शकल सुबह-सुबह कहां दिखाई पड़ गई! और हाथ जोड़कर उससे ऊपर कह रहे हैं कि बड़े शुभ दर्शन हुए। आज का दिन बड़ा शुभ है। और भीतर कहते हैं कि मरे; आज पता नहीं धंधे में नुकसान लगेगा, कि पत्नी से कलह होगी, कि क्या होगा! यह सुबह-सुबह कहां से यह शकल दिखाई पड़ गई है! और इसके साथ हाथ भी जोड़ रहे हैं, नमस्कार भी कर रहे हैं; मन में यह भी चलता जाता है।
मन खंड-खंड है। एक-एक इंद्रिय अपने-अपने खंड को पकड़े हुए है। सभी इंद्रियों के खंड भीतर अखंड होकर एक नहीं हैं। कोई भीतर मालिक नहीं है। गुरजिएफ कहा करता था, हम उस मकान की तरह हैं, जिसका मालिक बाहर गया है।
और जिसमें बहुत बड़ा महल है और बहुत नौकर-चाकर हैं। और जब भी रास्ते से कोई गुजरता है और बड़े महल को देखता है, सीढ़ियों पर कोई मिल जाता है घर का नौकर, तो उससे पूछता है, किसका है मकान? तो वह कहता है, मेरा। मकान का मालिक बाहर गया है। कभी वह राहगीर वहां से गुजरता है, दूसरा नौकर सीढ़ियों पर मिल जाता है, वह पूछता है, किसका है यह मकान? वह कहता है, मेरा।
हर नौकर मालिक है। मालिक घर में मौजूद नहीं है। बड़ी कलह होती है उस मकान में। मकान जीर्ण-जर्जर हुआ जाता है। क्योंकि मालिक कोई भी नहीं है, इसलिए मकान को कोई सुधारने की फिक्र नहीं करता है, न कोई रंग-रोगन करता है, न कोई साफ करता है। सब नौकर हैं; सब एक-दूसरे से चाहते हैं कि तुम नौकर का व्यवहार करो, मैं मालिक का व्यवहार करूं! लेकिन सब जानते हैं कि तुम भी नौकर हो, तुम कोई मालिक नहीं हो; तुम मुझ पर हुक्म नहीं चला सकते। वह घर गिरता जाता है, उसकी दीवालें गिरती जाती हैं, उसकी ईंटें गिरती जाती हैं। कोई जोड़ने वाला नहीं। कोई कचरा साफ करता नहीं। सब कचरा इकट्ठा करते हैं। सब मालिक होने के दावेदार हैं।
भीतर करीब-करीब हमारी आत्मा ऐसी ही सोई रहती है, जैसे मौजूद ही न हो। आपने कभी अपनी आत्मा की आवाज भी सुनी है?
हां, अगर राजनीतिज्ञ होंगे, तो सुनी होगी! अभी पिछले इलेक्शन में बहुत-से राजनीतिज्ञ एकदम आत्मा की आवाज सुनते थे। और जिस दिन राजनीतिज्ञ की आत्मा में आवाज आने लगेगी, उस दिन इस दुनिया में कोई पापी नहीं रह जाएगा। जिनके पास आत्मा नाम-मात्र को नहीं होती, उनको आवाजें आ रही हैं! और आवाजें भी बदल जाती हैं! सुबह आवाज कुछ आती है, सांझ कुछ आती है! आत्मा भी बड़ी पोलिटिकल स्टंट करती है!
आपने कभी आत्मा की आवाज सुनी है? अगर राजनीतिज्ञ नहीं हैं, तो कभी नहीं सुनी होगी! इंद्रियों की आवाजें ही हम सुनते हैं। कभी एक इंद्रिय कहती है, यह चाहिए; कभी दूसरी इंद्रिय कहती है, यह चाहिए। कभी तीसरी इंद्रिय कहती है, यह नहीं मिला, तो जीवन व्यर्थ है। कभी चौथी इंद्रिय कहती है, लगा दो सब दांव पर; यही है सब कुछ। लेकिन कभी उसकी भी आवाज सुनी है, जो भीतर छिपा जीवन है? उसकी कोई आवाज नहीं है।
कृष्ण कहते हैं, ऐसी दशा अपनी ही शत्रुता की दशा है।
और गुलामी भयंकर है, जो नहीं करना चाहतीं इंद्रियां, वह भी करा लेती हैं। कई बार आपको अनुभव हुआ होगा। कई बार आप लोगों से कहते हैं कि मेरे बावजूद, इंस्पाइट आफ मी, यह मैंने कर दिया! मैं नहीं करना चाहता था, फिर कर दिया। जब आप नहीं करना चाहते थे, तो कैसे कर दिया? आप कहते हैं, मेरी बिल्कुल इच्छा नहीं थी कि चांटा मार दूं आपको; लेकिन क्या करूं! सोचा भी नहीं था, मारने का इरादा भी नहीं था, भाव भी नहीं था ऐसा। लेकिन मारा है, यह

तो पक्का है। फिर यह किसने मारा? अब यह जो पीछे कह रहा है कि नहीं कोई इच्छा थी, नहीं कोई भाव था, नहीं कोई ख्याल था, बात क्या है?
नहीं, भीतर कोई मालिक तो है नहीं। एक नौकर दरवाजे पर था, तो उसने एक चांटा मार दिया। अब दूसरा नौकर क्षमा मांग रहा है। यह भी मालिक नहीं है। इसलिए आप यह मत सोचना कि अब यह आदमी कल चांटा नहीं मारेगा। कल फिर मार सकता है।
यह जो हमारी इंद्रियों की स्थिति है, खंड-खंड, डिसइंटिग्रेटेड। और एक-
एक इंद्रिय इस तरह करवाए चली जाती है जिसका कोई हिसाब नहीं है। और कभी-कभी ऐसे काम करवा लेती है कि जिनका दांव भारी है। बहुत भारी दांव लगवा देती है। इतना बड़ा दांव लगवा देती है कि इतनी-सी, छोटी-सी चीज के लिए इतना बड़ा दांव आप लगाते न। कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि दो पैसे की चीज के लिए लोग एक-दूसरे की जान ले लेते हैं। दो पैसे की भी नहीं होती कई बार तो चीज। कई बार कुछ होता ही नहीं बीच में, सिर्फ एक शब्द होता है कोरा और जान चली जाती है। पीछे अगर कोई बैठकर सोचे... ।
मैंने सुना है कि एक स्कूल में इतिहास का एक शिक्षक अपने बच्चों से पूछ रहा है, तुम कोई बड़ी से बड़ी लड़ाई के संबंध में बताओ। तो एक लड़का खड़े होकर कहता है कि मैं बता तो सकता हूं, लेकिन मेरे घर आप खबर मत करना। उसने कहा, कौन सी लड़ाई? तो उसने कहा कि लड़ाई तो बड़ी से बड़ी मैं एक ही जानता हूं, मेरी मां और मेरे बाप की! उस शिक्षक ने कहा कि नासमझ, तुझे इतनी भी अक्ल नहीं है कि यह भी कोई लड़ाई है! वह लड़का घर वापस आया, उसने अपने पिता से कहा कि आपकी बड़ी से बड़ी लड़ाई की मैंने चर्चा की, तो मेरे इतिहास के शिक्षक ने कहा, यह भी कोई लड़ाई है! उसके बाप ने एक चिट्ठी लिखकर शिक्षक को पूछा कि तुम मुझे कोई ऐसी लड़ाई बताओ, जो इससे बड़ी रही हो!
बड़ी से बड़ी लड़ाइयों के पीछे भी कारण तो सब छोटे ही छोटे होते हैं। बड़े छोटे-छोटे कारण होते हैं। चाहे वह राम और रावण की लड़ाई हो, तो कारण बड़ा छोटा-सा होता है; बड़ा छोटा-सा कारण! चाहे वह महाभारत का इतना बड़ा युद्ध हो, जिसमें इस गीता को फलित होने का मौका आया, कारण बड़ा छोटा-सा था। इस बड़े महाभारत के युद्ध में पता है आपको, कारण कितना छोटा था! बहुत छोटा-सा कारण, द्रौपदी की छोटी-सी हंसी इस पूरे युद्ध का कारण।
कौरव निमंत्रित हुए हैं पांडवों के घर। और पांडवों ने एक घर बनाया है आलीशान। और इस तरह की कलात्मक उसमें व्यवस्था की है कि घर कई जगह धोखा दे देता है। जहां पानी नहीं है, वहां मालूम पड़ता है पानी है, इस तरह के दर्पण लगाए हैं। जहां दरवाजा नहीं है, वहां मालूम पड़ता है दरवाजा है, इस तरह के दर्पण लगाए हैं। जहां दरवाजा है, वहां मालूम पड़ती है दीवाल है, इस तरह के कांच लगाए हैं।
एक मजाक थी, इनोसेंट। किसी ने सोचा भी न होगा कि इतना बड़ा युद्ध इसके पीछे फैलेगा! कौन सोचता है? बहुत छोटी-सी मजाक थी, जो कि देवर-भाभी में हो सकती है, इसमें कोई ऐसी झगड़े की बात नहीं थी बड़ी। और जब दुर्योधन टकराने लगा और दीवाल से निकलने की कोशिश करने लगा, जहां दरवाजा न था; और दरवाजे से निकलने लगा, और सिर टकरा गया दीवाल से। तो द्रौपदी खिलखिलाकर हंसी। निश्चित ही... । और उसने मजाक में पीछे से किसी से कहा कि अंधे के ही तो बेटे ठहरे! अंधे के बेटे हैं, कुछ भूल तो हो नहीं गई।
जब दुर्योधन को यह पता चला कि कहा गया है, अंधे के बेटे हैं! बस बीज बो गया। छोटी-सी मजाक, अंधे के बेटे, ऐसा छोटा-सा शब्द! इतना बड़ा युद्ध! सब निर्मित हुआ, फैला! फिर इसके बदले लिए जाने जरूरी हो गए। फिर द्रौपदी को नग्न किया जाना इस हंसी का, मजाक का उत्तर था।
बड़े से बड़े युद्ध के पीछे भी बड़े छोटे-छोटे कारण रहे हैं। लेकिन एक बार इंद्रियां पकड़ लें, तो फिर वे आपको अंत तक ले जाती हैं। उनका अपना लाजिकल कनक्लूजन है। वे फिर आपको छोड़ती नहीं बीच में कि आप कहें कि अब बस छोड़ो; अब तो मजाक बहुत हो गई; बात बहुत आगे बढ़ गई। फिर रुक नहीं सकते, फिर वे धक्का देती हैं। कहती हैं, जब यहां तक बात खींची, तो अब डटे रहो। फिर आपको आगे बढ़ाए चली जाती हैं।
इंद्रियां इस तरह आदमी को खींचती हैं जैसे कि जानवरों के गले में रस्सी बांधकर कोई उनको खींचता हो। इसलिए तंत्र के शास्त्र तो हमें पशु

कहते हैं। पशु का मतलब, पाश में बंधे हुए। पशु का मतलब होता है, जिसके गले में रस्सी बंधी है। तंत्र के ग्रंथ कहते हैं, दो तरह के लोग हैं, पशु और पशुपति। पशु वे, जिनकी इंद्रियां उनको गले में बांधकर खींचती रहती हैं; और पशुपति वे, जो इंद्रियों के मालिक हो गए, पति हो गए।
कृष्ण भी वही कह रहे हैं! एक बड़े गहरे तांत्रिक सूत्र की व्याख्या है,
इस शब्द में। कहते हैं, जो अपनी इंद्रियों और अपने शरीर का मालिक है, वही अपना मित्र है। वही भरोसा कर सकता है अपनी मित्रता का। लेकिन जिसे अपनी इंद्रियों पर कोई काबू नहीं है, और जिसकी इंद्रियां जिसे कहीं भी दौड़ा सकती हैं, और जिसका शरीर जिसे किन्हीं भी अंधे रास्तों पर ले जा सकता है, वह अपनी मित्रता का भरोसा न करे। अच्छा है कि वह जाने कि मैं अपना शत्रु हूं।
रथ में बंधे हुए घोड़े मित्र हो सकते हैं, अगर लगाम हो और सारथी होशियार हो। नहीं तो रथ में घोड़े न बंधे हों, तो ही रथ की कुशलता है। घोड़े ही न हों, तो भी रथ सुरक्षित है। लेकिन घोड़े बंधे हों और लगाम न हो और सारथी कुशल न हो या सोया हो, तो रथ के दुश्मन हैं घोड़े, मित्र नहीं। घोड़ों का कोई कसूर नहीं है लेकिन, ध्यान रखना, नहीं तो आप सोचें कि घोड़ों की गलती है। अभी मैं पढ़ रहा था कहीं कि एक आदमी पर अमेरिका में मुकदमे चले बहुत-से। और आखिरी मुकदमा चल रहा था। और मजिस्ट्रेट ने उससे कहा कि मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि तुम्हारे सब अपराधों का एक ही कारण है, अल्कोहल, अल्कोहल, अल्कोहल; शराब, शराब, शराब! उस आदमी ने कहा कि कोई फिक्र नहीं है। आप मुझे लंबी सजा दे रहे हैं, लेकिन मैं धन्यवाद देता हूं आपको। आप अकेले आदमी हैं जिसने मुझे जिम्मेवार नहीं ठहराया। नहीं तो हर कोई कहता है, तुम्हीं जिम्मेवार हो। जो देखो वही कहता है, तुम्हीं जिम्मेवार हो। आप एक समझदार आदमी जिंदगी में मिले, जो कहता है, शराब जिम्मेवार है मेरे सब अपराधों के लिए, मैं जिम्मेवार नहीं हूं।
बड़े मजे की बात है। आप भी किसी दिन पकड़े जाएंगे, तो यह मत सोचना कि कह देंगे कि इंद्रियों ने करवा दिया, मैं क्या करूं! उस दिन आपकी हालत इसी आदमी जैसी हो जाएगी। इंद्रियां आपसे कुछ नहीं करवा सकतीं। करवा सकती हैं, क्योंकि आपने कभी मालकियत घोषित नहीं की। आपने कभी घोषणा नहीं की कि मैं मालिक हूं।
और ध्यान रहे, मालकियत की घोषणा करनी पड़ती है। और ध्यान रहे, मालकियत मुफ्त में नहीं मिलती, मालकियत के लिए श्रम करना पड़ता है। और ध्यान रहे, बिना श्रम के जो मालकियत मिल जाए, वह इंपोटेंट होती है, उसमें कोई बल नहीं होता। जो श्रम से मिलती है, उसकी शान ही और होती है।
ध्यान रहे, रथ में सबसे शानदार घोड़ा वही है, जिस पर लगाम न हो, तो जो रथ
को खतरे में डाल दे। सबसे शानदार घोड़ा वही है। जिस पर लगाम ही न हो, तो आप कोई टट्टू या खच्चर बांधें, और खतरे में भी न डाले, आपका रथ भी चला जा रहा है! जो घोड़ा लगाम के न होने पर गड्ढे में गिरा दे, वही शानदार घोड़ा है; लगाम होने पर वही चलाएगा भी। ध्यान रखना, वही चलाएगा। यह खच्चर नहीं चलाएगा, जो कि खतरे में भी नहीं डालता। लगाम नहीं है, तो विश्राम करता है। वह लगाम होने पर भी बहुत मुश्किल है कि आप उसको थोड़ा-बहुत सरका लें।
जो इंद्रियां आपको गड्ढों में डालती हैं, वे आपकी सबल शक्तियां हैं। लेकिन मालकियत आपकी होनी चाहिए, तो शुभ हो जाएगा फलित। अगर मालकियत नहीं है, तो अशुभ हो जाएगा फलित।
सबसे ज्यादा कौन-सी इंद्रियां हमें गड्ढे में डाल देती हैं?
जननेंद्रिय, सेक्स सबसे ज्यादा गड्ढे में डालती है। सबसे शक्तिशाली
है इसलिए। और सबसे ज्यादा पोटेंशियल है, ऊर्जावान है। और ध्यान रहे, जिस व्यक्ति ने अपनी काम-ऊर्जा पर मालकियत पा ली, उसके पास इतना अदभुत, उसके पास इतना बलशाली घोड़ा होता है कि वही घोड़ा उसे स्वर्ग के द्वार तक पहुंचा देता है। काम की ऊर्जा ही, जब आप गुलाम होते हैं उसके, तो वेश्यालयों में पटक देती है आपको--डबरों में, गड्ढों में, कीड़े-मकोड़ों में। और जब काम की ऊर्जा पर आपका वश होता है, तो वही काम-ऊर्जा ब्रह्मचर्य बन जाती है और ईश्वर के द्वार तक ले जाने में सहयोगी हो जाती है।

सभी इंद्रियां--उदाहरण के लिए काम मैंने कहा, वह सबसे सबल है इसलिए-- सभी इंद्रियां, अगर उनकी मालकियत हो, तो मित्र बन जाती हैं; और मालकियत न हो, तो शत्रु बन जाती हैं।
मालकियत की आप कभी घोषणा ही नहीं करते। और अगर कभी करते भी हैं, तो उसी तरह की करते हैं, जैसा मैंने सुना है कि एक आदमी था दब्बू, जैसे कि अधिक आदमी होते हैं। सड़क पर तो बहुत अकड़ में रहता था, लेकिन घर में पत्नी से बहुत डरता था, जैसा कि सभी डरते हैं! कभी-कभी कोई अपवाद होता है, उसको छोड़ा जा सकता है। उसके कुछ कारण हैं। दिनभर लड़ा हुआ, थका-मांदा आदमी घर में और लड़ाई नहीं करना चाहता; किसी तरह निपटारा कर लेना चाहता है। पत्नी दिनभर लड़ी-करी नहीं, तैयार रहती है, पूरी शक्तियां हाथ में रहती हैं। वह आदमी थका-मांदा लौट रहा है, अब लड़ने की हिम्मत भी नहीं। युद्ध के स्थल से वापस आ रहे हैं, कुरुक्षेत्र से! अब वे और दूसरा कुरुक्षेत्र खड़ा करना नहीं चाहते।
पत्नी पहले दिन से ही आकर कब्जा कर ली थी उस आदमी पर; बड़ी मुश्किल में डाल दिया था। और पत्नी इसकी चर्चा भी करती थी। और एक दिन तो और स्त्रियों ने कहा कि हम मान नहीं सकते। हां, यह तो हम सब जानते हैं कि पति डरते हैं। लेकिन इतना हम नहीं मान सकते, जितना तू बताती है कि डरते हैं। तो उसने कहा कि आज तुम दोपहर को घर आ जाओ। आज छुट्टी का दिन है और पति घर पर होंगे। आज तुम आ जाओ। आज मैं तुम्हें दिखा दूं।
पंद्रह-बीस स्त्रियां मुहल्ले की इकट्ठी हो गईं। जब सब स्त्रियां इकट्ठी हो गईं, तो उस स्त्री ने अपने पति से कहा कि उठ और बिस्तर के नीचे सरक! वह बेचारा जल्दी से उठा और बिस्तर के नीचे सरक गया। फिर उसने और रौब दिखाने के लिए कहा कि अब दूसरी तरफ से बाहर निकल! उस आदमी ने कहा कि अब मैं बाहर नहीं निकल सकता। मैं दिखाना चाहता हूं, इस घर में असली मालिक कौन है! उसने कहा कि अब मैं बाहर नहीं निकल सकता। अब मैं दिखाना चाहता हूं, इस घर का असली मालिक कौन है!
बिस्तर के नीचे तो घुस गया, क्योंकि बाहर रहता तो मार-पीट, झंझट-झगड़ा
हो सकता था। उसने कहा कि अब अच्छा मौका है। अब बिस्तर के नीचे से ही उसने कहा कि अब तू समझ ले। अब मैं बाहर नहीं निकलता; आज्ञा नहीं मानता। अब मैं बताना चाहता हूं कि हू इ.ज दि रियल ओनर।
हम भी कभी अगर इंद्रियों पर कोई मालकियत करते हैं, तो वह ऐसे ही, बिस्तर के नीचे घुसकर! और कोई मालकियत हमने कभी इंद्रियों पर नहीं की है। कभी बहुत कमजोर हालत में, ऐसा मौका पाकर कभी हम घोषणा करते हैं। मगर ठीक सामने इंद्रिय के, उसकी शक्तिशाली इंद्रिय के सामने हम कभी घोषणा नहीं करते। जैसे कि आदमी बूढ़ा हो गया, तो वह कहता है, मैंने अब तो काम-इंद्रिय पर विजय पा ली। वह पागलपन की बातें कर रहा है। ये बिस्तर के नीचे घुसकर बातें हो रही हैं। तो जब जवान है व्यक्ति और जब इंद्रिय सबल है, तभी मौका है घोषणा का।
अब आपका पेट खराब हो गया है, लीवर के मरीज हो गए हैं, खाया नहीं जाता। आपने कहा, अब तो हमने भोजन पर बिल्कुल विजय पा ली। दांत न रहे, दांत गिर गए, अब चबाते नहीं बनता। अब आप कहने लगे कि हम तो लिक्विड आहार लेते हैं; कुछ रस न रहा! ये बिस्तर के नीचे घुसकर आप घोषणाएं कर रहे हैं।
इससे नहीं होगा। इससे अपने को आप फिर धोखा दे रहे हैं। इंद्रियों का एनकाउंटर करना पड़ेगा, जब वे सबल हैं। और तब उनको जीता, तो उसका रहस्य और राज है, उसकी शक्ति है। और जब इंद्रियां निर्बल हो गईं और कोई शक्ति न रही, हारने का भी उपाय न रहा जब, तब जीतने का कोई अर्थ नहीं रह जाता।
कृष्ण कहते हैं, इंद्रियों का जो मालिक है!
और इंद्रियों का मालिक कब होता है कोई? इंद्रियों की मालकियत के दो सूत्र आपसे कहूं, तो यह सूत्र आपको पूरा स्पष्ट हो सके।
पहली बात, इंद्रियों का मालिक वही हो सकता है, जो इंद्रियों से अपने
को पृथक जाने। अन्यथा मालिक होगा कैसे? हम उसके ही मालिक हो सकते हैं, जिससे हम भिन्न हैं। जिससे हम भिन्न नहीं हैं, उसके हम मालिक कैसे होंगे? पर हम अपने को इंद्रियों से अलग मानते ही नहीं। हम तो अपनी इंद्रियों से

इतनी आइडेंटिटी, इतना तादात्म्य किए हैं कि लगता है, हम इंद्रियां ही हैं, और कुछ भी नहीं।
तो जिसे भी इंद्रियों की मालकियत की तरफ जाना हो, उसे अपनी इंद्रियों
और अपने बीच में थोड़ा फासला, गैप खड़ा करना चाहिए। उसे जानना चाहिए कि मैं आंख नहीं हूं; आंख के पीछे कोई हूं। आंख से देखता हूं जरूर, लेकिन आंख नहीं देखती, देखता है कोई और। आंख बिल्कुल नहीं देख सकती। आंख में देखने की कोई क्षमता नहीं है। आंख तो सिर्फ झरोखा है। आंख तो सिर्फ पैसेज है, मार्ग है, जहां से देखने की सुविधा बनती है। जैसे आप खिड़की पर खड़े हों और धीरे-धीरे यह कहने लगें कि खिड़की आकाश देख रही है, वैसा ही पागलपन है। आंख सिर्फ खिड़की है आपके शरीर की, जहां से आप बाहर की दुनिया में झांकते हैं। मन जो भीतर है, चेतना जो और भीतर है, वही असली देखने वाला है; आंख भी नहीं देखती। कभी आपको अनुभव हुआ होगा ऐसा। रास्ते से भागा चला जा रहा है एक आदमी। उसके घर में आग लग गई है। उसको नमस्कार करें, उसको कुछ दिखाई नहीं पड़ता। उससे कहें, कहिए कैसे हैं? वह कोई जबाब नहीं देता। वह सुनाई भी नहीं पड़ता उसको। वह भागा जा रहा है।
दूसरे दिन उसको मिलिए और उससे कहिए, आपको क्या हो गया था? कल मैंने नमस्कार भी किया, आपको रोका भी, हिलाया भी। आप एकदम छूटकर भागे। आपने मुझे देखा भी नहीं! आपको ख्याल है? वह आदमी कहेगा, मुझे कुछ ख्याल नहीं है। कल मेरे घर में आग लग गई थी।
तो जब घर में आग लगी हो, तो सारी चेतना उस तरफ केंद्रित हो जाती है। आंख की खिड़की से चेतना हट जाती है, कान की खिड़की से हट जाती है। फिर आंख में दिखाई पड़ता रहे, फिर भी दिखाई नहीं पड़ता। सुनाई पड़ता रहे कान में, फिर भी सुनाई नहीं पड़ता।
अगर अटेंशन हट गई हो इंद्रिय से, ध्यान हट गया हो, तो इंद्रिय बिल्कुल बेकार हो जाती है। जिस इंद्रिय से ध्यान जुड़ा होता है, वही इंद्रिय सार्थक, सफल होती है, सक्रिय होती है, सशक्त होती है।
ध्यान किसका है? ध्यान मालिक का है। इंद्रिय तो सिर्फ गुलाम है, इंस्ट्रूमेंट है, उपकरण है।
लेकिन इसे थोड़ा देखना पड़े। जब आप किसी को देखें, फिलहाल जैसे मुझे देख रहे हैं, तो थोड़ा ख्याल करें, आंख देख रही है या आप देख रहे हैं? तब आंख सिर्फ बीच का द्वार रह जाएगी। उस पार आप हैं; और जिसको आप देख रहे हैं, वह भी मैं नहीं हूं; वे भी मेरे द्वार हैं, जिनको आप देख रहे हैं; इस पार मैं हूं। जब दो आदमी मिलते हैं, तो दो तरफ दो आत्माएं होती हैं और दोनों के बीच में उपकरणों के दो जाल होते हैं। जब मैं हाथ फैलाकर आपके हाथ को अपने हाथ में लेता हूं, तो हाथ के द्वारा मैं अपनी आत्मा से आपको स्पर्श करने की कोशिश कर रहा हूं। हाथ तो सिर्फ उपकरण है।
उपकरणों को हम अपनी आत्मा समझ लें, तो फिर यह मालकियत जो कृष्ण चाहते हैं, कभी भी पूरी नहीं होने वाली है।
उपकरणों को समझें उपकरण, अपने को देखें पृथक। चलते समय रास्ते पर ख्याल रखें कि शरीर चल रहा है, आप नहीं चल रहे हैं। आप कभी चले ही नहीं; आप चल ही नहीं सकते। आप शरीर के भीतर ऐसे ही बैठे हैं, जैसे चलती हुई कार के भीतर कोई आदमी बैठा हो। कार चल रही है और आदमी बैठा हुआ है। यद्यपि आदमी की भी यात्रा हो जाएगी, लेकिन चलेगा नहीं। ऐसे ही आप अपने शरीर के भीतर बैठे ही रहे हैं, कभी चले नहीं। यात्रा आपकी बहुत हो जाती है, लेकिन चलता शरीर है, आप सदा बैठे हैं।
वह जो भीतर बैठा है, उसे जरा ख्याल करें चलते वक्त; वह तो नहीं चल रहा है, वह कभी नहीं चलता। भोजन करते वक्त ख्याल करें कि भोजन शरीर में ही जा रहा है, उसमें नहीं जा रहा है, जो आप हैं। इसे स्मरण रखें।
यह स्मरण, रिमेंबरेंस जितनी घनी हो जाएगी, उतना ही आप पाएंगे, आप अलग हैं। जिस दिन आप पाएंगे, आप अलग हैं, उसी दिन आपकी मालकियत की घोषणा संभव हो पाएगी। और कठिन नहीं है फिर यह घोषणा कर देना कि मैं मालिक हूं। लेकिन एक दफे पृथकता को अनुभव करना कठिन है; मालकियत की घोषणा आसान है।

और जो व्यक्ति इंद्रिय और शरीर का मालिक हो जाता है, वह अपना मित्र हो जाता है। मित्र इसलिए हो जाता है कि उसकी इंद्रियां वही करती हैं, जो उसके हित में है।
अन्यथा इंद्रियों के हाथ में चलाना बड़ा खतरनाक है। शरीर हमें चला रहा है, जिसके पास कोई भी होश नहीं, समझ नहीं, चेतना नहीं। इंद्रियां हमें दौड़ा रही हैं, लेकिन हमें ख्याल में नहीं है कि दौड़ किस तरह की है।
अभी रूस में एक मनोवैज्ञानिक कुछ समय पहले चल बसा, पावलव। उसने मनुष्य की ग्रंथियों पर बहुत से काम किए हैं। उसमें एक काम आपको ख्याल में ले लेने जैसा है। उसका यह कहना है कि अगर आदमी की कोई ग्रंथि, विशेष ग्रंथि काट दी जाए, कोई ग्लैंड अलग कर दी जाए, तो उसमें से कुछ चीजें तत्काल नदारद हो जाती हैं।
जैसे आप में क्रोध है। आप सोचते हैं, मैं क्रोध करता हूं, तो आप गलती में हैं। आपकी इंद्रियों में क्रोध की ग्रंथियां हैं और जहर इकट्ठा है। वह आपने जन्मों-जन्मों के संस्कारों से इकट्ठा किया है। वही आपसे क्रोध करवा लेता है--वह जहर।
पावलव ने सैकड़ों प्रयोग किए कि वह जहर की गांठ काटकर फेंक दी, अलग कर दी। फिर उस आदमी को आप कितनी ही गालियां दें, वह क्रोध नहीं कर सकता; क्योंकि क्रोध करने वाला उपकरण न रहा। ऐसे ही, जैसे मेरा हाथ आप काट दें। और फिर मुझसे कोई कितना ही कहे कि हाथ बढ़ाओ और मुझसे हाथ मिलाओ, मैं हाथ न मिला सकूं। कितना ही चाहूं, तो भी न मिला सकूं। क्योंकि हाथ तो नहीं है, चाह रह जाएगी नपुंसक पीछे। हाथ तो मिलेगा नहीं, उपकरण नहीं मिलेगा। इंद्रियों के पास अपने-अपने संग्रह हैं हार्मोंस के, और प्रत्येक इंद्रिय आपसे कुछ काम करवाती रहती है और आप उसके धक्के में काम करते रहते हैं। जब आपकी कामेंद्रिय पर जाकर वीर्य इकट्ठा हो जाता है, केमिकल्स इकट्ठे हो जाते हैं, वे आपको धक्का देने लगते हैं कि अब कामातुर हो जाओ। चौदह साल के पहले कोई कामवासना उठती हुई मालूम नहीं पड़ती। चौदह साल हुए, ग्लैंड परिपक्व हो जाती है, सक्रिय हो जाती है। सक्रिय हुई ग्लैंड कि उसने आपको धक्के देने शुरू किए कि कामवासना में उतरो, भागो, दौड़ो। जाओ, नंगी तस्वीरें देखो, फिल्म देखो, कहानी पढ़ो; कुछ करो। कुछ न मिले, तो रास्ते पर किसी को धक्का दे दो, गाली दे दो, कुछ न कुछ करो।
अब यह आप कर रहे हैं, इस भ्रांति में मत पड़ना, क्योंकि आप तो चौदह साल पहले भी थे। लेकिन एक ग्लैंड सक्रिय नहीं थी; एक इंद्रिय सोई हुई थी। अब वह जग गई है। वह इंद्रिय ही आपसे करा रही है। अगर इतना होश पैदा कर सकें कि यह इंद्रिय मुझसे करा रही है; और मैं पृथक हूं; जिस दिन आपको पृथकता का अनुभव हो जाए, उसी दिन आप अपनी मालकियत की घोषणा कर सकते हैं।
और मजा ऐसा है कि आपने घोषणा की कि मैं मालिक हूं, कि सारी इंद्रियां सिर झुकाकर पैर पर पड़ जाती हैं। आपकी घोषणा की सामर्थ्य चाहिए बस।
मैंने आपसे कहानी कही है कि उस महल का मालिक घर के बाहर है, या सोया है,
या बेहोश है, या मौजूद नहीं है। नौकर सब मालिक हो गए हैं। उस कहानी को हम थोड़ा और आगे बढ़ा ले सकते हैं कि मालिक वापस लौट आया। उसका रथ द्वार पर आकर रुका। जो नौकर दरवाजे पर था, उसने चिल्लाकर यह नहीं कहा कि मैं मालिक हूं। कैसे कहता! वह जल्दी से उठा और उसके पैर छुए। उसने कहा कि बहुत देर लगाई। हम बड़ी प्रतीक्षा कर रहे थे! वह मालिक घर के भीतर आया। सारे नौकरों में खबर पहुंच गई। वे सब प्रसन्न हैं; नाराज भी नहीं हैं; मालिक वापस लौट आया। अब घर में कोई घोषणा नहीं करता कि मैं मालिक हूं। मालिक की मौजूदगी ही घोषणा बन गई।
ठीक ऐसी ही घटना इंद्रियों के जगत में घटती है। एक दफे आप जान लें कि मैं पृथक हूं, और एक बार खड़े होकर कह दें कि मैं पृथक हूं, आप अचानक पाएंगे कि जो इंद्रियां कल तक आपको खींचती थीं, वे आपके पीछे छाया की तरह खड़ी हो गई हैं। वह आपकी आज्ञा मानना उन्होंने शुरू कर दिया है।
आप आज्ञा ही न दें, तो इंद्रियों का कसूर क्या है? आप मौजूद ही न हों,
तो आज्ञा कौन दे? और इंद्रियों को गाली मत देना, जैसा कि अधिक लोग देते रहते हैं। कई लोग यही गालियां देते रहते हैं कि इंद्रियां बड़ी दुश्मन हैं।

इंद्रियां दुश्मन नहीं हैं। इंद्रियां दुश्मन हैं, अगर आप मालिक नहीं हैं। ध्यान रखना, यह फर्क है। इंद्रियां मित्र हो जाती हैं, अगर आप मालिक हैं। इसलिए भूलकर इंद्रियों को गाली मत देना। कई बैठे-बैठे यही गालियां देते रहते हैं कि इंद्रियां बड़ी शत्रु हैं, बड़े गड्ढों में गिरा देती हैं! कोई इंद्रिय गड्ढे में नहीं गिराती। आप गड्ढे में गिरते हैं, तो इंद्रियां बेचारी साथ देती हैं। आप स्वर्ग की तरफ जाने लगें, इंद्रियां वहां भी साथ देती हैं; वे उपकरण हैं।
मगर आपने कभी मालकियत की घोषणा न की। आप अपने नौकरों के पीछे चल रहे हैं। कसूर किसका है? और नौकरों के पीछे चलकर फिर गालियां दे रहे हैं कि नौकर हमको भटका रहे हैं, वे हमको गलत जगह ले जा रहे हैं!
कम से कम कहीं तो ले जा रहे हैं! चला तो रहे हैं किसी तरह। आप तो मौजूद
ही नहीं हैं। आप तो मरे की भांति हैं; जिंदा ही नहीं हैं। आप हैं या नहीं, इसका भी पता नहीं चलता।
कृष्ण इसलिए बहुत ठीक डिस्टिंक्शन करते हैं। वे इंद्रियों को नहीं कहते कि इंद्रियां शत्रु हैं। और जो आदमी आपसे कहे, इंद्रियां शत्रु हैं, समझना कि उसे कुछ भी पता नहीं है। कृष्ण कहते हैं, मालिक न होना शत्रुता बन जाती है अपनी। मालिक हो गए कि मित्र हो गए।
आज के लिए इतना ही।
लेकिन उठेंगे नहीं। पांच मिनट कीर्तन के लिए रुकेंगे। शरीर तो कहेगा
कि उठो। जरा काबू रखना। इंद्रियां तो कहेंगी कि भागो। मगर जरा काबू रखना।
एक पांच मिनट जरा मालिक होने की कोशिश करना। जो भागा, हम समझेंगे, गुलाम है।
तो हम पांच मिनट थोड़ा कीर्तन में डूबेंगे, उसमें जरा डूबें। कम से कम बैठकर वहीं से कीर्तन में साथ दें, आवाज दें, ताली बजाएं, आनंदित हों।

गीता दर्शन, भाग तीन
गीता दर्शन अध्याय 6
चौथा प्रवचन

ज्ञान विजय है

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः।। 7।।
और हे अर्जुन, सर्दी-गर्मी और सुख-दुखादिकों में तथा मान और अपमान में जिसके अंतःकरण की वृत्तियां अच्छी प्रकार शांत हैं अर्थात विकाररहित हैं, ऐसे स्वाधीन आत्मा वाले पुरुष के ज्ञान में सच्चिदानंदघन परमात्मा सम्यक प्रकार से स्थित है अर्थात उसके ज्ञान में परमात्मा के सिवाय अन्य कुछ है ही नहीं।

सुख-दुख में, प्रीतिकर-अप्रीतिकर में, सफलता- असफलता में, जीवन के समस्त द्वंद्वों में जिसकी आंतरिक स्थिति डांवाडोल नहीं होती है; कितने ही तूफान बहते हों, जिसकी अंतस चेतना की ज्योति कंपती नहीं है; जो निर्विकार भाव से भीतर शांत ही बना रहता है--अनुद्विग्न, अनुत्तेजित--ऐसी चेतना के मंदिर में, परम सत्ता सदा ही विराजमान है, ऐसा कृष्ण ने अर्जुन से कहा। तीन बातें ख्याल में ले लेनी जरूरी हैं।
एक, द्वंद्व में जो थिर है, विपरीत अवस्थाओं में जो समान है। सफलता हो
कि असफलता, मान हो कि अपमान, जैसे उसके भीतर कोई अंतर ही नहीं पड़ता है, जैसे भीतर कोई स्पर्श ही नहीं होता है। घटनाएं बाहर घट जाती हैं और व्यक्ति भीतर अछूता छूट जाता है। पहले तो इस बात को ठीक से ख्याल में ले लेना जरूरी है कि इसका क्या अर्थ है, क्या अभिप्राय है? क्या प्रक्रिया इस तक पहुंचने की है? क्या मार्ग है?
पहले तो यह ठीक से समझ लें कि हम उद्विग्न कैसे हो जाते हैं? जब दुख आता है तब भी और जब सुख आता है तब भी, तब भीतर चेतना की ज्योति को कंपने का अवसर क्यों बन जाता है? क्या है कारण? क्या दुख ही कारण है? यदि दुख ही कारण है, तब तो कृष्ण जो कहते हैं, वह कभी संभव नहीं हो पाएगा, क्योंकि कृष्ण पर भी दुख आएंगे।
जब भीतर की चेतना समतुलता खो देती है सुख में, उत्तेजित हो जाती है, क्या सुख ही कारण है? यदि सुख ही कारण है, तब तो फिर इस पृथ्वी पर कोई भी कभी उस स्थिति को नहीं पा सकेगा, जिसकी कृष्ण बात करते हैं। स्वयं कृष्ण भी नहीं पा सकेंगे।
हम सब ऐसा ही सोचते हैं कि उद्विग्न हो गए दुख के कारण; उत्तेजित हो गए सुख के कारण। नहीं, सुख और दुख कारण नहीं हैं। जब तक आप सुख और दुख को कारण समझेंगे, तब तक उत्तेजित होते ही रहेंगे। आपने कारण ही गलत समझा है, आपका निदान ही भ्रांत है।
सुख से उत्तेजित नहीं होता है कोई। सुख के साथ अपने को एक समझ लेता है, इससे उत्तेजित होता है। दुख से कोई उत्तेजित नहीं होता। दुख में अपने को खो देता है, इसलिए उत्तेजित होता है।
दुख और सुख के बाहर खड़े रहने में हम समर्थ नहीं हैं; भीतर प्रवेश कर जाते हैं। एक आइडेंटिटी हो जाती है, एक तादात्म्य हो जाता है। जब आप पर दुख आता है, तो ऐसा नहीं लगता है, मुझ पर दुख आया। ऐसा लगता है, मैं दुख हो गया। जब सुख आपको घेर लेता है, तो ऐसा नहीं लगता है कि सुख आपके चारों ओर आपको घेरकर खड़ा है; ऐसा लगता है कि आप ही सुख हो गए; सुख की एक लहर मात्र।
यह तादात्म्य, यह सुख और दुख के साथ बंध जाने की वृत्ति ही उत्तेजना
का कारण है। और यह वृत्ति तोड़ी जा सकती है।
सुख-दुख आते रहेंगे। सुख-दुख बंद नहीं होते। बुद्ध के पैरों में भी कांटे चुभ जाते हैं। बुद्ध भी बीमार पड़ते हैं। बुद्ध को भी मृत्यु आती है।
लेकिन हमसे कुछ भिन्न ढंग से आती है। मृत्यु तो ढंग नहीं बदलेगी। मृत्यु तो अपने ही ढंग से आएगी। लेकिन बुद्ध अपने को इतना बदल लेते हैं कि मृत्यु के आने का ढंग पूरा का पूरा बदल जाता है।

बुद्ध मरने के करीब हैं। जीवन का दीया बुझने के करीब है। शरीर छूटने
को है। और एक भिक्षु बुद्ध से पूछता है, बहुत पीड़ा हो रही है। भिक्षु कहता है, बहुत मन दुखी हो रहा है। थोड़े ही क्षणों बाद आप नहीं होंगे! बुद्ध कहते हैं, जो नहीं था, वही नहीं हो जाएगा। जो था, वह रहेगा। मृत्यु आ रही है। बुद्ध कहते हैं, जो नहीं था, वही नहीं हो जाएगा। इसलिए तुम व्यर्थ दुखी मत हो जाओ। क्योंकि मृत्यु उसे ही मिटा सकती है, जो नहीं था; जिसे हमने सोचा भर था कि है। स्वप्न था जो। हमारी धारणा मात्र थी, अस्तित्व नहीं था जिसका। विचार मात्र था, वस्तु-जगत में जिसकी कोई संभावना भी न थी, वही मिट जाएगा। जो नहीं था, वही मिट जाएगा; वह था ही नहीं। और जो था, उसके मिटने का कोई उपाय नहीं है। जो है, वह रहेगा।
मृत्यु तो आ रही है, लेकिन बुद्ध मृत्यु को और तरह से देखते हैं। मैं मरूंगा, ऐसा बुद्ध नहीं देखते। बुद्ध देखते हैं, जो मर सकता है, जो मरा ही हुआ है, वह मरेगा। स्वयं को दूर खड़ा कर पाते हैं, तटस्थ हो पाते हैं। मृत्यु की नदी बह जाएगी, बुद्ध तट पर खड़े रह जाएंगे--अछूते, बाहर।
पीड़ा भी आती है, दुख भी आता है। सब आता रहेगा। रात भी आएगी, सुबह भी होगी। इस पृथ्वी पर आप ज्ञान को उपलब्ध हो जाएंगे, तो रात उजाली नहीं हो जाएगी। आप ज्ञान को उपलब्ध हो जाएंगे, तो दुख सुख नहीं बन जाएगा। आप ज्ञान को उपलब्ध हो जाएंगे, तो कांटा गड़ेगा तो फूल जैसा मालूम नहीं पड़ेगा, कांटे जैसा ही मालूम पड़ेगा। फिर अंतर कहां होगा?
भीतर की चेतना कब डांवाडोल होती है? पैर में कांटा चुभता है तब? नहीं;
जब भीतर की चेतना ऐसा मानती है कि मुझे कांटा चुभ गया, तब। अगर भीतर की चेतना कांटे के पार रह जाए, तो अनुद्विग्न रह जाती है। तो फिर चेतना अस्पर्शित, अनटच्ड, बाहर रह जाती है।
यह बाहर रह जाने की कला ही योग है। इस बाहर रह जाने की कला के संबंध में ही कृष्ण कह रहे हैं। और ऐसी थिर हो गई चेतना में, ऐसी जैसी ज्योति को हवा के झोंकों में कोई अंतर न पड़ता हो; ऐसी चेतना में ही परम सत्ता विराजमान हो जाती है। द्वार खुल जाते हैं उसके मंदिर के। वह विराजमान है ही। हमें उसका पता नहीं चलता।
चेतना दो में से एक चीज का ही पता चला सकती है। या तो तादात्म्य की दुनिया में संयुक्त रहे, तो संसार का पता चलता रहता है। या तादात्म्य की दुनिया से हट जाए, तटस्थ हो जाए, तो परमात्मा का पता चलना शुरू हो जाता है। ऐसा समझें कि हम बीच में खड़े हैं। इस ओर संसार है, उस ओर परमात्मा है।
जब तक हमारी नजर संसार के साथ जोर से चिपटी रहती है, तब तक पीछे नजर उठाने का मौका नहीं आता। जब संसार से नजर थोड़ी ढीली होती है, पृथक होती है, अलग होती है, तो अनायास ही--अनायास ही--परमात्मा पर नजर जानी शुरू हो जाती है। दृष्टि तो कहीं जाएगी ही। दृष्टि का कहीं जाना धर्म है। लेकिन दो तरफ
जा सकती है, पदार्थ की तरफ जा सकती है, परमात्मा की तरफ जा सकती है। और परमात्मा की तरफ जाने का एक ही सुगम उपाय है कि वह पदार्थ की तरफ तादात्म्य को उपलब्ध न हो। बस, परमात्मा की तरफ बहनी शुरू हो जाती है।
वह परमात्मा सदा मौजूद ही है। लेकिन हमारी दृष्टि उस पर मौजूद नहीं है। हम उससे विपरीत देखे चले जाते हैं। हम जो हैं, उससे हम अपना तादात्म्य नहीं करते; और जो हम नहीं हैं, उससे हम अपने को एक समझ लेते हैं! क्यों हो जाती है ऐसी भूल?
भूल इतनी बड़ी है कि उसे भूल कहना शायद ठीक नहीं। क्योंकि भूल उसे ही कहना चाहिए, जिसे कोई कभी करता हो। जिसे सभी निरंतर करते हैं, उसे भूल कहना एकदम ठीक नहीं मालूम पड़ता।
भूल का मतलब ही यह होता है कि सौ में कभी एक कर लेता हो, तो हम हकदार हैं कहने के कि कहें, भूल। सौ में सौ ही करते हैं। कभी करोड़ दो करोड़ में एक आदमी नहीं करता है। तो भूल एकदम सिर्फ भूल नहीं है; मैथमेटिकल इरर जैसी भूल नहीं है कि दो और दो जोड़े और पांच हो गए, ऐसी भूल नहीं है। वह कोई कभी करता है। सिर्फ भूल कहने से नहीं चलेगा; भ्रांति है।
भूल और भ्रांति में थोड़ा फर्क है। और भूल और भ्रांति के फर्क को ख्याल में ले लेना, दूसरी बात है। तो इस सूत्र को समझा जा सकेगा।

भूल वह है, जिसमें व्यक्ति जिम्मेवार होता है, खुद की ही कुछ गलती से
कर जाता है। भ्रांति वह है, जिसमें जाति, मनुष्य जैसा है, वही जिम्मेवार होती है। मनुष्य के होने का ढंग ही जिम्मेवार होता है।
रास्ते से आप गुजर रहे हैं और एक रस्सी को आपने सांप समझ लिया, तो वह आपकी भूल है। सब गुजरने वाले सांप नहीं समझेंगे। वह सांप से डरने वाला चित्त, सांप से भयभीत चित्त, सांप के अनुभवों से भरा हुआ चित्त, रस्सी से भी सांप का अनुमान कर लेगा। वह इनफरेंस है उसका कि कहीं सांप न हो। लेकिन सभी को सांप नहीं दिखाई पड़ेगा। वह भूल है, इसलिए बहुत कठिनाई नहीं है। टार्च जला ली जाए, दीया जला लिया जाए और भूल मिट जाएगी। वह व्यक्तिगत है। वह मनुष्य के चित्त से पैदा नहीं होती; व्यक्तिगत चित्त से पैदा होती है। वह इंडिविजुअल है, कलेक्टिव नहीं है।
लेकिन जिस भूल की मैं बात कर रहा हूं या कृष्ण इस सूत्र में बात कर रहे हैं, वह कलेक्टिव है। ऐसा नहीं है कि किसी को रस्सी सांप दिखाई पड़ती है। जो भी गुजरता है, उसी को दिखाई पड़ती है। बल्कि किनारे बुद्ध और महावीर और कृष्ण जैसे लोग खड़े होकर चिल्लाते रहें कि यह सांप नहीं, रस्सी है, फिर भी सांप ही दिखाई पड़ता है। तो इसको भूल कहना आसान नहीं है।
दीए जला लो, रोशनी कर दो, चिल्ला-चिल्लाकर कहते रहो कि यह रस्सी है, सांप नहीं! फिर भी जो गुजरता है, सुनकर भी उसे सांप ही दिखाई पड़ता है, रस्सी दिखाई नहीं पड़ती। तो यह भूल कलेक्टिव माइंड की है, इसलिए भ्रांति है।
यह उस तरह की है, जैसे हम एक लकड़ी को पानी में डाल दें और वह तिरछी हो जाए। तिरछी होती नहीं, दिखाई पड़ती है। लकड़ी को बाहर खींच लें, वह फिर सीधी मालूम होती है। फिर पानी में डालें, वह फिर तिरछी मालूम होती है। अंदर लकड़ी को पानी में हाथ डालकर टटोलें, वह सीधी मालूम पड़ती है। लेकिन आंख को फिर भी तिरछी दिखाई पड़ती है! वह भूल नहीं है, भ्रांति है। आप हजार दफे जान लिए हैं भलीभांति कि लकड़ी तिरछी नहीं होती पानी में, फिर भी जब लकड़ी पानी में दिखाई पड़ेगी, तो तिरछी ही दिखाई पड़ेगी।
भ्रांति वह है, जो समूहगत मन से पैदा होती है।
इसे मैं भ्रांति कहता हूं, हमारे तादात्म्य को। दुख और सुख के साथ हम अपने को एकदम एक कर लेते हैं। यह समूहगत मन, कलेक्टिव माइंड से पैदा होने वाली भ्रांति है। जैसे पानी में लकड़ी डाल दी और वह तिरछी मालूम हुई। यह सांप दिखाई पड़ने लगे रस्सी में, वैसी भूल नहीं है। इसलिए हजार दफे समझने के बाद, फिर, फिर वही भूल हो जाती है।
अचेतन से आती है यह भ्रांति। आप कम जिम्मेवार हैं, अभी। आप अनंत जन्मों में जिस ढंग से जीए हैं, उसकी जिम्मेवारी ज्यादा है। गहरे में बैठ गई है यह बात। क्यों बैठ गई है? बैठ जाने का सूत्र भी समझ लेना चाहिए। इतने गहरे में जब भ्रांति बैठी हो, तो उसका कोई सूत्र बहुत गहरा होता है। और इसीलिए तोड़ने में इतनी मुश्किल पड़ती है। गीता चिल्लाती रहती है, पढ़ते रहते हैं। कोई तोड़ता नहीं। बहुत मुश्किल मालूम पड़ता है। क्योंकि गीता तो आप पढ़ते हैं बुद्धि से, जो बहुत ऊपर है। और भ्रांति आती है बहुत गहरे से आपके। उन दोनों का कोई मेल नहीं हो पाता।
पढ़ लेते हैं, सुख-दुख में समबुद्धि रखनी चाहिए। फिर जरा-सा पैर में कांटा गड़ा, और सब सूत्र खो जाते हैं। गीता भूल जाती है, पैर पकड़ लेते हैं। और कहते हैं, मुझे कांटा गड़ गया! वह जो बुद्धि ने सोचा था, वह काम नहीं पड़ता। बुद्धि से भी ज्यादा गहरी भ्रांति है कहीं। भ्रांति अचेतन में है। और क्यों है?
दुख के कारण नहीं है भ्रांति; भ्रांति सुख के कारण है। भ्रांति दुख के कारण नहीं है, इस बात को तो कोई भी मानने को राजी हो जाएगा। यह बड़ी सुखद है बात कि यह पता चल जाए कि पैर में कांटा गड़ता है, वह मुझे नहीं गड़ता। यह तो कोई भी मानने को राजी हो जाएगा। बीमारी आती है, वह मुझे नहीं आती। मौत आती है, वह मुझे नहीं आती। यह तो कोई भी मानने को राजी हो जाएगा।
नहीं, कठिनाई दुख से नहीं है; कठिनाई सुख से है। सुख मैं नहीं हूं, यह मानने को हम स्वयं ही राजी नहीं होते। इसलिए दुख सवाल नहीं है, सवाल सुख है। जब आप कहते हैं कि मैं जिंदा हूं, तो फिर आपको कहना पड़ेगा कि मैं मरूंगा।

ध्यान रखें, भूल मरने से नहीं आती, जिंदगी के साथ आती है। जिंदगी--मैं जिंदा हूं! और अगर भूल तोड़नी है, तो जिंदगी से तोड़नी पड़ेगी, मौत से नहीं। लेकिन लोग मौत से तोड़ने का उपाय करते हैं। बैठ-बैठकर याद करते रहते हैं कि आत्मा अमर है। मैं कभी नहीं मरूंगा।
लेकिन उनको ख्याल नहीं है कि जब आप अपने को जीवित समझ रहे हैं, तो एक दिन आपको, मरता हूं, यह भी समझना पड़ेगा। यह उसका दूसरा हिस्सा है। लेकिन कोई भी बैठकर यह स्मरण नहीं करता कि मैं जीवित कहां हूं! यह बहुत घबड़ाने वाली बात होगी। अगर तोड़ना है, तो यहां से तोड़ना पड़ेगा।
जब सुख आए, तब तो मन तत्काल राजी हो जाता है कि मैं सुख हूं। जब कोई गले में फूलमाला डाले, तब तो ऐसा लगता है, मेरे ही गले में डाली है। मुझ में कुछ गुण हैं। और जब कोई जूतों की माला गले में डाल दे, तो हम समझते हैं, वह आदमी शैतान था, दुष्ट था; मेरे गले में नहीं डाली।
जब कोई सम्मान करे, तब तो तादात्म्य करने के लिए बड़ी तैयारी होती है। लेकिन जब कोई अपमान करे, तब तो हम खुद ही तादात्म्य तोड़ना चाहते हैं। दुख से तो कोई तादात्म्य बनाना चाहता नहीं। बनता है। बनता इसलिए है कि सुख से सब तादात्म्य बनाना चाहते हैं।
सुख से हम क्यों तादात्म्य बनाना चाहते हैं? और जब तक सुख से न टूटे,
तब तक दुख से कभी न टूटेगा। जब तक सम्मान से न टूटे, तब तक अपमान से न टूटेगा। जब तक प्रशंसा से न टूटे, तब तक निंदा से न टूटेगा। जब तक जीवन से न टूटे, तब तक मृत्यु से न टूटेगा।
इसलिए साधक को शुरू करना है सुख से। दुख से तो सभी शुरू करते हैं, कभी नहीं टूटता। सुख से शुरू करना है। सुख में अपने को बाहर रखने की चेष्टा! जब सुख आए, तब दूर खड़े करने की कोशिश अपने को!
और यह बड़े मजे की बात है कि सुख से कोई शुरू नहीं करता। यद्यपि सुख से कोई शुरू करे, तो बहुत सरल है। यह दूसरी बात आपसे कहना चाहता हूं। सुख से कोई शुरू नहीं करता। सुख से कोई शुरू करे, तो बहुत सरल है। दुख से लोग शुरू करते हैं। दुख से शुरू किया नहीं जा सकता। दुख से शुरू करना असंभव है। हमारे संबंध सुख से हैं, दुख तो सुख के पीछे आता है। इनडायरेक्ट हैं उससे हमारे संबंध, डायरेक्ट नहीं हैं; परोक्ष हैं, प्रत्यक्ष नहीं हैं। जिससे हमारे प्रत्यक्ष संबंध हैं, उससे ही संबंध तोड़े जा सकते हैं। और सरलता से तोड़े जा सकते हैं।
लेकिन सुख से कोई शुरू नहीं करता, और वहीं सरलता से टूट सकते हैं। दुख
से सभी लोग शुरू करते हैं, वहां कभी टूट नहीं सकते। इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि दुखी लोग धर्म की तलाश में निकल जाते हैं। सुखी आदमी धर्म की तलाश में कभी नहीं जाता।
एक मित्र अपने किसी मित्र को मेरे पास लाए थे। कई बार मुझे कहा था कि उन्हें आपके पास लाना है। लेकिन वे आने को राजी नहीं होते, वे कहते हैं, मैं सब भांति सुखी हूं। अभी उनके पास जाने की क्या जरूरत! मैंने कहा, तो थोड़ा ठहरो। क्योंकि सब भांति सुखी रहना सदा नहीं हो सकता। थोड़ा रुको। थोड़ा ठहरो। थोड़ा धीरज रखो। जल्दी दुख आ जाएगा। और जो आदमी कहता है कि मैं सब भांति सुखी हूं, अभी मैं क्यों जाऊं; वह दुख में आने को राजी हो जाएगा, हालांकि तब आना बेकार होगा। अभी आने में कुछ हो सकता है। क्योंकि सुख बीज है, दुख फल है। सुख के बीज को नष्ट करना बहुत आसान है; दुख के बड़े विराट वृक्ष को नष्ट करना बहुत मुश्किल हो जाएगा।
और जैसे एक बीज को बोने से वृक्ष एक और करोड़ बीज हो जाते हैं, ऐसे ही एक सुख की आकांक्षा करने से बड़े दुख का वृक्ष फलित होता है। लेकिन उस दुख के वृक्ष में करोड़ सुखों की आकांक्षाएं फिर लग जाती हैं।
मैंने कहा, लेकिन रुको। यही नियम है कि लोग दुख में धर्म की तलाश करते हैं, जब कि तलाश नहीं की जा सकती। और लोग सुख में कहते हैं कि हम तो सुखी हैं; तलाश की क्या जरूरत है?
ऐसा क्यों होता है? ऐसा इसलिए होता है कि लोग धर्म को भी सुख के लिए तलाश करते हैं। धर्म को भी सुख के लिए तलाश करते हैं! इसलिए दुख में कहते हैं कि ठीक है, अभी चित्त दुखी है, तो हम धर्म की तलाश करें।

और धर्म का सुख से कोई भी संबंध नहीं है। धर्म का तो पूरा विज्ञान सुख
से तोड़ने का विज्ञान है। यद्यपि जो सुख से टूट जाता है, वह आनंद से जुड़ जाता है। वह बिल्कुल दूसरी बात है।
कभी भूलकर भी आप यह मत समझना कि जिसे आप सुख कहते हैं, उससे आनंद का कोई भी संबंध है। इतना ही संबंध हो सकता है--है--कि सुख के कारण आनंद कभी नहीं आ पाता। बस इतना ही संबंध है। सुख के कारण ही अटकाव खड़ा रहता है और आनंद के द्वार तक आप नहीं पहुंच पाते।
फिर जैसा होता है, उनकी पत्नी चल बसी; दुख आ गया। फिर उनके मित्र उन्हें ले आए। कहने लगे कि पत्नी चल बसी है; मैं बहुत दुखी हो गया हूं। चित्त बहुत उद्विग्न है। कुछ रास्ता बताएं। तो मैंने उन्हें कहा कि अब ठीक से दुखी ही हो लो। ठीक से दुखी हो लो। रोओ, छाती पीटो, सिर पटको। वे बहुत चौंके। उन्होंने कहा कि आपसे ऐसी आशा लेकर नहीं आया। कुछ कंसोलेशन, कुछ सांत्वना चाहिए! तो मैंने कहा कि फिर तुम मेरे पास भी सुख की ही तलाश में आए, कि किसी तरह तुम्हारे दुख को हलका करूं और तुम्हें थोड़ा सुख मिल जाए! इसके पहले कि तुम नई पत्नी खोजो, थोड़ा मैं तुमको सुव्यवस्थित कर दूं। इस शक्ल को लेकर नई पत्नी खोजने में बहुत मुश्किल होगी।
वे कहने लगे, आप कैसी बातें कर रहे हैं? मेरी पत्नी मर गई है! मैंने उनसे कहा कि ईमान से पूछो अपने मन से, नई पत्नी की तलाश शुरू नहीं हो गई है? वे कहने लगे, आपको कैसे पता चल गया? मैंने कहा, मुझे कुछ पता नहीं चल गया। आदमी के मन को मैं जानता हूं; तुम्हारे बाबत मैं कुछ नहीं कह रहा हूं। जल्दी ही तुम नई पत्नी खोज लोगे। फिर तुम कहोगे, मैं सब सुख में हूं; अब धर्म की क्या जरूरत है!
धर्म तुम्हारा उपकरण नहीं बन सकता। धर्म कोई इमरजेंसी मेजर नहीं है
कि तुम तकलीफ में हो, तो जल्दी से इमरजेंसी दरवाजा खोल लिया धर्म का और चले गए। धर्म तुम्हारे दुख से छुटकारे का उपाय नहीं है। अगर ठीक से समझें, तो धर्म सुख से छुटकारे का उपाय है। उसके लिए तो मन कभी तैयार नहीं होता है, इसलिए कभी धर्म जीवन में आता नहीं।
और ध्यान रहे, जो सुख से छूट जाता है, वह दुख से तत्काल छूट जाता है। और
जो दुख से छूटना चाहता है और सुख पाना चाहता है, वह कभी दुख से छूट ही नहीं सकता, क्योंकि वह सुख से नहीं छूट सकता।
दुख सुख का ही दूसरा पहलू है, अनिवार्य। और दुख को छोड़ने की हमारी तैयारी है, उससे हम छूट नहीं सकते। सुख को छोड़ने की हमारी तैयारी नहीं है। मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि सुख की पीड़ा को समझें। सुख के पूरे रूप
को समझें। हर सुख के पीछे छिपे हुए दुख को समझें। हर सुख के धोखे के प्रति जागें। हर सुख सिर्फ प्रलोभन है आपको फिर एक नए दुख में गिरा देने का। जब तक सुख के प्रति इतना होश न हो, तब तक आप किनारे पर खड़े न हो पाएंगे। लाओत्से कहता था, जब भी कोई मेरा सम्मान करने आया, तो मैंने कहा, मुझे माफ करो, क्योंकि मैं अपमान नहीं चाहता हूं। उस आदमी ने कहा, लेकिन हम सम्मान देने आए हैं! लाओत्से ने कहा, तुम सम्मान देने आए हो, और अगर मैं सम्मान लेने को राजी हुआ, तो आस-पास गांव के कहीं अपमान निकट ही होगा। वह अपनी यात्रा शुरू कर देगा। क्योंकि मैंने कभी सुना नहीं कि ये दोनों अलग-अलग जीते हैं। ये पेयर है, जोड़ा है। ये साथ ही चलते हैं। इनमें कभी डायवोर्स हुआ नहीं है। इनमें कभी कोई तलाक नहीं हुआ है। ये सदा साथ ही खड़े रहते हैं। यह अनिवार्य जोड़ा है। तुम मुझ पर कृपा करो। तुम मेरे अपमान को निमंत्रण मत दिलवाओ। तुम अपने सम्मान को वापस ले जाओ।
लाओत्से को उस मुल्क के सम्राट ने धन-धान्य से भेंट देनी चाही। लोगों
ने कहा कि इतना बड़ा अदभुत फकीर तुम्हारे देश में और भीख मांगे, तुम्हारे लिए शोभा नहीं है। सम्राट खुद उपस्थित हुआ लाओत्से के झोपड़े पर, बहुत रथों में धन-धान्य, वस्त्र, आभूषण, सब लेकर, करोड़ों का सामान लेकर। लाओत्से ने कहा कि अभी मैं मेरा मालिक हूं, तुम मुझे नाहक भिखारी बना दोगे। तुम अपना यह सब साज-सामान ले जाओ। और अगर तुम्हें मेरी मालकियत से कोई एतराज हो, तो मैं तुम्हारे राज्य की भूमि छोड़कर चला जाऊं। लेकिन तुम मुझे परेशान मत करो। राजा ने कहा कि क्या कहते हैं आप? मैं तो सुख देने आया था! लाओत्से ने

कहा, अनंत जन्मों का अनुभव यह कहता है कि जो भी सुख देने आया, वह दुख के अतिरिक्त कुछ दे नहीं गया। अब और धोखा नहीं।
लेकिन जागना पड़े सुख में; जागना पड़े सम्मान में; जागना पड़े वहां, जहां अहंकार को तृप्ति मिलती है; अहंकार के चारों तरफ फूल सज जाते हैं, वहां जागना पड़े। और वहां जागना सरल है, क्योंकि शुरुआत है वहां; अभी यात्रा शुरू होती है। दुख तो अंत है, सुख प्रारंभ है। और सदा जो प्रारंभ में सजग हो जाए, वह बाहर हो सकता है। बीच में सजग होना बहुत मुश्किल हो जाता है। लेकिन हम प्रारंभ में सोना चाहते हैं। लोग कहते हैं, सुख की नींद। सुख
एक नींद ही है। सुख में बहुत मुश्किल से कोई जागता है।
दूसरा सूत्र स्मरण रखें कि जरूर जल्दी, आजकल में सुख आएगा, तब सजग रहें कि दुख पीछे खड़ा है, प्रतीक्षा कर रहा है। जरूर आजकल में सम्मान आएगा, तब चौंककर खड़े हो जाएं; लाओत्से को स्मरण करें कि अब यह आदमी अपमान का इंतजाम किए दे रहा है। जल्दी कोई सिंहासन पर बैठने का मौका आएगा, तब भाग खड़े हों। फिर दुख से आपकी कभी कोई मुलाकात न होगी।
और एक बार यह सूत्र आपकी समझ में आ गया कि सुख से बचने की सामर्थ्य दुख
से बचने की पात्रता है; और जिस दिन आप सुख से बचने की सामर्थ्य जुटा लेते हैं, दुख से बचने की पात्रता मिल जाती है, उसी दिन आनंद का द्वार खुल जाता है। जैसे ही सुख से कोई अपने को दूर खड़ा कर ले, वैसे ही चित्त की डोलती हुई लौ थिर हो जाती है। और जो सुख में नहीं डोला, वह दुख में कभी नहीं डोलेगा। ध्यान रखें, सुख में डोल गए, तो दुख में डोलना ही पड़ेगा। वह अनिवार्य कंपन है, जो सुख के पैदा हुए कंपनों की परिपूर्ति करते हैं, कांप्लिमेंट्री हैं। जैसे घड़ी का पेंडुलम बाएं आपने घुमा दिया, तो वह दाएं जाएगा, जाना ही पड़ेगा। कोई उपाय नहीं है बचने का। सुख में कंपित हो गए, तो दुख में कंपित होना पड़ेगा।
लेकिन हम सुख में कंपित होना चाहते हैं और दुख में कंपित नहीं होना चाहते। इससे उलटा करना पड़े। सुख में कंपित न होना चाहें, फिर आपको दुख छू भी नहीं सकेगा। सुख की खोज में रहें कि जब सुख मिले, तब होश से भर जाएं और देखें कि सुख आपको कंपित तो नहीं कर रहा है।
कठिन नहीं है। बस, स्मरण करने की बात है। कठिन जरा भी नहीं है। हमें ख्याल ही नहीं है, बस इतनी ही बात है। हमें स्मृति ही नहीं है इस बात की कि सुख ही हमारा दुख है। दुख को हम दुख समझते हैं, सुख को हम सुख समझते हैं; बस, वहीं भ्रांति है। और वह भ्रांति समूहगत है। व्यक्तिगत नहीं है, समूहगत है।
जब आपका बेटा स्कूल से प्रथम कक्षा में उत्तीर्ण होकर घर नाचता हुआ आए, तब आप जानना कि वह दुख की तैयारी कर रहा है। काश, मां-बाप बुद्धिमान हों, तो उसे कहें कि इतने सुखी होने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि जितना तू सुखी होगा, उतना ही दुख दूसरे पलड़े पर रख दिया जाएगा, जो आजकल में लौट आएगा। उस बच्चे में समूहगत मन पैदा हो रहा है, और हम सहयोग दे रहे हैं। हम भी घर में बैंड-बाजा बजाकर, फूल-मिठाई बांट देंगे। हमने उसके सुख के साथ तादात्म्य होने की, जोड़ बांधने की चेष्टा शुरू कर दी। हमने उसके मन को एक दिशा दे दी, जो उसे दुख में ले जाएगी।
हम सब बच्चों को अपनी शक्ल में ढाल देते हैं। हमारे मां-बाप हमें ढाल
गए थे, उनके मां-बाप उन्हें ढाल गए थे! बीमारियां बीमारियों को ढालती चली जाती हैं। रोग रोग को जन्म देते चले जाते हैं।
उस बच्चे के भी अतीत के अनुभव हैं, उस बच्चे के भी पिछले जन्मों के अनुभव हैं। उनमें भी उसने इसी भूल को दोहराया था। इस जन्म में फिर हम बचपन से उसके दिमाग को, उसके मस्तिष्क को फिर कंडीशन करते हैं, फिर संस्कारित करते हैं। सुख में सुखी होने की तैयारी दिखलाते हैं। फिर दुख में वह दुखी होता है।
जन्म होता है, तो बैंड-बाजा बजाकर हम बड़ी खुशी मनाते हैं। हमने कंडीशनिंग शुरू कर दी। आप कहेंगे, छोटे बच्चे को तो पता भी नहीं चलेगा, पहले दिन के बच्चे को कि बैंड-बाजा खुशी में बज रहा है।
लेकिन अभी जो लोग, जो वैज्ञानिक मनुष्य के शरीर की स्मृति पर काम करते हैं, बाडी मेमोरी पर, उनका कहना है कि वे बैंड-बाजे भी बच्चे के अचेतन मन

में प्रवेश करते हैं। वे बैंड-बाजे ही नहीं, मां के पेट में जब बच्चा होता है, तब भी जो घटनाएं घटती हैं, वे भी बच्चे की अचेतन स्मृति का हिस्सा हो जाती हैं; वे भी बच्चे को निर्मित करती हैं।
ये बैंड-बाजे, यह खुशी की लहर, यह चारों तरफ जो सुख के साथ एक होने की भावना प्रकट की जा रही है, इसकी तरंगें भी बच्चे में प्रवेश कर जाती हैं। फिर यही तरंगें मृत्यु के वक्त दुख लाएंगी।
अगर मृत्यु के वक्त दुख न लाना हो, तो जन्म के वक्त सुख के साथ तादात्म्य पैदा करने की व्यवस्था को हटाएं। सुख जहां से शुरू होता है, वहां से तोड़ना शुरू करें।
योग सुख में जागने का नाम है। जागकर देखें कि मैं अलग हूं। और फिर आप अपने दुख में भी जागकर देख सकेंगे कि अलग हैं; कोई अड़चन न आएगी, कोई कठिनाई न पड़ेगी। तटस्थ होते रहें।
समय लगेगा। समय लगने का आंतरिक कारण नहीं है; समय लगने का कुल कारण इतना है कि हमारी आदतें मजबूत हैं और पुरानी हैं। डोलने की आदत मजबूत है, बहुत पुरानी है। हमें पता ही नहीं चलता, कब हम डोलने लगे। जब कोई आपकी प्रशंसा के दो शब्द कहता है, तब आपको पता ही नहीं चलता कि मन सुनने के साथ ही, बल्कि शायद सुनने के थोड़ी देर पहले ही डोल गया। उस आदमी का चेहरा देखा। लगा कि कुछ प्रशंसा में कहेगा, और भीतर कुछ डोल गया। यह भी जानकर डोल जाएगा कि प्रशंसा झूठी है, तो भी डोल जाएगा। क्योंकि आप भी जानते हैं कि आप भी दूसरों की झूठी प्रशंसाएं कर रहे हैं और उनको डुला रहे हैं! और कोई आपकी भी प्रशंसा कर रहा है और आपको डोला रहा है!
बिना आपको कंपित किए, आपका उपयोग नहीं किया जा सकता। आपको कंपाकर ही उपयोग किया जा सकता है। इसलिए इतनी खुशामद दुनिया में चलती है। इतनी खुशामद चलती है, क्योंकि पहले आपको थोड़ा डांवाडोल किया जाए, तभी आपका उपयोग किया जा सकता है। डांवाडोल होते ही आप कमजोर हो जाते हैं।
ध्यान रखें, जैसे ही आपकी चेतना कंपी कि आप कमजोर हो जाते हैं। फिर आपका कुछ भी उपयोग किया जा सकता है। जो आपकी खुशामद कर रहा है, वह आपको कमजोर कर रहा है, वह आपको भीतर से तोड़ रहा है।
इसलिए कृष्ण ने इसमें एक शब्द उपयोग किया है कि जो सुख-दुख में अनडोल
रह जाए, वही स्वाधीन है। इसमें एक शब्द उपयोग किया है कि वही स्वाधीन है, जो सुख और दुख में सम रह जाए। उसे दुनिया में कोई पराधीन नहीं बना सकता। हमें तो कोई भी पराधीन बना सकता है, क्योंकि हमें कोई भी कंपा सकता है। और जैसे ही हम कंपे कि जमीन हमारे पैर के नीचे की गई। कोई भी कंपा सकता है। कोई भी आपसे कह सकता है कि ऐसी सुंदर शक्ल कभी देखी नहीं, बहुत सुंदर चेहरा है आपका! कंप गए आप। अब आपका उपयोग किया जा सकता है; अब आपसे गुलामी करवाई जा सकती है।
कोई भी आपसे कह देता है कि आपकी बुद्धिमत्ता का कोई मुकाबला नहीं; बेजोड़ हैं आप! कंप गए आप। और उस आदमी ने आपको बुद्धिमान कहकर बुद्धू बना दिया! अब आपसे कम बुद्धि का आदमी भी आपसे गुलामी करवा सकता है। कंप गए आप। कंपे कि कमजोर हो गए। कंपे कि पराधीन हुए।
जो आदमी भीतर कंपित होता है सुख-दुख में, वह कभी भी गुलाम हो जाएगा। उसकी पराधीनता सुनिश्चित है। वह पराधीन है ही। एक छोटा-सा शब्द, और उसको गुलाम बनाया जा सकता है। सिर्फ उस आदमी को पराधीन नहीं बनाया जा सकता, जिसको सुख और दुख नहीं कंपाते। उसको अब इस दुनिया में कोई पराधीन नहीं बना सकता। कोई उपाय न रहा। उस आदमी को हिलाने का उपाय न रहा। अब तलवारें उसके शरीर को काट सकती हैं, लेकिन वह अडिग रह जाएगा। अब सोने की वर्षा उसके चरणों में हो सकती है, लेकिन मिट्टी की वर्षा से ज्यादा कोई परिणाम नहीं होगा। अब सारी पृथ्वी का सिंहासन उसे मिल सकता है, वह उस पर ऐसे ही चढ़ जाएगा, जैसे मिट्टी के ढेर पर चढ़ता है; और ऐसे ही उतर जाएगा, जैसे मिट्टी के ढेर से उतरता है।
भीतरी शक्ति अकंपन से आती है। भीतरी शक्ति, आंतरिक ऊर्जा, परम शक्ति
उस व्यक्ति को उपलब्ध होती है, जो अकंप को उपलब्ध हो जाता है। और अकंप वही हो सकता है, जो सुख-दुख में कंपित न हो।

योगारूढ़ होने के पहले यह अकंप, यह निष्कंप दशा उपलब्ध होनी जरूरी है।
और इस निष्कंप दशा में ही आदमी के पास इतनी ऊर्जा, इतनी शक्ति, इतनी स्वतंत्रता और इतनी स्वाधीनता होती है, कहना चाहिए, आदमी स्व होता है, स्वयं होता है कि इस पात्रता में ही परमात्मा से मिलन है; इसके पहले कोई मिलन नहीं है।
जो सुख-दुख से कंप जाता है, वह इतना कमजोर है कि परमात्मा को सह भी न पाएगा। इतना कमजोर है! एक चांदी के सिक्के से जिसके प्राण डांवाडोल हो जाते हैं। एक जरा-सा कांटा जिसकी आत्मा तक छिद जाता है। एक जरा-सी तिरछी आंख किसी की जिसकी रातभर की नींद को खराब कर जाती है। वह आदमी इतना कमजोर है कि कृपा है परमात्मा की कि उस आदमी को न मिले। नहीं तो आदमी टूटकर, फूटकर, एक्सप्लोड ही हो जाएगा, बिल्कुल नष्ट ही हो जाएगा।
इतनी बड़ी घटना उस आदमी की जिंदगी में घटेगी, जो एक रुपए से कंप जाता है, जिसका एक रुपया रास्ते पर खो जाए, तो मुश्किल में पड़ जाता है! इतनी बड़ी घटना को झेलने की उसकी सामर्थ्य नहीं होगी। वह इतना क्रिस्टलाइज्ड नहीं है, इतना संगठित नहीं है भीतर, इतना सत्तावान नहीं है कि परमात्मा को झेल सके। वह पात्रता उसकी नहीं है।
नियम से सब घटता है। जिस दिन आप पात्र हो जाएंगे स्वाधीन होने के, उसी दिन परम सत्ता आप पर अवतरित हो जाती है। वह सदा उतरने को तैयार है, सिर्फ आपकी प्रतीक्षा है। और आप इतनी क्षुद्र बातों में डोल रहे हैं कि जिसका कोई हिसाब नहीं। कभी हिसाब लगाकर देखें कि आपको कैसी-कैसी बातें डांवाडोल कर जाती हैं! कैसी क्षुद्र बातें डांवाडोल कर जाती हैं! रास्ते से गुजर रहे हैं, दो आदमी जरा जोर से हंस देते हैं; आप डांवाडोल हो जाते हैं।
एक मित्र को संन्यास लेना है। वे मुझसे रोज कहते हैं, लेना है, लेकिन मैं तो इन्हीं कपड़ों में संन्यासी हूं। अनेक लोग आकर मुझसे यही कहते हैं कि हममें कमी ही क्या है? हम तो इन्हीं कपड़ों में संन्यासी हैं! तो मैं कहता हूं, फिर डर क्या है? डाल लो गेरुए वस्त्र। तब कंप जाते हैं। बड़ा शक्तिशाली संन्यास है! वह गेरुआ वस्त्र डालने से कंपता है। क्यों कंपता है?
वह दूसरों की आंखों का कंपन है। रास्ते से गुजरेंगे, लोग क्या कहेंगे? दफ्तर में जाएंगे, लोग क्या कहेंगे? दफ्तर में गए, कहीं चपरासी ने हंस दिया ऐसा मुंह करके, मुस्कराकर, तो फिर क्या होगा? कोई क्या कहेगा? इतना भयभीत कर देती है बात। इतने कमजोर चित्त में बहुत बड़ी घटनाएं नहीं घट सकतीं।
गेरुए कपड़े पहनने से कोई बड़ी घटना नहीं घट जाएगी। लेकिन गेरुआ कपड़ा पहनने से एक सूचना हो जाती है कि अब दूसरे क्या कहते हैं, इसकी फिक्र छोड़ी। यह बड़ी घटना है। गेरुए कपड़े में कुछ भी नहीं है, लेकिन इस घटना में बहुत कुछ है।
लोग क्या कहेंगे! लोगों के कहे हुए शब्द कितना कंपा जाते हैं! शब्द! जिनमें कुछ भी नहीं होता है; हवा के बबूले। एक आदमी ने होंठ हिलाए। एक आवाज पैदा हुई हवा में। आपके कान से टकराई। आप कंप गए। इतनी कमजोर आत्मा! नहीं; फिर बड़ी घटनाओं की पात्रता पैदा नहीं हो सकती।
कृष्ण कहते हैं कि सुख-दुख में जो अडोल रह जाए, अकंप, उसकी चेतना थिर होती है। और वैसी चेतना परमात्मा के भीतर विराजमान है और वैसी चेतना में परमात्मा विराजमान है।
चलें निष्कंप चेतना की तरफ! बढ़ें! सुख से शुरू करें, दुख से कभी शुरू
मत करना। सुख से शुरू करें, दुख तक पहुंच जाएगी बात। दुख से कभी शुरू मत करना। दुख से कभी शुरू नहीं होती बात।
सुख को ठीक से देखें और पाएंगे कि सुख दुख का ही रूप है। सुख में ही तलाश करें और पाएंगे कि सुख में ही दुख के सारे के सारे बीज, सारी संभावना छिपी है। और सुख से अपने को न कंपने दें।
न कंपने देने के लिए क्या करना पड़ेगा? क्या आंख बंद करके खड़े हो जाएंगे कि सुख न कंपाए? अगर बहुत ताकत लगाकर खड़े हो गए, तो आप कंप गए!
अगर एक आदमी कहे कि मैं तो अंधेरे में से निकल जाता हूं। आंख बंद कर लेता हूं; हाथ पकड़कर जोर से ताकत लगाता हूं; बिल्कुल निकल जाता हूं बिना

डरे। यह हाथ और यह ताकत, ये सब डर के लक्षण हैं। इस आदमी का यह कहना कि मैं अंधेरे में बिना डरे निकल जाता हूं, यह भी डरे हुए आदमी का वक्तव्य है। नहीं तो अंधेरे का पता ही नहीं चलता; यह निकल जाता। उजाले में तो नहीं कहता यह आदमी कि मैं उजाले में बिना डरे निकल जाता हूं! अंधेरे की कहता है कि अंधेरे में बिना डरे निकल जाता हूं।
नहीं; अगर आपने बहुत ताकत लगाई, तो समझ लेना कि आप कंप गए, वह ताकत कंपन
ही है। नहीं; ताकत लगाने की कोई जरूरत नहीं है।
इस बात को, तीसरे सूत्र को, ठीक से ख्याल में ले लें। इससे साधक को बड़ी कठिनाई होती है।
ताकत लगाई अगर आपने और कहा कि ठीक है, अब सुख आएगा, तुम डालना मेरे गले में माला और मैं बिल्कुल छाती को अकड़ाकर और सांस को रोककर बिल्कुल अकंप रह जाऊंगा!
आप कंप गए। बुरी तरह कंप गए। यह इतनी ताकत लगाई माला के लिए! चार आने में बाजार में मिल जाती है। चार आने के लिए इतनी ताकत लगानी पड़ी आत्मा की, तब तो कंपन काफी हो गया। और कितनी देर मुट्ठी बांधकर रखिएगा? थोड़ी देर में मुट्ठी ढीली करनी पड़ेगी। सांस कितनी देर रोकिएगा? थोड़ी देर में सांस लेंगे। तो जो डर था, वह थोड़ी देर बाद शुरू हो जाएगा।
नहीं; समझ की जरूरत है, शक्ति की जरूरत नहीं है। समझ की जरूरत है। जब सुख आए, तो समझने की कोशिश करिए; ताकत लगाकर दुश्मन बनकर मत खड़े हो जाइए।
क्योंकि जिसके खिलाफ आप दुश्मन बनकर खड़े हुए, उसकी ताकत आपने मान ली। ताकत मत लगाइए, समझ।
और ध्यान रखिए, जितनी समझ कम हो, लोग उतनी ज्यादा ताकत लगाते हैं।
सोचते हैं, ताकत से समझ का काम पूरा कर लेंगे। कभी नहीं पूरा होता।
रत्तीभर समझ, पहाड़भर ताकत से ज्यादा ताकतवर है। समझ का काम कभी ताकत से पूरा नहीं होगा। समझ को ही विकसित करिए।
जब सुख आए, तो उसको देखिए गौर से, भोगिए, समझने की कोशिश करिए। और देखिए कि रोज कैसे सुख दुख में बदलता जा रहा है। और अंत तक यात्रा करिए और देखिए कि सुख से शुरू हुआ था और दुख पर पूरा हुआ! दो-चार-दस सुखों के बीच से गुजरिए समझते हुए। और आप पाएंगे कि आपकी समझ में वह जगह आ गई, वह मैच्योरिटी, वह प्रौढ़ता आपकी समझ में आ गई कि अब ताकत लगाने की जरूरत नहीं है। आप, बस अब सुख आता है और जानते हैं कि वह दुख है। इतनी सरलता से जिस दिन आप रहेंगे, उस दिन निष्कंप चित्त पैदा होगा; ताकत से नहीं पैदा होगा। इसलिए बहुत से हठवादी धर्म को ताकत से छीनना चाहते हैं। वे कभी धर्म
को नहीं उपलब्ध हो पाते, सिर्फ अहंकार को उपलब्ध होते हैं। ताकत से अहंकार मिल सकता है। समझ से अहंकार गलता है।
अगर ताकत लगाकर आपने कहा कि ठीक, अब हम सुख को सुख नहीं मानते, दुख को दुख नहीं मानते; और खड़े हो गए आंख बद करके ताकत लगाकर, तो सिर्फ अहंकार मजबूत होगा। और कुछ भी होने वाला नहीं है। और यह अहंकार अपने तरह के सुख देने लगेगा; और यह अहंकार अपने तरह के दुख लाने लगेगा; खेल शुरू हो जाएगा। समझ, अंडरस्टैंडिंग पर ख्याल रखिए। जितनी समझ बढ़ती है, जितनी प्रज्ञा बढ़ती है, उतना ही... ।
बुद्ध ने तीन शब्द उपयोग किए हैं--प्रज्ञा, शील, समाधि। बुद्ध कहते हैं, जितनी प्रज्ञा बढ़े, जितनी समझ बढ़े, उतना शील रूपांतरित होता है, चरित्र बदलता है। जितना चरित्र रूपांतरित हो, उतनी समाधि निकट आती है। लेकिन शुरुआत करनी पड़ती है प्रज्ञा से, समझ से। समझ बनती है शील बाहर
की दुनिया में, और भीतर की दुनिया में समाधि। यहां समझ बढ़ती है, तो बाहर की दुनिया में चरित्र पैदा होता है। और चरित्र का अगर ठीक-ठीक अर्थ समझें, तो चरित्र केवल उसी के पास होता है, जो अकंप है। जो जरा-जरा सी बात में कंप जाता है, उसके पास कोई चरित्र नहीं होता।
सुना है मैंने कि इमेनुअल कांट, जर्मनी का एक बहुत प्रज्ञावान पुरुष, रात दस बजे सो जाता था, सुबह चार बजे उठता था। नौकर से कह रखा था, जो उसकी सेवा करता था, कि दस और चार के बीच कुछ भी हो जाए, भूकंप भी आ जाए, तो मुझे मत उठाना।

लेकिन फिर ऐसा हुआ कि इमेनुअल कांट जिस विश्वविद्यालय में शिक्षक था, अध्यापक था, उस विश्वविद्यालय ने तय किया कि उसे चांसलर, कुलपति बना दिया जाए। रात बारह बजे तार आया; नौकर को तार मिला। इतनी खुशी की बात थी। गरीब इमेनुअल कांट, साधारण प्रोफेसर था, चांसलर होने का निर्णय किया विश्वविद्यालय की एकेडेमिक कौंसिल ने! तो नौकर भूल गया यह। सोचा था कि भूकंप के लिए मना किया है। मगर यह तो बात इतनी खुशी की, इतने सुख की है, इसकी तो खबर दे देनी चाहिए।
गया और जाकर इमेनुअल कांट को हिलाया और उठाया, कहा कि शुभकामनाएं करता हूं! आपको विश्वविद्यालय ने कुलपति चुना। इमेनुअल कांट ने आंख खोली, एक चांटा नौकर को मारा और वापस चादर ओढ़कर सो गया।
नौकर तो बहुत हैरान हुआ। बड़ा हैरान हुआ! यह क्या हुआ? भूकंप को मना किया था; यह तो बात ही कुछ और है!
सुबह इमेनुअल कांट ने उठकर पहला तार यूनिवर्सिटी आफिस को किया कि मुझे क्षमा करें, इस पद को मैं स्वीकार न कर सकूंगा, क्योंकि इस पद के कारण मेरे नौकर को भी भ्रांति हुई और कहीं मुझे न हो जाए। इसमें मैं नहीं पडूंगा। इस पद के कारण मेरी कल की नींद खराब हुई, अब और आगे की नींद मैं खराब न करूंगा। इससे झंझटें आएंगी। इससे झंझटों की शुरुआत हो गई। वर्षों से मैं कभी दस और चार के बीच उठा नहीं!
सुबह नौकर से कहा कि तू बिल्कुल पागल है! नौकर ने कहा, लेकिन आपने तो कहा था, भूकंप आए तो नहीं उठाना है! कांट ने उसे कहा कि दुख के भी भूकंप होते हैं, सुख के भी भूकंप होते हैं। और जो सुख के भूकंप स्वीकार कर लेता है, उसी के घर दुख के भूकंप आते हैं; अन्यथा कोई कारण नहीं है। शुरुआत हो गई थी। अगर मैं कल खुश होकर तुझे धन्यवाद दे देता, तो मैं गया था! बस, मैंने फिर निमंत्रण दे दिया, दरवाजे खोल दिए दुख के लिए।
उस नौकर ने कहा, लेकिन मुझे आपने चांटा क्यों मारा? कांट ने कहा कि तू समझता होगा, मिठाई बांटूंगा! तो मैंने तुझे खबर दी कि जिसे तू सुख समझकर आ रहा है, उससे भी आखिर में दुख ही आने वाला है, इसलिए मैंने कहा, चांटा अभी ही मार दूं। तुझे भी पता होना चाहिए कि सुख सदा दुख को ही लाता है पीछे, देर-अबेर।
जागें। सुख को समझने की कोशिश करें। वह जैसे-जैसे समझ बढ़ती जाएगी, वैसे-वैसे संतुलन, तटस्थता, उपेक्षा आती जाएगी। आप पार खड़े हो जाएंगे। उस पार खड़े व्यक्ति को कह सकते हैं हम कि वह मंदिर बन गया परम सत्ता का। परम सत्ता उसके भीतर प्रतिष्ठित ही है।

प्रश्नः ओशो, इस श्लोक में एक शब्द आया है, जितात्मनः, जिस पुरुष ने अपनी आत्मा जीत ली। आत्मा के साथ जीतना शब्द का कैसा अर्थ होगा, इसे स्पष्ट करें।

जिसने स्वयं को जीता, स्वयं की आत्मा जीती, इसका क्या अर्थ होगा?
दो अर्थ ख्याल में लेने जैसे हैं। एक तो, हम स्वयं को भी नहीं जीत पाए हैं और सब जीतने की योजनाएं बनाते हैं। स्वयं को भी नहीं जीत पाए! और जो व्यक्ति स्वयं को जीते बिना और सारी जीत की योजना बनाता है, उससे ज्यादा विक्षिप्त और कौन होगा! अगर जीत की ही यात्रा करनी है, तो पहले स्वयं की कर लेनी चाहिए। स्वयं को न जीतने का क्या अर्थ है?
अगर मैं आपसे कहूं कि आज आप क्रोध मत करना, तो क्या आपकी स्वयं पर इतनी शक्ति है कि आज आप क्रोध न करें? यह तो बड़ी बात हो गई। अगर मैं आपसे इतना ही कहूं कि पांच मिनट आंख बंद करके बैठ जाएं और राम शब्द को भीतर न आने दें, तब आपको पता चल जाएगा कि अपने ऊपर कितनी मालकियत है!
आंख बंद कर लें और मैं कहता हूं, पांच मिनट राम शब्द आपके भीतर न आने पाए। तो इतनी भी ताकत नहीं है कि राम शब्द को आप भीतर आने से रोक सकें। इस पांच मिनट में इतना आएगा, जितना जिंदगी में कभी नहीं आया था! एकदम राम-जप शुरू हो जाएगा! राम-जप का जो फायदा होगा, वह होगा। लेकिन स्वयं की हार सिद्ध हो जाएगी। स्वयं पर हमारा रत्तीभर भी वश नहीं है।

तो जिसने स्वयं की आत्मा जीती! यहां आत्मा से एक अर्थ तो स्वयं की सत्ता; स्वयं के होने पर जिसकी मालकियत है।
जांच करें, तो अपनी गुलामी पता चलेगी कि हम कैसे कमजोर हैं! कैसे कमजोर हैं! हमारी कमजोरी सब तरफ लिखी हुई है। हर द्वार-दरवाजे पर, हर इंद्रिय पर, हर वृत्ति पर, हर वासना पर, हर विचार पर हमारी कमजोरी और गुलामी लिखी हुई है। अपने को धोखा देने से कुछ न होगा।
तो एक तो स्वयं को जीतने का स्मरण दिलाया है। आत्मा का एक अर्थ तो है, स्वयं। और आत्मा जीती जिसने, इसका दूसरा अर्थ है, और भी गहरा, और वह है, जिसने जाना स्वयं को। क्योंकि जानना जीतना बन जाता है। ज्ञान विजय है।
आत्मज्ञान आत्म-विजय है।
तो एक तो अर्थ है कि हमारा जो व्यक्तित्व है, वह इतना स्वाधीन हो कि मैं कह सकूं कि मेरा बल, मेरा वश मेरे ऊपर है। आप मुझ पर भरोसा कर सकते हैं। मैं अपने पर भरोसा कर सकता हूं।
लेकिन कर सकते हैं? अगर सोचेंगे, तो पाएंगे, क्या भरोसा कर सकते हैं!
एक व्यक्ति को आप कहते हैं कि कल भी तुझे मैं प्रेम करूंगा। कभी सोचा है आपने कि एक गुलाम आदमी यह वादा कर रहा है। कल? कल भी प्रेम कर सकेंगे? थोड़ा एक बार और सोचें। और कल अगर प्रेम कपूर की तरह तिरोहित हो गया आकाश में, तो क्या होगा उपाय उसको वापस लाने का?
इसे ऐसा देखें, आज प्रेम में पड़ गए हैं किसी के, अगर मैं आपसे कहूं कि
एक घंटा इस व्यक्ति को अब प्रेम मत करें। अगर आप समर्थ हों कि कहें कि ठीक, यह एक घंटा मेरी जिंदगी में इससे प्रेम का घंटा नहीं रहेगा। तो भरोसा किया जा सकता है कि कल जब प्रेम उड़ जाए, तब भी आप, प्रेम करने का जो वचन दिया है, वह पूरा कर सकें। अन्यथा भरोसा नहीं किया जा सकता है। अभी आप कहेंगे, यह कैसे हो सकता है कि मैं प्रेम न करूं? कल आप कहेंगे कि यह कैसे हो सकता है कि मैं प्रेम करूं? विवश, बंधे हुए हैं।
एक तो पहला, प्राथमिक और बहिर अर्थ है, स्वयं को इस अर्थ में जीत लेने
का कि मैं अपने पर भरोसा कर सकूं। दूसरा अर्थ है, स्वयं को जान लेने का। महावीर ने कहा है, जिसने जाना स्वयं को, उसने जीता भी। इसलिए महावीर
के साथ जिन जुड़ गया। जिन का अर्थ है, जिसने जीता। लेकिन जाना, तो जीता। क्योंकि जिसे हम जानते ही नहीं, उसे हम जीतेंगे कैसे? जिसे जीतना है, उसे जाने बिना जीतने का कोई उपाय नहीं है। ज्ञान विजय है। जिसे भी हम जान लेते हैं, उसके हम मालिक हो जाते हैं।
तो दूसरे अर्थ में हम आत्म-अज्ञानी हैं। हमें कुछ पता ही नहीं कि मैं कौन हूं! नाम-धाम पता है, उससे कुछ होने का हमारा संबंध नहीं है। पता ही नहीं, मैं कौन हूं! इसकी कोई खबर ही नहीं। जिसे यह भी पता नहीं कि मैं कौन हूं, उसे आत्मवान कहना भी सिर्फ शब्दों के साथ खिलवाड़ है।
अभी एक फकीर था, गुरजिएफ। वह कहता था, सभी के भीतर आत्मा नहीं है। और
जब उसने पहली दफा यह कहा, तो बहुत हड़बड़ी मची। क्योंकि लोगों ने कहा कि यह तो किसी शास्त्र में नहीं लिखा है। सभी शास्त्रों में लिखा है, सबके भीतर आत्मा है। और तुम कहते हो कि सभी के भीतर आत्मा नहीं है! तो गुरजिएफ कहता था कि जिसे पता ही नहीं है, उसके भीतर होना और न होना बराबर है। यानी एक आदमी कहे कि मेरे घर में खजाना है। उससे पूछो, कहां है? वह कहे कि यह मुझे पता नहीं। तो न होने और होने में क्या फर्क है? कोई भी तो फर्क नहीं है; वर्चुअली कोई भी फर्क नहीं है।
तो गुरजिएफ कहता था, मैं नहीं मानता कि सबके भीतर आत्मा है। और मैं कहता हूं कि वह ठीक कहता था। आत्मा उसी के भीतर है, जो जानता है।
एक आदमी के बाबत मैंने सुना है, बड़ी हड़बड़ी में एक सड़क के किनारे खड़े होकर वह अपने सब खीसे देख रहा है। दो-चार लोग भी इकट्ठे खड़े हो गए हैं उसकी हड़बड़ी देखकर। फिर इस खीसे में हाथ डालता है, फिर उस खीसे में हाथ डालता है। सिर्फ एक खीसा कोट का ऊपर का छोड़ देता है।
फिर आखिर किसी ने पूछा कि महाशय, आप कई बार खीसों में हाथ डालकर देख चुके और बड़े परेशान हैं; पसीने की बूंदें आ गईं; मामला क्या है? उस आदमी ने कहा कि मेरा बटुआ खो गया है। मैंने सब खीसे देख लिए हैं, सिर्फ एक को छोड़कर। तो उन्होंने पूछा कि महाशय, उसको भी देख क्यों नहीं लेते? उस आदमी

ने कहा कि उसे देखने में बड़ा डर लगता है कि अगर उसमें भी न हुआ तो? इसलिए मैं उसको छोड़कर बाकी में देख रहा हूं!
भीतर जाने में भी हम डरते हैं कि कहीं आत्मा न हुई तो? इधर बाहर से किताब पढ़कर बैठ जाते हैं; बड़ी चैन मिलती है कि भीतर आत्मा है, परमात्मा है। अमृत के झरने फूट रहे हैं। आनंद की धाराएं बह रही हैं। बाहर किताब में पढ़कर बड़े निश्चिंत हो जाते हैं। लेकिन कभी खीसे में हाथ नहीं डालते भीतर। कहीं न हुई तो? तो एक भरोसा और टूट जाए, एक आशा और विखंडित हो जाए। एक आश्वासन, जिसके सहारे सब दुख झेले जा सकते थे; सब खीसे टटोले जा सकते थे जिसके सहारे कि अगर यहां न मिला तो ठीक है, कोई हर्ज नहीं, वहां तो खोज ही लेंगे; तो वहां तो मिल ही जाएगा। कहीं वह भी न टूट जाए, उस भय से भीतर झांककर भी नहीं देखते।
आत्मजयी का अर्थ है, वह व्यक्ति, जो अपने भीतर पूरी आंखों से देख सकता है। वह जानता है कि वहां है; उसने देखा है कि वहां है; उसने पाया है कि वहां है। अब वह निर्भय है। अब उसकी छाती में छुरा भोंक दो, तो भी निर्भय है; क्योंकि वह जानता है, यह छुरा उसमें प्रवेश नहीं कर सकेगा, जिसे उसने जान लिया है। अब मौत उसके दरवाजे पर खड़ी हो जाए, तो आलिंगन कर लेगा; क्योंकि वह जानता है कि जिसे उसने अपने भीतर जाना है, उसको मौत छू पाए, इसका कोई उपाय नहीं है। अब आप उसको गालियां दें और अपमानित करें, तो वह हंसेगा, क्योंकि वह जानता है, तुम्हारी गालियां उस तक नहीं पहुंच सकतीं; तुम्हारे अपमान उस तक नहीं पहुंच सकते, जो वह है। अब वह विजयी हुआ, अब वह जिन हो गया।
तो एक तो बाहर के अर्थों में कि हम अपनी किसी भी चीज के लिए अपने पर भी भरोसा नहीं कर सकते; हमारी वृत्तियां हमें जहां ले जाती हैं, हमें जाना पड़ता है; परवश, पराधीन। और एक इस अर्थों में कि हमें स्वयं का भी कोई पता नहीं है। इसलिए कृष्ण कहते हैं, आत्मजयी, आत्मा को जीत लिया है जिसने, उसमें परमात्मा सदा प्रतिष्ठित है।

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इच्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः।। 8।।
और ज्ञान-विज्ञान से तृप्त है अंतःकरण जिसका, विकाररहित है स्थिति जिसकी और अच्छी प्रकार जीती हुई हैं इंद्रियां जिसकी तथा समान है मिट्टी, पत्थर और सुवर्ण जिसको, वह योगी युक्त अर्थात भगवत की प्राप्ति वाला है, ऐसा कहा जाता है।

इस श्लोक में पिछले सूत्र में कुछ और नई दिशाएं संयुक्त की गई हैं। ज्ञान-विज्ञान से तृप्त है जो!
ज्ञान कहते हैं स्वयं को जान लेने को। विज्ञान कहते हैं पर को जान लेने को। विज्ञान का अर्थ है, दूसरे को जानने की जो व्यवस्था है। ज्ञान का अर्थ है, स्वयं को जान लेने की जो व्यवस्था है।
कृष्ण कहते हैं, तृप्त है जो ज्ञान-विज्ञान से। इसका क्या अर्थ होगा? इसका क्या यह अर्थ होगा कि जो व्यक्ति आत्मज्ञानी है, योगारूढ़ है, योग को उपलब्ध है, क्या वह समस्त विज्ञान को जानकर तृप्त हो गया है?
ऐसा अर्थ लेने की कोशिश की गई है, जो गलत है। क्योंकि अगर ऐसा होता, तो
इस हमारे भारत में, जहां हमने बहुत योगारूढ़ व्यक्ति पैदा किए, हमने समस्त विज्ञानों का सार खोज लिया होता। वह हमने नहीं खोजा। तब तो हमारा एक योगी समस्त आइंस्टीनों और समस्त न्यूटनों और समस्त प्लांकों का काम पूरा कर देता। तब तो कोई बात ही न थी। तब तो अणु का रहस्य हम खोज लिए होते। तब तो समस्त विराट ऊर्जा का जो भी रहस्य है, हमने खोज लिया होता। इसलिए जो इसका ऐसा अर्थ लेता हो, वह गलत लेता है। ऐसा इसका अर्थ नहीं है। इसका अर्थ और गहरा है। यह बहुत ऊपरी अर्थ भी है, यह बहुत गहरा अर्थ भी नहीं है।
समस्त ज्ञान-विज्ञान से आत्मा है तृप्त जिसकी!
विज्ञान से तृप्ति का अर्थ है, जिसके जीवन से कुतूहल विदा हो गया। कुतूहल, क्यूरिआसिटी विदा हो गई। असल में क्यूरिआसिटी बहुत बचकाने मन का लक्षण है।

यह बहुत सोचने जैसी बात है। जितनी छोटी उम्र, उतना कुतूहल होता है--यह कैसा है, वह कैसा है? यह क्यों हुआ, यह क्यों नहीं हुआ? जितना छोटा मन, जितनी कम बुद्धि, उतना कुतूहल होता है।
इसलिए एक और बड़े मजे की बात है कि जिस तरह बच्चे कुतूहल से भरे होते हैं, इसी तरह जो सभ्यताएं बचकानी होती हैं, वे विज्ञान को जन्म देती हैं। बहुत हैरानी होगी! जो सभ्यताएं जितनी चाइल्डिश होती हैं, उतनी साइंटिफिक हो जाती हैं।
योरोप या अमेरिका एक अर्थों में बहुत बचकाने हैं, बहुत बालपन में हैं, इसलिए वैज्ञानिक हैं। कुतूहल भारी है। चांद पर क्या है, जानना है! कुतूहल भारी है। मंगल पर क्या है, जानना है! जानते ही चले जाना है। कुतूहल का तो कोई अंत नहीं है। क्योंकि संसार का कोई अंत नहीं है।
इसलिए कोई सोचता हो कि जब मैं सब जान लूंगा, तब तृप्त होऊंगा, तो वह पागल है। वह सिर्फ पागल हो जाएगा।
ज्ञान-विज्ञान से तृप्त है जिसका मन, इसका अर्थ? इसका अर्थ है, जिसका कुतूहल चला गया। जो इतना प्रौढ़ हो गया कि अब वह यह नहीं पूछता कि ऐसा क्यों है, वैसा क्यों है? प्रौढ़ व्यक्ति कहता है, ऐसा है।
फर्क समझें। बच्चे पूछते हैं, ऐसा क्यों है? वृक्ष के पत्ते हरे क्यों हैं? गुलाब का फूल लाल क्यों है? आकाश में तारे क्यों हैं? प्रौढ़ व्यक्ति कहता है, ऐसा है, दिस इ.ज सो। वह कहता है, ऐसा है। क्योंकि अगर पत्ते वृक्ष के पीले होते, तो भी तुम पूछते कि पीले क्यों हैं? अगर वृक्ष पर पत्ते न होते, तो तुम पूछते कि पत्ते क्यों नहीं हैं?
एक नव-संन्यास में दीक्षित संन्यासिनी ने--वह अमेरिका से आई है--उसने मुझसे पूछा चार-छः दिन पहले कि व्हाय आई हैव कम टु यू--मैं तुम्हारे पास क्यों आ गई? मैंने कहा कि तू मेरे पास न आती, तो पूछ सकती थी, व्हाय आई हैव नाट कम टु यू? इसका क्या मतलब है! किसी और के पास पहुंचती, तो तू पूछती कि व्हाय? आपके पास क्यों आ गई? यह प्रश्न तो कहीं भी सार्थक हो सकता था--कहीं भी--इसलिए व्यर्थ है।
समझें। यह प्रश्न कहीं भी सार्थक हो सकता था, इसलिए व्यर्थ है। जो प्रश्न किसी जगह सार्थक होता है, सब कहीं नहीं, वही सार्थक है। जो प्रश्न सभी जगह लग सकता है, उसका कोई अर्थ नहीं रह जाता। उसका कोई भी अर्थ नहीं रह जाता।
प्रौढ़ व्यक्ति जानता है, जगत ऐसा है। इसलिए प्रौढ़ सभ्यताओं ने विज्ञान को जन्म नहीं दिया, प्रौढ़ सभ्यताओं ने धर्म को जन्म दिया। जब भी सभ्यता अपने प्राथमिक चरण में होती है, तो विज्ञान को जन्म देती है; और जब सभ्यता अपने शिखर पर पहुंचती है, तो धर्म को जन्म देती है। धर्म उस प्रौढ़ मस्तिष्क की खबर है, जो कहता है, चीजें ऐसी हैं--थिंग्स आर सच।
कुतूहल व्यर्थ है, बचकाना है। बच्चे करें, ठीक। कुतूहल बचपन है।
तो जब कृष्ण कहते हैं, ज्ञान-विज्ञान से तृप्त है जो, जिसके अब कोई प्रश्न न रहे! उसका यह मतलब नहीं है कि जिसको सब उत्तर मिल गए। सब उत्तर कभी किसी को मिलने वाले नहीं हैं। और अगर किसी दिन सब उत्तर मिल गए, तो उससे खतरनाक कोई स्थिति न होगी। जिस दिन सब उत्तर मिल जाएंगे, उस दिन मरने के सिवाय कोई उपाय नहीं रह जाएगा। और जिस दिन सब उत्तर मिल जाएंगे, उसका यही अर्थ होगा कि परमात्मा सीमित है, अनंत नहीं है, असीम नहीं है। जो असीम है सत्य, उसके बाबत सब उत्तर कभी नहीं मिल सकते।
और सब उत्तर टेंटेटिव हैं, सब उत्तर कामचलाऊ हैं। कल नए प्रश्न खड़े हो जाएंगे और सब उत्तर बिखर जाते हैं। जब न्यूटन एक उत्तर देता है, तो बिल्कुल सही मालूम पड़ता है। बीस-पच्चीस साल बीत नहीं पाते हैं कि दूसरा आदमी नए सवाल खड़े कर देता है और न्यूटन के सब उत्तर बिखर जाते हैं। फिर आइंस्टीन उत्तर देता है, पुराने उत्तर बिखर जाते हैं। अब तो हर दो साल में उत्तर बिखर जाते हैं, नए सवाल खड़े हो जाते हैं। सब पुराने उत्तर एकदम गिर जाते हैं।
प्रौढ़ व्यक्ति जानता है कि सब उत्तर मनुष्य के द्वारा निर्मित हैं और अस्तित्व निरुत्तर है। अस्तित्व निरुत्तर है, इसीलिए अस्तित्व रहस्य है।

रहस्य का मतलब होता है, निरुत्तर। जहां से कोई उत्तर कभी नहीं आएगा। अल्टिमेट आंसर कोई भी नहीं है, कोई चरम उत्तर नहीं है। कोई नहीं कह सकता कि बस, यह उत्तर हो गया, दिस इ.ज दि आंसर। कोई ऐसा नहीं है। देयर आर आंसर्स, बट नो आंसर। उत्तर हैं, लेकिन कोई उत्तर नहीं है, जो कह दे कि बस, यह उत्तर हो गया; अब कोई सवाल उठने का सवाल न रहा। कुतूहल पैदा होता ही चला जाएगा। और हर नया उत्तर नए प्रश्नों के कुतूहल पैदा कर जाता है।
जब कोई व्यक्ति इस रहस्य को समझ लेता है कि किसी प्रश्न का कोई अंतिम उत्तर नहीं है, तब वह प्रश्न ही छोड़ देता है। उस प्रश्न-गिरी हुई स्थिति का नाम, विज्ञान-ज्ञान से तृप्त हो जाना है। वह व्यक्ति प्रौढ़ हुआ। उस व्यक्ति का अब कोई कुतूहल न रहा। अब वह राह से गुजर जाता है बिना पूछे, क्योंकि वह जानता है कि पूछ-पूछकर भी कुछ नहीं पाया जा सकता है। और सब उत्तर सिर्फ नए प्रश्नों को जन्म देने वाले सिद्ध होते हैं। न वह अब यह पूछता है कि मैं कौन हूं? न वह अब यह पूछता है कि तू कौन है? वह पूछता ही नहीं।
क्या होगा? जब कोई नहीं पूछता है, तब कौन-सी घटना घटेगी? जब चित्त कोई
भी प्रश्न नहीं पूछता, तब बड़े रहस्य की बात है। जब कोई भी प्रश्न नहीं होता चित्त में, सब प्रश्न गिर जाते हैं, तब चित्त इतना मौन होता है, इतना शांत होता है कि किसी दूसरे मार्ग से जीवन के रहस्य के साथ एक हो जाता है। उत्तर नहीं मिलता, लेकिन जीवन मिल जाता है। उत्तर नहीं मिलता, लेकिन अस्तित्व मिल जाता है। वही उत्तर है। रहस्य के साथ आत्मसात हो जाता है।
एक ढंग है, पूछकर जानने का; और एक ढंग है, न पूछकर जानने का। न पूछकर जानने का ढंग, धर्म का ढंग है। पूछकर जानने का ढंग, विज्ञान का ढंग है। लेकिन कृष्ण कहते हैं, ज्ञान-विज्ञान दोनों से जो तृप्त हो गया। प्रौढ़ हो गया, मैच्योर हुआ, अब पूछता ही नहीं। क्योंकि कहता है, सब पूछना बच्चों का पूछना है। और सब उत्तर थोड़े ज्यादा उम्र के बच्चों के द्वारा दिए गए उत्तर हैं। और कोई फर्क नहीं है। थोड़ी छोटी उम्र के बच्चे सवाल पूछते हैं; थोड़ी बड़ी उम्र के बच्चे सवालों का जवाब दे देते हैं।
कभी आपने घर में ख्याल किया कि अगर आपके घर में दो बच्चे हैं, एक छोटा है, एक थोड़ा बड़ा है। आपसे सवाल पूछते हैं; आप जवाब देते हैं। आप जरा घर के बाहर चले जाएं। छोटा बच्चा बड़े बच्चे से सवाल पूछने लगता है, बड़ा बच्चा छोटे बच्चे को जवाब देने लगता है। वही काम जो आप कर रहे थे, वह करने लगता है!
ये सब सवाल-जवाब बच्चों के बीच हुई चर्चाएं हैं। प्रौढ़ता उस क्षण घटित होती है, जहां कोई सवाल नहीं है, जहां कोई जवाब नहीं है, जहां इतना परम मौन है कि पूछने का भी कोई--कोई पूछने का भी विघ्न नहीं है।
तो कृष्ण कहते हैं, ज्ञान-विज्ञान से जो तृप्त है।
नहीं, ऐसा नहीं कि सब ज्ञान-विज्ञान जान लिया। बल्कि ऐसा कि सब जानने
की चेष्टा को ही व्यर्थ जाना। सब जानने की चेष्टा को ही व्यर्थ जाना। सब कुतूहल व्यर्थ जाने। सब पूछना व्यर्थ जाना। फ्यूटिलिटी जाहिर हो गई कि कुछ पूछने से कभी कुछ मिला नहीं। यही अंतर है फिलासफी और धर्म का। यही अंतर है दर्शन और धर्म का।
दार्शनिक पूछे चले जाते हैं। वे बूढ़े हो गए बच्चे हैं, जिनका बचपन हटा नहीं। वे पूछे चले जाते हैं। वे पूछते हैं, जगत किसने बनाया? और पूछते हैं कि फिर उस बनाने वाले को किसने बनाया? और फिर पूछते हैं कि उस बनाने वाले को किसने बनाया? और पूछते चले जाते हैं। और उन्हें कभी ख्याल भी नहीं आता कि वे क्या पागलपन कर रहे हैं! इसका कोई अंत होगा? इसका कोई भी तो अंत नहीं होने वाला है।
अज्ञान अपनी जगह रहेगा। ये सारे उत्तर अज्ञान से दिए गए उत्तर हैं। इनसे कुछ हल नहीं होगा। प्रश्न फिर खड़ा हो जाएगा। पूछते हैं, जगत किसने बनाया? कहते हैं, ईश्वर ने बनाया। अज्ञान में दिया गया उत्तर है। सच तो यह है कि अज्ञानी ही पूछते रहते हैं, अज्ञानी ही उत्तर देते रहते हैं!
उत्तर और प्रश्नों में जगत की पहेली हल होने वाली नहीं है। तो कहते हैं कि जैसे कुम्हार घड़ा बनाता है, ऐसे भगवान ने यह संसार बना दिया। भगवान को भी कुम्हार बनाने से नहीं चूकते! उसको कुम्हार बना दिया। घड़ा कैसे

बनेगा बिना कुम्हार के? तो जगत कैसे बनेगा बिना भगवान के? तो एक महा कुम्हार, उसने घड़े की तरह जगत को बना दिया।
लेकिन कोई बच्चा जरूर पूछेगा कि यह तो हम समझ गए कि जगत उसने बना दिया, लेकिन उसको किसने बनाया? तो जो जरा धैर्यवान हैं, वे फिर कुछ और उत्तर खोजेंगे। कोई अधैर्यवान हैं, तो डंडा उठा लेंगे। वे कहेंगे, बस, अतिप्रश्न हो गया! अब आगे मत पूछो, नहीं सिर खोल देंगे!
जब अतिप्रश्न ही कहना था, तो पहले प्रश्न पर ही कह देना था कि व्यर्थ
मत पूछो। क्योंकि फर्क क्या पड़ा! बात तो वहीं की वहीं खड़ी है। राज वहीं का वहीं खड़ा है। सिर्फ प्रश्न पहले जगत के साथ लगा था कि किसने बनाया, अब वही प्रश्न परमात्मा के साथ लग गया कि किसने बनाया। अल्टिमेट के साथ जुड़ा है वह, अल्टिमेट के साथ ही जुड़ा हुआ है। पहले जगत आखिरी था, अब परमात्मा आखिरी है। हम पूछते हैं, उसको किसने बनाया? और अगर आप कहते हैं कि वह बिना बनाया, स्वयंभू है, तो फिर पहले जगत को ही स्वयंभू मान लेने में कौन-सी अड़चन आती थी?
दार्शनिक बच्चों के कुतूहल में पड़े हुए लोग हैं। इसलिए सब फिलासफी चाइल्डिश होती है। कितने ही बड़े दार्शनिक हों, कितने ही गुरु-गंभीर उन्होंने ग्रंथ लिखे हों, चाहे हीगल हों और चाहे बड़े मीमांसक हों, कितने ही उन्होंने गुरु-गंभीर ग्रंथ लिखे हों और कितने ही बड़े-बड़े शब्दों का उपयोग किया हो और कितना ही जाल बुना हो, अगर बहुत गहरे में उतरकर देखेंगे, तो छिपा हुआ बच्चा पाएंगे, जो कुतूहल कर रहा है, क्यूरिअस है कि यह क्यों है, वह क्यों है! फिर अपने ही उत्तर दे लेता है। खुद के ही सवाल हैं और खुद के ही जवाब हैं और खुद का ही खेल है।
कृष्ण कहते हैं, जो तृप्त हुआ इस सब बचकानेपन से। जो प्रौढ़ हुआ, जो कहता है, पूछना ही व्यर्थ है, क्योंकि उत्तर कौन देगा! जो इतना प्रौढ़ हुआ कि कहता है कि चीजों का स्वभाव ऐसा है। कोई सवाल नहीं है। आग जलाती है और पानी ठंडा है। ऐसा है। ऐसा वस्तुओं का स्वभाव है।

महावीर का एक वचन है बहुत कीमती, जिसमें उन्होंने कहा है, वत्थूस्वभावो धम्म, वस्तु के स्वभाव को जान लेना ही धर्म है। ऐसा जान लेना कि ऐसा वस्तुओं का स्वभाव है; इसका यह स्वभाव है, उसका वह स्वभाव है; बस, इतना ही जान लेना धर्म है। मगर ऐसा जानना तभी संभव हो सकता है, जब ज्ञान-विज्ञान की वह जो जिज्ञासा है--अनंत जिज्ञासा है, दौड़ाती ही रहती है कि और जानूं, और जानूं--वह शांत हो जाए, तृप्त हो जाए।
तो कृष्ण कहते हैं, जिसकी जिज्ञासा, जिसका कुतूहल क्षीण हुआ, जो प्रौढ़ हुआ। जिसने अस्तित्व को स्वीकार किया और पूछना बंद किया। और जिसने जाना कि मैं एक लहर हूं इस विराट सागर में, क्या पूछूं? किससे पूछूं? कौन देगा जवाब? मैं खुद ही जवाब हूं। चुप हो जाऊं, मौन हो जाऊं, उतरूं गहरे में। जानूं कि अस्तित्व क्या है! पूछूं न, उत्तर की तलाश न करूं, अनुभव की तलाश करूं। उस अनुभव में जो फलित होता है, उस अनुभव में व्यक्ति परमात्मा को उपलब्ध हो जाता है, ऐसा जानने वालों ने कहा है।
कृष्ण कहते हैं, ऐसा जानने वालों ने कहा है। ऐसा कहा जाता है।
ऐसा क्यों कहते हैं? यह आखिरी बात, फिर हम सांझ बात करेंगे। कृष्ण ऐसा क्यों कहते हैं कि ऐसा कहा जाता है?
ऐसा कृष्ण इसलिए कहते हैं कि मेरा कोई दावा नहीं है कि ऐसा मैं कहता हूं। जिन्होंने भी जाना है, उन्होंने ऐसा ही कहा है। मैं कोई दावेदार नहीं हूं। कृष्ण ऐसा नहीं कहते कि ऐसा मैं ही कह रहा हूं। ऐसा उन्होंने भी कहा है, जो जानते हैं। ज्ञान ऐसा कहता है। इससे व्यक्ति को विदा करने की कोशिश है।
और ध्यान रहे, ज्ञानी में व्यक्ति नहीं रह जाता। बोले, तो भी नहीं रह जाता। मैं कहे, तो भी नहीं रह जाता। ये सिर्फ कामचलाऊ बातें रह जाती हैं। इसलिए कृष्ण कहते हैं, ऐसा कहा जाता है। ऐसा मैं भी कहता हूं। ऐसा और
भी कहते हैं। ऐसा जो भी जानते हैं, वे कहते हैं। ऐसा ज्ञान का कथन है। ऐसा ज्ञान कहता है।

समस्त द्वंद्वों से पार, कुतूहल से पार, व्यर्थ जानने की दौड़ और जिज्ञासा से पार, प्रौढ़ हुआ चित्त, समतुल हुआ चित्त, निर्द्वंद्व हुआ चित्त, समबुद्धि में ठहरा हुआ चित्त, अकंप हुआ चित्त, परमात्मा को उपलब्ध हो जाता है।
पांच मिनट और बैठे रहेंगे। अभी इतनी बात सुनी; प्रश्न हैं, जवाब हैं, पांच मिनट थोड़ा अनुभव में उतरने की कोशिश करेंगे। हालांकि मन यह करता है कि सुन तो सकते हैं दो घंटे, लेकिन अनुभव में पांच मिनट उतरने में भी कठिनाई होती है।
तो पांच मिनट अनुभव में उतरेंगे। और मैं चाहूंगा कि साथ दें। यहां कीर्तन करेंगे संन्यासी, तो वे आनंद में मग्न हो रहे हैं, आप भी उनके आनंद में भागीदार हों। ताली बजाएं, उनके साथ गीत गाएं। संकोच न करें, पड़ोसी क्या कहेगा! वह वैसे ही काफी कह रहा है। आप उसकी कोई बहुत फिक्र न करें। जिनको नाच में सम्मिलित होना हो, वे भी ऊपर आ जाएं या सामने आ जाएं। जिनको बैठकर ताली देनी हो, गीत गाने हों, वे भी गीत गाएं और साथ दें। पांच मिनट लीन होकर देखें। सब प्रश्न, सब जिज्ञासा, सब गीता, वेद छोड़कर वहां उतर जाएं जहां से गीता जन्मती है और वेद आविर्भूत होते हैं। डूबें थोड़ा अपने भीतर!

गीता दर्शन, भाग तीन
गीता दर्शन अध्याय 6
पांचवां प्रवचन

हृदय की अंतर-गुफा

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते।। 9।।
और जो पुरुष सुहृद, मित्र, बैरी, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेषी और बंधुगणों में तथा धर्मात्माओं में और पापियों में भी समान भाव वाला है, वह अति श्रेष्ठ है।

कृष्ण के लिए समत्वबुद्धि समस्त योग का सार है। इसके पूर्व के सूत्रों में भी अलग-अलग द्वारों से समत्वबुद्धि के मंदिर में ही प्रवेश की योजना कृष्ण ने कही है। इस सूत्र में भी पुनः किसी और दिशा से वे समत्वबुद्धि की घोषणा करते हैं। बहुत-बहुत रूपों में समत्वबुद्धि की बात करने का प्रयोजन है।
प्रयोजन है, भिन्न-भिन्न, भांति-भांति प्रवृत्ति और प्रकृतियों के लोग हैं। समत्वबुद्धि का परिणाम तो एक ही होगा, लेकिन यात्रा भिन्न-भिन्न होगी। हो सकता है, कोई सुख और दुख के बीच समबुद्धि को साधे। लेकिन ऐसा भी हो सकता है कि सुख और दुख के प्रति किसी व्यक्ति की संवेदनशीलता ही बहुत कम हो। हम सबकी संवेदनशीलताएं, सेंसिटिविटीज अलग-अलग हैं। हो सकता है, किसी व्यक्ति के लिए सुख और दुख उतने महत्वपूर्ण द्वार ही न हों; यश और अपयश ज्यादा महत्वपूर्ण हों।
आप कहेंगे कि यश तो सुख ही है और अपयश दुख ही है! नहीं; थोड़ा बारीकी से देखेंगे, तो फर्क ख्याल में आ जाएगा।
ऐसा हो सकता है कि एक व्यक्ति यश पाने के लिए कितना ही दुख झेलने को राजी हो जाए; और ऐसा भी हो सकता है कि कोई व्यक्ति, अपयश न मिले, इसलिए कितना ही दुख झेलने को राजी हो जाए। इससे उलटा भी हो सकता है। ऐसा व्यक्ति हो सकता है, जो अपने सुख के लिए कितना ही अपयश झेलने को राजी हो जाए। ऐसा व्यक्ति हो सकता है, जो दुख से बचने के लिए कितना ही यश खोने को राजी हो जाए।
तो जिसके लिए अपयश और यश ज्यादा महत्वपूर्ण हैं, उसके लिए सुख और दुख
का द्वार काम नहीं करेगा। उसके लिए यश और अपयश में समबुद्धि को साधना पड़ेगा।
वही साधना पड़ेगा हमें, जो हमारा चुनाव है, जो हमारा द्वंद्व है। हम सबके द्वंद्व अलग अलग हैं।
यह भी हो सकता है कि किसी व्यक्ति के लिए अपयश, यश का भी कोई मूल्य न हो, लेकिन मित्रता और शत्रुता का भारी मूल्य हो। एक व्यक्ति ऐसा हो सकता है कि मित्र के लिए हजार तरह के यश खोने को राजी हो जाए; और एक व्यक्ति ऐसा भी हो सकता है कि यश के लिए हजार मित्रों को खोने के लिए राजी हो जाए। तो जिस व्यक्ति के लिए मित्र और शत्रु महत्वपूर्ण बात है, उसे न यश महत्वपूर्ण है, न सुख; न दुख महत्वपूर्ण है, न अपयश। उसके लिए मित्रता और शत्रुता के बीच ही समत्व को साधना होगा।
जो आपके लिए महत्वपूर्ण है द्वंद्व, वही द्वंद्व आपके लिए मार्ग बनेगा। दूसरे का द्वंद्व आपके लिए मार्ग नहीं बनेगा।
एक व्यक्ति हो सकता है, जिसे सौंदर्य का कोई बोध ही न हो। बहुत लोग हैं, जिन्हें सौंदर्य का कोई बोध ही नहीं है। वे भी दिखलाते हैं कि उन्हें सौंदर्य का बोध है। और अगर उनके पास था.ेड़े पैसे की सुविधा है, तो वे भी अपने घर में वानगाग के चित्र लटका सकते हैं और पिकासो की पेंटिंग्स लटका सकते हैं, लेकिन फिर भी सौंदर्य का बोध और बात है। जिसे सौंदर्य का बोध है, उसके लिए द्वंद्व, कुरूपता और सौंदर्य के बीच संतुलन का होगा। सभी को वह बोध नहीं है।

सौंदर्य का बोध रवींद्रनाथ जैसे किसी व्यक्ति को होता है। तो उस बोध
के परिणाम ये होते हैं कि छोटा-सा असौंदर्य भी सहना कठिन हो जाता है। छोटा- सा, बहुत छोटा-सा, जिस पर हमारी दृष्टि भी न जाए, वह भी रवींद्रनाथ को असह्य हो जाएगा। अगर कोई व्यक्ति थोड़ा इरछा-तिरछा भी रवींद्रनाथ के पास आकर बैठ गया, तो वे बेचैन हो जाएंगे। जरा-सा अनुपात अगर ठीक नहीं है, तो उन्हें बड़ी कठिनाई शुरू हो जाएगी। एक व्यक्ति अगर जोर की आवाज में बोल दे और सौंदर्य खो जाए आवाज का, संगीत खो जाए, तो रवींद्रनाथ को पीड़ा हो जाएगी। और हो सकता है, आपको जोर से बोलना महज आदत हो। आपको कोई बोध ही न हो।
प्रत्येक व्यक्ति के बोध-तंतु भिन्न-भिन्न हैं। हम सभी के पास अपना- अपना द्वंद्व है। तो समझें कि अपना द्वंद्व ही अपना द्वार बनेगा। इसलिए कृष्ण हर द्वंद्व की बात करते हैं।
इस सूत्र में वे कहते हैं, मित्र और शत्रु के बीच जो सम है।
अर्जुन के लिए यह सूत्र उपयोगी हो सकता है। अर्जुन के लिए मित्रता और शत्रुता कीमत की बात है। क्षत्रिय के लिए सदा से रही है। बहुत संवेदनशील क्षत्रिय अपनी जान दे दे, वचन न छोड़े। मित्र को दिया गया वायदा पूरा करे, चाहे प्राण चले जाएं। अगर वणिक बुद्धि का व्यक्ति हो, तो एक पैसा बचा ले, चाहे हजार वचन चले जाएं, हजार मित्र खो जाएं। बुरे-भले की बात नहीं है, अपना-अपना द्वंद्व है।
सुना है मैंने, राजस्थान में एक लोक-कथा है। एक गांव में गांव के राजपूत सरदार ने गांवभर में खबर रख छोड़ी है कि कोई मूंछ बड़ी न करे। खुद मूंछ बड़ी कर रखी है। और अपने दरवाजे पर तख्त डालकर बैठा रहता है। और गांव में खबर कर रखी है कि कोई मूंछ ऊंची करके सामने से न निकले। अगर मूंछ भी हो, तो नीची कर ले।
गांव में एक नया वणिक आया है, नया वैश्य आया है। उसने नई दुकान खोली है। उसको भी मूंछ रखने का शौक है। पहली बार राजपूत के सामने से निकल रहा है। राजपूत ने कहा, वणिक-पुत्र, मूंछ नीची कर लो! शायद तुम्हें पता नहीं, मेरे दरवाजे के सामने मूंछ ऊंची नहीं जा सकती। वणिक-पुत्र ने कहा, मूंछ तो ऊंची ही जाएगी! तलवारें खिंच गईं। राजपूत दो तलवारें लेकर बाहर आ गया। राजपूत था इसलिए दो लाया। एक वणिक-पुत्र के लिए, एक अपने लिए।
वणिक-पुत्र ने तलवार देखी। कभी पकड़ी तो न थी। सिर्फ मूंछ ऊंची रखने का शौक था। सोचा, यह झंझट हो गई। वणिक-पुत्र ने कहा, ठीक है। खुशी से इस युद्ध में मैं उतरूंगा। लेकिन एक प्रार्थना कि जरा मैं घर होकर लौट आऊं। उस राजपूत ने कहा, किसलिए? वणिक-पुत्र ने कहा, आपको भी ठीक जंचे, तो आप भी यही करें। हो सकता है, मैं मर जाऊं, तो मेरे पीछे मेरी पत्नी और बच्चे दुखी न हों; उनकी मैं गर्दन काटकर आता हूं। अगर आपको भी जंचती हो बात, हो सकता है, आप मर जाएं, तो आप अपनी पत्नी और बच्चों की गर्दन काट दें; फिर हम लड़ें मौज से। राजपूत ने कहा, बात ठीक है।
वणिक-पुत्र अपने घर गया। राजपूत ने भीतर जाकर गर्दनें साफ कर दीं। बाहर आकर बैठ गया। थोड़ी देर में वणिक-पुत्र मूंछ नीची करके लौट आया। उसने कहा, मैंने सोचा नाहक झंझट क्यों करनी! जरा-सी मूंछ को नीची करने के लिए उपद्रव क्यों करना! यह तुम्हारी तलवार सम्हालो! उस राजपूत ने कहा, तुम आदमी कैसे हो? मैंने अपनी पत्नी और बच्चे साफ कर दिए! तो उस वणिक-पुत्र ने कहा कि फिर तुम जानते ही नहीं कि वणिक का अपना गणित होता है। हमारा अपना हिसाब है!
प्रत्येक व्यक्ति का टाइप है, और प्रत्येक व्यक्ति के रुझान हैं, और प्रत्येक व्यक्ति की संवेदनशीलताएं हैं, और प्रत्येक व्यक्ति के लिए उसके जीवन का महत्वपूर्ण द्वंद्व है। और हर एक को अपना द्वंद्व देख लेना चाहिए कि मेरा द्वंद्व क्या है? प्रेम और घृणा मेरा द्वंद्व है? मित्रता- शत्रुता मेरा द्वंद्व है? धन-निर्धनता मेरा द्वंद्व है? यश-अपयश मेरा द्वंद्व है? सुख-दुख, ज्ञान-अज्ञान, शांति-अशांति, मेरा द्वंद्व क्या है? और जो भी आपका द्वंद्व हो, कृष्ण कहते हैं, उस द्वंद्व में समबुद्धि
को उपलब्ध होना मार्ग है।
ध्यान रहे, दूसरे के द्वंद्व में आप समबुद्धि को बड़ी आसानी से उपलब्ध
हो सकते हैं। अपने ही द्वंद्व का सवाल है। दूसरे के द्वंद्व में आपको

समबुद्धि लाने में जरा भी कठिनाई नहीं पड़ेगी। आप कहेंगे कि बिल्कुल ठीक है। अगर आपकी जिंदगी में कभी यश का ख्याल नहीं पकड़ा, अगर आपको कभी राजनीति का प्रेत सवार नहीं हुआ, यश का, तो आप कहेंगे कि ठीक है, इलेक्शन जीते कि हारे। इसमें तो हम सम ही रहते हैं, इसमें कोई हमें कठिनाई नहीं है। आपको कभी वह भूत नहीं पकड़ा हो, तो आप बिल्कुल समबुद्धि बता सकते हैं। लेकिन असली सवाल यह नहीं है कि आप बताएं; असली सवाल वह है कि जिसे भूत पकड़ा हो। आपका अपना भूत क्या है, आपका अपना प्रेत क्या है, जो आपका पीछा कर रहा है? उसकी ठीक पहचान जरूरी है।
इसलिए कृष्ण अलग-अलग सूत्र में अलग-अलग प्रेतों की चर्चा कर रहे हैं।
वे यहां कहते हैं कि मित्र और शत्रु के बीच समभाव।
बड़ी कठिनाई है। एक बार धन और निर्धनता के बीच समभाव आसान है, क्योंकि
धन निर्जीव वस्तु है। इसे थोड़ा ठीक से समझ लेंगे।
एक बार यश और अपयश के बीच समभाव आसान है, क्योंकि यश और अपयश आपकी निजी बात है। लेकिन मित्र और शत्रु के बीच समभाव रखना बहुत कठिन है। क्योंकि एक तो निजी बात नहीं रही; कोई और भी सम्मिलित हो गया; मित्र और शत्रु भी सम्मिलित हो गए। आप अकेले न रहे, दूसरा भी मौजूद हो गया। और इसलिए भी महत्वपूर्ण और कठिन है कि धन जैसी निर्जीव वस्तु नहीं है सामने। आप सोने को और मिट्टी को समान समझ लें एक बार, तो बहुत कठिनाई नहीं है, क्योंकि दोनों जड़ हैं। लेकिन मित्र और शत्रु दोनों जीवंत हैं, चेतन हैं, उतने ही जितने आप। आपके ही तल पर खड़े हुए लोग हैं; आप जैसे ही लोग हैं। कठिनाई, जटिलता ज्यादा है।
इसलिए मित्र और शत्रु के बीच समभाव रखने की क्या प्रक्रिया होगी? कौन
रख सकेगा मित्र और शत्रु के बीच समभाव? उसको ही कृष्ण योगी कहते हैं। कौन रख सकेगा? तो इसके थोड़े से सूत्र ख्याल में ले लें।
एक, जो व्यक्ति अपने लिए किसी का भी शोषण नहीं करता, जो व्यक्ति अपने लिए किसी का भी शोषण नहीं करता, वही व्यक्ति मित्र और शत्रु के बीच समभाव रखने में सफल हो पाएगा।
आप मित्र कहते ही उसे हैं, जो आपके काम पड़ता है। कहावत है कि मित्र की कसौटी तब होती है, जब मुसीबत पड़े। जो आपके काम पड़ जाए, उसे आप मित्र कहते हैं। जो आपके काम में बाधा बन जाए, उसे आप शत्रु कहते हैं। और तो कोई फर्क नहीं है। इसलिए मित्र कभी भी शत्रु हो सकता है, अगर काम में बाधा डाले। और शत्रु कभी भी मित्र हो सकता है, अगर काम में सहयोगी बन जाए।
अगर आपका कोई भी काम है, तो आप समभाव न रख सकेंगे। मित्र और शत्रु के बीच वही समभाव रख सकता है, जो कहता है, मेरा कोई काम ही नहीं है, जिसमें कोई सहयोगी बन सके और जिसमें कोई विरोधी बन सके। जो कहता है, इस जिंदगी को मैं नाटक समझता हूं, काम नहीं। जो कहता है, यह जिंदगी मेरे लिए सपने जैसी है, सत्य नहीं। जो कहता है, यह जिंदगी मेरे लिए रंगमंच है; यहां मैं खेल रहा हूं, कोई काम नहीं कर रहा हूं।
जो थोड़ा भी गंभीर है जीवन के प्रति और कहता है कि यह काम मुझे करना है,
वह शत्रुओं और मित्रों के बीच कभी भी समभाव को उपलब्ध नहीं हो सकता। क्योंकि काम ही कहेगा कि मित्रों के प्रति भिन्न भाव रखो, शत्रुओं के प्रति भिन्न भाव रखो। अगर मुझे कुछ भी करना है इस जमीन पर, अगर मुझे कोई भी ख्याल है कि मैं कुछ करना चाहता हूं, तो फिर मैं मित्र और शत्रु के बीच समभाव न रख सकूंगा। मित्र और शत्रु के बीच समभाव तभी हो सकता है, जब मेरा कोई काम ही नहीं है इस पृथ्वी पर। मुझे कहीं पहुंचना नहीं है। मुझे कुछ करके नहीं दिखा देना है।
इसका यह भी मतलब नहीं है कि मैं बिल्कुल निठल्ला और निष्क्रिय बैठ जाऊं, तो मित्र और शत्रु के बीच समभाव हो जाएगा। अगर मैंने निठल्ला बैठना भी अपनी जिंदगी का काम बना लिया, तो कुछ मेरे मित्र होंगे जो निठल्ले बैठने में सहायता देंगे और कुछ मेरे शत्रु हो जाएंगे जो बाधा डालेंगे। इसका यह अर्थ नहीं है। इसका इतना ही अर्थ है कि काम तो मैं करता ही रहूंगा, लेकिन यह जिद्द, यह अहंकार मेरे भीतर न हो कि यह काम मुझे करके ही रहना है। तो फिर ठीक है। जो काम में साथ दे देता है, उसका धन्यवाद; और जो काम में बाधा दे देता है, उसका भी धन्यवाद। जो रास्ते से पत्थर हटा देता

है, उसका भी धन्यवाद; और रास्ते पर जो पत्थर बिछा देता है, उसका भी धन्यवाद।
न मुझे कहीं पहुंचना है, न मुझे कुछ कर लेना है। जीता हूं; परमात्मा जो काम मुझसे लेना चाहे, ले ले। जितना मुझसे बन सकेगा, कर दूंगा। कोई ऐसी जिद्द नहीं है कि यह लक्ष्य पूरा होना ही चाहिए। तो फिर मित्र और शत्रु के बीच कोई बाधा नहीं रह जाती। फिर समान हो जाती है बात।
तो पहली बात तो आपसे यह कहना चाहूं कि जिस व्यक्ति को भी जीवन को एक काम समझ लेने की नासमझी आ गई हो, और जिसे ऐसा ख्याल हो कि उसे जिंदगी में कुछ करके जाना है, वह शत्रु और मित्र निर्मित करेगा ही। और वह समभाव भी न रख सकेगा।
दूसरी बात आपसे यह कहना चाहता हूं कि शत्रु और मित्र के बीच समभाव रखना तभी संभव है, जब आपके भीतर वह जो प्रेम पाने की आकांक्षा है, वह विदा हो गई हो। दूसरी बात भी ठीक से समझ लें।
हम सबके मन में मरते क्षण तक भी प्रेम पाने की आकांक्षा विदा नहीं होती। पहले दिन बच्चा पैदा होता है तब भी वह प्रेम पाने के लिए आतुर होता है, उतना ही जितना बूढ़ा मरते वक्त आखिरी श्वास लेते वक्त होता है। प्रेम पाने की आतुरता बनी रहती है; ढंग बदल जाते हैं। लेकिन प्रेम कोई करे मुझे! कोई मुझे प्रेम दे! प्रेम का भोजन न मिलेगा, तो मैं भूखा होकर मर जाऊंगा, मुश्किल में पड़ जाऊंगा।
एक बार शरीर को भोजन न मिले, तो हम सह पाते हैं। लेकिन अगर चित्त को भोजन न मिले--प्रेम चित्त का भोजन है। चित्त को प्राण मिलते हैं प्रेम से। तो जब तक जरूरत है प्रेम की, तब तक मित्र और शत्रु को एक कैसे समझिएगा!
सम कैसे हो जाइएगा! तटस्थ कैसे होंगे! मित्र वह है, जो प्रेम देता है। शत्रु वह है, जो प्रेम नहीं देता है। तो जब तक आपकी प्रेम की आकांक्षा शेष है कि कोई मुझे प्रेम दे... ।
और यह बड़े मजे की बात है कि दुनिया में सारे लोग चाहते हैं कि कोई उन्हें प्रेम दे। शायद ही कोई चाहता है कि मैं किसी को प्रेम दूं! इसको थोड़ा बारीकी से समझ लेना उचित होगा।
हम सबको यह भ्रम होता है कि हम प्रेम देते हैं। लेकिन अगर आप प्रेम सिर्फ इसीलिए देते हैं, ताकि आपको लौटते में प्रेम मिल जाए, तो आप सिर्फ इनवेस्टमेंट करते हैं, देते नहीं हैं। आप सिर्फ व्यवसाय में संलग्न होते हैं।
मैं अगर आपको प्रेम देता हूं सिर्फ इसलिए कि मैं प्रेम चाहता हूं और बिना प्रेम दिए प्रेम नहीं मिलेगा, तो मैं सिर्फ सौदा कर रहा हूं। मेरी चेष्टा तो प्रेम पाने की है। देता हूं इसलिए कि बिना दिए प्रेम नहीं मिलेगा।
यह मेरा दिया हुआ प्रेम वैसा ही है, जैसा कि कोई मछली को मारने वाला कांटे पर आटा लगा देता है। आटा लगाकर कांटे पर और लटकाकर बैठ जाता है अपनी बंसी को। मछलियां सोचती होंगी कि आटा खिलाने के लिए कोई बड़ी कृपा करके आया है! पर आटा सिर्फ ऊपर है, भीतर कांटा है। मछली आटा ही खाने को आएगी और तब पाएगी कि कांटा उसके प्राणों तक चुभ गया है। अगर किसी में कांटा भी डालना हो, तो आटा लगाकर ही डालना पड़ता है।
अगर मुझे किसी से प्रेम लेना है और किसी के ऊपर प्रेम की मालकियत कायम करनी है, तो पहले घुटने टेककर प्रेम निवेदन करना पड़ता है। वह आटा है।
तो दूसरा सूत्र आप ख्याल में ले लें, जब तक प्रेम की आकांक्षा है कि कोई मुझे प्रेम दे... ।
और ध्यान रहे, जब तक यह आकांक्षा है, तब तक आप बच्चे हैं, जुवेनाइल हैं,
आप विकसित नहीं हुए। विकसित मनुष्य वह है, प्रेम पाने का कोई सवाल जिसे नहीं रह गया। जो बिना प्रेम के जी सकता है। प्रौढ़ मनुष्य वह है, जो प्रेम नहीं मांगता।
और यह बड़े मजे की बात है, और इसी से तीसरा सूत्र निकलता है। जो आदमी प्रेम नहीं मांगता, वह आदमी प्रेम देने में समर्थ हो जाता है। और जो आदमी प्रेम मांगता चला जाता है, वह कभी प्रेम देने में समर्थ नहीं होता।

मगर बड़ा उलटा है। हम सबको लगता है, हम प्रेम देने में समर्थ हैं। बाप सोचता है, मैं बेटे को प्रेम दे रहा हूं। लेकिन मनोवैज्ञानिक से पूछें, मनसविद से पूछें। वह कहता है, बाप भी बेटे को थपथपाकर आशा करता है कि बेटा भी बाप को थपथपाए। हां, थपथपाने के ढंग अलग होते हैं। बेटा और ढंग से थपथपाएगा, बाप और ढंग से थपथपाएगा। बेटा कहेगा, डैडी, आप जैसा ताकतवर डैडी इस दुनिया में कोई भी नहीं है! डैडी, जिनकी छाती में हड्डियां भी नहीं हैं, उनकी छाती फूलकर आकाश जैसी हो जाएगी। बेटा भी थपथपा रहा है।
बेटा भी अगर बाप का प्रेम चुपचाप ले ले और उत्तर न दे, तो बाप दुखी और पीड़ित लौटता है। बेटा अगर मां का प्रेम वापस न लौटाए, तो मां भी चिंतित और परेशान और पीड़ित हो जाती है।
बूढ़े से बूढ़ा आदमी भी प्रेम वापस मांग रहा है। आदमियों से नहीं मिलता,
तो लोग कुत्ते पाल लेते हैं। दरवाजे पर आते हैं, कुत्ता पूंछ हिला देता है। क्योंकि अब पत्नियां पूंछ हिलाएं, जरूरी नहीं है। बच्चे पूंछ हिलाएं, जरूरी नहीं है। सब गड़बड़ हो गई है पुरानी व्यवस्था पूंछ हिलाने की। जिन-जिन मुल्कों में आदमी पूंछ हिलाना बंद कर रहे हैं, वहां-वहां कुत्ते का फैशन बढ़ता जाता है। वह सब्स्टीट्यूट है। दरवाजे पर खड़ा रहता है; आप आए, वह पूंछ हिला देता है। आप बड़े खुश हो जाते हैं। आश्चर्यजनक है! कुत्ते की हिलती पूंछ भी आपको तृप्ति देती है। कम से कम कुत्ता तो प्रेम दे रहा है! हालांकि कुत्ते का भी प्रयोजन वही है। वह भी पूंछ हिलाकर आटा डाल रहा है। उसके भी अपने कांटे हैं। वह भी जानता है कि बिना पूंछ हिलाए यह आदमी टिकने नहीं देगा। यह भोजन मिलता है, घर में विश्राम मिलता है, यह पूंछ हिलाकर वह आपसे खरीद रहा है। वह भी इनवेस्ट कर रहा है। सारी दुनिया इनवेस्टमेंट में है।
जो आदमी प्रेम मांग रहा है, वह मित्र और शत्रु के बीच समबुद्धि को उपलब्ध नहीं हो सकता। सिर्फ वही आदमी समबुद्धि को उपलब्ध हो सकता है, वह तीसरा सूत्र आपसे कहता हूं, जो प्रेम मांगने के पार चला गया और जो प्रेम देने में समर्थ हो गया। जिसे प्रेम देना है और लेना नहीं है, वह मित्र को भी दे सकता है, शत्रु को भी दे सकता है। क्योंकि लेने का तो कोई सवाल नहीं है, इसलिए फर्क करने की कोई आवश्यकता नहीं है।
सुना है मैंने, जीसस एक कहानी कहा करते थे। वह कहानी आपको इस बात को समझाने में सहयोगी होगी। जीसस कहा करते थे प्रेम को ही समझाने के लिए। कभी-कभी जीसस के शिष्य सवाल उठा देते थे कि मैं तो आपकी इतनी सेवा करता हूं, फिर भी आप मुझे इतना ही प्रेम करते हैं, जितना कि उस आदमी को करते हैं, जिसने आपकी कभी कोई सेवा नहीं की! मैं आपके साथ बरसों से परेशान होता हूं, दर-दर भटकता हूं। मुझे भी आप उतना ही प्रेम देते हैं, उस अजनबी आदमी को भी उतना ही प्रेम दे देते हैं, जो रास्ते पर आपको पहली बार मिलता है!
तो जीसस एक कहानी कहा करते थे। वे कहते थे कि एक बहुत बड़ा धनपति था-- बहुत बड़ा। उसके पास बहुत धन था, जिसका कोई हिसाब भी न था। मगर इस वजह से बहुत बड़ा धनपति था, इसलिए नहीं। ईसा कहते थे, वह इसलिए बड़ा धनपति था कि धन पर उसकी पकड़ खो गई थी और धन की उसकी आकांक्षा खो गई थी। उसकी अब कोई और आकांक्षा न थी कि मुझे और धन मिल जाए। इसलिए वह बड़ा धनपति था। और वह धन बांट सकता था। क्योंकि जिसकी आकांक्षा शेष है कि मुझे और धन मिल जाए, वह बांट नहीं सकता, वह दान नहीं कर सकता। वह बांट सकता था। अब पाने की कोई आकांक्षा न थी।
एक दिन सुबह उसके अंगूर के खेत पर उसने अपने मजदूर भेजे और कहा कि गांव से कुछ मजदूर बुला लाओ। सुबह सूरज उगने के वक्त कुछ मजदूर खेत पर काम करने आए। लेकिन मजदूर कम थे। फिर उसने आदमी भेजा; फिर बाजार से कुछ मजदूर आए। लेकिन तब सूरज काफी चढ़ चुका था; दोपहर होने के करीब थी। लेकिन फिर भी मजदूर कम थे, काम ज्यादा था। फिर उसने और आदमी भेजे। ऐसा हुआ कि दोपहर के बाद भी कुछ लोग आए। और ऐसा हुआ कि सांझ ढलते हुए भी कुछ लोग आए। और फिर सूरज ढलने लगा। और मजदूरी बंटने का समय आ गया। उसने सब मजदूरों को बराबर पैसे दिए।
सुबह से जो मजदूर आए थे, उनकी तेवर चढ़ गईं। उन्होंने कहा, यह अन्याय है। हम सुबह से आए हैं! दिनभर सूरज के चढ़ते और उतरते हमने काम किया। और कुछ

लोग ऐसे भी हैं, जो अभी आए हैं, जिन्होंने काम हाथ में लिया ही था कि सूरज ढल गया और सांझ हो गई और अंधेरा उतर आया। और हम सबको तुम बराबर देते हो!
उस धनपति ने कहा, मैं तुमसे यह पूछता हूं कि तुमने जितना काम किया, उतना काम के योग्य तुम्हें मिल गया या उससे कम है? उन्होंने कहा, नहीं, हमें उससे ज्यादा ही मिल गया है। तो उस आदमी ने कहा, फिर तुम इनकी चिंता मत करो। इन्हें मैं इनके काम के कारण नहीं देता; मेरे पास बहुत है, इसलिए देता हूं। तुम्हें तुम्हारे काम से ज्यादा मिल गया हो, तुम निश्चिंत चले जाओ। और इन्हें मैं इनके काम के कारण नहीं देता; मेरे पास देने को बहुत है, इसलिए देता हूं।
जिसके पास देने को प्रेम है--और उसी के पास है, जिसको अब मांगने की इच्छा न रही, जो अब प्रेम का भिखारी न रहा, जो सम्राट हुआ। बहुत मुश्किल से कभी कोई बुद्ध, कभी कोई कृष्ण इस हालत में आते हैं, जब कि वे प्रेम के मालिक होते हैं, जब वे सिर्फ देते हैं और लेते नहीं। मांगते नहीं, मांगने का कोई सवाल ही नहीं, सिर्फ बांटते चले जाते हैं। ऐसा व्यक्ति शत्रु को भी दे देगा और मित्र को भी दे देगा, क्योंकि कोई कमी पड़ने वाली नहीं है। और मित्र और शत्रु में फर्क क्यों करें? जब दोनों को देना ही है, तो फर्क का क्या सवाल है! लेना हो, तो फर्क का सवाल है, क्योंकि मित्र देगा और शत्रु नहीं देगा। लेकिन देना ही हो, तो फर्क का क्या सवाल है!
तो तीसरा सूत्र ख्याल रख लें कि जो प्रेम के मालिक हुए, वे ही केवल मित्र और शत्रु के बीच समबुद्धि को उपलब्ध हो सकते हैं।
मैंने कहा कि धन और निर्धनता के बीच समबुद्धि लानी बहुत कठिन नहीं है, क्योंकि धन बड़ी बाहरी घटना है। और यश-अपयश के बीच भी समबुद्धि लानी बहुत बड़ी बात नहीं है, क्योंकि यश-अपयश भी लोगों की आंखों का खेल है। लेकिन मित्र और शत्रु के बीच समभाव लाना बहुत गहरी घटना है। क्योंकि आप और आपका प्रेम और आपका पूरा व्यक्तित्व समाहित है। आप पूरे रूपांतरित हों, तो ही मित्र और शत्रु को समभाव से देख पाएंगे।
ये तीन तो आधारभूत सूत्र आपको ख्याल में रखने चाहिए। और जब भी, जब भी
मन कहे कि यह आदमी मित्र है, तब पूछना चाहिए, क्यों? यह सवाल, जब भी मन कहे, फलां आदमी शत्रु है, तो पूछना चाहिए, क्यों? क्या इसलिए कि उससे मुझे प्रेम नहीं मिलेगा? क्या इसलिए कि वह मेरे किसी काम में बाधा डालेगा? किसलिए वह मेरा शत्रु है? और किसलिए कोई मेरा मित्र है? क्या इसलिए कि वह मुझे प्रेम देगा, मैं भरोसा कर सकता हूं? मेरे वक्त पर काम पड़ेगा? मेरे काम में सहयोगी होगा, बाधा नहीं बनेगा?
अगर यही सवाल आपको उठते हों, तो फिर एक बार सोचना कि आप जिंदगी में कोई काम करने के पागलपन से भरे हैं। अहंकार सदा कहता है कि कुछ करने को आप हैं। जो भी करने को है, वह परमात्मा कर लेता है। आप नाहक के बोझ से न भरें।
आप व्यर्थ विक्षिप्त न हों। उससे कुछ काम तो न होगा, उससे सिर्फ आप परेशान हो लेंगे। उससे कुछ भी न होगा।
इस दुनिया में कितने लोग आते हैं, जो सोचते हैं, कुछ करना है उनको। आप जरूर कुछ करते रहें, लेकिन इस ख्याल से मत करें कि आपको कुछ करना है। इस ख्याल से करते रहें कि परमात्मा की मर्जी; वह आपसे कुछ कराता है, आप करते हैं।
अगर ऐसा आपने देखा, तो शत्रु भी आपको परमात्मा का ही काम करता हुआ दिखाई पड़ेगा, क्योंकि परमात्मा के अतिरिक्त और कोई है नहीं। तब आप समझेंगे कि परमात्मा का कोई हिसाब होगा; वह शत्रु से भी काम ले रहा है, मुझसे भी काम ले रहा है। उसके अनंत हाथ हैं; वह हजार ढंग से काम ले रहा है। तब आपको शत्रु और मित्र बनाने की कोई जरूरत न रह जाएगी।
इसका यह मतलब नहीं है कि आपके शत्रु और मित्र नहीं बनेंगे। वे बनेंगे;
वह उनकी मर्जी। आपको बनाने की कोई जरूरत न रह जाएगी। और आप दोनों के बीच समभाव रख सकेंगे।
यह समता आ जाए, तो भी मनुष्य योग में प्रतिष्ठित हो जाता है। समत्व कहीं से आए; वही सार है।
तो कृष्ण इस सूत्र में कहते हैं शत्रु और मित्र के बीच ठहर जाने को।
अर्जुन के लिए यह सूत्र काम का हो सकता है। उसकी सारी तकलीफ गीता में यही

है। उसको कष्ट यही हो रहा है कि उस तरफ बहुत-से मित्र हैं, जिनको मारना पड़ेगा। शत्रु हैं, उनको मारना पड़े, उसमें तो उसे अड़चन नहीं है; अर्जुन को अड़चन नहीं है। अगर विभाजन साफ-साफ होता, तो बड़ी आसानी होती। मगर विभाजन बड़ा उलटा था। युद्ध बहुत अनूठा था। और इसीलिए गीता उस युद्ध के मंथन से निकल सकी; नहीं तो नहीं निकल पाती।
युद्ध इसलिए अनूठा था कि उस तरफ भी मित्र खड़े थे, सगे-साथी खड़े थे, प्रियजन खड़े थे, परिवार के लोग थे। कोई भाई था, कोई भाई का संबंधी था, कोई पत्नी का भाई था, कोई मित्र का मित्र था। सब गुंथे हुए थे। उस तरफ, इस तरफ एक ही परिवार खड़ा था। साफ नहीं था कि कौन है शत्रु, कौन है मित्र! सब धुंधला था। उसी से अर्जुन चिंतित हो आया। उसे लगा, अपने ही इन मित्रों को, प्रियजनों को मारकर अगर यह इतना बड़ा राज्य मिलता हो, तो हे कृष्ण, छोडूं इस राज्य को, भाग जाऊं जंगल। इससे तो मर जाना बेहतर। आत्महत्या कर लूं, वह अच्छा। इतने सब मित्रों की, इतने प्रियजनों की हत्या करके राज्य पाकर क्या करूंगा? वह क्षत्रिय बोला। वह क्षत्रिय का मन है। राज्य दो कौड़ी का है, लेकिन प्रियजनों को, मित्रों को मारने का क्या प्रयोजन है?
वह क्षत्रिय का ही मन बोल रहा है, जो मित्र और शत्रु की कीमत आंकता है।
उस तरफ भी अपने ही लोग खड़े हैं। दुर्भाग्य, अभाग्य का क्षण कि बंटवारा ऐसा हुआ है। ऐसा ही होने वाला था। क्योंकि जो अर्जुन के मित्र थे, वे ही दुर्योधन के भी मित्र थे। खुद कृष्ण बड़ी मुश्किल में बंटकर खड़े थे। कृष्ण इस तरफ खड़े थे, कृष्ण की सारी फौजें कौरवों की तरफ खड़ी थीं। अजीब थी लड़ाई! अपनी ही फौजों के खिलाफ, अपने ही सेनापतियों के खिलाफ कृष्ण को लड़ना था। और उस तरफ से कृष्ण के ही सेनापति कृष्ण के खिलाफ लड़ने को तत्पर थे।
सारा बंटवारा प्रियजनों का था। मजबूरी में कोई इस तरफ खड़ा हो गया था, कोई उस तरफ। लेकिन सभी बेचैन थे। फिर भी अर्जुन सर्वाधिक बेचैन था। क्योंकि कहा जा सकता है कि अर्जुन उस युद्ध में सर्वाधिक शुद्ध क्षत्रिय था। वह सर्वाधिक बेचैन हो उठा था। भीम उतना बेचैन नहीं है। उसे मित्र दिखाई ही पड़ नहीं रहे हैं। शत्रु इतने साफ दिखाई पड़ रहे हैं कि पहले इनको मिटा डालना उचित है, फिर सोचा जाएगा। अर्जुन चिंता और संताप में पड़ा है। कृष्ण का यह सूत्र अर्जुन के लिए विशेष है, मित्र और शत्रु के बीच समभाव। इसका मतलब है कि कोई फिक्र न करो, कौन मित्र है, कौन शत्रु है। दोनों के बीच तटस्थ हो जाओ। कौन अपना है, कौन पराया है, इस भाषा में मत सोचो। यह भाषा ही गलत है। योगी के लिए निश्चित ही गलत है।
और बड़े मजे की बात यही है कि अर्जुन तो केवल युद्ध से बचने का उपाय चाहता था। उसकी सारी जिज्ञासा निगेटिव, नकारात्मक थी। किसी तरह युद्ध से बचने का उपाय मिल जाए! लेकिन कृष्ण जैसा शिक्षक ऐसा अवसर चूक नहीं सकता था।
कृष्ण की सारी शिक्षा पाजिटिव है। कृष्ण की सारी चेष्टा अर्जुन के भीतर योग को उत्पन्न कर देने की है। अर्जुन तो सिर्फ इतना ही चाहता था, किसी तरह से यह जो संताप पैदा हो गया है मेरे मन में, यह जो चिंता हो गई है, इससे मैं बच जाऊं। कृष्ण ने इसका पूरा उपयोग किया, अर्जुन के इस चिंता के क्षण का, इस अवसर का। कृष्ण इसके लिए उत्सुक नहीं हैं कि वह चिंता से कैसे बच जाए। कृष्ण इसके लिए उत्सुक हैं कि वह निश्चिंत कैसे हो जाए।
इस फर्क को आप समझ लेना। चिंता से बच जाना एक बात है। वह तो रात में ट्रैंक्वेलाइजर लेकर भी आप चिंता से बच जाते हैं। शराब पी लें, तो भी चिंता से बच जाते हैं। शराब कई तरह की हैं। अर्जुन को भी शराब पिलाई जा सकती थी। भूल-भाल जाता नशे में; टूट पड़ता युद्ध में।
शराब कई तरह की हैं--कुल की, यश की, धन की, राज्य की, प्रतिष्ठा की, अहंकार की। वह कुछ भी उसे पिलाई जा सकती थी। भूल जाता। दीवाना हो जाता। उसके घाव छुए जा सकते थे। कृष्ण उसके घाव छू सकते थे कि अर्जुन, तू जानता है कि तेरी द्रौपदी के साथ दुर्योधन ने क्या किया! नशा शुरू हो जाता। उसके घाव छुए जा सकते थे। घाव बहुत गहरे थे और हरे थे। कृष्ण के लिए कठिनाई न पड़ती। इतनी लंबी गीता कहने की कोई भी जरूरत न थी। जरा से घाव उकसाने की जरूरत थी। जहर फैल जाता उसके भीतर। कहना था कि याद आता है वह दिन, जब द्रौपदी को नग्न किया था! भूल गया वह क्षण, जब द्रौपदी को नग्न करने

की चेष्टा के बीच तू सिर झुकाए बैठा था और तेरे ही सामने दुर्योधन अपनी जांघ को उघाड़कर थपथपा रहा था और द्रौपदी से कह रहा था, आ मेरी जांघ पर बैठ जा! वह क्षण तुझे याद है? बस, इतना काफी होता। गीता कहने की कोई जरूरत न थी। अर्जुन कूद पड़ा होता।
लेकिन कृष्ण ने वह नहीं किया। उसको सिर्फ नशा देकर लड़ा देने की बात न
थी; सिर्फ चिंता से बचा देने की बात न थी; निश्चिंत बनाने की, विधायक प्रक्रिया की बात थी।
तो कृष्ण पूरी मेहनत यह कर रहे हैं कि वह चिंता के बाहर हो जाए, इतना काफी नहीं; युद्ध में उतर जाए, इतना काफी नहीं; काफी यह है कि वह योगारूढ़ हो जाए। जरूरी यह है कि वह योगस्थ हो जाए, वह योगी हो जाए। और योगी होकर ही युद्ध में उतरे, तो युद्ध धर्मयुद्ध बन सकेगा, अन्यथा युद्ध धर्मयुद्ध नहीं होगा।
दुनिया में जब भी दो लोग लड़ते हैं, तो कभी ऐसा हो सकता है, थोड़ी-बहुत मात्रा का भेद होता है। कोई थोड़ा ज्यादा अधार्मिक, कोई थोड़ा कम अधार्मिक। लेकिन ऐसा मुश्किल से होता है कि एक धार्मिक हो और दूसरा अधार्मिक। अधार्मिक होने में ही मात्रा-भेद होता है। कोई नब्बे प्रतिशत अधार्मिक होता है, कोई पंचानबे प्रतिशत अधार्मिक होता है। लेकिन युद्ध हमेशा अधर्म और अधर्म के बीच ही चलता है।
कृष्ण एक अनूठा प्रयोग करना चाह रहे हैं; शायद विश्व के इतिहास में पहला, और अभी तक उसके समानांतर कोई दूसरा प्रयोग हो नहीं सका। वह प्रयोग यह करना चाह रहे हैं, युद्ध को एक धर्मयुद्ध बनाने की कीमिया अर्जुन को देना चाह रहे हैं।
वे अर्जुन से कह रहे हैं, तू योगी होकर लड़; तू समत्वबुद्धि को उपलब्ध होकर लड़; तू शत्रु और मित्र के बीच बिल्कुल तटस्थ होकर लड़; अपने और पराए के बीच फासला छोड़ दे। क्या होगा फल, इसकी चिंता न कर। इसकी ही चिंता कर कि क्या है तेरा चित्त! कौन मरेगा, कौन बचेगा, इसकी फिक्र मत कर। इसकी ही फिक्र कर कि चाहे कोई मरे, चाहे कोई बचे, चाहे तू मरे या तू बचे, लेकिन मृत्यु और जन्म के बीच तुझे कोई फर्क न हो; तू समत्व को उपलब्ध हो जा। चाहे सफलता आए चाहे असफलता, चाहे विजय आए और चाहे पराजय, तू दोनों को समभाव से झेल सके। तेरे चित्त की लौ जरा भी कंपित न हो। तू निष्कंप हो जा।
युद्ध के क्षण में किसी को योगी बनाने की यह चेष्टा बड़ी इंपासिबल है, बड़ी असंभव है।
ये कृष्ण जैसे लोग सदा ही असंभव प्रयास में लगे रहते हैं। उनकी वजह से
ही जिंदगी में थोड़ी रौनक है; उनकी वजह से ही, ऐसे असंभव प्रयास में लगे हुए लोगों की वजह से ही, जिंदगी में कहीं-कहीं कांटों के बीच एकाध फूल खिलता है; और जिंदगी के उपद्रव के बीच कभी कोई गीत जन्मता है। असंभव प्रयास, दि इंपासिबल रेवोल्यूशन, एक असंभव क्रांति की आकांक्षा है कि अर्जुन योगी होकर युद्ध में चला जाए।
दो बातें आसान हैं। अर्जुन को योगी मत बनाओ, बेहोश करो, और भी भोगी बना दो--युद्ध में चला जाएगा। दूसरी भी बात संभव है, अर्जुन को योगी बनाओ-- युद्ध को छोड़कर जंगल चला जाएगा। ये दो बातें बिल्कुल आसान और संभव हैं। ये बिल्कुल पासिबल के भीतर हैं। दो में से कुछ भी करो। अर्जुन को और भोग की लालच दो--युद्ध में लगा दो। अर्जुन को योगी बनाओ--जंगल चला जाए।
कृष्ण एक असंभव चेष्टा में संलग्न हैं। और इसीलिए गीता एक बहुत ही असंभव प्रयास है। असंभव होने की वजह से ही अदभुत; असंभव होने की वजह से ही इतना ऊंचा, इतना ऊर्ध्वगामी है। वह असंभव प्रयास यह है कि अर्जुन, तू योगी भी बन और युद्ध में भी खड़ा रह। तू हो जा बुद्ध जैसा, फिर भी तेरे हाथ से धनुष-बाण न छूटे।
बुद्ध जैसा होकर बोधिवृक्ष के नीचे बैठ जाने में अड़चन नहीं है; कोई अड़चन नहीं है। लेकिन बुद्ध जैसा होकर युद्ध के क्षण में युद्ध के मैदान पर खड़े रहने में बड़ी अड़चन है। और इसलिए वे सब द्वार खटखटा रहे हैं। कहीं से भी अर्जुन को प्रकाश दिखाई पड़ जाए।
इस सूत्र में वे कहते हैं, मित्र और शत्रु के बीच समबुद्धि, तो तू योग
को उपलब्ध हो जाता है।

योगी युंजीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः।। 10।।
इसलिए उचित है कि जिसका मन और इंद्रियों सहित शरीर जीता हुआ है, ऐसा वासनारहित और संग्रहरहित योगी अकेला ही एकांत स्थान में स्थित हुआ निरंतर आत्मा को परमेश्वर के ध्यान में लगाए।

यहां दो-तीन बातें कृष्ण कहते हैं, जो बड़ी विपरीत जाती हुई मालूम पड़ेंगी। और ऐसे सूत्रों की बड़ी गलत व्याख्या की गई है। प्रकट व्याख्या मालूम पड़ती है, इसलिए गलती करने में आसानी भी हो जाती है।
कहते हैं वह, वासना से रहित हुआ, संग्रह से मुक्त हुआ, समत्व को पाया हुआ, ऐसा जो योगी-चित्त है, वह एकांत में परमात्मा का स्मरण करे, परमात्मा को ध्याये, परमात्मा का ध्यान करे; परम सत्ता की दिशा में गति करे।
एकांत में! तो इस सूत्र के गलत अर्थ बहुत आसान हो गए। तो यही तो अर्जुन
कह रहा है कि मुझे जाने दो महाराज इस युद्ध से। एकांत में जाऊं, चिंतन-मनन करूं, प्रभु का स्मरण करूं। जाने दो मुझे। कृष्ण फिर उसे रोक क्यों रहे हैं? फिर युद्धोन्मुख क्यों कर रहे हैं? फिर कर्मोन्मुख क्यों कर रहे हैं? फिर क्यों कह रहे हैं कि कर्म में रत रहकर तू जी? सम होकर, समत्व को पाकर, पर कर्म में रत होकर।
एकांत! तो एकांत से कृष्ण का जो अर्थ है, वह समझ लेना चाहिए।
एकांत से अर्थ अकेलापन नहीं है। एकांत से अर्थ अकेलापन नहीं है, आइसोलेशन नहीं है। एकांत से अर्थ लोनलीनेस नहीं है। एकांत से अर्थ है, अलोननेस। एकांत से अर्थ है, स्वयं होना, पर-निर्भर न होना। एकांत से अर्थ, दूसरे की अनुपस्थिति नहीं है। एकांत से अर्थ है, दूसरे की उपस्थिति की कोई जरूरत नहीं है।
इस फर्क को ठीक से समझ लें।
आप जंगल में बैठे हैं। बिल्कुल एकांत है। कोई नहीं चारों तरफ। दूर कोसों तक कोई नहीं। फिर भी मैं नहीं मानता कि आप एकांत में हो सकेंगे। आपके होने का ढंग भीड़ में होने का ढंग है। आप अकेले हो सकेंगे; एकांत में नहीं हो सकेंगे। अकेले तो प्रकट हैं। अकेले बैठे हैं। कोई नहीं दिखाई पड़ता आस-पास। लेकिन एकांत नहीं हो सकता। भीतर झांककर देखेंगे, तो उन सबको मौजूद पाएंगे, जिनको गांव में, घर छोड़ आए हैं। मित्र भी वहां होंगे, शत्रु भी वहां होंगे; प्रियजन भी वहां होंगे, परिवार भी वहां होगा; दुकान-बाजार, काम-धंधा, सब वहां होगा। भीतर सब मौजूद होंगे। पूरी भीड़ मौजूद होगी। तो अकेले में तो आप हैं, लेकिन एकांत में नहीं हैं।
एकांत का तो अर्थ है कि भीतर एक ही स्वर बजे, कोई दूसरे की मौजूदगी न
रह जाए भीतर। तो इससे उलटा भी हो सकता है। जिस आदमी को एकांत का रहस्य पता चल गया हो, वह भीड़ में खड़े होकर भी एकांत में होता है। भीड़ कोई बाधा नहीं डालती। भीड़ सदा बाहर है। कौन आपके भीतर प्रवेश कर सकता है?
आप यहां बैठे हैं, इतनी भीड़ में बैठे हैं। आप अकेले हो सकते हैं। भीड़ अपनी जगह बैठी है। कोई आपकी जगह पर नहीं चढ़ा हुआ है। अपनी-अपनी जगह पर लोग बैठे हुए हैं। कोई चाहे, तो भी आपकी जगह पर नहीं बैठ सकता है। अपनी-अपनी जगह पर लोग हैं। अगर उनका हाथ भी आपको छू रहा है चारों तरफ से, तो हाथ ही छू रहा है। हाथ का स्पर्श भीतर प्रवेश नहीं करता। भीतर आप बिल्कुल एकांत में हो सकते हैं।
एक ही स्वर हो भीतर, स्वयं के होने का; एक ही स्वाद हो भीतर, स्वयं के होने का; एक ही संगीत हो भीतर, स्वयं के होने का। दूसरे का कोई भी पता नहीं। कोसों तक नहीं, अनंत तक कोई भी पता नहीं। भीतर कोई है ही नहीं दूसरा। आप बिल्कुल अकेले हैं।
इस एकांत, इस आंतरिक, इनर एकांत का अर्थ और है, और बाह्य अकेलेपन का अर्थ और है। भीड़ से भाग जाना बड़ी सरल बात है, लेकिन स्वयं के भीतर से भीड़ को बाहर निकाल देना बहुत कठिन बात है।
भीड़ से निकल जाने में कौन-सी कठिनाई है? दो पैर आपके पास हैं, निकल भागिए! दो पैर काफी हैं भीड़ से बाहर निकलने के लिए, कोई कठिन बात है? दो पैर

आपके पास हैं, निकल भागिए! मत रुकिए तब तक, जब तक कि भीड़ न छंट जाए। एकांत में पहुंच जाएंगे? अकेलेपन वाले एकांत में पहुंच जाएंगे।
लेकिन भीड़ को भीतर से बाहर निकाल फेंकना अति कठिन मामला है। पैर साथ न देंगे; कितना ही भागिए, भीतर की भीड़ भीतर मौजूद रहेगी। जहां भी जाइएगा, साथ खड़ी हो जाएगी। जहां भी वृक्ष के नीचे विश्राम करने बैठेंगे, भीतर के मित्र बात-चीत शुरू कर देंगे कि कहिए, क्या हाल है! मौसम कैसा है? सब शुरू हो जाएगा! बैठकखाना वापस आपके साथ भीतर मौजूद हो जाएगा। और कई बार तो ऐसा होगा कि जिनकी मौजूदगी में जिनका कोई पता नहीं चलता, उनकी गैर-मौजूदगी में उनका पता और भी ज्यादा चलता है!
अपनी पत्नी के पास बैठे हैं घंटेभर, तो भूल भी जा सकते हैं कि पत्नी है। भूल भी जा सकते हैं। अक्सर भूल ही जाते हैं। पत्नी नहीं है, तब उसकी खाली जगह उसका ज्यादा स्मरण दिलाती है। आदमी जिंदा है, तो पता नहीं चलता; मर जाता है, तो घाव छोड़ जाता है; ज्यादा याद आता है। जगह खाली हो जाती है। किसी की मौजूदगी की वजह से आपके भीतर भीड़ नहीं होती; आपके भीतरी रसों
की वजह से ही भीड़ होती है। आंतरिक रस है। दूसरे में हम रस लेते हैं। इसलिए जब कोई मौजूद होता है, तो उतनी जल्दी नहीं रहती है। जानते हैं कि कभी भी रस ले लेंगे; मौजूद तो है। लेकिन पता चल जाए कि मौजूद नहीं है, तो रस ज्यादा आने लगता है। क्योंकि पता नहीं, अभी रस लेना चाहें, तो दूसरा मौजूद मिले, न मिले। तो गैर-मौजूदगी और भी ज्यादा पकड़ लेती है, जोर से पकड़ लेती है। रवींद्रनाथ ने कहीं मजाक में लिखा है कि जिन पति-पत्नियों को अपना प्रेम जिंदा रखना हो, उन्हें बीच-बीच में एक-दूसरे से छुट्टी, हॉलीडे लेते रहना चाहिए। रवींद्रनाथ के एक पात्र ने तो अपनी प्रेयसी से कहा है--बहुत पीछे पड़ी है वह स्त्री, तो उसने कहा कि ठीक है कि हम राजी हो जाएं, विवाह कर लें। उस पात्र ने कहा, मैं राजी हूं विवाह करने को। लेकिन तेरी दूसरी शर्त मेरी समझ में नहीं आती! क्योंकि उस स्त्री की दूसरी शर्त यह है कि हम विवाह तो कर लें, लेकिन झील के एक तरफ मैं रहूंगी और झील के दूसरी तरफ तुम रहना। कभी-कभी निमंत्रण पर हम एक-दूसरे से मिल लिया करेंगे। या कभी-कभी अनायास, झील में नाव खेते या नदी के तट पर टहलते मुलाकात हो जाएगी, तो किसी झाड़ के नीचे बैठकर बात कर लेंगे! तो वह आदमी कहता है, इससे बेहतर है, हम विवाह ही न करें। विवाह किस लिए? पर वह स्त्री कहती है, विवाह तो हम कर लें, लेकिन रहें फासले पर; ताकि एक-दूसरे की याद आती रहे; ताकि एक-दूसरे को भूल न जाएं। कहीं ऐसा न हो कि एक-दूसरे के पास इतने आ जाएं कि भूल ही जाएं। भूल ही जाते हैं। अनुपस्थिति याद को जगा जाती है।
तो इस ख्याल में मत रहना आप कि भीड़ के बीच में हैं, तो भीड़ में हैं। भीड़ में होने का अर्थ है कि भीड़ आपके भीतर है, तो आप भीड़ में हैं। भीड़ आपके भीतर नहीं है, तो आप बिल्कुल अकेले हैं।
कृष्ण जैसा आदमी कहीं भी खड़ा हो--कैसी भी भीड़ में, कैसे भी बाजार में-- अरण्य ही चलता है, जंगल ही है। हम जैसा आदमी कहीं भी खड़ा हो जाए, जंगल में भी, तो भीड़ ही चलती है, बाजार ही है। हमारे होने के ढंग पर निर्भर है।
तो जब अर्जुन से कहा कृष्ण ने कि ऐसा व्यक्ति समत्व को उपलब्ध हुआ, थिर हुआ, शांत हुआ, एकांत में प्रभु को ध्याता है, प्रभु का ध्यान करता है, तो क्या अर्थ होगा? किसी जंगल में, किसी पहाड़ पर, किसी गुफा में?
नहीं, एक और गुफा है, अंतर-हृदय की, वहां। एक और अरण्य है स्वयं के भीतर ही, शून्य का, वहां। एक इनर स्पेस है, एक भीतरी आकाश है। इस बाहर के आकाश से भी विराट और बड़ा, वहां। हृदय की गुफा में। वहां एकांत में वह प्रभु को ध्याता है। और वहीं प्रभु का ध्यान किया जा सकता है; बाहर के जंगलों में कोई प्रभु का ध्यान नहीं किया जा सकता।
इसे भी थोड़ा-सा समझ लें।
साधक के लिए विशेष ध्यान में ले लेने जैसी बात है कि प्रभु का ध्यान अंतर-गुफा में किया जाता है, हृदय की गुफा में। नकल में हम कितनी ही गुफाएं बाहर बना लें पत्थरों को खोदकर, उनसे हल नहीं होता। पत्थर बहुत कमजोर है।
हृदय को खोदना पत्थर से भी जटिल चीज को तोड़ना है; ज्यादा कठिन है। हीरे की छेनियां भी टूट जाएंगी।
हृदय में गुफा है। सबके भीतर एक अंतर-आकाश है।

एक आंग्ल-भारतीय विचारक आबरी मेनन ने एक छोटी-सी किताब लिखी है। उसके पिता तो भारतीय थे, उसकी मां अंग्रेज थी। आबरी मेनन ने एक छोटी-सी किताब लिखी है, दि स्पेस आफ दि इनर हार्ट, अंतर-हृदय का आकाश। किताब बहुत मधुर संस्मरण से शुरू की है।
वेटिकन के पोप से मिलने गया था मेनन; तो वेटिकन के पोप के चरणों में सिर झुकाकर आशीर्वाद लेने को झुका। तभी वेटिकन के पोप ने अपने साथ खड़े हुए महासचिव को पूछा, किस जाति का व्यक्ति है यह, कौन है? किस जाति का व्यक्ति है यह, कौन है? साथ खड़े हुए सेक्रेटरी ने वेटिकन के पोप को कहा, अंग्रेज है, आंग्ल है। वेटिकन के पोप ने मेनन के चेहरे पर हाथ फेरा और कहा, नहीं। इसके चेहरे का ढंग भारतीय है।
झुका हुआ मेनन अपने मन में सोचने लगा, सच में मैं कौन हूं? उसको एक सवाल उठा कि मैं भारतीय हूं या अंग्रेज हूं? लेकिन अंग्रेज होना और भारतीय होना चमड़ी से ज्यादा गहरी बात नहीं है। भीतर मैं कौन हूं? चमड़ी तो मेरी दोनों की है। अंग्रेज की भी है थोड़ी चमड़ी मेरे पास और एक भारतीय की भी चमड़ी है थोड़ी मेरे पास। खून भी मेरे पास भारतीय का है और अंग्रेज का भी है। फिर मैं कौन हूं? क्या यही चमड़ी और खून का जोड़ मैं हूं? या मैं कुछ और भी हूं? वह झुका हुआ मेनन नीचे सोचने लगा।
उठकर खड़ा हुआ, वेटिकन के पोप ने फिर पूछा कि कहो, कौन हो तुम? तो उसके
मन में हुआ कि वेटिकन के पोप के संबंध में कहा जाता है कि वह इनफालिबल है, वह कभी भूल नहीं करता। ईसाई मानते हैं कि उनका जो बड़ा पुरोहित है, वह कभी भूल नहीं करता। मधुर मान्यता है। मेनन को ख्याल आया कि अगर मैं कहूं कि आंग्ल-भारतीय हूं, आधा भारतीय आधा अंग्रेज हूं, तो कहीं पोप को दुख न हो। वह यह न सोचे कि मैंने उसे फालिबल सिद्ध किया, मैंने कहा कि वह भी गलती कर सकता है। तो मेनन ने कहा कि हां, आप ठीक कहते हैं महानुभाव! मैं भारतीय हूं।
पोप बहुत खुश हुआ। मेनन ने अपनी किताब में लिखा है कि इसलिए नहीं खुश हुआ कि मैं भारतीय था और भारतीय से मिलकर उसे खुशी हुई। इसलिए भी खुश नहीं हुआ कि मैं कोई खास आदमी था और मुझसे मिलकर खुशी हुई। खुश इसलिए हुआ कि पोप इनफालिबल है, उससे कभी भूल नहीं होती।
पर मेनन ने लिखा है कि मेरे चित्त में एक चक्कर चल पड़ा उस दिन से कि मैं कौन हूं? क्या मैं यह हड्डी और मांस और चमड़ी का जोड़ मैं हूं? मैं कौन हूं? अगर सच में यह पोप मेरी आंखों में झांककर कहता और कहता कि ठीक है, मैं समझ गया; तुम्हारा शरीर तो भारतीय है या अंग्रेज, पर तुम कौन हो? क्या तुम शरीर ही हो? तो वह बड़ी खोज में लग गया कि मैं कहां पाऊं कि मैं कौन हूं? उसने बहुत खोजा, बहुत खोजा, और आखिर में हम सोच भी नहीं सकते कि उसे अपना उत्तर छांदोग्य उपनिषद से मिला। छांदोग्य उपनिषद पढ़ते वक्त उसे यह शब्द सुनाई पड़ा, ख्याल आया, हृदय की गुफा, दि इनर स्पेस आफ दि हार्ट, वह अंतर-हृदय का आकाश। उसने कहा कि अगर मैं कोई भी हूं, तो मेरे हृदय की गुफा में ही भीतर प्रवेश करूं तो जान पाऊंगा, अन्यथा नहीं जान पाऊंगा।
फिर उसने एक कमरे में अपने को बंद कर लिया महीनों के लिए। रोटी सरका जाता कोई समय पर, वह रोटी खा लेता। पानी सरका जाता, वह पानी पी लेता। और वह आंख बंद करके बस एक ही चिंतन में लग गया, एक ही ध्यान में कि मैं कौन हूं? शरीर मैं नहीं हूं। उसने एक महीने तक इसका ही निरंतर ध्यान किया कि शरीर मैं नहीं हूं, शरीर मैं नहीं हूं। एक महीने तक इस एक शब्द के सिवा उसने कोई उपयोग न किया कि शरीर मैं नहीं हूं। सोते-जागते, उठते-बैठते, होश में, बेहोशी में, जानता रहा, दोहराता रहा, समझता रहा, स्मरण करता रहा--शरीर मैं नहीं हूं। एक महीने के बाद उसने आंख खोलकर अपने शरीर को देखा और पाया कि निश्चित ही शरीर मैं नहीं हूं। एक यात्रा का पड़ाव पूरा हो गया।
और उसने लिखा है कि जिस दिन मैंने पाया कि मैं शरीर नहीं हूं, फिर मैंने आंख बंद की और मैंने कहा कि अब मैं जानने चलूं कि मैं कौन हूं! एक बात तो पूरी हुई कि क्या मैं नहीं हूं। अब मैं जानूं कि मैं कौन हूं!
और जब मैंने भीतर झांका, तो मुझे छांदोग्य की बात समझ में आई कि भीतर
एक अंतर-गुफा है हृदय की, जहां मैं हूं, जो मैं हूं। और जैसे-जैसे उस अंतर-गुफा में मैंने प्रवेश किया, तो मैंने पाया, आश्चर्य! इतना बड़ा आकाश भी

नहीं है, जितनी बड़ी वह अंतर-गुफा है। और जैसे-जैसे मैं उसमें भीतर गया, वैसे-वैसे एक रहस्य उदघाटित हुआ कि जैसे-जैसे चला भीतर, वैसे-वैसे मैं मिटता गया। खाली, शून्य ही रह गया। एकांत ही रह गया। सिर्फ एकांत, मैं भी न रहा। मेरी मौजूदगी भी तो एकांत में बाधा है।
तो आपको एकांत का अंतिम अर्थ कहता हूं, जिससे कृष्ण का प्रयोजन है। अगर आप भी बच रहे, तो भी एकांत नहीं है। एक क्षण ऐसा आता है, जब आप भी नहीं हैं; सिर्फ चैतन्य रह जाता है, आप भी नहीं होते हैं। आपको पता भी नहीं होता कि मैं भी हूं, सिर्फ होना रह जाता है। उस शुद्ध होने में एकांत है। उस एकांत में प्रभु को ध्याया जाता है। ध्याया क्या जाता है, उस एकांत में प्रभु को जान ही लिया जाता है। उस एकांत में प्रभु से मिलन ही हो जाता है। तो कृष्ण कहते हैं, ऐसा पुरुष एकांत में प्रभु को ध्याता है।
यह ध्याता शब्द बहुत अदभुत है। प्रभु का ध्यान करता है। क्या आप किसी ऐसी चीज का ध्यान कर सकते हैं, जिसका आपको पता न हो? क्या यह संभव है कि जिसको आप जानते न हों, उसका आप ध्यान कर सकें? यह कैसे संभव है? जिसे जानते नहीं, उसका ध्यान कैसे करिएगा? ध्यान के लिए तो जानना जरूरी है। लेकिन हम सब प्रभु का ध्यान करते हैं। और हमें प्रभु का कोई भी पता नहीं है!
ध्यान हो कैसे सकता है, जिसका हमें पता नहीं है! जिसे हमने जाना ही नहीं, यह भी नहीं जाना कि जो है भी या नहीं है! यह भी नहीं जाना कि है, तो कैसा है! कुछ भी जिसकी हमें खबर नहीं है, उसका ध्यान कर रहे हैं लोग बैठकर! आंख बंद करके लोग कहते हैं कि हम प्रभु का ध्यान कर रहे हैं!
अगर उनकी खोपड़ी थोड़ी चीरी जा सके और उनकी खोपड़ी में झांका जा सके, तो आपको पता चल जाएगा, वे किसका ध्यान कर रहे हैं! किसका ध्यान कर रहे हैं, पता चल जाएगा।
नानक एक गांव में ठहरे हैं। और नानक कहते हैं, न कोई हिंदू है, न कोई मुसलमान है। तो गांव का मुसलमान नवाब नाराज हो गया। उसने कहा, बुला लाओ उस फकीर को। कैसे कहता है? किस हिम्मत से कहता है कि न कोई हिंदू है, न कोई मुसलमान है?
नानक आए। उस नवाब ने पूछा कि मैंने सुना है, तुम कहते हो, न कोई हिंदू है, न कोई मुसलमान? नानक ने कहा, हां, न कोई हिंदू है, न कोई मुसलमान। तो तुम कौन हो? तो नानक ने कहा कि मैंने बहुत खोजा, बहुत खोजा। चमड़ी, हड्डी, मांस, मज्जा, वहां तक तो मुझे लगा कि हां, हिंदू भी हो सकता है, मुसलमान भी हो सकता है। लेकिन वहां तक मैं नहीं था। और जब उसके पार मैं गया, तो मैंने पाया कि वहां तो कोई हिंदू-मुसलमान नहीं है!
तो उस नवाब ने कहा कि फिर तुम हमारे साथ मस्जिद में नमाज पढ़ने चलोगे? क्योंकि जब कोई हिंदू-मुसलमान नहीं, तो मस्जिद में जाने में एतराज नहीं कर सकते हो। नानक ने कहा, एतराज! मैं तो यह पूछने ही आया था कि मस्जिद में ठहरूं, तो आपको कोई एतराज तो नहीं है?
नवाब थोड़ा चिंतित हुआ, एक हिंदू कहे! पर उसने कहा कि देखें, परीक्षा कर लेनी जरूरी है। मस्जिद में नमाज पढ़ने के लिए ले गया नानक को। नवाब तो मस्जिद में नमाज पढ़ने लगा, नानक पीछे खड़े होकर हंसने लगे। तो नवाब को बड़ा क्रोध आया। हालांकि नमाज पढ़ने वाले को क्रोध आना नहीं चाहिए। लेकिन नमाज कोई पढ़े तब न!
बड़ा क्रोध आया और जैसे क्रोध बढ़ने लगा, नानक की हंसी बढ़ने लगी। अब नमाज पूरी करनी बड़ी मुश्किल पड़ गई। तबियत तो होने लगी, गर्दन दबा दो इस फकीर की। लेकिन नमाज पूरी करनी जरूरी थी। बीच में तोड़ा नहीं जा सकता नमाज को। तो जल्दी पूरी की, जैसा कि अधिक लोग करते हैं।
पूजा अधिक लोग जल्दी करते हैं। इतने जल्दी करते हैं कि कोई भी शार्ट
कट मिल जाए, तो जल्दी छलांग लगाकर वे पूजा निपटा देते हैं। लांग रूट से पूजा में शायद ही कोई जाता हो। शार्ट कट सबने अपने-अपने बनाए हुए हैं, उनसे वे निकल जाते हैं, तत्काल! बाई पास! पूजा को निपटाकर वे भागे, तो फिर लौटकर नहीं देखते पूजा की तरफ। एक मजबूरी, एक काम, उसे निपटा देना है!
नवाब ने जल्दी-जल्दी नमाज पूरी की और आकर नानक से कहा कि बेईमान निकले, धोखेबाज निकले। तुमने कहा था, नमाज में साथ दूंगा। साथ न दिया। नानक ने कहा, मैंने कहा था नमाज में साथ दूंगा, लेकिन तुमने नमाज ही न पढ़ी,

साथ किसका देता? तुम तो न मालूम क्या-क्या कर रहे थे! कभी मेरी तरफ देखते थे। कभी नाराज होते थे। कभी मुट्ठियां बांधते थे। कभी दांत पीसते थे। यह कैसी नमाज पढ़ रहे थे? मैंने कहा कि ऐसी नमाज तो मैं नहीं जानता। साथ भी कैसे दूं! और सच, भीतर तुमने एक भी बार अल्लाह का नाम लिया? क्योंकि जहां तक मैं देख पाया, मैंने देखा कि तुम काबुल के बाजार में घोड़े खरीद रहे हो! नवाब तो मुश्किल में पड़ गया। उसने कहा, क्या कहते हो! काबुल के बाजार में घोड़े! बात तो सच ही कहते हो। कई दिन से सोच रहा हूं कि अच्छे घोड़े पास में नहीं हैं। तो नमाज के वक्त फुरसत का समय मिल जाता है। और तो काम में लगा रहता हूं। तो अक्सर ये काबुल के घोड़े मुझे नमाज के वक्त जरूर सताते हैं। मैं खरीद रहा था। तुम ठीक कहते हो। मुझे माफ करो। मैंने नमाज नहीं पढ़ी, सिर्फ काबुल के बाजार में घोड़े खरीदे।
आप जब प्रभु का स्मरण कर रहे हैं, तो ध्यान रखना, प्रभु को छोड़कर और सब कुछ कर रहे होंगे। प्रभु को तो आप जानते नहीं, स्मरण कैसे करिएगा? ध्यान कैसे करिएगा?
कृष्ण कहते हैं, ऐसा पुरुष--यह शर्त है ध्यान की, इतनी शर्त पूरी हो, तो
ही प्रभु का ध्यान होता है, नहीं तो ध्यान नहीं होता। हां, और चीजों का ध्यान हो सकता है। प्रभु का ध्यान, उसकी शर्त--समत्व को जो उपलब्ध हुआ, निष्कंप जिसका चित्त हुआ, ऐसा व्यक्ति फिर एकांत में, अंतर-गुहा में प्रभु को ध्याता है। फिर प्रभु ही प्रभु चारों तरफ दिखाई पड़ता है। खुद तो खोजे से नहीं मिलता, प्रभु ही प्रभु दिखाई पड़ता है। उसकी ही स्मृति रोम-रोम में गूंजने लगती है। उसका ही स्वाद प्राणों के कोने-कोने तक तिर जाता है। उसकी ही धुन बजने लगती है रोएं-रोएं में। श्वास-श्वास में वही। तब ध्यान है। ध्यान का अर्थ है, जिसके साथ हम आत्मसात होकर एक हो जाएं। नहीं तो ध्यान नहीं है। अगर आप बच रहे, तो ध्यान नहीं है। ध्यान का अर्थ है, जिसके साथ हम एक हो जाएं। ध्यान का अर्थ है कि कोई आपको काटे, तो आपके मुंह से निकले कि प्रभु को क्यों काट रहे हो! ध्यान का अर्थ है कि कोई आपके चरणों में सिर रख दे, तो आप जानें कि प्रभु को नमस्कार किया गया है। सोचें नहीं, जानें। आपका रोआं-रोआं प्रभु से एक हो जाए। लेकिन यह घटना तो एकांत में घटती है। इनर अलोननेस, वह जो भीतरी एकांत गुहा है, जहां सब दुनिया खो जाती, बाहर समाप्त हो जाता। मित्र, प्रियजन, शत्रु सब छूट जाते। धन, दौलत, मकान सब खो जाते। और आखिरी पड़ाव पर स्वयं भी खो जाते हैं आप। क्योंकि उस स्वयं की भीतर कोई जरूरत नहीं है, बाहर जरूरत है।
अगर ठीक से समझें, तो वह जिसको आप कहते हैं मैं, वह साइनबोर्ड है, जो घर
के बाहर लगाने के लिए दूसरों के काम पड़ता है। आपने कभी ख्याल किया कि जब आप अपने दरवाजे के भीतर घुसते हैं, तो साइनबोर्ड को अपनी छाती पर लटकाकर मकान के भीतर नहीं जाते। क्यों? आपका ही घर है, यहां साइनबोर्ड को ले जाने की क्या जरूरत है? साइनबोर्ड तो दरवाजे की चौखट पर लगा देते हैं। बाहर से जाने वाले, राह से गुजरने वाले, औरों को पता चले कि कौन यहां रहता है। आप अपना साइनबोर्ड अपनी छाती पर लटकाकर घर के भीतर नहीं जाते।
वह जिसको हम कहते हैं, मैं, नाम-धाम, पता-ठिकाना, वह भी एक साइनबोर्ड है बहुत सूक्ष्म, जो हमने दूसरों के लिए लगाया है। जब भीतर के एकांत में कोई प्रवेश करता है, तो उसे ले जाने की कोई भी जरूरत नहीं पड़ती। वहां आपकी भी कोई जरूरत नहीं है। आप भी वहां शून्यवत हो जाते हैं। उस शून्यवत एकाकार स्थिति में प्रभु को ध्याया जाता है।
यह एकांत जंगल में, अरण्य में भाग जाने वाला एकांत नहीं, यह स्वयं के भीतर प्रविष्ट हो जाने वाला एकांत है।
और कृष्ण ने यहां अर्जुन को जो कहा है, वह योग की परम उपलब्धि है। समस्त योग इसलिए है कि हम अंतर-गुफा में कैसे प्रवेश करें। योग विधि है अंतर-गुफा में प्रवेश की। और अंतर-गुफा में प्रवेश के बाद जो प्रभु का ध्यान है, वह अनुभव है, वह प्रतीति है, वह साक्षात्कार है।
सबके भीतर है वह गुफा। लेकिन सब अपनी गुफा के बाहर घूमते रहते हैं, कोई भीतर जाता नहीं। शायद हमें स्मरण ही नहीं रहा है, क्योंकि न मालूम कितने जन्मों से हम बाहर घूमते हैं। और जब भी एकांत होता है, तो हम अकेलेपन को एकांत समझ लेते हैं। और तब हम तत्काल अपने अकेलेपन को भरने के लिए कोई

उपाय कर लेते हैं। पिक्चर देखने चले जाते हैं, कि रेडियो खोल लेते हैं, कि अखबार पढ़ने लगते हैं। कुछ नहीं सूझता, तो सो जाते हैं, सपने देखने लगते हैं। मगर अपने अकेलेपन को जल्दी से भर लेते हैं।
ध्यान रहे, अकेलापन सदा उदासी लाता है, एकांत आनंद लाता है। वे उनके लक्षण हैं। अगर आप घड़ीभर एकांत में रह जाएं, तो आपका रोआं-रोआं आनंद की पुलक से भर जाएगा। और आप घड़ीभर अकेलेपन में रह जाएं, तो आपका रोआं-रोआं थका और उदास, और कुम्हलाए हुए पत्तों की तरह आप झुक जाएंगे। अकेलेपन में उदासी पकड़ती है, क्योंकि अकेलेपन में दूसरों की याद आती है। और एकांत में आनंद आ जाता है, क्योंकि एकांत में प्रभु से मिलन होता है। वही आनंद है, और कोई आनंद नहीं है।
तो अगर आपको अकेले बैठे हुए उदासी मालूम होने लगे, तो आप समझना कि यह एकांत नहीं है; यह दूसरों की याद आ रही है आपको। और एकांत की खोज करना। और एकांत खोजा जा सकता है।
ध्यान कहें, स्मरण कहें, सुरति कहें, नाम कहें, कोई भी, सब एकांत की खोज है। इस बात की खोज है कि मैं उस जगह पहुंच जाऊं, जहां कोई रूप-रेखा न रह जाए दूसरे की। और जहां दूसरे की कोई रूप-रेखा नहीं रह जाती, वहां स्वयं की भी रूप-रेखा के बचने का कोई कारण नहीं रह जाता। सब हो जाता है निराकार।
उस निराकार क्षण में ईश्वर को ध्याया जाता है, जाना जाता है, जीया जाता है। हम फिर अलग होकर नहीं देखते उसे। वह परिचय नहीं है। हम उसके साथ एकमेक होकर जानते हैं। वह पहचान नहीं है दूर से, बाहर से, अलग से। वह एक होकर ही जान लेना है। हम वही होकर जानते हैं।
और जिस दिन कोई अपनी अंतर-गुहा में पहुंच जाता है, वह स्वयं ही भगवान
हो जाता है।
भगवान हो जाने का अर्थ सिर्फ इतना ही है कि वहां उसके और भगवान के बीच कोई फासला नहीं रह जाता। और प्रत्येक व्यक्ति की मंजिल यही है कि वह भगवान हो जाए। भगवान के होने के पहले कोई पड़ाव मंजिल मत समझ लेना।
निराकार हो जाने के पहले, कहीं रुक मत जाना। सब पड़ाव हैं। रुकना तो वहीं है, जहां स्वयं भी मिट जाए, सब मिट जाए; शून्य, निराकार रह जाए। वही है परम आनंद। उस परम आनंद की दिशा में ही कृष्ण अर्जुन को इस सूत्र में इशारा करते हैं।
आज के लिए इतना ही।
लेकिन उठेंगे नहीं। पांच मिनट उस अंतर-गुहा की तलाश में कीर्तन करेंगे, आप भी साथ दें। जो सुना, उसे भूल जाएं। जो समझा, उसे थोड़ा पांच मिनट जीएं।
कोई उठेगा नहीं, कोई यहां-वहां हिलेगा नहीं। जिन मित्रों को भी सम्मिलित होना हो, वे भी सम्मिलित हो सकते हैं।
और अपनी जगह बैठकर भी सम्मिलित हों। ये पांच मिनट इस आनंद में डूबने
की कोशिश करें। अपनी जगह बैठकर ही ताली बजाएं, गीत भी गाएं, संन्यासियों को साथ दें।

गीता दर्शन, भाग तीन
गीता दर्शन अध्याय 6
छठवां प्रवचन

अंतर्यात्रा का विज्ञान

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्।। 11।।
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युंज्याद्योगमात्मविशुद्धये।। 12।।
शुद्ध भूमि में कुशा, मृगछाला और वस्त्र है उपरोपरि जिसके, ऐसे अपने आसन को न अति ऊंचा और न अति नीचा स्थिर स्थापन करके, और उस आसन पर बैठकर तथा मन को एकाग्र करके, चित्त और इंद्रियों की क्रियाओं को वश में किया हुआ, अंतःकरण की शुद्धि के लिए योग का अभ्यास करे।

अंतर-गुहा में प्रवेश के लिए, वह जो हृदय का अंतर- आकाश है, उसमें प्रवेश के लिए कृष्ण ने कुछ विधियों का संकेत अर्जुन को किया है।
योग की समस्त विधियां बाहर से प्रारंभ होती हैं और भीतर समाप्त होती हैं। यही स्वाभाविक भी है। क्योंकि मनुष्य जहां है, वहीं से प्रारंभ करना पड़ेगा। मनुष्य की जो स्थिति है, वही पहला कदम बनेगी। और मनुष्य बाहर है। इसलिए योग की कोई भी शुरुआत स्वभावतः बाहर से होगी। हम जहां हैं, वहीं से यात्रा पर निकल सकते हैं। जहां हम नहीं हैं, वहां से यात्रा शुरू नहीं की जा सकती है।
इस संबंध में दो-तीन अनिवार्य बातें समझ लेनी चाहिए, फिर कृष्ण की विधि पर हम विचार करें।
बहुत बार ऐसा हुआ है। जो जानते हैं, उनका मन होता है आपसे कहें, वहीं
से शुरू करो, जहां वे हैं। उनकी बात इंच-इंच सही होती है, फिर भी बेकार हो जाती है।
मैं जहां हूं, अगर मैं किसी दूसरे को कहूं कि वहां से शुरू करो, तो भला बात कितनी ही सही हो, वह दूसरे के लिए व्यर्थ हो जाएगी। उचित और सार्थक तो यही होगा कि दूसरा जहां है, वहां से मैं कहूं कि यहां से शुरू करो।
बहुत बार जानने वाले लोगों ने भी अपनी स्थिति से वक्तव्य दे दिए हैं,
जो कि किसी के काम नहीं पड़ते हैं। और उन वक्तव्यों से बहुत बार हानि भी हो जाती है। क्योंकि वहां से आप कभी शुरू ही नहीं कर सकते हैं। सुनेंगे, समझेंगे, सारी बात ख्याल में आ जाएगी और फिर भी पाएंगे कि अपनी जगह ही खड़े हैं; इंचभर हट नहीं पाते हैं। क्योंकि जहां आप खड़े हैं, वहां से वह बात शुरू नहीं हो रही है। वह बात वहां से शुरू हो रही है, जहां करने वाला खड़ा है। और यात्रा तो वहां से शुरू होगी, जहां आप खड़े हैं।
मैं अगर मंदिर के भीतर खड़ा हूं, तो मैं आपसे कह सकता हूं कि मंदिर के भीतर आ जाओ। और सीढ़ियों की चर्चा छोड़ सकता हूं। क्योंकि जहां मैं खड़ा हूं, वहां सीढ़ियों का कोई भी प्रयोजन नहीं है। द्वार-दरवाजों की बात न करूं, हो सकता है। क्योंकि जहां मैं खड़ा हूं, अब वहां कोई द्वार-दरवाजा नहीं है। लेकिन आपको द्वार-दरवाजा भी चाहिए होगा, सीढ़ियां भी चाहिए होंगी, तभी मंदिर के भीतर प्रवेश हो सकता है।
जो आत्यंतिक वक्तव्य हैं, अंतिम वक्तव्य हैं, वे सही होते हुए भी उपयोगी नहीं होते हैं।
कृष्ण ऐसी बात कह रहे हैं, जो कि पूरी सही नहीं है, लेकिन फिर भी उपयोगी है। और बहुत बार कृष्ण जैसे शिक्षकों को ऐसी बातें कहनी पड़ी हैं, जो कि उन्होंने मजबूरी में कही होंगी--आपको देखकर, आपकी कमजोरी को देखकर।
वे वक्तव्य आप पर निर्भर हैं, आपकी कमजोरी और सीमाओं पर निर्भर हैं।
अब जैसे कृष्ण कह रहे हैं आसन की बात कि आसन न बहुत ऊंचा हो, न बहुत नीचा हो।
जो भीतर पहुंच गया, वहां ऊपर-नीचा आसन, न-आसन, कुछ भी शेष नहीं रह जाते।
वैसा भीतर पहुंचा हुआ आदमी कह सकता है, जैसा कबीर ने बहुत जगह कहा है कि

क्या होगा आसन लगाने से? सब व्यर्थ है! कबीर गलत नहीं कहते। कबीर एकदम ठीक ही कहते हैं। लेकिन कबीर जो कहते हैं उसमें और आप में इतना बड़ा अंतराल, इतना बड़ा गैप है कि वह कभी पूरा नहीं होगा।
कबीर कहते हैं, क्या होगा मृगछाल बिछा लेने से? ठीक ही कहते हैं, गलत नहीं कहते हैं। मृग की चमड़ी भी बिछा ली, उस पर बैठ भी गए, तो क्या होगा? आत्यंतिक दृष्टि से, आखिरी दृष्टि से कबीर ठीक ही कहते हैं कि क्या होगा? कितने ही मृगचर्म बिछाकर बैठ जाएं, तो होना क्या है?
फिर भी जब कृष्ण कहते हैं, तो कबीर से ज्यादा करुणा है उनके मन में। जब
वे अर्जुन से कहते हैं कि मृगचर्म पर बैठकर, न अति ऊंचा हो आसन, न अति नीचा हो, सम हो, ऐसे आसन में बैठकर, चित्त को एकाग्र करे, इंद्रियों के व्यापार को समेट ले, इंद्रियों का मलिक हो जाए--तो ही योग में प्रवेश होता है। कृष्ण और कबीर के इन वक्तव्यों में इतना फासला क्यों है? देखकर लगेगा
कि या तो कृष्ण गलत होने चाहिए, अगर कबीर सही हैं। या कबीर गलत होने चाहिए, अगर कृष्ण सही हैं, जैसा कि सारी दुनिया में चलता है।
हम सदा ऐसा सोचते हैं, इन दोनों में से दोनों तो सही नहीं हो सकते। हां, दोनों गलत हो सकते हैं। लेकिन दोनों सही नहीं हो सकते।
कबीर तो कहते हैं, फेंक दो यह सब। इस सबसे कुछ न होगा। और कृष्ण अर्जुन
को कह रहे हैं कि इस सबसे यात्रा शुरू होगी! क्या कारण है? और मैं कहता हूं, दोनों सही हैं। कारण सिर्फ इतना है कि कबीर वहां से बोल रहे हैं, जहां वे खड़े हैं। और कृष्ण वहां से बोल रहे हैं, जहां अर्जुन खड़ा है। कबीर वह बोल रहे हैं, जो उनके लिए सत्य है। कृष्ण वह बोल रहे हैं, जो कि अर्जुन के लिए सत्य हो सके।
गहरे अर्थों में क्या फर्क पड़ता है? आत्मा का कोई आसन होता है? गड्ढे में बैठ गए, तो आत्मा न मिलेगी? ऊंची जमीन पर बैठ गए, तो आत्मा न मिलेगी? अगर ऐसी छोटी शर्तों से आत्मा का मिलना बंधा हो, तो बड़ा सस्ता खेल हो गया! नहीं; आत्मा तो मिल जाएगी कहीं से भी। फिर भी, जहां हम खड़े हैं, वहां इतनी ही छोटी चीजों से फर्क पड़ेगा, क्योंकि हम इतने ही छोटे हैं। जहां हम खड़े हैं, इतनी क्षुद्र बातों से भी भेद पड़ेगा।
कभी ध्यान करने बैठे हों, तो ख्याल में आएगा। अगर जरा तिरछी जमीन है,
तो पता चलेगा कि उस जमीन ने ही सारा वक्त ले लिया। अगर पैर में एक जरा-सा कंकड़ गड़ रहा है, तो पता चलेगा कि परमात्मा पर ध्यान नहीं जा सका, कंकड़ पर ही ध्यान रह गया! एक जरा-सी चींटी काट रही है, तो पता चलेगा कि चींटी परमात्मा से ज्यादा बड़ी है! परमात्मा की तरफ इतनी चेष्टा करके ध्यान नहीं जाता और चींटी की तरफ रोकते हैं, तो भी ध्यान जाता है!
जहां हम खड़े हैं अति सीमाओं में घिरे, अति क्षुद्रताओं में घिरे; जहां हमारे ध्यान ने सिवाय क्षुद्र विषयों के और कुछ भी नहीं जाना है, वहां फर्क पड़ेगा। वहां इस बात से फर्क पड़ेगा कि कैसे आसन में बैठे। इस बात से फर्क पड़ेगा कि कैसी भूमि चुनी। इस बात से फर्क पड़ेगा कि किस चीज पर बैठे। क्यों फर्क पड़ जाएंगे? हमारे कारण से फर्क पड़ेगा। हमें इतनी छोटी चीजें परिवर्तित करती हैं, जिसका कोई हिसाब नहीं है!
तो कबीर जैसे लोगों के वक्तव्य हमारे लिए खतरनाक सिद्ध भी हो जाते हैं। क्योंकि हम कहते हैं, ठीक है। कबीर कहते हैं कि क्या आसन? और बिल्कुल ठीक कहते हैं। बात बिल्कुल ठीक लगती है। लेकिन फिर भी जहां हम हैं, वहां बिल्कुल ठीक नहीं है।
और सारे वक्तव्य इस जगत में रिलेटिव हैं, सापेक्ष हैं। और जो लोग भी एब्सोल्यूट, निरपेक्ष वक्तव्य देने की आदत से भर जाते हैं, वे हमारे किसी काम के सिद्ध नहीं होते।
जैसे कृष्णमूर्ति हैं। उनके सारे वक्तव्य निरपेक्ष हैं, एब्सोल्यूट हैं, और इसलिए बिल्कुल बेकार हैं। सही होते हुए भी बिल्कुल बेकार हैं। वर्षों कोई सुनता रहे; वहीं खड़ा रहेगा जहां खड़ा था, इंचभर यात्रा नहीं होगी। क्योंकि जिन चीजों से हम यात्रा कर सकते हैं, उन सबका निषेध है। और बात बिल्कुल सही है, इसलिए समझ में आ जाएगी कि बात बिल्कुल सही है। समझ में आ जाएगी और अनुभव में कुछ भी न आएगा। और समझ और अनुभव के बीच इतना फासला बना रहेगा कि उसकी पूर्ति कभी होनी संभव नहीं है।

और कृष्णमूर्ति को सुनने वाले, चालीस साल से सुनने वाले लोग कभी मेरे पास आते हैं। वे कहते हैं कि हम चालीस साल से सुन रहे हैं। हम सब समझते हैं कि वे क्या कहते हैं। बिल्कुल ठीक समझते हैं। इंटलेक्चुअल अंडरस्टैंडिंग हमारी बिल्कुल पूरी है। लेकिन पता नहीं, कुछ होता क्यों नहीं है!
अगर उनसे कहो कि आसन ऐसा लगाना, तो वे कहेंगे, आप भी क्या बात कर रहे हैं! आत्मा का आसन से क्या लेना-देना? अगर उनसे कहो कि दृष्टि इस बिंदु पर रखना, वे कहेंगे कि इससे क्या होगा? अगर उनसे कहो, इस विधि का उपयोग करना, तो वे कहते हैं, कृष्णमूर्ति कहते हैं, कोई मेथड नहीं है।
वे बिल्कुल ठीक कहते हैं, मगर आप गलत आदमी हैं। और आपको नहीं सुनना चाहिए था उन्हें। बिना विधि के आपने जिंदगी में कुछ भी नहीं किया है, बिना मेथड के कुछ भी नहीं किया है। आपके मन की सारी समझ, आपके चित्त की सारी व्यवस्था मेथड और विधि से चलती है।
एक बहुत बड़ा वक्तव्य आपने सुना कि किसी मेथड की कोई जरूरत नहीं है। आपका वह जो आलसी मन है, वह कहेगा कि बात तो बिल्कुल ठीक है, मेथड की क्या जरूरत है! झंझट से भी बच गए। अब कोई विधि भी नहीं लगानी है। कोई आसन भी नहीं लगाना है। कोई मंत्र नहीं पढ़ना है। कोई स्मरण नहीं करना है। कुछ नहीं करना है। मगर कुछ नहीं तो आप पहले से ही कर रहे हैं। अगर पहुंचना होता, तो बहुत पहले पहुंच गए होते। और अब आपको और एक पक्का मजबूत ख्याल मिल गया कि कुछ भी नहीं करना है।
ध्यान रहे, कुछ भी नहीं करना इस पृथ्वी पर सबसे कठिन करने वाली बात है। इसलिए आप जिसको समझते हैं, कुछ भी न करना, वह कुछ भी न करना नहीं है। तो कृष्ण का यह वक्तव्य ऐसा लगेगा कि बड़ा साधारण है, लेकिन साधारण नहीं है। अगर समतुल आसन हो और आपके शरीर के दोनों हिस्से बिल्कुल समान स्थिति में भूमि पर हों, कोई हिस्सा नीचा-ऊपर न हो, आपके शरीर को झुकना न पड़े, तो उसके बहुत वैज्ञानिक कारण हैं।
जमीन चौबीस घंटे प्रतिपल अपने ग्रेविटेशन से हमारे शरीर को प्रभावित करती है। उसका गुरुत्वाकर्षण पूरे समय काम कर रहा है। जब आप बिल्कुल समतुल होते हैं, तो गुरुत्वाकर्षण न्यूनतम होता है, मिनिमम होता है। जब आप जरा भी तिरछे होते हैं, तो गुरुत्वाकर्षण बढ़ जाता है, क्योंकि गुरुत्वाकर्षण का और आपके शरीर का संबंध बढ़ जाता है। अगर मैं बिल्कुल सीधे आसन में बैठा हुआ हूं, तो गुरुत्वाकर्षण बिल्कुल सीधी रेखा में, सिर्फ रीढ़ को ही प्रभावित करता है। अगर मैं जरा झुक गया, तो जितना मैं झुक गया, पृथ्वी उतने ही हिस्से में कोण बनाकर गुरुत्वाकर्षण से शरीर को प्रभावित करने लगती है।
इसीलिए तिरछे खड़े होकर आप जल्दी थक जाएंगे, सीधे बैठकर आप कम थकेंगे। तिरछे बैठकर आप जल्दी थक जाएंगे। जमीन आपको ज्यादा खींचेगी। इसलिए लेटकर आप विश्राम पा जाते हैं, क्योंकि लेटकर आप जरा भी तिरछे नहीं होते, पूरी जमीन का गुरुत्वाकर्षण आपके शरीर पर समान होता है।
समान गुरुत्वाकर्षण आधार है कृष्ण के इस वक्तव्य का। जरूरी नहीं है
कि कृष्ण को गुरुत्वाकर्षण का कोई पता हो; आवश्यक भी नहीं है। कोई न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण को पैदा नहीं किया है। न्यूटन नहीं था, तो भी गुरुत्वाकर्षण था। शब्द नहीं था हमारे पास कि क्या है। लेकिन इतना पता था कि जमीन खींचती है, और शरीर को चौबीस घंटे प्रतिपल खींचती है।
शरीर को हम ऐसी स्थिति में रख सकते हैं कि जमीन का अधिकतम आकर्षण शरीर
पर हो। और जहां शरीर पर अधिकतम आकर्षण होगा, वहां शरीर जल्दी थकेगा, बेचैन होगा, परेशान होगा और चित्त को थिर करने में आपके लिए कठिनाई होगी--कृष्ण के लिए नहीं।
शरीर ऐसी स्थिति में हो सकता है, जहां गुरुत्वाकर्षण न्यूनतम है, मिनिमम है। जिसको हम सिद्धासन कहते हैं, सुखासन कहते हैं, पद्मासन कहते हैं, वे न्यूनतम गुरुत्वाकर्षण के आसन हैं। और आज तो वैज्ञानिक भी स्वीकार करता है कि अगर सिद्धासन में आदमी बहुत दिन तक, बहुत समय तक रह सके, तो उसकी उम्र बढ़ जाएगी। बढ़ जाएगी सिर्फ इसलिए कि उसके शरीर और जमीन के आकर्षण के बीच जो संघर्ष है, वह कम से कम होगा और शरीर कम से कम जरा-जीर्ण होगा।

अगर कृष्ण कहते हैं कि ऐसी भूमि चुनना ध्यान के लिए, जो नीची-ऊंची न हो; बहुत ऊंची भी न हो, बहुत नीची भी न हो। उसके भी कारण हैं। एक आदमी गड्ढे में भी बैठ सकता है। एक आदमी एक मचान बांधकर भी बैठ सकता है। खतरे क्या हैं? अगर आप गड्ढे में बैठ जाते हैं, जमीन के नीचे बैठ जाते हैं, तो एक दूसरे नियम पर ध्यान दे देना जरूरी है।
मैं यहां बोल रहा हूं, इस माइक को थोड़ा मैं नीचे कर लूं, अपने हाथ के तल
पर ले आऊं, तो मेरी आवाज इस माइक के ऊपर से निकल जाएगी। मेरी ध्वनि तरंगें इसके ऊपर से निकल जाएंगी। यह आवाज मेरी ठीक से नहीं पकड़ पाएगा। इसे मैं बहुत ऊंचा कर दूं, तो भी मेरी ध्वनि तरंगें नीचे से निकल जाएंगी। यह माइक उन्हें पकड़ नहीं पाएगा। यह माइक मेरी ध्वनि तरंगों को तभी ठीक से पकड़ेगा, जब यह ठीक समानांतर, वाणी की तरंगों के समानांतर होगा। मेरे होंठों के जितने समानांतर होगा, उतनी ही सुविधा होगी इसे मेरी ध्वनि पकड़ लेने के लिए।
पूरी पृथ्वी पूरे समय अनंत तरह की तरंगों से प्रवाहित है। अनंत तरंगें चारों ओर फैल रही हैं। इन तरंगों में कई वजन की तरंगें, कई भार की तरंगें हैं। और यह बड़े आश्चर्य की बात है कि जितने बुरे विचारों की तरंगें हैं, वे उतनी ही भारी हैं, उतनी ही हैवी हैं। जितने शुभ विचारों की तरंगें हैं, उतनी हलकी हैं, निर्भार हैं।
अगर आप एक गड्ढे में बैठकर ध्यान करते हैं, कुएं में बैठकर ध्यान करते हैं, तो आपके संपर्क में इस पृथ्वी पर उठने वाली जितनी निम्नतम तरंगें हैं, उनसे ही आपका संपर्क हो पाएगा। वे तो कुएं में उतर जाएंगी, श्रेष्ठ तरंगें कुएं के ऊपर से ही प्रवाहित होती रहेंगी।
इसलिए पहाड़ों पर लोगों ने यात्रा की। पहाड़ों पर यात्रा का कारण था। कारण थी ऊंचाई, और ऊंचाई से तरंगों का भेद।
तरंगों की अपनी पूरी स्थितियां हैं। हर तल पर विभिन्न प्रकार की तरंगें यात्रा कर रही हैं। और एक तरह की तरंग एक सतह पर यात्रा करती है। तो गड्ढे के लिए इनकार किया है।
लेकिन आप पूछेंगे कि फिर बहुत ऊंची जगह के लिए क्यों इनकार किया है? क्योंकि ऊंचे जितने हम होंगे, उतनी श्रेष्ठतर तरंगें मिल जाएंगी!
तो वह भी आप ध्यान रख लें। ऊंचे पर श्रेष्ठतर तरंगें मिलेंगी, लेकिन अगर आपकी पात्रता न हो, तो श्रेष्ठतर तरंगें भी सिर्फ आपके भीतर उत्पात पैदा करेंगी। आपकी पात्रता के साथ ही श्रेष्ठतर तरंगों को झेलने की क्षमता पैदा होती है।
आप कितना झेल सकते हैं? हम जहां जीते हैं, वही तल अभी हमारे झेलने का
तल है। जहां बैठकर आप दुकान करते हैं, भोजन करते हैं, बात करते हैं, जीते हैं जहां, प्रेम करते हैं, झगड़ते हैं जहां, वही आपके जीवन का तल है। उस तल से ही शुरू करना उचित है; न बहुत नीचे, न बहुत ऊपर।
जहां आप हैं, वहीं आपकी ट्यूनिंग है। अभी आप वहीं से शुरू करें। और जैसे-जैसे आपकी क्षमता बढ़े वैसे-वैसे ऊपर की यात्रा हो सकती है। और जैसे- जैसे आपकी क्षमता बढ़े, तो आप गड्ढे में बैठकर भी ध्यान कर सकते हैं। क्षमता बढ़े, तो ऊपर जा सकते हैं, पर्वत शिखरों की यात्रा कर सकते हैं। पुराने तीर्थ इस हिसाब से बनाए गए थे कि जो श्रेष्ठतम तीर्थ हो, वह सबसे ऊपर हो। और धीरे-धीरे साधक यात्रा करे; धीरे-धीरे यात्रा करे। वह आखिरी यात्रा कैलाश पर हो उसकी पूरी। वहां जाकर वह समाधि में लीन हो। वहां शुद्धतम तरंगें उसे उपलब्ध होंगी। लेकिन उसकी क्षमता भी निरंतर ऊंची उठती जानी चाहिए, ताकि उतनी शुद्ध तरंगों को वह झेलने में समर्थ हो सके। अन्यथा शुद्धतम को झेलना भी उत्पात का कारण हो सकता है। जितनी आपकी पात्रता नहीं है, उससे ज्यादा आपके ऊपर गिर पड़े, तो वह आपको हानि ही पहुंचाता है, लाभ नहीं।
सूफी फकीरों में गड्ढे में जाकर ध्यान करने की प्रक्रिया है, कुएं में जाकर ध्यान करने की प्रक्रिया है, नीचे जमीन में उतरकर ध्यान करने की प्रक्रिया है। लेकिन इस प्रक्रिया के लिए तभी आज्ञा दी जाती है, जब कोई श्रेष्ठतम पर्वत शिखर पर ध्यान करने में समर्थ हो जाता है--तब। यह क्यों? यह तब आज्ञा दी जाती है, जब वह व्यक्ति इस स्थिति में पहुंच जाता है कि

उसके आस-पास सब तरह की गलत तरंगें मौजूद रहें, लेकिन वह अप्रभावित रह सके, तब उसे गड्ढे में बैठकर साधना करने की आज्ञा दी जाती है।
कृष्ण ने अर्जुन को देखकर कहा है कि तू ऐसा आसन चुन, जो बहुत नीचा न हो, ऊंचा न हो, तिरछा-आड़ा न हो। वहां तू सरलता से शांत होने में सुगमता पाएगा।
मृगचर्म की बात कही है। उसके भी कारण हैं। और कारण ऐसे हैं, जो आज ज्यादा स्पष्ट हो सके हैं। इतने स्पष्ट कृष्ण के समय में भी नहीं थे। प्रतीति थी, प्रतीति थी कि कुछ फर्क पड़ता है। लेकिन किस कारण से पड़ता है, उसकी वैज्ञानिक स्थिति का कोई स्पष्ट बोध नहीं था।
संन्यासी इस देश में हजारों, लाखों वर्षों से कहना चाहिए, लकड़ी की खड़ाऊं का उपयोग करता रहा है, अकारण नहीं। मृगचर्म का उपयोग करता रहा है, अकारण नहीं। सिंहचर्म का उपयोग करता रहा है, अकारण नहीं। लकड़ी के तख्त पर बैठकर ध्यान करता रहा है, अकारण नहीं। कुछ प्रतीतियां ख्याल में आनी शुरू हो गई थीं कि भेद पड़ता है।
जो चीजें भी विद्युत के लिए नान-कंडक्टिव हैं, वे सभी ध्यान में सहयोगी होती हैं। लेकिन अब इसके वैज्ञानिक कारण स्पष्ट हो सके हैं। आज विज्ञान कहता है कि जिन चीजों से भी विद्युत प्रवाहित होती है, उन पर बैठकर ध्यान करना खतरे से खाली नहीं है। क्यों? क्योंकि जब आप गहरे ध्यान में लीन होते हैं, तो आपका शरीर एक बहुत अनूठे रूप से एक बहुत नए तरह की अंतर्विद्युत पैदा करता है, एक इनर इलेक्ट्रिसिटी पैदा करता है। जब आप पूरे ध्यान में होते हैं, तो आपके शरीर की बाडी इलेक्ट्रिसिटी सक्रिय होती है।
और सबके शरीर में विद्युत का बड़ा आगार है। हम सबके शरीर में विद्युत
का बड़ा आगार है। उसी विद्युत से हम जीते हैं, चलते हैं, उठते हैं, बैठते हैं। यह जो श्वास आप ले रहे हैं, वह सिर्फ आपके शरीर की विद्युत को आक्सीजन पहुंचाकर जीवित रखती है, और कुछ नहीं करती। वह आक्सीडाइजेशन करती है। आपको प्रतिपल आपके शरीर की विद्युत को चलाए रखने के लिए आक्सीजन की जरूरत है, इसलिए श्वास के बिना आप जी नहीं सकते। और शरीर विद्युत का, कहना चाहिए, एक जेनेरेटर है। वहां पूरे समय विद्युत पैदा हो रही है। इस विद्युत को ध्यान के समय में कंजरवेशन मिलता है, संरक्षण मिलता है।
साधारणतः आप विद्युत को फेंक रहे हैं। मैंने इतना हाथ हिलाया, तो भी मैंने विद्युत की एक मात्रा हाथ से बाहर फेंक दी। मैं एक शब्द बोला, तो उस शब्द को गति देने के लिए मेरे शरीर की विद्युत की एक मात्रा विनष्ट हुई। रास्ते पर आप चले, उठे, हिले, आपने कुछ भी किया कि शरीर की विद्युत की एक मात्रा उपयोग में आई।
लेकिन ध्यान में तो सब हिलन-डुलन बंद हो जाएगा। वाणी शांत होगी, विचार शून्य होंगे, शरीर निष्कंप होगा, चित्त मौन होगा, इंद्रियां शिथिल होकर निष्क्रिय हो जाएंगी। तो वह जो चौबीस घंटे विद्युत बाहर फिंकती है, वह सब कंजर्व होगी, वह सब भीतर इकट्ठी होगी।
अगर आप ऐसी जगह बैठे हैं, जहां से विद्युत आपके शरीर के बाहर जा सके,
तो आपको ठीक वैसा ही शॉक अनुभव होगा, जैसा बिजली के तार को छूकर अनुभव होता है। और जो लोग ध्यान में थोड़े गहरे गए हैं, उनमें से अनेकों का यह अनुभव है। मेरे पास सैकड़ों लोग हैं, जिनका यह अनुभव है कि अगर वे गलत जगह बैठकर ध्यान किए हैं, तो उनको शॉक लगा है, उनको धक्का लगा है।
जब आप बिजली का तार छूते हैं, अगर लकड़ी की खड़ाऊं पहनकर छू लें, तो शॉक नहीं लगेगा। क्यों? शॉक बिजली की वजह से नहीं लगता, बिजली के तार को छूने से नहीं लगता शॉक। शॉक लगता है, बिजली के तार से आपके भीतर बिजली आ जाती है और झटके के साथ जमीन उसको खींच लेती है। वह जो जमीन खींचती है झटके के साथ, उसकी वजह से शॉक लगता है। अगर आप खड़ाऊं पहने खड़े हैं, तो शॉक नहीं लगेगा। बिजली का तार आपने छू लिया है। वह नहीं लगेगा इसलिए कि जमीन उसे झटके से खींच नहीं सकी और लकड़ी की खड़ाऊं ने बिजली को वापस वर्तुल बनाकर लौटा दिया। शॉक लगता है वर्तुल के टूटने से, सर्किट टूटने से शॉक लगता है। अगर बिजली एक वर्तुल बना ले, तो आपको कभी धक्का नहीं लगता। और वर्तुल बनाने का एक ही उपाय है कि आप नान-कंडक्टर पर बैठे हों।

मृगचर्म नान-कंडक्टर है, सिंहचर्म नान-कंडक्टर है। बिजली उसके पार नहीं जा सकती, वह बिजली को वापस लौटाता है। लकड़ी नान-कंडक्टर है, वह बिजली को वापस लौटा देती है। खड़ाऊं नान-कंडक्टर है, वह बिजली को वापस लौटा देती है।
तो जो ध्यान कर रहा है, उसके लिए खड़ाऊं उपयोगी है। जो ध्यान कर रहा है, उसे लकड़ी के तख्त पर बैठना उपयोगी है। जो ध्यान कर रहा है, उसे मृगचर्म का उपयोग सहयोगी है।
फिजूल लगेगा। अगर कबीर से पूछने जाएंगे, कृष्णमूर्ति से, वे कहेंगे, बकवास है। लेकिन अगर वैज्ञानिक से पूछने जाएंगे, वह कहेगा, सार्थक है बात। और सार्थक है।
एक घड़ी ऐसी आ जाती है, जहां बिल्कुल बेकार है। लेकिन वह घड़ी अभी आ नहीं
गई है। वह घड़ी आ जाए, तब तक उपयोगी है। एक घड़ी ऐसी आ जाती है कि शरीर की विद्युत का अंतर-वर्तुल निर्मित हो जाता है। और जो लोग भी परम शांति को उपलब्ध होते हैं, उनके हृदय में अंतर-वर्तुल निर्मित हो जाता है। विद्युत अंतर-वर्तुल बना लेती है। फिर वे जमीन पर बैठ जाएं, तो उन्हें कोई शॉक नहीं लगने वाला है।
लेकिन वह घटना अभी आपको नहीं घट गई है। आपके भीतर कोई अंतर-वर्तुल नहीं है, कोई इनर सर्किट नहीं है। आपको तो अभी बाह्य-वर्तुल पर निर्भर रहना पड़ेगा। वह मजबूरी है; उससे बचने का उपाय नहीं है; उससे पार होने का उपाय है। जो बचने की कोशिश करेगा, कि इसे बाई-पास कर जाएं, वह दिक्कत में पड़ेगा। उसके पार हो जाना ही उचित है। क्योंकि पार होकर ही पात्रता निर्मित होती है।
तो कृष्ण कहते हैं, ऐसी आसनी पर बैठे, ऐसा आसन लगाए, ऐसी जमीन पर हो, ऊंचा न हो, नीचा न हो और तब, तब इंद्रियों को सिकोड़ ले।
और इंद्रियों को सिकोड़ना ऐसी स्थिति में आसान होता है। बाह्य विघ्न
और बाधाओं को निषेध करने की व्यवस्था कर लेने पर इंद्रियों को सिकोड़ लेना आसान होता है।
कभी आपने ख्याल न किया होगा, योग ने ऐसे आसन खोजे हैं, जो आपकी इंद्रियों को अंतर्मुखी करने में अदभुत रूप से सहयोगी हो सकते हैं। इस तरह की मुद्राएं खोजी हैं, जो आपकी इंद्रियों को अंतर्मुखी करने में सहयोगी हो सकती हैं। बैठने के ऐसे ढंग खोजे हैं, जो आपके शरीर के विशेष केंद्रों पर दबाव डालते हैं और उस दबाव का परिणाम आपकी विशेष इंद्रियों को शिथिल कर जाना होता है।
अभी अमेरिका में एक बहुत बड़ा विचारक और वैज्ञानिक था, थियोडर रेक। उसने मनुष्य के शरीर के बाबत जितनी जानकारी की, कम लोगों ने की है। वह कहता था कि शरीर में ऐसे बिंदु हैं मनुष्य के, जिन बिंदुओं को दबाने से मनुष्य की वृत्तियों में बुनियादी अंतर पड़ता है। और यह कोई योगी नहीं था रेक। रेक तो एक मनसविद था। फ्रायड के शिष्यों में से, बड़े शिष्यों में से एक था। और उसने हजारों लोगों को सहायता पहुंचाई। उसे कुछ पता नहीं था। काश, उसे पता होता तिब्बत और भारत में खोजे गए योगासनों का, तो उसकी समझ बहुत गहरी हो जाती।
वह बिल्कुल अंधेरे में टटोल रहा था; लेकिन उसने ठीक जगह टटोल ली। उसने कुछ स्थान शरीर में खोज लिए, जिनको दबाने से परिणाम होते हैं। जैसे उसने दांतों के आस-पास ऐसी जगह खोज ली जबड़ों में, जिनमें आदमी की हिंसा संगृहीत है। आपको ख्याल में भी नहीं आ सकता। और अगर कोई आदमी बहुत वायलेंट है, बहुत हिंसक है, तो थियोडर रेक उसकी जो चिकित्सा करेगा, वह बहुत अनूठी है। वह यह है कि उसको लिटाकर वह सिर्फ उसके जबड़ों के विशेष स्थानों को दबाएगा, इतने जोर से कि वह आदमी चीखेगा, चिल्लाएगा, मारने-पीटने लगेगा। और अक्सर यह होता था कि थियोडर रेक को उसके मरीज बुरी तरह पीटकर जाते थे, मारकर जाते थे! लेकिन दूसरे दिन से ही उनमें अंतर होना शुरू हो जाता। उनकी हिंसा में जैसे बुनियादी फर्क हो गया।
रेक का कहना था, और कहना ठीक है, कि हिंसा का जो बुनियादी केंद्र है, वे दांत हैं--समस्त जानवरों में, आदमियों में भी। क्योंकि आदमी सिर्फ एक जानवरों कीशृंखला में आगे आ गया जानवर है, उससे ज्यादा नहीं।

समस्त जानवर दांत से ही हिंसा करते हैं। दांत या नाखून, बस दो ही हिस्से हैं। आदमी ने हिंसा की ऐसी तरकीबें खोज ली हैं, जिनमें नाखून की भी जरूरत नहीं है, दांत की भी जरूरत नहीं है। लेकिन शरीर का जो मैकेनिज्म है, शरीर का जो यंत्र है, उसे कुछ भी पता नहीं कि आपने छुरी बना ली है। उसे कुछ भी पता नहीं कि आपने दांतों की जगह औजार बना लिए हैं, जिनसे आप आदमी को ज्यादा सुविधा से काट सकते हैं। शरीर को कोई पता नहीं है। शरीर के अंग तो, सेल तो, पुराने ढंग से ही काम करते चले जाते हैं।
इसलिए जब भी आप हिंसा से भरते हैं, ख्याल करना, आपके दांतों में कंपन शुरू हो जाता है। आपके दांतों में विशेष विद्युत दौड़नी शुरू हो जाती है। दांत पीसने लगते हैं। आप कहते हैं, क्रोध में इतना आ गया कि दांत पीसने लगा। दांत पीसने का क्रोध से क्या लेना-देना! आप मजे से क्रोध में आइए, दांत मत पीसिए! लेकिन दांत पीसे बिना आप न बच सकेंगे, क्योंकि दांत में विद्युत दौड़नी शुरू हो गई।
लेकिन दांत का उपयोग सभ्य आदमी करता नहीं। कभी-कभी असभ्य लोग कर लेते हैं कि क्रोध में आ जाएं, तो काट लें आपको। सभ्य आदमी काटता नहीं। लेकिन दांतों को कुछ पता नहीं कि आप सभ्य हो गए हैं। जब आप नहीं काटते, तो दांतों में जो विद्युत पैदा हो गई, जो काटने से रिलीज हो जाती, वह रिलीज नहीं हो पाएगी। वह दांतों के मसूढ़ों के आस-पास संगृहीत होती चली जाएगी, उसके पाकेट्स बन जाएंगे।
आदमी के दांतों की बीमारियों में नब्बे प्रतिशत कारण दांतों के आस-पास बने हिंसा के पाकेट हैं। इसलिए जानवरों के दांत जैसे स्वस्थ हैं! जरा कुत्ते के दांत खोलकर देख लेना, तो खुद शर्म आएगी कि न कभी दतौन करता, न कभी मंजन करता, न कोई टुथपेस्ट का, किसी मार्क के टुथपेस्ट का कोई उपयोग करता। ऐसी चमक, ऐसी रौनक, ऐसी सफेदी! बात क्या है? बात गहरे में शारीरिक कम और मनस से ज्यादा जुड़ी हुई है।
हिंसा के पाकेट्स कुत्ते के दांत में नहीं हैं। और अगर कुत्तों के दांतों में कभी हिंसा के पाकेट्स हो जाते हैं, तो वे खेलकर उसको रिलीज कर लेते हैं। आपने कुत्तों को देखा होगा, खेलने में काटेंगे। काटते नहीं हैं, सिर्फ भरेंगे मुंह, छोड़ देंगे। वे रिलीज कर रहे हैं। खेलकर हिंसा को मुक्त कर लेंगे। तो जानवरों के दांत जैसे स्वस्थ हैं, आदमी सपने में भी नहीं सोच सकता कि उतने स्वस्थ दांत पा जाए।
आपकी अंगुलियों के आस-पास भी हिंसा के पाकेट्स इकट्ठे होते हैं। वहां
भी हिंसा है। वह भी हमने बंद कर दी है। अब हम अंगुलियों से किसी को चीरते- फाड़ते नहीं। कभी-कभी गुस्से में हो जाता है, किसी का कपड़ा फाड़ देते हैं, नाखून चुभा देते हैं, अलग बात है। लेकिन सामान्यतया, हम आमतौर से दूसरी चीजों का उपयोग करते हैं, सब्स्टीट्यूट। हमने बुनियादी प्रकृति की चीजों का उपयोग बंद कर दिया है। तो हमारी अंगुलियों के आस-पास हिंसा इकट्ठी हो जाएगी।
आदमी की अंगुलियों को देखकर कहा जा सकता है कि उसके चित्त में कितनी हिंसा है। उसकी अंगुलियों के मोड़ बता देंगे कि उसके भीतर कितनी हिंसा है। क्योंकि अंगुलियां अकारण नहीं मुड़ती हैं।
तो बुद्ध की अंगुलियों का मोड़ अलग होगा। अलग होगा ही। कोई हिंसा भीतर नहीं है। हाथ एक फूल की तरह खिल जाएगा। अंगुलियों के भीतर कोई पाकेट्स नहीं हैं।
और ठीक ऐसे ही हमारे पूरे शरीर में पाकेट्स हैं। ऐसे बिंदु हैं, जहां बहुत कुछ इकट्ठा है। अगर उन बिंदुओं को दबाया जा सके, उन बिंदुओं को मुक्त किया जा सके, तो भेद पड़ेगा।
इस मुल्क ने जो योगासन खोजे, विशेष पद्धतियां बैठने की खोजीं... । अगर आपने बुद्ध या महावीर की मूर्ति देखी है, करीब-करीब सभी ने देखी होगी, गौर से नहीं देखी होगी। उन्होंने भी गौर से नहीं देखी, जो रोज महावीर को नमस्कार करने मंदिर में जाते हैं! लेकिन असली राज उस मूर्ति की व्यवस्था में छिपा हुआ है।

अगर महावीर की मूर्ति को गौर से देखेंगे, तो आपको क्या दिखाई पड़ेगा कि महावीर का पूरा शरीर एक विद्युत सर्किट है। दोनों पैर जुड़े हुए हैं। दोनों पैरों की गद्दियां घुटनों के पास जुड़ी हुई हैं।
विद्युत के रिलीज के जो बिंदु हैं, वह हमेशा नुकीली चीजों से विद्युत बाहर गिरती है। गोल चीजों से कभी विद्युत बाहर नहीं गिरती, सिर्फ नुकीली चीजों से विद्युत बाहर यात्रा करती है। जितनी नुकीली चीज हो, उतनी ज्यादा विद्युत बाहर यात्रा करती है।
जननेंद्रिय से सर्वाधिक विद्युत बाहर जाती है। और इसीलिए संभोग के बाद आप इतने थके हुए और इतने बेचैन और उद्विग्न हो गए होते हैं। क्योंकि आपका शरीर बहुत-सी विद्युत खो दिया होता है। संभोग के बाद आपका ब्लड-प्रेशर बहुत ज्यादा बढ़ गया होता है। हृदय की धड़कन बढ़ गई होती है। आपकी नाड़ी की गति बढ़ गई होती है। और पीछे निपट थकान हाथ लगती है। उसका कारण? उसका कारण सिर्फ वीर्य का स्खलन नहीं है। वीर्य के स्खलन के साथ-साथ जननेंद्रिय बहुत बड़ी मात्रा में विद्युत को शरीर के बाहर फेंक रही है। उस विद्युत के भी पाकेट्स हैं।
इसलिए सिद्धासन या पद्मासन में जो बैठने का ढंग है, एड़ियां उन बिंदुओं को दबा देती हैं, जहां से जननेंद्रिय तक विद्युत पहुंचती है। और उसका पहुंचना बंद हो जाता है। दोनों पैर शरीर के साथ जुड़ जाते हैं और दोनों पैर से जो विद्युत निकलती है, वह शरीर वापस एब्जार्ब कर लेता है, फिर पुनः अपने भीतर ले लेता है। दोनों हाथ जुड़े होते हैं, इसलिए दोनों हाथों की विद्युत बाहर नहीं फिंकती, एक हाथ से दूसरे हाथ में यात्रा कर जाती है। पूरा शरीर एक सर्किट में है।
महावीर की या बुद्ध की मूर्ति आप देखेंगे, तो ख्याल में आएगा कि पूरा शरीर एक विद्युत चक्र में है। इस बने हुए विद्युत वर्तुल के भीतर इंद्रियों को सिकोड़ लेना अत्यंत आसान है। अत्यंत आसान है, बहुत सरल है। यह विद्युत का जो वर्तुल निर्मित हो जाता है, यह आपके और आपकी इंद्रियों के बीच एक प्रोटेक्शन, एक दीवाल बन जाता है। आप अलग कट जाते हैं, इंद्रियां अलग पड़ी रह जाती हैं।
ध्यान रहे, विद्युत का स्रोत आपके भीतर है। इंद्रियां केवल विद्युत
का उपयोग करती हैं। और अगर बीच में वर्तुल बन जाए--जो कि बिल्कुल एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है, एक साइंटिफिक प्रोसेस है--बीच में वर्तुल बन जाए, तो इंद्रियां बाहर रह जाती हैं, आप भीतर रह जाते हैं। और आपके और इंद्रियों के बीच में विद्युत की एक दीवाल खड़ी हो जाती है, जिसको पार नहीं किया जा सकता। इस क्षण में अंतर-आकाश में यात्रा आसान हो जाती है। अति आसान हो जाती है।
इसलिए कृष्णमूर्ति कितना ही कहें या कबीर कितना ही कहें, थोड़ी सावधानी से उनकी बात सुनना। उनकी बात खतरे में ले जा सकती है। वे कह दें, आसन से क्या होगा? वे कह दें कि इससे क्या होगा, उससे क्या होगा? मेथडॉलाजी से क्या होगा? अपनी तरफ से वे ठीक कह रहे हैं। उनका अंतर-आकाश और उनकी अंतर्विद्युत की यात्रा शुरू हो गई है। शायद उन्हें पता भी नहीं हो। कृष्णमूर्ति के साथ तो निश्चित ही यह बात है कि कृष्णमूर्ति के साथ
जो प्रयोग उनके बचपन में किए गए, वे करीब-करीब उनको बेहोश करके किए गए। इसलिए उनको कुछ भी पता नहीं है कि वे किन प्रयोगों से गुजरे हैं। कांशसली उन्हें कुछ भी पता नहीं है, सचेतन रूप से, कि वे किन प्रयोगों से गुजरे हैं; और जहां पहुंचे हैं, किस मार्ग से गुजरकर पहुंचे हैं।
उनकी हालत करीब-करीब वैसी है, जैसे हम किसी आदमी को सोया हुआ उसके घर
से उठा लाएं और बगीचे में उसकी खाट रख दें। और बगीचे में उसकी आंख खुले और वह कहे कि ठीक। और कोई पूछे उससे कि बगीचे में कैसे आऊं? तो वह कहे, कोई रास्ता नहीं है; बस आ जाओ। कोई मार्ग नहीं है, बस आ जाओ। जागो, और बगीचे में पाओगे कि तुम हो। वे ठीक कह रहे हैं। वे गलत नहीं कह रहे हैं।
लेकिन कृष्णमूर्ति को बगीचे में ले आने वाले कुछ लोग थे, एनीबीसेंट थी, लीडबीटर था। उन लोगों ने कृष्णमूर्ति के बचपन में, जब करीब-करीब कोई होश उनके पास नहीं था... । इसलिए कृष्णमूर्ति को बचपन की कोई याद नहीं है,

बचपन की कोई याददाश्त नहीं है। बचपन और उनके बीच में एक भारी बैरियर है, एक भारी दीवाल खड़ी हो गई है।
कृष्णमूर्ति को अपनी मातृभाषा का कोई भी स्मरण नहीं है। यद्यपि नौ साल का या दस साल का बच्चा अपनी मातृभाषा को कभी नहीं भूलता। दस साल का बच्चा अपनी मातृभाषा काफी सीख चुका होता है--काफी, करीब-करीब पूरी। लेकिन कृष्णमूर्ति को उसकी कोई याददाश्त नहीं है।
कृष्णमूर्ति के नाम से एक किताब है, एट दि फीट आफ दि मास्टर--श्री गुरु चरणों में। नाम उस पर कृष्णमूर्ति का है। वह तब लिखी गई। लेकिन वे कहते हैं कि मुझे कुछ याद नहीं, मैंने कब लिखी! वह उनसे लिखवाई गई। सिर्फ मीडियम की तरह उन्होंने उसमें काम किया। उन्हें कुछ स्मरण नहीं कि उन्होंने कब लिखी। वे यह भी नहीं कहते कि मैं उसका लेखक हूं या नहीं।
लीडबीटर, एनीबीसेंट और थियोसाफिस्टों ने कृष्णमूर्ति को बहुत ही अचेतन मार्गों से वहां पहुंचाया, जहां पहुंचकर, जहां जागकर उन्होंने पाया कि किसी मार्ग की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन वे भी मार्गों से पहुंचे हैं। आज जब वे लोगों से कह देते हैं, कोई मार्ग नहीं है, कोई विधि, कोई व्यवस्था नहीं है, तो सुनने वालों का इतना अहित हो जाता है कि जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है।
कृष्णमूर्ति के सत्यों ने न मालूम कितने लोगों को भयंकर हानियां पहुंचाई हैं। और उसके कारण हैं। उनका कोई कसूर नहीं है। उन्होंने आंख खोली और पाया कि वे बगीचे में हैं। वे आपसे भी कहते हैं, आंख खोलो और पाओगे कि तुम बगीचे में हो!
नहीं! कई बार ऐसा होता है कि अतीत जन्मों में कोई साधक यात्रा कर चुका होता है, परिपक्व हो गई होती है यात्रा। जैसे निन्यानबे डिग्री पर पानी खौल रहा हो गर्म। अभी भाप नहीं बना है, एक डिग्री की कमी रह गई है। पिछले जन्म से वह निन्यानबे डिग्री की हालत लेकर आया है। और इस जन्म में कुछ छोटी-सी घटना हो जाए कि एक डिग्री गर्मी पूरी हो जाए कि वह भाप बनना शुरू हो जाए। और आप उससे कहें कि मैं कैसे गर्म होऊं? तो वह कहे, कुछ खास करने की जरूरत नहीं है। जरा आकर धूप में, खुले आकाश में खड़े हो जाओ; भाप बन जाओगे। और आप जमे हुए बरफ के पत्थर हैं। आप खड़े हो जाना धूप में, कुछ न होगा। बरफ तो कुछ सिकुड़ा हुआ था, एक जगह में सीमित था; और पानी बनकर और फैल जाएंगे; ज्यादा जमीन घेर लेंगे; और मुसीबत खड़ी हो जाएगी।
आपके लिए तो भयंकर आग की भट्ठियां चाहिए। एटामिक भट्ठियां! तब, तब शायद आप भाप बन पाएं उतनी ही तीव्रता से।
इसलिए कई बार पिछले जन्म से आया हुआ साधक, अगर बहुत यात्रा पूरी कर चुका है; इंच, आधा इंच बाकी रह गया है; जरा-सा झटका, जरा-सी बात, कोई भी जरा- सी बात, जो हमें लगेगा कि कैसे इससे हो सकता है... !
रिंझाई ने कहा है, एक फकीर ने, जो कि जरा-सी बात से जाग गया। सोया है एक रात एक वृक्ष के तले। पतझड़ के दिन हैं और वृक्ष से पके पत्ते नीचे गिर रहे हैं। वह खड़ा होकर नाचने लगा और गांव-गांव कहता फिरा कि अगर किसी को भी ज्ञान चाहिए हो, तो पतझड़ के समय में वृक्ष के नीचे सो जाए। और जब पके पत्ते नीचे गिरते हैं, तो ज्ञान घटित हो जाता है!
उसे हुआ। पका पत्ता टूटते देखकर उसके लिए सारी जिंदगी पके पत्ते की तरह टूट गई। मगर वह यात्रा कर चुका है निन्यानबे दशमलव नौ डिग्री तक। नाइनटी नाइन प्वाइंट नाइन डिग्री पर वह जी रहा होगा। एक सूखा पत्ता गिरा और सौ डिग्री पूरी हो गई बात, वह भाप बनकर उड़ गया।
उसका कोई कसूर नहीं है कि वह लोगों से कहता है, ज्ञान चाहिए? पतझड़ में सूखे वृक्ष के नीचे बैठ जाओ, ध्यान करो। जब सूखा पत्ता गिरे, मेडिटेट आन इट; उस पर ध्यान करो, ज्ञान हो जाएगा।
जिन्होंने सुना, उन्होंने, कई ने पतझड़ के पत्तों के नीचे बैठकर कोशिश की। क्योंकि जब रिंझाई जैसा आदमी कहता है, तो ठीक ही कहता है। और रिंझाई की आंखें गवाही देती हैं कि वह ठीक कहता है। झूठ कहने का कोई कारण भी तो नहीं है। उसका आनंद कहता है कि उसे घटना घटी है। और सारा गांव जानता है उसका कि पतझड़ में घटी है और सूखे पत्ते गिरते थे रात में, तब घटी है। सुबह हमने इसे नाचते हुए पाया। सांझ उदास था, सुबह आनंद से भरा था। रात कुछ हुआ है;

एक्सप्लोजन हुआ है। झूठ तो कहता नहीं। वह आदमी गवाह है; उसकी जिंदगी गवाह है; उसकी रोशनी, उसकी सुगंध गवाह है। लेकिन फिर अनेक लोगों ने पत्तों के नीचे रात-रात गुजारी; बहुत ध्यान किया। कुछ न हुआ। सिर्फ सूखे पत्ते गिरते रहे! सुबह वे और उदास होकर घर लौट आए। रातभर की नींद और खराब हो गई।
लोगों के स्थान हैं उनकी यात्राओं के।
कृष्ण जो कह रहे हैं, वह अर्जुन के लिए कह रहे हैं। अर्जुन जहां खड़ा है वहां से--वहां से यात्रा शुरू करनी है।
आसन उपयोगी होगा। स्थान, समय उपयोगी होगा। दोपहर में बैठकर ध्यान करें, बहुत कठिनाई हो जाएगी। कोई कारण नहीं है। क्योंकि दोपहर कोई ध्यान का दुश्मन नहीं है। लेकिन बहुत कठिनाई हो जाएगी।
सूर्य जब पूरा उत्तप्त है और सिर के ऊपर आ जाता है, तब सिर को शांत करना बहुत कठिन है। सूर्य जब जाग रहा है सुबह, बालक है अभी। अभी गर्मी भी नहीं है उसमें। और जब उसकी किरणें आप पर सीधी नहीं पड़तीं, आड़ी पड़ती हैं; आपके शरीर के आर-पार जाती हैं, सिर से नीचे की तरफ नहीं आतीं।
ठीक दोपहर में जब सूर्य सिर के ऊपर है, तब सूर्य की सारी किरणें आपके शीर्ष से, जिसे सहस्रार कहते हैं योगी, उससे प्रवेश करती हैं और आपके सेक्स सेंटर तक चोट पहुंचाती हैं। उस वक्त पूरी धारा आपके सिर से यौन केंद्र तक बह रही है।
और ध्यान की यात्रा उलटी है। ध्यान की यात्रा यौन केंद्र से सहस्रार
की तरफ है। और सूर्य की किरणें दोपहर के क्षण में सहस्रार से यौन केंद्र की तरफ आ रही हैं। नदी जैसे उलटी जा रही हो और आप उलटे तैर रहे हों, ऐसी तकलीफ होगी। ऐसी तकलीफ होगी!
सुबह यह तकलीफ नहीं होगी। सूर्य की किरणें आर-पार जा रही हैं आपके। आपको सूर्य की किरणों से नहीं लड़ना पड़ेगा। संध्या भी यह तकलीफ नहीं होगी। फिर किरणें आर-पार जा रही हैं। इसलिए प्रार्थना का नाम ही धीरे-धीरे संध्या हो गया। संध्या का मतलब ही इतना है, वह क्षण, जब सूर्य की किरणें आर-पार जा रही हैं। चाहे सुबह हो, चाहे सांझ हो, बीच का गैप--जब सूरज आपके ऊपर से सीधा प्रभाव नहीं डालता।
लेकिन रात के बारह बजे, आधी रात फायदा हो सकता है। उसका उपयोग योगियों
ने किया है, अर्धरात्रि का। क्योंकि तब सूरज आपके ठीक नीचे पहुंच गया। और सूरज की किरणें आपके यौन केंद्र से सहस्रार की तरफ जाने लगी हैं। दिखाई नहीं पड़ रही हैं, पर अंतरिक्ष में उनकी यात्रा जारी है। उस वक्त नदी सीधी बह रही है। आप उसमें बह जाएं, तो सरलता से तैर जाएंगे। तैरने की भी शायद जरूरत न पड़े; बह जाएं, जस्ट फ्लोट, और आप ऊपर की तरफ निकल जाएंगे।
लेकिन दोपहर के क्षण में जब सूरज आपके ऊपर से नीचे की तरफ यात्रा कर रहा है, तब आप फ्लोट न कर सकेंगे, बह न सकेंगे। तैरना भी मुश्किल पड़ेगा; क्योंकि सूर्य की किरणें आपके जीवन का आधार हैं! सूर्य जीवन है, उससे लड़ना बहुत मुश्किल मामला है।
इसलिए सूर्य पर त्राटक शुरू हुआ। वह अभ्यास है सूर्य से लड़ने का। वह आपके ख्याल में नहीं होगा। त्राटक करने वाले के ख्याल में भी नहीं होता; क्योंकि किताब में कहीं कोई पढ़ लेता है और करना शुरू कर देता है।
सूर्य की किरणों पर जो त्राटक है, घंटों लंबा अभ्यास है खुली आंखों से, वह इस बात की चेष्टा है कि हम सूर्य की किरणों के विपरीत लड़ने के लिए अपने को तैयार कर रहे हैं! अगर किसी ने त्राटक का गहन अभ्यास किया है, तो वह ठीक दोपहर बारह बजे भी ध्यान में ऊपर यात्रा कर सकता है; क्योंकि उसने सूर्य की किरणों के साथ सीधा संघर्ष करके तैरने की व्यवस्था कर ली है। अन्यथा नहीं।
तो अगर पूछें कि किस समय ध्यान करें? तो जो परम ज्ञानी है, वह कहेगा, समय का कोई सवाल नहीं है। ध्यान तो टाइमलेसनेस है। आप समय के बाहर चले जाएंगे। समय का कोई सवाल ही नहीं है। सुबह हो, कि दोपहर हो, कि सांझ हो।
वह ठीक कह रहा है। ध्यान की जो परम स्थिति है, वह समय के बाहर है, कालातीत है। लेकिन ध्यान का प्रारंभ समय के भीतर है, इन दि टाइम। ध्यान का अंत समय के बाहर है। ध्यान का प्रारंभ समय के भीतर है। और जो समय की व्यवस्था को ठीक से न समझे, वह ध्यान में व्यर्थ की तकलीफें पाएगा, व्यर्थ

के कष्ट पाएगा। अकारण मुसीबतें खड़ी कर लेगा; व्यर्थ ही अपने हारने का इंतजाम करेगा। जीतने की सुविधाएं जो मिल सकती थीं, वह खो देगा।
करीब-करीब ऐसा है, जैसे कि नदी में नाव चलाते हैं पाल बांधकर। जब हवाओं का रुख एक तरफ होता है, तो यात्रा करते हैं। पाल को खुला छोड़ देते हैं, फिर मांझी को, नाविक को पतवार नहीं चलानी पड़ती। हवाएं पाल में भर जाती हैं और नाव यात्रा करने लगती है।
ध्यान की नाव के भी क्षण हैं, स्थितियां हैं। जब हवाएं अनुकूल होती हैं--और ध्यान की हवाएं सूर्य की किरणें हैं--जब हवाएं अनुकूल होती हैं, जब ग्रेविटेशन अनुकूल होता है, जब तरंगें अनुकूल होती हैं, जब चारों तरफ ठीक अनुकूल स्थिति होती है, तब पाल खुला छोड़ दें; बहुत कम श्रम में यात्रा हो जाएगी।
और जब सब चीजें प्रतिकूल होती हैं, तो फिर बहुत मेहनत करनी पड़ती है।
तब भी जरूरी नहीं है कि दूसरा किनारा मिल जाए। हवाएं बहुत तेज हैं, नदी की धार बहुत प्रगाढ़ है। आप बहुत कमजोर हैं। बहुत संभावना तो यही है कि थककर अपने किनारे पर वापस लग जाएं। हाथ जोड़ लें कि यह अपने से न हो सकेगा।
यही होता है। ध्यान में जो लोग भी लगते हैं, ठीक व्यवस्था न जानने से, राइट ट्यूनिंग न जानने से व्यर्थ परेशान होते हैं और परेशान होकर फिर यह सोच लेते हैं कि शायद अपने भाग्य में नहीं है, अपनी नियति में नहीं है, अपने कर्म ठीक नहीं हैं, अपनी पात्रता नहीं है। ऐसा अपने को समझाकर, वह जो दुनिया है व्यर्थ की, उसमें फिर वापस लौटकर लग जाते हैं, अपने किनारे पर लग जाते हैं।
ऐसा न हो, इसलिए कृष्ण अर्जुन को ठीक प्राथमिक बातें कह रहे हैं।

प्रश्नः ओशो, इस श्लोक में दो और छोटी बातें साफ करें, तो अच्छा हो। पहली बात कुशा, मृगचर्म और वस्त्र, यह क्रम दिया है, उपरोपरि। और दूसरी बात, शुद्ध भूमि। इस पर कुछ कहें।
प्रश्नः भगवान श्री, इस श्लोक में दो और छोटी बातें साफ करें, तो अच्छा हो। पहली बात कुशा, मृगचर्म और वस्त्र, यह क्रम दिया है, उपरोपरि। और दूसरी बात, शुद्ध भूमि। इस पर कुछ कहें।

कुश का बहुत उपयोग ध्यान के लिए किया गया है, कई कारणों से। एक तो, जिन दिनों ध्यान की प्रक्रिया विकसित हो रही थी इस पृथ्वी पर, जिन क्षणों में ध्यान का उदघाटन हो रहा था, आविष्कार हो रहा था, उन क्षणों से बहुत संबंध कुश का है।
हमारे पास शब्द है उस समय का, कुशल। वह कुश से ही बना हुआ शब्द है। आपने कभी सोचा न होगा कि हम एक आदमी को कहते हैं कि बहुत कुशल ड्राइवर है; कहते हैं, बहुत कुशल अध्यापक है; लेकिन कुशल का मतलब आपको पता है।
कुशल का कुल मतलब इतना ही है, ठीक कुश को ढूंढ़ लेने वाला। सभी घास कुश नहीं है। तो जिन दिनों ध्यान इस पृथ्वी पर बड़ा व्यापक था, विशेषकर इस देश में, और जिस दिन ध्यान के प्राथमिक चरण हमने उदघाटित किए थे, उस दिन कुशल उस आदमी को कहते थे, जो हजारों तरह की घास में से उस घास को खोज लाए, जो ध्यान में सहयोगी होती है, उस कुश को खोज लाए।
एक विशेष तरह की घास अपने साथ एक विशेष तरह का वातावरण, एक विशेष तरह
की ताजगी ले आती है।
हमें अनुभव होता है कई बार कि कुछ चीजों की मौजूदगी कैटेलिटिक का काम करती है--कुछ चीजों की मौजूदगी। आपने अपने चारों तरफ फूल रख लिए हैं, आपने अपने चारों तरफ एक सुगंध छिड़क रखी है, आपने अपने चारों तरफ धूप जला रखी है, तो आप एक विशेष मौजूदगी के भीतर घिर गए हैं। इस मौजूदगी में कुछ बातें सोचनी मुश्किल, कुछ बातें सोचनी आसान हो जाएंगी। जब चारों तरफ आपके सुगंध हो, तो दुर्गंध के ख्याल आने मुश्किल हो जाएंगे।
कुछ विशेष प्रकार की घास, कुछ विशेष प्रकार की धूप, जो कि ध्यान के ही माध्यम से खोजी गई थी कि सहयोगी हो सकती है। उसकी अपनी पूरी वैज्ञानिक प्रक्रिया है।

लुकमान के जीवन में उल्लेख है कि लुकमान पौधों के पास जाता, उनके पास आंख बंद करके, ध्यान करके बैठ जाता और उन पौधों से पूछता कि तुम किस काम में आ सकते हो, मुझे बता दो! तुम किस काम में आ सकते हो? तुम्हारे पत्ते किस काम में आएंगे, किस बीमारी के काम आएंगे? तुम्हारी जड़ किस काम में आएगी? तुम्हारी छाल किस काम में आएगी?
कहानी अजीब-सी मालूम पड़ती है, लेकिन लुकमान ने लाखों पौधों के पत्ते, जड़ों और उन सबका विवरण दिया है कि वे किस काम में आएंगे।
असंभव मालूम पड़ता है कि पौधे बता दें। लेकिन जब लुकमान की किताब हाथ में लगी वैज्ञानिकों के, तो कठिनाई यह हुई कि दूसरी बात और भी असंभव है कि लुकमान के पास कोई प्रयोगशाला रही हो, जिसमें लाखों पौधों की करोड़ों प्रकार की चीजों का वह पता लगा पाए। वह और भी असंभव है। क्योंकि लेबोरेटरी मेथड्स तो अब विकसित हुए हैं; और केमिकल एनालिसिस तो अब विकसित हुई है, लुकमान के वक्त में तो थी ही नहीं। लेकिन आपकी केमिकल एनालिसिस, रासायनिक प्रक्रिया से और रासायनिक विश्लेषण से आप जो पता लगा पाते हैं, वह गरीब लुकमान बहुत पहले अपनी किताबों में लिख गया है, सुश्रुत अपनी किताबों में लिख गया है, धनवंतरि ने उसकी बात कर दी है। और इनके पास कोई प्रयोगशाला नहीं थी, कोई प्रयोगशाला की विधियां नहीं थीं। इनके पास जानने का जरूर कोई और विधि, कोई और मेथड था, कोई और उपाय था।
वह ध्यान का उपाय है। ध्यान के गहरे क्षण में आप किसी भी वस्तु के साथ तादात्म्य स्थापित कर सकते हैं।
मनोवैज्ञानिक उसे एक खास नाम देते हैं, पार्टिसिपेशन मिस्टीक। एक बहुत रहस्यमय ढंग से आप किसी के साथ एकात्म हो सकते हैं।
ध्यान के क्षण में, गहरी शांति और मौन के क्षण में, अगर आप गुलाब के फूल को सामने रख लें और इतने एकात्म हो जाएं कि उस गुलाब से पूछ सकें कि बोल, तू किस काम में आ सकता है? तो गुलाब नहीं बोलेगा, लेकिन आपके प्राण ही, आपकी अंतर्प्रज्ञा ही कहेगी, इस काम में।
तो कुशल उस व्यक्ति को कहते थे, जो अनंत तरह की घासों के बीच से उस कुश घास को खोज लाता था, जो ध्यान में सहयोगी होने का वातावरण निर्मित करती है।
इसलिए कृष्ण ने कहा सबसे पहले, कुश।
वस्त्र! विशेष वस्त्र। सभी वस्त्र सहयोगी नहीं होते। जिन वस्त्रों में आपने भोजन किया है, उन्हीं वस्त्रों में ध्यान करना कठिन होगा। जिन वस्त्रों में आपने संभोग किया है, उन्हीं वस्त्रों में ध्यान करना तो महा कठिन होगा। जिस बिस्तर पर लेटकर आपने कामवासना के विचार किए हैं, उसी बिस्तर पर बैठकर ध्यान करना बहुत मुश्किल होगा। क्योंकि प्रत्येक वृत्ति और प्रत्येक वासना अपने चारों तरफ की चीजों को इनफेक्ट कर जाती है।
ऐसे लोग आज भी पृथ्वी पर हैं और ऐसी प्रक्रियाएं भी हैं कि मेरा रूमाल उन्हें दे दिया जाए, तो वे मेरे बाबत सब कुछ बता देंगे, हालांकि वे कुछ भी नहीं जानते कि मैं कौन हूं और यह रूमाल किसका है। क्योंकि यह रूमाल मेरे साथ रहकर मेरी सब तरह की संवेदनाओं को, मेरी सब तरह की तरंगों को, मेरे सब तरह के प्रभाव को आत्मसात कर जाता है, पी जाता है।
सूती कपड़े बहुत तीव्रता से पीते हैं, रेशमी कपड़े बहुत मुश्किल से पीते हैं। रेशमी कपड़े बहुत रेसिस्टेंट हैं। इसलिए ध्यान के लिए रेशमी कपड़ों का बहुत दिन उपयोग किया जाता रहा है। वे बिल्कुल रेसिस्टेंट न के बराबर हैं। कम से कम दूसरी चीजों के प्रभावों को पीते हैं, इंप्रेसिव नहीं हैं, उन पर इंप्रेशन नहीं पड़ता। कम पड़ता है, फिसल जाता है, बिखर जाता है, टूट जाता है।
सूती कपड़ा एकदम पी जाता है। तो सूती कपड़े की खूबी भी है, खतरा भी है। अगर ध्यान के वक्त सूती कपड़े का उपयोग करें, तो वह ध्यान को पी जाएगा।
लेकिन फिर उसकी सुरक्षा करनी पड़ेगी, उसको बचाना पड़ेगा। क्योंकि वह दूसरे प्रभावों को भी इसी तरह पी जाएगा। और चौबीस घंटे में तो ध्यान का मुश्किल से कभी एक क्षण आएगा, बाकी तो क्षण बहुत होंगे; वह सब पी जाएगा।

इसलिए रेशमी कपड़े का उपयोग किया जाता रहा। वह प्रभावों को नहीं पीता है। और आपके चारों तरफ एक निष्प्रभाव की धारा बना देता है। स्वच्छतम हों, कोरे हों, रेशमी हों।
और फिर जिन्होंने पाया कि कपड़े का किसी भी तरह उपयोग करो, कुछ न कुछ कठिनाई होती है, तो महावीर ने दिगंबर होकर प्रयोग किया। उसके कारण थे। ऐसे ही नग्न नहीं हो गए। ऐसा कोई दिमाग खराब नहीं था। कारण थे। कैसे ही कपड़े का उपयोग करो, कुछ न कुछ प्रभाव संक्रमित हो जाते हैं। आप अगर अपने ध्यान के कपड़े भी अलग रख दें, तो आप ही रखेंगे, आप ही उठाएंगे; कहीं तो रखेंगे। और अब हमारे घरों में ऐसी कोई जगह नहीं है, जिसे हम समस्त प्रभावों के बाहर रख सकें।
अगर आप अपने घर में एक छोटा-सा कोना समस्त प्रभावों के बाहर रख सकते हैं, तो वह मंदिर हो गया। मंदिर का उतना ही मतलब है। गांव में अगर एक घर आप ऐसा रख सकते हैं, जो समस्त प्रभावों के बाहर है, तो वह मंदिर है। मंदिर का उतना ही अर्थ है। लेकिन कुछ भी अब बाहर रखना बहुत मुश्किल है। एक कोना... । इसलिए वे कह रहे हैं, शुद्ध स्थान।
शुद्ध स्थान से मतलब है, अप्रभावित स्थान। जो जीवन की निम्नतर वासनाएं हैं, उनसे बिल्कुल अप्रभावित स्थान। और इस तरह के अप्रभावित स्थान का परिणाम गहरा है। और वह घर बहुत गरीब है, चाहे वह कितना ही अमीर का घर हो, जिस घर में ऐसी थोड़ी-सी जगह नहीं, जिसे शुद्ध कहा जा सके। किस जगह को शुद्ध कहें?
जिस जगह बैठकर आपने कभी कोई दुष्विचार नहीं सोचा; जिस जगह बैठकर आपने कोई दुष्कर्म नहीं किया; जिस जगह बैठकर आपने सिवाय परमात्मा के स्मरण के और कुछ भी नहीं किया; जिस जगह बैठकर आपने ध्यान, प्रार्थना, पूजा के और कुछ भी नहीं किया; जिस जगह प्रवेश करने के पहले आप अपनी सारी क्षुद्रताओं को बाहर छोड़ गए--ऐसा एक छोटा-सा कोना!
और निश्चित ही ऐसा कोना निर्मित हो जाता है। और अगर इस कोने पर सैकड़ों लोगों ने प्रयोग किया हो, तो वह धीरे-धीरे घनीभूत होता चला जाता है, क्रिस्टलाइज हो जाता है। वह आपकी इस दुनिया के बीच एक अलग दुनिया बस जाती है। वह एक अलग कोना हो जाता है। जिसके भीतर प्रवेश करते से ही परिणाम शुरू हो जाएंगे। जिसके भीतर कोई अजनबी आदमी भी आएगा, तो परिणाम शुरू हो जाएंगे। कई बार आपको अनुभव में आया होगा, इससे उलटा आया होगा, लेकिन बात तो समझ में आ जाएगी। कई बार आपको अनुभव में आया होगा, किसी घर में प्रवेश करते, किसी स्थान पर बैठते, मन बहुत दुष्विचारों से भर जाता है। किसी व्यक्ति के पास जाते, मन बहुत दुष्कर्मों की वासनाओं से भर जाता है। इससे उलटा बहुत कम ख्याल में आया होगा। क्योंकि इससे उलटे आदमी बहुत कम हैं, इससे उलटी जगह बहुत कम हैं कि किसी के पास जाकर मन उड़ान लेने लगता है आकाश की, जमीन को छोड़ देता है। क्षुद्र से हट जाता है, विराट की यात्रा करने लगता है--किसी के पास।
इस तरह किसी के पास होने का पुराना नाम सत्संग था। सत्संग का मतलब किसी को सुनना नहीं था। सत्संग का मतलब कोई व्याख्यान नहीं था। सत्संग का मतलब, सन्निधि; ऐसे व्यक्ति की सन्निधि, जहां पहुंचकर आपकी अंतर्यात्रा को सुगमता मिलती है।
इसलिए इस मुल्क में दर्शन का बड़ा मूल्य हो गया। पश्चिम के लोग बहुत हैरान होते हैं कि दर्शन से क्या होगा? किसी के पास जाकर आप नमस्कार कर आए, उससे क्या होगा? पश्चिम के लोगों को पता नहीं कि कोई गहरा वैज्ञानिक कारण दर्शन के पीछे है।
अगर किसी पवित्र व्यक्ति के पास जाकर आप दो क्षण खड़े भी हुए हैं, दो क्षण सिर भी झुकाया है, तो परिणाम होगा।
सिर झुकाने का भी विज्ञान तो है ही। क्योंकि जैसे ही आप सिर झुकाते हैं, उस पवित्र व्यक्ति की तरंगें आप में प्रवेश करने के लिए सुविधा पाती हैं, आप रिसेप्टिव होते हैं। किसी के चरणों में सिर रखने का कुल कारण इतना था कि आप अपने को पूरा का पूरा सरेंडर करते हैं उसकी किरणों के लिए, उसके रेडिएशन के लिए, वह आप में प्रवेश कर जाए। एक क्षण का भी वैसा स्पर्श, एक आंतरिक स्नान करा जाता है।

तो शुद्ध स्थान के लिए कृष्ण कह रहे हैं। शुद्ध स्थान हो, ऐसी वस्तुएं आस-पास मौजूद हों, जो ध्यान में यात्रा करवाती हैं। इस तरह की बहुत-सी चीजें खोज ली जा सकीं। ऐसी सुगंधें खोज ली गईं, जो ध्यान में सहयोगी हो जाती हैं। ऐसी वस्तुएं खोज ली गईं, जो ध्यान में सहयोगी हो जाती हैं। ऐसे चार्ज्ड आब्जेक्ट्स खोज लिए गए, जो ध्यान में सहयोगी हो जाते हैं।
आज भी, आज भी बचाने की कोशिश चलती है, लेकिन पता नहीं रहता। पता नहीं है, इसलिए बचाना बहुत मुश्किल होता जा रहा है। आज भी कोशिश चलती है अंधेरे में टटोलती हुई, लेकिन उसके साइंटिफिक, उसके वैज्ञानिक कारण खो जाने की वजह से जो बचाने की कोशिश में लगा है, वह बुद्धिहीन मालूम पड़ता है। जो तोड़ने की कोशिश में लगा है, बुद्धिमान मालूम पड़ता है।
और उस व्यक्ति को बहुत कठिनाई हो जाती है, जो जानता है कि बहुत-सी चीजें तोड़ देने जैसी हैं, क्योंकि उनके पीछे कोई वैज्ञानिक कारण नहीं, वे सिर्फ समय की धारा में जुड़ गई हैं। और बहुत-सी चीजें बचा लेने जैसी हैं, क्योंकि उनके पीछे कोई वैज्ञानिक कारण हैं। यद्यपि समय की धारा में वैज्ञानिक कारण भूल गए हैं और खो गए हैं।
यह बाह्य परिस्थिति का निर्माण करना है एक मनःस्थिति के जन्माने के लिए। और निश्चित ही बाहर की परिस्थिति में सहारे खोजे जा सकते हैं, क्योंकि बाहर की परिस्थिति में विरोध और अड़चन भी होती है।

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्।। 13।।
प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः।। 14।।
उसकी विधि इस प्रकार है कि काया, सिर और ग्रीवा को समान और अचल धारण किए हुए दृढ़ होकर, अपने नासिका के अग्रभाग को देखकर, अन्य दिशाओं को न देखता हुआ और ब्रह्मचर्य के व्रत में स्थित रहता हुआ, भयरहित तथा अच्छी प्रकार शांत अंतःकरण वाला और सावधान होकर मन को वश में करके, मेरे में लगे हुए चित्त वाला और मेरे परायण हुआ स्थित होवे।

उस विधि के और अगले कदम।
एक, शरीर बिल्कुल सीधा हो, स्ट्रेट, जमीन से नब्बे का कोण बनाए। वह जो आपकी रीढ़ है, वह जमीन से नब्बे का कोण बनाए, तो सिर सीध में आ जाएगा। और जब आपकी बैक बोन, आपकी रीढ़ जमीन से नब्बे का कोण बनाती है और बिल्कुल स्ट्रेट होती है, तो आप करीब-करीब पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के बाहर हो जाते हैं-- करीब-करीब, एप्रोक्सिमेटली। और पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के बाहर हो जाना ऊर्ध्वगमन के लिए मार्ग बन जाता है, एक।
दूसरी बात, दृष्टि नासाग्र हो। पलक झुक जाएगी, अगर नासाग्र दृष्टि करनी है। नाक का अग्र भाग देखना है, तो पूरी आंख खोले रखने की जरूरत न रह जाएगी। आंख झुक जाएगी। अगर आप बैठे हैं, तो मुश्किल से दो फीट जमीन आपको दिखाई पड़ेगी। अगर खड़े हैं, तो चार फीट दिखाई पड़ेगी। लेकिन वह भी ठीक से दिखाई नहीं पड़ेगी और धुंधली हो जाएगी, धीमी हो जाएगी। दो कारण हैं।
एक, अगर बहुत देर तक नासाग्र दृष्टि रखी जाए, तो पूरा संसार आपको, आपके चारों तरफ फैला हुआ संसार, वास्तविक कम, स्वप्नवत ज्यादा प्रतीत होगा। जो कि बहुत गहरा उपयोग है। अगर आप ऐसी अर्धखुली आंख रखकर नासाग्र देखेंगे, तो चारों तरफ जो जगत आपको बहुत वास्तविक, ठोस मालूम पड़ता है, वह स्वप्नवत प्रतीत होगा।
इस जगत के ठोसवत प्रतीत होने में आपके देखने का ढंग ही कारण है। इसलिए जिसे ध्यान में जाना है, उसे जगत वास्तविक न मालूम पड़े, तो अंतर्यात्रा आसान होगी। जगत धुंधला और ड्रीमलैंड मालूम पड़ने लगेगा।
कभी देखना आप, बैठकर सिर्फ नासाग्र दृष्टि रखकर, तो बाहर की चीजें धीरे-धीरे धुंधली होकर स्वप्नवत हो जाएंगी। उनका ठोसपन कम हो जाएगा, उनकी वास्तविकता क्षीण हो जाएगी। उनका यथार्थ छिन जाएगा, और ऐसा लगेगा जैसे कोई एक बड़ा स्वप्न चारों तरफ चल रहा है।

यह एक कारण, बाहरी। बहुत कीमती है। क्योंकि संसार स्वप्न मालूम पड़ने लगे, तो ही परमात्मा सत्य मालूम पड़ सकता है। जब तक संसार सत्य मालूम पड़ता है, तब तक परमात्मा सत्य मालूम नहीं पड़ सकता। इस जगत में दो सत्यों के होने का उपाय नहीं है। इसमें एक तरफ से सत्य टूटे, तो दूसरी तरफ सत्य का बोध होगा।
आपसे आंख बंद कर लेने को कहा जा सकता था। लेकिन आंख बंद कर लेने से संसार स्वप्नवत मालूम नहीं पड़ेगा। बल्कि डर यह है कि आंख बंद हो जाए, तो आप भीतर सपने देखने लगेंगे, जो कि सत्य मालूम पड़ें। अगर आंख पूरी बंद है, तो डर यह है कि आप रेवरी में चले जाएंगे, आप दिवास्वप्न में चले जाएंगे। पश्चिम में एक विचारक है, रान हुबार्ड। वह ध्यान को भूल से दिवास्वप्न से एक समझ बैठा। आंख बंद करके स्वप्न में खो जाने को ध्यान समझ बैठा। जानकर भारत में--आंख न तो पूरी खुली रहे, क्योंकि पूरी खुली रही तो बाहर की दुनिया बहुत यथार्थ है; न पूरी बंद हो जाए, नहीं तो भीतर के स्वप्नों की दुनिया बहुत यथार्थ हो जाएगी। दोनों के बीच में छोड़ देना है। वह भी एक संतुलन है, वह भी एक समता है, वह भी दो द्वंद्वों के बीच में एक ठहराव है। न खुली पूरी, न बंद पूरी--अर्धखुली, नीमखुली, आधी खुली।
वह जो आधी खुली आंख है, उसका बड़ा राज है। भीतर आधी खुली आंख से सपने पैदा करना मुश्किल है और बाहर की दुनिया को यथार्थ मानना मुश्किल है। जैसे कोई अपने मकान की देहलीज पर खड़ा हो गया; न अभी भीतर गया, न अभी बाहर गया, बीच में ठहर गया।
और जब आंख नासाग्र होती है, जब दृष्टि नासाग्र होती है, तो आपको एक और अदभुत अनुभव होगा, जो उसका दूसरा हिस्सा है। जब दृष्टि नासाग्र होगी, तो आपको आज्ञा चक्र पर जोर पड़ता हुआ मालूम पड़ेगा। दोनों आंखों के मध्य में, दोनों आंखों के मध्य बिंदु पर, इम्फेटिकली, आपको जोर पड़ता हुआ मालूम पड़ेगा। जब आंख आधी खुली होगी और आप नासाग्र देख रहे होंगे, तो नासाग्र तो आप देखेंगे, लेकिन नासांत पर जोर पड़ेगा। देखेंगे नाक के अग्र भाग को और नाक के अंतिम भाग, पीछे के भाग पर जोर पड़ना शुरू होगा। वह जोर बड़े कीमत का है। क्योंकि वहीं वह बिंदु है, वह द्वार है, जो खुले तो ऊर्ध्वगमन शुरू होता है।
आज्ञा चक्र के नीचे संसार है, अगर हम चक्रों की भाषा में समझें। आज्ञा चक्र के ऊपर परमात्मा है, आज्ञा चक्र के नीचे संसार है। अगर हम चक्रों से विभाजन करें, तो आज्ञा चक्र के नीचे, दोनों आंखों के मध्य बिंदु के नीचे जो शरीर की दुनिया है, वह संसार से जुड़ी है। और आज्ञा चक्र के ऊपर का जो मस्तिष्क का भाग है, वह परमात्मा से जुड़ा है। उस पर जोर पड़ने से--वह जोर पड़ना एक तरह की चाबी है, जिससे बंद द्वार खोलने के लिए चेष्टा की जा रही है। वह सीक्रेट लाक है। कहें कि उसको खोलने की कुंजी यह है। जैसा कि आपने कई ताले देखे होंगे, जिनकी चाबी नहीं होती, नंबर होते हैं। नंबर का एक खास जोड़ बिठा दें, तो ताला खुल जाएगा। नंबर का खास जोड़ न बिठा पाएं, तो ताला नहीं खुलेगा।
यह जो आज्ञा चक्र है, इसके खोलने की एक सीक्रेट की है, एक गुप्त कुंजी है। और वह गुप्त कुंजी यह है कि जो शक्ति, जो विद्युत हमारी आंखों से बाहर जाती है, उसी विद्युत को एक विशेष कोण पर रोक देने से उस विद्युत का पिछला हिस्सा आज्ञा चक्र पर चोट करने लगता है। वह चोट उस दरवाजे को धीरे-धीरे खोल देती है। वह दरवाजा खुल जाए, तो आप एक दूसरी दुनिया में, ठीक दूसरी दुनिया में छलांग लगा जाते हैं। नीचे की दुनिया बंद हो गई।
इसमें तीसरी बात कृष्ण ने कही है, ब्रह्मचर्य व्रत में ठहरा हुआ।
ध्यान के इस क्षण में जब आधी आंख खुली हो, नासाग्र हो दृष्टि और आज्ञा चक्र पर चोट पड़ रही हो, अगर आपके चित्त में जरा भी कामवासना का विचार आ गया, तो वह जो द्वार खोलने की कोशिश चल रही थी, वह समाप्त हो गई; और आपकी समस्त जीवन ऊर्जा नीचे की तरफ बह जाएगी। क्योंकि जीवन ऊर्जा उसी केंद्र की तरफ बहती है, जिसका स्मरण आ जाता है।
कभी आपने सोचा है कि जैसे ही कामवासना का विचार आता है, जननेंद्रिय के पास का केंद्र फौरन सक्रिय हो जाता है। विचार तो खोपड़ी में चलता है, लेकिन केंद्र जननेंद्रिय के पास, सेक्स सेंटर के पास सक्रिय हो जाता है। बल्कि

कई दफा तो ऐसा होता है कि आपको भीतर कामवासना का विचार चल रहा है, इसका पता ही तब चलता है, जब सेक्स सेंटर सक्रिय हो जाता है। वह पीछे धीरे-धीरे सरकता रहता है। लेकिन विचार तो मस्तिष्क में चलता है और केंद्र बहुत दूर है, वह सक्रिय हो जाता है! उसकी भी कुंजी है वही। अगर विचार कामवासना का चलेगा, तो आपकी जीवन ऊर्जा कामवासना के केंद्र की तरफ प्रवाहित हो जाएगी।
ध्यान के क्षण में अगर कामवासना का विचार चला, तो आप ऊपर तो यात्रा कम करेंगे, बल्कि इतनी नीचे की यात्रा कर जाएंगे, जितनी आपने कभी भी न की होगी। इसलिए सचेत किया है। साधारणतः भी आप कामवासना में इतने नीचे नहीं जा सकते, जितना आधी आंख खुली हो, नासाग्र हो दृष्टि और उस वक्त अगर काम-विचार चल जाए, तो आप इतनी तीव्रता से कामवासना में गिरेंगे, जिसका हिसाब नहीं।
इसलिए बहुत लोगों को ध्यान की प्रक्रिया शुरू करने पर कामवासना के बढ़ने का अनुभव होता है। उसका कारण है। बहुत लोगों को... न मालूम कितने लोग मुझे आकर कहते हैं कि यह क्या उलटा हुआ? हमने ध्यान शुरू किया है, तो कामवासना और ज्यादा मालूम पड़ती है! उसके ज्यादा मालूम पड़ने का कारण है। अगर ध्यान के क्षण में कामवासना पकड़ गई, तो कामवासना को ध्यान की जो ऊर्जा पैदा हो रही है, वह भी मिल जाएगी। इसलिए ब्रह्मचर्य व्रत में थिर होकर। उस क्षण तो कम से कम कोई काम-विचार न चलता हो।
तो अगर आपको चलाना ही हो, तो एक सरल तरकीब आपको कहता हूं। ध्यान करने
के पहले घंटेभर काम-चिंतन कर लें। पक्का ही कर लें कि परमात्मा को स्मरण करने के पहले घंटेभर बैठकर काम का चिंतन करेंगे, यौन-चिंतन करेंगे।
और यह बड़े मजे की बात है कि अगर कांशसली यौन-चिंतन करें, तो घंटाभर बहुत दूर है, पांच मिनट करना मुश्किल हो जाएगा--चेतन होकर अगर करें, सावधानी से अगर करें।
काम-चिंतन की एक दूसरी कुंजी है कि वह अचेतन चलता है, चेतन नहीं। अगर
आप होशपूर्वक करेंगे, तो आप खुद ही अपने पर हंसेंगे कि यह मैं क्या-क्या मूढ़ता की बातें सोच रहा हूं! वह तो बेहोशी में सोचें, तभी ठीक है। होश में सोचेंगे, तो कहेंगे, क्या मूढ़ता की बातें सोच रहा हूं!
इसलिए कामुक व्यक्ति को शराब बड़ी सहयोगी हो जाती है। उन व्यक्तियों को, जिनकी काम-शक्ति क्षीण हो गई हो, उनको भी शराब बड़ी सहयोगी हो जाती है। क्योंकि वे फिर बेहोशी से इतने भर जाते हैं कि फिर काम-चिंतन में लीन हो पाते हैं।
तो ध्यान करने के पहले अगर आप घंटेभर आंख बंद कर लें। आधी आंख नहीं, आंख बंद कर लें। और सचेत रूप से मेडिटेट आन सेक्स--सचेत रूप से, अचेत रूप से नहीं--जानकर ही कि अब मैं कामवासना पर चिंतन शुरू करता हूं। और शुरू करें। पांच मिनट से ज्यादा आप न कर पाएंगे। और जैसे ही आप पाएं कि अब करना मुश्किल हुआ जा रहा है, अब कर ही नहीं सकता, तब ध्यान में प्रवेश करें। तो शायद पंद्रह मिनट, आधा घंटा आपके चित्त में कोई काम का विचार नहीं होगा। क्योंकि अर्जुन कोई ब्रह्मचारी नहीं है। पूर्ण ब्रह्मचारी हो, तब तो यह कोई सवाल नहीं उठता। तब तो ब्रह्मचर्य की याद दिलाने की भी जरूरत नहीं है। एक बहुत मजे की घटना आपसे कहूं।
महावीर के पहले जैनों के तेईस तीर्थंकरों ने ब्रह्मचर्य की कभी बात नहीं की, नेवर। महावीर के पहले तेईस तीर्थंकरों ने जैनों के कभी नहीं कहा, ब्रह्मचर्य। वे चार धर्मों की बात करते थे--अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, अचौर्य। इसलिए पार्श्वनाथ तक के धर्म का नाम चतुर्याम धर्म है।
महावीर को ब्रह्मचर्य जोड़ना पड़ा, पांच महाव्रत बनाने पड़े; एक और जोड़ना पड़ा। जो लोग खोज-बीन करते हैं इतिहास की, उन्हें बड़ी हैरानी होती है कि क्या महावीर को ब्रह्मचर्य का ख्याल आया! बाकी तेईस तीर्थंकरों ने क्यों ब्रह्मचर्य की बात नहीं की?
ये तेईस तीर्थंकर जिन लोगों से बात कर रहे थे, वे निष्णात ब्रह्मचारी थे। ये उपदेश जिनको दिए गए थे, उनके लिए ब्रह्मचर्य सहज था। यह लोक-चर्चा नहीं थी। यह आम जनता से कही गई बात नहीं थी, जो कि ब्रह्मचारी नहीं हैं। महावीर ने पहली दफा तीर्थंकरों के आकल्ट मैसेज को, जो बहुत गुप्त मैसेज थी, बहुत छिपी मैसेज थी, जो कि बहुत गुप्त राज था और केवल निष्णात

साधकों को दिया जाता था, उसको मासेस का बनाया। और इसीलिए दूसरी घटना घटी कि तेईस तीर्थंकर फीके पड़ गए और ऐसा लगने लगा कि महावीर जैन धर्म के स्थापक हैं। क्योंकि वे पहले, पहले पापुलाइजर हैं, पापुलाइज करने वाले हैं, लोकप्रिय करने वाले पहले व्यक्ति हैं। पहली दफा जनता में उन्होंने वह बात कही, जो कि सदा थोड़े साधकों के बीच, थोड़े गहन साधकों के बीच कही गई थी। इसलिए तेईस तीर्थंकरों को ब्रह्मचर्य की कोई बात नहीं करनी पड़ी। महावीर को बहुत जोर से करनी पड़ी। सबसे ज्यादा जोर ब्रह्मचर्य पर देना पड़ा, क्योंकि अब्रह्मचारियों के बीच चर्चा की जा रही थी।
कृष्ण जब अर्जुन से कह रहे हैं कि ब्रह्मचर्य व्रत में ठहरा हुआ! इसका
यह मतलब नहीं है कि ब्रह्मचारी, इसका इतना ही मतलब है कि ध्यान के क्षण में ब्रह्मचर्य व्रत में ठहरा हुआ।
हां, यह बड़े मजे की बात है कि अगर कोई ध्यान के क्षण में ब्रह्मचर्य में ठहर जाए, क्षणभर को भी ठहर जाए, तो फिर अब्रह्मचर्य में जाना रोज-रोज मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि जब एक दफे ऊर्जा ऊपर चढ़ जाए, तो इतना आनंद लाती है, जितना नीचे सेक्स में गिराई गई ऊर्जा में सपने में भी नहीं मिल सकता है। सोचने में भी नहीं मिल सकता है। उससे कोई तुलना ही नहीं की जा सकती है। एक बार यह ऊपर का अनुभव हो जाए, तो ऊर्जा नीचे जाने की यात्रा बंद कर देगी। इसलिए तीन बातें कहीं। थिर आसन में, सीधी रीढ़ के साथ बैठा हुआ, अर्धखुली आंख, नासाग्र दृष्टि, आज्ञा चक्र पर पड़ती रहे चोट, ब्रह्मचर्य व्रत में ठहरा हुआ, तो ऐसा व्यक्ति, कृष्ण कहते हैं, मुझे उपलब्ध हो जाता है, मुझमें प्रवेश कर जाता है, मुझसे एक हो जाता है। और जब भी कृष्ण कहते हैं मुझसे, तब वे कहते हैं परमात्मा से।
अर्जुन से वे कह सके सीधी-सीधी बात, मुझसे। क्योंकि जिसने जाना परमात्मा को, वह परमात्मा हो गया। इसमें कोई अस्मिता की घोषणा नहीं है कि कृष्ण कह रहे हैं, मैं परमात्मा हूं। इसमें सीधे तथ्य का उदघोषण है। वे हैं; हैं ही। और जो भी जान लेता है परमात्मा को, वह परमात्मा ही है। वह कहने का हकदार है कि कहे कि मुझमें। लेकिन वहां मैं जैसी कोई चीज बची नहीं है, तभी वह हकदार है। जिसका मैं समाप्त हुआ, वह कह सकता है, मैं परमात्मा हूं। कृष्ण कहते हैं, वह मुझे जान लेता है।
और शेष बात हम रात करेंगे। लेकिन अभी उठेंगे नहीं। पांच मिनट कीर्तन में भाग लें, फिर विदा हों।

गीता दर्शन, भाग तीन
गीता दर्शन अध्याय 6
सातवां प्रवचन

अपरिग्रही चित्त

युंजन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति।। 15।।
इस प्रकार आत्मा को निरंतर परमेश्वर के स्वरूप में लगाता हुआ, स्वाधीन मन वाला योगी मेरे में स्थितरूप परमानंद पराकाष्ठा वाली शांति को प्राप्त होता है।

निरंतर परमात्मा में चेतना को लगाता हुआ योगी!
सुबह जिन सूत्रों पर हमने बात की है, उन्हीं सूत्रों की निष्पत्ति के रूप में यह सूत्र है। समझने जैसी बात इसमें निरंतर है। निरंतर शब्द को समझ लेने जैसा है। निरंतर का अर्थ है, एक भी क्षण व्यवधान न हो।
निरंतर का अर्थ है, एक भी क्षण विस्मरण न हो। जागते ही नहीं, निद्रा में भी भीतर एक अंतर-धारा प्रभु की ओर बहती ही रहे--सतत, कंटिन्यूड, जरा भी व्यवधान न हो--तो निरंतर ध्यान हुआ, तो निरंतर स्मरण हुआ।
जैसे श्वास चलती है। चाहे काम करते हों, तो चलती है; चाहे विश्राम करते हों, तो चलती है। याद रखें, तो चलती है; न याद रखें, तो भी चलती है। जागते रहें, तो चलती है; सो जाएं, तो भी चलती रहती है। श्वास की भांति ही जब प्रभु की ओर स्मरण, प्रभु की प्यास, प्रभु की लगन भीतर चलने लगे, तो अर्थ होगा पूरा निरंतर का; तो निरंतर का अर्थ ख्याल में आएगा।
लेकिन हमें तो एक क्षण भी प्रभु को स्मरण करना कठिन है। निरंतर तो असंभव मालूम होगा। एक क्षण भी जब स्मरण करते हैं, तब भी प्राणों की कोई अकुलाहट भीतर नहीं होती। एक क्षण भी जब स्मरण करते हैं, तब भी प्राणों की परिपूर्णता उसमें संलग्न नहीं होती। एक क्षण भी जब पुकारते हैं, तो ऐसे ही ऊपर से, सतह से पुकारते हैं। वह प्राणों की अंतर-गहराइयों तक उसका कोई प्रभाव, कोई संस्पर्श नहीं होता।
और कृष्ण तो कहते हैं कि ऐसा निरंतर प्रभु की ओर बहता हुआ व्यक्ति ही मुझे उपलब्ध होता है, प्रभु को उपलब्ध होता है, प्रभु में प्रतिष्ठा पाता है। तो इसका तो यह अर्थ हुआ कि शेष सब जन निराश हो जाएं। एक क्षण भी नहीं हो पाती है पुकार, तो निरंतर तो कैसे हो पाएगी! साफ है, सीधी बात है कि सब निराश हो जाएं। और जो भी निरंतर के इस अर्थ को समझेंगे, प्राथमिक रूप से निराशा अनुभव होगी, कि फिर हमारे लिए कोई द्वार नहीं, मार्ग नहीं।
नहीं; लेकिन निराश होने का कोई भी कारण नहीं है। इससे केवल इतना ही सिद्ध होता है कि हमें स्मरण की प्रक्रिया ही ज्ञात नहीं है। इससे कुछ और सिद्ध नहीं होता। और यह आपसे कहूं कि जो व्यक्ति एक क्षण भी ठीक से स्मरण कर ले, उसकी निरंतर की स्मरण-व्यवस्था अपने आप नियत और निश्चित हो जाती है। क्यों? क्योंकि हमारे हाथ में एक क्षण से ज्यादा कभी भी होता नहीं। कोई उपाय नहीं कि दो क्षण हमारे हाथ में एक साथ हो जाएं। एक ही क्षण होता है हमारे हाथ में। जब भी होता है, एक ही क्षण होता है। एक जब रिक्त हो जाता है, तब दूसरा हाथ में आता है। एक जब जा चुका होता है, तब दूसरे का आगमन होता है। लेकिन हमारे हाथ में जब भी होता है, एक ही क्षण होता है। इससे ज्यादा क्षण हमारे पास नहीं होते।
इसलिए अगर एक क्षण में भी प्रभु-स्मरण की प्रक्रिया में प्रवेश हो जाए, तो निरंतर में प्रवेश होने में कोई भी बाधा नहीं है। क्योंकि एक क्षण में जो प्रवेश को जान गया, वह हर क्षण में उस प्रवेश को उपलब्ध हो सकेगा। और एक ही क्षण हमारे पास होता है। इसलिए बहुत अड़चन नहीं है। कुंजी पास नहीं है, यही अड़चन है।
निरंतर स्मरण करने का एक ही अर्थ है कि जिसे क्षण में भी स्मरण करने
की क्षमता आ गई, वह निरंतर स्मरण करने की पात्रता पा ही जाता है। लेकिन क्षण में भी स्मरण की पात्रता नहीं है।

और ईश्वर को हम अक्सर उधार लेकर जीते हैं। यह शब्द भी हमने किसी से सुन लिया होता है। यह प्रतिमा भी हमने किसी से सीख ली होती है। यह परमात्मा का रूप, लक्षण भी हमने किसी से सीख लिया होता है। सब उधार है। यह हमारे प्राणों का आथेंटिक, प्रामाणिक कोई अनुभव नहीं होता है पीछे। यह कहीं हमारे प्राणों की अपनी प्रतीति और साक्षात नहीं होता है। इसीलिए क्षण में भी पूरा नहीं हो पाता, सतत और निरंतर तो पूरे होने का कोई सवाल नहीं है।
इसलिए पहले सूत्र में कृष्ण ने कहा है कि जो अंतर-गुफा में प्रवेश कर जाए, एकांत को उपलब्ध हो जाए। और उसमें एक शब्द छूट गया, मुझे अभी याद दिलाया कि जो अपरिग्रह चित्त का हो। उसकी मैं कल बात नहीं कर पाया, उसकी भी थोड़ी आपसे बात कर लूं।
एकांत का मैंने अर्थ आपको कहा। जिसके भीतर भीड़ न रह जाए। जिसके भीतर दूसरे के प्रतिबिंबों का आकर्षण न रह जाए। जिसके भीतर दूसरों के प्रतिबिंब जैसे आईने से हमने धूल साफ कर दी हो, ऐसे साफ कर दिए गए हों। ऐसा एकांत जिसके मन में हो, वह अंतर-गुहा में प्रवेश कर जाता है।
एक शब्द और कृष्ण ने कहा है, अपरिग्रही चित्त वाला, अपरिग्रही चित्त। क्या अर्थ होता है अपरिग्रह का? सीधा-सादा अर्थ शब्दकोश में जो लिखा होता है, वह यह है कि जो वस्तुओं का संग्रह न करे। लेकिन कृष्ण का यह अर्थ नहीं हो सकता। नहीं हो सकता इसलिए कि कृष्ण, व्यक्ति जीवन और संसार को छोड़ जाए, इसके पक्ष में नहीं हैं। अगर सारी वस्तुओं को छोड़ दे, तो संसार और जीवन छूट ही जाता है। कृष्ण इस पक्ष में भी नहीं हैं कि कर्म को छोड़कर चला जाए। अगर सारी वस्तुओं को कोई छोड़कर चला जाए, तो कर्म भी अपने आप छूट जाता है। तो कृष्ण का अर्थ अपरिग्रह से कुछ और होगा।
कृष्ण का अर्थ है अपरिग्रही चित्त से, ऐसा चित्त जो वस्तुओं का उपयोग
तो करता है, लेकिन वस्तुओं को अपनी मालकियत नहीं दे देता है। जो वस्तुओं का उपयोग तो करता है, लेकिन वस्तुओं का मालिक ही बना रहता है। कोई वस्तु उसकी मालिक नहीं हो जाती। वस्तुओं का उपयोग करता है, लेकिन वस्तुओं के साथ कोई राग का, कोई आसक्ति का संबंध निर्मित नहीं करता।
ऐसा समझें कि जैसे आपका नौकर आपके घर में वस्तुओं का उपयोग करता है। सम्हालकर रखता है चीजों को, सम्हालकर उठाता है। उनका उपयोग भी करता है, काम में भी लाता है। लेकिन आपकी कोई बहुमूल्य चीज खो जाए, तो उसे कोई पीड़ा नहीं होती। यद्यपि आपसे ज्यादा उस वस्तु के संपर्क में नौकर को आने का मौका मिला था। शायद आपको इतना मौका भी न मिला हो। आपसे ज्यादा उसने उपयोग किया था। लेकिन खो जाए, टूट जाए, नष्ट हो जाए, चोरी चली जाए, तो नौकर को जरा भी चिंता पैदा नहीं होती। वह रात शांति से घर जाकर सो जाता है। क्या, बात क्या है?
वस्तु का उपयोग तो कर रहा था, लेकिन वस्तु से किसी तरह का रागात्मक कोई संबंध न था। लेकिन अगर चीज टूट गई हो--समझें कि एक घड़ी फूट गई हो, जिसे वह रोज साफ करता था और चाबी देता था, वह आज गिरकर टूट गई हो। नौकर को कुछ भी भीतर नहीं टूटेगा, क्योंकि घड़ी ने भीतर कोई स्थान नहीं बनाया था।
लेकिन टूटी हुई घड़ी के बाद अगर आप नौकर से कहें कि यह तो बहुत बुरा हो गया। आज तो मैं सोच रहा था कि संध्या जाते समय घड़ी तुम्हें भेंट कर दूंगा। तो उस दिन उसकी नींद हराम हो जाएगी। घड़ी से एक रागात्मक संबंध निर्मित हुआ। नहीं थी घड़ी, उससे हो गया! इतने दिन तक घड़ी थी, घड़ी का उपयोग किया था, कोई रागात्मक संबंध न था। आज घड़ी टूटकर चूर-चूर हो गई है। लेकिन मालिक ने कहा कि दुख, दुर्भाग्य तुम्हारा, क्योंकि सोचता था मैं कि आज संध्या यह घड़ी तुम्हें भेंट कर दूंगा। अब घड़ी है नहीं, जो भेंट की जा सके। लेकिन नौकर अब चिंतित और दुखी और पीड़ित होने वाला है। होगा इसलिए पीड़ित और दुखी कि अब जो घड़ी नहीं है, उससे भी एक रागात्मक संबंध स्थापित हुआ। वह मिल सकती थी, मेरी हो सकती थी। अब भीतर उसने जगह बनाई। अब तक वह बाहर दीवाल पर लटकी थी, अब वह हृदय के किसी कोने में लटकी है।
जब वस्तुएं बाहर होती हैं और भीतर नहीं, जब उनका उपयोग चलता हो, लेकिन आसक्ति निर्मित न होती हो, तब कृष्ण का अपरिग्रह फलित होता है। जीवन को

जीना है उसकी समग्रता में, लेकिन ऐसे, जैसे कि जीवन छू न पाए। गुजरना है वस्तुओं के बीच से, व्यक्तियों के बीच से, लेकिन अस्पर्शित।
इसलिए और जो अपरिग्रह की व्याख्याएं हैं, वे सरल हैं। कृष्ण की व्याख्या कठिन है। और जो व्याख्याएं हैं, साधारण हैं। ठीक है, जिन वस्तुओं से मोह निर्मित हो जाता है, उनको छोड़कर चले जाओ, थोड़े दिन में मन भूल जाता है। बड़ी से बड़ी चीज को मन भूल जाता है। छोड़ दो, हट जाओ, तो मन की स्मृति कमजोर है, कितने दिन तक याद रखेगा! भूल जाएगा, विस्मरण हो जाएगा। नए राग बना लेगा, पुराने राग विस्मृत हो जाएंगे।
आदमी मर भी जाए जिसे हमने बहुत प्रेम किया था, तो कितने दिन, कितने दिन स्मरण रह जाता है? रोते हैं, दुखी-पीड़ित होते हैं। फिर सब विस्मरण हो जाता है, फिर सब घाव भर जाते हैं। फिर नए राग, नए संबंध निर्मित हो जाते हैं। यात्रा पुनः शुरू हो जाती है।
किसके मरने से यात्रा रुकती है! किस चीज के खोने से यात्रा रुकती है! कुछ रुकता नहीं; सब फिर चलने लगता है पुनः। जैसे थोड़ा-सा बीच में भटकाव आ जाता है; रास्ते से जैसे गाड़ी का चाक उतर गया; फिर उठाते हैं चाक को, वापस रख लेते हैं; गाड़ी फिर चलने लगती है।
तो अगर कोई वस्तुओं को छोड़कर भाग जाए, तो थोड़े दिन में उन्हें भूल जाता है। लेकिन भूल जाना, मुक्त हो जाना नहीं है। भाग जाना, मुक्त हो जाना नहीं है। सच तो यह है, भागता वही है, जो जानता है कि मैं साथ रहकर मुक्त न हो सकूंगा। अन्यथा भागने का कोई प्रयोजन नहीं है। भागता वही है, जो अपने को कमजोर पाता है।
हीरे-जवाहरात का ढेर लगा हो। मैं आंख बंद कर लेता हूं, इसलिए कि अगर दिखाई पड़ेगा, तो बहुत मुश्किल है कि मैं अपने पर काबू रख पाऊं। आंख बंद करके मैं यह नहीं बताता हूं कि मैं हीरे-जवाहरात के प्रति अनासक्त हूं; केवल इतना ही बताता हूं कि बहुत दीन हूं, बहुत कमजोर हूं। आंख खुली कि आसक्ति निर्मित हो जानी सुनिश्चित है। इसलिए आंख बंद करके बैठा हूं। लेकिन आंख बंद करने से आसक्तियां अगर मिटती होतीं, तो हम सब अपनी आंखें फोड़ डालते और मुक्त हो जाते। तब तो अंधे परम गति को उपलब्ध हो जाते!
इतना सरल नहीं है। ऐसे अपने को धोखा तो दिया जा सकता है, लेकिन मुक्ति
का क्षण करीब नहीं आता है। भाग जाऊं छोड़कर; यहां हीरे-जवाहरात रखे हैं; दूर निकल जाऊं। ठीक है, दूर निकल जाऊंगा। मौजूद नहीं होगी चीज, मन कहीं और उलझ जाएगा। किसी वृक्ष के नीचे बैठकर किसी अरण्य में कंकड़-पत्थर बीनने लगूंगा, उन्हीं का ढेर सम्हालकर रख लूंगा। लेकिन इससे छुटकारा नहीं है। कृष्ण का अपरिग्रह एक डीपर मीनिंग, एक गहरे अर्थ को सूचित करता है। वह अर्थ है, वस्तुएं जहां हैं, वहीं रहने दो; तुम जहां हो, वहीं रहो; दोनों के बीच सेतु निर्मित मत होने दो। दोनों के बीच कोई सेतु न बन जाए, दोनों के बीच आवागमन न हो। तुम तुम रहो; वस्तुओं को वस्तुएं रहने दो। न तुम वस्तुओं के हो जाओ, न वस्तुओं को समझो कि वे तुम्हारी हो गई हैं।
और ये दोनों एक ही चीज के दो पहलू हैं। जिस दिन आपने समझा, वस्तु मेरी
हो गई; आप वस्तु के हो गए। जिस दिन आपने कहा कि यह वस्तु मेरी है, उस दिन आप पक्का जानना कि आप भी वस्तु के हो गए।
मालकियत म्यूचुअल होती है, पारस्परिक होती है। आप किसी को गुलाम नहीं बना सकते बिना उसके गुलाम बने। यह असंभव है। जब भी आप किसी को गुलाम बनाते हैं, तो आपको पता हो, न पता हो, आप उसके गुलाम बन जाते हैं। गुलामी पारस्परिक है।
हां, यह दूसरी बात है कि एक गुलाम कुर्सी पर ऊपर बैठा है, दूसरा गुलाम कुर्सी के नीचे बैठा है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। कई बार तो नीचे बैठा हुआ ज्यादा मुक्त होता है, ऊपर बैठे हुए से। क्योंकि वह जो नीचे बैठा है, उसका काम शायद कुर्सी पर ऊपर बैठने वाले आदमी के बिना भी चल जाए। लेकिन वह जो कुर्सी के ऊपर बैठा है, उसका काम नीचे बैठे वाले के बिना नहीं चलने वाला है। उसकी डिपेंडेंस गहरी है, उसकी पराधीनता भारी है।
अगर हम एक सम्राट के सब गुलामों को मुक्त कर दें, तो गुलाम सम्राट की कोई खास याद न करेंगे। कहेंगे, बहुत अच्छा हुआ। लेकिन सम्राट! सम्राट दिन-रात बेचैन और चिंतित होगा; क्योंकि गुलामों के बिना वह ना-कुछ हो जाता है।

कुछ भी नहीं है! और गुलाम तो सम्राट के बिना कुछ ज्यादा हो जाएंगे; लेकिन सम्राट गुलामों के बिना बहुत कम हो जाएगा। उसकी गुलामी भारी है। दिखाई नहीं पड़ती। दिखाई न पड़ने का उसने इंतजाम कर रखा है। वह गुलामों की गर्दन दबाए हुए है ऊपर से, बिना इस बात को समझे हुए कि उसकी गर्दन भी गुलामों के हाथ में है।
सब गुलामियां पारस्परिक होती हैं। सब बंधन पारस्परिक होते हैं।
देखा है, रास्ते से एक सिपाही एक आदमी को हथकड़ियां डालकर ले जा रहा है। तो दिखाई तो ऐसा ही पड़ता है कि सिपाही मालिक है, हथकड़ियों में बंधा हुआ गुलाम गुलाम है, कैदी है। लेकिन अगर सिपाही उस कैदी को छोड़कर भाग खड़ा हो, तो कैदी उसका पीछा नहीं करेगा। लेकिन अगर कैदी भाग खड़ा हो, तो सिपाही उसका पीछा करेगा; जान की आ जाएगी उसके ऊपर। हथकड़ी तो पड़ी थी कैदी के हाथ में, लेकिन साथ ही वह सिपाही के हाथ में भी पड़ी थी। महंगा पड़ जाएगा कैदी का भागना। दोनों बंधे हैं पारस्परिक। हां, एक जरा कुर्सी पर बैठा है, एक जरा कुर्सी के नीचे बैठा है। दोनों बंधे हैं।
जिस चीज से भी हम संबंध निर्मित करते हैं, सेतु बन जाता है, और सेतु बनाने के लिए दो की जरूरत पड़ती है। जैसे नदी पर हम सेतु बनाते हैं, ब्रिज बनाते हैं। एक किनारे पर पाया रखकर ब्रिज न बनेगा। दूसरे किनारे पर भी रखना ही होगा। दोनों किनारों पर पाए रखे जाएंगे, तो सेतु बनेगा। तो जब भी हम किसी वस्तु या किसी व्यक्ति से संबंध निर्मित करते हैं, तो एक सेतु निर्मित होता है। एक किनारा हम होते हैं, एक किनारा वह होता है।
कृष्ण ने एक सेतु तोड़ने के लिए एकांत का प्रयोग किया, वह सेतु है व्यक्ति और व्यक्ति के बीच। दूसरा सेतु तोड़ने के लिए वह अपरिग्रह का प्रयोग करते हैं, वह सेतु है व्यक्ति और वस्तु के बीच।
और ध्यान रहे, व्यक्ति और व्यक्ति के बीच सेतु रोज-रोज कम होते चले जाते हैं। अपने आप ही कम होते चले जाते हैं। और व्यक्ति और वस्तु के बीच सेतु बढ़ते चले जाते हैं। उसका कुछ कारण है, वह मैं आपको ख्याल दिला दूं। यह बात थोड़ी-सी अजीब लगेगी, लेकिन ऐसा हुआ है; ऐसा हो रहा है। उसके होने के बुनियादी कारण हैं। व्यक्ति और व्यक्ति के बीच सेतु रोज कम होते चले जाते हैं, क्योंकि व्यक्तियों के साथ सेतु बनाने में बड़ी झंझटें और कांप्लेक्सिटीज हैं, बड़ा उपद्रव है।
सबसे बड़ा उपद्रव तो यही है कि दूसरा भी जीवित व्यक्ति है। जब आप उसको गुलाम बनाने की कोशिश करते हैं, तब वह भी बैठा नहीं रहता। वह भी जोर से अपना जाल फेंकता है। पति अपने को कितना ही कहता हो कि मैं स्वामी हूं, मालिक हूं, बहुत गहरे में जानता है कि जिस दिन मालिक बना है किसी स्त्री का, उसी दिन वह स्त्री मालिक बन गई है, या उसी दिन से चेष्टा में लगी है। सतत संघर्ष चल रहा है मालकियत की घोषणा का कि कौन मालिक है! वह लड़ाई जिंदगीभर जारी रहेगी।
व्यक्तियों के साथ संघर्ष स्वाभाविक है, क्योंकि सभी स्वाधीन होना चाहते हैं। लेकिन नासमझी के कारण किसी को पराधीन करके स्वाधीन होना चाहते हैं, जो कि कभी नहीं हो सकता। जिसने दूसरे को पराधीन किया, वह स्वयं भी पराधीन हो जाएगा। स्वाधीन तो केवल वही हो सकता है, जिसने किसी को पराधीन करने की योजना ही नहीं बनाई।
व्यक्ति के साथ जटिलताएं बढ़ती चली जाती हैं, वस्तु के साथ जटिल मामला नहीं है। आपने एक कुर्सी घर में लाकर रख दी है एक कोने में, तो वहीं रखी रहेगी। आप ताला लगाकर वर्षों बाद भी लौटें, तो कुर्सी वहीं मिलेगी। बहुत आज्ञाकारी है! लेकिन एक पत्नी को उस तरह बिठा जाएंगे, या पति को या बेटे को या बेटी को, तो यह असंभव है। जब तक आप लौटेंगे, तब तक सब दुनिया बदल चुकी होगी। वहीं तो नहीं मिलने वाला है कोई भी।
जीवित व्यक्तित्व की अपनी आंतरिक स्वतंत्रता है, वह काम करेगी। चेतना है, वह काम करेगी। वस्तु से हम अपेक्षा कर सकते हैं; व्यक्ति से अपेक्षा करनी बहुत कठिन है। क्योंकि कल व्यक्ति क्या करेगा, नहीं कहा जा सकता। व्यक्ति अनप्रेडिक्टेबल है। वस्तुओं की भविष्यवाणी हो सकती है; व्यक्तियों की भविष्यवाणी नहीं हो सकती।

इसलिए जितना मरा हुआ आदमी होता है, उतना ज्योतिषी उसके बाबत सफल हो जाता है बताने में। जिंदा आदमी हो, तो बहुत मुश्किल होती है। और मुर्दों के सिवाय ज्योतिषियों के पास कोई जाता हुआ दिखाई भी नहीं पड़ता है! जिंदा आदमी अनप्रेडिक्टेबल है। कल क्या होगा, नहीं कहा जा सकता। जिंदा आदमी एक स्वतंत्रता है।
तो व्यक्तियों के साथ तो बड़ी कठिनाई हो जाती है, इसलिए आदमी धीरे-धीरे व्यक्तियों की मालकियत छोड़कर वस्तुओं की मालकियत पर हटता चला जाता है। तिजोड़ी में एक करोड़ रुपया बंद है, तो उनकी मालकियत ज्यादा सुरक्षित मालूम होती है। और आप एक करोड़ लोगों का वोट लेकर प्रधान मंत्री बन गए हैं, तो पक्का मत समझना कि अगले इलेक्शन में वे साथ देने वाले हैं! अनप्रेडिक्टेबल हैं। वह एक करोड़ लोगों की मालकियत भरोसे की नहीं है। वह एक करोड़ रुपए जो तिजोड़ी में बंद हैं, भरोसे के हैं। इस अर्थ में भरोसे के हैं कि मुर्दा जड़ चीज है; मालकियत आपकी है।
व्यक्तियों के ऊपर मालकियत खतरे का सौदा है। इसलिए जैसे-जैसे आदमी के पास समझ बढ़ती जाती है--नासमझी से भरी समझ--वैसे-वैसे वह व्यक्तियों से संबंध कम और वस्तुओं से संबंध बढ़ाए चला जाता है।
इसलिए बड़े परिवार टूट गए। क्योंकि बड़े परिवारों में बड़े व्यक्तियों
का जाल था। लोगों ने कहा, इतने बड़े परिवार में नहीं चलेगा। व्यक्तिगत परिवार निर्मित हुए। पति-पत्नी, एक-दो बच्चे--पर्याप्त। लेकिन अब वे भी बिखर रहे हैं। वे भी बच नहीं सकते। क्योंकि पति और पत्नी के बीच भी संबंध बहुत जटिल होता चला जाता है। आने वाले भविष्य में शादी बचेगी, यह कहना बहुत मुश्किल है। सिर्फ वे ही लोग कह सकते हैं, जिन्हें भविष्य का कोई भी बोध नहीं होता। बच नहीं सकती है। खतरे भारी पैदा हो गए हैं। डर यही है कि वह बिखर जाएगी।
लेकिन इसकी जगह वस्तुओं का परिग्रह बढ़ता चला जाता है। एक आदमी दो मकान बना लेता है, दस गाड़ियां रख लेता है, हजार रंग-ढंग के कपड़े पहन लेता है। घर में समा लेता है। चीजें इकट्ठी करता चला जाता है। चीजों पर मालकियत सुगम मालूम पड़ती है। कोई झगड़ा नहीं, कोई झंझट नहीं। चीजें जैसी हैं, वैसी रहती हैं। जो कहो, वैसा मानती हैं।
तो धीरे-धीरे आदमी चीजों की मालकियत पर ज्यादा उतरता चला जाता है। जितनी पुरानी दुनिया में जाएंगे, उतना ही व्यक्तियों के संबंध ज्यादा मालूम पड़ेंगे। जितनी आज की दुनिया में आएंगे, उतने व्यक्तियों के संबंध कम, और व्यक्तियों और वस्तुओं के संबंध ज्यादा हो जाएंगे। इसलिए भविष्य के लिए अपरिग्रह का सूत्र बहुत सोचने जैसा है। भविष्य में परिग्रह भारी होता जाएगा, होता जा रहा है, रोज बढ़ता जा रहा है।
आज योरोप में तो लोग, आम प्रचलित कहावत हो गई है कि पति-पत्नी एक बच्चे
को पैदा करें या न करें, तो सोचते हैं कि एक बच्चा पैदा करें कि एक फ्रिज खरीद लें? एक बच्चा पैदा करें कि एक और नया माडल कार का निकला है, वह खरीद लें? एक बच्चा पैदा करें कि टी.वी. का एक सेट खरीद लें? यह विकल्प है! क्योंकि एक बच्चा इतना खर्चा लाएगा, उससे तो कार का नया माडल खरीदा जा सकता है। और कार ज्यादा भरोसे की है। ज्यादा भरोसे की है। जहां चाहो, वहां खड़ा करो; जहां चाहो, मत खड़ा करो। जो व्यवहार करना चाहो, करो। रिटेलिएट नहीं करती, उत्तर भी नहीं देती, झंझट भी नहीं करती। गुस्सा आ आए, गाली दो, लात मार दो; चुपचाप सह लेती है।
तो वस्तुओं पर हमारा आग्रह बढ़ता चला जाता है। आदमी अपने चारों तरफ वस्तुओं का एक जाल इकट्ठा करके सम्राट होकर बैठ जाता है बीच में कि मैं मालिक हूं। व्यक्तियों को इकट्ठा करके ऐसी मालकियत बड़ी कठिन है! प्रौढ़ व्यक्तियों को इकट्ठा करके, तो बहुत कठिन है। प्राइमरी स्कूल के शिक्षक से पूछो कि तीस छोटे-से बच्चे इकट्ठे हो जाते हैं चारों तरफ, तो कैसी मुसीबत पैदा हो जाती है। जरा-जरा से बच्चे, लेकिन शिक्षक की जान ऐसी अटकी रहती है कि वह घंटे की राह देखता रहता है कि कब घंटा बजे और वह भागे! क्योंकि तीस जीवित बच्चे! जरा सिर मोड़कर तख्ते पर कुछ लिखना शुरू करता है कि यहां बगावत फैल जाती है।

वैसे मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि तख्ते को इसीलिए ऐसा बनाया है कि शिक्षक बीच-बीच में पीठ कर पाए। क्योंकि अगर छः-सात घंटे वह पीठ ही न करे, तो बच्चों को इतना सप्रेस करना पड़े अपने आपको कि वे बीमार पड़ जाएं। तो रिलीफ के लिए मौका मिल जाता है। पीठ करके तख्ते पर लिखता है, तब तक कोई मजाक में कुछ कह देता है, कोई पत्थर उछाल देता है, कोई चोट कर देता है, कोई आंख मिचका देता है, बच्चे रिलैक्स हो जाते हैं। तब तक शिक्षक वापस लौटता है; फिर पढ़ाई शुरू हो जाती है। वह बच्चों के लिए बड़ा सहयोगी है तख्ता, जिसकी वजह से शिक्षक को बीच-बीच में मुड़ना पड़ता है। लेकिन ये जिंदा बच्चे हैं, इन पर मालकियत!
छोटे-से बच्चे पर भी मालकियत करनी बहुत मुश्किल बात है। मां-बाप भी छोटे-छोटे बच्चों को फुसलाते हैं और रिश्वत खिलाते हैं। हां, रिश्वत बच्चों जैसी होती है, चाकलेट है, टाफी है। बाप घर लौटता है, तो सोच लेता है कि आज क्या रिश्वत ले चलनी है। क्योंकि बच्चा दरवाजे पर खड़ा होगा। छोटा-सा बच्चा, जिसकी अभी जीवन की कोई ताकत नहीं, कुछ नहीं। उससे भी बाप डरता है घर लौटते वक्त। छोटे-छोटे बच्चों से भी बाप और मां को झूठ बोलना पड़ता है। पिक्चर देखने जाते हैं, तो कहते हैं, गीता ज्ञान सत्र में जा रहे हैं! व्यक्ति के साथ संबंध बनाना जटिल बात है। छोटा-सा जीवित व्यक्ति और जटिलताएं शुरू हो जाती हैं। तो हम फिर व्यक्तियों को हटाना शुरू कर देते हैं। हटा दो व्यक्ति को, वस्तुओं से संबंध बना लो। घर में जाओ, जहां भी नजर डालो, आप ही मालिक हो। कुर्सियां रखी हैं, फर्नीचर रखा है, फ्रिज रखा है, कार रखी है, रेडिओ रखे हैं। आप बिल्कुल मालिक की तरह हैं। जहां भी नजर डालो, मालिक हैं। तो वस्तुएं बढ़ती जाती हैं, व्यक्ति से संबंध क्षीण होते चले जाते हैं। सभ्यता जब विकसित होती है, तो वस्तुओं से संबंध रह जाते हैं आदमियों के और आदमियों से खो जाते हैं।
इसलिए दूसरे सूत्र को जानकर मैंने फिर से कह देना चाहा, वह छूट गया था,
कि अपरिग्रह।
अपरिग्रही चित्त वह है, जो वस्तुओं की मालकियत में किसी तरह का रस नहीं लेता। उपयोगिता अलग बात है, रस अलग बात है। वस्तुओं में जो रस नहीं लेता, वस्तुओं के साथ जो किसी तरह की गुलामी के संबंध निर्मित नहीं करता, वस्तुओं के साथ जिसका कोई इनफैचुएशन, वस्तुओं के साथ जिसका कोई रोमांस नहीं चलता।
रोमांस चलता है वस्तुओं के साथ। जब आप कभी नई कार खरीदने का सोचते हैं, तो बहुत फर्क नहीं पड़ता। स्थिति करीब-करीब वैसे हो जाती है, जैसे कोई नया व्यक्ति किसी नई लड़की के प्रेम में पड़ जाता है और रात सपने देखता है। कार उसी तरह सपनों में आने लगती है! वस्तुओं का भी इनफैचुएशन है। उनके साथ भी रोमांस चल पड़ता है। यह वस्तुओं में रस न हो, वस्तुओं का उपयोग हो।
और ध्यान रहे, वस्तुओं में जितना ज्यादा रस होगा, आप उतना ही कम उपयोग
कर पाएंगे। जितना कम रस होगा वस्तु का, उतना पूरा उपयोग कर पाएंगे।
क्योंकि उपयोग के लिए एक डिटैचमेंट, एक अनासक्त दूरी जरूरी है।
मैं एक मित्र को जानता हूं। दस साल से मैं उनके बरांडे में एक स्कूटर
को रखा हुआ देखता हूं। दो-चार बार पहले पहल मैंने पूछा कि क्या स्कूटर बिगड़ गया है? उन्होंने कहा, ऐसा दुश्मन का न बिगड़े! स्कूटर बिगड़ा नहीं है। फिर मैं चुप रह गया। कई बार उनको देखा कि बरांडे में ही खड़े स्कूटर को स्टार्ट करके, फिर बंद करके, भीतर चले जाते हैं! मैंने पूछा कि बात क्या है? कभी निकालते नहीं!
इनफैचुएशन है भारी उनका। स्कूटर क्या है, उनकी प्रेयसी है। उसको ऐसा सम्हालकर, पोंछ-तांछकर रख देते हैं, निकालते नहीं। निकलते तो अपनी फटी साइकिल पर ही हैं। जब निकलते हैं, उसी पर! मैंने कई दफा देखा। मैंने कहा, यह स्कूटर किसलिए है? वे बोले कि कभी समय-बेसमय! लेकिन आज तो वर्षा हो रही है, तो नाहक रंग खराब हो जाएगा। कभी धूप तेजी होती है, तो नाहक रंग खराब हो जाएगा। मैंने उनका स्कूटर निकलते नहीं देखा है।
सभी के पास ऐसी स्कूटर जैसी थोड़ी-बहुत चीजें होंगी। सभी के पास। वह आप रखे हुए हैं सम्हालकर। स्त्रियों के पास बहुत हैं। उसका कारण है। क्योंकि पुरुष तो बाहर के जगत में व्यक्तियों से बहुत तरह के संबंध बना लेते हैं।

स्त्रियों के हमने पुरुषों से सब तरह के संबंध तुड़वा दिए हैं। उनको घर के भीतर बंद कर दिया है।
तो पुरुषों के जगत में तो बहुत तरह के संबंध हो पाते हैं--दल है, क्लब है, पार्टी है, संघ है, मित्र है, फलां हैं, ढिकां हैं, हजार उपाय हैं। और पुरुष बाहर की दुनिया में घूमकर बहुत तरह के संबंध निर्मित करता रहता है। लेकिन स्त्री को हमने घर में बंद कर दिया। तो उसके हम किसी तरह के बाहर जगत से संबंध निर्मित नहीं होने देते। तो उसकी जो संबंध बनाने की जो प्यास है, अतृप्ति है, वह वस्तुओं पर निकलती है। इसलिए स्त्रियां वस्तुओं के लिए बिल्कुल इनफैचुएटेड हो जाती हैं।
मेरे पास कई स्त्रियां आती हैं, वे कहती हैं, संन्यास हमें लेना है, लेकिन दिक्कत सिर्फ एक है कि तीन सौ साड़ियां! और कोई दिक्कत नहीं है; और हमें कोई कष्ट ही नहीं है संन्यास में। सिर्फ कठिनाई यह है कि इन तीन सौ साड़ियों का क्या होगा! एक का मामला नहीं है, न मालूम कितनी स्त्रियों ने मुझे आकर कहा कि संन्यास की बात बिल्कुल जमती है मन को, सब ठीक है, लेकिन... ! तब उनका कमजोर हिस्सा आ जाता है, साफ्ट-कार्नर, वे साड़ियां! वह इनफैचुएशन है।
उसका कारण है कि पुरुषों ने जो जगत बनाया है, उसमें स्त्रियों को व्यक्तियों से संबंध बनाने के सब दरवाजे बंद कर दिए, तो उसने वस्तुओं से अपना संबंध बना लिया। वह वस्तुओं के लिए दीवानी है। पति को सजा हो जाए, उनको हीरे की अंगूठी चाहिए। चलेगा, पति तो सालभर बाद वापस आ जाएगा; ऐसी क्या अड़चन है! लेकिन हीरे की अंगूठी! वस्तुओं से इतना गहरा संबंध, उसका कारण भी वही है। व्यक्तियों से संबंध बनाने का उपाय न होने से सारी की सारी चेतना वस्तुओं से संबंध निर्मित करने में लग गई है।
अपरिग्रह का अर्थ है, वस्तुओं में रस नहीं है, इनफैचुएशन नहीं है। वस्तुएं हैं, उनका उपयोग ठीक है। हीरे की अंगूठी है, तो पहन लें; और नहीं है, तो नहीं। हीरे की अंगूठी है, तो ठीक; नहीं है, तो न होना ठीक। जिस दिन ये दोनों बातें एक-सी हो जाएं और खिलवाड़ हो जाए कि हीरे की अंगूठी हो, तो खेल है; और न हो, तो घास की अंगूठी भी बनाकर पहनी जा सकती है; और बिल्कुल न हो, तो नंगी अंगुली का अपना सौंदर्य है। इतनी सरलता से चित्त चलता हो वस्तुओं के बीच में, तो अपरिग्रही चित्त है। भागा हुआ नहीं, वस्तुओं के बीच जीता हुआ। लेकिन रसमुक्त। उपयोग करता है, लेकिन आसक्त नहीं, विक्षिप्त नहीं, पागल नहीं है।
और वही व्यक्ति उपयोग कर पाता है, जो विक्षिप्त नहीं है। जो विक्षिप्त है, वह तो उपयोग कर ही नहीं पाता। उसका उपयोग तो वस्तु कर लेती है। वस्तु को सम्हालकर रखता है, सेवा करता है, झाड़ता-पोंछता है। और सपने देखता रहता है कि कभी पहनूंगा, कभी पहनूंगा। वह कभी कभी नहीं आता। और वह वस्तु हंसती होगी, अगर हंस सकती होगी।
अपरिग्रही चित्त, एकांत में जीने वाला चित्त ही प्रभु के सतत स्मरण में उतर सकता है। और सतत स्मरण में उतरने का अर्थ है, एक क्षण भी अगर पूर्ण स्मरण में उतर जाए, तो सतत स्मरण बन जाता है। भूला नहीं जा सकता; भूलने का उपाय नहीं है।
प्रभु की एक झलक मिल जाए, तो भूलने का उपाय नहीं है। एक क्षण भी द्वार खुल जाए और हम देख लें कि वह है, फिर कोई हर्ज नहीं है। हम कभी न देख पाएं, तो भी भीतर उसकी धुन बजती ही रहेगी। श्वास-श्वास जानती ही रहेगी, रोआं- रोआं पहचानता ही रहेगा कि वही है, वही है, वही है। पूरे जीवन की यह धुन बन जाएगी कि वही है। लेकिन एक क्षण भी!
कृष्ण कहते हैं, सतत, प्रतिक्षण, निरंतर, व्यवधान न हो जरा भी, तब मुझमें प्रतिष्ठा है।
एक क्षण भी हो जाए, तो निरंतर हो जाएगा। एक क्षण कैसे हो जाए? कहां जाएं हम उस क्षण को पाने के लिए? वह मोमेंट, वह क्षण कहां मिले कि एक बार दरस-परस हो जाए, एक बार आंख के सामने आ जाए उसकी छवि? एक बार हम स्वाद ले लें उसके आलिंगन का, एक क्षण के लिए--कहां जाएं? कहां खोजें?
स्वयं के ही अंदर। उसके अतिरिक्त कहीं कोई और उससे मिलन न होगा। अपने
ही भीतर। और अपने भीतर जाना हो, तो जो-जो बाहर है, उसके इलीमिनेशन के

अतिरिक्त और कोई विधि नहीं है। जो-जो बाहर है, यह मैं नहीं हूं, यह मैं नहीं हूं, इस बोध के अतिरिक्त भीतर जाने का कोई उपाय नहीं है।
सुनी है मैंने एक छोटी-सी कहानी, वह मैं आपसे कहूं, फिर मैं दूसरा सूत्र लूं।
एक झेन फकीर हुआ। उसके पास, उसके मंदिर में जहां वह ठहरता है, उसके वृक्ष के नीचे जहां वह विश्राम करता है, दूर-दूर से साधक आते हैं। दूर-दूर से साधक आते हैं, उससे पूछते हैं, ध्यान की कोई विधि। वह उन्हें ध्यान की विधियां बताता है। वह उन्हें कोई सूत्र देता है कि जाकर इस पर ध्यान करो। एक छोटा-सा बच्चा भी कभी-कभी उस वृक्ष के नीचे आकर बैठ जाता है। कभी उसके मंदिर में आ जाता है। बारह साल उसकी उम्र होगी। वह भी सुनता है बड़े ध्यान से बैठकर। बड़ी बातें! उसकी समझ में नहीं भी पड़ती हैं, पड़ती भी हैं। क्योंकि कुछ नहीं कहा जा सकता।
कई बार जिनको लगता है कि समझ में पड़ रहा है, उन्हें कुछ भी समझ नहीं पड़ता। और कई बार जिन्हें लगता है कि कुछ समझ में नहीं पड़ रहा है, उन्हें भी कुछ समझ में पड़ जाता है। बहुत बार ऐसा ही होता है कि जिसे लगता है, कुछ समझ में नहीं पड़ रहा है--इतना भी समझ में पड़ जाना कोई छोटी समझ नहीं है।
वह छोटा बच्चा आकर बैठता है। कोई साधक, कोई संन्यासी, कोई योगी आकर झेन फकीर से ध्यान के लिए कोई विषय, कोई आब्जेक्ट मांगता है। वह देखता रहता है। उसने देखा कि जब भी कोई साधक आता है, तो मंदिर का घंटा बजाता है, झुककर तीन बार नमस्कार करता है, झुककर विनम्र भाव से बैठता है; आदर से प्रश्न पूछता है, मंत्र लेता है, विदा होता है। फिर साधना करके, वापस लौटकर खबर देता है।
एक दिन सुबह वह बच्चा भी उठा, स्नान किया, फूल लिए हाथ में, आकर जोर से मंदिर का घंटा बजाया। झेन फकीर ने ऊपर आंख उठाकर देखा कि शायद कोई साधक आया। लेकिन देखा, वह छोटा बच्चा है, जो कभी-कभी आ जाता है। आकर तीन बार झुककर नमस्कार किया। फूल चरणों में रखे। हाथ जोड़कर कहा कि मुझे भी वह मार्ग बताएं, जिससे मैं ध्यान को उपलब्ध हो सकूं।
उस गुरु ने बहुत बड़े-बड़े साधकों को मार्ग बताया था, इस छोटे बच्चे को क्या मार्ग बताए! लेकिन विधि उसने पूरी कर दी थी, इनकार किया नहीं जा सकता था। ठीक व्यवस्था से घंटा बजाया था। हाथ जोड़कर नमस्कार किया था। चरणों में फूल रखे थे। विनम्र भाव से बैठकर प्रार्थना की थी कि आज्ञा दें, मैं क्या करूं कि ध्यान को उपलब्ध हो जाऊं, प्रभु का स्मरण आ जाए। उस छोटे-से बच्चे के लिए कौन-सी विधि बताई जाए!
उस गुरु ने कहा, तू एक काम कर, दोनों हाथ जोर से बजा। लड़के ने दोनों हाथ
की ताली बजाई। गुरु ने कहा कि ठीक। आवाज बिल्कुल ठीक बजी। ताली तू बजा लेता है। अब एक हाथ नीचे रख ले। अब एक ही हाथ से ताली बजा। उस बच्चे ने कहा, बहुत कठिन मालूम पड़ता है। एक हाथ से ताली कैसे बजाऊं? तो उस गुरु ने कहा, यही तेरे लिए मंत्र हुआ। अब इस पर तू ध्यान कर। और जब तुझे पता चल जाए कि एक हाथ से ताली कैसे बजेगी, तब तू आकर मुझे बता देना।
बच्चा गया। उस दिन उसने खाना भी नहीं खाया। वह वृक्ष के नीचे बैठकर सोचने लगा, एक हाथ की ताली कैसे बजेगी? बहुत सोचा, बहुत सोचा।
आप कहेंगे, कहां के पागलपन के सवाल को उसे दे दिया। सभी सवाल पागलपन
के हैं। कोई भी सवाल कभी सोचा होगा, इससे कम पागलपन का नहीं रहा होगा।
कोई सोच रहा है, जगत को किसने बनाया? क्या एक हाथ से ताली बजाने वाले सवाल से कोई बहुत बेहतर सवाल है! कोई सोच रहा है कि आत्मा कहां से आई? एक हाथ से ताली बजाने के सवाल से कोई ज्यादा अर्थपूर्ण सवाल है!
लेकिन उस बच्चे ने बड़े सदभाव से सोचा। सोचा, रात उसे ख्याल आया कि ठीक। मेंढक आवाज करते थे। उसने भी मेंढक की आवाज मुंह से की। और उसने कहा कि ठीक। यही आवाज होनी चाहिए एक हाथ की।
आकर सुबह घंटा बजाया। विनम्र भाव से बैठकर उसने आवाज की मुंह से, जैसे मेंढक टर्राते हों। और गुरु से कहा, देखिए, यही है न आवाज, जिसकी आप बात करते थे? गुरु ने कहा कि नहीं, यह तो पागल मेंढक की आवाज है। एक हाथ की ताली की आवाज!

दूसरे दिन फिर सोचकर आया; तीसरे दिन फिर सोचकर आया। कुछ-कुछ लाया, रोज-रोज लाया। यह है आवाज, यह है आवाज। गुरु रोज कहता गया, यह भी नहीं, यह भी नहीं, यह भी नहीं। वर्ष बीतने को पूरा हो गया। वह रोज खोजकर लाता रहा। कभी कहता कि झींगुर की आवाज, कभी कहता कि वृक्षों के बीच से गुजरती हुई हवा की आवाज। कभी कहता कि वृक्षों से गिरते हुए पत्तों की आवाज। कभी कहता कि वर्षा में पानी की आवाज छप्पर पर। बहुत आवाजें लाया, लेकिन सब आवाजें गुरु इनकार करता गया। कहा कि नहीं, यह भी नहीं, यह भी नहीं।
फिर उसने आना बंद कर दिया। फिर बहुत दिन गए वापस लौटा। घंटा बजाया। पैरों में फिर फूल रखे। हाथ जोड़कर चुपचाप पास बैठ गया। गुरु ने कहा, लाए कोई उत्तर? आवाज खोजी कोई? उसने सिर्फ आंखें उठाकर गुरु की तरफ देखा--मौन, चुप। गुरु ने कहा, ठीक है। यही है आवाज--मौन, चुप। गुरु ने कहा, यही है आवाज। तुझे पता चल गया, एक हाथ की आवाज कैसी होती है। अब तुझे और भी कुछ आगे खोज करना है?
उसने कहा, लेकिन अब आगे खोज करने को कुछ भी न बचा। एक-एक आवाज को, खोज को, आप इनकार करते गए, इनकार करते गए, इनकार करते गए। सब आवाजें गिरती गईं। फिर सिवाय मौन के कुछ भी न बचा। पिछले महीनेभर से मैं बिल्कुल मौन ही बैठा हूं। कोई आवाज ही नहीं सूझती; कोई शब्द ही नहीं आता; मौन ही मौन! और अब मुझे कुछ भी नहीं चाहिए। एक हाथ की आवाज जान पाया, नहीं जान पाया, मुझे पता नहीं। लेकिन इस मौन में मैंने जो देखा, जो जाना, शायद लोग उसी को परमात्मा कहते हैं।
एक-एक चीज को इनकार करते चले जाना पड़ेगा। किसी से भी शुरू करें। शरीर
से शुरू करें, तो जानना पड़ेगा कि शरीर नहीं है। भीतर जाएं, श्वास मिलेगी। जानना पड़ेगा, श्वास भी वह नहीं है। और भीतर जाएं, विचार मिलेंगे। जानना पड़ेगा, विचार भी वह नहीं है। और भीतर जाएं, वृत्तियां मिलेंगी। जानना पड़ेगा, वृत्तियां भी वह नहीं है। और उतरते जाएं, और उतरते जाएं। भाव मिलेंगे, जानें कि भाव भी वह नहीं है। उतरते जाएं गहरे-गहरे कुएं में!
एक घड़ी ऐसी आ जाएगी कि इनकार करने को कुछ भी न बचेगा, सन्नाटा और शून्य
रह जाएगा। आ गई अंतर-गुफा, जहां अब यह भी कहने को नहीं बचा कि यह भी नहीं है। वहीं, उसी क्षण, उसी क्षण वह विस्फोट हो जाता है, जिसमें प्रभु का अनुभव होता है। बस, वह अनुभव एक क्षण को हो जाए, फिर निरंतर श्वास-श्वास, रोएं-रोएं, उठते-बैठते, सोते-जागते वह गूंजने लगता है। तब है स्मरण निरंतर।
और कृष्ण कहते हैं, ऐसे निरंतर स्मरण को उपलब्ध व्यक्ति ही मुझमें प्रतिष्ठित होता है, प्रभु में प्रतिष्ठित होता है। या उलटा कहें तो भी ठीक कि ऐसे व्यक्ति में, ऐसे निराकार, शून्य हो गए व्यक्ति में, ऐसे सतत सुरति से भर गए व्यक्ति में प्रभु प्रतिष्ठित हो जाता है।

प्रश्नः भगवान श्री, पिछले दो श्लोकों में एक छोटी-सी पर विशेष बात रह
गई है। उसमें कहा गया है ध्यान के साधक के लिए--विशेष आसन, शुद्ध भूमि, सीधा शरीर, और नासिकाग्र दृष्टि और ब्रह्मचर्य व्रत। उसके बाद कहा गया है, भयरहित और अच्छी प्रकार शांत अंतःकरण वाला। भयरहित का साधक के लिए क्या अर्थ होगा, कृपया इसे स्पष्ट करें।

भयरहित और अच्छी प्रकार शांत चित्त वाला!
महत्वपूर्ण है यह, काफी महत्वपूर्ण है। क्योंकि भय जिसे है, वह परमात्मा में प्रवेश न कर पाएगा। क्यों? तो भय को थोड़ा समझ लेना पड़ेगा। भय है क्या? वस्तुतः भय का मूल आधार क्या है? भयभीत क्यों हैं हम? क्या है मूल कारण जिससे सारे भय का जन्म होता है?
बीमारी का भय है। दिवालिया हो जाने का भय है। इज्जत मिट जाने का भय है। हजार-हजार भय हैं। लेकिन भय तो गहरे में एक ही है, वह मृत्यु का भय है। बीमारी भी भयभीत करती है, क्योंकि बीमारी में मृत्यु का आंशिक दर्शन शुरू हो जाता है। गरीबी भयभीत करती है, क्योंकि गरीबी में भी मृत्यु का आंशिक दर्शन शुरू हो जाता है। अप्रतिष्ठा भयभीत करती है, क्योंकि अप्रतिष्ठा में भी मृत्यु का आंशिक अंश दिखाई पड़ने लगता है।

जहां-जहां भय है, वहां-वहां मृत्यु का कोई अंश दिखाई पड़ता है। प्रत्यक्ष न भी दिखाई पड़े, थोड़ा खोज करेंगे, तो दिखाई पड़ जाएगा कि मैं भयभीत क्यों हूं। कहीं न कहीं कुछ मुझमें मरता है, तो मैं भयभीत होता हूं। चाहे मेरा धन छूटता हो, तो धन के कारण जो सुरक्षा थी भविष्य में कि कल भी भोजन मिलेगा, मकान मिलेगा, मर नहीं जाऊंगा। धन छिनता है, तो कल खतरा खड़ा हो जाता है कि कल अगर भोजन न मिला तो? प्रतिष्ठा है; धन न हो पास में, तो भी आशा कर सकता हूं कि कल कोई साथ देगा, कल कोई सहयोग देगा। लेकिन प्रतिष्ठा भी खो जाए, तो डर लगता है कि कल इस बड़े जगत में कोई साथी-संगी न होगा, तो क्या होगा?
जहां भी भय है, वहां थोड़ी-सी भी खोज करेंगे, थोड़ा-सा खोजेंगे, तो स्किन डीप कुछ और कारण भला हो, लेकिन जरा-सी खरोंच के बाद गहरे में मृत्यु खड़ी हुई दिखाई पड़ेगी। मृत्यु ही भय है। और सब भय उसके ही हलके डोज हैं। उसकी ही हलकी मात्राएं हैं। मृत्यु का भय एकमात्र भय है।
कृष्ण कहते हैं कि अभय को उपलब्ध हो कोई, भयरहित हो कोई, तो ही ध्यान में गति है, तो ही समाधि में चरण पड़ेंगे। तो क्या बात है? यहां समाधि और ध्यान में भय को लाने की क्या जरूरत? यहां मौत का सवाल कहां है?
यहां है। मौत का सवाल है, महामृत्यु का सवाल है। क्योंकि साधारण मृत्यु में तो सिर्फ शरीर मिटता है, आप नहीं मिटते। सिर्फ वस्त्र बदलते हैं, आप नहीं बदलते। आप तो फिर, पुनः, पुनः-पुनः नए शरीर, नए वस्त्र धारण करते चले जाते हैं।
तो साधारण मृत्यु, जो जानते हैं, उनकी दृष्टि में मृत्यु नहीं, केवल शरीर का परिवर्तन है। गृह परिवर्तन है, नए घर में प्रवेश है, पुराने घर का त्याग है। लेकिन ध्यान में महामृत्यु घटित होती है। आप भी मरते हैं, शरीर ही नहीं मरता। आप भी मरते हैं, मैं भी मरता है। वह अहंकार और ईगो भी मरती है, मन मरता है।
स्वभावतः, जब शरीर के ही मरने में इतना भय लगता है, तो मन के मरने में कितना भय न लगता होगा! और इसलिए अभय हुए बिना कोई ध्यान में प्रवेश न कर सकेगा।
जैसा कृष्ण ने कहा भयरहित, ऐसा ही महावीर ने अभय को पहला सूत्र कहा है। अभय हुए बिना कोई ध्यान में न जा सकेगा। क्योंकि थोड़ी ही देर, थोड़ी ही भीतर गति होगी और पता चलेगा, यह तो मृत्यु घटने लगी।
ध्यान के अनुभव में मृत्यु का अनुभव आता ही है, अनिवार्य है। उससे कोई बचकर नहीं निकल सकता। जब आप ध्यान में गहरे उतरेंगे, तो वह घड़ी आ जाएगी जहां लगेगा, कहीं ऐसा तो न होगा कि मैं मर जाऊं। लौट चलूं वापस, यह किस उपद्रव में पड़ गया! वापस लौटो।
ध्यान से न मालूम कितने लोग वापस लौट आते हैं। सिर्फ भीतर वह जो मृत्यु का भय पकड़ता है, उसकी वजह से वापस लौट आते हैं। और मजा यह है कि वही क्षण है पार होने का। उसी क्षण में अगर आप निर्भय प्रवेश कर गए, तो आप समाधि में पहुंच जाएंगे। और अगर उससे आप वापस लौट आए, तो जहां आप थे, वहीं आ जाएंगे। और एक खतरा और ले आएंगे। वह यह कि अब ध्यान में जाने की हिम्मत भी न कर सकेंगे, क्योंकि वह मृत्यु का डर अब और गहरा और साफ हो जाएगा।
जब ध्यान में मृत्यु की प्रतीति होती है, तब आप अमृत के द्वार पर खड़े हैं। अगर भयभीत हो गए, तो द्वार से वापस लौट आए। और अगर प्रवेश कर गए, तो अमृत में प्रवेश कर गए। फिर कोई मृत्यु नहीं है।
मृत्यु में प्रवेश करके ही अमृत का अनुभव होता है। मिटकर ही जानना पड़ता है उसे, जो है। स्वयं को खोकर ही पाना पड़ता है उसे, जो सर्व है।
इसलिए ठीक है कृष्ण अगर कहें कि भयरहित चित्त से ही प्रवेश संभव है।
इधर मेरा रोज का अनुभव है। सैकड़ों व्यक्ति कितनी आतुरता और कितनी प्यास से ध्यान में प्रवेश करते हैं, लेकिन शीघ्र ही... । जो ज्यादा श्रम नहीं करते, उनको तो अड़चन नहीं आती, क्योंकि वे उस बिंदु तक भी नहीं पहुंचते, जहां मृत्यु का अनुभव हो। लेकिन जो जरा ज्यादा श्रम करते हैं, वे उस बिंदु पर पहुंच जाते हैं, जहां मृत्यु दिखाई पड़ने लगती है कि मैं मरा, मैं गया। अब अगर एक कदम आगे बढ़ता हूं भीतर, तो अब मैं नहीं बचूंगा। सब टूट-फूटकर बिखर जाएगा। फिर लौट नहीं सकूंगा। यह प्रतीति इतनी प्रगाढ़ होती है,

यह पूरे प्राणों को इस भांति पकड़ लेती है कि साधक भागकर बाहर आ जाता है। यह रोज घटता है।
इसलिए ध्यान में जाने वाले साधक को, जो उसे ध्यान में जाने का मार्ग-निर्देश कर रहा है, उचित है कि कहता रहे कि भय को छोड़ देना; मृत्यु घटित होगी। वह क्षण आएगा, जब भय पकड़ेगा। वह क्षण आएगा, जब सब भीतर ऐसा लगेगा कि खो गया; सब खो रहा है। डूब रहा हूं सागर में, अतल गहराई में; लौटने का अब शायद कोई उपाय न होगा।
वह क्षण आएगा ही। यह अगर पूर्व-सूचना दे दी गई हो, तो साधक जब पहुंचता
है उस क्षण में, तो निर्भय हो, साहस बांध, छलांग लगा पता है। अगर यह पूर्व-सूचना न दी गई हो, तो बहुत संभावना यही है कि साधक वापस लौट आए, घबड़ा जाए। लौट आए साधक को बड़ी तकलीफ हो जाती है। तकलीफ तो यह हो जाती है बड़ी कि
अब वह ध्यान की तरफ जाने की हिम्मत अब न जुटा पाएगा। अब यह स्मरण उसका सदा पीछा करेगा। अब वह ध्यान की बात न सोच पाएगा।
और भी एक खतरा है, वह भी मैं आपसे कह दूं, कि जो साधक इस भांति मृत्यु
से भयभीत होकर लौट आता है, बहुत संभावना है, सौ में कम से कम तीस प्रतिशत लोगों को, कि वे थोड़े-से विक्षिप्त हो जाएं। क्योंकि जो उन्होंने देखा है, मिटने का जो अनुभव उनके निकट आया, वह उनके सारे स्नायुओं को कंपा जाता है; उनके हाथ-पैर कंपने लगेंगे, उनका चित्त भय से सदा घबड़ाया हुआ रहने लगेगा। वे नींद लेने तक में डरने लगेंगे। उनका डर बढ़ जाएगा।
इसलिए ध्यान में कोई भी जाए, तो यह जानकर जाए, ठीक से परिचित होकर जाए
कि मृत्यु की प्रतीति होगी। भय कुछ भी नहीं है। क्योंकि वह मृत्यु की प्रतीति सौभाग्य है। वह उसको ही होती है, जो ध्यान के बिल्कुल मंदिर के द्वार पर चढ़कर पहुंच जाता है--उसको ही, उसके पहले नहीं होती। वह आखिरी प्रतीति है मन की।
मन मरने के पहले आखिरी बार आपको घबड़ाता है कि मर जाओगे, लौट चलो। अगर
आप न घबड़ाए, तो मन मर जाता है, आप बच जाते हैं। आपके मरने का कोई उपाय नहीं है। आप नहीं मर सकते।
लेकिन अभी तक आपने समझा है कि मैं मन हूं। इसलिए जब मन कहता है, मर जाऊंगा! तो आप समझते हैं, मैं मर जाऊंगा। वह आपकी भ्रांति स्वाभाविक है। स्वाभाविक, लेकिन सही नहीं। स्वाभाविक, लेकिन सत्य नहीं। इसलिए जो भी ध्यान का निर्देश करेगा, जैसा कृष्ण अर्जुन को निर्देश कर रहे हैं, तो वे उन सारी बातों का निर्देश करेंगे ही, जिन-जिन की जरूरत पड़ेगी।
तो एक, निर्भय। और ठीक रूप से शांत हुए मन वाला। ठीक रूप से शांत हुए
मन वाले का क्या अर्थ है? इस ठीक से शांत मन वाला, इस शब्द से, इन शब्दों के समूह से बहुत-सी गलत व्याख्याएं प्रचलित हुई हैं।
एक तो, जब कृष्ण कहते हैं, ठीक से शांत हुए मन वाला, तो इसके दो मतलब साफ हो गए कि ऐसी शांति भी हो सकती है, जो ठीक से शांति न हो। गलत किस्म की शांति भी हो सकती है। इसका मतलब साफ है। अशांति तो गलत होती ही है; ऐसी शांतियां भी हैं, जो गलत होती हैं। इसलिए तो ठीक से शांत, इस शर्त को लगाना पड़ा है।
इसलिए आप सब तरह के शांत हुए लोग ध्यान में प्रवेश कर जाएंगे, इस भ्रांति में मत पड़ना। गलत ढंग से शांत हुए लोग भी हो सकते हैं। कौन से ढंग से आदमी गलत रूप से शांत हो जाता है?
ऐसी बहुत-सी विधियां प्रचलित हैं, जिनसे आपको शांति का भ्रम पैदा हो सकता है। वह गलत रूप की शांति है। जैसे इस तरह की हिप्नोटिज्म, सम्मोहन की विधियां हैं, जिनसे आपको प्रतीति हो सकती है कि आप शांत हैं।
अगर आप कुवे से पूछें, एमाइल कुवे से। वे पश्चिम के एक बड़े हिप्नोटिस्ट विचारक हैं। तो वे कहते हैं, शांत होने के लिए और कुछ करना जरूरी नहीं है। सिर्फ अपने मन में यह दोहराते रहें कि मैं शांत हो रहा हूं, मैं शांत हो रहा हूं, मैं शांत हो रहा हूं, मैं शांत हो रहा हूं। इसे दोहराते रहें। गो आन रिपीटिंग इट। रात सोते वक्त दोहराते रहें, मैं शांत हो रहा हूं, मैं शांत हो रहा हूं, शांत हो रहा हूं। दोहराते-दोहराते सो जाएं। कब नींद आ जाए, पता न चले; आप दोहराते रहें, मैं शांत हो रहा हूं। आप मत रुकें। नींद आ जाए, रोक दे, बात अलग। आप दोहराते चले जाएं।

अगर रात सोते वक्त आप दोहराते रहें, मैं शांत हो रहा हूं, मैं शांत हो रहा हूं, तो नींद का क्षण जब आएगा, तो आपका चेतन मन तो सो जाएगा, वह जो दोहरा रहा था, मैं शांत हो रहा हूं, मैं शांत हो रहा हूं। लेकिन मैं शांत हो रहा हूं, इसकी प्रतिध्वनि अचेतन में गूंजती रह जाएगी। वह रातभर आपके भीतर गूंजती रहेगी--मैं शांत हो रहा हूं, मैं शांत हो रहा हूं।
कुवे कहते हैं, सुबह जब नींद खुले, तो पहली बात मन में दोहराना, मैं शांत हो रहा हूं, मैं शांत हो रहा हूं, मैं शांत हो रहा हूं। जब भी स्मरण आ जाए, दोहराना, मैं शांत हो रहा हूं।
इस भांति अगर आप दोहराते रहें, तो आप अपने को आटो-हिप्नोटाइज कर लेंगे। आपको अशांति रहेगी, लेकिन पता नहीं चलेगी। आपको लगेगा, मैं शांत हो गया हूं। यह स्वयं को दिया गया धोखा है। यह शांति झूठी है। यह शांति केवल भ्रम है।
लेकिन यह हो जाता है। मन की यह क्षमता है कि मन अपने को धोखा दे सकता है। मन की बड़ी क्षमता सेल्फ डिसेप्शन है। खुद को धोखा देना मन की बड़ी क्षमता है। अगर आप दोहराए चले जाएं, तो यह हो जाता है।
अब तो मनोवैज्ञानिक इसको बहुत ठीक से स्वीकार करते हैं कि यह हो जाता है। जिन बच्चों को स्कूल का शिक्षक कहता चला जाता है, तुम गधे हो, तुम गधे हो। और एक शिक्षक ने कहा, तो दूसरा शिक्षक दूसरी क्लास में फिर धारा को पकड़ लेता है कि तुम गधे हो। और एक बच्चा सुनता है। वह भी मन में दोहराता है, मैं गधा हूं। दूसरे लड़के भी उसकी तरफ देखते हैं कि तुम गधे हो। घर जाता है, बाप भी कहता है कि तुम गधे हो। जहां जाता है, वहां पता चलता है कि सिर्फ कान की कमी है, बाकी मैं गधा हूं! और जब इतने सब लोग कहते हैं, तो इन सबको गलत करना भी ठीक नहीं मालूम पड़ता। मन फिर इनको सही करने के उपाय खोजने लगता है कि सब लोग सही ही कहते होंगे। इतने लोग जब कहते हैं, तो इनको गलत कहना भी तो ठीक नहीं है।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि आज दुनिया में जितने अप्रौढ़ चित्त दिखाई पड़ते हैं, उनका जिम्मेवार शिक्षक, शिक्षा की व्यवस्था है, जहां इनको हिप्नोटाइज किया जा रहा है कि तुम ऐसे हो, तुम ऐसे हो, तुम ऐसे हो। कहा जा रहा है; सर्टिफिकेट दिए जा रहे हैं; अखबारों में नाम दिए जा रहे हैं; सिद्ध हो जाता है कि वह आदमी ऐसा है।
आपने कभी ख्याल किया है, बीमार पड़े हों बिस्तर पर--सभी कभी न कभी पड़ते हैं--आपने कभी ख्याल किया है कि बीमार पड़े हों, बड़ी तकलीफ मालूम पड़ती है, बड़ी बेचैनी है, बड़ी भारी बीमारी है। डाक्टर आया। डाक्टर के बूट बजे, उसकी शक्ल दिखाई दी। उसका स्टेथस्कोप! थोड़ी बीमारी एकदम उसको देखकर कम हो गई! अभी उसने दवा नहीं दी है। डाक्टर ने थोड़ा ठकठकाया, इधर-उधर ठोंका-पीटा। उसने अपना स्पेशलाइजेशन दिखाया कि हां! फिर उसने कहा कि कोई बात नहीं, बहुत साधारण है, कुछ खास नहीं है। दो दिन की दवा में ठीक हो जाएंगे। फिर उसने जितनी बड़ी फीस ली, उतना ही अर्थ मालूम पड़ा कि यह बात ठीक होगी ही। आपने ख्याल किया है, डाक्टर की दवा और उसका प्रिस्क्रिप्शन आने में
तो थोड़ी देर लगती है, लेकिन मरीज ठीक होना शुरू हो जाता है। मन ने अपने को सुझाव दिया कि जब इतना बड़ा डाक्टर कहता है, तो ठीक हैं ही। अगर आप बीमार पड़े हैं और आपको पता चला कि डाक्टर ने ऐसा कहा है कि बिल्कुल ठीक हैं, कोई खास बीमारी नहीं है, तो तत्काल आपके भीतर बीमारी क्षीण होने का अनुभव आपको हुआ होगा--तत्काल! एक ताजगी आ गई है। बुखार कम हो गया है। बीमारी ठीक होती मालूम पड़ती है। अभी कोई दवा नहीं दी गई है, तो यह परिणाम कैसे हुआ है? पश्चिम में डाक्टर एक नई दवा पर काम करते हैं, उस दवा को कहते हैं, धोखे की दवा, प्लेसबो। बड़े हैरान हुए हैं। दस मरीज हैं, दसों एक बीमारी के मरीज हैं। पांच को दवा दी है और पांच को सिर्फ पानी दिया है। बड़ी मुश्किल है। दवा वाले भी तीन ठीक हो गए, पानी वाले भी तीन ठीक हो गए! अब दवा को क्या कहें? यह दवा थी नहीं; यह सिर्फ पानी था। लेकिन दवा वाले भी, पांच में से तीन ठीक हो गए हैं और ये भी पांच में से तीन ठीक हो गए हैं, पानी वाले! अब क्या कहें?
मनोविज्ञान तो कहता है कि अब तक की जितनी दवाएं हैं दुनिया में, वे सिर्फ सजेशन का काम करती हैं। असली परिणाम सजेशन का है, सुझाव का है। असली

परिणाम दवा के तत्व का नहीं है। इसीलिए तो इतनी पैथी चलती हैं। इतनी पैथी चल सकती हैं? पागलपन की बात है। बीमारी अगर होगी, तो इतनी पैथी चल सकती हैं वैज्ञानिक अर्थों में?
होम्योपैथी भी चलती है! और होम्योपैथी के नाम पर करीब-करीब शक्कर की गोलियां चलती हैं। कम से कम हिंदुस्तान में बनी तो बिल्कुल शक्कर की गोली ही होती हैं। शक्कर भी शुद्ध होगी, इसमें संदेह है। बायो-केमिस्ट्री चलती है। आठ तरह की दवाओं से सब बीमारियां ठीक हो जाती हैं! नेचरोपैथी चलती है; दवा वगैरह की कोई जरूरत नहीं है! पेट पर पानी की पट्टी या मिट्टी की पट्टी से भी बीमार ठीक होते हैं! जंत्र, मंत्र, तंत्र--सब चलता है। जादू-टोना चलता है। सब चलता है। क्या, मामला क्या है? और आदमी सबसे ठीक होता है! आदमी के ठीक होने के ढंग बड़े अजीब हैं। शक इस बात का है कि आदमी की अधिक बीमारियां भी उसके सुझाव होती हैं, कि उसने माना है कि वह बीमार हुआ है। और आदमी का अधिकतर स्वास्थ्य भी उसका सुझाव होता है कि उसने माना है कि वह ठीक हुआ है। बीमारियां भी बहुत मायनों में झूठी होती हैं, मन का खेल। और उसके स्वास्थ्य के परिणाम भी झूठे होते हैं, मन का खेल। लेकिन मन आटो- सजेस्टिबल है, अपने को सुझाव दे सकता है।
उस तरह की शांति झूठी है, जो कुवे की पद्धति से आती है। जो कहती है कि तुम शांत हो रहे हो। इसको माने चले जाओ, कहे चले जाओ, दोहराए चले जाओ--शांत हो जाओगे।
जरूर शांत हो जाएंगे। लेकिन वैसी शांति सिर्फ सतह पर दिया गया धोखा है। वह शांति वैसी है, जैसे नाली के ऊपर हमने फूलों को बिछा दिया हो, तो क्षणभर को धोखा हो जाए। हां, किसी नेता की पालकी निकलती हो सड़क से, तो काफी है। चलेगा। क्षणभर को धोखा हो जाए, कोई नाली नहीं है, फूल बिछे हैं। लेकिन घड़ीभर बाद फूल कुम्हला जाएंगे, नाली की दुर्गंध फूलों के पार आकर फैलने लगेगी। थोड़ी देर में नाली फूलों को डुबा लेगी।
झूठी शांति हो सकती है--सुझाव से, सम्मोहन से। और सम्मोहन की हजार तरह
की विधियां दुनिया में प्रचलित हैं, जिनसे आदमी अपने को मान ले सकता है कि मैं शांत हूं। और भी रास्ते हैं। और भी रास्ते हैं, जिनसे आदमी अपने को शांत करने के ख्याल में डाल सकता है। लेकिन उन रास्तों से शांत हुआ आदमी भीतर नहीं जा सकेगा। जबर्दस्ती भी अपने को शांत कर सकते हैं। जबर्दस्ती भी अपने को शांत कर सकते हैं! अगर अपने से लड़े ही चले जाएं, और जबर्दस्ती अपने ऊपर किए चले जाएं सब तरह की, तो अपने को शांत कर सकते हैं।
लेकिन वह शांति होगी बस, जबर्दस्ती की शांति। भीतर उबलता हुआ तूफान होगा। भीतर जलती हुई आग होगी। ठीक ज्वालामुखी भीतर उबलता रहेगा और ऊपर सब शांत मालूम पड़ेगा।
ऐसे शांत बहुत लोग हैं, जो ऊपर से शांत दिखाई पड़ते हैं। लेकिन इनके भीतर बहुत ज्वालामुखी है, उबलते रहते हैं। हां, ऊपर से उन्होंने एक व्यवस्था कर ली है। जबर्दस्ती की एक डिसिप्लिन, एक आउटर डिसिप्लिन, एक बाह्य अनुशासन अपने ऊपर थोप लिया है। ठीक समय पर सोकर उठते हैं। ठीक भोजन लेते हैं। ठीक बात जो बोलनी चाहिए, बोलते हैं। ठीक शब्द जो पढ़ने चाहिए, पढ़ते हैं। ठीक समय सो जाते हैं। यंत्रवत घूमते हैं। गलत का प्रभाव न पड़ जाए, उससे बचते हैं। जिस प्रभाव में उनको जीना है, शांति में जीना है, उसका धुआं अपने चारों तरफ पैदा रखते हैं। तो फिर एक-एक सतह ऊपर की पर्त शांत दिखाई पड़ने लगती है और भीतर सब अशांत बना रहता है।
कृष्ण कहते हैं सशर्त बात, ठीक रूप से हो गया है मन शांत जिसका।
किसका होता है ठीक रूप से फिर शांत मन? ठीक रूप से शांत उसका होता है,
जो शांति की चेष्टा ही नहीं करता, वरन ठीक इसके विपरीत अशांति को समझने की चेष्टा करता है। इसको फर्क समझ लें आप। झूठे ढंग से शांत होता है वह मन, जो अशांति के कारणों की तो फिक्र ही नहीं करता कि मैं अशांत क्यों हूं, शांत करने की फिक्र करता चला जाता है। भीतर अशांति के कारण बने रहते हैं पूर्ववत, भीतर अशांति का सब कुछ जाल, व्यवस्था मौजूद रहती है पूर्ववत, और वह ऊपर से शांत करने का इंतजाम करता चला जाता है।
जो व्यक्ति अपने भीतर की अशांति के ऊपर शांति को आरोपित करता है, वह गलत ढंग की शांति को उपलब्ध होता है। वह ध्यान में नहीं ले जाने वाली है।

फिर ठीक ढंग की शांति का अर्थ हुआ, जो व्यक्ति अपने भीतर के अशांति के कारणों को समझता है।
ध्यान रहे, ठीक ढंग की शांति शांति लाने से आती ही नहीं। ठीक ढंग की शांति अशांति के कारणों को समझकर, अशांति को निमंत्रण देने के हमने जो इंतजाम किए हैं, उनको समझकर आती है।
आप अशांत क्यों हैं, इसे समझें। यही बुनियादी बात है। शांत कैसे हों, इसे मत समझें। यह बुनियादी बात नहीं है। अशांत क्यों हैं?
अशांति के कारण दिखाई पड़ेंगे; हैं ही। हम ही अपने को अशांत करते हैं। कारण हैं भीतर हमारे। अशांति के कारणों को समझें। और जब अशांति के कारण बहुत स्पष्ट दिखाई पड़ेंगे, तो आपके हाथ में है। अब आप अशांत होना चाहें, तो मजे से हों, कुशलता से हों, ढंग से हों, पूरी व्यवस्था से हों; न होना चाहें, तो कोई दूसरा आपको कह नहीं रहा है कि आप अशांत हों।
अशांति के कारण हैं। लेकिन हम ऐसे लोग हैं कि एक तरफ शांत होने की व्यवस्था करते हैं, दूसरी तरफ अशांति के बीजों को पानी डालते चले जाते हैं!
अब एक आदमी कहता है कि मुझे शांत होना है, लेकिन अहंकार का पोषण किए चला जाता है। अब उसको कोई कहे कि वह शांत होगा कैसे! एक तरफ कहता है, शांत होना है, दूसरी तरफ परिग्रह के लिए पागल हुआ चला जाता है कि एक चीज और बढ़ जाए घर में तो स्वर्ग उतर आएगा! अब वह एक तरफ शांत होना चाहता है! शायद वह इसीलिए शांत होना चाहता है कि जो फर्नीचर अभी नहीं उपलब्ध कर पाता है, शायद शांत होकर उपलब्ध कर ले। जो दुकान अभी ठीक से नहीं चलती, शायद शांत होने से ठीक चलने लगे। शांत भी वह इसीलिए शायद होना चाहता है कि अशांति का जो इंतजाम कर रहा है, उसमें जरा और कुशलता और व्यवस्था आ जाए।
अभी एक युवक मेरे पास आया। उसने कहा कि मन बहुत अशांत है, परीक्षा पास है। मेडिकल कालेज का विद्यार्थी है। परीक्षा पास है, मन बहुत अशांत है। कोई रास्ता बताएं कि मेरा मन शांत हो जाए। मैंने कहा, शांत करना किसलिए चाहते हो? करोगे क्या शांत करके? उसने कहा, करना किसलिए चाहता हूं? आप भी क्या बात पूछते हैं! मुझे गोल्ड मेडल लाना है परीक्षा में। तो शांत हुए बिना बहुत मुश्किल है।
मैंने कहा कि तू मुझे माफ कर, नहीं पीछे मुझे बदनाम करेगा कि मुझसे पूछा, मैंने रास्ता बताया और तू शांत नहीं हो पाया! क्योंकि गोल्ड मेडल जिसे लाना है, वह अशांति का तो सब आरोपण किए चला जा रहा है; अशांति का कारण थोपता चला जा रहा है। मेरा अहंकार दूसरों के अहंकार के सामने स्वर्ण-मंडित दिखाई पड़े। मैं सबके आगे खड़ा हो जाऊं। यही तो अशांति की जड़ है। और तू शांत होना चाहता है इसीलिए, ताकि सबके पहले खड़ा हो जाए! तू उलटी बातें कर रहा है। अगर तुझे शांत होना है, तो पहले तो तू यह समझ, अशांत तू कब से हुआ है!
उसने कहा कि आप ठीक ही कहते हैं, जब से यह गोल्ड मेडल मेरे दिमाग में चढ़ा है, तभी से मैं अशांत हूं। पहले मैं ऐसा अशांत नहीं था। पिछले वर्ष बड़ी मुश्किल हो गई कि मैं फर्स्ट क्लास आ गया। उसके पहले तो मैं कभी फर्स्ट क्लास आया नहीं था। गोल्ड मेडल कभी मेरे सिर ने न पकड़ा था। पिछले साल गड़बड़ हो गई। तब से मैं बिल्कुल अशांत हूं। न नींद है, न चैन है। गोल्ड मेडल दिखाई पड़ता है। वह नहीं आया, तो क्या होगा! कोई शांति की तरकीब बता दें कि मैं शांत हो जाऊं, तो यह गोल्ड मेडल--कम से कम इस सालभर शांत रह जाऊं, बस! अब यह आदमी जो पूछ रहा है, यह हम सब का यही पूछना है। हम शांत इसीलिए होना चाहते हैं, ताकि अशांति की बगिया को ठीक से पल्लवित कर सकें। बहुत मजेदार है आदमी का मन। तो फिर शांति झूठी ही होगी। फिर ऊपर से छिड़कने वाली शांति होगी। भीतर तो कुछ होने वाला नहीं है।
इसलिए कृष्ण जब कहते हैं, ठीक रूप से शांत हो गया मन जिसका, तो वे कहते हैं कि जिसने अशांत होने के कारण छोड़ दिए हैं।
और अशांत होने के कारण आपने छोड़े कि मन ऐसे ही शांत हो जाता है, जैसे कोई वृक्ष की शाखा को खींचकर खड़ा हो जाए हाथ से, और रास्ते से आप गुजरें और आपसे पूछे कि मुझे इस वृक्ष की शाखा को इसकी जगह वापस पहुंचाना है, क्या करूं? तो आप कहें कि कृपा करके वृक्ष की शाखा को उसकी जगह पहुंचाने का आप

कोई इंतजाम न करें, सिर्फ इसे पकड़कर मत खड़े रहें, इसे छोड़ दें। यह अपने से अपनी जगह पहुंच जाएगी। वृक्ष काफी समर्थ है। आप कृपा करके इसे छोड़ें। आप पहुंचाने का कोई उपाय न करें। वृक्ष को आपकी सहायता की कोई भी जरूरत नहीं है। आप सिर्फ छोड़ें। लेकिन वह आदमी कहे कि अगर मैं छोड़ दूं और यह अपनी जगह न पहुंच पाए, तो बड़ी कठिनाई होगी। मैं इसीलिए पकड़े खड़ा हूं कि जब मुझे ठीक विधि मिल जाए, तो इसकी जगह इसको पहुंचाकर अपने घर जाऊं!
वह आदमी ठीक कहता मालूम पड़ता है। वह कहता है कि मैं इसीलिए पकड़े खड़ा हूं कि कहीं शाखा भटक न जाए इधर-उधर। तो जब मुझे कोई ठीक विधि बताने वाला आदमी मिल जाएगा, कोई सदगुरु, तो मैं इसे इसकी जगह पहुंचाकर अपने घर चला जाऊंगा!
कृपा करें, उससे कहें कि तू हाथ छोड़ दे इस शाखा का, यह अपनी जगह पहुंच जाएगी। यह तेरी वजह से परेशानी में है और अटकी है। तू छोड़! यह अपने आप चली जाएगी।
आपने कभी देखा है, शाखा जब छोड़ दें आप हाथ से, तो एकदम अपनी जगह पर नहीं चली जाती। कई बार डोलती है। पहले लंबा डोल लेती है, फिर छोटा, फिर और छोटा, फिर और छोटा, फिर और छोटा। फिर कंपती रहती है। फिर कंपते-कंपते शांत हो जाती है। क्यों? क्योंकि आपने खींचकर उसके साथ जो कशमकश की, और आपने जो इतनी शक्ति खींचकर लगाई, उसको उसे फेंकना पड़ता है, थ्रोइंग आउट। उस शक्ति को वह बाहर फेंकती है, छिड़कती है। नहीं तो वह अपनी जगह नहीं पहुंच पाएगी, जब तक आपके हाथ से दी गई शक्ति को फेंक न दे। उसे फेंकने के लिए वह कंपती है, डोलती है, उसे बाहर निकालती है, फिर अपनी जगह वापस पहुंच जाती है।
ठीक ऐसे ही चित्त अशांति के कारणों से अटका है। आप कहते हैं, शांत कैसे हो जाएं? तो गलत पूछते हैं। आप इतना ही पूछें कि अशांत कैसे हो गए? और कृपा करके जहां-जहां अशांति दिखाई पड़े, उस-उस कारण को छोड़ दें। चित्त अपने आप थोड़ा कंपेगा, डोलेगा। कम डोलेगा, कम डोलेगा, वापस अपनी जगह शांत हो जाएगा। और जब चित्त सब अशांति के कारणों से छूटकर अपनी जगह पहुंच जाता है, तो अपनी जगह पहुंच गए चित्त का नाम ही शांति है। स्व-स्थान पर पहुंच गया चित्त शांति है।
कहां-कहां आपने अटकाया है चित्त को, वहां-वहां से हटा दें। हटा दें, अर्थात न अटकाएं, बस। हटाने के लिए कुछ और आपको अलग से करने की जरूरत नहीं है, सिर्फ न अटकाएं। व्यक्तियों से अटकाया है, वस्तुओं से अटकाया है, अहंकार से बांधा है, यश, सम्मान--किससे बांधा है? कहां से अशांति पकड़ रही है? उसे वहां से हट जाने दें। चित्त शांत हो जाएगा। और तब कृष्ण जो कहते हैं, वह समझ में आएगा--ठीक रूप से शांत हुआ चित्त।
ठीक रूप से शांत हुआ चित्त वह है, जिसके भीतर अशांति के कोई कारण न रहे--तब। अन्यथा आप जो भी करेंगे, वह सब गैर-ठीक रूप से हुई शांति होगी। और उस शांति से कोई द्वार समाधि का नहीं खुलता। वह अंतर-गुहा के द्वार ठीक शांति से ही गुजरते हैं।
ये दो बातें ख्याल में रखेंगे, तो अंतर-गुहा के पास पहुंचने में निरंतर आसानी होती चली जाती है।
एक पांच मिनट और रुकेंगे। संन्यासी कीर्तन करेंगे, उसमें साथ दें।
शब्द सुने, बुद्धि की थोड़ी बात की। अब थोड़ी अबुद्धि की, बुद्धिहीन थोड़ी बात कर लें।

गीता दर्शन, भाग तीन
गीता दर्शन अध्याय 6
आठवां प्रवचन

योगाभ्यास--गलत को काटने के लिए

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन।। 16।।
युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।। 17।।
परंतु हे अर्जुन, यह योग न तो बहुत खाने वाले का सिद्ध होता है और न बिल्कुल न खाने वाले का तथा न अति शयन करने के स्वभाव वाले का और न अत्यंत जागने वाले का ही सिद्ध होता है।
यह दुखों का नाश करने वाला योग तो यथायोग्य आहार और विहार करने वाले
का तथा कर्मों में यथायोग्य चेष्टा करने वाले का और यथायोग्य शयन करने तथा जागने वाले का ही सिद्ध होता है।

समत्व-योग की और एक दिशा का विवेचन कृष्ण करते हैं। कहते हैं वे, अति-- चाहे निद्रा में, चाहे भोजन में, चाहे जागरण में--समता लाने में बाधा है। किसी भी बात की अति, व्यक्तित्व को असंतुलित कर जाती है, अनबैलेंस्ड कर जाती है।
प्रत्येक वस्तु का एक अनुपात है; उस अनुपात से कम या ज्यादा हो, तो व्यक्ति को नुकसान पहुंचने शुरू हो जाते हैं। दो-तीन बातें ख्याल में ले लेनी चाहिए।
एक, आधारभूत। व्यक्ति एक बहुत जटिल व्यवस्था है, बहुत कांप्लेक्स युनिटी है। व्यक्ति का व्यक्तित्व कितना जटिल है, इसका हमें ख्याल भी नहीं होता। इसीलिए प्रकृति ख्याल भी नहीं देती, क्योंकि उतनी जटिलता को जानकर जीना कठिन हो जाएगा।
एक छोटा-सा व्यक्ति उतना ही जटिल है, जितना यह पूरा ब्रह्मांड। उसकी जटिलता में कोई कमी नहीं है। और एक लिहाज से ब्रह्मांड से भी ज्यादा जटिल हो जाता है, क्योंकि विस्तार बहुत कम है व्यक्ति का और जटिलता ब्रह्मांड जैसी है। एक साधारण से शरीर में सात करोड़ जीवाणु हैं। आप एक बड़ी बस्ती हैं, जितनी बड़ी कोई बस्ती पृथ्वी पर नहीं है। टोकियो की आबादी एक करोड़ है। अगर टोकियो सात गुना हो जाए, तो जितने मनुष्य टोकियो में होंगे, उतने जीवकोश एक-एक व्यक्ति में हैं।
सात करोड़ जीवकोशों की एक बड़ी बस्ती हैं आप। इसीलिए सांख्य ने, योग ने आपको जो नाम दिया है, वह दिया है, पुरुष। पुरुष का अर्थ है, एक बहुत बड़ी पुरी के बीच रहते हैं आप, एक बहुत बड़े नगर के बीच। आप खुद एक बड़े नगर हैं, एक बड़ा पुर। उसके बीच आप जो हैं, उसको पुरुष कहा है। इसीलिए कहा है पुरुष कि आप छोटी-मोटी घटना नहीं हैं; एक महानगरी आपके भीतर जी रही है।
एक छोटे-से मस्तिष्क में कोई तीन अरब स्नायु तंतु हैं। एक छोटा-सा जीवकोश भी कोई सरल घटना नहीं है; अति जटिल घटना है। ये जो सात करोड़ जीवकोश शरीर में हैं, उनमें एक जीवकोश भी अति कठिन घटना है। अभी तक वैज्ञानिक--अभी तक--उसे समझने में समर्थ नहीं थे। अब जाकर उसकी मौलिक रचना को समझने में समर्थ हो पाए हैं। अब जाकर पता चला है कि उस छोटे से जीवकोश, जिसके सात करोड़ संबंधियों से आप निर्मित होते हैं, उसकी रासायनिक प्रक्रिया क्या है।
यह सारा का सारा जो इतना बड़ा व्यवस्था का जाल है आपका, इस व्यवस्था में एक संगीत, एक लयबद्धता, एकतानता, एक हार्मनी अगर न हो, तो आप भीतर प्रवेश न कर पाएंगे। अगर यह पूरा का पूरा आपका जो पुर है, आपकी जो महानगरी है शरीर की, मन की, अगर यह अव्यवस्थित, केआटिक, अराजक है, अगर यह पूरी की पूरी नगरी विक्षिप्त है, तो आप भीतर प्रवेश न कर पाएंगे।
आपके भीतर प्रवेश के लिए जरूरी है कि यह पूरा नगर संगीतबद्ध, लयबद्ध, शांत, मौन, प्रफुल्लित, आनंदित हो, तो आप इसमें भीतर आसानी से प्रवेश कर

पाएंगे। अन्यथा बहुत छोटी-सी चीज आपको बाहर अटका देगी--बहुत छोटी-सी चीज। और अटका देती है इसलिए भी कि चेतना का स्वभाव ही यही है कि वह आपके शरीर में कहां कोई दुर्घटना हो रही है, उसकी खबर देती रहे।
तो अगर आपके शरीर में कहीं भी कोई दुर्घटना हो रही है, तो चेतना उस दुर्घटना में उलझी रहेगी। वह इमरजेंसी, तात्कालिक जरूरत है उसकी, आपातकालीन जरूरत है कि सारे शरीर को भूल जाएगी और जहां पीड़ा है, अराजकता है, लय टूट गई है, वहां ध्यान अटक जाएगा।
छोटा-सा कांटा पैर में गड़ गया, तो सारी चेतना कांटे की तरफ दौड़ने लगती है। छोटा-सा कांटा! बड़ी ताकत उसकी नहीं है, लेकिन उस छोटे-से कांटे की बहुत छोटी-सी नोक भी आपके भीतर सैकड़ों जीवकोशों को पीड़ा में डाल देती है और तब चेतना उस तरफ दौड़ने लगती है। शरीर का कोई भी हिस्सा अगर जरा-सा भी रुग्ण है, तो चेतना का अंतर्गमन कठिन हो जाएगा। चेतना उस रुग्ण हिस्से पर अटक जाएगी।
अगर ठीक से समझें, तो हम ऐसा कह सकते हैं कि स्वास्थ्य का अर्थ ही यही होता है कि आपकी चेतना को शरीर में कहीं भी अटकने की जरूरत न हो।
आपको सिर का तभी पता चलता है, जब सिर में भार हो, पीड़ा हो, दर्द हो।
अन्यथा पता नहीं चलता। आप बिना सिर के जीते हैं, जब तक दर्द न हो। अगर ठीक से समझें, तो हेडेक ही हेड है। उसके बिना आपको पता नहीं चलता सिर का।
सिरदर्द हो, तो ही पता चलता है। पेट में तकलीफ हो, तो पेट का पता चलता है।
हाथ में पीड़ा हो, तो हाथ का पता चलता है।
अगर आपका शरीर पूर्ण स्वस्थ है, तो आपको शरीर का पता नहीं चलता; आप विदेह हो जाते हैं। आपको देह का स्मरण रखने की जरूरत नहीं रह जाती। जरूरत ही स्मरण रखने की तब पड़ती है, जब देह किसी आपातकालीन व्यवस्था से गुजर रही हो, तकलीफ में पड़ी हो, तो फिर ध्यान रखना पड़ता है। और उस समय सारे शरीर का ध्यान छोड़कर, आत्मा का ध्यान छोड़कर उस छोटे-से अंग पर सारी चेतना दौड़ने लगती है, जहां पीड़ा है!
कृष्ण का यह समत्व-योग शरीर के संबंध में यह सूचना आपको देता है। अर्जुन को कृष्ण कहते हैं कि यदि ज्यादा आहार लिया, तो भी योग में प्रवेश न हो सकेगा। क्योंकि ज्यादा आहार लेते ही सारी चेतना पेट की तरफ दौड़नी शुरू हो जाती है।
इसलिए आपको ख्याल होगा, भोजन के बाद नींद मालूम होने लगती है। नींद का
और कोई वैज्ञानिक कारण नहीं है। नींद का वैज्ञानिक कारण यही है कि जैसे ही आपने भोजन लिया, चेतना पेट की तरफ प्रवाहित हो जाती है। और मस्तिष्क चेतना से खाली होने लगता है। इसलिए मस्तिष्क धुंधला, निद्रित, तंद्रा से भरने लगता है। ज्यादा भोजन ले लिया, तो ज्यादा नींद मालूम होने लगेगी, क्योंकि पेट को इतनी चेतना की जरूरत है कि अब मस्तिष्क काम नहीं कर सकता। इसलिए भोजन के बाद मस्तिष्क का कोई काम करना कठिन है। और अगर आप जबर्दस्ती करें, तो पेट को पचने में तकलीफ पड़ जाएगी, क्योंकि उतनी चेतना जितनी पचाने के लिए जरूरी है, पेट को उपलब्ध नहीं होगी।
तो अगर अति भोजन किया, तो चेतना पेट की तरफ जाएगी; और अगर कम भोजन किया
या भूखे रहे, तो भी चेतना पेट की तरफ जाएगी। दो स्थितियों में चेतना पेट की तरफ दौड़ेगी। जरूरत से कम भोजन किया, तो भी भूख की खबर पेट देता रहेगा कि और, और; और जरूरत है। और अगर ज्यादा ले लिया, तो पेट कहेगा, ज्यादा ले लिया; इतने की जरूरत न थी। और पेट पीड़ा का स्थल बन जाएगा। और तब आपकी चेतना पेट से अटक जाएगी। गहरे नहीं जा सकेगी।
कृष्ण कहते हैं, भोजन ऐसा कि न कम, न ज्यादा।
तो एक ऐसा बिंदु है भोजन का, जहां न कम है, न ज्यादा है। जिस दिन आप उस अनुपात में भोजन करना सीख जाएंगे, उस दिन पेट को चेतना मांगने की कोई जरूरत नहीं पड़ती। उस दिन चेतना कहीं भी यात्रा कर सकती है।
अगर आप कम सोए, तो शरीर का रोआं-रोआं, अणु-अणु पुकार करता रहेगा कि विश्राम नहीं मिला, थकान हो गई है। शरीर का अणु-अणु आपसे पूरे दिन कहता रहेगा कि सो जाओ, सो जाओ; थकान मालूम होती हैं; जम्हाई आती रहेगी। चेतना आपकी शरीर के विश्राम के लिए आतुर रहेगी।

अगर आप ज्यादा सोने की आदत बना लिए हैं, तो शरीर जरूरत से ज्यादा अगर
सो जाए या जरूरत से ज्यादा उसे सुला दिया जाए, तो सुस्त हो जाएगा; आलस्य से, प्रमाद से भर जाएगा। और चेतना दिनभर उसके प्रमाद से पीड़ित रहेगी। नींद का भी एक अनुपात है, गणित है। और उतनी ही नींद, जहां न तो शरीर कहे कि कम सोए, न शरीर कहे ज्यादा सोए, ध्यानी के लिए सहयोगी है।
इसलिए कृष्ण एक बहुत वैज्ञानिक तथ्य की बात कर रहे हैं। सानुपात व्यक्तित्व चाहिए, अनुपातहीन नहीं। अनुपातहीन व्यक्तित्व अराजक, केआटिक हो जाएगा। उसके भीतर की जो लयबद्धता है, वह विशृंखल हो जाएगी, टूट जाएगी। और टूटी हुई विशृंखल स्थिति में, ध्यान में प्रवेश आसान नहीं होगा। आपने अपने ही हाथ से उपद्रव पैदा कर लिए हैं और उन उपद्रवों के कारण आप भीतर न जा सकेंगे। और हम सब ऐसे उपद्रव पैदा करते हैं, अनेक कारणों से; वे कारण ख्याल में ले लेने चाहिए।
पहला तो इसलिए उपद्रव पैदा हो जाता है कि हम इस सत्य को अब तक भी ठीक
से नहीं समझ पाए हैं कि अनुपात प्रत्येक व्यक्ति के लिए भिन्न होगा। इसलिए हो सकता है कि पिता की नींद खुल जाती है चार बजे, तो घर के सारे बच्चों को उठा दे कि ब्रह्ममुहूर्त हो गया, उठो। नहीं उठते हो, तो आलसी हो। लेकिन पिता को पता होना चाहिए, उम्र बढ़ते-बढ़ते नींद की जरूरत शरीर के लिए रोज कम होती चली जाती है। तो बाप जब बहुत ज्ञान दिखला रहा है बेटे को, तब उसे पता नहीं कि बेटे की और उसकी उम्र में कितना फासला है! बेटे को ज्यादा नींद की जरूरत है।
मां के पेट में बच्चा नौ महीने तक चौबीस घंटे सोता है; जरा भी नहीं जगता। क्योंकि शरीर निर्मित हो रहा होता है, बच्चे का जगना खतरनाक है। बच्चे को चौबीस घंटे निद्रा रहती है। इतना प्रकृति भीतर काम कर रही है कि बच्चे की चेतना उसमें बाधा बन जाएगी; उसे बिल्कुल बेहोश रखती है। डाक्टरों ने तो बहुत बाद में आपरेशन करने के लिए बेहोशी, अनेस्थेसिया खोजा; प्रकृति सदा से अनेस्थेसिया का प्रयोग कर रही है। जब भी कोई बड़ा आपरेशन चल रहा है, कोई बड़ी घटना घट रही है, तब प्रकृति बेहोश रखती है। चौबीस घंटे बच्चा सोया रहता है। मांस बन रहा है, मज्जा बन रही है, तंतु
बन रहे हैं। उसका चेतन होना बाधा डाल सकता है। फिर बच्चा पैदा होने के बाद तेईस घंटे सोता है, बाईस घंटे सोता है, बीस घंटे सोता है, अठारह घंटे सोता है। उम्र जैसे-जैसे बड़ी होती है, नींद कम होती चली जाती है।
इसलिए बूढ़े कभी भूलकर बच्चों को अपनी नींद से शिक्षा न दें। अन्यथा उनको नुकसान पहुंचाएंगे, उनके अनुपात को तोड़ेंगे। लेकिन बूढ़ों को शिक्षा देने का शौक होता है। बुढ़ापे का खास शौक शिक्षा देना है, बिना इस बात की समझ के।
इसलिए हम बच्चों के अनुपात को पहले से ही बिगाड़ना शुरू कर देते हैं।
और अनुपात जब बिगड़ता है, तो खतरा क्या है?
अगर आपने बच्चे को कम सोने दिया, जबर्दस्ती उठा लिया, तो इसकी प्रतिक्रिया में वह किसी दिन ज्यादा सोने का बदला लेगा। और तब उसके सब अनुपात असंतुलित हो जाएंगे। अगर आप जीते, तो वह कम सोने वाला बन जाएगा। और अगर खुद जीत गया, तो ज्यादा सोने वाला बन जाएगा। लेकिन अनुपात खो जाएगा। अगर मां-बाप बलशाली हुए, पुराने ढांचे और ढर्रे के हुए, तो उसकी नींद
को कम करवा देंगे। और अगर बच्चा नए ढंग का, नई पीढ़ी का हुआ, उपद्रवी हुआ, बगावती हुआ, तो ज्यादा सोना शुरू कर देगा। लेकिन एक बात पक्की है कि दो में से कोई भी जीते, प्रकृति हार जाएगी; और वह जो बीच का अनुपात है, वह सदा के लिए अस्तव्यस्त हो जाएगा।
बूढ़े आदमी को जब मौत करीब आने लगती है, तो तीन-चार घंटे से ज्यादा की नींद की कोई जरूरत नहीं रहती। उसका कारण है कि शरीर में अब कोई निर्माण नहीं होता, शरीर अब निर्मित नहीं होता। अब शरीर विसर्जित होने की तैयारी कर रहा है। नींद की कोई जरूरत नहीं है। नींद निर्माणकारी तत्व है। उसकी जरूरत तभी तक है, जब तक शरीर में कुछ नया बनता है। जब शरीर में सब नया बनना बंद हो गया, तो बूढ़े आदमी को ठीक से कहें तो नींद नहीं आती; वह सिर्फ विश्राम करता है; वह थकान है। बच्चे ही सोते हैं ठीक से; बूढ़े तो सिर्फ

थककर विश्राम करते हैं। क्योंकि अब मौत करीब आ रही है। अब शरीर को कोई नया निर्माण नहीं करना है।
लेकिन दुनिया के सभी शिक्षक--स्वभावतः, बूढ़े आदमी शिक्षक होते हैं--वे खबरें दे जाते हैं, चार बजे उठो, तीन बजे उठो। कठिनाई खड़ी होती है। बूढ़े शिक्षक होते हैं; बच्चों को मानकर चलना पड़ता है। अनुपात टूट जाते हैं। भोजन के संबंध में भी वैसा ही होता है। बचपन से ही, बच्चों को कितना भोजन चाहिए, यह बच्चे की प्रकृति को हम तय नहीं करने देते। यह मां अपने आग्रह से निर्णय लेती है कि कितना भोजन। बच्चे अक्सर इनकार करते देखे जाते हैं घर-घर में कि नहीं खाना है। और मां-बाप मोहवश ज्यादा खिलाने की कोशिश में संलग्न हैं! और एक बार प्रकृति ने संतुलन छोड़ दिया, तो विपरीत अति पर जा सकती है, लेकिन संतुलन पर लौटना मुश्किल हो जाता है।
हम सब बच्चों की सोने की, खाने की सारी आदतें नष्ट करते हैं। और फिर जिंदगीभर परेशान रहते हैं। वह जिंदगीभर के लिए परेशानी हो जाती है। इजरायल में एक चिकित्सक ने एक बहुत अनूठा प्रयोग किया है। प्रयोग यह है, हैरान करने वाला प्रयोग है। उसे यह ख्याल पकड़ा बच्चों का इलाज करते- करते कि बच्चों की अधिकतम बीमारियां मां-बाप की भोजन खिलाने की आग्रहपूर्ण वृत्ति से पैदा होती हैं। बच्चों का चिकित्सक है, तो उसने कुछ बच्चों पर प्रयोग करना शुरू किया। और सिर्फ भोजन रख दिया टेबल पर सब तरह का और बच्चों को छोड़ दिया। उन्हें जो खाना है, वे खा लें। नहीं खाना है, न खाएं। जितना खाना है, खा लें। नहीं खाना है, बिल्कुल न खाएं। फेंकना है, फेंक दें। खेलना है, खेल लें। जो करना है! और विदा हो जाएं।
वह इस प्रयोग से एक अजीब निष्कर्ष पर पहुंचा। वह निष्कर्ष यह था कि बच्चे को अगर कोई खास बीमारी है, तो उस बीमारी में जो भोजन नहीं किया जा सकता, वह बच्चा छोड़ देगा टेबल पर, चाहे कितना ही स्वादिष्ट उसे बनाया गया हो। उस बीमारी में उस बच्चे को जो भोजन नहीं करना चाहिए, वह नहीं ही करेगा। और एक बच्चे पर नहीं, ऐसा सैकड़ों बच्चों पर प्रयोग करके उसने नतीजे लिए हैं। और उस बच्चे को उस समय जिस भोजन की जरूरत है, वह उसको चुन लेगा, उस टेबल पर। इसको वह कहता है, यह इंस्टिंक्टिव है; यह बच्चे की प्रकृति का ही हिस्सा है।
यह प्रत्येक पशु की प्रकृति का हिस्सा है। सिर्फ आदमी ने अपनी प्रकृति को विकृत किया हुआ है। संस्कृति के नाम पर विकृति ही हाथ लगती है। प्रकृति भी खो जाती मालूम पड़ती है। कोई जानवर गलत भोजन करने को राजी नहीं होता, जब तक कि आदमी उसको मजबूर न कर दे। जो उसका भोजन है, वह वही भोजन करता है।
और बड़े मजे की बात है कि कोई भी जानवर अगर जरा ही बीमार हो जाए, तो भोजन बंद कर देता है। बल्कि अधिक जानवर जैसे ही बीमार हो जाएं, भोजन ही बंद नहीं करते, बल्कि सब जानवरों की अपनी व्यवस्था है, वॉमिट करने की। वह जो पेट में भोजन है, उसे भी बाहर फेंक देते हैं। अगर आपके कुत्ते को जरा पेट में तकलीफ मालूम हुई, वह जाकर घास चबा लेगा और उल्टी करके सारे पेट को खाली कर लेगा। और तब तक भोजन न लेगा, जब तक पेट वापस सुव्यवस्थित न हो जाए।
सिर्फ आदमी एक ऐसा जानवर है, जो प्रकृति की कोई आवाज नहीं सुनता। लेकिन हम बचपन से बिगाड़ना शुरू करते हैं। इसलिए इस चिकित्सक का कहना है कि सब बच्चे इंस्टिंक्टिवली जो ठीक है, वही करते हैं। लेकिन बड़े उन्हें बिगाड़ने में इस बुरी तरह से लगे रहते हैं कि जिसका कोई हिसाब नहीं है! जब उन्हें भूख नहीं है, तब उनको मां दूध पिलाए जा रही है! जब उनको भूख लगी है, तब मांशृंगार में लगी है; उनको दूध नहीं पिला सकती! सब अस्तव्यस्त हो जाता है।
इसलिए भी हमारा भोजन, हमारी निद्रा, हमारा जागरण, हमारे जीवन की सारी चर्या अतियों में डोल जाती है, समन्वय को खो देती है।
दूसरी बात, प्रत्येक व्यक्ति की जरूरत अलग है। उम्र की ही नहीं, एक ही उम्र के दस बच्चों की जरूरत भी अलग है। एक ही उम्र के दस वृद्धों की भी जरूरत अलग है। एक ही उम्र के दस युवाओं की भी जरूरत अलग है। जो भी नियम बनाए जाते हैं, वे एवरेज पर बनते हैं--जो भी नियम बनाए जाते हैं।

जैसे कि कहा जाता है कि हर आदमी को कम से कम सात घंटे की नींद जरूरी है। लेकिन किस आदमी को? यह किसी आदमी के लिए नहीं कहा गया है। यह सारी दुनिया के आदमियों की अगर हम संख्या गिन लें और सारे आदमियों के नींद के घंटे गिनकर उसमें भाग दे दें, तो सात आता है; यह एवरेज है। एवरेज से ज्यादा असत्य कोई चीज नहीं होती।
जैसे अहमदाबाद में एवरेज हाइट क्या है आदमियों की? ऊंचाई क्या है औसत? तो सब आदमियों की ऊंचाई नाप लें। उसमें छोटे बच्चे भी होंगे, जवान भी होंगे, बूढ़े भी होंगे, स्त्रियां भी होंगी, पुरुष भी होंगे। सबकी ऊंचाई नापकर, फिर सबकी संख्या का भाग दे दें। तो जो ऊंचाई आएगी, उस ऊंचाई का शायद ही एकाध आदमी अहमदाबाद में खोजने से मिले--उस ऊंचाई का! वह औसत ऊंचाई है। उस ऊंचाई का आदमी खोजने आप मत जाना। वह नहीं मिलेगा।
सब नियम औसत से निर्मित होते हैं। औसत कामचलाऊ है, सत्य नहीं है। किसी
को पांच घंटे सोना जरूरी है। किसी को छः घंटे, किसी को सात घंटे। कोई दूसरा आदमी तय नहीं कर सकता कि कितना जरूरी है। आपको ही अपना तय करना पड़ता है। प्रयोग से ही तय करना पड़ता है। और कठिन नहीं है।
अगर आप ईमानदारी से प्रयोग करें, तो आप तय कर लेंगे, आपको कितनी नींद जरूरी है। जितनी नींद के बाद आपको पुनः नींद का ख्याल न आता हो, और जितनी नींद के बाद आलस्य न पकड़ता हो, ताजगी आ जाती हो, वह बिंदु आपकी नींद का बिंदु है।
समय भी तय नहीं किया जा सकता कि छः बजे शाम सो जाएं, कि आठ बजे, कि बारह बजे रात; कि सुबह छः बजे उठें, कि चार बजे, कि सात बजे! वह भी तय नहीं किया जा सकता। वह भी प्रत्येक व्यक्ति के शरीर की आंतरिक जरूरत भिन्न है। और उस भिन्न जरूरत के अनुसार प्रत्येक को अपना तय करना चाहिए।
लेकिन हमारी व्यवस्था गड़बड़ है। हमारी व्यवस्था ऐसी है कि सबको एक वक्त पर भोजन करना है। सबको एक वक्त पर दफ्तर जाना है। सबको एक समय स्कूल पहुंचना है। सबको एक समय घर लौटना है। हमारी पूरी की पूरी व्यवस्था व्यक्तियों को ध्यान में रखकर नहीं है। हमारी पूरी व्यवस्था नियमों को ध्यान में रखकर है। हालांकि इससे कोई फायदा नहीं होता, भयंकर नुकसान होता है। और अगर हम फायदे और नुकसान का हिसाब लगाएं, तो नुकसान भारी होता है। अभी अमेरिका के एक विचारक बक मिलर ने एक बहुत कीमती सुझाव दिया है जीवनभर के विचार और अनुसंधान के बाद। और वह यह है कि सभी स्कूल एक समय नहीं खुलने चाहिए। यह तो स्कूल में भर्ती होने वाले बच्चों पर निर्भर करना चाहिए कि वे कितने बजे उठते हैं; उस हिसाब से उनके स्कूल में भर्ती हो जाए। कई तरह के स्कूल गांव में होने चाहिए। सभी होटलों में एक ही समय, खाने के समय पर लोग पहुंच जाएं, यह उचित नहीं है। सब लोगों के खाने का समय उनकी आंतरिक जरूरत से तय होना चाहिए।
और इससे फायदे भी बहुत होंगे।
सभी दफ्तर एक समय खोलने की कोई भी तो जरूरत नहीं है। सभी दूकानें भी
एक समय खोलने की कोई जरूरत नहीं है। इसके बड़े फायदे तो ये होंगे कि अभी हम एक ही रास्ते पर ग्यारह बजे ट्रैफिक जाम कर देते हैं; वह जाम नहीं होगा। अभी जितनी बसों की जरूरत है, उससे तीन गुनी कम बसों की जरूरत होगी। अभी एक मकान में एक ही दफ्तर चलता है छः घंटे और बाकी वक्त पूरा मकान बेकार पड़ा रहता है। तब एक ही मकान में दिनभर में चार दफ्तर चल सकेंगे। दुनिया की चौगुनी आबादी इतनी ही व्यवस्था में नियोजित हो सकती है, चौगुनी आबादी! अभी जितनी आबादी है उससे। यही रास्ता अहमदाबाद का इससे चार गुने लोगों को चला सकता है।
लेकिन गड़बड़ क्या है? ग्यारह बजे सभी दफ्तर जा रहे हैं! इसलिए रास्ते
पर तकलीफ मालूम हो रही है। रास्ता भी परेशानी में है और आप भी परेशानी में हैं, क्योंकि ग्यारह बजे सबको दफ्तर जाना है, तो ग्यारह बजे सबको खाना भी ले लेना है। फिर सबको समय पर उठ भी आना है। ऐसा लगता है कि नियम के लिए आदमी है, आदमी के लिए नियम नहीं है।
हम एक बच्चे को कहते हैं कि उठो, स्कूल जाने का वक्त हो गया। स्कूल को कहना चाहिए कि बच्चा हमारा नहीं उठता, यह आने का वक्त नहीं है। स्कूल थोड़ी

देर से खोलो! जिस दिन हम वैज्ञानिक चिंतन करेंगे, यही होगा। और उससे हानि नहीं होगी, अनंत गुने लाभ होंगे।
यह जो कृष्ण कह रहे हैं, यह आप अपने-अपने, एक-एक व्यक्ति अपने लिए खोज
ले कि उसके लिए कितनी नींद आवश्यक है। और यह भी रोज बदलता रहेगा। आज का खोजा हुआ सदा काम नहीं पड़ेगा। पांच साल बाद बदल जाएगा, पांच साल बाद जरूरत बदल जाएगी।
सारी तकलीफें पैंतीस साल के बाद शुरू होती हैं आदमी के शरीर में-- बीमारियां, तकलीफें, परेशानियां। अगर साधारण स्वस्थ आदमी है, तो पैंतीस साल के बाद उपद्रव शुरू होते हैं। और उपद्रव का कुल कारण इतना है--यह नहीं कि आप बूढ़े हो रहे हैं, इसलिए उपद्रव शुरू होते हैं--उपद्रव का कुल कारण इतना है कि आपकी सब आदतें पैंतीस साल के पहले के आदमी की हैं और उन्हीं आदतों को आप पैंतीस साल के बाद भी जारी रखना चाहते हैं, जब कि सब जरूरतें बदल गई हैं।
आप उतना ही खाते हैं, जितना पैंतीस साल के पहले खाते थे। उतना कतई नहीं खाया जा सकता। शरीर को उतने भोजन की जरूरत नहीं है। उतना ही सोने की कोशिश करते हैं, जितना पैंतीस साल के पहले सोते थे। अगर नींद नहीं आती, तो परेशान होते हैं कि मेरी नींद खराब हो गई। अनिद्रा आ रही है। कोई गड़बड़ हो रही है। तो ट्रैंक्वेलाइजर चाहिए, कि कोई दवाई चाहिए, कि थोड़ी शराब पी लूं, कि क्या करूं! लेकिन यह भूल जाते हैं कि अब आपकी जरूरत बदल गई है। अब आप उतना नहीं सो सकेंगे।
रोज जरूरत बदलती है, इसलिए रोज सजग होकर आदमी को तय करना चाहिए, मेरे लिए सुखद क्या है।
और ध्यान रखें, दुख सूचना देता है कि आप कुछ गलत कर रहे हैं। सिर्फ दुख सूचक है। और सुख सूचना देता है कि आप कुछ ठीक कर रहे हैं। समायोजित हैं, संतुलित हैं, तो भीतर एक सुख की भावना बनी रहती है। यह सुख बहुत और तरह का सुख है। यह वह सुख नहीं है, जो ज्यादा भोजन कर लेने से मिल जाता है। ज्यादा भोजन करने से सिर्फ दुख मिल सकता है। यह वह सुख नहीं है, जो रात देर तक जागकर सिनेमा देखने से मिल जाता है। ज्यादा जागकर सिर्फ दुख ही मिल सकता है। यह सुख संतुलन का है।
ठीक समय पर अपनी जरूरत के अनुकूल भोजन; ठीक समय पर अपनी जरूरत के अनुकूल निद्रा; ठीक समय पर अपनी जरूरत के अनुकूल स्नान। ठीक चर्या, सम्यक चर्या से एक आंतरिक सुख की भाव-दशा बनती है।
वह बहुत अलग बात है। वह सुख है बहुत और अर्थों में। वह उत्तेजना की अवस्था नहीं है। वह सिर्फ भीतर की शांति की अवस्था है। उस शांति की अवस्था में व्यक्ति ध्यान में सरलता से प्रवेश कर सकता है। और योग के लिए अनिवार्य है वह।
तो अपनी चर्या की सब तरफ से जांच-परख कर लेनी चाहिए। किसी नियम के अनुसार नहीं, अपनी जरूरत के नियम के अनुसार। किसी शास्त्र के अनुसार नहीं, अपनी स्वयं की प्रकृति के अनुसार। और दुनिया में कोई कुछ भी कहे, उसकी फिक्र नहीं करना चाहिए। एक ही बात की फिक्र करनी चाहिए कि आपका शरीर सुख की खबर देता है, तो आप ठीक जी रहे हैं। और आपका शरीर दुख की खबर देता है, तो आप गलत जी रहे हैं। ये सुख और दुख मापदंड बना लेने चाहिए।
अति श्रम कोई कर ले, तो भी नुकसान होता है। श्रम बिल्कुल न करे, तो भी नुकसान हो जाता है। फिर उम्र के साथ बदलाहट होती है। बच्चे को जितना श्रम जरूरी है, बूढ़े को उतना जरूरी नहीं है। बुद्धि से जो काम कर रहा है और शरीर से जो काम कर रहा है, उनकी जरूरतें बदल जाएंगी। बुद्धि से जो काम कर रहा है, उसे ज्यादा भोजन जरूरी नहीं है। शरीर से जो काम कर रहा है, उसे थोड़ा ज्यादा भोजन जरूरी होगा। वह ज्यादा, जो बुद्धि से काम कर रहा है, उसको मालूम पड़ेगा। उसके लिए वह ठीक है।
जो शरीर से काम कर रहा है, उसे और किसी श्रम की अब जरूरत नहीं है, कि वह शाम को जाकर टेनिस खेले। वह पागल है। लेकिन जो बुद्धि से काम कर रहा है, उसके लिए शरीर के किसी श्रम की जरूरत है। उसे किसी खेल का, तैरने का, दौड़ने का, कुछ न कुछ उपाय करना पड़ेगा।
प्रकृति संतुलन मांगती है।

हेनरी फोर्ड ने अपने संस्मरण में लिखवाया है कि मैं भी एक पागल हूं। क्योंकि जब एयरकंडीशनिंग आई, तो मैंने अपने सब भवन एयरकंडीशन कर दिए। कार भी एयरकंडीशन हो गई। अपने एयरकंडीशन भवन से निकलकर मैं अपनी पोर्च में अपनी एयरकंडीशन कार में बैठ जाता हूं। फिर तो बाद में उसने अपना पोर्च भी एयरकंडीशन करवा लिया। कार निकलेगी, तब आटोमेटिक दरवाजा खुल जाएगा। कार जाएगी, दरवाजा बंद हो जाएगा। फिर इसी तरह वह अपने एयरकंडीशंड पोर्च में दफ्तर के पहुंच जाएगा। फिर उतरकर एयरकंडीशंड दफ्तर में चला जाएगा।
फिर उसको तकलीफ शुरू हुई। तो डाक्टरों से उसने पूछा कि क्या करें? तो उन्होंने कहा कि आप रोज सुबह एक घंटा और रोज शाम एक घंटा काफी गरम पानी के टब में पड़े रहें।
गरम पानी के टब में पड़े रहने से हेनरी फोर्ड ने लिखा है कि मेरा स्वास्थ्य बिल्कुल ठीक हो गया। क्योंकि एक घंटे सुबह मुझे पसीना-पसीना हो जाता, शाम को भी पसीना-पसीना हो जाता। लेकिन तब मुझे पता चला कि मैं यह कर क्या रहा हूं! दिनभर पसीना बचाता हूं, तो फिर दो घंटे में इंटेंसली पसीने को निकालना पड़ता है, तब संतुलन हो पाता है।
प्रकृति पूरे वक्त संतुलन मांगेगी। तो जो लोग बहुत विश्राम में हैं, उन्हें श्रम करना पड़ेगा। जो लोग बहुत श्रम में हैं, उन्हें विश्राम करना पड़ेगा। और जो व्यक्ति भी इस संतुलन से चूक जाएगा, ध्यान तो बहुत दूर की बात है, वह जीवन के साधारण सुख से भी चूक जाएगा। ध्यान का आनंद तो बहुत दूर है, वह जीवन के साधारण जो सुख मिल सकते हैं, उनसे भी वंचित रह जाएगा।
ध्यान और योग के प्रवेश के लिए एक संतुलित शरीर, अति संतुलित शरीर चाहिए। एक ही अति माफ की जा सकती है, संतुलन की अति, बस। और कोई एक्सट्रीम माफ नहीं की जा सकती। अति संतुलित! बस, यह एक शब्द माफ किया जा सकता है। बाकी और कोई अति, कोई एक्सट्रीम, कोई एक्सेस माफ नहीं की जा सकती। अति मध्य, एक्सट्रीम मिडिल, माफ किया जा सकता है, और कुछ माफ नहीं किया जा सकता।
बुद्ध ऐसा कहते थे। बुद्ध कहते थे, अति से बचो। मध्य में चलो। सदा मध्य में चलो। हमेशा मध्य में रहो, बीच में। खोज लो हर चीज का बीच बिंदु, वहीं रहो।
एक दिन सारिपुत्र ने बुद्ध को कहा कि भगवन! आप इतना ज्यादा जोर देते हैं मध्य पर कि मुझे लगता है कि यह भी एक अति हो गई! हर चीज में मध्य, मध्य! यह तो एक अति हो गई!
बुद्ध ने कहा, एक अति माफ करता हूं। मध्य की अति, दि एक्सेस आफ बीइंग
इन दि मिडिल, उसको माफ करता हूं। बाकी कोई अति नहीं चलेगी। एक अति को चलाए रहना--मध्य, मध्य, मध्य--सब चीजों में मध्य। तो ध्यान में बड़ी सुगमता हो जाए।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, ध्यान में बड़ी कठिनाई है। ध्यान में बड़ी कठिनाई नहीं है। आप उपद्रव में हैं और आपके उपद्रव की सारी की सारी व्यवस्था आप ही कर रहे हैं, कोई नहीं करवा रहा है! जो नहीं खाना चाहिए, वह खा रहे हैं! जो नहीं पहनना चाहिए, वह पहन रहे हैं! जैसे नहीं बैठना चाहिए, वैसे बैठ रहे हैं। जैसे नहीं चलना चाहिए, वैसे चल रहे हैं! जैसे नहीं सोना चाहिए, वैसे सो रहे हैं। सब अव्यवस्थित किया हुआ है। फिर पूछते हैं एक दिन कि ध्यान में कोई गति नहीं होती है, बड़ी तकलीफ होती है। क्या मेरे पिछले जन्मों का कोई कर्म बाधा बन रहा है? ध्यान में कोई गति नहीं होती। बहुत मेहनत करता हूं, कुछ सार हाथ नहीं आता है।
कभी नहीं आएगा, क्योंकि मेहनत करने वाला इस स्थिति में नहीं है कि भीतर प्रवेश हो सके। आपको अपनी पूरी स्थिति बदल लेनी पड़ेगी।
ध्यान एक महान घटना है, एक बहुत बड़ी हैपनिंग है। उसकी पूर्व-तैयारी चाहिए। उसकी पूर्व-तैयारी के लिए यह सूत्र बहुत कीमती है। और इसीलिए कृष्ण कोई सीधे, डायरेक्ट सुझाव नहीं दे रहे हैं। सिर्फ नियम बता रहे हैं। न अति भोजन, न अति अल्प भोजन। न अति निद्रा, न अति जागरण। न अति श्रम, न अति विश्राम। कोई सीधा नहीं कह रहे हैं, कितना। वह कितना आप पर छोड़ दिया गया है। वह अर्जुन पर छोड़ दिया गया है। वह आपकी जरूरत और आपकी बुद्धि खोजे। और

प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन का नियंता बन जाए। कोई किसी दूसरे से मर्यादा न ले, नहीं तो कठिनाई में पड़ेगा।
जैसे आमतौर से घरों में पति पहले उठ आते हैं। थोड़ा चाय-वाय बनाकर तैयार करते हैं। मगर बड़ा संकोच अनुभव करते हैं कि कोई देख न ले कि पत्नी अभी उठी नहीं है और वे चाय वगैरह बना रहे हैं! लेकिन यह बिल्कुल उचित है, वैज्ञानिक है।
स्त्रियों के सोने की जितनी जांच-पड़ताल हुई है, वह पुरुषों से दो घंटा पीछे है--सारी जांच-पड़ताल से। आज अमेरिका में कोई दस स्लीप लेबोरेटरीज हैं, जो सिर्फ नींद पर काम करती हैं। वे कहती हैं कि पुरुषों और स्त्रियों के बीच नींद का दो घंटे का फासला है। अगर पुरुष पांच बजे सुबह स्वस्थ उठ सकता है, तो स्त्री सात बजे के पहले स्वस्थ नहीं उठ सकती है। लेकिन अगर स्त्री ने शास्त्र पढ़े हैं, तो पति के पहले उठना चाहिए! पति अगर पांच बजे उठे, तो स्त्री को कम से कम साढ़े चार बजे तो उठ आना चाहिए। तब नुकसान होगा! निद्रा का जो अध्ययन हुआ है वैज्ञानिक, उससे पता चला है कि रात में दो घंटे के लिए, चौबीस घंटे में, प्रत्येक व्यक्ति के शरीर का तापमान नीचे गिर जाता है। सुबह जो आपको ठंड लगती है, वह इसलिए नहीं लगती कि बाहर ठंडक है! उसका असली कारण आपके शरीर के तापमान का दो डिग्री नीचे गिर जाना है। बाहर की ठंडक असली कारण नहीं है।
हर व्यक्ति का चौबीस घंटे में दो घंटे के लिए तापमान दो डिग्री नीचे गिर जाता है। वैज्ञानिक इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि वे ही दो घंटे उस व्यक्ति के लिए गहरी निद्रा के घंटे हैं। अगर उन दो घंटों में वह व्यक्ति ठीक से सो ले, तो वह दिनभर ताजा रहेगा। और अगर उन दो घंटों में वह ठीक से न सो पाए, तो वह चाहे आठ घंटे सो लिया हो, तो भी ताजगी न मिलेगी।
और वे दो घंटे प्रत्येक व्यक्ति के थोड़े-थोड़े अलग होते हैं। किसी व्यक्ति का रात दो बजे और चार बजे के बीच में तापमान गिर जाता है। तो वह व्यक्ति चार बजे उठ आएगा बिल्कुल ताजा। उसे दिनभर कोई अड़चन न होगी। किसी व्यक्ति का सुबह पांच और सात के बीच में तापमान गिरता है। तब वह अगर सात बजे के पहले उठ आएगा, तो अड़चन में पड़ेगा।
पुरुषों और स्त्रियों के बीच अनेक प्रयोग के बाद दो घंटे का फासला ख्याल में आया है। तो अधिक पुरुष पांच बजे उठ सकते हैं, लेकिन अधिक स्त्रियां पांच बजे नहीं उठ सकती हैं। वे शरीर के फर्क हैं, वे बायोलाजिकल फर्क हैं।
जैसे-जैसे समझ बढ़ती है, लेकिन एक बात साफ होती जाती है कि शरीर की अपनी नियमावली है। और शरीर के नियम, सिर्फ आपके शरीर के नियम नहीं हैं, बल्कि बड़े कास्मास से जुड़े हुए हैं। देखा है हमने, चांद के साथ समुद्र में अंतर पड़ते हैं। कभी आपने ख्याल किया कि स्त्रियों का मासिक-धर्म भी चांद के साथ संबंधित है और जुड़ा हुआ है! अट्ठाइस दिन इसीलिए हैं, चांद के चार सप्ताह। ठीक चांद के साथ जैसे समुद्र में अंतर पड़ता है, ऐसे स्त्री के शरीर में अंतर पड़ता है।
लेकिन अभी जैसे-जैसे सभ्यता विकसित होती है, स्त्रियों का मासिक-धर्म अस्तव्यस्त होता चला जाता है सभ्यता के साथ। क्या हो गया? कहीं कोई संतुलन टूट रहा है। वह जो विराट के साथ हमारे शरीर के तंतु जुड़े हैं, उनमें कहीं- कहीं विकृतियां हम अपने हाथ से पैदा कर रहे हैं। कहीं कोई गड़बड़ हो रही है। आज जमीन पर, मैं मानता हूं, करीब-करीब पचास प्रतिशत से ज्यादा स्त्रियां मासिक-धर्म से अति परेशान हैं। अनेक तरह की परेशानियां उनके मैंसेस से पैदा होती हैं। और वह मैंसेस इसलिए परेशानी में पड़ा है कि स्त्री के व्यक्तित्व में जो प्रकृति के साथ अनुकूलता होनी चाहिए, जो संतुलन होना चाहिए, वह खो गया है। वह कोई संबंध नहीं रह गया है।
हमने अपने ढंग से जीना शुरू कर दिया है, बिना इसकी फिक्र किए कि हम बड़ी प्रकृति के एक हिस्से हैं। और हमें उस बड़ी प्रकृति को समझकर उसके सहयोग में ही जीने के अतिरिक्त शांत होने का कोई उपाय नहीं है।
लेकिन आदमी ने अपने को कुछ ज्यादा समझदार समझकर बहुत-सी नासमझियां कर
ली हैं। ज्यादा समझदारी आदमी के ख्याल में आ गई है और वह सारे संतुलन भीतर से तोड़ता चला जा रहा है।

जब तक हमारे पास रोशनी नहीं थी, तब तक पृथ्वी पर नींद की बीमारी किसी आदमी को भी न थी। अभी भी आदिवासियों को नींद की कोई बीमारी नहीं है। आदिवासी भरोसा ही नहीं कर सकता कि इन्सोमनिया क्या होता है! आदिवासी से कहिए कि ऐसे लोग भी हैं, जिनको नींद नहीं आती, तो वह बहुत हैरान हो जाता है कि कैसे? क्या हो गया? आदिवासी से पूछिए कि तुम कैसे सो जाते हो? वह कहता है, सोने के लिए कुछ करना पड़ता है! बस, हम सिर रखते हैं और सो जाते हैं। जानकर आप हैरान होंगे कि जो आदिवासी सभ्यता के और भी कम संपर्क में आए हैं, उनको स्वप्न भी न के बराबर आते हैं--न के बराबर! इसलिए जिस आदिवासी को स्वप्न आ जाता है, वह विशेष हो जाता है--विशेष! वह साधारण आदमी नहीं समझा जाता, विजनरी, मिस्टिक, कुछ खास आदमी! बड़ी घटना घट रही है!
आज भी जमीन पर ऐसी आदिवासी कौमें हैं; जैसे एस्कीमो हैं, जो कि दूर ध्रुव पर रहते हैं। उनको अब भी भरोसा नहीं आता कि सब लोगों को सपने आते हैं। लेकिन अमेरिका के वैज्ञानिक कहते हैं कि ऐसा आदमी ही नहीं है, जिसको सपना न आता हो! वे अमेरिका के आदमी के बाबत बिल्कुल ठीक कह रहे हैं। उनके अनुभव में जितने आदमी आते हैं, सबको सपने आते हैं। वे तो कहते हैं, जो आदमी कहता है, मुझे सपना नहीं आता, उसकी सिर्फ मेमोरी कमजोर है। और कोई मामला नहीं है। उसको याद नहीं रहता। आता तो है ही।
और अब तो उन्होंने यंत्र बना लिए हैं, जो बता देते हैं कि सपना आ रहा
है कि नहीं आ रहा है। इसलिए अब आप धोखा भी नहीं दे सकते। सुबह यह भी नहीं कह सकते कि मुझे याद ही नहीं, तो कैसे आया? अब तो यंत्र है, जो आपकी खोपड़ी पर लगा रहता है और रातभर ग्राफ बनाता रहता है, कब सपना चल रहा है, कब नहीं चल रहा है। और अब तो धीरे-धीरे ग्राफ इतना विकसित हुआ है कि आपके भीतर सेक्सुअल ड्रीम चल रहा है, तो भी ग्राफ खबर देगा। रंग बदल जाएगा स्याही का। क्योंकि आपके मस्तिष्क में जब तंतु कामोत्तेजना से भर जाते हैं, तो उनके कंपन, उनकी वेव्स बदल जाती हैं। वह ग्राफ पकड़ लेगा।
अब आपके तथाकथित ब्रह्मचारियों को बड़ी कठिनाई होगी। क्योंकि दिनभर ब्रह्मचर्य साधना बहुत आसान है, सवाल रात का है, नींद का है, सपने का है। वह भी पकड़ लिया जाएगा। वह पकड़ा जाएगा, उसमें कोई अड़चन नहीं है। क्योंकि स्वप्न की क्वालिटी अलग-अलग होती है। और प्रत्येक स्वप्न की जो कंपन विधि है, वह अलग-अलग होती है। जब आपके भीतर कोई कामोत्तेजक स्वप्न चलता है, तो स्वप्न बिल्कुल विक्षिप्त हो जाता है और ग्राफ बिल्कुल पागल की तरह लकीरें खींचने लगता है। जब आपके भीतर गहरी नींद होती है, तो स्वप्न बिल्कुल बंद हो जाता है; ग्राफ सीधी लकीर खींचने लगता है; उसमें कंपन खो जाते हैं।
लेकिन बड़ी हैरानी की बात है कि सभ्य आदमी, सुशिक्षित आदमी रातभर में मुश्किल से दस मिनट गहरी नींद में होता है, जब स्वप्न नहीं होता। सिर्फ दस मिनट! पूरी रात स्वप्न चलता रहता है।
लेकिन आदिवासी अभी भी हैं, जिनको सपना नहीं चलता; जिनकी नींद प्रगाढ़ है। स्वभावतः, सुबह उनकी आंखों में जो निर्दोष भाव दिखाई पड़ता है, वह उस आदमी की आंख में नहीं दिखाई पड़ सकता जिसको रातभर सपना चला है। सुबह आदिवासी की आंख वैसे ही होती है, जैसे गाय की। उतनी ही सरल, उतनी ही भोली, उतनी ही निष्कपट। रात वह इतनी गहराई में गया है कि हम कह सकते हैं कि बेहोशी में ठीक परमात्मा में उतर गया है।
सुषुप्ति समाधि ही है। सिर्फ बेहोश समाधि है, इतना ही फर्क है। उपनिषद तो कहते हैं, सुषुप्ति जैसी ही है समाधि। एक ही उदाहरण उपनिषद देते हैं। समाधि कैसी? सुषुप्ति जैसी। फर्क? फर्क इतना, कि समाधि में आपको होश रहता है और सुषुप्ति में आपको होश नहीं रहता।
आप परमात्मा की गोद में सुषुप्ति में भी पहुंच जाते हैं, लेकिन आपको पता नहीं रहता। समाधि में भी पहुंचते हैं, लेकिन जागते हुए पहुंचते हैं। लेकिन फायदा दोनों में बराबर मिल जाता है।
लेकिन सभ्य आदमी की नींद ही खो गई है, सुषुप्ति बहुत दूर की बात है।
स्वप्न ही हमारा कुल जमा हाथ में रह गया है। जैसे कि लहरों में सागर के ऊपर ही ऊपर रहते हों, गहरे कभी न जा पाते हों, ऐसे ही नींद में भी गहरे नहीं जा पाते।

स्वयं के भीतर पहुंचने के लिए कम से कम गहरी नींद तो जरूरी ही है। लेकिन गहरी नींद उसे ही आएगी जिसका श्रम और विश्राम संतुलित है; जिसका भोजन और भूख संतुलित है; जिसकी वाणी और मौन संतुलित है; उसके लिए ही गहरी नींद उपलब्ध होगी। वह गहरी नींद का फल और पुरस्कार उसको मिलता है, जिसका जीवन संतुलित है।
नींद में ही जाना मुश्किल हो गया है, ध्यान में जाना तो बहुत मुश्किल है। क्योंकि ध्यान तो और आगे की बात हो गई, जागते हुए जाने की बात हो गई। कृष्ण ठीक कहते हैं, अपने-अपने आहार को, विहार को संतुलित कर लेना जरूरी है; किसी नियम से नहीं, स्वयं की जरूरत से।

प्रश्नः भगवान श्री, इस श्लोक में अंत में, कर्मों में सम्यक चेष्टा, ऐसा कहा गया है। कृपया कर्मों में सम्यक चेष्टा, इसका अर्थ भी स्पष्ट करें।

कर्मों में सम्यक चेष्टा। वही बात है, कर्म के लिए। कर्मों में असम्यक चेष्टा का क्या अर्थ है, ख्याल में आ जाए, तो सम्यक चेष्टा का ख्याल आ जाएगा।
कभी किसी स्कूल में परीक्षा चल रही हो, तब आप भीतर चले जाएं। देखें बच्चों को। कलम पकड़कर वे लिख रहे हैं। स्वाभाविक है कि अंगुली पर जोर पड़े। लेकिन उनके पैर देखें, तो पैर भी अकड़े हुए हैं। उनकी गर्दन देखें, तो गर्दन भी अकड़ी हुई है। उनकी आंखें देखें, तो आंखें भी तनाव से भरी हैं। लिख रहे हैं हाथ से, लेकिन जैसे पूरा शरीर कलम पकड़े हुए है!
असम्यक चेष्टा हो गई; जरूरत से ज्यादा चेष्टा हो गई। यह तो सिर्फ अंगुली चलाने से काम हो जाता, इसके लिए इतने शरीर को लगाना, बिल्कुल व्यर्थ हो गया। यह तो ऐसा हुआ कि जहां सुई की जरूरत थी, वहां तलवार लगा दी। और सुई जो काम कर सकती है, वह तलवार नहीं कर सकती, ध्यान रखना आप। इतना तना हुआ बच्चा जो उत्तर देगा, वे गलत हो जाएंगे। क्योंकि चेष्टा असम्यक है, अतिरिक्त श्रम ले रही है, व्यर्थ तनाव दे रही है।
आप भी ख्याल करना, जब आप लिखते हैं, तो सिर्फ अंगुली पर भार हो, इससे ज्यादा भार असम्यक है। एक आदमी साइकिल चला रहा है, तो पैर की अंगुलियां पैडिल को चलाने के लिए पर्याप्त हैं। लेकिन छाती भी लगी है; आंखें भी लगी हैं; हाथ भी अकड़े हैं। सब अकड़ा हुआ है! असम्यक चेष्टा हो रही है। अननेसेसरी, व्यर्थ ही अपने को परेशान कर रहा है। लेकिन आदत की वजह से परेशान है।
हमारी सारी चेष्टाएं असम्यक हैं। या तो हम जरूरत से कम करते हैं; और
या हम जरूरत से ज्यादा कर देते हैं। ध्यान रखना जरूरी है, किस कर्म के लिए कितना श्रम; किस कर्म के लिए कितनी शक्ति।
और नहीं तो कई दफे ऐसा हो जाता है कि मैंने सुना है, एक आदमी एक सांझ-- रात उतर रही है एक गांव के ऊपर--सड़क पर तेजी से कुछ खोज रहा है। और लोग भी खड़े हो गए और कहा कि हम भी सहायता दे दें, क्या खोज रहे हो? तब तक वह आदमी थक गया था, तो हाथ जोड़कर परमात्मा से प्रार्थना कर रहा है कि मैं एक नारियल चढ़ा दूंगा; मेरी खोई चीज मिल जाए। तो लोगों ने कहा, भई, तेरी चीज क्या है, वह तो तू बता दे!
उसका एक पैसा खो गया है। पांच आने का नारियल! पुराने जमाने की कहानी है। पांच आने का नारियल, एक पैसा खो गया है, उसको चढ़ाने के लिए सोच रहा है! उन लोगों ने कहा, तू बड़ा पागल है। एक पैसा खो गया, उसके लिए पांच आने का नारियल चढ़ाने की सोच रहा है! उस आदमी ने कहा, पहले पैसा तो मिल जाए, फिर सोचेंगे कि चढ़ाना है कि नहीं। नहीं मिला तो अपना निर्णय पक्का है! मिल गया तो पुनर्विचार के लिए कौन रोक रहा है!
हमारे पूरे जीवन की व्यवस्था ऐसी ही है, जिसमें हम कभी भी यह नहीं देख रहे हैं कि जो हम पाने चले हैं, उस पर हम कितना दांव लगा रहे हैं! वह इतना लगाने योग्य है? जो मिलेगा, उसके लिए किया गया श्रम योग्य है? इ.ज इट वर्थ? कभी कोई नहीं सोचता। कभी कोई नहीं सोचता कि जितना हम लगा रहे हैं, उतना

उससे जो मिल भी जाएगा--अगर सफल भी हो जाएं, तो जो मिलेगा--वह इसके योग्य है? एक पैसे पर कहीं हम पांच आने का नारियल तो चढ़ाने नहीं चल पड़े!
और फिर इस तरह की जो आदत बढ़ती चली जाए, तो इसकी दूसरी अति, इसका दूसरा रिएक्शन और प्रतिक्रिया भी होती है कि कभी-कभी जब कि सचमुच लगाने का वक्त आता है दांव, तब हमारे पास लगाने को ताकत ही नहीं होती।
संयत श्रम, कर्मों में सम्यक चेष्टा। जीवन को एक विचार देने की जरूरत है; एक अविचार में, विचारहीनता में जीने की जरूरत नहीं है।
एक आदमी धन कमाने चल पड़ा है। चले तो सोच ले कि धन मिलकर जो मिलेगा, उसके लिए इतना सब गंवा देने की जरूरत है? इतना सब, आत्मा भी बेच डालने की जरूरत है? सब कुछ गंवा देने की जरूरत है धन पाने के लिए? असम्यक चेष्टा हो रही है।
कृष्ण मना नहीं करते कि धन मत कमाओ। कहते हैं, सम्यक चेष्टा करो। थोड़ा सोचो भी कि गंवाओगे क्या? कमाओगे क्या? थोड़ा हिसाब भी रखो। थोड़ी व्यवहार बुद्धि का भी उपयोग करो।
नहीं है बिल्कुल वैसी बुद्धि। वैसी संयत बुद्धि का हमारे पास कोई ख्याल नहीं है। कारण इतना ही है कि हमने कभी उस तरह सोचा नहीं।
सोचना शुरू करें। एक-एक कर्म में सोचना शुरू करें कि कितनी शक्ति लगा रहा हूं; इतना उचित है? तत्काल आप पाएंगे कि व्यर्थ लगा रहे हैं। थोड़े कम में हो जाएगा, थोड़े और कम में हो जाएगा।
सुना है मैंने कि अकबर ने एक दफा चार लोगों को सजाएं दीं। चारों का एक
ही कसूर था। चारों ने मिलकर राज्य के खजाने से गबन किया था। और बराबर गबन किया था। असल में चारों साझीदार थे। सबने बराबर अशर्फियां ले ली थीं। चारों को बुलाया अकबर ने। और पहले को कहा, तुमसे ऐसी आशा न थी! जाओ। वह आदमी चला गया। दूसरे आदमी से कहा कि तुम्हें सिर्फ इतनी सजा देता हूं कि झुककर सारे दरबारियों के पैर छू लो, और जाओ। तीसरे को कहा कि तुम्हें एक वर्ष के लिए राज्य-निष्कासन देता हूं। राज्य के बाहर चले जाओ। चौथे को कहा कि तुम्हें आजीवन कैदखाने में भेज देता हूं।
कैदी जा चुके, दरबारियों ने पूछा कि बड़ा अजीब-सा न्याय किया है आपने! दंड इतने भिन्न, जुर्म इतना एक समान; यह कुछ न्याय नहीं मालूम पड़ता है! एक आदमी को सिर्फ इतना ही कहा कि तुमसे ऐसी आशा न थी और एक आदमी को आजीवन कैद में भेज दिया!
अकबर हंसा और उसने कहा कि मैं उनको जानता हूं। अगर तुम्हें भरोसा न हो, तो जाओ, पता लगाओ, वे चारों क्या कर रहे हैं! गए। सबसे पहले तो उस आदमी के पास गए, जिस आदमी से कहा था कि तुमसे ऐसी आशा न थी। उसके घर पहुंचे। पता चला, वह फांसी लगाकर मर गया। हैरान हो गए। लौटकर अकबर से कहा।
अकबर ने कहा, देखते हैं, वहां सूई भी काफी थी। उतना कहना भी ज्यादा पड़ गया। उतना कहना भी ज्यादा पड़ गया; वह आदमी ऐसा था। इतना काफी सजा थी, कि तुमसे ऐसी आशा न थी। बहुत सजा हो गई! जिसको थोड़ा भी अपने व्यक्तित्व का बोध है, उसके लिए बहुत सजा हो गई। अब जाकर देखो उस आदमी को जिसको कि सजा दी है जीवनभर की।
वे वहां गए, तो जेलर ने बताया कि वह आदमी जेलखाने में रिश्वत का इंतजाम फैलाकर भागने की योजना बना रहा है। उससे मिले, तो वह कोई उदास न था। कहा कि उदास नहीं हो! आजीवन सजा हो गई। उसने कहा कि छोड़ो भी। जिस दुनिया में सब कुछ हो रहा है, उसमें हम कोई सदा जेल में रहेंगे! निकल जाएंगे। जहां सब कुछ संभव हो रहा है, वहां कोई हम सदा जेल में रहेंगे! तुम दो-चार दिन में देखना कि हम बाहर हैं। और तुम पंद्रह-बीस दिन के बाद देखोगे कि हम दरबार में हैं। तुम चिंता मत करो; हम जल्दी लौट आएंगे। और वैसे भी बहुत थक गए थे, पंद्रह-बीस दिन का विश्राम मिल गया! हैरान हुए कि उसको जीवनभर की सजा मिली है, वह आदमी यह कह रहा है। और जिससे सिर्फ इतना कहा है कि तुझसे इतनी अपेक्षा, ऐसी आशा न थी, वह फांसी लगाकर मर गया!
अकबर ने ठीक--जिसको कहें कर्म में सम्यक चेष्टा, कितना कहां जरूरी है-- उतना ही; उससे रत्तीभर ज्यादा नहीं।
योगी को तो ध्यान में रखना ही पड़ेगा कि कर्म में सम्यक चेष्टा हो। बुद्ध ने तो सम्यक चेष्टा पर बहुत बड़ी व्यवस्था दी है। सारी चीजों पर

सम्यक होने की व्यवस्था दी है। बुद्ध जिसे अष्टांगिक मार्ग कहते हैं, सब सम्यक पर आधारित है। उसमें सम्यक व्यायाम, सम्यक श्रम, सम्यक स्मृति, सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान--सब चीजें सम्यक हों। कोई भी चीज असम न हो जाए। उसी सम्यक की तरफ कृष्ण इशारा कर रहे हैं। वे कह रहे हैं, तुम्हारे कर्मों में तुम सदा ही संयत रहना। उतनी ही चेष्टा करना, जितनी जरूरी है; न कम, न ज्यादा। और फिर तुम पाओगे कि कर्म तुम्हें नहीं बांध पाएंगे।
सम्यक जिसने चेष्टा की है, वह कर्म के बाहर हो जाता है। जो ज्यादा करता है, वह भी पछताता है, क्योंकि अंत में फल बहुत कम आता है। जो कम करता है, वह भी पछताता है, क्योंकि फल आता ही नहीं। लेकिन जो सम्यक कर लेता है, वह कभी भी नहीं पछताता। फल आए, या न आए। जो सम्यक कर लेता है, वह कभी नहीं पछताता। क्योंकि वह जानता है, जितना जरूरी था, वह किया गया। जो जरूरी था, वह मिल गया है। जो नहीं मिलना था, वह नहीं मिला है। जो मिलना था, वह मिल गया है। मैंने अपनी तरफ से जितना जरूरी था, वह किया था; बात समाप्त हो गई।
एक मित्र अभी मेरे पास आए। उनकी पत्नी चल बसी है। बहुत रो रहे थे, बहुत परेशान थे। मैंने उनसे कहा कि पत्नी के साथ तुम्हें कभी इतना खुश नहीं देखा था कि सोचूं कि मरने पर इतना रोओगे! मैंने कहा, असम्यक चेष्टा कर रहे हो। उस वक्त थोड़ा ज्यादा खुश हो लिए होते, तो इस वक्त थोड़ा कम रोना पड़ता। वे थोड़े हैरान हुए। उन्होंने कहा, क्या मतलब? मैंने कहा, थोड़ा बैलेंसिंग हो जाता। मैंने उनसे पूछा, सच बताओ मुझे, पत्नी के मरने से रो रहे हो या बात कुछ और है? क्योंकि बातें अक्सर और होती हैं, बहाने और होते हैं। आदमी की बेईमानी का कोई अंत नहीं है। उन्होंने कहा, क्या मतलब आपका? मेरी पत्नी मर गई और आप कहते हैं, बहाने और बेईमानी। यहां बहाने! मेरी पत्नी मर गई है, मैं दुखी हूं। मैंने कहा, मैं मानता हूं कि तुम दुखी हो। लेकिन मैं फिर से तुमसे पूछता हूं कि तुम सोचकर मुझे दो-चार दिन बाद बताना कि सच में रोने का यही कारण है कि पत्नी मर गई है?
चार दिन बाद वे लौटे और उन्होंने कहा कि शायद आप ठीक कहते हैं। भीतर झांका, तो मुझे ख्याल आया कि जितनी मुझे उसकी सेवा करनी चाहिए थी, वह मैंने नहीं की। जितना मुझे उस पर ध्यान देना चाहिए था, वह भी मैंने नहीं दिया। सच तो यह है कि जितना प्रेम सहज उसके प्रति मुझमें होना चाहिए था, वह भी मैं नहीं दे पाया। उस सब की पीड़ा है कि अब! अब माफी मांगने का भी कोई उपाय नहीं रहा।
ध्यान रहे, अगर आपने किसी व्यक्ति को पूरा प्रेम कर लिया है, जितना संभव था, जो सम्यक था; पूरी सेवा कर ली है, जो सम्यक थी; सब ध्यान दिया, जो सम्यक था; तो मृत्यु के बाद जो दुख होगा, वह दुख बहुत भिन्न प्रकार का होगा। और वह दुख आपको तोड़ेगा नहीं, मांजेगा। वह पीड़ा आपको निखारेगी, नष्ट नहीं करेगी। वह पीड़ा आपके जीवन में कुछ अनुभव और ज्ञान दे जाएगी, सिर्फ जंग नहीं लगा जाएगी। क्योंकि जो हो सकता था, सम्यक था, जो ठीक था, वह कर लिया गया था। जो मेरे हाथ में था, वह हो गया था। फिर शेष तो सदा परमात्मा के हाथ में है।
लेकिन हममें से कोई भी सम्यक कभी नहीं कर पाता। न पति पत्नी के लिए, न पत्नी पति के लिए। न बेटे बाप के लिए, न बाप बेटे के लिए। सब असम्यक होता है। जिस दिन छूट जाता है कोई, उस दिन भारी पीड़ा का वज्राघात होता है। उस दिन लगता है कि अब! अब तो कोई उपाय न रहा। अब तो कोई उपाय न रहा।
इसलिए जो बेटे बाप के मरने की प्रतीक्षा करते हैं, वे भी बाप के मरने
पर छाती पीटकर रोते हैं। जो बेटे न मालूम कितनी दफे सोच लेते हैं कि अब यह बूढ़ा चला ही जाए, तो बेहतर। न मालूम कितनी दफे! मन ऐसा है। मन ऐसा सोचता रहता है। हालांकि आप झिड़क देते हैं अपने मन को, कि कैसी गलत बात सोचते हो! ठीक नहीं है यह। लेकिन मन फिर भी सोचता रहता है। फिर यह बेटा छाती पीटकर रो रहा है। यह असंतुलन है जीवन का।
अगर इसने पिता की सम्यक सेवा कर ली होती! यह तो पक्का ही है कि पिता जाएगा। मौत से कोई बचेगा? वह जाने वाला है। अगर इसने थोड़ा ख्याल रखा होता कि पिता जाने ही वाला है, जाएगा ही; थोड़ी सेवा कर ली होती, थोड़ा प्रेम दिया होता, थोड़ा सम्मान किया होता--यह तो पता ही है कि वह जाएगा ही--इसने अगर सम्यक चेष्टा कर ली होती जो जाने वाले व्यक्ति के साथ कर लेनी है, तो शायद

पीछे यह घाव इस भांति का न लगता। यह घाव दूसरे अर्थ में लग रहा है। यह न किया हुआ जो छूट गया है, और जिसके करने का अब कोई उपाय नहीं रह गया, यह उसकी पीड़ा है, जो जिंदगीभर सालेगी, कांटे की तरह चुभती रहेगी।
सम्यक कर्मों में! कर्मों में सम्यक चेष्टा का अर्थ है, समस्त कर्मों में जो किया जाने योग्य है, वह जरूर करना चाहिए। जितनी शक्ति से किया जाने योग्य है, उतनी शक्ति लगानी चाहिए; न कम, न ज्यादा।
निर्णय कौन करेगा कि कितनी लगाई जानी चाहिए? आपके अतिरिक्त कोई निर्णय नहीं कर सकता है। आप ही सोचें। और बड़ा अनुभव होगा, अदभुत अनुभव होगा। जिस काम में आप संयत चेष्टा कर पाएंगे, उस काम के बाद आप बिल्कुल निर्भार हो जाएंगे, मुक्त हो जाएंगे। काम कर लिया, बात समाप्त हो गई।
अगर आप दफ्तर में पूरे पांच घंटे ठीक श्रम कर लिए हैं, सम्यक, तो दफ्तर आपकी खोपड़ी में घर नहीं आएगा। नहीं तो घर आएगा; आएगा ही; सस्पेंडेड; लटका रहेगा खोपड़ी पर। क्योंकि दफ्तर में तो बैठकर विश्राम किया!
मैंने सुना है कि एक दिन दफ्तर के मैनेजर को उसके मालिक ने... । अचानक मालिक अंदर आ गया। आने का वक्त नहीं था, नहीं तो मैनेजर तैयार रहता। वह अपने पैर फैलाए हुए कुर्सी पर सो रहा था! घबड़ाकर चौंका। क्षमायाचना की और कहा कि माफ करें, कल रात घर नहीं सो पाया। तो मालिक ने कहा, अच्छा, तो तुम घर भी सोते हो! यह हम सोच भी नहीं सकते थे। घर भी सोते हो? यह हम सोच ही नहीं सकते थे, क्योंकि दिनभर तो यहां सोते हो। तो घर सोते होगे, इसका हमें ख्याल ही नहीं आया!
अब यह आदमी जो दफ्तर में बेईमानी कर रहा है, दफ्तर इसके साथ बदला लेगा। वह घर चला जाएगा। यह घर से बेईमानी करके दफ्तर चला आया है, घर दफ्तर चला आएगा।
जिस कर्म को आपने पूरा नहीं कर लिया है, सम्यक नहीं कर लिया है, वह आपके भीतर अटका रहेगा, वह आपका पीछा करेगा। इसलिए हम बड़ी अजीब हालत में हैं। जब आप चौके में बैठकर भोजन करते हैं, तब दफ्तर में होते हैं। जब दफ्तर में बैठे होते हैं, तो अक्सर भोजन कर रहे होते हैं। यह सब चलता रहता है!
यह सब इतना ज्यादा कनफ्यूजन मस्तिष्क में इसलिए पैदा होता है कि जब भोजन कर रहे हैं, तब सम्यक रूप से भोजन कर लें। सब छोड़ें उस वक्त। जितनी जरूरी चेष्टा है भोजन करने की, जितना ध्यान देना जरूरी है भोजन को, उतना ध्यान दे दें। जितना चबाना है, उतना चबा लें। जितना स्वाद लेना है, उतना स्वाद ले लें। जितना भोजन करना है, सम्यक चेष्टा पूरी भोजन की थाली पर करके कृपा करके उठें, तो भोजन आपका पीछा नहीं करेगा; और तृप्ति भी आएगी। जो भी काम करना है, उसे पूरा कर लें। पूरा किया गया काम, संयत किया गया काम, सस्पेंडेड, लटका हुआ नहीं रह जाता, और व्यक्ति प्रतिपल बाहर हो जाता है--प्रत्येक कर्म के बाहर हो जाता है। और तब वैसा व्यक्ति कभी भी भार, बर्डन नहीं अनुभव करता मस्तिष्क पर। निर्भार होता है, वेटलेस होता है, हल्का होता है। सब पूरा है।
सुकरात मर रहा है, तो किसी मित्र ने पूछा कि कोई काम बाकी तो नहीं रह गया? सुकरात ने कहा, मेरी कोई आदत कभी किसी काम को बाकी रखने की नहीं थी। मैं हमेशा ही तैयार था मरने को। कभी भी मौत आ जाए, मेरा काम पूरा, साफ था। सब जो करने योग्य था, मैंने कर लिया था। जो नहीं करने योग्य था, नहीं किया था। मेरा हिसाब सदा ही साफ रहा है। मेरे खाते-बही, कभी भी मौत का इंस्पेक्टर आ जाए, देख ले, तो मैं वैसा नहीं डरूंगा, जैसा इनकम टैक्स के इंस्पेक्टर को देखकर कोई भी दुकानदार डरता है, ऐसा सुकरात ने कहा होगा। सिर्फ एक छोटी-सी बात रह गई, वह भी मुझे पता नहीं था, नहीं तो मैं सुबह उस आदमी को कहता।
एचीलियस नाम के आदमी ने एक मुर्गी मुझे उधार दी थी, छः आने उसके बाकी
रह गए हैं। बस इतना ही सस्पेंडेड है। बस, और कुछ भी नहीं है। वह भी मैं चुका देता, लेकिन जेल में पड़ा हूं और छः आने कमाने का भी कोई उपाय मेरे पास नहीं है। अचानक मुझे जेल में ले आए, अन्यथा मैं उसके छः आने चुका देता। एक काम भर इस पृथ्वी पर मेरा अधूरा पड़ा है, वे छः आने एचीलियस को देने हैं। मेरे मरने के बाद तुम मेरे मित्र, एक-एक, दो-दो पैसा इकट्ठा करके उसे दे देना, ताकि बहुत भार मुझ पर न रह जाए। छः आने का इकट्ठा बहुत पड़ेगा। एक-एक पैसे

का तुम सब का रह जाएगा। किसी रास्ते पर, किसी मार्ग पर अगर अनंत में कभी मिलना हो गया, तो मैं चुका दूंगा। बस, इतना ही बोझ है, बाकी सब निपटा हुआ है।
आप मरते वक्त कितने आने के बोझ से भरे होंगे? कोई हिसाब लगाना मुश्किल
हो जाएगा। न मालूम कितना अटका रह जाएगा सब तरफ! किसी को गाली दी थी, माफी नहीं मांग पाए। किसी पर क्रोध किया था, क्षमा नहीं कर पाए। किसी को प्रेम करने के लिए कहा था, लेकिन कर नहीं पाए। किसी को सेवा का भरोसा दिया था, लेकिन हो नहीं पाई। सब तरफ सब अधूरा अटका रह जाएगा।
यह अटका, अधूरा ही आपको वापस नए जन्मों में लेता चला जाएगा। ये असम्यक कर्म आपको वापस नए कर्मों में लेते चले जाएंगे। और पिछला कर्म भी पूरा नहीं होता, इस जन्म का पूरा नहीं होता, और एडीशन, और भार बढ़ता चला जाता है। हल्के न हो पाएंगे फिर।
कर्मों का विचार, कर्म के सिद्धांत के पीछे जो मूल आधार है, वह यही है
कि वही व्यक्ति कर्म से मुक्त हो जाता है, जो सब कर्मों को संयत रूप से कर लेता है और उनके बाहर हो जाता है। फिर उसकी कोई मृत्यु नहीं है, उसका मोक्ष है; क्योंकि लौटने का कोई कारण नहीं है।

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा।। 18।।
इस प्रकार योग के अभ्यास से अत्यंत वश में किया हुआ चित्त जिस काल में परमात्मा में ही भली प्रकार स्थित हो जाता है, उस काल में संपूर्ण कामनाओं से स्पृहारहित हुआ पुरुष योगयुक्त है, ऐसा कहा जाता है।

योग के अभ्यास से संयत, शांत, शुद्ध हुआ चित्त। इस बात को ठीक से समझ लें।
योग के अभ्यास से!
हमारा अशुद्ध होने का अभ्यास गहन है। हमारे जटिल होने की कुशलता अदभुत है। स्वयं को उलझाव में डालने में हम कुशल कारीगर हैं। हमने अपने कारागृह की एक-एक ईंट काफी मजबूत बनाकर रखी है। और हमने अपनी एक-एक हथकड़ी की जंजीर को बहुत ही मजबूत फौलाद से ढाला है। हमने सब तरह का इंतजाम किया है कि जिंदगी में आनंद का कोई आगमन न हो सके। हमने सब द्वार-दरवाजे बंद कर रखे हैं कि रोशनी कहीं भूल-चूक से प्रवेश न कर जाए। हमने सब तरफ से अपने नरक का आयोजन कर लिया है। इस आयोजन को काटने के लिए इतने ही आयोजन की विपरीत दिशा में जरूरत पड़ती है। उसी का नाम योग-अभ्यास है।
योगाभ्यास की कोई जरूरत नहीं है। जैसा कि कृष्णमूर्ति कहते हैं, कोई जरूरत नहीं है योगाभ्यास की। जैसा कि झेन फकीर कहते हैं जापान में कि किसी अभ्यास की कोई जरूरत नहीं है। अगर आपने नरक की तरफ कोई यात्रा न की हो, तो कोई भी जरूरत नहीं है। लेकिन अगर आपने नरक की तरफ तो भारी अभ्यास किया हो, और सोचते हों कृष्णमूर्ति को सुनकर कि स्वर्ग की तरफ जाने के लिए किसी अभ्यास की कोई जरूरत नहीं है, तो आप अपने नरक को मजबूत करने के लिए आखिरी सील लगा रहे हैं।
अशांत होने के लिए कितना अभ्यास करते हैं, कुछ पता है आपको? एक आदमी को गाली देनी होती है, तो कितना रिहर्सल करना पड़ता है, कुछ पता है आपको? कितनी दफे मन में देते हैं पहले! किस-किस रस से देते हैं! किस-किस कोने से, किस-किस एंगल से सोचकर देते हैं! किस-किस भांति जहर भरकर गाली को तैयार करके देते हैं!
एक आदमी को गाली देने के लिए कितने बड़े रिहर्सल से, पूर्व-अभ्यास से गुजरना पड़ता है। उस पूर्व-अभ्यास के बिना गाली भी नहीं निकल सकती है। अशांत होने के लिए कितना श्रम उठाते हैं, कभी हिसाब रखा है? सुबह से शाम तक कितनी तरकीबें खोजते हैं कि अशांत हो जाएं! अगर किसी दिन तरकीबें न मिलें, तो खुद भी ईजाद करते हैं।
मेरे एक मित्र हैं। उनके बेटे ने मुझे कहा कि मैं बड़ी मुसीबत में हूं। मैं कोई रास्ता ही नहीं खोज पाता कि पिता को अशांत करने से कैसे बचूं! मैंने कहा कि वे जिन बातों से अशांत होते हों, वह मत करो। उसने कहा, यही तो

मजा है कि अगर मैं ठीक कपड़े पहनकर दफ्तर पहुंच जाऊं, तो वे कहते हैं, अच्छा! तो कोई फिल्म स्टार हो गए आप? अगर ठीक कपड़े पहनकर न पहुंचूं, तो वे कहते हैं, क्या मैं मर गया? जब मैं मर जाऊं, तब इस शक्ल में घूमना! अभी मेरे रहते तो मजा कर लो।
वह बेटा मुझसे पूछने आया कि मैं क्या करूं, जिससे पिता अशांत न हों? क्योंकि मैं कुछ भी करूं, वे तरकीब खोज ही लेते हैं। ऐसा कोई काम मैं नहीं कर पाया, जिसमें उन्होंने तरकीब न खोज ली हो। वह सोचकर विपरीत करता हूं, उसमें भी निकाल लेते हैं। अच्छे कपड़े पहनता हूं, तो कहते हैं, अच्छा, फिल्म स्टार हो गए! क्या इरादे हैं? हीरो बन गए? न पहनकर ठीक कपड़ा पहुंचूं, तो कहते हैं, यह तो मैं जब मर जाऊं, तब इस शक्ल में घूमना। अभी तो मैं जिंदा हूं; अभी तो मजे करो, गुलछर्रे कर लो! तो मैं क्या करूं?
मैंने कहा, एकाध दफा दिगंबर पहुंचकर देखा कि नहीं देखा! और तो कोई तीसरा रास्ता ही नहीं बचता! दिगंबर पहुंचकर देख। उसने कहा कि आप भी क्या कह रहे हैं! बिल्कुल मेरी गर्दन काट देंगे!
हम सब ऐसा खोजते रहते हैं, खूंटियां खोजते रहते हैं। खूंटियां खोजते रहते हैं! खूंटियां न मिलें, तो अपनी कीलें भी गाड़ लेते हैं।
अशांत होने के लिए भारी अभ्यास चल रहा है। बड़ी योग-साधना करते हैं हम अशांत होने के लिए, क्रोधित होने के लिए, परेशान होने के लिए! कुछ ऐसा लगता है कि अगर आज परेशान न हुए, तो जैसे दिन बेकार गया। कई दफे ऐसा होता भी है। क्योंकि परेशानी से हमको पता चलता है कि हम भी हैं। नहीं तो और तो कोई पता चलने का कारण नहीं है।
तो बड़ी-बड़ी परेशानियां करके दिखलाते रहते हैं। भारी परेशानियां हैं। उससे पता चलता है कि हम भी कोई हैं, समबडी! क्योंकि जितना बड़ा आदमी हो, उतनी बड़ी परेशानियां होती हैं! तो हर छोटा-मोटा आदमी भी छोटी-मोटी परेशानियों को मैग्नीफाई करता रहता है। बड़ी करके खड़ा कर लेता है। उनके बीच में खड़ा रहता है। यह सब अभ्यास चलता है। बिना अभ्यास के यह भी नहीं हो सकता। यह भी सब अभ्यास का फल है।
तो कृष्ण जब अर्जुन से कहते हैं कि योगाभ्यास से शांत हुआ चित्त, तो इससे विपरीत अभ्यास करना पड़ेगा। विपरीत अभ्यास का क्या अर्थ है? विपरीत अभ्यास का अर्थ है कि अब तक हम निगेटिव इमोशंस के लिए, नकारात्मक भावनाओं के लिए कारण खोज रहे हैं चौबीस घंटे; योगाभ्यास का अर्थ है, पाजिटिव इमोशंस के लिए चौबीस घंटे कारण खोजने में जो लगा है।
और जिंदगी में दोनों मौजूद हैं। खड़े हो जाएं गुलाब के फूल के किनारे।
वह जो अभ्यासी है अशांति का, वह कहेगा, व्यर्थ है, बेकार है सब। कांटे ही कांटे हैं, एकाध फूल खिलता है कभी। वह जो योगाभ्यासी है, वह जो पाजिटिव को, विधायक को खोजने निकला है, वह कहेगा, प्रभु तेरा धन्यवाद! आश्चर्य है, जहां इतने कांटे हैं, वहां भी इतना कोमल फूल खिल सकता है! यह उनके देखने के ढंग का फर्क होगा।
जब आप किसी आदमी से मिलते हैं, तो उसमें बुरा अगर आप खोजते हैं तत्काल,
तो आप अभ्यासी हैं अशांति के। उस आदमी में कुछ तो भला होगा ही, नहीं तो जीना मुश्किल था। बुरे से बुरे आदमी का भी जीना असंभव है, अगर वह एब्सोल्यूट बुरा हो जाए। चोर भी किन्हीं के साथ तो ईमानदार होते हैं। और डाकू भी किन्हीं के साथ वचन निभाते हैं। बेईमान भी बेईमान नहीं हो सकता सदा, चौबीस घंटे, किन्हीं के साथ ईमानदारी से जीता है। जो आपका दुश्मन है, वह भी किसी का मित्र है; वह भी मित्रता जानता है। जो आपकी छाती में छुरा भोंकने को तैयार है, वह किसी दिन किसी के लिए अपनी छाती में भी छुरा भोंकने की तैयारी रखता है।
इस जमीन पर, इस अस्तित्व में कोई बिल्कुल बुरा है, ऐसा नहीं है। और कोई बिल्कुल भला है, ऐसा भी नहीं है। लेकिन आपके चुनाव पर निर्भर है कि आप क्या चुनते हैं। आपके अभ्यास पर निर्भर है कि आप क्या चुनते हैं। अगर आपने तय कर रखा है कि बुरा ही चुनेंगे, तो आपको बुरा मिलता चला जाएगा। जिंदगी में भरपूर बुरा है। अगर आपने तय कर लिया है कि अंधेरा ही चुनेंगे, तो दिनभर विश्राम करना आप आंख बंद करके, रात को निकल जाना खोजने; मिल जाएगा। मिलेगा वही-वही।

बुरे को खोजना है, बुरा मिल जाएगा। दुख को खोजना है, दुख मिल जाएगा।
पीड़ा खोजनी है, पीड़ा मिल जाएगी। शैतान खोजना है, शैतान मिल जाएगा।
परमात्मा खोजना है, तो वह भी मौजूद है, जस्ट बाई दि कार्नर। वहीं, जहां शैतान खड़ा है। शायद इतना भी दूर नहीं है। शायद शैतान भी परमात्मा के चेहरे को गलत रूप से देखने के कारण है।
जिस आदमी को कांटों के बीच फूल खिला हुआ मालूम पड़ता है और जो कहता है, धन्य है! लीला है, रहस्य है प्रभु का! इतने कांटों के बीच फूल खिलता है! उस आदमी को बहुत दिन कांटे दिखाई नहीं पड़ेंगे। जो इतने कांटों के बीच फूल को देख लेता है, वह थोड़े ही दिनों में कांटों को फूल के मित्र की तरह देख ही पाएगा। वह, कांटे फूल की रक्षा के लिए हैं, यह भी देख पाएगा। अंततः वह यह भी देख पाएगा कि कांटों के बिना फूल नहीं हो सकता है, इसलिए कांटे हैं। और आखिर में कांटों का जो कांटापन है, खो जाएगा; और कांटे भी धीरे-धीरे फूल ही मालूम पड़ने लगेंगे।
और जिस आदमी ने देखा कि कांटे ही कांटे हैं; कहीं एकाध फूल खिल जाता है भूल-चूक से, यह एक्सिडेंट मालूम होता है। यह फूल एक्सिडेंट है, कांटे असलियत हैं। बात भी ठीक लगती है। कांटे बहुत, फूल एक। वह आदमी बहुत दिन तक फूल में भी फूल को नहीं देख पाएगा। बहुत जल्दी उसको फूल में भी कांटे दिखाई पड़ने लगेंगे।
हमारी दृष्टि धीरे-धीरे फैलकर निरपेक्षपूर्ण हो जाती है। लेकिन अस्तित्व? अस्तित्व द्वंद्व है; वहां दोनों मौजूद हैं।
योगाभ्यासी का अर्थ है, ऐसा व्यक्ति, जो जीवन में शांति की खूंटियां खोजता है, आनंद की खूंटियां खोजता है। फूल खोजता है। आशा खोजता है। सौंदर्य खोजता है। आनंद खोजता है। जो जीवन में नृत्य खोजता है, उत्सव खोजता है। जीवन में उदासी बटोरने का जिसने ठेका नहीं लिया है। जो जगह-जगह जाकर कांटे और कंकड़ नहीं खोजता रहता है। और जिनको इकट्ठा करके छाती पर रखकर चिल्लाता नहीं है कि जिंदगी बेकार है, अर्थहीन है।
योगाभ्यास का अर्थ है, जीवन को विधायक दृष्टि से देखने का ढंग। योग जीवन की विधायक कीमिया है, पाजिटिव केमेस्ट्री है। और उसका अभ्यास करना पड़ेगा। क्योंकि आपने अभ्यास किया हुआ है। अगर आप पुराने अभ्यास को ऐसे ही, बिना अभ्यास के छोड़ने में समर्थ हों, तो छोड़ दें। तो फिर नए अभ्यास की कोई भी जरूरत नहीं है।
लेकिन वह पुराना अभ्यास जकड़ा हुआ है, भारी है; वह छूटेगा नहीं। उसे इंच-इंच जैसे बनाया, वैसे ही काटना भी पड़ेगा। जैसे घर बनाया, वैसे अब एक-एक ईंट उसकी गिरानी भी पड़ेगी। भला वह ताश का ही घर क्यों न हो, लेकिन ताश के पत्ते भी उतारकर रखने पड़ेंगे। भला ही वह कितनी ही झूठी व्यवस्था क्यों न हो, लेकिन झूठ की भी अपनी व्यवस्था है; उसको भी काटना और मिटाना पड़ेगा। योगाभ्यास गलत अभ्यासों को काटने का अभ्यास है। ठीक विपरीत यात्रा करनी पड़ेगी। जिस व्यक्ति में कल तक देखा था बुरा आदमी, उसमें देखना पड़ेगा भला आदमी। जिसमें देखा था शत्रु, उसमें खोजना पड़ेगा मित्र। जहां देखा था जहर, वहां अमृत की भी तलाश करनी पड़ेगी। यह तो हुई एक बहिर्व्यवस्था।
और फिर अपने में भी यही करना पड़ेगा। अपने भीतर भी जिन-जिन चीजों को बुरा देखा था, उन-उन में शुभ को खोजना पड़ेगा। कामवासना में देखा था नरक का मार्ग, अब कामवासना में स्वर्ग का मार्ग भी देखना पड़ेगा। स्वर्ग का मार्ग कामवासना में देखते से ही, काम की वासना ऊर्ध्वगामी होकर स्वर्ग के मार्ग को भी लगा देती है। कल तक क्रोध में देखा था सिर्फ क्रोध, अब क्रोध में उस शक्ति को भी देखना पड़ेगा, जो क्षमा बन जाती है। क्रोध की शक्ति ही क्षमा बनती है। काम की शक्ति ही ब्रह्मचर्य बनती है। लोभ की शक्ति ही दान बन जाती है।
देखना पड़ेगा; खोजना पड़ेगा। अब तक एक तरह से देखा था जीवन को, अब ठीक विपरीत तरह से देखना पड़ेगा। उस विपरीत तरह के देखने की क्या विधियां हैं, उनकी बात मैं संध्या करूंगा। इस सूत्र पर भी पूरी बात संध्या करेंगे। अभी इतना ही ख्याल में लें कि अगर गलत का अभ्यास किया है, तो गलत को काटने का भी अभ्यास करना पड़ेगा।

निश्चित ही, जब गलत कट जाता है, तो जो शेष रह जाता है वह शुभ है। इसलिए
एक अर्थ में कृष्णमूर्ति या झेन फकीर जो कहते हैं, ठीक कहते हैं। क्योंकि शुभ के पाने के लिए किसी अभ्यास की जरूरत नहीं है। लेकिन अशुभ को काटने के लिए अभ्यास की जरूरत है। इसलिए एक दृष्टि से वे बिल्कुल गलत कहते हैं। फर्क समझें आप। शुभ को पाने के लिए किसी अभ्यास की जरूरत नहीं है। शुभ स्वभाव है। लेकिन अशुभ को काटने के लिए... ।
ऐसा समझ लें, तो ठीक होगा। मेरे हाथों में आपने जंजीरें डाल दी हैं, तो क्या मैं कहूं कि स्वतंत्रता पाने के लिए जंजीरें तोड़ने की जरूरत है? स्वतंत्रता पाने के लिए तो किसी जंजीर को तोड़ने की क्या जरूरत है! स्वतंत्रता पर कोई जंजीरें नहीं हैं। लेकिन फिर भी जंजीर तोड़नी पड़ेगी। परतंत्रता को तोड़ने के लिए जंजीर तोड़नी पड़ेगी। और जब जंजीर टूट जाएगी और परतंत्रता टूट जाएगी, तो जो शेष रह जाएगी, वह स्वतंत्रता है।
स्वतंत्रता के लिए जंजीर नहीं तोड़नी पड़ती है। लेकिन परतंत्रता के लिए, परतंत्रता को तोड़ने के लिए जंजीर तोड़नी पड़ती है।
शुभ तो स्वभाव है। सत्य तो स्वभाव है। धर्म तो स्वभाव है। परमात्मा
तो स्वभाव है। परमात्मा को पाने के लिए कोई जरूरत नहीं है। लेकिन परमात्मा को खोने के लिए जो-जो उपाय आपने किए हैं, उन उपायों को काटने के लिए अभ्यास करना पड़ता है। वही अभ्यास योगाभ्यास है।
उस संबंध में हम रात बात करेंगे। अभी तो पांच मिनट थोड़ा-सा योगाभ्यास करें। थोड़ा कीर्तन। थोड़ा कीर्तन में डूबें।
लेकिन कीर्तन में भी कोई देखेगा कि अरे, इसमें क्या रखा है! कोई देखेगा कि चिल्लाने-नाचने से क्या होगा!
कांटे देख रहे हैं आप। फूल देखने की कोशिश करें, तो फूल दिखाई पड़ने शुरू हो जाएंगे। और सिर्फ दिखाई पड़ने से नहीं दिखाई पड़ेंगे; थोड़ा सम्मिलित हों, तो जल्दी खिलने शुरू हो जाएंगे।
तो ताली दें; उनके गीत में आवाज दें। डोलें अपनी जगह पर। एक पांच मिनट भूलें अपने को, खोएं।

गीता दर्शन, भाग तीन
गीता दर्शन अध्याय 6
नौवां प्रवचन

योग का अंतर्विज्ञान

प्रश्नः ओशो, योग के अभ्यास और उसकी आवश्यकता पर बात चल रही थी। आपने समझाया था कि धर्म और आत्मा तो हमारा स्वभाव ही है। उसे उपलब्ध नहीं करना है, वह मिला ही हुआ है। लेकिन योग का अभ्यास अशुद्धि को काटने के लिए करना पड़ता है। कृपया योगाभ्यास से अशुद्धि कैसे कटती है, इस पर कुछ कहें।

स्वभाव कहते हैं उसे, जो हमें मिला ही हुआ है। जिसे हम चाहें तो भी खो नहीं सकते। जिसे खोने का कोई उपाय नहीं है। स्वभाव का अर्थ है, जो मेरा होना ही है, जो हमारा अस्तित्व ही है।
जो जानते हैं, वे कहते हैं कि हमारा स्वभाव स्वयं परमात्मा होना है। ऐसा कोई एक नहीं कहता; इस पृथ्वी पर कोने-कोने में, अलग-अलग सदियों में, अलग-अलग स्थानों पर जब भी किसी ने जाना है, उसने यही कहा है। यह निरपवाद घोषणा है। ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं हुआ है मनुष्य के इतिहास में जिसने कहा हो कि मैंने जान लिया भीतर जाकर और मनुष्य के भीतर परमात्मा नहीं है। जिन्होंने कहा है, परमात्मा नहीं है, वे कभी भीतर नहीं गए। और जो भीतर
गए हैं, उन्होंने सदा कहा है कि परमात्मा है। अगर कोई सत्य निरपवाद सत्य हो सकता है, तो वह एक सत्य यही है कि मनुष्य का स्वभाव परमात्मा ही है। लोग परमात्मा को खोजते हैं। कभी खोज न पाएंगे, क्योंकि खोजा उसे जा सकता है जिसे खोया हो। असल में जो खोजने निकला है, वह स्वयं ही परमात्मा है, इसलिए खोज कैसे पाएगा? हम अगर परमात्मा से अलग होते, तो कहीं न कहीं उसे खोज ही लेते, कहीं न कहीं मुठभेड़ हो ही जाती, कहीं न कहीं आमने-सामने पड़ ही जाते। लेकिन हम स्वयं ही परमात्मा हैं। इसलिए जो परमात्मा को खोजने निकला है, उसे अभी पता ही नहीं कि वह जिसे खोज रहा है, वह उसका स्वयं का ही होना है।
यह तो हमारा स्वभाव है, जिसे हम कभी खो नहीं सकते, लेकिन आश्चर्य कि इसे भी हम खोए हुए मालूम पड़ते हैं, अन्यथा खोजते ही क्यों! खो तो नहीं सकते, फिर कुछ और हो सकता है, जो खोने से मिलता-जुलता है। वह है विस्मरण, वह है फारगेटफुलनेस।
स्वभाव को खोया नहीं जा सकता, लेकिन स्वभाव को भूला जा सकता है। विस्मरण किया जा सकता है। यद्यपि विस्मरण के समय में भी कुछ बदलाहट नहीं होगी; हम जो थे, वही होंगे। लेकिन फिर भी हम जो हैं, वह हम अपने को समझ नहीं पाएंगे।
परमात्मा सिर्फ विस्मृत है।
योग की क्या जरूरत है जब परमात्मा स्वभाव है? योग की जरूरत है इस विस्मरण को तोड़कर स्मरण को पुनर्स्थापित करने के लिए। यह जो फारगेटफुलनेस है, यह जो भूल जाना है, इस भूल जाने की व्यवस्था को तोड़ देने के लिए योग का प्रयोग है।
ठीक से समझें, तो योग का समस्त प्रयोग निगेटिव है, नकारात्मक है। वह किसी चीज को पाने के लिए नहीं, कोई चीज बीच में अटकाव बन गई है, उसे तोड़ने के लिए है। योग से कोई नई चीज निर्मित नहीं होगी; योग से कोई नई उपलब्धि नहीं होगी; योग से तो जो सदा-सदा से मिला ही हुआ है, वही पुनर्स्मरण होगा। बुद्ध को जब ज्ञान हुआ, तो किसी ने बुद्ध से पूछा है कि आपने पाया क्या? तो बुद्ध बहुत हंसने लगे और उन्होंने कहा कि मत पूछो। ऐसा मत पूछो। क्योंकि मैंने पाया कुछ भी नहीं। तो उस आदमी ने कहा कि फिर इतनी मेहनत व्यर्थ गई? फिर लोग कहते हैं कि आपको मिल गया। तो मिला क्या है? आप कहते हैं, पाया नहीं! बुद्ध ने कहा, अगर ठीक से कहूं, तो यही कह सकता हूं, मैंने कुछ खोया है, मैंने कुछ पाया नहीं।

तब तो स्वभावतः पूछने वाला और भी चकित हुआ। और उसने कहा, खोने के लिए इतनी मेहनत! तो फल क्या है? अभिप्राय क्या है? और अब आप उपदेश क्यों देते हैं?
बुद्ध ने कहा, इसीलिए कि तुम भी कुछ खो सको। जो मैंने पाया है, अब मैं
कह सकता हूं कि वह सदा ही मेरे भीतर था, सिर्फ मुझे पता नहीं था। इसलिए कैसे कहूं कि मैंने पाया! था ही। इतना ही कह सकता हूं कि वह जो मेरे भीतर था, उसको भी जानने में कुछ बाधाएं मेरे भीतर थीं, उन बाधाओं को मैंने खोया। अज्ञान मैंने खोया है। और ज्ञान पाया है, ऐसा मैं नहीं कह सकूंगा, क्योंकि वह था ही। स्वयं को मैंने खोया है। लेकिन परमात्मा को मैंने पाया, ऐसा मैं न कह सकूंगा, क्योंकि वह था ही। लेकिन मेरी वजह से दिखाई नहीं पड़ता था। मेरे मैं की वजह से दिखाई नहीं पड़ता था। मेरी विस्मृति गहरी थी और दिखाई नहीं पड़ता था।
योग है विस्मरण को काटने की विधि।
विस्मरण क्यों है? विस्मरण के होने का भी कारण है। अकारण तो नहीं विस्मरण हो सकता। विस्मरण के होने का कारण है। तीन बातें ख्याल में लें, तो स्मरण की प्रक्रिया समझ में आ सकेगी।
विस्मरण का पहला बुनियादी कारण तो यह है कि जो भी हम हैं, उसे बिना एक बार भूले, हमें कभी पता नहीं चलेगा। जो भी हम हैं, उसे एक बार बिना करीब-करीब खोए, हमें पता नहीं चलेगा। असल में पता चलने के लिए विरोधी घटना घटनी चाहिए। पता चलने का नियम है।
अगर आप कभी बीमार नहीं पड़े, तो आप स्वस्थ हैं, ऐसा आपको कभी पता नहीं चलेगा। कभी भी आपको यह पता नहीं चलेगा कि आप स्वस्थ हैं। बीमार पड़ेंगे, तो पता चलेगा कि स्वस्थ थे। बीमार पड़ेंगे, तो पता चलेगा कि अब स्वस्थ हो गए। लेकिन बीमारी के कंट्रास्ट के बिना, बीमारी के विरोध के बिना, आपको अपने स्वास्थ्य का कोई स्मरण नहीं हो सकता है।
अगर इस पृथ्वी पर अंधेरा न हो, तो प्रकाश का किसी को भी पता नहीं चलेगा। प्रकाश होगा, पता नहीं चलेगा। पता चलने के लिए विपरीत का होना जरूरी है। वह जो विपरीत है, वही पता चलवाता है। अगर बुढ़ापा न हो, तो जवानी तो होगी, लेकिन पता नहीं चलेगा। अगर मौत न हो, तो जिंदगी तो होगी, लेकिन पता न चलेगा। जिंदगी का पता चलता है मौत के किनारे से। वह जो मौत की पृष्ठभूमि है, उस पर ही जीवन उभरकर दिखाई पड़ता है। अगर मौत कभी न हो, तो आपको जीवन का कभी भी पता नहीं चलेगा। यह बहुत उलटी बात लगेगी, लेकिन ऐसा ही है।
स्कूल में शिक्षक लिखता है, काले ब्लैकबोर्ड पर सफेद खड़िया से। सफेद ब्लैकबोर्ड पर भी लिख सकता है। लिखावट तो बन जाएगी, लेकिन दिखाई नहीं पड़ेगी। लिखता है काले ब्लैकबोर्ड पर और तब सफेद खड़िया उभरकर दिखाई पड़ने लगती है।
जिंदगी के गहरे से गहरे नियमों में एक है कि उसी बात का पता चलता है जिसका विरोधी मौजूद हो; अन्यथा पता नहीं चलता।
अगर हमारे भीतर परमात्मा है, सदा से है, तो भी उसका पता तभी चलेगा, जब
एक बार विस्मरण हो। उसके बिना पता नहीं चल सकता।
इसलिए विस्मरण स्मरण की प्रक्रिया का अनिवार्य अंग है। ईश्वर से बिछुड़ना, ईश्वर से मिलन का प्राथमिक अंग है। ईश्वर से दूर होना, उसके पास आने की यात्रा का पहला कदम है। केवल वे ही जान पाएंगे उसे, जो उससे दूर हुए हैं। जो उससे दूर नहीं हुए हैं, वे उसे कभी भी नहीं जान पाएंगे।
अगर आपको अपनी मां की गोद से कभी सिर हटाने का मौका न मिले, तो आपको मां की गोद का भर पता नहीं चलेगा, और सब पता चलता रहेगा। मां की गोद छूट जाती है, तब ही पता चलता है कि वह गोद थी। उसका अर्थ और अभिप्राय है।
जीवन का यह सत्य स्वयं के स्वभाव को भूलने के लिए भी लागू होता है। भूलना ही पड़ता है, तो ही हमें बोध होता है। बोध के जन्म की यह अनिवार्य प्रक्रिया है।
और भूलने का ढंग क्या होता है? भूलने का एक ही ढंग है। भूलने का एक ही ढंग है, अगर स्वयं को भूलना हो, तो स्वयं को गलत समझना पड़ेगा, तभी भूल सकते हैं; नहीं तो भूल नहीं सकते। स्वयं को कुछ और समझना पड़ेगा, तभी जो हैं, उसे भूल सकते हैं, अन्यथा भूलेंगे कैसे? इसलिए चेतना अपने को शरीर समझ लेती

है, पदार्थ समझ लेती है, मन समझ लेती है, विचार समझ लेती है, भाव समझ लेती है, वृत्ति-वासना समझ लेती है--सिर्फ आत्मा नहीं समझती। दूसरे के साथ तादात्म्य हो जाता है। यह भूलने का ढंग है।
योग इस भूलने के ढंग से विपरीत यात्रा है, पुनः घर की ओर वापसी; रिटर्निंग होम। बहुत दूर निकल गए हैं; फिर वापस पुनर्यात्रा। निश्चित ही, पुनः उसी जगह पहुंचेंगे, जहां से चले थे। लेकिन आप वही नहीं होंगे। क्योंकि जब आप चले थे, तब आपको उस जगह का कोई भी पता नहीं था। अब जब आप पहुंचेंगे, तो आपको पूरा पता होगा। वहीं पहुंचेंगे, जहां से चले थे। वहीं प्रभु के मंदिर में प्रवेश हो जाएगा, जहां से बाहर निकले थे। लेकिन जब दुबारा पहुंचेंगे, इस बीच के क्षण में प्रभु को भूलकर, तो प्रभु के मिलन के आनंद और एक्सटैसी का, समाधि का, प्रभु के मिलन के उत्सव का, प्रभु के मिलन की वह जो अपूर्व घटना घटेगी, वह प्राणों में अमृत बरसा जाएगी।
वहीं पहुंचेंगे, लेकिन वही नहीं होंगे, क्योंकि बीच में विस्मरण घट चुका। और अब जब स्मरण आएगा, तो यह काले तख्ते पर सफेद रेखाओं की तरह उभरकर आएगा। पहली दफे, जो लिखा है, वह पढ़ा जा सकेगा। पहली दफे, जो स्वभाव है, वह प्रकट होगा। पहली दफे, जो छिपा है, वह उघड़ेगा। पहली दफे, जो दबा है, वह अनावृत होगा। यह जीवन का अनिवार्य हिस्सा है।
कोई पूछे, ऐसा क्यों है? तो वह बच्चों का सवाल पूछ रहा है। वैज्ञानिक
से पूछें कि पृथ्वी गोल क्यों है? वह कहेगा, है। हम तथ्य बता सकते हैं, क्यों नहीं बता सकते। पूछें कि सूरज में रोशनी क्यों है? वह कहेगा, है। या और अगर थोड़ी खोजबीन की, तो कहेगा, हीलियम गैस की वजह से है, इसकी वजह से है, उसकी वजह से है; कि उदजन का अणु-विस्फोट हो रहा है, इस वजह से है। लेकिन पूछें कि क्यों हो रहा है सूरज पर, जमीन पर क्यों नहीं हो रहा है? तो वैज्ञानिक कहेगा, इसको मत पूछें। ऐसा हो रहा है, वह हम कह सकते हैं। व्हाई मत पूछें, क्यों मत पूछें। हाउ, कैसे; कैसे हो रहा है, वह हम बता सकते हैं। धर्म भी विज्ञान है। वह भी यह नहीं कहेगा, नहीं कह सकता है, कि क्यों। इतना ही कह सकता है, कैसे!
आदमी विस्मरण करता है। कैसे विस्मरण करता है? पर के साथ तादात्म्य करके विस्मरण करता है। कैसे स्मरण करेगा? पर के साथ तादात्म्य तोड़ेगा, तो पुनः स्मरण हो जाएगा। बस, इस प्रक्रिया की बात की जा सकती है। क्यों इस प्रक्रिया की मैं आपसे चर्चा कर रहा हूं? क्योंकि योग शुद्ध विज्ञान है। इसलिए बहुत मजे की घटना घटी है।
हिंदुस्तान में तीन बड़े धर्म पैदा हुए--जैन, हिंदू, बौद्ध। उनमें कितने ही झगड़े हों और उनमें कितने ही सैद्धांतिक विवाद हों, लेकिन योग के संबंध में उनमें कोई भी विवाद नहीं उठा। योग के संबंध में कोई विवाद नहीं है। क्या बात है?
योग है साइंस, सिद्धांत नहीं। दार्शनिक सिद्धांत नहीं, मेटाफिजिक्स नहीं, योग तो एक प्रक्रिया है, एक प्रयोग है, एक एक्सपेरिमेंट है। उसे कोई भी करे, अनुभव फलित होगा।
इसलिए योग एक अर्थ में समस्त धर्मों का सार है। भारत में तो तीन धर्म पैदा हुए, वे ठीक ही हैं। भारत के बाहर भी जो धर्म पैदा हुए--चाहे इस्लाम, और चाहे ईसाइयत, और चाहे यहूदी धर्म, चाहे पारसी धर्म--भारत के बाहर भी जो धर्म पैदा हुए, उनका भी योग से कभी भी कोई विरोध खड़ा नहीं होता है।
अगर ठीक से समझें, तो योग समस्त धर्मों की प्रक्रिया है--समस्त धर्मों की--वे कहीं पैदा हुए हों। अगर भविष्य में कभी किसी दुनिया में किसी समय में धर्म का विज्ञान स्थापित होगा, तो उसकी आधारशिला योग बनने वाली है। क्योंकि योग सिर्फ प्रक्रिया है।
योग यह नहीं कहता कि परमात्मा क्या है। योग कहता है, परमात्मा को कैसे पाया जा सकता है। योग यह नहीं कहता कि आत्मा क्या है। योग कहता है, आत्मा को कैसे जाना जा सकता है। हाउ! योग यह नहीं कहता कि किसने प्रकृति बनाई और नहीं बनाई। योग कहता है, अस्तित्व में उतरने की सीढ़ियां ये रहीं, उतरो और जानो। योग कहता है, हम न बताएंगे, तुम्हीं आंख खोलो और देख लो। आंख खोलने का ढंग हम बताए देते हैं।

योग बिल्कुल शुद्ध साइंस है, सीधा विज्ञान है। हां, फर्क है। साइंस आब्जेक्टिव है, पदार्थगत है। योग सब्जेक्टिव है, आत्मगत है। विज्ञान खोजता है पदार्थ, योग खोजता है परमात्मा।
यह पुनर्स्मरण, यह पुनर्वापसी की यात्रा योग कैसे करता है, उस संबंध में भी कुछ बातें ख्याल में ले लेनी चाहिए। क्योंकि कृष्ण ने कहा, उसके ही सतत अभ्यास से परमात्मा में प्रतिष्ठा उपलब्ध होती है। मैं कहूंगा, पुनर्प्रतिष्ठा उपलब्ध होती है।
है क्या योग? योग करता क्या है? योग की कीमिया, केमेस्ट्री क्या है? योग का सार-सूत्र, राज, मास्टर-की क्या है? उसकी कुंजी क्या है? तो तीन चरण ख्याल में लें।
एक, मनुष्य के शरीर में जितनी शक्ति का हम उपयोग करते हैं, इससे अनंत गुनी शक्ति को पैदा करने की सुविधा और व्यवस्था है। उदाहरण के लिए, आपको अभी लिटा दिया जाए जमीन पर, तो आपकी छाती पर से कार नहीं निकाली जा सकती, समाप्त हो जाएंगे। लेकिन राममूर्ति की छाती पर से कार निकाली जा सकती है। यद्यपि राममूर्ति की छाती में और आपकी छाती में कोई बुनियादी भेद नहीं है। और राममूर्ति की छाती की हड्डियों में जरा-सी भी किसी तत्व की ज्यादा स्थिति नहीं है, जितनी आपकी हड्डियों में है। राममूर्ति का शरीर उन्हीं तत्वों से बना है, जिन तत्वों से आपका। राममूर्ति क्या कर रहा है फिर? राममूर्ति, जिस शक्ति का आप कभी उपयोग नहीं करते--आप अपनी छाती का इतना ही उपयोग करते हैं, श्वास को लेने-छोड़ने का। यह एक बहुत अल्प-सा कार्य है। इसके लायक छाती निर्मित हो जाती है। राममूर्ति एक बड़ा काम इसी छाती से लेता है, कारों को छाती पर से निकालने का, हाथी को छाती पर खड़ा करने का।
और जब राममूर्ति से किसी ने पूछा कि खूबी क्या है? राज क्या है? उसने कहा, राज कुछ भी नहीं है। राज वही है जो कि कार के टायर और ट्यूब में होता है। साधारण सी रबर का ट्यूब होता है, लेकिन हवा भर जाए एक विशेष अनुपात में, तो बड़े से बड़े ट्रक को वह लिए चला जाता है। राममूर्ति ने कहा कि मैं अपने फेफड़े से वही काम ले रहा हूं, जो आप टायर और ट्यूब से लेते हैं। हवा को एक विशेष अनुपात में रोक लेता हूं, फिर छाती से हाथी गुजर जाए, वह मेरे ऊपर नहीं पड़ता, भरी हुई हवा के ऊपर पड़ता है। पर एक प्रक्रिया होगी फिर उस अभ्यास की, जिससे छाती हाथी को खड़ा कर लेती है।
हमारे शरीर की बहुत क्षमताएं हैं, जिनका हम हिसाब नहीं लगा सकते। वे सारी की सारी क्षमताएं अनुपयुक्त, अनयूटिलाइज्ड रह जाती हैं। क्योंकि जीवन के काम के लिए उनकी कोई जरूरत ही नहीं है। जीवन के लिए जितनी जरूरत है, उतना शरीर काम करता है।
अगर हम वैज्ञानिकों से पूछें, तो वैज्ञानिकों का ख्याल है कि दस प्रतिशत से ज्यादा हम अपने शरीर का उपयोग नहीं करते। नब्बे प्रतिशत शरीर की शक्तियां अनुपयोगी रहकर ही समाप्त हो जाती हैं। जीते हैं, जन्मते हैं, मर जाते हैं। वह नब्बे प्रतिशत शरीर जो कर सकता था, पड़ा रह जाता है।
योग का पहला काम तो यह है कि उन नब्बे प्रतिशत शक्तियों में से जो सोई पड़ी हैं, उन शक्तियों को जगाना, जिनके माध्यम से अंतर्यात्रा हो सके। क्योंकि बिना शक्ति के कोई यात्रा नहीं हो सकती है। एनर्जी, ऊर्जा के बिना कोई यात्रा नहीं हो सकती है। अगर आप सोचते हैं कि हवाई जहाज किसी दिन बिना ऊर्जा के चल सकेंगे, तो आप गलत सोचते हैं। कभी नहीं चल सकेंगे।
हां, यह हो सकता है, हम सूक्ष्मतम ऊर्जा को खोजते चले जाएं। बैलगाड़ी चलती है, तो ऊर्जा से। पैदल आदमी चलता है, तो ऊर्जा से। सांस चलती है, तो ऊर्जा से। सब मूवमेंट, सब गति ऊर्जा की गति है, शक्ति की गति है।
अगर आप सोचते हों कि परमात्मा तक बिना ऊर्जा के सहारे आप पहुंच जाएंगे, तो आप गलती में हैं। परमात्मा की यात्रा भी बड़ी गहन यात्रा है। उस यात्रा में भी आपके पास शक्ति चाहिए। और जिस शक्ति का आप उपयोग करते हैं साधारणतः, वह शक्ति आपके जीवन के दैनिक काम में चुक जाती है, उसमें से कुछ बचता नहीं है। और अगर थोड़ा-बहुत बचता है--अगर थोड़ा-बहुत बचता है--तो भी आपने उसको व्यर्थ फेंक देने के उपाय और व्यवस्था कर रखी है। कुछ बचता नहीं। आदमी करीब-करीब बैंक्रप्ट, दिवालिया जीता है। जो शक्ति उसे मिलती

है, दैनंदिन कार्यों में चुक जाती है। और जो शक्ति छिपी पड़ी है, उसे वह कभी जगा नहीं पाता।
तो योग का पहला तो आधार है, छिपी हुई पोटेंशियल ऊर्जा को जगाना। सब तरह के उपाय योग ने खोजे हैं कि वह कैसे जगाई जाए। इसलिए प्राणायाम खोजा। प्राणायाम आपके भीतर सोई हुई शक्तियों को हैमर करने की, चोट करने की एक विधि है। फिर योग ने आसन खोजे। आसन आपके शरीर में छिपे हुए जो ऊर्जा के स्रोत-क्षेत्र हैं, उन पर दबाव डालने की प्रक्रिया है, ताकि उनमें छिपी हुई शक्ति सक्रिय हो जाए।
आपने ट्रेन को चलते देखा है। शक्ति तो बहुत साधारण-सी उपयोग में आती है, पानी और आग की, और दोनों से बनी हुई भाप की। लेकिन भाप के धक्के से इंजन का सिलेंडर धक्का खाकर चलना शुरू हो जाता है। फिर ट्रेन चल पड़ती है। इतनी बड़ी शक्ति, इतने बड़े वजन की ट्रेन सिर्फ पानी की भाप, स्टीम चलाती है। आपके शरीर में भी बहुत-सी शक्तियां हैं, जिन शक्तियों को दबाकर सक्रिय किया जाए, तो आपके भीतर न मालूम कितने सिलेंडर चलने शुरू हो जाते हैं, जो कि अभी बिल्कुल वैसे ही पड़े हैं। इन शक्तियों के बिंदुओं को, जहां शक्ति छिपी है, योग चक्र कहता है। प्रत्येक चक्र पर छिपी हुई शक्तियां हैं। और प्रत्येक चक्र को दबाने के, गतिमान करने के, डायनेमिक करने के आसन हैं, प्राणायाम की विधियां हैं।
हम भी साधारणतः उपयोग करते हैं, हमारे ख्याल में नहीं होता है। आपने कभी ख्याल किया है कि रात आप सिर के नीचे तकिया रखकर क्यों सो जाते हैं? कभी ख्याल नहीं किया होगा। कहते हैं कि नींद नहीं आती है, इसलिए सो जाते हैं। तकिया रखकर आप न सोएं, तो नींद क्यों नहीं आती?
जब आप तकिया नहीं रखते, तो शरीर के खून की गति सिर की तरफ ज्यादा होती है। क्योंकि सिर भी शरीर की सतह में, बल्कि शरीर से थोड़ा नीचे ढल जाता है। तो सारे शरीर का खून सिर की तरफ बहता है। और जब खून सिर की तरफ बहता है, तो सिर के जो तंतु हैं, मस्तिष्क के, वे खून की गति से सजग बने रहते हैं। फिर नींद नहीं आ सकती। खून बहता रहता है, तो मस्तिष्क के तंतु सजग रहते हैं। तो फिर नींद नहीं आ सकती। तो आप तकिया रख लेते हैं।
और जैसे-जैसे आदमी सभ्य होता जाता है; तकिए बढ़ते चले जाते हैं--एक, दो, तीन! क्यों? क्योंकि उतना सिर ऊंचा चाहिए, ताकि खून जरा भी भीतर न जाए। नहीं तो मस्तिष्क की दिनभर इतनी चलने की आदत है कि जरा-सा खून का धक्का और सिलेंडर चालू हो जाएगा; आपका मस्तिष्क काम करना शुरू कर देगा।
योगी शीर्षासन लगाकर खड़ा होता है। आप समझें कि दोनों का नियम एक ही है, तकिया रखने का और शीर्षासन का आधारभूत नियम एक ही है। उलटा काम कर रहा है वह। वह सारे शरीर के खून को सिर में भेज रहा है। योगी जब शीर्षासन लगाकर खड़ा हो रहा है, तो वह कर क्या रहा है? वह इतना ही कर रहा है कि वह सारे शरीर के खून की गति को सिर की तरफ भेज रहा है।
अभी जितना आपका मस्तिष्क काम कर रहा है, वैज्ञानिक कहते हैं कि सिर्फ
एक चौथाई मस्तिष्क काम करता है, तीन चौथाई बंद पड़ा हुआ है, स्टैगनेंट, वह कभी कोई काम नहीं करता। खून की तीव्र चोट से वह जो नहीं काम करने वाला मस्तिष्क का हिस्सा है, सक्रिय किया जा सकता है। क्योंकि यह हिस्सा भी खून की चोट से ही सक्रिय होता है। खून का धक्का आपके मस्तिष्क के बंद सिलेंडर को गतिमान कर देता है।
मस्तिष्क के वे हिस्से सक्रिय हो जाएं, जो मौन चुपचाप पड़े हैं, तो आपकी समझ और आपके विवेक में आमूल अंतर पड़ जाते हैं--आमूल अंतर पड़ जाते हैं। आप नए ढंग से सोचना और नए ढंग से देखना शुरू कर देते हैं। नए ढंग से, एक नई दृष्टि, और एक नया द्वार, न्यू परसेप्शन, डोर्स आफ न्यू परसेप्शन, प्रत्यक्षीकरण के नए द्वार आपके भीतर खुलने शुरू हो जाते हैं।
मैंने उदाहरण के लिए कहा। इस तरह के शरीर में बहुत-से चक्र हैं। इन प्रत्येक चक्र में छिपी हुई अपनी विशेष ऊर्जा है, जिसका विशेष उपयोग किया जा सकता है। योगासन उन सब चक्रों में सोई हुई शक्ति को जगाने का प्रयोग है।
योग के द्वारा शरीर एक डायनेमिक फोर्स, एक बहुत जीवंत ऊर्जा की जीती- जागती, साकार प्रतिमा बन जाता है। इस शक्ति के पंखों पर चढ़कर अंतर्यात्रा

हो सकती है। अन्यथा अंतर्यात्रा अत्यंत कठिन है। वह प्रभु का जो स्मरण है, तभी हो सकता है।
तो पहला तो योग का विशेष अभ्यास है, वह है, शक्ति के सोए हुए स्रोतों
को सजीव करना, जाग्रत करना, पुनर्जीवित करना।
बहुत स्रोत हैं। कभी-कभी अचानक घटनाएं घटती हैं, तब लोगों को पता चलता है। अभी स्विटजरलैंड में एक आदमी एक ट्रेन से गिर पड़ा था। चोट लगी बहुत जोर से उसके कानों को। जब वह अस्पताल में भर्ती किया गया, तो पाया गया कि दस मील के भीतर जो भी रेडियो स्टेशन हैं, उसके कान ने, उन रेडियो स्टेशंस को पकड़ना शुरू कर दिया। बड़ी हैरानी हुई। कभी सोचा न था कि कान के पास यह क्षमता हो सकती है कि रेडियो स्टेशन को सीधा पकड़ ले, बीच में रेडियो की जरूरत न रहे!
लेकिन योग सदा से कहता है कि कान के पास ऐसी क्षमता छिपी पड़ी है, सिर्फ उसे सजग करने की बात है। यह भूल-चूक से हो गया, एक्सिडेंटल, कि आदमी ट्रेन से गिरा और उस केंद्र पर चोट लग गई और शक्ति सक्रिय हो गई। योग इसे व्यवस्थित रूप से सक्रिय करना जानता है।
उसके कुछ दिन पहले स्वीडन में एक आदमी को आंख का कुछ आपरेशन किया, और अचानक उसे दिन में आकाश के तारे दिखाई पड़ने शुरू हो गए। दिन में! आकाश में तारे तो दिन में भी होते हैं, सिर्फ सूरज की रोशनी की वजह से आपको दिखाई नहीं पड़ते। अगर आप एक गहरे कुएं में चले जाएं, गहरे अंधेरे कुएं में, तो दिन में भी आपको गहरे कुएं में से आकाश में थोड़े-से तारे दिखाई पड़ सकते हैं। लेकिन उस आदमी को तो सूरज की रोशनी में खड़े होकर तारे दिखाई पड़ने लगे। क्या हो गया?
योग बहुत दिन से कहता है कि आंख की क्षमता बहुत है। जितनी आप जानते हैं, उससे बहुत ज्यादा। लेकिन उसके सोए हुए शक्ति केंद्र हैं, उनको सजग करना जरूरी है। शरीर में ऐसे बहुत ऊर्जा-स्रोत हैं, और योग ने सबको सक्रिय करने की प्रक्रियाएं खोजी हैं। उनका ही अभ्यास, उनका ही सतत अभ्यास व्यक्ति को परमात्मा की दिशा में सक्रिय कर पाता है, एक।
दूसरी बात, जैसा हमारा मन है, साधारणतः हम सोचते हैं, साधारणतः हमारा ख्याल है कि यह जो हमारा मन है, जैसा यह मन है, इसी मन को लेकर हम परमात्मा की तरफ चले जाएंगे, तो हम गलत सोचते हैं। इस मन को लेकर जाना असंभव है। इसी मन के कारण तो हम पदार्थ की तरफ आए हैं। यह मन हमारा पदार्थ से संबंध जोड़ने का इंतजाम है; यह परमात्मा से तोड़ने का कारण है; यह जोड़ने का कारण नहीं बन सकता है।
यह जो मन है हमारे पास, यह मन पदार्थ से जोड़ने की व्यवस्था है। इसी मन
को आप परमात्मा की तरफ नहीं ले जा सकते। आपको एक नए मन को पैदा करने की जरूरत है।
और योग कहता है, वैसा नया मन पैदा किया जा सकता है। और उस नए मन को पैदा करने की भी पूरी कीमिया योग ने खोजी है कि वह नया मन कैसे पैदा हो। जैसे मैंने कहा कि शरीर की शक्ति जगाने के लिए आसन, प्राणायाम, मुद्राएं और इस तरह की सारी व्यवस्था है। हठयोग ने उस पर अपूर्व चेष्टा की है, और ऐसे राज खोज लिए हैं, जिनमें से बहुत-से राजों से अभी विज्ञान भी अपरिचित है। जैसे विज्ञान को अभी तक ख्याल नहीं था कि शरीर में खून या खून की गति वालेंटरी हो सकती है, स्वेच्छा से हो सकती है। विज्ञान समझता है कि खून की गति नान-वालेंटरी है, स्वेच्छा के बाहर है, आप कुछ कर नहीं सकते। लेकिन हठयोग बहुत हजारों साल से कह रहा है कि शरीर की कोई भी गति स्वेच्छा से चालित हो सकती है। खून भी हमारी इच्छा से चले और बंद हो सकता है। शरीर का बुढ़ापा, युवावस्था भी हमारी इच्छा के अनुकूल निर्धारित हो सकती है। शरीर की उम्र भी हम विशेष प्रक्रियाओं से लंबी और कम कर सकते हैं।
एक आदमी इजिप्त में, एक सूफी योगी, अठारह सौ अस्सी में समाधिस्थ हुआ, जीवित। और चालीस साल बाद उखाड़ा जाए, इसकी घोषणा करके समाधि में, कब्र में चला गया, अठारह सौ अस्सी में। चालीस साल बाद उन्नीस सौ बीस में कब्र खुदेगी। जो बूढ़े उसको दफनाने आए थे उस चालीस साल के विश्राम के लिए, उनमें से करीब-करीब सभी मर गए। उन्नीस सौ बीस में एक भी नहीं था। जो जवान थे,

उनमें से भी अनेक बूढ़े होकर मर चुके थे। जो बच्चे थे, वे ही कुछ बचे थे। जो उस भीड़ में छोटे बच्चे खड़े थे, वे ही बचे थे।
उन्नीस सौ बीस तक करीब-करीब बात भूली जा चुकी थी। वह तो सरकारी दफ्तरों के कागजातों में बात थी और किसी के हाथ पड़ गई। किसी को भरोसा नहीं था कि वह आदमी अब जिंदा मिलेगा उन्नीस सौ बीस में। लेकिन कुतूहलवश--किसी को भरोसा नहीं था कि वह जिंदा मिलने वाला है। चालीस साल! कुतूहलवश कब्र खोदी गई। वह आदमी जिंदा था। और बड़ा आश्चर्य जो घटित हुआ वह यह कि इस चालीस साल में उसकी उम्र में कोई भी फेर-बदल नहीं हुआ था। उसके जो चित्र छोड़े गए थे अठारह सौ अस्सी में फाइलों के साथ, उससे उसके चेहरे में चालीस साल का कोई भी फर्क नहीं था।
उन्नीस सौ बीस में कब्र के बाहर आकर वह आदमी नौ महीने और जिंदा रहा।
और नौ महीने में उतना फर्क पड़ गया, जितना चालीस साल में नहीं पड़ा था। और उस आदमी से पूछा गया कि तुमने किया क्या? उसने कहा कि मैं कुछ ज्यादा नहीं जानता हूं। सिर्फ प्राणायाम का एक छोटा-सा प्रयोग जानता हूं। श्वास पर काबू करने का एक छोटा-सा प्रयोग जानता हूं, और कुछ भी नहीं जानता।
तो एक हिस्सा तो शरीर है ऊर्जा का, जिसके योग ने सूत्र खोजे। दूसरा हिस्सा नया मन, ए न्यू माइंड पैदा करने की प्रक्रियाएं हैं, जो योग ने खोजीं। पहले प्रयोग के लिए योगासन हैं, प्राणायाम हैं, मुद्राएं हैं। दूसरे प्रयोग के लिए ध्वनि, शब्द और मंत्रों का प्रयोग है। तो मंत्रयोग की पूरी लंबी व्यवस्था है।
हमें ख्याल में भी नहीं है कि हमारा चित्त जो है, वह ध्वनियों से चलता है। ध्वनियों से!
ओंकारनाथ ठाकुर इटली में मुसोलिनी के मेहमान थे--भारत के एक बड़े संगीतज्ञ। मुसोलिनी ने ऐसे ही मजाक में--भोजन पर निमंत्रित किया था ठाकुर को--मजाक में, भोजन करते वक्त मुसोलिनी ने कहा कि मैं सुनता हूं कि कृष्ण बांसुरी बजाते थे, तो जंगली जानवर आ जाते; गउएं नाचने लगतीं; मोर पंख फैला देते। यह कुछ मुझे समझ में नहीं आता कि संगीत से यह कैसे हो सकता है! ओंकारनाथ ठाकुर ने कहा कि कृष्ण जैसी मेरी सामर्थ्य नहीं। संगीत के संबंध में उतनी मेरी समझ नहीं। सच तो यह है कि संगीत के संबंध में कृष्ण जैसी समझ पृथ्वी पर फिर दूसरे आदमी की नहीं रही है। लेकिन थोड़ा-बहुत क ख ग, जो मैं जानता हूं, वह मैं आपको करके दिखा दूं कि समझाऊं! मुसोलिनी ने कहा, समझाने में तो कोई सार नहीं है। तुम कुछ करके ही दिखा दो।
कुछ न था हाथ में। खाना ले रहे थे, तो कांटा-चम्मच हाथ में थे। सामने चीनी के बर्तन, प्यालियां थीं। ओंकारनाथ ठाकुर ने वे प्यालियां और बर्तन चम्मच-कांटे से बजाना शुरू कर दिया। पांच मिनट, सात मिनट और मुसोलिनी की आंख झप गई और जैसे वह नशे में आ गया। और उसका सिर टेबल से टकराने लगा। जोर से बजने लगे बर्तन और मुसोलिनी का सिर और जोर से टकराने लगा। और जोर से बजने लगे बर्तन! और फिर मुसोलिनी चिल्लाया कि रोको, क्योंकि मैं सिर को नहीं रोक पा रहा हूं! रोका, तो सिर लहूलुहान हो गया था।
मुसोलिनी ने अपनी आत्मकथा में लिखवाया है कि मैंने जो वक्तव्य दिया था, उसके लिए मैं क्षमा चाहता हूं। जरूर कृष्ण की बांसुरी से जंगली जानवर आ गए होंगे। जब कि एक सभ्य आदमी का सिर सारी कोशिश करके भी नहीं रुक सकता है। और सिर्फ कांटे-चम्मच बर्तन पर बजाए जा रहे हैं, कोई बड़ा वाद्य नहीं! चित्त की सूक्ष्मतम तरंगें ध्वनि की तरंगें हैं। ध्वनि से हम जीते हैं।
अभी पश्चिम में इस पर बहुत काम शुरू हुआ है, साउंड इलेक्ट्रानिक्स पर, ध्वनिशास्त्र पर। क्योंकि पश्चिम में पागलपन रोज बढ़ता जा रहा है। और अब साउंड इलेक्ट्रानिक्स के समझने वाले लोग कहते हैं कि उसके बढ़ने का कारण ट्रैफिक की ध्वनियां हैं। सड़क पर जो ध्वनियां हो रही हैं, हार्न बज रहे हैं, कारें निकल रही हैं, भोंपू बज रहे हैं, ट्रक निकल रहे हैं, हवाई जहाज उड़ रहे हैं, सुपरसोनिक उड़ रहे हैं, जंबो जेट उड़ रहे हैं, वे सब जो आवाजें पैदा कर रहे हैं, उन ध्वनियों को यह मन नहीं सह पा रहा है; विक्षिप्त हो रहा है।

अगर किन्हीं ध्वनियों को सुनकर आदमी पागल हो सकता है, तो क्या यह मानने में बहुत कठिनाई है कि किन्हीं ध्वनियों को सुनकर आदमी शांत हो जाए? अगर किन्हीं ध्वनियों को सुनकर आदमी का मन विक्षिप्त हो सकता है, तो क्या यह मानने में बहुत अड़चन होगी कि किन्हीं और ध्वनियों को, विपरीत ध्वनियों को सुनकर मनुष्य का मन समाधिस्थ हो जाए?
मंत्रयोग उसकी चेष्टा है। और इस तरह की ध्वनियां मंत्रयोग ने खोजीं, जिन ध्वनियों का उच्चार, आंतरिक उच्चार, हृदयगत उच्चार, प्राणगत उच्चार मन को नई शक्ल देना शुरू कर देता है, नया पैटर्न।
प्रत्येक ध्वनि का अपना पैटर्न है, अपना ढांचा है। आप कभी ऐसा करें कि
एक पतले, झीने कागज पर रेत के दाने बिछा दें। फिर नीचे से जोर से कहें, राम! और रेत के दाने हिलेंगे और कागज पर एक पैटर्न बन जाएगा। आप कितनी ही बार राम कहें, वही पैटर्न रेत के कणों पर बनेगा। कहें, अल्लाह! दूसरा पैटर्न बनेगा। फिर कितनी ही बार अल्लाह कहें, उस कागज के ऊपर वही दूसरा पैटर्न दोहरेगा। फिर एकाध कोई गंदी गाली देकर भी देखें, उसका भी अपना पैटर्न बनेगा।
और एक और मजे की बात है कि गंदी गाली का जो पैटर्न बनेगा उसके ऊपर, वह बहुत कुरूप होगा। और राम का जो पैटर्न बनेगा, बहुत समायोजित, संतुलित, सुंदर, अनुपात में होगा। अल्लाह का जो पैटर्न बनेगा, बहुत सुंदर, बहुत समायोजित होगा।
आप एक-एक शब्द को उस कागज के नीचे दोहराकर देखें कि उसका पैटर्न कैसा बनता है। जो पैटर्न रेत के दानों पर बन रहा है, वही आपके चित्त में भी बनता है।
आपका चित्त एक बहुत--रेत के दाने तो कुछ भी नहीं-- आपका चित्त तो सबसे ज्यादा संवेदनशील वस्तु है इस पृथ्वी पर। छोटी-सी ध्वनि तरंग उसको रूप देती है। हम जो शब्द सुन रहे हैं, जो बातें सुन रहे हैं, जो गीत सुन रहे हैं, रास्ते पर आवाजें सुन रहे हैं, वे हमारे एक तरह के मन को निर्मित करते हैं। योग कहता है, एक नए तरह का मन चाहिए पड़ेगा, अगर परमात्मा की तरफ जाना है। तो उन ध्वनियों का उपयोग करो, जिन ध्वनियों से परमात्मा की तरफ जाने वाला लयबद्ध मन निर्मित हो जाए। और इसीलिए एक शब्द को ही निरंतर दोहराने की प्रक्रियाएं ईजाद की गईं। उसका कारण है। ताकि वह पैटर्न, उस शब्द से बनने वाला पैटर्न थिर हो जाए मन पर, मन पर बैठ जाए; मन उसको इंबाइब कर ले, पी ले; मन उसके साथ एकाकार हो जाए। तो नया मन निर्मित होना शुरू हो जाएगा। ध्वनिशास्त्र चित्त के रूपांतरण की बड़ी अदभुत--बड़ी अदभुत--कुंजियां खोज लिया है। हजारों साल उस तरफ मेहनत की गई है।
तो दूसरा तत्व योग का है, ध्वनि। पहला तत्व है, ऊर्जा। दूसरा तत्व है, ध्वनि। और तीसरा तत्व है, ध्यान, अटेंशन, दिशा।
चेतना उसी दिशा में बहती है, जिस तरफ चेतना को हम उन्मुख करते हैं। जहां उन्मुख करते हैं, वहीं चेतना बहती है। और जिस तरफ चेतना बहती है, उस तरफ बहती है और शेष तरफ बहना उसका बंद हो जाता है। परमात्मा की तरफ कैसे बहे? क्योंकि परमात्मा की कोई दिशा नहीं है, ख्याल रखना।
मैं यहां बोल रहा हूं, तो आपका ध्यान मेरी तरफ बहेगा। लेकिन शेष सब तरफ बंद हो जाएगा। अगर कोई पीछे से आवाज कर दे, तो आपका ध्यान चौंककर उस तरफ बहेगा, लेकिन तब तक आपके संबंध मुझसे टूट जाएंगे। लेकिन परमात्मा की तो कोई दिशा नहीं है, सब दिशाओं में वह व्याप्त है--दिशाहीन, दिशातीत। तो परमात्मा को हम किस दिशा में खोजें? कहां ध्यान ले जाएं? इस जगत में और कुछ भी खोजना हो, तो दिशा है। परमात्मा की तो कोई दिशा नहीं, उसे हम कैसे खोजें?
तो ऐसी ध्वनियां पैदा की हैं योग ने, जो दिशाहीन हैं। जैसे ओम, यह दिशाहीन ध्वनि है। अगर आप ओम का पाठ करें, तो यह ध्वनि सर्कुलर है। इसलिए ओम का जो प्रतीक बनाया है, वह भी सर्कुलर है, वर्तुलाकार है। अगर आप भीतर ओम की ध्वनि करें, तो आपको ऐसा अनुभव होगा, जैसे मंदिर के ऊपर गुंबज होती है गोल। वह गोल गुंबज ओम की ध्वनि से जुड़कर बनाई गई है, वह जो मंदिर के ऊपर अर्ध गोलाकार छप्पर है। जब आप भीतर जोर से ओम का पाठ करेंगे, तो आपको अपने सिर और चारों तरफ एक वर्तुलाकार स्थिति का बोध होगा, दिशाहीन। यह ओम कहीं

से आता हुआ नहीं मालूम पड़ेगा। सब कहीं से आता हुआ और सब कहीं जाता हुआ मालूम पड़ेगा।
यह एक अदभुत ध्वनि है, जो योग ने खोजी है। इस ध्वनि के मुकाबले जगत में कोई दूसरी ध्वनि नहीं खोजी जा सकी। इसे इसलिए मूल ध्वनि, बीज ध्वनि... ।
इस वर्तुलाकार स्थिति में आप परमात्मा की तरफ उन्मुख होंगे, अन्यथा
आप उन्मुख न हो सकेंगे। कोई न कोई चीज आपको खींचती रहेगी अपनी तरफ; कोई न कोई दिशा आपको पुकारती रहेगी। दिशामुक्त होंगे, तो भीतर की तरफ यात्रा शुरू होगी।
योग के सतत अभ्यास से, कृष्ण कहते हैं अर्जुन को, परमात्मा में प्रतिष्ठा मिलती है।
फिर अभी योग पर और बहुत बात होगी, तो हम धीरे-धीरे उसकी और बात करेंगे।

यथा दीपो निवातस्थो नेड्गते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युंजतो योगमात्मनः।। 19।।
और जिस प्रकार वायुरहित स्थान में स्थित दीपक नहीं चलायमान होता है, वैसी ही उपमा परमात्मा के ध्यान में लगे हुए योगी के जीते हुए चित्त की कही गई है।

जैसे वायुरहित स्थान में दीए की ज्योति थिर हो, अकंप, निष्कंप, जरा भी कंपित न हो, ऐसे ही योगी का चित्त, चेतना थिर हो जाती है। यही उपमा योगी की चेतना के लिए कही गई है।
ध्यान रहे, जब तक किसी दिशा में ध्यान जाएगा, तब तक चेतना की लौ कंपित होगी। राह पर बजता है एक कार का हार्न, चेतना कंपित होगी। कोई सज्जन पीछे ही व्याख्यान दिए जा रहे हैं, चेतना कंपित होगी। सब ध्वनियां चेतना को कंपित करेंगी। तो निष्कंप चेतना कब हो पाएगी?
जब इन समस्त ध्वनियों के पार हम अपने भीतर कोई मंदिर खोज पाएं, जहां
ये कोई ध्वनियां प्रवेश न करें। हम अपने भीतर ऊर्जा का एक ऐसा वर्तुल बना पाएं, जहां चेतना अकंप ठहर जाए, जैसे वायुरहित स्थान में दीया ठहर जाए। चित्त के लिए ध्वनि ही वायु है।
तो ध्वनि का एक विशेष आयोजन भीतर करना पड़े, तभी लौ ठहर पाएगी। योग उसका अभ्यास है। और निश्चित ही ऐसी संभावनाएं हैं। आपको भी उपलब्ध हो सकती हैं। कोई विशेषता नहीं है कि किसी विशेष को उपलब्ध हों। जो भी श्रम करे उस दिशा में सतत, उसे उपलब्ध हो जाएं; तो चित्त मंडलाकार अपने भीतर ही बंद हो जाता है।
बौद्धों ने उसे मंडल कहा है। ऐसा मंडल बन जाता है कि आप अपने भीतर ही घूमते हैं, बाहर से कुछ आता नहीं, बाहर आप जाते नहीं। न आपकी चेतना बाहर जाती है, न बाहर से कोई ध्वनि-तरंग आपके भीतर प्रवेश करती है। इस मंडल में ठहरी हुई चेतना वायुरहित स्थान में दीए की लौ जैसी हो जाती है। इतनी अकंप चेतना ही प्रभु में प्रतिष्ठा पाती है, क्योंकि निष्कंप होना ही प्रभु में प्रतिष्ठित हो जाना है--निष्कंप होना ही।
कंपना ही संसार में जाना है। निष्कंप हो जाना, प्रभु में पहुंच जाना है। कंपे, कंपित हुए, संसार में गए। अगर ठीक से समझें, तो संसार एक कंपन, अनंत कंपन का समूह है। जैसे हवा में एक पत्ता कंप रहा हो वृक्ष का। बाएं हवा आती है, बाएं कंप जाता है। दाएं आती है, दाएं कंप जाता है। हिलता-डुलता, कंपता रहता है; कभी थिर नहीं हो पाता। ठीक ऐसे ही वासना में, वृत्ति में, विचार में, सब में चित्त कंपता रहता है, कंपित होता रहता है, डोलता रहता है।
इस डोलते हुए चित्त को अवसर नहीं है कि यह जान सके उस जगह को, जहां यह है। इस डोलती हुई लौ को पता भी नहीं चलेगा कि किस दीए के तेल से, किस स्रोत से इसे रोशनी मिल रही है, प्राण मिल रहे हैं। यह तो हवा के झोंकों में हवा को ही जान पाएगी ज्योति, उस स्रोत को न जान पाएगी। उस स्रोत को जानने के लिए ठहर जाना, थिर हो जाना, रुक जाना जरूरी है।
यह रुक जाना कैसे फलित हो? यह योगी की उपमा तो ठीक है, लेकिन यह योगी आदमी हो कैसे? ठहरे कैसे? रुके कैसे?

कभी-कभी बहुत कठिन दिखाई पड़ने वाली बातें बहुत छोटे-से प्रयोगों से
हल हो जाती हैं। कठिन तभी तक दिखाई पड़ती हैं, जब तक हम कुछ करते नहीं हैं और सिर्फ सोचते चले जाते हैं। सरल हो जाती हैं उसी क्षण, जब हम कुछ करते हैं! कोई अनुभव, बड़ी से बड़ी कठिनाई को कोई छोटा-सा अनुभव तोड़ जाता है।
सुना है मैंने, आज जहां रूस का बहुत बड़ा महानगर है, स्टैलिनग्राद, पुराना नाम था उस गांव का पैत्रोग्राद। पीटर महान ने उसको बसाया था, रूस के एक सम्राट ने। और पीटर महान जब उसे बसा रहा था, तो उसने एक पहाड़ी के कोने को चुना था अपने लिए कि इस जगह मैं अपना भवन बनाऊं। लेकिन उस पहाड़ी को हटाना बड़ा भारी प्रश्न था। और पीटर महान चाहता था, समतल भूमि हो जाए। बहुत इंजीनियरों को कहा, लाखों रुपए देने की बात कही। इंजीनियर कहते थे, बहुत खर्च है। कई लाख खर्च होंगे, तो यह पत्थर हटेगा।
एक दिन पीटर महान खुद गया देखने। सच में इतना बड़ा पत्थर था कि उसे काट-काटकर हटाने के सिवाय कोई उपाय उस समय नहीं था। एक बैलगाड़ी वाला किसान पास से गुजरता था, वह हंसने लगा। उसने कहा, लाखों रुपए! हम सस्ते में जमीन सपाट कर दे सकते हैं। इंजीनियर हंसे, सम्राट हंसा, कहा कि भोला किसान है, क्यों पागलपन में पड़ता है! उसने कहा कि हम कर ही देंगे सस्ते में, इसमें कोई लाखों का सवाल नहीं है। और उसने कर दिया। तो उस महल के नीचे एक पत्थर लगाया था पीटर महान ने उस किसान की स्मृति में--उस किसान की स्मृति में।
उस किसान ने बहुत कम, कुछ ही हजार रुपयों में वह पत्थर सपाट कर दिया। लेकिन उसने और ढंग से सोचा। सोचा कम, और किया कुछ ज्यादा। उसने पत्थर को काट-काटकर फेंकने का ख्याल ही नहीं लाया। उसने तो पत्थर के चारों तरफ गड्ढा खोदना शुरू करवाया। चारों तरफ गड्ढा खोदा और उस पत्थर को गड्ढे में नीचे गिरा दिया, ऊपर से मिट्टी डलवा दी। जमीन सपाट हो गई।
पीटर जब देखने आया, तो उसने कहा, वह पत्थर कहां गया? उस किसान ने कहा, पत्थर से आपको क्या प्रयोजन! जमीन सपाट चाहिए, जमीन सपाट हो गई। लेकिन पीटर महान बोला कि मैं यह जानना चाहता हूं, वह पत्थर गया कहां? उसको हटाना बहुत मुश्किल था! उस किसान ने कहा कि आप सदा उसको दूर हटाने की भाषा में सोचते थे, हमने उसको और गहराई में पहुंचा दिया।
तो उसके नाम पर एक स्मरण का पत्थर पीटर ने लगवाया था कि बड़े इंजीनियर जिसे महीनों सोचते रहे और हल न कर पाए, एक छोटे-से ग्रामीण किसान ने उसे हल कर दिया।
कई बार बड़े बुद्धिमान जिसे हल नहीं कर पाते, छोटे-से प्रयोगकर्ता उसे
हल कर लेते हैं। और योग के संबंध में तो ऐसा ही मामला है--बिल्कुल ऐसा ही मामला है।
आप अगर सोच-सोचकर हल करना चाहें, तो जिंदगी में कोई प्रश्न हल नहीं होगा। अगर आप चाहते हों कि शांत हो जाएं और विचार कर-करके शांत होना चाहें, आप कभी शांत न हो पाएंगे। क्योंकि विचार करना सिर्फ एक और तरह की अशांति है, और कुछ भी नहीं। आप सोचते हों, विचार कर-करके शांत होंगे, तो आप और अशांत हो जाएंगे; क्योंकि विचार करना एक अशांति से ज्यादा नहीं है। इसलिए जो लोग शांत होना चाहते हैं, वे उन लोगों से भी ज्यादा अशांत हो जाते हैं, जो शांत होने की फिक्र नहीं करते। उनकी अशांति दोहरी हो जाती है। एक तो अशांति होती ही है और एक अशांति और पकड़ लेती है कि शांत कैसे हों! लेकिन कोई छोटी-सी प्रक्रिया चित्त को एकदम शांत कर जाती है। कोई बहुत छोटी-सी प्रक्रिया, कोई मेथड चित्त को ऐसे शांत कर जाता है, जैसे वह कभी अशांत ही न था।
करीब-करीब ऐसा है कि जैसे कोई किसी वृक्ष के पत्ते काटता रहे और सोचे
कि वृक्ष को समाप्त करना है। वह पत्ते काट न पाए और नए पत्ते आ जाएं। और वृक्ष की आदतें ऐसी हैं कि एक पत्ता काटो, तो चार आ जाते हैं। वृक्ष समझता है, कलम की जा रही है। जब तक जड़ न काटी जाए, तब तक वृक्ष के पत्ते काटने से वृक्ष का अंत नहीं होता।
हम सब एक-एक विचार से लड़ते रहते हैं। कोई कहता है कि मुझे क्रोध बहुत आता है, तो मेरा क्रोध कैसे ठीक हो जाए? मेरे पास लोग आते हैं। कोई कहता है, क्रोध कैसे ठीक हो जाए? क्रोध, बस क्रोध ठीक हो जाए। वह समझता है कि क्रोध कोई अलग चीज है लोभ से। वह समझता है, लोभ कोई अलग चीज है मान से। वह समझता

है, मान कोई अलग चीज है काम से। वह समझता है, ये सब अलग चीजें हैं। अलग चीजें नहीं हैं, सब पत्ते हैं। और एक को काटिएगा, तो चार निकल आएंगे।
योग कहता है, जड़ को काटिए, पत्तों को मत काटिए। जड़ कट गई, तो पूरा वृक्ष गिर जाएगा।
क्रोध नहीं गिर सकता उस आदमी का, जिसका काम बाकी है। उस आदमी का लोभ नहीं गिर सकता, जिसका काम बाकी है। उस आदमी का मान नहीं गिर सकता, अहंकार नहीं गिर सकता, जिसका काम बाकी है। और मजा यह है कि चार में से कोई एक भी बच जाए, तो बाकी तीन अनिवार्य रूप से मौजूद रहेंगे। वे जा नहीं सकते।
हां, यह हो सकता है कि आपमें एक की मात्रा थोड़ी ज्यादा हो, दूसरे की थोड़ी कम हो। लेकिन अगर चारों का हिसाब जोड़ा जाए, तो सब आदमियों में बराबर मात्रा मिलेगी--चारों को जोड़ लिया जाए, तो।
लेकिन हम सब उस सर्कस के बंदरों जैसे हैं! मैंने सुना है कि एक सर्कस
के मालिक के पास बंदर थे। वह सुबह उनको चार रोटी देता, शाम को तीन रोटी। एक दिन उसने बंदरों से कहा कि कल से हम व्यवस्था बदल रहे हैं। तुम्हें सुबह तीन रोटी मिलेंगी, शाम चार रोटी। बंदर एकदम नाराज हो गए। रोज सुबह चार रोटी मिलती थीं, शाम तीन रोटी। उसने कहा, कल से हम व्यवस्था बदलते हैं। कल सुबह से तुम्हें तीन रोटी सुबह मिलेंगी, चार रोटी शाम। बंदर बहुत नाराज हो गए। चीखने-चिल्लाने लगे, कि हम बरदाश्त नहीं कर सकते यह बात। बंदरों ने तीन रोटी लेने से इनकार कर दिया। वह मालिक बड़ा हैरान हुआ। उसने कहा कि पागलो, जोड़ो भी तो!
तो मैंने सुना है कि बंदरों ने कहा, जोड़ करता ही कौन है! हमें सुबह चार चाहिए, जैसी हमें सदा मिलती रही हैं! कोई रास्ता न देखकर उन्हें चार रोटियां दी गईं, बंदर राजी हो गए। शाम उनको तीन रोटी मिलतीं, सुबह चार मिलतीं। वे तृप्त। सुबह तीन मिलतीं, शाम चार मिलतीं, सात ही होती थीं, लेकिन जोड़ कौन करता है! आदमी नहीं करते, तो बंदर क्यों करें?
मैंने सुना है, उन बंदरों ने कहा, आदमी नहीं करते! हम बंदर क्यों जोड़
की झंझट में पड़ें! हमें चार सुबह मिलती थीं, चार चाहिए। शाम तीन मिलती थीं, तीन चाहिए। हम झंझट में नहीं पड़ते।
एक आदमी में थोड़ा क्रोध ज्यादा होता है, थोड़ा लोभ कम होता है, दोनों का जोड़ बराबर सात होता है। इन चारों का जोड़ सब आदमियों में बराबर है। लेकिन जोड़ कोई करता नहीं। और एक-एक को, जिसको क्रोध ज्यादा लगता है, वह कहता है, क्रोध से किस तरह छूट जाऊं? लोभ की तो मुझे झंझट नहीं है; क्रोध ही की झंझट है। उसे पता नहीं है कि अगर क्रोध काट दिया जाए, तो क्रोध की जितनी रोटियां हैं, कहीं और जुड़ जाएंगी। क्रोध कट नहीं सकता अकेला। चारों साथ रहते हैं, या चारों साथ जाते हैं।
योग कहता है, ऊपर से मत लड़ो। जड़ पकड़ो।
जड़ कहां है? जड़ कहां है? न तो क्रोध जड़ है, न लोभ जड़ है, न काम जड़ है, न अहंकार जड़ है। जड़ कहां है?
योग कहता है, जड़ आपके मन की सिस्टम, मन की जो व्यवस्था है आपकी, उसमें
जड़ है। ऐसे मन में लोभ, क्रोध होगा ही; काम, अहंकार होगा ही। यह मन का, जो आपके पास मन है, उसका स्वभाव है। इस मन को ही बदलो। इस मन की जगह नए मन को स्थापित करो। यह मन रहा और इस मन का यंत्र रहा, तो सब जारी रहेगा। इस यंत्र को नया करो, नया यंत्र स्थापित करो। तो तुम्हारे पास नया मन होगा, जिसमें क्रोध नहीं होगा, काम नहीं होगा, मोह नहीं होगा, लोभ नहीं होगा।
लेकिन इस मन को बदलने का राज क्या है?
योग उसी राज का विस्तार है। और योग ने तीन प्रकार के राज कहे, तीन तरह
के लोगों के लिए। क्योंकि तीन तरह के लोग हैं। वे लोग हैं, जो विचार प्रधान हैं जिनके भीतर, बुद्धि प्रधान है जिनके भीतर, उनके लिए अलग राज कहा। जिनके पीछे भाव प्रधान है, उनके लिए अलग राज कहा। जिनके पीछे कर्म प्रधान है, उनके लिए अलग राज कहा।
योग की तीन शाखाएं हैं प्रमुख--फिर तो अनंत शाखाएं हो गईं--कर्म, भक्ति
और ज्ञान। और उन तीनों की तीन कुंजियां हैं। और एक-एक आदमी का जो टाइप है, उस आदमी को वह कुंजी लागू होती है। ताला खुलने पर एक ही मकान में प्रवेश

होता है। लेकिन अलग-अलग आदमी, अलग-अलग दरवाजों पर, अलग-अलग ताले डालकर खड़े हैं।
अब जो आदमी विचार से ही जीता है, उसके लिए प्रार्थना, कीर्तन, भजन बिल्कुल अर्थपूर्ण नहीं मालूम पड़ेंगे। उसमें उसका कसूर नहीं है, वैसा मन उसके पास है। वह सोचेगा, विचार करेगा। विचार करेगा, तो सोचेगा कि क्या होगा! क्योंकि विचार प्रश्न उठाता है। और जहां प्रश्न उठते हैं विचार में, वहां भाव में प्रश्न नहीं उठते हैं। भाव कभी प्रश्न नहीं उठाते। भाव निष्प्रश्न हैं। भाव स्वीकार है, एक्सेप्टिबिलिटी है। भाव राजी हो जाता है, विचार संघर्ष करता है। तो विचार के लिए तो अलग ही रास्ता खोजना पड़े। योग ने उसके लिए रास्ता खोजा।
ज्ञानयोग का अर्थ है, उस जगह पहुंच जाओ, जहां न ज्ञेय रह जाए और न ज्ञाता रह जाए, सिर्फ ज्ञान रह जाए। उसकी पूरी प्रक्रिया है। ज्ञेय को छोड़ो, आब्जेक्ट्स को छोड़ो। जिसे जानना हो, उसे छोड़ो; और जो जानने वाला है, उसे भी छोड़ो। वह जो जानने की क्षमता है, उसमें ही ठहरो, उसी में रमो। वह जो ज्ञान की क्षमता है, नोइंग फैकल्टी जो है, जानने की क्षमता, उसी में रमो। जैसे मैं फूल देख रहा हूं। तो तीन हैं वहां। एक मैं हूं, जो देख रहा है। एक फूल है, जिसे देख रहा हूं। और हम दोनों के बीच दौड़ती ज्ञान की धारा है। ज्ञानयोग कहता है, फूल को भी भूल जाओ, स्वयं को भी भूल जाओ, यह जो दोनों के बीच में ज्ञान की धारा बह रही है, इसी में ठहर जाओ, इसी में खड़े हो जाओ-- ज्ञान की धारा में।
भाव वाले आदमी को यह बात समझ में न पड़ेगी कि ज्ञान की धारा में कैसे खड़े हो जाएं! नहीं पड़ेगी समझ में, क्योंकि भाव वाला आदमी समझ से जीता नहीं। भाव वाला आदमी भावना से जीता है, समझ से नहीं। भाव वाले आदमी से कहो कि नाचो, आनंदमग्न होकर नाचो, प्रभु-समर्पित होकर नाचो। वह नाचने लगेगा। वह यह नहीं पूछेगा, नाचने से क्या होगा? वह नाचने लगेगा। और नाचने से सब हो जाएगा।
नाचने में वह क्षण आता है, कि नाचने वाला भी मिट जाता है, नाचने का ख्याल भी मिट जाता है, नृत्य ही रह जाता है--नृत्य ही। परमात्मा भी भूल जाता है, जिसके लिए नाच रहे हैं; जो नाचता था, वह भी भूल जाता है; सिर्फ नाचना ही रह जाता है--सिर्फ नृत्य, जस्ट डांसिंग। जस्ट नोइंग की तरह घटना घट जाती है। जैसे सिर्फ जानना रह जाता है, बस द्वार खुल जाता है। सिर्फ नृत्य रह जाता है, तो भी द्वार खुल जाता है।
मीरा अगर गाएगी, तो गाने में कृष्ण भी खो जाएंगे, मीरा भी खो जाएगी, गीत ही रह जाएगा। ध्यान रहे, जब मीरा गाती है, मेरे तो गिरधर गोपाल, तो न तो गोपाल रह जाते, न मेरा कोई रह जाता। मेरे तो गिरधर गोपाल, यह गीत ही रह जाता है--सिर्फ यह गीत। गिरधर भी भूल जाते हैं, गायक भी भूल जाता है; मीरा भी खो जाती है, कृष्ण भी खो जाते हैं; बस, गीत रह जाता है। सिर्फ गीत जहां रह जाता है, वहां वही घटना घट जाती है, जो सिर्फ ज्ञान रह जाता है।
लेकिन महावीर गीत को पसंद नहीं कर पाएंगे। महावीर कहेंगे, केवल ज्ञान, जस्ट नोइंग, सिर्फ ज्ञान रह जाए, बस। वहीं द्वार खुलेगा। वह महावीर का टाइप है। मीरा कहेगी, ज्ञान का क्या करेंगे! गीत रह जाए। ज्ञान बड़ा रूखा-सूखा है। ज्ञान का करेंगे भी क्या! गीत बड़ा आर्द्र, बड़ा गीला, नहा जाता है आदमी। ज्ञान तो रेगिस्तान जैसा मालूम पड़ेगा मीरा को। उसके चारों तरफ रेगिस्तान था भी। वह परिचित भी थी अच्छी तरह। रेगिस्तान जैसा मालूम पड़ेगा, रूखा-सूखा, जहां कभी कोई वर्षा नहीं होती। और गीत तो बड़ी हरियाली से भरा है। अमृत बरस जाता है। गीत बड़ा गीला है--स्नान से। प्राणों के कोने- कोने तक गीत स्नान करा जाता है। मीरा कहेगी, ज्ञान का क्या करिएगा? गीत काफी है।
लेकिन और लोग भी हैं, जिनको न गीत में कोई अर्थ होगा और न ज्ञान में कोई अर्थ होगा। जिनका अर्थ और जिनके जीवन का अभिप्राय तो कर्म से खुलेगा। कर्म ही!
आर्किमिडीज के बाबत आपने सुनी होगी कहानी कि आर्किमिडीज अपने स्नानगृह में टब में लेटा हुआ है। वैज्ञानिक है। कर्मठ है। कुछ करना ही उसकी जिंदगी है। कुछ करके खोजना ही उसकी जिंदगी है। एक पहेली पर हल कर रहा

है प्रयोगशाला में। बहुत मुश्किल में पड़ा है। कोई हल सूझता नहीं है। हजार तरह के प्रयोग कर लिए हैं। कोई रास्ता निकलता नहीं है।
सम्राट ने आर्किमिडीज को कहा है... । सम्राट को किसी ने एक बहुत बहुमूल्य मुकुट भेंट किया है सोने का। लेकिन सम्राट को शक है कि उस बहुमूल्य सोने के मुकुट में भीतर तांबा मिलाया गया है। लेकिन तोड़कर मुकुट को देखे बिना कोई उपाय नहीं है। और तोड़ो तो इतना बहुमूल्य मुकुट है कि शायद दुबारा फिर न बन सके।
तो सम्राट ने आर्किमिडीज को कहा है कि तू बिना तोड़े पता लगा। इसको छूना भी नहीं; इसको जरा भी खरोंच भी नहीं लगनी चाहिए। और पता लगाना है कि भीतर कहीं कोई और धातु तो नहीं डाल दी गई है।
वह आर्किमिडीज बड़े प्रयोग कर रहा है। फिर वह उस दिन अपने बाथरूम में जाकर अपने टब में बैठा है। टब पूरा भरा था। वह उसके अंदर बैठा है, तो बहुत-सा पानी टब के बाहर निकल गया है उसके बैठने से। अचानक उसे, टब में बैठने से और पानी के निकलने से, एक अंतःप्रज्ञा, एक इनसाइट उसके मन में कौंध गई कि मैं जरा इस पानी को तो तौल लूं कि यह कितना पानी निकल गया बाहर! यह पानी उतना ही तो नहीं है, जितना मेरा वजन है! अगर यह मेरे वजन के बराबर पानी बाहर निकल गया है, तो फिर कोई रास्ता खोज लिया जाएगा।
बस, उसको बात सूझ गई। वह चिल्लाया। नंगा था, दरवाजा खोलकर सड़क पर भागा। चिल्लाया, यूरेका! मिल गया! सड़क के लोगों ने कहा कि क्या कर रहे हो यह? कहां भागे जा रहे हो? वह नंगा भाग रहा है महल की तरफ कि मिल गया! सम्राट ने भी कहा कि रुको। कुछ होश तो लाओ! नंगे भाग रहे हो सड़क पर, लोग क्या कहेंगे!
आर्किमिडीज वापस लौट आया। वह कर्म की एक समाधि में प्रवेश कर गया था। कर्मठ आदमी था। वह भूल गया स्वयं को, वह भूल गया सम्राट को, वह भूल गया सवाल को। रह गया सिर्फ एक बोध, मिल जाने का, एक उपलब्धि का। बस, वही रह गया शेष। आर्किमिडीज कहता था कि जिंदगी में जो आनंद उस क्षण में जाना, कभी नहीं जाना। जो रहस्य उस दिन खुल गया, वह मिला सो मिला, वह तो कोई बड़ी कीमत की बात न थी। लेकिन नग्न सड़क पर दौड़ना, और मुझे पता ही नहीं कि मैं हूं। मुझे यह भी पता न रहा, जब सड़क पर लोगों ने पूछा, क्या मिल गया? तो मुझे एकदम से यह भी पता न रहा कि क्या मिल गया? वह सवाल क्या था, जो मिल गया है? सिर्फ मिल गया! बस, एक धुन रह गई मन में कि मिल गया।
वह जो मिलने का क्षण है, कर्मठ व्यक्ति को भी मिलता है, लेकिन उसे कर्म
से ही मिलता है। अब जैसे अर्जुन जैसा आदमी है, जब तलवारें चमकेंगी और जब कर्म का पूर्ण क्षण होगा, जब अर्जुन भी नहीं बचेगा, दुश्मन भी नहीं बचेगा, सिर्फ कर्म रह जाएगा। तलवार मैं चला रहा हूं, ऐसा नहीं रहेगा; तलवार चल रही है, ऐसे क्षण की स्थिति आ जाएगी, तब अर्जुन जैसे आदमी को समाधि का अनुभव होगा।
ये तीन खास प्रकार के लोग हैं। और योग ने इन तीनों पर, वैसे फिर इन तीनों के बहुत विभाजन हैं और योग ने बहुत-सी विधियां खोजी हैं, लेकिन इन तीन विधियों के द्वारा साधारणतः कोई भी व्यक्ति चेतना को उस थिर स्थान में ले आ सकता है।
ज्ञान रह जाए केवल; भाव रह जाए केवल; कर्म रह जाए केवल। तीन की जगह एक बचे, दो कोने मिट जाएं। द्रष्टा मिट जाए, दृश्य मिट जाए, दर्शन रह जाए। ज्ञाता मिट जाए, ज्ञेय मिट जाए, ज्ञान रह जाए। तीन की जगह एक रह जाए। बीच का रह जाए, दोनों छोर मिट जाएं, तो व्यक्ति की चेतना थिर हो जाती है, ऐसी जैसे कि जहां वायु न बहती हो, पवन न बहता हो, वहां दीए की ज्योति थिर हो जाती है। उस दीए की ज्योति के थिर होने को ही, कृष्ण कहते हैं, योगी को उपमा दी
गई है। योगी भी ऐसा ही ठहर जाता है।
आज के लिए इतना ही।
पांच मिनट लेकिन कोई उठेगा नहीं। पांच मिनट यहां वह भाव वाली प्रक्रिया... । पांच-सात मिनट ये संन्यासी नाचेंगे। इनके साथ आप भी मिट जाएं। और नाच ही रह जाए। गीत ही रह जाए। उठें न! पांच मिनट बैठे रहें। कोई उठकर अस्तव्यस्त न हो। और यहां मंच पर कोई नहीं आएगा देखने के लिए। मंच पर

तो जो नृत्य में सम्मिलित होते हैं, वही आएंगे। आप अपनी जगह बैठें। वहां से ताली बजाएं। आनंदित हों। गीत दोहराएं।

गीता दर्शन, भाग तीन
गीता दर्शन अध्याय 6
दसवां प्रवचन

चित्त वृत्ति निरोध

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति।। 20।।
और हे अर्जुन, जिस अवस्था में योग के अभ्यास से निरुद्ध हुआ चित्त उपराम हो जाता है और जिस अवस्था में परमेश्वर के ध्यान से शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि द्वारा परमात्मा को साक्षात करता हुआ सच्चिदानंदघन परमात्मा में ही संतुष्ट होता है।

योग से उपराम हुआ चित्त!
इस सूत्र में, कैसे योग से चित्त उपराम हो जाता है और जब चित्त उपराम
को उपलब्ध होता है, तो प्रभु में कैसी प्रतिष्ठा होती है, उसकी बात कही गई है।
चित्त के संबंध में दो-तीन बातें स्मरणीय हैं।
एक, चित्त तब तक उपराम नहीं होता, जब तक चित्त का विषयों की ओर दौड़ना सुखद है, ऐसी भ्रांति हमें बनी रहती है। तब तक चित्त उपराम, तब तक चित्त विश्रांति को नहीं पहुंच सकता है। जब तक हमें यह ख्याल बना हुआ है कि विषयों की ओर दौड़ता हुआ चित्त सुखद प्रतीतियों में ले जाएगा, तब तक स्वाभाविक है कि चित्त दौड़ता रहे।
चित्त के दौड़ने का नियम है। जहां सुख मालूम होता है, चित्त वहां दौड़ता है। जहां दुख मालूम होता है, चित्त वहां नहीं दौड़ता है। जहां भी सुख मालूम हो, चाहे भ्रांत ही सही, चित्त वहां दौड़ता है। जैसे पानी गड्ढों की तरफ दौड़ता है, ऐसा चित्त सुख की तरफ दौड़ता है। दुख के पहाड़ों पर चित्त नहीं चढ़ता, सुख की झीलों की तरफ भागता है। चाहे वे झील कितनी ही मृग-मरीचिकाएं क्यों न हों; चाहे पहुंचकर झील पर पता चले कि वहां कुछ भी नहीं है--न झील है, न गड्ढा है, न पानी है। लेकिन जहां भी चित्त को दिखाई पड़ता है सुख, चित्त वहीं दौड़ता है। चित्त की दौड़ सुखोन्मुख है।
और दौड़ जब तक है, तब तक चित्त विश्राम को उपलब्ध नहीं होता, तब तक तो वह श्रम में ही लगा रहता है। एक सुख से जैसे ही मुक्त हो पाता है--मुक्त होने का अर्थ? अर्थ यह नहीं कि एक सुख को जान लेता है। जैसे ही पता चलता है कि यह सुख सुख सिद्ध नहीं हुआ, मन तत्काल दूसरे सुखों की ओर दौड़ना शुरू कर देता है। दौड़ जारी रहती है। मन अगर जी सकता है, तो दौड़ने में ही जी सकता है। अगर गहरी बात कहनी हो, तो कह सकते हैं कि दौड़ का नाम ही मन है। चेतना की दौड़ती हुई स्थिति का नाम मन है और चेतना की उपराम स्थिति का नाम आत्मा है। करीब-करीब चित्त की स्थिति वैसी है, जैसे साइकिल आप चलाते हैं रास्ते पर। जब तक पैडल चलाते हैं, साइकिल चलती है; पैडल बंद कर लेते हैं, थोड़ी ही देर में साइकिल रुक जाती है। साइकिल को चलाना जारी रखना हो, तो पैरों का चलते रहना जरूरी है। चित्त का चलना जारी रखना हो, तो सुखों की खोज जारी रखना जरूरी है। अगर एक क्षण को भी ऐसा लगा कि सुख कहीं भी नहीं है, तो चित्त विश्राम में आना शुरू हो जाता है।
इसलिए बुद्ध ने चित्त के विश्राम और चित्त के उपराम अवस्था के लिए चार आर्य-सत्य कहे हैं। वह मैं आपको कहूं। वे योग की बहुत बुनियादी साधना में सहयोगी हैं।
बुद्ध ने कहा है, जीवन दुख है, इसकी प्रतीति पहला आर्य-सत्य है। जो भी
हम चाहते हैं, सुख दिखाई पड़ता है, निकट पहुंचते ही दुख सिद्ध होता है। जो भी हम खोजते हैं, दूर से सुहावना, प्रीतिकर लगता है; निकट आते ही कुरूप, अप्रीतिकर हो जाता है।
जीवन दुख है, ऐसा साक्षात्कार न हो, तो चित्त उपराम में नहीं जा सकेगा। ऐसा साक्षात्कार हुआ, कि चित्त की दौड़ अपने से ही खो जाती है। उसको पैडल मिलने बंद हो जाते हैं। फिर आपके पैर उसे गति नहीं देते, ठहर जाते

हैं। और चित्त चल नहीं सकता आपके बिना सहयोग के। आपके बिना कोआपरेशन के चित्त दौड़ नहीं सकता।
इसलिए आप ऐसा कभी मत कहना कि मैं क्या करूं! यह चित्त भटका रहा है। ऐसा कभी भूलकर मत कहना। क्योंकि आपके सहयोग के बिना चित्त भटका नहीं सकता। आपका सहयोग अनिवार्य है। आपका सहयोग टूटा कि चित्त की गति टूटी।
हां, थोड़ी देर मोमेंटम चल सकता है। साइकिल के पैडल बंद कर दिए, तो भी दस-बीस गज साइकिल चल सकती है। लेकिन बंद करते ही पैर साइकिल के प्राण छूटने शुरू हो जाएंगे। पुरानी गति से दस-बीस कदम चल सकती है; लेकिन वह चलना सिर्फ मरना ही होगा। साइकिल की गति मरती चली जाएगी।
जीवन दुख है, इसकी प्रतीति। पूछेंगे हम कि कैसे इसकी प्रतीति हो? बड़ा गलत सवाल पूछते हैं। इसकी प्रतीति प्रतिपल हो रही है। लेकिन उस प्रतीति से आप कभी कोई निर्णय नहीं लेते। प्रतीति की कोई कमी नहीं है। पूरा जीवन इसका ही अनुभव है कि जीवन दुख है, लेकिन निष्कर्ष नहीं लेते। और निष्कर्ष न लेने की तरकीब यह है कि अगर एक सुख दुख सिद्ध होता है, तो आप कभी ऐसा नहीं सोचते कि दूसरा सुख भी दुख सिद्ध होगा।
नहीं; दूसरे का मोह कायम रहता है। वह भी दुख सिद्ध हो जाता है, तो तीसरे पर मन सरक जाता है; और तीसरे का मोह कायम रहता है। हजार बार अनुभव हो, फिर भी निष्पत्ति हम नहीं ले पाते कि जीवन दुख है। हां, ऐसा लगता है कि एक सुख दुख सिद्ध हुआ, लेकिन समस्त सुख दुख सिद्ध हो गया है, ऐसी निष्पत्ति हम नहीं ले पाते।
यह निष्पत्ति कब लेंगे? हर जन्म में वही अनुभव होता है। पीछे जन्मों
को छोड़ भी दें, तो एक ही जन्म में लाख बार अनुभव होता है। ऐसा मालूम पड़ता है कि मनुष्य निष्पत्तियां लेने वाला प्राणी नहीं है; वह कनक्लूजन लेता ही नहीं है! और निरंतर वही भूलें करता है, जो उसने कल की थीं। बल्कि कल की थीं, इसलिए आज और सुगमता से करता है। भूल से एक ही बात सीखता है, भूल को करने की कुशलता! भूल से कोई निष्पत्ति नहीं लेता, सिर्फ भूल को करने में और कुशल हो जाता है।
एक बार क्रोध किया; पीड़ा पाई, दुख पाया, नर्क निर्मित हुआ; उससे यह निष्कर्ष नहीं लेता कि क्रोध दुख है। न, उससे सिर्फ अभ्यास मजबूत होता है। कल क्रोध करने की कुशलता और बढ़ जाती है। कल फिर दुख, पीड़ा। तब एक नतीजा फिर ले सकता है कि क्रोध दुख है। वह नहीं लेता, बल्कि दुबारा क्रोध करने से दुख का जो आघात है, मन उसके लिए तैयार हो जाता है, और कम दुख मालूम पड़ता है। तीसरी बार और कम, चौथी बार और कम। धीरे-धीरे दुख का अभ्यासी हो जाता है। और यह अभ्यास इतना गहरा हो सकता है कि दुख की प्रतीति ही क्षीण हो जाए; मन की संवेदना ही क्षीण हो जाए।
अगर आप दुर्गंध के पास बैठे रहते हैं, बैठे रहते हैं--एक दफा, दो दफा, तीन दफा--धीरे-धीरे नाक की संवेदना क्षीण हो जाएगी, दुर्गंध की खबर देनी बंद हो जाएगी। अगर आप शोरगुल में जीते हैं, तो पहले खबर देगा मन कि बहुत शोरगुल है, बहुत उपद्रव है। फिर धीरे-धीरे-धीरे खबर देना बंद कर देगा, संवेदनशीलता कुंठित हो जाएगी। ऐसा भी हो सकता है कि फिर बिना शोरगुल के बैठना आपको मुश्किल हो जाए।
जो लोग दिन-रात ट्रेन में सफर करते हैं, जब कभी विश्राम के दिन घर पर रुकते हैं, तो उनको नींद ठीक से नहीं आती! इतनी अधिक शांति की आदत नहीं रह जाती। उतना शोरगुल चाहिए। उसके बीच एट होम मालूम होता है; घर में ही हैं! हम अपने मन से दो ही स्थितियां पैदा कर पाते हैं--अभ्यास गलत का। क्योंकि हम गलत करते हैं, उसका अभ्यास होता है। और दूसरा, कुशलता। और भी कुशल हो जाते हैं वही करने में। लेकिन जो निष्पत्ति लेनी चाहिए, वह हम कभी नहीं लेते।
बुद्ध को दिखाई पड़ा है एक मुर्दा। और बुद्ध ने पूछा कि यह क्या हो गया? बुद्ध के सारथी ने कहा कि यह आदमी मर गया है। तो बुद्ध ने तत्काल पूछा कि क्या मैं भी मर जाऊंगा! अगर आप होते बुद्ध की जगह, तो आप कहते, बेचारा! बड़ा बुरा हुआ। इसके बच्चों का क्या होगा? इसकी पत्नी का क्या होगा? अभी तो कोई उम्र भी न थी मरने की। लेकिन एक बात पक्की है कि बुद्ध ने जो पूछा, वह आप न पूछते।

बुद्ध ने न तो यह कहा कि बेचारा; न कहा यह कि इसकी पत्नी का क्या होगा;
कि इसके बच्चों का क्या होगा; अभी तो कोई उम्र न थी, अभी तो मरने का कोई समय न था। बुद्ध ने दूसरा सवाल सीधा जो पूछा, वह यह कि क्या मैं भी मर जाऊंगा? यह आपने, कभी कोई रास्ते पर मरे हुए आदमी की अर्थी निकली, तब पूछा है
कि क्या मैं भी मर जाऊंगा? जब किसी को बूढ़ा हुआ देखा है, तो पूछा है कि क्या मैं भी ब.ूढा हो जाऊंगा? जब किसी को अपमानित होते देखा है, तो पूछा है कि क्या मैं भी अपमानित हो जाऊंगा? जब कोई स्वर्ण-सिंहासन से उतरकर और धूल में गिर गया है, तब कभी पूछा है कि क्या मैं भी गिर जाऊंगा?
नहीं पूछा, तो फिर बुद्ध जैसे योग की प्रतिष्ठा को आप उपलब्ध होने वाले नहीं। आपने बुनियादी सवाल ही नहीं पूछा है कि जो यात्रा शुरू करे। बुद्ध ने पूछा, क्या मैं भी मर जाऊंगा? सारथी भयभीत हुआ। कैसे कहे! पर बुद्ध की आंखों में देखा, तो और भी डरा। क्योंकि झूठ बोले, तो भी ठीक नहीं है। उसने कहा, क्षमा करें। कैसे अपने मुंह से कहूं कि आप भी मर जाएंगे! लेकिन कोई भी अपवाद नहीं। मृत्यु तो होगी।
तो बुद्ध ने यह नहीं पूछा कि कोई उपाय है कि मैं अपवाद हो जाऊं? यह नहीं पूछा कि मृत्यु आने ही वाली है, तो जल्दी से जीवन में जो भी भोगा जा सकता है, उसको भोग लूं। यह नहीं पूछा कि फिर समय खोना ठीक नहीं; फिर समय खोना ठीक नहीं। मौत करीब आती है, तो जीवन जितनी देर है, उसका पूरा रस निचोड़ लूं।
बुद्ध ने कहा, कोई अपवाद नहीं है, तो फिर घर वापस लौट चलो। मैं मर ही गया। सारथी ने कहा, अभी आप नहीं मर गए हैं। मैंने यह नहीं कहा। अभी तो आप जिंदा हैं! बुद्ध ने कहा, इससे क्या फर्क पड़ता है कि कल मौत होगी कि परसों मौत होगी। जब मौत निश्चित है, तो जीवन व्यर्थ हो गया। अब जितना भी समय मेरे पास है, मैं मौत की खोज में लगा दूं कि मौत क्या है! क्योंकि जो निश्चित है, उसी की खोज उचित है। जीवन तो अनिश्चित हो गया कि समाप्त हो जाएगा। मौत, एक तुम कहते हो, निरपवाद है; होगी ही। निश्चित एक तथ्य दिखाई पड़ा है, मौत। अब मैं इसकी खोज कर लूं कि मौत क्या है! क्योंकि निश्चित की ही खोज करने में कोई अर्थ है। अनिश्चित की, खो जाने वाले की खोज करना व्यर्थ है।
हैरानी होगी हमें। हम सुख की खोज करते हैं, बुद्ध दुख की खोज करते हैं। हम जीवन की खोज करते हैं, बुद्ध मृत्यु की खोज करते हैं। और बुद्ध मृत्यु की खोज करके परम जीवन को पा लेते हैं। और हम जीवन को खोजते-खोजते सिवाय मृत्यु के और कुछ भी नहीं पाते! और बुद्ध दुख की खोज करते हैं और परम आनंद को उपलब्ध हो जाते हैं। और हम सुख को खोजते-खोजते सिवाय कचरे के हाथ में ढेर लग जाने के और छाती पर व्यर्थ का भार इकट्ठा हो जाने के, कहीं भी नहीं पहुंचते हैं।
उलटा दिखाई पड़ेगा, लेकिन यही सत्य है। जो मृत्यु को खोजता है, वह अमृत
को खोज लेता है। जो दुख के प्रति सजग होकर दुख की खोज करता है, वह आनंद को उपलब्ध हो जाता है।
इसलिए बुद्ध ने जब अपने भिक्षुओं को पहला उपदेश दिया, तो कहा कि तुम्हें मैं पहला आर्य-सत्य कहता हूं। पहला महान सत्य, वह यह है कि जीवन दुख है। तुम इसकी खोज करो।
योग का आधारभूत वही है कि जीवन दुख है। तभी चित्त उपराम होगा। यह तो पहली प्रतीति है कि जीवन दुख है।
दूसरी बात आपसे कहूं। जैसे ही आपको यह स्पष्ट हो जाएगा कि जीवन दुख है, आप जीवन के अतिक्रमण की चेष्टा में संलग्न हो जाएंगे। क्योंकि दुख के बीच कोई भी विश्राम को उपलब्ध नहीं हो सकता। अगर यह प्रतीत हो जाए कि पूरा जीवन दुख है, तो आप इस जीवन से छलांग लगाने की कोशिश में लग जाएंगे। क्योंकि दुख के साथ ठहर जाना असंभव है।
सुख के साथ हम ठहर सकते हैं, चाहे भ्रांत ही क्यों न हो। चाहे चेहरे पर
ही क्यों न सिर्फ सुख मालूम पड़ता हो और भीतर सब दुख छिपा हो, लेकिन फिर भी हम रात ठहर सकते हैं, इस सुख को हम बिस्तर में सुला सकते हैं अपने साथ।
चाहे चेहरा ही सुख का क्यों न हो, भीतर सब दुख ही क्यों न भरा हो, रात हम इस सुख के साथ सो सकते हैं। लेकिन अगर चौंककर रात में पता चल जाए कि दुख है, तो हम छलांग लगाकर बिस्तर के बाहर हो जाएंगे। दुख के साथ जीना असंभव है।

तो पहला आर्य-सत्य, बुद्ध कहते हैं, जीवन दुख है। दूसरा आर्य-सत्य, बुद्ध कहते हैं कि दुख से मुक्ति का उपाय है। जैसे ही प्रतीत हो, वैसे ही उपाय की खोज शुरू हो जाती है कि दुख से मुक्ति का उपाय क्या!
ध्यान रखें, हम सुख खोजते हैं, बुद्ध दुख से मुक्ति खोजते हैं। इन दोनों की दिशाएं बिल्कुल अलग हैं।
सुख की खोज संसार है। दुख से मुक्ति की खोज योग है। सुख की खोज संसार है। दुख से मुक्ति की खोज, बहुत निगेटिव खोज है योग की। और संसारी की खोज बड़ी पाजिटिव मालूम पड़ती है। लगता है, हम सुख को खोज रहे हैं। योग कहता है, दुख से मुक्ति खोजी जा सकती है। और जब दुख से मुक्ति हो जाती है, तो जो शेष रह जाता है, वही आनंद है। क्योंकि वह स्वभाव है। सिर्फ व्यर्थ को हटा देना है, जो स्वभाव है, वह प्रकट हो जाएगा।
तो बुद्ध कहते हैं, दूसरा आर्य-सत्य भिक्षुओ, दुख से मुक्ति का उपाय है। लेकिन वह उपाय तुम्हारी समझ में तभी आएगा, जब दुख तुम्हारी प्रतीति, साक्षात्कार बन जाए।
सच तो यह है, प्रतीति से ही उपाय निकलता है। आपके घर में आग लग गई है,
तो आप उपाय खोजते हैं घर के बाहर निकलने का? आप शास्त्र पढ़ते हैं, कि कोई किताब देखें, जिसमें घर में आग लगती हो, तो निकलने की विधियां लिखी हों? कि किसी गुरु के चरणों में जाएं और उससे पूछें कि घर में आग लगी है, निकलने का उपाय क्या है? कि भगवान से प्रार्थना करें कि घर में आग लगी है, घुटने टेककर भगवान से कहें कि हे प्रभु, रास्ता बता, घर में आग लगी है!
घर में अगर आग लगी है और इसकी प्रतीति हो गई। हां, प्रतीति न हो, तो बात अलग है। तब, लगी न लगी बराबर है। घर में आग लगी है, इसकी प्रतीति उपाय बन जाती है। आप छलांग लगाकर बाहर हो जाएंगे। खिड़की से कूद सकते हैं, दरवाजे से निकल सकते हैं, छत से कूद सकते हैं। यह प्रतीति उपाय खोज लेगी। जैसे ही यह प्रतीति हुई कि घर में आग लगी है, आपकी पूरी चेतना संलग्न हो जाएगी और उपाय खोज लेगी।
अगर ठीक समझा जाए, तो इस बात का साक्षात्कार कि घर जल रहा है, आपके निकलने का मार्ग बन जाता है। लेकिन हमें लगता ही नहीं कि घर जल रहा है। हां, कोई बुद्ध, कोई कृष्ण कहते हैं, घर जल रहा है। तो हम कहते हैं कि महाराज, आप ठीक कहते हैं! क्योंकि हम में इतनी भी हिम्मत नहीं कि हम बुद्ध और कृष्ण से कह सकें कि आप गलत कहते हैं। किस मुंह से कहें कि गलत कहते हैं? कहीं गहरे में तो हम भी जानते हैं कि ठीक ही कहते हैं। जीवन में सिवाय दुख के कुछ हाथ तो लगा नहीं; सिवाय आग और राख के कुछ हाथ तो लगा नहीं। सिवाय लपटों में झुलसने के और कुछ हाथ तो लगा नहीं।
इसलिए गहरे मन में हम जानते तो हैं कि ठीक कहते हैं। इसलिए हिम्मत भी नहीं होती कि बुद्ध को कह दें कि गलत कहते हैं। जीवन सुख है। किस चेहरे से कहें? चेहरे पर एक भी रेखा नहीं बताती कि जीवन सुख है। अनुभव का एक टुकड़ा नहीं बताता कि जीवन सुख है। और बुद्ध से किस मुंह से कहें, क्योंकि बुद्ध के रोएं-रोएं से आनंद झलक रहा है। तो बुद्ध से किस मुंह से कहें कि जीवन सुख है!
अगर जीवन सुख है, तो बुद्ध ही कहते, तो कह सकते थे। लेकिन बुद्ध तो कहते हैं कि जीवन दुख है। और हम, जो कि दुख में डूबे खड़े हैं सराबोर, हम किस मुंह से कहें कि जीवन सुख है! तो बुद्ध को इनकार भी नहीं कर सकते कि आप गलत कहते हैं। लेकिन हमारी प्रतीति भी नहीं होती कि जीवन दुख है।
तो हम कहते हैं कि आप ठीक कहते हैं। समय पर, अनुकूल समय पर मैं भी इस घर
को छोड़ दूंगा। कृपा करके, जब तक अभी इस घर में हूं, मुझे इतना बताएं कि कैसे इस घर में शांति से रहूं! और वह रास्ता भी बता दें, क्योंकि फिर दुबारा आप मिलें न मिलें, जब मुझे प्रतीति हो कि घर में आग लगी है, तो मुझे वह मेथड, वह विधि भी बता दें कि घर के बाहर कैसे निकलूं!
बुद्ध कहा करते थे कि जो आदमी पूछता है कि घर में आग लगी हो, तो मुझे रास्ता बता दें कि कैसे निकलूं, वह सिर्फ इतनी ही खबर देता है कि उसे पता नहीं है कि घर में आग लगी है। और कुछ पता नहीं देता। क्योंकि जिसके घर में आग लगी है, वह विधि की बात नहीं पूछता। वह छलांग लगाकर बाहर निकल जाता है।

बताने वाला पीछे रह जाए; जिसको पता चला, घर में आग लगी है, वह मकान के बाहर हो जाएगा।
दूसरा सत्य बुद्ध कहते हैं, उपाय है। योग उपाय है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, योग से उपराम को उपलब्ध हुआ चित्त। योग उपाय है, विधि है, मेथड है। योग नाव है, साधन है, जिससे दुख-मुक्ति हो सकती है। सुख नहीं मिलेगा।
इसलिए जो व्यक्ति योग के पास सुख की खोज में आए हों, वे गलत जगह आ गए हैं। योग से सुख नहीं मिलेगा। जब मैं ऐसा कहता हूं, तो इसलिए कह रहा हूं कि आप सुख की तलाश में योग के पास न जाएं। योग से दुख-मुक्ति मिलेगी। इसलिए अगर आपको जीवन दुख प्रतीत हो गया हो, तो योग आपके काम का हो सकता है। लेकिन हममें से अधिक लोग योग के पास सुख की तलाश में जाते हैं। हम योग
को भी अपने सांसारिक चित्त की दौड़ के लिए एक साधन बनाना चाहते हैं! हम योग से भी चित्त की साइकिल को पैडल देना चाहते हैं! तब हम बड़ा कंट्राडिक्टरी, बड़ा व्यर्थ का, बड़ा स्वविरोधी काम कर रहे हैं। हम चाहते हैं, योग से धन मिल जाए। और ऐसे लोग मिल जाते हैं, जो कहेंगे, हां मिल जाएगा! हम चाहते हैं, योग से शांति मिल जाए, ताकि शांति के द्वारा हम धन और यश और कामनाओं की दौड़ को ज्यादा आसानी से पूरा कर सकें!
हम योग को भी संसार का एक वाहन बनाना चाहते हैं। यह नहीं होगा। क्योंकि योग दूसरा सूत्र है। पहला सूत्र तो है, दुख का अनिवार्य बोध, तभी उपाय का बोध पैदा होता है।
बुद्ध तीसरा आर्य-सत्य भी कहते हैं। यह दूसरे आर्य-सत्य को मैं और समझाना चाहूंगा। तीसरा आर्य-सत्य भी बुद्ध कहते हैं। कहते हैं, दुख है।
कहते हैं, दुख से मुक्ति का उपाय है। कहते हैं, दुख की मुक्ति के बाद की अवस्था है।
यह बुद्ध अपने अनुभव से कहते हैं कि दुख-मुक्ति के बाद की अवस्था है। दुख-मुक्ति को उपलब्ध हुए लोग हैं। बुद्ध खुद प्रमाण हैं। कोई पूछे, क्या है प्रमाण? तो योग का प्रमाण बहिर्प्रमाण नहीं हो सकता है। योग का प्रमाण तो अंतर्साक्ष्य हो सकता है। बुद्ध कह सकते हैं, मैं हूं प्रमाण।
जब जीसस से कोई पूछता है कि क्या है मार्ग? तो जीसस कहते हैं, आई एम दि वे--मैं हूं मार्ग। देखो मेरी तरफ; प्रवेश कर जाओ मेरी आंखों में। जब बुद्ध से कोई पूछता है, क्या है प्रमाण? तो बुद्ध कहते हैं, मैं हूं प्रमाण। देखो मुझे। दुख से उपराम पाया हुआ चित्त है, मैं हूं।
यह तीसरा सत्य तो केवल वे ही लोग उदघोषित कर सकते हैं, जो प्रमाण हैं।
दो तक, पहला और दूसरा सत्य तो हम समझ सकते हैं बुद्धि से, लेकिन तीसरा सत्य बुद्धि का सवाल नहीं रह जाता, प्रमाण का सवाल है। लेकिन एक बात हम तीसरे सत्य के संबंध में भी समझ सकते हैं। और वह यह कि जब अशांत चित्त होता है जगत में, तो शांत हो सके, इसकी असंभावना नहीं है। जब कोई आदमी बीमार हो सकता है जगत में, तो स्वस्थ हो सके, इसकी असंभावना क्यों कर है? जब दुखी हो सकता है कोई, तो दुख के पार हो सके, इसकी असंभावना क्या है?
और अगर बुद्धि से ही केवल सोचें, तो भी यह साफ होता है कि दुख का बोध ही
यह बताता है कि हम दुख के बोध के पार हैं। अन्यथा बोध किसे होगा? और बोध भी तभी होता है, जब विपरीत हो, नहीं तो बोध नहीं होता है। अगर आपके भीतर आनंद जैसी कोई चीज न हो, तो आपको दुख का कभी भी पता नहीं चल सकता। कैसे चलेगा? किसको चलेगा? कौन जानेगा कि यह दुख है?
जो जानता है, उसे दुख की चोट पड़नी चाहिए, उसे दुख में अपने से विपरीत कुछ दिखाई पड़ना चाहिए। इसीलिए तो दुख अप्रीतिकर है। एक अनुभव तो हमारा है कि जीवन अशांति से भरा हुआ है। दूसरा अनुभव हमारा नहीं है कि जीवन एक शांति का झरना भी हो सकता है; कि जीवन के रोएं-रोएं में एक शांति की गूंज भी हो सकती है; कि प्राण एक झील बन सकते हैं, जहां एक भी तरंग न उठती हो अशांति की।
बुद्ध कहते हैं, वह भी संभव है। उसका प्रमाण मैं हूं।
और बुद्ध चौथी बात भी कहते हैं कि ऐसा नहीं है कि वह मुझे ही घट गया है, मैं कोई अपवाद नहीं हूं। सब को घट सकता है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति गहरे में वही है। हमारे सब भेद, सब फासले ऊपरी हैं। भीतर अंतस में कोई

फासला, कोई भेद नहीं है। भीतर वही है, एक ही। लेकिन उस भीतर तक कोई पहुंचे, तभी उसका पता चले, अन्यथा उसका पता चलना कठिन है। योग उसका मार्ग है।
यह योग क्या है, जिससे चित्त उपराम को पहुंच जाए? तो तीन बातें आपसे कहूं, जिनसे योग की प्रक्रिया का आप उपयोग भी कर सकें और चित्त उपराम को पहुंच सके।
एक, जब भी मन किसी चीज में कहे, सुख है, तो मन से एक बार और पूछना कि सच? पुराना अनुभव ऐसा कहता है? किसी और व्यक्ति का अनुभव ऐसा कहता है? पृथ्वी पर कभी किसी ने कहा है कि इस बात से सुख मिल सकेगा? अनंत-अनंत लोगों का अनुभव क्या कहता है? खुद के जीवन का अनुभव क्या कहता है? बार-बार अनुभव किया है, उसका क्या निष्कर्ष है? एक बार प्रश्न जरूर पूछ लेना। जब मन कहे, इसमें सुख है। ठिठककर, खड़े होकर पूछ लेना, सच सुख है?
और जल्दी न करना; क्योंकि मन कहेगा कि कहां की बातों में पड़े हो; सुख
का क्षण चूक जाएगा! किन बातों में पड़े हो; अवसर खो जाएगा! जल्दी न करना। मन इसीलिए जल्दी करता है कि अगर आप थोड़ी देर, एक क्षण के लिए भी सजग होकर रुक गए, तो सुख दिखाई नहीं पड़ेगा, दुख का दर्शन हो जाएगा।
जब किसी हाथ में सुख मालूम पड़े और हाथ हाथ को लेने को उत्सुक हो जाए हाथ में, तक एक क्षण को सोचना कि बहुत हाथ हाथ में लिए, सुख पाया है? जब राह चलता कोई व्यक्ति सुंदर मालूम पड़े, तो एक क्षण रुककर अपने मन से पूछना कि सच में सौंदर्य पास आ जाए, तो कोई सुख पाया है? जब किसी फूल को तोड़ लेने का मन हो जाए, तो पूछना कि बहुत बार फूल तोड़े, फिर उनका किया क्या? थोड़ी देर में मसलकर रास्तों पर फेंक दिए! जब भी नई कोई गति मन में पैदा हो, तब एक क्षण ठिठककर खड़े होना।
वह क्षण अवेयरनेस का, जागरूकता का, साक्षी का, जीवन दुख है, इसकी प्रतीति को गहरा करेगा। और जैसे-जैसे यह प्रतीति गहरी होगी, वैसे-वैसे उपराम अवस्था आएगी।
दूसरा सूत्र, जब भी कोई दुख आए, तब गौर से खोजना कि पहले जब इसे सोचा था, तो यह दुख था? जब भी कोई दुख आए, तो सोचना लौटकर पीछे कि जब पहली दफा इसे चाहा था, तो यह दुख था? नहीं; तब यह सुख था। अगर यह दुख होता, तो हम चाहते ही न। जब पहली दफे आलिंगन को हाथ फैलाए थे, तो यह दुख था? अगर दुख होता, तो हम भाग गए होते; आलिंगन के लिए हाथ न फैलाए होते। यह तो अब आलिंगन में बंधकर पता चलता है कि दुख है। तो जब भी दुख आए, तो लौटकर देखना कि जब इसे चाहा था, तब यह दुख था?
और तब पता चलेगा इस क्षण में, फिर जागरूकता के क्षण में पता चलेगा कि
सब दुख सुखों की तरह प्रतीत होते हैं, सुखों की तरह निमंत्रण देते हैं; बाद में दुख की तरह सिद्ध होते हैं। और यह भी प्रतीत होगा कि सब दुख अपने बुलाए आते हैं, हम खुद ही उनको बुलाकर आते हैं। कोई दुख बिना बुलाए नहीं आता। और हम बुलाकर इसीलिए आते हैं कि हमने सोचा था, सुख है। एक क्षण जब दुख के साथ ऐसा खड़े होकर देखेंगे, तो फिर पुनः मालूम पड़ेगा, जीवन सब दुख है।
और तीसरी बात--सुख के साथ सोचना, दुख के साथ सोचना और अनुभव होगा दुख है--तब तीसरा सूत्र! जब भी अनुभव हो कि जीवन दुख है--और ऐसे अनुभव कई बार होते हैं, हम फिर उन्हें खो देते हैं, कई बार सूत्र हाथ में आता है और छूट जाता है--जब ऐसा अनुभव हो गहरा कि सच में जीवन दुख है और कोई सुख नहीं, तब पीछे लौटकर एक बार देखना कि यह कौन है, जिसे पता चलता है कि जीवन दुख है, सुख नहीं? यह कौन है? हू इ.ज दिस? यह कौन है, जो सुख चाहता है और दुख पाता है? यह कौन है, जो दुखों में झांकता है तो पाता है, अपना ही निमंत्रण है सुख को दिया गया? यह कौन है, जो सुख की कामना होती है, तो प्रश्न उठाता है कि क्या सच में ही सुख मिलेगा?
जब किसी भी क्षण में, एक्यूट इंटेंसिटी के किसी क्षण में, तीव्रता के किसी क्षण में चेतना जागकर जाने कि सब दुख है, तब पीछे लौटकर पूछना कि यह कौन है, जो जानता है कि सब दुख है? तब एक नया जानना शुरू होगा। तब एक नया अनुभव शुरू होगा; एक नया संबंध बनेगा, एक नई पहचान, एक नया परिचय--उससे, जो भीतर है, जो सब जानता है और सबके पीछे खड़ा रहता है। उससे परिचय हो जाए, तो तत्काल उपराम हो जाता है; चित्त एकदम विश्राम को उपलब्ध हो जाता है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, योग से शांत हुआ चित्त प्रभु को, परमात्मा को, परम सत्य को पा लेता है।
यह तो मैंने योग की आंतरिक विधि आपसे कही। शायद यह एकदम कठिन मालूम पड़े। शायद थोड़ी जटिल मालूम पड़े कि कैसे हो पाएगा? यह कब हो पाएगा? जिंदगी की धारा में इतनी व्यस्तता है, चौबीस घंटे इतने उलझे हैं कि कहां रुककर सोचेंगे? कहां रुककर खड़े होंगे? जिंदगी तो बहाए लिए जाती है, भीड़ चारों तरफ धक्का दिए चली जाती है। कहां है वह क्षण, जहां हम सोचें कि दुख क्या है? सुख क्या है? मैं कौन हूं? इसकी फुरसत नहीं है।
जब ऐसा लगे, तो फिर फुरसत खोजनी पड़े। फिर आप जीवन की धारा में खड़े न हो पाएं, तो घर के एक कोने में घड़ीभर के लिए अलग ही वक्त निकाल लें। बाजार में न जाग पाएं, दुकान में न जाग पाएं, तो घर में एक कोना खोज लें और घड़ीभर का वक्त निकाल लें। तय ही कर लें कि चौबीस घंटे में एक घंटा इस चित्त के उपराम होने के लिए दे देंगे।
और एक घंटा कुछ न करें। इन तीन बातों का चिंतन गहरे में ले जाएं। जीवन दुख है। सब सुख दुखों को निमंत्रण हैं और वह कौन है, जो इन्हें जानता है! एक घंटा रोज। और जीवन के अंत में आप पाएंगे कि बाकी कई घंटे बेकार गए, यही एक घंटा काम पड़ा है।
लेकिन लोग मुझे आकर कहते हैं कि नहीं, इतना समय कहां? और बहुत हैरानी मालूम पड़ती है कि जो लोग यह कहते हैं कि इतना समय कहां, वे ही लोग दूसरी दफे कहते हुए सुने जाते हैं कि समय नहीं कटता है! वे ही लोग! समय नहीं कटता है, तो ताश खेलना पड़ता है। समय नहीं कटता है, तो शतरंज बिछानी पड़ती है। समय नहीं कटता है, तो उसी अखबार को, जिसे दिन में छः दफे पढ़ चुके हैं, फिर सातवीं दफे पढ़ना पड़ता है। समय नहीं कटता है, तो वे ही बातें, जो हजार दफे कर चुके लोगों से, फिर-फिर करनी पड़ती हैं। समय नहीं कटता है, तो उसी आदमी के पास चले जाना पड़ता है, जिससे आखिर में यह कहते लौटते हैं कि बहुत बोर करता है। फिर उसी के पास चले जाना पड़ता है! फिर वही फिल्म देख लेते हैं। फिर वही सब कर लेते हैं और कहते हैं, समय नहीं कटता! और जब प्रभु-स्मरण की कोई बात कहे, तो तत्काल कहते हैं, समय कहां!
ये दोनों बातें एक साथ चलती हैं। तो ऐसा मालूम होता है कि मन धोखा दे रहा है। मन धोखा दे रहा है। जब भी प्रभु-स्मरण की बात चलती है, तो मन कहता है, समय कहां है! और जब प्रभु-स्मरण की बात नहीं कहता, तो मन कहता है कि इतना समय है, कुछ काटने का उपाय करो।
तो अपने मन को थोड़ा समझने की कोशिश करना कि मन प्रवंचक है, डिसेप्टिव है। कोई दूसरा आपको न समझा सकेगा; आप ही अपने मन को देखना कि किस तरह के धोखे देता है।
सच में ही समय नहीं है? इतना दरिद्र आदमी पृथ्वी पर नहीं है, जिसके पास
एक घंटा न हो, जो प्रभु को दिया जा सके। है ही नहीं ऐसा कोई आदमी। आठ घंटे हम नींद को दे देते हैं बिना कठिनाई के, बिना अड़चन के। अगर सारा हिसाब लगाने जाएं, तो अगर साठ साल आदमी जीए, तो बीस साल सोता है। और अगर हिसाब लगाएं, तो बाकी बीस साल दफ्तर जाना, घर आना, दाढ़ी बनाना, स्नान करना, भोजन करना, इनमें खो देता है। बाकी जो बीस साल बचते हैं, उनको समय काटने में लगाता है। समय काटने में, कि समय कैसे कटे!
तो आप कोई जिंदगी काटने के लिए आए हुए हैं, कि किस तरह काट दें! तो एकदम
से ही काट डालिए। छलांग लगा जाइए किसी पहाड़ से, समय एकदम कट जाएगा। तो ये ग्रेजुअल स्युसाइड, ये धीरे-धीरे आत्महत्या को आप कहते हैं जीवन? यह रोज-रोज धीरे-धीरे काटने को?
समय काटने का अर्थ है, जीवन को काट रहे हैं। क्योंकि समय जीवन है, और
एक गया हुआ क्षण वापस नहीं लौटता। और आप कहते हैं, समय काटना है! होटल में बैठकर काटेंगे। मित्रों से गपशप करके काटेंगे। और एक क्षण गया हुआ वापस नहीं लौटता। एक क्षण कटा हुआ पुनः नहीं मिलेगा। और एक क्षण कटा कि एक क्षण जीवन की रेत खिसक गई, जीवन कम हुआ।
बड़ा मजेदार है आदमी। एक तरफ कहता है कि उम्र कैसे बढ़ जाए! सारे पश्चिम में चिकित्सक लगे हैं खोजने में, उम्र कैसे बढ़ जाए! उम्र बढ़ जाए, तो पूछता

है, समय कैसे कटे! क्या, कर क्या रहे हैं? चिकित्सक उम्र बढ़ाते चले जाते हैं और आदमी मनोरंजन के साधन खोजता है कि समय कैसे कटे!
अब अमेरिका में बहुत चिंता है इस बात की। क्योंकि एक तरफ लोग मांग करते हैं कि काम के घंटे कम करो। घंटे कम हो गए हैं। कभी बारह घंटे थे; आठ घंटे हुए, छः घंटे हुए, पांच घंटे हुए। पांच घंटे काम के हो गए हैं। आदमी कहता है, और घंटे कम करो। काम कम। संभावना है कि जैसे ही सब आटोमैटिक हो जाए, यंत्रचालित हो जाए, तो समय और भी कम हो जाए। शायद आधा घंटा, घंटाभर एक आदमी काम कर आए, तो बहुत हो।
अब उस स्थिति में हम आ गए कि जब हमारी हजारों साल की आकांक्षा पूरी होती है कि हम काम से मुक्त होते हैं। करीब-करीब उस अवस्था में, जिसमें देवता अगर स्वर्ग में रहते होंगे, तो आदमी पहुंच गया। काम नहीं करना पड़ेगा। तो अब अमेरिका के सभी चिंतक परेशान हैं कि समय कैसे कटे! समय को कैसे काटिएगा? काम तो काट दिया, अब समय को काटिए!
और डर इस बात का है कि काम से इतना नुकसान कभी नहीं हुआ था, जितना खाली समय बच जाएगा, तो हो जाने वाला है। क्योंकि खाली आदमी क्या करेगा? वह खाली आदमी उपद्रव करेगा। वह उपद्रव कर रहा है। इसलिए जितना समृद्ध समाज, उतना उपद्रवी, उतने हत्यारे, उतने डकैत, उतने चोर, उतने बेईमान पैदा कर देता है। उसका कारण है कि वे क्या करें? समय कहां काटें? खाली बैठे रहें?
लेकिन उन आदमियों से भी अगर कहो कि प्रभु-स्मरण एक घंटा, तो वे भी तत्काल उत्तर देते हैं--बिना सोचे यह उत्तर आता है--समय कहां है!
नहीं; ऐसा लगता है कि मन आत्मवंचक है। इस आत्मवंचना को समझने की जरूरत है। और जब मन कहे, समय कहां है, तो सच में चौबीस घंटे का ब्यौरा लगाकर देखना कि सच में समय नहीं है? समय बहुत है।
और एक मजे की बात है समय के संबंध में कि सबके पास बराबर है। कोई गरीब-अमीर नहीं है। सबके पास बराबर है। यद्यपि सभी समय का बराबर उपयोग नहीं करते हैं।
इमर्सन से कोई पूछता था, तुम्हारी उम्र कितनी है? तो इमर्सन ने कहा कि तीन सौ साठ वर्ष! अब इमर्सन, ईमानदार और सच्चा आदमी झूठ बोलेगा नहीं। जिसने पूछा, उसने समझा कि लगता है, मेरे सुनने में कोई भूल हो गई। उसने कहा, माफ करें। मैं ठीक से सुन नहीं पाया। कान पास लाया। इमर्सन ने जोर से कहा कि तीन सौ साठ वर्ष! उस आदमी ने कहा कि आप मजाक तो नहीं कर रहे! क्योंकि झूठ तो आप नहीं बोल सकते। मजाक तो नहीं कर रहे! तीन सौ साठ! ज्यादा से ज्यादा आप साठ साल के मालूम पड़ते हैं।
इमर्सन ने कहा कि अच्छा, तो तुम दूसरे हिसाब से नाप रहे हो। हमारा हिसाब और है। साठ साल में आदमी जितना जीता है, हम उससे छः गुना ज्यादा जी चुके हैं। एक-एक क्षण का हमने छः गुना ज्यादा उपयोग किया है। हम उस हिसाब से कहते हैं, तीन सौ साठ साल। अगर तुम भी साठ साल के हो, तो हम तीन सौ साठ साल के हैं। क्योंकि तुमने किया क्या है? जीए कहां हो?
तो वह आदमी पूछने लगा कि समझ लें कि आप छः गुना जी लिए। पा क्या लिया?
और हम छः गुना कम जीए, तो क्या खो दिया? तो इमर्सन ने कहा, मेरी आंख में देखो, मुझे देखो, दो दिन मेरे पास रुक जाओ।
वह आदमी दो दिन इमर्सन के पास था। फिर उसके पैर छूकर, माफी मांगकर गया
कि भूल हो गई कि मैंने आपसे पूछा कि क्या पा लिया। आज मैं पहली दफा जीवन में जानकर जा रहा हूं कि मैंने साठ साल सिर्फ गंवाए हैं; कुछ पाया नहीं। दो दिन उसने देखी इमर्सन की शांति, देखी वह झील, जहां कोई एक रिपल, एक छोटी-सी तरंग भी नहीं उठती। देखा दो दिन इमर्सन के पास बैठकर कि उसके आस-पास शीतल विकिरण हो रहा है; उसके पास भी बैठकर जैसे स्नान हो जाता है। देखा इमर्सन के कमरे में सोकर और पाया कि सिर्फ इमर्सन के कमरे में सोने से भी उसके सपनों का गुणात्मक रूप बदल गया है; उसकी नींद की क्वालिटी बदल गई है। इमर्सन के साथ जंगल में चलकर देखा कि जंगल वही नहीं मालूम होता है। इस जंगल में वह पहले भी निकला था, लेकिन वृक्ष इतने हरे न मालूम पड़े थे। और फूल इतने ताजे न मालूम पड़े थे। और फूल इतने खिले न दिखाई पड़े थे। और पक्षियों का गीत इस तरह सुनाई नहीं पड़ा था, जैसा इमर्सन के साथ सुनाई पड़ने लगा।

एक शांत आदमी पास है, तो वह दूसरे को भी शांत करने की व्यवस्था जुटा देता है। दो दिन बाद वह क्षमा मांगकर लौटा। उसने कहा, मेरे साठ साल तो बेकार चले गए। अब जो थोड़े-बहुत दिन बचे हैं, क्या मैं कुछ पा सकता हूं? इमर्सन ने कहा कि अगर छः क्षण भी बचे हों, और तुम अपने साथ ईमानदार हो,
तो उतना पा सकते हो, जितना तीन सौ साठ साल में मैंने पाया। लेकिन अपने साथ ईमानदार, टु बी आनेस्ट विद वनसेल्फ।
दूसरे के साथ ईमानदार होना बहुत कठिन नहीं है। क्यों? उसी वजह से दूकानों पर लिखा हुआ है, आनेस्टी इ.ज दि बेस्ट पालिसी। दूसरे के साथ ईमानदार होने में बहुत कठिनाई नहीं है। होशियार आदमी दूसरे के साथ ईमानदार होते हैं, क्योंकि दैट इ.ज दि बेस्ट पालिसी। वही सबसे अच्छी तरकीब है। लेकिन अपने साथ ईमानदार होना आर्डुअस है, वह सिर्फ योगी ही हो पाता है। लेकिन मैं आपसे कहता हूं, जो अपने साथ ईमानदार हो सके, वह चित्त उपराम को पा सकता है।

प्रश्नः भगवान श्री, इस श्लोक में कहे गए चित्त वृत्ति निरोध के बहुत-
से अर्थ लोगों ने किए हैं। इसका आप क्या अर्थ करते हैं? कृपया इसे भी स्पष्ट करें।

चित्त वृत्ति निरोध। साधारणतः लोग चित्त वृत्ति निरोध का अर्थ करते रहे हैं, चित्त वृत्तियों का दमन। वह उसका अर्थ नहीं है। निरोध शब्द दमन का सूचक नहीं है। अगर दमन ही कहना होता, तो कहते, चित्त वृत्ति विरोध। चित्त वृत्ति विरोध!
निरोध बहुत अदभुत शब्द है। चित्त वृत्ति निरोध का अर्थ है, चित्त की इतनी गहरी समझ कि वृत्तियां निरोध को उपलब्ध हो जाएं। दमन नासमझी है और दमन सिवाय अज्ञानी के कोई भी करता नहीं। और दमन जिसने किया वृत्तियों का, वह मुश्किल में पड़ता है।
क्रोध को दबाया कि क्रोध और बड़ा होगा। क्रोध को दबाना ऐसे ही है, जैसे बीज को जमीन के भीतर दबाना। उससे तो जमीन के ऊपर ही रहता, तो बेहतर था। जमीन के भीतर बीज अब फूटेगा और वृक्ष बनेगा। जड़ें फैलेंगी; आकाश को छू जाएगा। करोड़-करोड़ बीज लगेंगे। क्रोध को दबाया, तो क्रोध के बीज को चित्त की अंतर्भूमि में डाल दिया। अब वह और बड़ा होगा।
नहीं; दमन नहीं है निरोध। चित्त वृत्ति का निरोध, चित्त वृत्ति की समझ है। जैसे ही कोई चित्त की किसी वृत्ति को समझता है, वह वृत्ति निरुद्ध हो जाती है। समझ निरोध है।
अगर कोई क्रोध को समझ ले कि क्रोध क्या है, तो सिवाय दुख और आग के पाएगा क्या? अगर कोई क्रोध को पूरा देख ले, तो सिवाय जहर के और मिलेगा क्या? और अगर दिखाई पड़े कि जहर और आग, और अपने ही हाथ से अपने ऊपर, तो ऐसा पागल खोजना मुश्किल है, जो क्रोध की वृत्ति को सक्रिय रख सके। वृत्ति निरुद्ध हो जाएगी। जहर को जहर जानते ही जहर से छुटकारा हो जाता है।
लेकिन हम सबको भ्रांति है कि हम सबको पता ही है कि क्रोध बुरा है। फिर छुटकारा क्यों नहीं होता? हम सबको मालूम है कि क्रोध बुरा है। ऐसा आदमी पा सकते हैं आप, जिसको मालूम न हो कि क्रोध बुरा है? सबको मालूम है कि क्रोध बुरा है। तो फिर मेरी बात तो बड़ी उलटी मालूम पड़ती है। सबको मालूम है, तो फिर इतने लोग सुबह से सांझ तक क्रोध में जीए चले जाते हैं!
नहीं; मैं आपसे कहता हूं, आपको जरा भी मालूम नहीं है कि क्रोध बुरा है। आपको भीतर से तो यही मालूम है कि क्रोध बहुत अच्छा है। ऊपर से सुना हुआ है कि क्रोध बुरा है। यह आपका अनुभव, आपकी प्रतीति, आपका अपना साक्षात्कार नहीं है कि क्रोध बुरा है।
गुरजिएफ, अभी फ्रांस में एक फकीर था। शायद इस सदी में थोड़े-से लोग थे, जिनकी इतनी गहरी समझ है। अगर उसके पास कोई जाता और कहता कि मैं क्रोध से बहुत परेशान हूं, क्रोध इतना बुरा है, फिर भी मैं छूट नहीं पाता, तो गुरजिएफ कहता कि रुको। पहली तो बात यह छोड़ दो कि क्रोध बुरा है। पहली बात यह छोड़ दो, क्योंकि यह बात तुम्हें कभी समझने न देगी। क्योंकि यह बात

समझदारी का झूठा भ्रम पैदा करती है कि तुमको पता है। तुमको पता ही है कि क्रोध बुरा है!
तुम्हें बिल्कुल पता नहीं है। पहले तुम यह छोड़ दो। क्रोध नहीं छूटता। क्रोध को रहने दो। कृपा करके यह छोड़ दो कि क्रोध बुरा है।
वह आदमी कहता कि क्रोध बुरा है, यह जानकर मैं इतना क्रोध कर रहा हूं!
और अगर यह छोड़ दूं कि क्रोध बुरा है, तब तो बहुत मुसीबत हो जाएगी!
गुरजिएफ कहता कि तुम रुको। हम मुसीबत को लेने को तैयार हैं। मुसीबत होने दो। और गुरजिएफ ऐसे उपाय करता कि उस आदमी के क्रोध को जगाए। ऐसी सिचुएशंस, ऐसी स्थितियां पैदा करता कि उस आदमी का क्रोध भभककर जले। और उस आदमी से कहता कि पूरा करो। थोड़ा भी छोड़ना मत। पूरा ही कर डालो। उबल जाओ। रोआं-रोआं जल उठे। आग बन जाओ। पूरा कर लो। और वह ऐसी स्थितियां पैदा करता-- अपमान कर देता, गाली दे देता या किसी और से उस आदमी को फंसवा देता--उस आदमी के घाव को छू देता कि वह एकदम किसी क्षण में होश खो देता और उबल पड़ता। और भयंकर रूप से। और वह उसको बढ़ावा दिए जाता, उसके क्रोध को, और घी डालता।
और जब वह पूरी आग में जल रहा होता, तब वह चिल्लाकर कहता कि मित्र! इस वक्त देख लो कि क्रोध क्या है। यह है मौका। अभी देख लो कि क्रोध क्या है। पहचान लो कि क्रोध क्या है। यह है। आंख बंद करो, एंड मेडिटेट आन इट। आंख बंद कर लो, और अब ध्यान करो इस क्रोध पर। रोआं-रोआं जल रहा है। खून का कण-कण आग हो गया है। हृदय फूट पड़ने को है। मस्तिष्क की शिरा-शिरा खून से भर गई है और पागल है। रुको भीतर। अब तुम जरा ठीक से देख लो, क्रोध पूरा मौजूद है। और यह आश्चर्य की बात है कि गुरजिएफ जिसको भी ऐसा क्रोध दिखा देता, वह आदमी दुबारा क्रोध करने में असमर्थ हो जाता--असमर्थ!
लेकिन हमारी पूरी व्यवस्था उलटी है। छोटे-से बच्चे को हम दमन शुरू करवा देते हैं, क्रोध मत करना। क्रोध दबाना; क्रोध बहुत बुरा है। और बच्चा देखता है कि बाप क्रोध करता है; मां क्रोध करती है। सब जारी है! वह बाप बच्चे को समझा रहा है कि क्रोध मत करना; क्रोध बुरा है। और बच्चा अगर न माने, तो बाप क्रोध में आ जाता है उसी वक्त! वह बच्चा देखता है कि बड़ा मजा चल रहा है, बड़ा खेल चल रहा है!
और बच्चे बहुत एक्यूट आब्जर्वर्स हैं, बड़े गौर से देखते हैं। क्योंकि अभी उनकी निरीक्षण की क्षमता बहुत शुद्ध है। वे बिल्कुल ठीक देखते हैं कि हद बेईमानी चल रही है! बाप कह रहा है, क्रोध मत करना, और अगर हम क्रोध करते हैं, तो वह खुद ही क्रोध कर रहा है!
दमन हम करवा रहे हैं। कभी बच्चा क्रोध को जान नहीं पाएगा कि क्रोध क्या है। बस, इतना ही जान पाएगा, क्रोध बुरा है। और कुनकुने क्रोध को जान पाएगा, जो बीच-बीच में फूटता रहेगा।
कुनकुने क्रोध से कभी पहचान नहीं हो सकती। कुनकुने पानी में हाथ डालने से कभी वह स्थिति न आएगी कि गरम पानी जलाता है, इसका पता चले। एक बार उबलते पानी में हाथ जाना जरूरी है। फिर हाथ बाहर रहने लगेगा। फिर कोई कहेगा कि प्यारे आओ, बहुत अमृत उबल रहा है। हाथ डालो! कहोगे कि प्यारे बिल्कुल नहीं आएंगे। अनुभव है!
वृत्तियों का साक्षात्कार--उनकी शुद्धतम स्थिति में--निरोध बनता है; कोई भी वृत्ति का शुद्धतम साक्षात्कार। लेकिन मनुष्य की संस्कृति ने इतने जाल खड़े कर दिए हैं कि कोई भी आदमी किसी वृत्ति का शुद्ध साक्षात्कार नहीं कर पाता। न तो कामवासना का शुद्ध साक्षात्कार कर पाता है; न क्रोध का, न लोभ का, न भय का। किसी चीज का शुद्ध साक्षात्कार नहीं होता है। इसलिए किसी से छुटकारा नहीं होता; कोई चीज निरुद्ध नहीं होती।
भय है। कोई भय का शुद्ध साक्षात्कार नहीं कर पाता। क्योंकि हर बच्चे
को सिखाया जा रहा है कि निर्भीक रहो, डरना मत। डरे हुए आदमी से कह रहे हो, डरना मत! जटिलता और बढ़ गई। भीतर डरेगा; ऊपर एक खोल तैयार कर लेगा कि मैं डरता नहीं हूं। अंधेरी गली में से निकलेगा, सीटी बजाएगा, और सोचेगा, मैं डरता नहीं हूं। सीटी इसीलिए बजा रहा है कि डर लग रहा है। अपनी ही सीटी सुनकर ऐसा भ्रम पैदा होता है कि अकेला नहीं हूं। कहेगा यही कि मैं तो सीटी बजाकर निकल जाता हूं अंधेरे में से। लेकिन इसको उजाले में कभी किसी ने सीटी बजाते नहीं देखा! अंधेरे में सीटी बजाता है, ताकि भूल जाए कि डर है।

दोहरा व्यक्तित्व हमारा हो जाता है, डबल बाइंड। ऊपर एक थोथी खोल चढ़ जाती है सिखाई हुई, सिखावन की, कंडीशनिंग की, और भीतर असली आदमी रहता है वृत्तियों का। वह वृत्तियों वाले आदमी को हम ऊपर के झूठे आदमी से दबाए चले जाते हैं। हां, जब जरूरत नहीं रहती, तब वह दबा रहता है। जब जरूरत आती है, वह इसको धक्का देकर बाहर आ जाता है। जब जरूरत निकल जाती है, वह फिर भीतर चला जाता है।
हमारे भीतर दो आदमी हैं। एक आदमी वह, जो साधारण स्थितियों में काम करता है। रास्ते पर आप जा रहे हैं, बड़े भले आदमी मालूम पड़ रहे हैं। वह आपका एक आदमी है। किसी आदमी ने एक धक्का दे दिया; वह जो बाहर आदमी था, भीतर चला गया; जो भीतर आदमी था, वह बाहर आ गया। यह दूसरा आदमी है। यह असली आदमी है। यही असली आदमी है। वह जो नकली आदमी सड़क पर चला जा रहा था बिल्कुल मुस्कुराता हुआ, एकदम सज्जन मालूम पड़ रहा था, वह असली आदमी नहीं है। वह तो बेकाम है। वह तो सिर्फ एक चेहरा है, जिसका उपयोग हम करते रहते हैं, एक मास्क, एक मुखौटा। असली आदमी भीतर बैठा है।
वह असली आदमी तभी निकलता है, जब कोई जरूरत होती है, नहीं तो वह भीतर रहा आता है। जब जरूरत चली जाती है, वह पुनः भीतर चला जाता है। यह नकली आदमी फिर ऊपर आकर बैठ जाता है। असली आदमी क्रोध करता है, नकली आदमी माफी मांग लेता है। असली आदमी क्रोध करता है, नकली आदमी कसमें खाता है कि क्रोध नहीं करूंगा। असली आदमी क्रोध करता चला जाता है, नकली आदमी गीता पढ़ता चला जाता है; सोचता रहता है, क्रोध का निरोध कैसे करें! असली आदमी गीता नहीं पढ़ता, वह जो भीतर बैठा है। यह नकली आदमी क्रोध नहीं करता। और नकली आदमी कसमें खाता है।
ऐसे दोहरे तल पर, समानांतर रेखाओं की तरह दो आदमी हमारे भीतर हो जाते हैं। वे कहीं मिलते हुए मालूम नहीं पड़ते। रेल की पटरियों की तरह दिखाई पड़ते हैं कि आगे मिलते हैं, मिलते कहीं भी नहीं--पैरेलल। बस, चलते चले जाते हैं। पूरी जिंदगी ऐसे ही बीत जाती है। काम जब पड़ता है, असली आदमी निकल आता है। जब कोई काम नहीं रहता, नकली आदमी अपने बैठकखाने में बैठा रहता है।
इस स्थिति को तोड़ना पड़ेगा। इस स्थिति को तोड़ने का एक ही उपाय है, वृत्तियों का शुद्ध साक्षात्कार। यह बड़े मजे की बात है कि किसी भी वृत्ति का शुद्ध साक्षात्कार आपको तत्काल निरोध में ले जाता है; क्योंकि शुद्ध वृत्ति का साक्षात्कार नरक का साक्षात्कार है। कोई उपाय ही नहीं है; उसको जाना कि आप बाहर हुए। नहीं जाना, तो भीतर रहेंगे। और हमारी सारी व्यवस्था, उसको न जानने की व्यवस्था है, निग्लेक्ट करने की।
मां जानती है, बाप जानता है कि बेटे की उम्र हो गई है; अब उसमें कामवासना जग रही है। लेकिन मां-बाप ऐसे चलते रहते हैं, जैसे उन्हें कुछ भी पता नहीं कि बेटे में कामवासना जग रही है। वे ऐसा मानकर चलते रहते हैं कि नहीं, सबके बेटों में जग रही होगी; अपने बेटे में नहीं जग रही है। अपना बेटा बिल्कुल सात्विक!
एक युवक ने संन्यास लिया है। उसने मुझे आकर बड़ी मजेदार बात कही। वह लौटकर अपने पिता के पास गया, तो पिता ने कहा, संन्यास लिया, यह तो बहुत ठीक है। विवाहित युवक है। पिता ने उपदेश दिया कि अब संन्यास लिया है, यह तो बहुत ठीक है। लेकिन असली चीज ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य की साधना करना। वह बेटा मुझसे आकर कह रहा था कि मेरे मन में हुआ कि पिताजी, अगर आप भी ब्रह्मचर्य की साधना करते, तो मैं संन्यास लेने को नहीं हो पाता! लेकिन डर के मारे नहीं कहा। लेकिन भीतर के मन ने तो कह ही दिया। अब यह पिता कह रहा है, बिना इस बात को समझे कि संन्यास क्या है! ब्रह्मचर्य क्या है! कामवासना क्या है! कुछ बिना समझे! उड़ते हुए शब्द पकड़ गए हैं दिमाग में--ब्रह्मचर्य! अगर बाप समझदार हो, तो बेटे से कहेगा, कामवासना का इतना साक्षात कर लो, इतना साक्षात कि तुम उसे पूरा पहचान जाओ। जिस दिन तुम पूरा पहचान जाओगे, ब्रह्मचर्य के कहने की जरूरत नहीं; वह फलित होगा। लेकिन कोई बाप यह नहीं कहेगा। बाप कहेगा, ब्रह्मचर्य साधो। न उसने साधा है; न उसके बाप ने साधा है; न उसके बाप ने साधा है। क्योंकि साधा होता, तो यह मौका नहीं आता कहने का।

कामवासना से भी प्रतीति नहीं है, साक्षात्कार नहीं है। कामवासना भी आपके भीतर का आदमी आपकी छाती पर चढ़कर पकड़ लेता है। क्षणभर बाद लौट जाता है भीतर। वह जो ऊपरी आदमी था, सतही आदमी, वह फिर पछताता है। वह कहता है, फिर वही गलती, फिर वही भूल! क्या नासमझी!
वह करते रहो भूल, चौबीस घंटे तुम सोचते रहो, चौबीस घंटे बाद वह भीतर वाला आदमी फिर गर्दन दबाकर सवार हो जाएगा। उस भीतर वाले आदमी को ही समझना कि मैं हूं। इस थोथे चेहरे को मत समझना कि मैं हूं। वह जो भीतर बैठा है, वही मैं हूं। इसको समझना। और वह जो भीतर है, उसकी एक-एक वृत्ति के पूरे के पूरे शुद्ध प्रत्यक्षीकरण में उतर जाना। और एक बार भी एक वृत्ति का शुद्ध साक्षात्कार हो जाए, तो निरोध उपलब्ध होता है।
कृष्ण जब कहते हैं, चित्त वृत्ति निरोध, या पतंजलि जब कहते हैं, चित्त वृत्ति निरोध, तो पतंजलि कोई फ्रायड से कम समझदार आदमी नहीं हैं; ज्यादा ही समझदार हैं। और जब कृष्ण कहते हैं, चित्त वृत्ति निरोध, तो फ्रायड से बहुत गहरा जानते हैं।
जो भी इसका अर्थ करता है दमन, वह नहीं समझता। उन्हीं अर्थ करने वालों
ने यह हमारा समाज पैदा किया है, जो निपट बेईमान है, हिपोक्रेट है, पाखंडी है; बिल्कुल झूठ है। और सबको पता है कि बिल्कुल झूठ है। लेकिन ऐसे जीए चले जाते हैं कि जैसे बिल्कुल सच है। बस चेहरों से ही संबंध बनाते हैं। और भीतर एक दूसरी दुनिया हमारे नीचे अंडर करेंट की तरह सरकती रहती है। अगर कोई आदमी चांद से उतर आए, मंगल ग्रह से आकर हमें देखे, तो उसे कुछ बातों का पता ही नहीं चलेगा। हमारे चेहरों का ही पता चलेगा। उसे पता ही नहीं चलेगा कि भीतर एक और असली दुनिया है, वास्तविक, जो चल रही है।
पति-पत्नी सड़क पर चलते हैं, तब वे एक दूसरी दुनिया में हैं, चेहरे वाली दुनिया में। जब उनको घर उनके मुखौटे उतारकर और लड़ते-झगड़ते देखो, तब एक दूसरा चेहरा है। यह तो आईने-वाईने में तैयार होकर जब सड़क पर निकलते हैं, तो दूसरे दंपतियों को ईर्ष्या का कारण हो जाते हैं कि दांपत्य तो यह है! कैसा सुख है! हालांकि वे भी यही सोच रहे हैं उनके चेहरे और मुखौटों को देखकर कि दांपत्य तो यह है! कैसा सुख है!
असली आदमी जो भीतर बैठे हैं, हिंसा से भरे, क्रोध से भरे, वासना से भरे, लोभ से भरे, क्रूरता से भरे, उस असली आदमी को पहचानना पड़े; उस असली आदमी को जीना भी पड़े। उस असली आदमी से भागने का सीधा कोई उपाय नहीं है; जीकर ही उससे छुटकारा है। उसको जीना पड़े, उसकी पीड़ा को अनुभव करना पड़े, उसके पूरे संताप से गुजरना पड़े। और जो आदमी भी उसके पूरे संताप से गुजरने को राजी है, वह क्षण में बाहर हो सकता है।
भागें मत। एस्केप से कुछ होने वाला नहीं। अपने से भागकर कहीं जा नहीं सकते हैं। जो भी अपने भीतर है, उसे पूरी तरह जीएं। और साधक मुखौटे को तोड़ डाले, हटा दे। कह दे कि जैसा हूं, बुरा-भला ऐसा हूं। आदमी बुरा हूं, बुरा हूं। इस बुरेपन के ऊपर मैं कोई मुलम्मा नहीं करूंगा, कोई मलहम-पट्टी नहीं करूंगा। बुरा हूं, तो बुरा हूं, उसमें क्या किया जा सकता है! इसे जाहिर करूंगा कि मैं बुरा हूं।
उसे कह देना चाहिए अपनी पत्नी को कि जब सड़क पर कोई सुंदर स्त्री दिखाई पड़ती है, तो मेरा मन डोलता है। उसे कह देना चाहिए, ऐसा होता है। और जैसे ही वह इस मुखौटे को तोड़ना शुरू करेगा... उसे कह देना चाहिए अपनी पत्नी को या अपने पति को या अपने बेटे को कि जब तुम मेरे अहंकार को चोट पहुंचाते हो, तो मन होता है, तुम्हारी गर्दन दबा दूं। ऐसा होता है। इसमें कुछ छिपाने जैसा नहीं है। इतना ही भीतर होता है। इसे प्रकट करने जैसा है।
मित्र तो मैं उन्हें ही कहता हूं, जिनके सामने हमारे मुखौटे न हों। परिवार मैं उसे ही कहता हूं, जिनके सामने हमारे मुखौटे न हों। समाज मैं उसे ही कहता हूं, जो हमें स्वतंत्रता देता हो कि हम अपने मुखौटे उतारकर, जो सीधे-सच्चे हैं, हो सकें। वही सुसंस्कृति है, जहां हमारे भीतर जो है, हम वही होने के लिए स्वतंत्र हैं।
और अगर यह हो सके, अगर यह आप कर पाएं, तो आपको अपने भीतर के असली रूप में जीने का अवसर मिलेगा। और तब आप पाएंगे, वह असली रूप नरक है। और वह असली रूप दुख है। वह असली रूप बुद्ध के पहले आर्य-सत्य को प्रकट कर जाएगा।

और वह पहला आर्य-सत्य प्रकट हो जाए, तो उपाय तत्काल मिल जाता है। मकान में आग लगी है और छलांग लगाकर कोई बाहर निकल जाए, ऐसे ही आप अपनी तथाकथित वृत्तियों के जाल से छलांग लगाकर बाहर हो जाएंगे। दुबारा लौटने का मन न रह जाएगा। इतना जहर है वहां! इतनी पीड़ा है वहां!

लेकिन हमें उसकी प्रतीति नहीं होती। क्योंकि हम अपने को मानते हैं कि नहीं, ये सब बातें हम में नहीं हैं। कभी-कभी क्रोध हो जाता है, वह दूसरी बात है, परिस्थितिवश। लेकिन हम में कोई क्रोध है नहीं।
लेकिन नहीं है, तो हो नहीं सकता। स्थिति बिल्कुल उलटी है; चौबीस घंटे भीतर क्रोध चल रहा है। बिल्कुल जैसे बिजली दौड़ रही है तार में। जब हाथ लगाओ, तब शॉक मारती है। इसका मतलब यह नहीं कि जब हाथ लगाते हैं, तब दौड़ती है। दौड़ती तो चौबीस घंटे रहती है; हाथ लगाओ, तब पता चलता है।
तो क्रोध तो आपमें चौबीस घंटे दा.ैड रहा है, कोई जरा हाथ लगाए, तब शॉक निकलता है। बिजली का तार भी ऐसा ही सोचता होगा, जैसा आप सोचते हैं कि हममें कोई बिजली नहीं दौड़ती। यह तो जब कोई हाथ लगाता है, तब शॉक पैदा होता है। हाथ लगाने वाले से शॉक पैदा नहीं होता। जब कोई मुझे गाली देता है, उससे क्रोध नहीं पैदा होता; वह तो सिर्फ हाथ लगा रहा है। क्रोध की अंतर्धारा मुझमें बहती रहती है। गाली से जरा संबंध जुड़ा कि शॉक! मैं विकराल हो उठता हूं, पागल हो उठता हूं। वह पागलपन हमारे भीतर है, वह विक्षिप्तता हमारे भीतर है।
वृत्ति निरोध का अर्थ है, वृत्ति की इतनी गहरी समझ कि वृत्ति का होना असंभव हो जाए। इतनी गहरी अंडरस्टैंडिंग, इतना गहरा अनुभव, ऐसी गहरी अनुभूति कि वृत्ति असंभव हो जाए। और ज्ञान के अतिरिक्त और कोई मुक्ति नहीं है। और ज्ञान के अतिरिक्त और कोई निरोध नहीं है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, उपराम, शांत हुआ चित्त, चित्त वृत्ति निरोध को उपलब्ध हुआ चित्त, उस निरोध के क्षण में प्रभु को जानता है।

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः।। 21।।
तथा इंद्रियों से अतीत केवल शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि द्वारा ग्रहण करने योग्य जो अनंत आनंद है, उसको जिस अवस्था में अनुभव करता है और जिस अवस्था में स्थित हुआ यह योगी भगवत्स्वरूप से नहीं चलायमान होता है।

उसी सूत्र का और भी गहरा रूप। भगवत्स्वरूप से नहीं चलायमान होता है।
वह चित्त, वह व्यक्ति, वह योगी, जो इंद्रियों के पार हूं मैं, ऐसा जानता है, भगवत्स्वरूप से चलायमान नहीं होता है।
भगवत्स्वरूप से चलायमान हम होते इसीलिए हैं कि मानते हैं कि इंद्रियां हूं मैं। इंद्रियां हूं मैं, तो यात्रा शुरू हो गई। हमने स्वयं से दूर जाना शुरू कर दिया। और फिर इंद्रियां और दूर ले जाएंगी, क्योंकि प्रत्येक इंद्रिय कहेगी कि मुझे मेरा विषय चाहिए। तो उसकी विषय की खोज होगी। और प्रत्येक विषय के बाद अनुभव होगा कि इससे तृप्ति नहीं होती, दूसरा विषय चाहिए, तो दूसरे की खोज होगी। और फिर जीवन एक यात्रा बन जाएगा। यात्रा के दो चरण हैं। पहला चरण, मैं इंद्रियां हूं, ऐसा तादात्म्य बनाना जरूरी है। अगर संसार में जाना है, तो जानना जरूरी है कि मैं इंद्रियां हूं। और यह तादात्म्य बन जाता है। यह बन जाता है इसी तरह कि चेतना इतनी निर्मल और इतनी शुद्ध है कि जिस चीज के भी पास जाती है, उसका प्रतिबिंब पकड़ लेती है।
पुराने योग के ग्रंथ उदाहरण देते हैं नीलमणि का। प्रीतिकर है उदाहरण। पुराने योग के ग्रंथ कहते हैं कि नीलमणि को अगर शुद्ध जल, एक बर्तन में, एक कटोरे में शुद्ध जल रखा हो, नीलमणि को उस जल में डाल दें, तो पूरा जल नीला मालूम होने लगता है। वह जो नीलमणि की आभा है, वह पूरे जल को घेर लेती है। अगर नीलमणि को होश आ जाए, तो नीलमणि क्या कहेगी कि मैं मणि हूं, जल से अलग? नहीं। क्योंकि जल भी तो नीला हो गया है। नीलमणि कैसे जान पाएगी कि कहां मणि समाप्त होती है और कहां जल शुरू होता है! क्योंकि जल ने भी नीलापन

ले लिया है। अगर नीलमणि को होश आ जाए, तो नीलमणि जल की परिधि को ही अपनी परिधि मानेगी, क्योंकि वहां तक नील का विस्तार है।
ठीक ऐसे ही, वह जो भीतर शुद्ध आत्मा है, वह जो चेतना है, उसकी आभा इंद्रियों को घेर लेती है; शरीर के कोने-कोने में व्याप्त हो जाती है। मेरी आत्मा मेरी अंगुलियों के पोरों तक समा गई है। मेरी आत्मा मेरे रोएं- रोएं के कोने-कोने तक प्रवेश कर गई है। मेरी आत्मा ने मेरी पूरी इंद्रियों को, मेरे पूरे शरीर को आवृत कर लिया है। मेरी चेतना की आभा में सब समा गया है। और यह आभा अनंत है। इसलिए चींटी के छोटे-से शरीर को भी घेर लेती है, हाथी के बड़े शरीर को भी घेर लेती है। अगर मैं पूरे ब्रह्मांड जैसा शरीर भी पा जाऊं, तो भी मेरी आभा इतने को घेर लेगी। यह आत्मा की आभा अनंत है। और यह आभा जहां पड़ती है, जिस सीमा को घेरती है, उस सीमा के साथ लगता है कि मैं एक हो गया।
इसलिए पहला कदम उठ जाता है कि मैं इंद्रियां हूं, फिर दूसरा कदम उठना अनिवार्य हो जाता है। क्योंकि इंद्रियां कहती हैं, कामेंद्रिय कहती है कि काम-विषय खोजो। तो फिर काम-विषय की खोज में जाना पड़ता है। ऐसे हम अपने से बाहर जाते हैं, या चलायमान होते हैं, गतिमान होते हैं। ऐसे हमारे भीतर वह जो अचलायमान है सदा, वह चलायमान होने की भ्रांति में पड़ता है। फिर वह खोजता निकलता चला जाता है--दूर, और दूर, और दूर। और जितना खोजता है, उतना ही पाता है, नहीं मिलता, तो और दूर जाता है! ऐसे जन्मों की लंबी यात्रा होती है।
कृष्ण कह रहे हैं, जिसने जाना कि मैं इंद्रियों के अतीत और पार हूं, फिर चलायमान नहीं होता भगवत्स्वरूप से, फिर भगवान से चलायमान नहीं होता। फिर वह भगवान में एक हो जाता है, फिर वह भगवान ही हो जाता है। लेकिन सूत्र है, इंद्रियों के पार हूं मैं, इसे जानना; ट्रांसेंडेंटल हूं, अतीत हूं, इंद्रियां नहीं हूं मैं, इसे जानना।
एक बहुत अजीब-सी घटना मुझे याद आती है। एक फकीर हुआ है, लिंची, जापान में एक बहुत ज्ञानी फकीर हुआ। लिंची की सदा आदत थी कि जब भी वह कुछ समझाता, तो एक अंगुली ऊपर उठाकर समझाता। जब भी कुछ कहता, तो उसकी एक अंगुली ऊपर उठ जाती। अद्वैत की खबर वह अंगुली से देने लगता। जो बोलने से नहीं कह पाता था, वह अंगुली से कहता। वह जब तक बोलता रहता, उसकी अंगुली कंपित होती रहती, ऊपर उठी रहती।
फकीरों में मजाक चलता था। उसके शिष्यों में भी कभी-कभी मजाक चलता था;
वे भी अंगुली उठाकर बात करते थे। उसके सामने तो हिम्मत नहीं पड़ती थी; लेकिन पीठ पीछे उसके शिष्य कभी-कभी मजाक में अंगुली उठा लेते।
एक दिन एक शिष्य अंगुली उठाकर कुछ गपशप कर रहा था। अचानक लिंची मंदिर
के भीतर आ गया। वह घबड़ा गया। उसने अंगुली अपनी बंद की। लिंची ने कहा कि नहीं, उठी रहने दो। लिंची ने खीसे से चाकू निकाला और अंगुली काटकर फेंक दी। तड़फड़ा गया। लहूलुहान हो गया हाथ। लिंची ने कहा, सावधान! देख, अंगुली कटी है, तू तो नहीं कटा। बी अवेयर। मौका मत चूक। अंगुली कटी है, तू नहीं कटा। गौर से देख!
चौंक गया। लिंची की आवाज! अंगुली के कटने में एक तो विचार वैसे ही बंद
हो गए। एकदम घबड़ा गया। विचार का कंपन चला गया। अंगुली कट जाएगी, अनएक्सपेक्टेड, कभी सोचा भी नहीं था। और लिंची जैसा दयावान आदमी, जो पत्ता न तोड़े, वह अंगुली काट देगा, यह कोई सोच ही नहीं सकता था। और फिर लिंची की आवाज; और लिंची का खड़ा हुआ रूप; और लिंची की उठी हुई अंगुली! देख, तू नहीं कटा है, अंगुली कटी है। उस आदमी की आंख बंद हो गई, उसने भीतर देखा। वह लिंची के चरणों में गिर पड़ा और उसने कहा कि धन्यवाद! पहली दफा मुझे पता चला कि मैं अंगुली नहीं हूं।

एक-एक इंद्रिय के प्रति ऐसे ही जागना पड़ता है कि यह मैं नहीं हूं, यह मैं नहीं हूं, यह मैं नहीं हूं। और कठिन नहीं है। जरूरी नहीं है कि अंगुली काटकर ही जागें। जरूरी नहीं है कि अंगुली काटकर ही जागें, कभी बैठकर शांति से विचार ही करें अंगुली को उठाकर कि क्या यह अंगुली मैं हूं? उठाए रहें

अंगुली को; भीतर सोचें, क्या यह अंगुली मैं हूं? बहुत देर न लगेगी, अंगुली से कोई चीज भीतर वापस गिर जाएगी। अंगुली अलग, आप अलग हो जाएंगे।
कभी आंख बंद करके सोचें, यह शरीर मैं हूं? ध्यान रहे, प्रश्न पूछें, उत्तर न दें! हम उत्तर देने में बड़े होशियार हैं। हम सबको मालूम है कि मैं शरीर नहीं हूं! पूछा भी नहीं कि उत्तर तैयार है, रेडीमेड। कह दिया कि मैं शरीर नहीं हूं। बस, व्यर्थ हो गया। नहीं; सिर्फ पूछें। उत्तर को आने दें। आप जल्दी न करें। आपके उत्तर दो कौड़ी के हैं। क्योंकि आपको उत्तर ही मालूम होता, तो पूछने की जरूरत क्या थी? उत्तर आपको मालूम नहीं है।
लेकिन शास्त्र दुश्मन हो गए हैं। पढ़ लिया है उनको। उनमें लिखा है कि मैं शरीर नहीं हूं! जो मित्र हो सकते थे, उनको हमने दुश्मन कर लिया है। कंठस्थ कर लिया, मैं शरीर नहीं हूं। बैठे, पूछते हैं, मैं शरीर हूं? पूछ भी नहीं पाते, हमको उत्तर पहले से ही पता है। वह कहता है, क्या बेकार में! मैं शरीर नहीं हूं। उठकर वापस वही के वही आदमी वापस हो गए।
नहीं; पूछें, क्या मैं शरीर हूं? और चुप रह जाएं। जाने दें प्रश्न को गहरा। उत्तर न दें स्मृति से। उतरने दें प्रश्न को गहरा। अनुभव करें, क्या मैं शरीर हूं?
शरीर के प्रति जागें, शरीर को भीतर से देखें कि यह रहा शरीर। जैसे कि कोई आदमी अपने मकान के भीतर बैठा है और देखता है कि चारों तरफ दीवाल है, ठीक ऐसे ही अपने शरीर के भीतर बैठकर देखें, चारों तरफ शरीर की दीवाल है, हाथ हैं, पैर हैं। यह शरीर रहा। क्या मैं शरीर हूं? उत्तर न दें। कृपा कर उत्तर से बचें। मैं शरीर हूं? प्रश्न--और प्रश्न को तीर की तरह भीतर उतर जाने दें।
और जल्दी ही कोई चीज भीतर गिर जाएगी पर्दे की तरह, और अचानक प्रतीत होगा, कहां! शरीर तो वह रहा; मैं यह अलग हूं। लेकिन यह उत्तर आप मत देना; यह उत्तर आने देना। और जब यह आएगा, तो आपके जीवन को बदल जाएगा। और जब आप देंगे, तो जीवन वही का वही बना रहेगा। यही कसौटी है।
अगर इस उत्तर के बाद जीवन दूसरा हो जाए, तो जानना कि उत्तर आया। और अगर जीवन वही रहे कि पूछ-पांछकर उठे और सिगरेट मुंह में लगाकर जला ली और फिर धुआं उड़ाने लगे! और जीवन वही का वही रहा, कोई अंतर न पड़ा, कोई ट्रांसफार्मेशन न हुआ, तो जानना कि उत्तर आथेंटिक नहीं था; हमने ही दे दिया था।
और मन की चालाकी अनंत है। वह उत्तर तैयार रखे है, ताकि आपको नाहक भीतर
न जाना पड़े। वह कहता है, कहां जा रहे हो? पहरेदार हूं, मैं ही बताए देता हूं। मालिक से मिलने की जरूरत क्या है? दरवाजे पर पहरेदार की तरह खड़ा है। आपसे कहता है, हम ही बताए देते हैं, आप कहां जाते हो? बैठो यहीं। सब उत्तर हमें मालूम हैं; नाहक भीतर जाने का कष्ट क्यों उठाते हो!
तो मन से कहना कि क्षमा करो। तुम्हारे उत्तर अपने पास रखो। तुम्हारे उत्तर नहीं चाहिए। तुम्हारे शास्त्र, तुम्हारे सिद्धांत तुम्हीं सम्हालो। मुझे कृपा कर भीतर जाने दो। मैं ही जानना चाहता हूं कि क्या है। मुझे कुछ भी पता नहीं है।
पूछें! और तब भीतर एक पर्दा गिर जाएगा। एक झीना-सा पर्दा आभा का, सिर्फ आभा का पर्दा है, वह सिकुड़ जाएगा। शरीर अलग, आप अलग हो जाएंगे।
और जिस क्षण यह अनुभव होता है कि शरीर अलग, मैं अलग; इंद्रियां अलग, मैं अलग; फिर चेतना चलायमान नहीं होती है। फिर प्रभु में रम जाती है। फिर प्रभु से एक हो जाती है। फिर कभी प्रभु के घर को छोड़कर जाती नहीं। फिर कहीं भी जाए, प्रभु के घर में ही रहती हुई जाती है। फिर मंदिर से चली जाए दुकान पर, तो मंदिर दुकान पर पहुंच जाता है। रास्ते से गुजरे, तो भी जानता है व्यक्ति कि मैं प्रभु में ठहरा हुआ हूं। चलेगा शरीर, मैं ठहरा हुआ हूं। कटेगा शरीर, मैं अनकटा हूं। छिदेगा शरीर, मैं अनछिदा हूं। मरेगा शरीर, मैं अमृत हूं। वह जानता ही रहता है; वह जानता ही रहता है।
ऐसी प्रतीति प्रभु में थिर कर जाती है। और प्रभु में थिरता आनंद है।
आज इतना ही।
पांच मिनट संन्यासी कीर्तन करते हैं, उनका प्रसाद लेते जाएं। उनके पास देने को आपके लिए कुछ और नहीं है, इसलिए उठकर जाएंगे, तो उनको लगेगा कि

उनका प्रसाद आप नहीं लेते हैं! बैठे रहें। और उनके साथ सम्मिलित हों, तो ही प्रसाद मिलेगा, अन्यथा प्रसाद मिलने का कोई और उपाय नहीं है।
गाएं। उनके गीत में एक हो जाएं। ताली बजाएं। डोलें। आनंदित हों। पांच मिनट के लिए भूलें उस सब को जो हमारा चित्त है, और एक नए चित्त की यात्रा पर निकलें।

गीता दर्शन, भाग तीन
गीता दर्शन अध्याय 6
ग्यारहवां प्रवचन

दुखों में अचलायमान

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते।। 22।।
और परमेश्वर की प्राप्तिरूप जिस लाभ को प्राप्त होकर, उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता है, और भगवत्प्राप्ति रूप जिस अवस्था में स्थित हुआ योगी बड़े भारी दुख से भी चलायमान नहीं होता है।

प्रभु को पाने की कामना पूरी हो जाए, तो फिर और कोई कामना पूरी करने को शेष नहीं रह जाती है। प्रभु में प्रतिष्ठा मिल जाए, तो फिर किसी और प्रतिष्ठा का कोई प्रश्न नहीं है। मिल जाए प्रभु, तो फिर न मिलने को कुछ बचता है, न पाने को कुछ बचता है।
कृष्ण इस सूत्र में कहते हैं कि जिसने प्रभु को उपलब्ध करने का लाभ पा लिया, उसे परम लाभ मिल गया। वैसा परम लाभ को उपलब्ध व्यक्ति, महान से महान दुख से अविचलित गुजर जाता है।
इसे थोड़ा समझें। असल में हम दुख से विचलित ही इसीलिए होते हैं कि हमें आनंद का कोई अनुभव नहीं है। हम दुख से विचलित ही इसीलिए होते हैं कि हमें आनंद का कोई अनुभव नहीं है। यदि हमें आनंद का अनुभव हो, तो दुख से हम विचलित होंगे ही नहीं। असल में जैसे हम जीते हैं, हम दुख में ही जीते हैं। लेकिन एक तो साधारण दुख है, जिसके हम आदी हो गए हैं। जब हम पर कोई असाधारण दुख आता है, जिसके हम आदी नहीं हैं, तो हम विचलित होते हैं।
ध्यान रहे, हम साधारणतः दुख में ही जीते हैं। लेकिन साधारण दुख में जीते हैं, इसलिए कोई विचलित होने का कारण नहीं आता। जब असाधारण दुख आता है, तो चित्त कंपित होता है और हम विचलित हो जाते हैं।
फ्रायड ने कहा है अपने अंतिम दिनों के संस्मरणों में, कि जैसा मैं समझता हूं, उससे ऐसा प्रतीत होता है कि आदमी को हम कभी दुख से मुक्त न कर सकेंगे। ज्यादा से ज्यादा हम इतना ही कर सकते हैं कि अति दुख आदमी पर न आएं; साधारण दुख आते रहें।
अगर विज्ञान पूरी तरह सफल हो गया--जो कि संभव नहीं दिखाई पड़ता--मान लें, अगर विज्ञान किसी दिन पूरी तरह सफल हो गया, तो भी आपको दुख से छुटकारा नहीं दिला पाएगा। हां, इतना ही कर पाएगा कि आपके ऊपर अति दुख न आने पाएं। दुख सामान्य रह जाएं; कुनकुने रह जाएं, उबलते हुए न हों।
कुनकुने दुख धीरे-धीरे हमारी आदत बन जाते हैं। इसलिए उनसे हमें कोई ज्यादा पीड़ा और परेशानी नहीं होती। विशेष दुख आते हैं, तो हम पीड़ित होते हैं। इसलिए मैं कहता हूं कि भीतर हमें आनंद का कोई अनुभव नहीं है, इसलिए विशेष दुख हमें पीड़ित करते हैं।
फिर अगर विशेष दुख रोज-रोज आने लगें, तो वे भी हमें पीड़ित नहीं करते।
हम उनके भी आदी हो जाते हैं। और जिसे विशेष दुख नहीं आए हैं, उसे साधारण दुख भी आ जाए, तो भी पीड़ित करता है। दुख के प्रति हमारी संवेदनशीलता, दुख के आने पर धीमी होती चली जाती है।
युद्ध के मैदान पर जाता है सैनिक, तो जब तक नहीं पहुंचा है युद्ध के मैदान पर, तब तक बहुत पीड़ित, चिंतित और परेशान रहता है। लेकिन मनोवैज्ञानिक हैरान हैं कि युद्ध के मैदान पर पहुंचने के एक-दो दिन के बाद उसकी सब पीड़ा, सब चिंता विदा हो जाती है! क्या, हो क्या जाता है?
जब रोज गिरते देखता है बम को अपने किनारे, रोज अपने मित्रों को दफनाए जाते देखता है, रोज आदमियों को मरते देखता है, सड़क पर लाशों से गुजरता है-- दो-चार दिन में संवेदनशीलता क्षीण हो जाती है। फिर वह जो युद्ध पर जाने से डर रहा था, वह वहीं बैठकर--पास में हवाई जहाज दुश्मन के उड़ते रहते हैं, बमबारी करते रहते हैं--वह नीचे बैठकर ताश खेलता रहता है।

अगर आपको निरंतर दुख में रखा जाए, तो आप उस दुख के लिए आदी हो जाते हैं; फिर उसका आपको पता नहीं चलता। हम एक खास स्तर पर दुख के आदी हो गए हैं, और इसीलिए बहुत अड़चन होती है।
जब पहली दफा पश्चिम के लोगों को पता चलता है हमारी गरीबी का, तो उन्हें भरोसा नहीं आता कि इतनी गरीबी को हम सह कैसे लेते होंगे! बगावत क्यों नहीं कर देते! आग क्यों नहीं लगा डालते! दुनिया को मिटा क्यों नहीं डालते! उन्हें ख्याल भी नहीं कि हम गरीबी के लंबे आदी हैं! गरीबी से हमें कोई विशेष पीड़ा नहीं होती। सच तो यह है कि गरीब को गरीबी से कभी पीड़ा नहीं होती, पड़ोस में कोई अमीर हो जाता है, तो पीड़ा शुरू होती है। गरीबी की तो आदत होती है। लाखों वर्ष तक हमारा शूद्र बिल्कुल ही पशु के तल पर जीया है। आदी हो गया था। सपने भी छोड़ दिए थे उसने; वह दुख के लिए राजी हो गया था।
हम सब दुखी हैं, लेकिन सब एक-एक दुख की सीमा तक राजी हो गए हैं। तो वहां
तक तो हमें कोई दुख चलायमान नहीं करता। लेकिन विशेष दुख आ जाता है, जिसके लिए हम आदी नहीं हैं, तो हम कंपित हो जाते हैं, तो हम पीड़ित हो जाते हैं; तो हमारे भीतर कुछ टूटता है, बिखरता है।
लेकिन जो व्यक्ति आनंद के अनुभव को उपलब्ध हो जाए, उसे फिर बड़े से बड़ा दुख विचलित नहीं करता, क्योंकि भीतर गहरे में वह आनंद में जीता ही है। दुख बाहर ही आते हैं फिर, भीतर तक प्रवेश नहीं कर पाते। दुख बाहर घूमते हैं और चले जाते हैं, जैसे हवा के झोंके आए हों। या आप रास्ते से गुजरते हों और वर्षा पड़ गई हो, तो आप कोई मिट्टी के पुतले नहीं हैं, आप उस वर्षा को झेलकर घर आ जाते हैं। आप भीतर जानते हैं, कुछ गल नहीं जाएगा। लेकिन उसी रास्ते पर अगर मिट्टी के पुतले भी चल रहे हों, तो बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे।
भीतर आनंद की वर्षा हो रही हो सतत, तो बाहर कितना ही बड़ा दुख आ जाए, बाहर ही रहता है, भीतर प्रवेश नहीं कर पाता। ध्यान रखें, दुख भीतर तभी प्रवेश करता है, जब भीतर दुख मौजूद हो। और समान समान को आकर्षित करता है। भीतर दुख मौजूद हो, तो बाहर के दुख को भीतर खींचता है। भीतर आनंद मौजूद हो, तो बाहर के दुख को वापस लौटा देता है, उसे निमंत्रण भी नहीं देता।
कृष्ण कहते हैं, जिसने पा लिया परम लाभ, प्रभु को अनुभव किया जिसने, फिर बड़े से बड़ा दुख उसे चलायमान नहीं करता है।
फिर चलायमान होने की कोई वजह नहीं रह गई। फिर हालत ऐसी ही हो गई कि जिसे यह पता चल गया कि मेरे पास अनंत खजाना है, उसकी अगर एक कौड़ी गिर जाए, तो क्या दुख, क्या पीड़ा! जिसे पता चल जाए, अनंत खजाना मेरे पास है, उसके करोड़ रुपए भी खो जाएं, तो कौन-सी पीड़ा है, कौन-सा दुख है! अनंत में कुछ कम नहीं होगा।
जिसे पता चल जाए कि मेरे भीतर जो है, वह कभी नहीं मरता, तो छोटी-मोटी बीमारी की तो बात अलग, मौत खुद भी द्वार पर आकर खड़ी हो जाए, तो विचलित होने का कोई कारण नहीं है। मौत से हम विचलित होते हैं, क्योंकि हम जानते हैं, मैं मरूंगा। मौत से हम विचलित होते हैं, क्योंकि हम जानते हैं कि बीमारी इतनी तकलीफ दे गई; मौत कितनी तकलीफ न दे जाएगी! मौत से हम विचलित होते हैं, क्योंकि भीतर अमृत का हमें कोई अनुभव नहीं है।
यदि अमृत का अनुभव है, तो मौत स्पर्श भी नहीं कर पाएगी। वह बाहर ही बाहर घूम सकती है, भीतर प्रवेश नहीं कर सकती।
हमारे भीतर वही प्रवेश करता है, जो हमारे भीतर पहले से मौजूद है। जीवन
के इस नियम को बहुत गौर से समझ लेना जरूरी है। हमारे भीतर वही प्रवेश करता है, जो हमारे भीतर मौजूद है, अन्यथा हमारे भीतर प्रवेश नहीं हो सकता। अगर आप दुखी हैं, तो दुख प्रवेश कर सकता है। अगर आनंदित हैं, तो आनंद प्रवेश कर सकता है। अगर अज्ञानी हैं, तो अज्ञान प्रवेश कर सकता है। अगर ज्ञानी हैं, तो ज्ञान प्रवेश कर सकता है। समान ही समान को खींचता है, असमान को हटाता है।
तो अगर आपको बार-बार दुख प्रवेश कर जाता हो, तो समझ लेना कि आपके भीतर दुख की गहरी पर्त है, जो उसे बुला लेती है, निमंत्रण दे देती है। अगर आप उदास आदमी हैं, तो आपको चारों तरफ से उदासी पकड़ेगी और आपकी तरफ दौड़ेगी। आप गड्ढा बन जाएंगे, और उदासी आपकी तरफ नदियां बनकर यात्रा करने लगेगी। अगर

आप आनंदित हैं, तो चारों तरफ से आनंद की धाराएं आपके भीतर प्रवेश करने लगेंगी।
जो आपके भीतर प्रवेश करता है, वह खबर देता है कि कौन आपके भीतर बैठा है, जो उसे आकर्षित कर रहा है। जिसने आनंद को जाना प्रभु को पा लेने के, उसे कोई दुख विचलित नहीं करेगा।
कितने दुख हैं जीवन में? कितने दुख हैं? हम उनकी थोड़ी-सी मोटी गिनती
कर लें, तो ख्याल में आ जाए।
प्रिय के बिछुड़ने का दुख है। प्रियजन के बिछुड़ने का दुख है। लेकिन जो प्रभु को मिल गया, वह प्रियतम को मिल गया। अब कोई प्रियजन के बिछुड़ने का दुख नहीं रह जाता। अब मिलन शाश्वत है। अब तो हम उस प्यारे को मिल गए, जिसकी झलक हमने सब प्रियजनों में देखी थी, लेकिन जिसे हम किसी में पा न सके थे। जिसे हमने सब प्रियजनों में खोजना चाहा था, और खाली और रिक्त हाथ वापस लौट आए थे। जिसे हमने जब भी किसी को प्रेम किया था, तो उसमें बहुत गहरे में हमने परमात्मा को ही तलाशा था।
और इसीलिए तो सभी प्रेमी फ्रस्ट्रेट होते हैं, क्योंकि अंत में मिलता
है आदमी, परमात्मा तो मिलता नहीं। खोजते परमात्मा को ही हैं। इसलिए जब भी कोई किसी के प्रेम में गिरता है, तो वह उसके भीतर किसी दिव्यता की खोज है। लेकिन फिर हाथ में तो हड्डी, मांस, चमड़ी के कुछ और आता नहीं, कोई दिव्यता तो हाथ में आती नहीं। फिर विषाद घेर लेता है।
जो प्रभु को पा लिया, उसके लिए अब मिलन का कोई प्रश्न न रहा, परम मिलन
हो गया। अब उसके हाथ किसी के आलिंगन को नहीं फैलेंगे, और या फैलेंगे भी, तो सभी के आलिंगन में उसे परमात्मा का ही आलिंगन होगा। और कोई अगर उससे बिछुड़कर जा रहा है, तो उसका कुछ भी नहीं बिछुड़ेगा। क्योंकि जो परम मिलन हो गया है, उस परम मिलन के आगे अब किसी बिछुड़न का कोई अर्थ नहीं है।
अपयश का दुख है जीवन में, अपमान का दुख है जीवन में। लेकिन जिसे प्रभु
ने सम्मानित कर दिया, अब उसे अपमान छू सकेगा? जिसे स्वयं प्रभु ने अपने मंदिर में प्रवेश दिया और जिसे स्वयं प्रभु ने अपने निकट बिठा लिया--यह सिर्फ मैं काव्य की भाषा में बोल रहा हूं, प्रभु कोई व्यक्ति नहीं है--जो प्रभु के अनुभव को उपलब्ध हुआ, अब कौन-सा अपमान उसके लिए अर्थपूर्ण रह जाएगा? जो बड़े से बड़ा मान संभव था, वह हो गया।
तो जीसस जैसा आदमी सूली पर भी शांति से लटक सकता है। मंसूर को जब लोगों ने सूली दी, तो मंसूर सिर उठाकर ऊपर आकाश की तरफ देखकर हंसने लगा। मंसूर एक अदभुत फकीर था, जीसस की हैसियत का। मुसलमान फकीर था, सूफी था। जब मंसूर को लोग काटने लगे और सूली देने लगे, तो मंसूर ने आकाश की तरफ देखा और मुस्कुराया। तो एक लाख लोगों की भीड़ थी, जो पत्थर फेंक रहे थे उस पर, गालियां दे रहे थे उसको। कोई उसका पैर काट रहा था, कोई उसका हाथ काट रहा था। कोई उसकी आंखें फोड़ने के लिए छुरे लिए हुए खड़ा था।
और जब मंसूर को लोगों ने हंसते देखा, तो किसी ने भीड़ में से पूछा कि मंसूर, किसको देखकर हंस रहे हो? मरने के करीब हो! तो मंसूर ने कहा कि तुम्हें मौत दिखाई पड़ती है, मुझे महामिलन दिखाई पड़ रहा है। यहां से विदा हो जाऊंगा, वहां प्रभु से महामिलन हो जाएगा। उसकी बांहें मुझे आकाश में फैली हुई दिखाई पड़ रही हैं। तुम मुझे जल्दी विदा कर दो, ताकि उसे और प्रतीक्षा न करनी पड़े!
अब यह जो आदमी है, इसको हम काट-काटकर भी दुख नहीं दे सकते। क्योंकि इसको हम काट ही नहीं सकते। यह जिस तल पर जी रहा है, वहां कोई हमारे अस्त्र-शस्त्र काम न करेंगे। जिस जगह यह जी रहा है, उस तल पर, उस आयाम में, हम इसे दुख न पहुंचा पाएंगे।
जब मंसूर के हाथ काटे, तो उसके हाथ से लहू बहने लगा। उसने दूसरे हाथ से लहू लेकर, जैसे कि मुसलमान नमाज के पहले वजू करते हैं, उस लहू को पानी की तरह हाथ पर फेरा। किसी ने पूछा, मंसूर! यह तुम क्या कर रहे हो? तो मंसूर ने कहा कि मैं प्रभु से मिलने के पहले, आखिरी मिलन हुआ जा रहा है, वजू कर रहा हूं। तो लोगों ने कहा कि खून से कहीं वजू की जाती है? मंसूर ने कहा, पानी से भी कोई वजू हो सकती है? पानी से भी कहीं कोई वजू हो सकती है, मंसूर ने कहा। अब तक तो धोखा दिया वजू करने का कि पानी से हाथ धो लेते थे, आज मौका मिला कि

अपने जीवन से हाथ धो रहे हैं। जीवन से हाथ धोकर प्रभु की यात्रा पर जा रहा हूं।
जिसे प्रभु की जरा-सी भी झलक मिल जाए, उसके जीवन में चलायमान होने का कोई भी कारण नहीं है। लेकिन हमें कोई झलक नहीं है, इसलिए छोटी-सी चीज चलायमान कर जाती है। सच तो यह है कि हम चलायमान ही रहते हैं। जैसा मैंने कहा, हम दुखी ही रहते हैं। सामान्य धक्के हम झेलते रहते हैं, आदी हो जाते हैं। असामान्य धक्के आते हैं, हम दिक्कत में पड़ जाते हैं।
और इसीलिए हम असामान्य धक्कों को अपने से रोके रखते हैं, भुलाए रखते हैं। भुलाए रखते हैं कि मौत है। भुलाए रखते हैं कि प्रिय बिछुड़ जाएगा।
भुलाए रखते हैं कि सब सफलताएं अंत में असफलताओं की राख सिद्ध होती हैं।
भुलाए रखते हैं कि सब सिंहासन आखिर में कब्रों की सीढ़ियां बन जाते हैं।
सबको भुलाए रखते हैं। और इस तरह जीते हैं भुलावे में कि जैसे कहीं कोई दुख नहीं है।
लेकिन हम कितनी देर अपने को भुलावा दे सकते हैं! दुख आएगा ही। दुख जीवन का स्वरूप है। अगर आप आनंद को नहीं उपलब्ध कर लेते हैं, तो दुख आपको कंपाता ही रहेगा।
कृष्ण ठीक कहते हैं, परम लाभ हो जाता है उसे। फिर बड़े से बड़ा दुख चलायमान नहीं कर सकता है।
वही कसौटी है। वही कसौटी है कि जब बड़े से बड़ा दुख कंपन न लाए, तो ही जानना कि वह आदमी प्रभु के दर्शन को उपलब्ध हुआ।
बुद्ध के आखिरी छः महीने बहुत पीड़ा में बीते। पीड़ा में उनकी तरफ से, जिन्होंने देखा; बुद्ध की तरफ से नहीं। बुद्ध एक गांव में ठहरे हैं। और उस गांव के एक शूद्र ने, एक गरीब आदमी ने बुद्ध को निमंत्रण दिया कि मेरे घर भोजन कर लें। तो वह पहला निमंत्रण देने वाला था, सुबह-सुबह जल्दी आ गया था पांच बजे, ताकि गांव का कोई धनपति, गांव का सम्राट निमंत्रण न दे दे। बहुत बार आया था, लेकिन कोई निमंत्रण दे चुका था।
वह निमंत्रण दे ही रहा था कि तभी गांव के एक बड़े धनपति ने आकर बुद्ध को कहा कि आज मेरे घर निमंत्रण स्वीकार करें। बुद्ध ने कहा, निमंत्रण आ गया। उस अमीर ने उस आदमी की तरफ देखा और कहा, इस आदमी का निमंत्रण! इसके पास खिलाने को भी कुछ होगा? बुद्ध ने कहा, वह दूसरी बात है। बाकी निमंत्रण उसका ही स्वीकार किया। उसके घर ही जाता हूं।
बुद्ध गए। उस आदमी को भरोसा भी न था कि बुद्ध कभी उसके घर भोजन करने आएंगे। उसके पास कुछ भी न था खिलाने को वस्तुतः। रूखी रोटियां थीं। सब्जी के नाम पर बिहार में गरीब किसान, वह जो बरसात के दिनों में कुकुरमुत्ता पैदा हो जाता है--लकड़ियों पर, गंदी जगह में--उस कुकुरमुत्ते को इकट्ठा कर लेते हैं, सुखाकर रख लेते हैं और उसी की सब्जी बनाकर खाते हैं। कभी-कभी ऐसा होता है कि कुकुरमुत्ता पायजनस हो जाता है। कहीं ऐसी जगह पैदा हो गया, जहां जहर मिल गया, तो कुकुरमुत्ते में जहर फैल जाता है।
बुद्ध के लिए उसने कुकुरमुत्ते बनाए थे, वे जहरीले थे। जहर थे, सख्त कड़वे जहर थे। मुंह में रखना मुश्किल था। लेकिन उसके पास एक ही सब्जी थी। तो बुद्ध ने यह सोचकर कि अगर मैं कहूं कि यह सब्जी कड़वी है, तो वह कठिनाई में पड़ेगा; उसके पास कोई दूसरी सब्जी नहीं है। वे उस जहरीली सब्जी को खा गए। उसे मुंह में रखना कठिन था। और बड़े आनंद से खा गए, और उससे कहते रहे कि बहुत आनंदित हुआ हूं।
जैसे ही बुद्ध वहां से निकले, उस आदमी ने जब सब्जी चखी, तो वह तो हैरान
हो गया। वह भागा हुआ आया और उसने कहा कि आप क्या कहते हैं? वह तो जहर है! वह छाती पीटकर रोने लगा। लेकिन बुद्ध ने कहा, तू जरा भी चिंता मत कर। क्योंकि जहर मेरा अब कुछ भी न बिगाड़ सकेगा, क्योंकि मैं उसे जानता हूं, जो अमृत है। तू जरा भी चिंता मत कर।
लेकिन फिर भी उस आदमी की चिंता तो हम समझ सकते हैं। बुद्ध ने उसे कहा
कि तू धन्यभागी है। तुझे पता नहीं। तू खुश हो। तू सौभाग्यवान। क्योंकि कभी हजारों वर्षों में बुद्ध जैसा व्यक्ति पैदा होता है। दो ही व्यक्तियों को उसका सौभाग्य मिलता है, पहला भोजन कराने का अवसर उसकी मां को मिलता है और अंतिम भोजन कराने का अवसर तुझे मिला है। तू सौभाग्यशाली

है; तू आनंदित हो। ऐसा फिर सैकड़ों-हजारों वर्षों में कभी कोई बुद्ध पैदा होगा और ऐसा अवसर फिर किसी को मिलेगा। उस आदमी को किसी तरह समझाकर-बुझाकर लौटा दिया।
बुद्ध के शिष्य कहने लगे, आप यह क्या बातें कह रहे हैं! यह आदमी हत्यारा है। बुद्ध ने कहा, भूलकर ऐसी बात मत कहना, अन्यथा उस आदमी को नाहक लोग परेशान करेंगे! तुम जाओ; गांव में डुंडी पीटकर खबर करो कि यह आदमी सौभाग्यशाली है, क्योंकि इसने बुद्ध को अंतिम भोजन का दान दिया है।
मरने के वक्त लोग उनसे कहते थे कि आप एक दफे भी तो रुक जाते! कह देते कि कड़वा है, तो हम पर यह वज्रपात न गिरता! लेकिन बुद्ध कहते थे कि यह वज्रपात रुकने वाला नहीं था। किस बहाने गिरेगा, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। और जहां तक मेरा संबंध है, मुझ पर कोई वज्रपात नहीं गिरा है, नहीं गिर सकता है। क्योंकि मैंने उसे जान लिया है, जिसकी कोई मृत्यु नहीं है।
यह अनुभव हो, तो फिर कोई कंपन जीवन के किसी भी दुख का नहीं होता है।
हमें तो सब चीजें हिला जाती हैं। हमारे पीछे तो कोई ऐसी चीज नहीं है, जिस पर हम बिना हिले खड़े हो जाएं। कोई ऐसा स्तंभ नहीं है, जिस पर हम बिना हिले खड़े हो जाएं।
कबीर ने एक छोटा-सा दोहा लिखा है। जिसका अर्थ है कि कबीर बहुत रोने लगा यह देखकर कि दो चक्कियों के पाट के बीच जो भी पड़ गया, वह पिस गया। कबीर घर लौटा। कबीर के घर एक बेटा पैदा हुआ था। कबीर का बेटा था, तो कबीर की हैसियत का बेटा था। उसका नाम था कमाल। कबीर ने घर जाकर यह दोहा पढ़ा और कहा कि कमाल, आज रास्ते पर चलती चक्की देखकर मैं रोने लगा, क्योंकि मुझे ख्याल आया कि जगत की चक्की के दो पाटों के बीच जो भी पड़ गया, वह बचा नहीं।
कमाल ने दूसरा दोहा कहा और उसने कहा कि नहीं, यह मत कहो। मैं भी चलती चक्की देखा हूं। चलती चक्की देखकर कमाल हंसने लगा, क्योंकि मैंने देखा कि दो पाटों के बीच में एक छोटी-सी कील भी है। जिसने उस कील का सहारा ले लिया, दो पाट उसको पीस नहीं पाए। पाट चलते रहे। वह जो छोटी-सी कील है चक्की के बीच में, उसके सहारे जो गेहूं का दाना चढ़ गया, उसके सहारे जो रह गया, दो चाक चलते रहे, चलते रहे, पीसते रहे, लेकिन वह अनपिसा बच गया!
जो परमात्मा की बीच में कील है, उसके निकट जितना सरक जाए, सेंटर के, केंद्र के, उतना ही इस जगत की कोई चीज फिर पीस नहीं पाती है। अन्यथा तो दो पाट पीसते ही रहेंगे। दुख पीसता ही रहेगा। मृत्यु पीसती ही रहेगी। और हम कंपते ही रहेंगे, स्वभावतः।
यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि मौत को देखकर हम कंप जाएं। यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि चारों तरफ दुख ही दुख हो और हम कंप जाएं। यह स्वाभाविक तभी तक है, जब तक बीच की कील का सहारा नहीं मिला।
कृष्ण उसी कील की बात कर रहे हैं कि पा लेता है जो प्रभु के परम लाभ को, फिर बड़े से बड़े दुख उसे चलायमान नहीं करते हैं।

तं विद्याद दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा।। 23।।
और जो दुखरूप संसार के संयोग से रहित है तथा जिसका नाम योग है, उसको जानना चाहिए। वह योग न उकताए हुए चित्त से अर्थात तत्पर हुए चित्त से निश्चयपूर्वक करना कर्तव्य है।

संसार के संयोग से जो तोड़ दे, दुख के संयोग से जो पृथक कर दे, अज्ञान से
जो दूर हटा दे, ऐसे योग को अथक रूप से साधना कर्तव्य है, ऐसा कृष्ण कहते हैं। अथक रूप से! बिना थके, बिना ऊबे।
इस बात को ठीक से समझ लें।
मनुष्य का मन ऊबने में बड़ी जल्दी करता है। शायद मनुष्य के बुनियादी गुणों में ऊब जाना एक गुण है। ऐसे भी पशुओं में कोई पशु ऊबता नहीं। बोर्डम, ऊब, मनुष्य का लक्षण है। कोई पशु ऊबता नहीं। आपने कभी किसी भैंस को, किसी कुत्ते को, किसी गधे को ऊबते नहीं देखा होगा, कि बोर्ड हो गया है! नहीं; कभी ऊब पैदा नहीं होती। अगर हम आदमी और जानवरों को अलग करने वाले गुणों की खोज करें, तो शायद ऊब एक बुनियादी गुण है, जो आदमी को अलग करता है।

आदमी बड़ी जल्दी ऊब जाता है, बड़ी जल्दी बोर्ड हो जाता है। किसी भी चीज
से ऊब जाता है। ऐसा नहीं कि दुख से ऊब जाता है, सुख से भी ऊब जाता है। अगर सुख ही सुख मिलता जाए, तो तबियत होती है कि थोड़ा दुख कहीं से जुटाओ। और आदमी जुटा लेता है! अगर सुख ही सुख मिले, तो तिक्त मालूम पड़ने लगता है; मुंह में स्वाद नहीं आता फिर। फिर थोड़ी-सी कड़वी नीम मुंह पर रखनी अच्छी होती है। थोड़ा-सा स्वाद आ जाता है।
आदमी ऊबता है, सभी चीजों से ऊबता है। बड़े से बड़े महल में जाए, उनसे ऊब जाता है। सुंदर से सुंदर स्त्री मिले, सुंदर से सुंदर पुरुष मिले, उससे ऊब जाता है। धन मिले, अपार धन मिले, उससे ऊब जाता है। यश मिले, कीर्ति मिले, उससे ऊब जाता है। जो चीज मिल जाए, उससे ऊब जाता है। हां, जब तक न मिले, तब तक बड़ी सजगता दिखलाता है, बड़ी लगन दिखलाता है; मिलते ही ऊब जाता है।
इस बात को ऐसा समझें, संसार में जितनी चीजें हैं, उनको पाने की चेष्टा में आदमी कभी नहीं ऊबता, पाकर ऊब जाता है। पाने की चेष्टा में कभी नहीं ऊबता, पाकर ऊब जाता है। इंतजार में कभी नहीं ऊबता, मिलन में ऊब जाता है। इंतजार जिंदगीभर चल सकता है; मिलन घड़ीभर चलाना मुश्किल पड़ जाता है। संसार की प्रत्येक वस्तु को पाने के लिए तो हम नहीं ऊबते, लेकिन पाकर
ऊब जाते हैं। और परमात्मा की तरफ ठीक उलटा नियम लागू होता है। संसार की तरफ प्रयत्न करने में आदमी नहीं ऊबता, प्राप्ति में ऊबता है। परमात्मा की तरफ प्राप्ति में कभी नहीं ऊबता, लेकिन प्रयत्न में बहुत ऊबता है। ठीक उलटा नियम लागू होगा भी।
जैसे कि हम झील के किनारे खड़े हों, तो झील में हमारी तस्वीर बनती है,
वह उलटी बनेगी। जैसे आप खड़े हैं, आपका सिर ऊपर है, झील में नीचे होगा। आपके पैर नीचे हैं, झील में पैर ऊपर होंगे। तस्वीर झील में उलटी बनेगी।
संसार के किनारे हमारी तस्वीर उलटी बनती है। संसार में जो हमारा प्रोजेक्शन होता है, वह उलटा बनता है। इसलिए संसार में गति करने के जो नियम हैं, परमात्मा में गति करने के वे नियम बिल्कुल नहीं हैं। ठीक उनसे उलटे नियम काम आते हैं। मगर यहीं बड़ी मुश्किल हो जाती है।
संसार में तो ऊबना आता है बाद में, प्रयत्न में तो ऊब नहीं आती। इसलिए संसार में लोग गति करते चले जाते हैं। परमात्मा में प्रयत्न में ही ऊब आती है। और प्राप्ति तो आएगी बाद में, और प्रयत्न पहले ही उबा देगा, तो आप रुक जाएंगे।
कितने लोग नहीं हैं जो प्रभु की यात्रा शुरू करते हैं! शुरू भर करते हैं, कभी पूरी नहीं कर पाते। कितनी बार आपने तय किया कि रोज प्रार्थना कर लेंगे! फिर कितनी बार छूट गया वह। कितनी बार तय किया कि स्मरण कर लेंगे प्रभु का घड़ीभर! एकाध दिन, दो दिन, काफी! फिर ऊब गए। फिर छूट गया। कितने संकल्प, कितने निर्णय, धूल होकर पड़े हैं आपके चारों तरफ!
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि ध्यान से कुछ हो सकेगा? मैं उनको कहता हूं कि जरूर हो सकेगा। लेकिन कर सकोगे? वे कहते हैं, बहुत कठिन तो नहीं है? मैं कहता हूं, बहुत कठिन जरा भी नहीं। कठिनाई सिर्फ एक है, सातत्य! ध्यान तो बहुत सरल है। लेकिन रोज कर सकोगे? कितने दिन कर सकोगे? तीन महीने, लोगों को कहता हूं कि सिर्फ तीन महीने सतत कर लो। मुश्किल से कभी कोई मिलता है, जो तीन महीने भी सतत कर पाता है। उब जाता है, दस-पांच दिन बाद ऊब जाता है!
बड़े आश्चर्य की बात है कि रोज अखबार पढ़कर नहीं ऊबता जिंदगीभर। रोज रेडियो सुनकर नहीं ऊबता जिंदगीभर। रोज फिल्म देखकर नहीं ऊबता जिंदगीभर। रोज वे ही बातें करके नहीं ऊबता जिंदगीभर। ध्यान करके क्यों ऊब जाता है? आखिर ध्यान में ऐसी क्या कठिनाई है!
कठिनाई एक ही है कि संसार की यात्रा पर प्रयत्न नहीं उबाता, प्राप्ति उबाती है। और परमात्मा की यात्रा पर प्रयत्न उबाता है, प्राप्ति कभी नहीं उबाती। जो पा लेता है, वह तो फिर कभी नहीं ऊबता।
इसलिए बुद्ध को मिला ज्ञान, उसके बाद वे चालीस साल जिंदा थे। चालीस साल किसी आदमी ने एक बार उन्हें अपने ज्ञान से ऊबते हुए नहीं देखा। कोहनूर हीरा मिल जाता चालीस साल, तो ऊब जाते। संसार का राज्य मिल जाता, तो ऊब जाते।

महावीर भी चालीस साल जिंदा रहे ज्ञान के बाद, फिर किसी आदमी ने कभी उनके चेहरे पर ऊब की शिकन नहीं देखी। चालीस साल निरंतर उसी ज्ञान में रमे रहे, कभी ऊबे नहीं! कभी चाहा नहीं कि अब कुछ और मिल जाए!
नहीं; परमात्मा की यात्रा पर प्राप्ति के बाद कोई ऊब नहीं है। लेकिन प्राप्ति तक पहुंचने के रास्ते पर अथक... ।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, बिना ऊबे श्रम करना कर्तव्य है, करने योग्य है। यहां एक बात और ख्याल में ले लेनी जरूरी है कि कृष्ण ऐसा कहते हैं, अर्जुन कैसे माने और क्यों माने? कृष्ण कहते हैं, करने योग्य है। अर्जुन कैसे माने और क्यों माने? अर्जुन को तो पता नहीं है। अर्जुन तो जब प्रयास करेगा, तो ऊबेगा, थकेगा। कृष्ण कहते हैं।
इसलिए धर्म में ट्रस्ट का, भरोसे का एक कीमती मूल्य है। श्रद्धा का अर्थ होता है, ट्रस्ट। उसका अर्थ होता है, भरोसा। उसका अर्थ होता है, कोई कह रहा है, अगर उसके व्यक्तित्व से वे किरणें दिखाई पड़ती हैं, जो वह कह रहा है, उसका प्रमाण देती हैं; वह जो कह रहा है, जिस प्राप्ति की बात, वहां खड़ा हुआ मालूम पड़ता है... ।
अर्जुन भलीभांति कृष्ण को जानता है। कृष्ण को कभी विचलित नहीं देखा है। कृष्ण को कभी उदास नहीं देखा है। कृष्ण की बांसुरी से कभी दुख का स्वर निकलते नहीं देखा है। कृष्ण सदा ताजे हैं।
इसीलिए तो आप, और विशेषकर आधुनिक युग के चिंतक और विचारक बड़ी मुश्किल में पड़ते हैं। वे कहते हैं, कृष्ण की बुढ़ापे की कोई तस्वीर क्यों नहीं है! ऐसा तो नहीं हो सकता कि कृष्ण बूढ़े न हुए हों। जरूरी ही हुए होंगे। कोई नियम तो कृष्ण को छोड़ेगा नहीं। बुद्ध की भी बुढ़ापे की कोई तस्वीर नहीं है। अस्सी साल के होकर मरे। महावीर की भी बुढ़ापे की कोई तस्वीर नहीं है। जरूर कहीं कोई भूल-चूक हो रही है।
लेकिन जो लोग ऐसा सोचते हैं, उन्हें इस मुल्क के चिंतन के ढंग का पता नहीं है। यह मुल्क तस्वीरें शरीरों की नहीं बनाता, मनोभावों की बनाता है।
कृष्ण कभी भी बूढ़े नहीं होते, कभी बासे नहीं होते; सदा ताजे हैं। बूढ़े तो होते ही हैं, शरीर तो बूढ़ा होता ही है। शरीर तो जराजीर्ण होगा, मिटेगा। शरीर तो अपने नियम से चलेगा। पर कृष्ण की चेतना अविचलित भाव से आनंदमग्न बनी रहती है, युवा बनी रहती है। वह कृष्ण की चेतना सदा नाचती ही रहती है। कृष्ण की हमने इतनी तस्वीरें देखी हैं। कई दफे शक होने लगता है कि कृष्ण ऐसा एक पैर पर पैर रखे और बांसुरी पकड़े कितनी देर खड़े रहते होंगे! यह ज्यादा दिन नहीं चल सकता। यह कभी-कभी तस्वीर उतरवाने को, फोटोग्राफर आ गया हो, बात अलग है। बाकी ऐसे ही कृष्ण खड़े रहते हैं?
नहीं, ऐसे ही नहीं खड़े रहते हैं। लेकिन यह आंतरिक बिंब है, यह भीतरी तस्वीर है। यह खबर देती है कि भीतर एक नाचती हुई, प्रफुल्ल चेतना है, एक नृत्य करती हुई चेतना है, जो सदा नाच रही है। भीतर एक गीत गाता मन है, जो सदा बांसुरी पर स्वर भरे हुए है।
यह बांसुरी सदा ऐसी होंठ पर रखे बैठे रहते होंगे, ऐसा नहीं है। यह बांसुरी तो सिर्फ खबर देती है भीतर की। ये तो प्रतीक हैं, सिंबालिक हैं। ये गोपियां चारों वक्त, चारों पहर, चौबीस घंटे आस-पास नाचती रहती होंगी, ऐसा नहीं है। ऐसा नहीं है कि कृष्ण इसी गोरखधंधे में लगे रहे। नहीं; ये प्रतीक हैं, बहुत आंतरिक प्रतीक हैं।
असल में इस मुल्क की मिथ, इस मुल्क के मिथिक, इस मुल्क के पुराण प्रतीकात्मक हैं। गोपियों से मतलब वस्तुतः स्त्रियों से नहीं है। स्त्रियां भी कभी कृष्ण के आस-पास नाची होंगी। कोई भी इतना प्यारा पुरुष पैदा हो जाए, स्त्रियां न नाचें, ऐसा मौका चूकना संभव नहीं है। स्त्रियां नाची होंगी। लेकिन यह प्रतीक कुछ और है। यह प्रतीक गहरा है।
यह प्रतीक यह कह रहा है कि जैसे किसी पुरुष के आस-पास चारों तरफ सुंदर, प्रेम से भरी हुई, प्रेम करने वाली स्त्रियां नाचती रहें और वह जैसा प्रफुल्लित रहे, वैसे कृष्ण सदा हैं। वह उनका सदा होना है। वह उनका ढंग है होने का। जैसे चारों तरफ सौंदर्य नाचता हो, चारों तरफ गीत चलते हों, चारों तरफ संगीत हो, और घूंघर बजते हों, और चारों तरफ प्रियजन उपस्थित हों, और

प्रेम की वर्षा होती हो, ऐसे कृष्ण चौबीस घंटे ऐसी हालत में जीते हैं। ऐसा चारों तरफ उनके हो रहा हो, ऐसे वे भीतर होते हैं।
अर्जुन जानता है कृष्ण को भलीभांति। उदासी कभी उस चेहरे पर निवास नहीं बना पाई। आंखों ने उस चेहरे पर कभी हताशा नहीं देखी। उस व्यक्तित्व में कहीं कोई पड़ाव नहीं बन सका दुख का कभी। लेकिन अर्जुन को तो अभी भरोसा करना पड़ेगा, ट्रस्ट करना पड़ेगा कि कृष्ण कहते हैं, तो यात्रा की जाए। इसलिए कृष्ण कहते हैं, कर्तव्य। इसलिए कहते हैं, करने योग्य है अर्जुन!
करोगे, तो जान लोगे। नहीं करोगे, तो नहीं जान पाओगे। कुछ जानने ऐसे हैं, जो करने से ही मिलते हैं। और हम सब ऐसे लोग हैं कि हम सोचते हैं, जानने से ही जानना हो जाए। हम सोचते हैं, कुछ बात जान लें और ज्ञान हो जाए। कृष्ण कहते हैं, कर्तव्य है अर्जुन! करोगे, तो जान पाओगे। करने से ही जानना आएगा। और करने की सबसे बड़ी कठिनाई वे गिना देते हैं साधक को, ऊब। ऊब जाओगे; दो दिन करोगे और ऊब जाओगे।
हेरिगेल एक जर्मन विचारक जापान में था तीन वर्षों तक। एक फकीर के पास
एक अजीब-सी बात सीख रहा था। सीखने गया था ध्यान, और उस फकीर ने सीखना शुरू करवाया धनुर्विद्या का। हेरिगेल ने एक-दो दफे कहा भी कि मैं ध्यान सीखने जर्मनी से आया हूं और मुझे धनुर्विद्या से कोई प्रयोजन नहीं है। लेकिन उस फकीर ने कहा कि चुप! ज्यादा बातचीत नहीं। हम ध्यान ही सिखाते हैं। हम ध्यान ही सिखाते हैं।
दो-चार दिन, आठ दिन, हेरिगेल का पाश्चात्य मन सोचने लगा, भाग जाऊं। किस तरह के आदमी के चक्कर में पड़ गया! लेकिन एक आकर्षण रोकता भी था। उस आदमी की आंखों में कुछ कहता था कि वह कुछ जानता जरूर है। उसके उठने-बैठने में भनक मिलती थी कि वह कुछ जानता जरूर है। रात सोया भी पड़ा रहता और हेरिगेल उसे देखता, तो उसे लगता कि यह आदमी और लोगों जैसा नहीं सो रहा है। इसके सोने में भी कुछ भेद है! तो भाग भी न सके, और कभी पूछने की हिम्मत जुटाए, तो वह फकीर होंठ पर अंगुली रख देता कि पूछना नहीं। धनुर्विद्या सीखो।
एक साल बीत गया। सोचा हेरिगेल ने कि ठीक है; अब कोई उपाय नहीं है। इस आदमी से जाया भी नहीं जा सकता; इससे भागा भी नहीं जा सकता। नहीं तो यह फिर जिंदगीभर पीछा करेगा, इसका स्मरण रहेगा कि उस आदमी के पास था जरूर कुछ, कोई हीरा भीतर था, जिसकी आभा उसके शरीर से भी चमकती थी। मगर कैसा पागल आदमी है कि मैं ध्यान सीखने आया हूं, वह धनुर्विद्या सिखा रहा है! तो सोचा कि सीख ही लो, तो झंझट मिटे।
सालभर उसने अथक मेहनत की और वह कुशल धनुर्धर हो गया। उसके निशान सौ प्रतिशत ठीक लगने लगे। उसने एक दिन कहा कि अब तो मेरे निशान भी बिल्कुल ठीक लगने लगे। अब मैं धनुर्विद्या भी सीख गया। अब वह ध्यान के संबंध में कुछ पूछ सकता हूं?
उसके गुरु ने कहा कि अभी धनुर्विद्या कहां सीखे? निशान ठीक लगने लगा, लेकिन असली बात नहीं आई। उसने कहा कि निशान ही तो असली बात है! अब मैं सौ प्रतिशत ठीक निशाना मारता हूं। एक भी चूक नहीं होती। अब और क्या सीखने को बचा? उसके गुरु ने कहा कि नहीं महाशय! निशाने से कुछ लेना-देना नहीं है। जब तक तुम तीर चलाते वक्त मौजूद रहते हो, तब तक मैं न मानूंगा कि तुम धनुर्विद्या सीख गए। ऐसे चलाओ तीर, जैसे कि तुम नहीं हो।
उसने कहा कि अब बहुत कठिन हो गया। अभी तो हम आशा रखते थे कि साल छः महीने में सीख जाएंगे, अब यह बहुत कठिन हो गया। यह कैसे हो सकता है कि मैं न रहूं! तो तीर चलाएगा कौन? और आप कहते हो कि तुम न रहो और तीर चले! एब्सर्ड है। तर्कयुक्त नहीं है। कोई भी गणित को थोड़ा समझने वाला, तर्क को थोड़ा समझने वाला कहेगा कि पागल के पास पहुंच गए। अभी भी भाग जाना चाहिए।
लेकिन सालभर उस आदमी के पास रहकर भागना निश्चित और मुश्किल हो गया, क्योंकि आठ दिन बाद ही भागना मुश्किल था। सालभर में तो उस आदमी की न मालूम कितनी प्रतिमाएं हेरिगेल के हृदय में अंकित हो गईं। सालभर में तो वह आदमी उसके प्राणों के पोर-पोर तक प्रवेश कर गया। भरोसा करना ही पड़ेगा, और आदमी बिल्कुल पागल मालूम होता है।

उस फकीर ने कहा, तू जल्दी मत कर। जरूर वह वक्त आ जाएगा, जब तू मौजूद नहीं रहेगा और तीर चलेगा। और जिस दिन तू मौजूद नहीं है और तीर चलता है, उसी दिन ध्यान आ जाएगा। क्योंकि स्वयं को पूरी तरह अनुपस्थित कर लेने की कला ही ध्यान है, टु बी एब्सेंट टोटली।
और जिस क्षण कोई स्वयं को पूरी तरह अनुपस्थित कर लेता है, परमात्मा प्रवेश कर जाता है। परमात्मा के लिए भी जगह तो खाली करिएगा अपने घर के भीतर! आप इतने भरे हुए हैं कि परमात्मा आना भी चाहे, तो कहां से आए? उसको ठहरने लायक जगह भी भीतर चाहिए; उतनी जगह भी भीतर नहीं है! हम इतने ज्यादा अपने भीतर हैं, टू मच, कि वहां कोई रत्तीभर भी स्थान नहीं है, स्पेस नहीं है।
उस फकीर ने कहा, तू जल्दी मत कर। तू कुछ वक्त लगा और यह तीर निशान पर लगाने की बात न कर। निशान न भी लगा, तो चलेगा। उस तरफ निशान चूक जाए, चूक जाए; इस तरफ निशान न चूके। उसने कहा, इस तरफ के निशान का मतलब? कि इस तरफ करने वाला मौजूद न रहे, खाली हो जाए। तीर उठे और चले, और तू न रहे।
एक साल और उसने मेहनत की। पागलपन साफ मालूम होने लगा। रोज उठाता धनुष
और रोज गुरु कहता कि नहीं; अभी वह बात नहीं आई। निशान ठीक लगते जाते, और वह बात न आती। एक साल बीत गया। भागना चाहा, लेकिन भागना और मुश्किल हो गया। वह आदमी और भरोसे के योग्य मालूम होने लगा। इन दो सालों में कभी उस आदमी की आंख में रंचमात्र चिंता न देखी। कभी उसे विचलित होते न देखा। सुख में, दुख में, सब स्थितियों में उस आदमी को समान पाया। वर्षा हो कि धूप, रात हो कि दिन, पाया कि वह आदमी कोई अडिग स्थान पर खड़ा है, जहां कोई कंपन नहीं आता। भागना मुश्किल है। लेकिन बात पागलपन की हुई जाती है। दो साल खराब हो गए! गुरु से फिर एक दिन कहा कि दो साल बीत गए! उसके गुरु ने कहा कि समय का ख्याल जब तक तू रखेगा, तब तक खुद को भूलना बहुत मुश्किल है। समय का जरा ख्याल छोड़। समय बाधा है ध्यान में।
असल में समय क्या है? हमारा अधैर्य समय है। जो टाइम कांशसनेस है, वह समय का जो बोध है, वह अधैर्य के कारण है। इसलिए जो समाज जितना अधैर्यवान हो जाता है, उतना टाइम कांशस हो जाता है। जो समाज जितना धीरज से बहता है, उतना समय का बोध नहीं होता।
अभी पश्चिम बहुत टाइम कांशस हो गया है। एक-एक सेकेंड, एक-एक सेकेंड आदमी बचा रहा है; बिना यह जाने कि बचाकर करिएगा क्या? बचाकर करिएगा क्या? माना कि एक सेकेंड आपने बचा लिया और कार एक सौ बीस मील की रफ्तार से चलाई और जान जोखम में डाली और दो-चार सेकेंड आपने बचा लिए, फिर करिएगा क्या? फिर उन दो-चार सेकेंड से और कार दौड़ाइएगा! और करिएगा क्या?
लेकिन समय का बोध आता है भीतर के तनावग्रस्त चित्त से। इसलिए बड़े मजे
की बात है कि आप जितने ज्यादा दुखी होंगे, समय उतना बड़ा मालूम पड़ेगा। घर में कोई मर रहा है और खाट के पास आप बैठे हैं, तब आपको पता चलेगा कि रात कितनी लंबी होती है। बारह घंटे की नहीं होती, बारह साल की हो जाती है। दुख का क्षण एकदम लंबा मालूम पड़ने लगता है, क्योंकि चित्त बहुत तनाव से भर जाता है। सुख का क्षण बिल्कुल छोटा मालूम पड़ने लगता है। प्रियजन से मिले हैं और विदा का वक्त आ गया, और लगता है, अभी तो घड़ी भी नहीं बीती थी और जाने का समय आ गया! समय बहुत छोटा हो जाता है।
हेरिगेल का वह गुरु कहने लगा कि समय की बात बंद कर, नहीं तो ध्यान में कभी नहीं पहुंच पाएगा।
ध्यान का अर्थ ही है, समय के बाहर निकल जाना।
रुक गया। अब इस आदमी से भाग भी नहीं सकता। यही ट्रस्ट, श्रद्धा का मैं अर्थ कह रहा हूं आपसे। श्रद्धा का अर्थ है कि आदमी की बात भरोसे योग्य नहीं मालूम पड़ती, पर आदमी भरोसे योग्य मालूम पड़ता है। श्रद्धा का अर्थ है, बात भरोसे योग्य नहीं मालूम पड़ती, लेकिन आदमी भरोसे योग्य मालूम पड़ता है। बात तो ऐसी लगती है कि कुछ गड़बड़ है। लेकिन आदमी ऐसा लगता है कि इससे ठीक आदमी कहां मिलेगा! तब श्रद्धा पैदा होती है।
अब कृष्ण जो कह रहे हैं अर्जुन से, वह बात तो बिल्कुल ऐसी लगती है कि
जब कोई दुख विचलित न कर सकेगा, संसार से सब संसर्ग टूट जाएगा; पीड़ा-दुख, सबके पार उठ जाएगा मन। ऐसा मालूम तो नहीं पड़ता। जरा-सा कांटा चुभता है, तो

भी संसर्ग टूटता नहीं मालूम पड़ता। इस विराट संसार से संसर्ग कैसे टूट जाएगा? कैसे इसके पार हो जाएंगे दुख के? दुख के पार होना असंभव मालूम पड़ता है। लेकिन कृष्ण आदमी भरोसे के मालूम पड़ते हैं। वे जो कह रहे हैं, जानकर ही कह रहे होंगे।
हेरिगेल और रुक गया, एक साल और। लेकिन तीन साल! उसके बच्चे, उसकी पत्नी वहां से पुकार करने लगे कि अब बहुत हो गया, तीन साल बहुत हो गए ध्यान के लिए! वह भी जर्मन पत्नी थी, तीन साल रुकी। हिंदुस्तानी होती, तो तीन दिन मुश्किल था। तीन साल बहुत वक्त होता है। वह चिल्लाने लगी कि अब आ जाओ। अब यह कब तक और! अभी वह लिखता जा रहा है कि अभी तो शुरुआत भी नहीं हुई। गुरु कहता है कि नाट ईवेन दि बिगनिंग, अभी तो शुरुआत भी नहीं हुई। और तू बुलाने के पीछे पड़ी है!
आखिर जाना पड़ा। तो उसने एक दिन गुरु को कहा कि अब मैं लौट जाता हूं, यह जानते हुए कि आप जो कहते हैं, ठीक ही कहते होंगे, क्योंकि आप इतने ठीक हैं। यह जानते हुए कि इन तीन वर्षों में बिना जाने भी मेरे भीतर क्रांति घटित हो गई है। और अभी आप कहते हैं कि दिस इ.ज नाट ईवेन दि बिगनिंग, यह अभी शुरुआत भी नहीं है। और मैं तो इतने आनंद से भर गया हूं। अभी शुरुआत भी नहीं है, तो मैं सोचता हूं कि जब अंत होता होगा, तो किस परम आनंद को उपलब्ध होते होंगे! लेकिन दुखी हूं कि मैं आपको तृप्त न कर पाया; मैं असफल जा रहा हूं। मैं इस तरह तीर न चला पाया कि मैं न मौजूद रहूं और तीर चल जाए। तो मैं कल चला जाता हूं।
गुरु ने कहा कि तुम चले जाओ। जाने के पहले कल सुबह मुझसे मिलते जाना। दोपहर उसका हवाई जहाज जाएगा, वह सुबह गुरु के पास पुनः गया। आज कोई उसे तीर चलाना नहीं है। वह अपनी प्रत्यंचा, अपने तीर, सब घर पर ही फेंक गया है। आज चलाना नहीं है; आज तो सिर्फ गुरु से विदा ले लेनी है। वह जाकर बैठ गया है।
गुरु किसी दूसरे शिष्य को तीर चलाना सिखा रहा है। बेंच पर वह बैठ गया है। गुरु ने तीर उठाया है, प्रत्यंचा पर चढ़ाया है, तीर चला। और हेरिगेल ने पहली दफा देखा कि गुरु मौजूद नहीं है, तीर चल रहा है। मौजूद नहीं है का मतलब यह नहीं कि वहां नहीं है, वहां है। लेकिन उसके हाव-भाव में कहीं भी कोई एफर्ट, कहीं कोई प्रयास, ऐसा नहीं लगता कि हाथ तीर को उठा रहे हैं, बल्कि ऐसा लगता है कि तीर हाथ को उठवा रहा है। ऐसा नहीं लगता कि प्रत्यंचा को हाथ खींच रहे हैं, बल्कि ऐसा लगता है, चूंकि प्रत्यंचा खिंच रही है, इसलिए हाथ खिंच रहे हैं। तीर चल गया, ऐसा नहीं लगता कि उसने किसी निशाने के लिए भेजा है, बल्कि ऐसा लगता है कि निशाने ने तीर को अपनी तरफ खींच लिया है।
उठा। दौड़कर गुरु के चरणों में गिर पड़ा। हाथ से प्रत्यंचा ले ली; तीर उठाया और चलाया। गुरु ने उसकी पीठ थपथपाई और कहा कि आज! आज तू जीत गया। आज तूने इस तरह तीर चलाया कि तू मौजूद नहीं है। यही ध्यान का क्षण है। हेरिगेल ने कहा, लेकिन आज तक यह क्यों न हो पाया? तो उसके गुरु ने कहा, क्योंकि तू जल्दी में था। आज तू कोई जल्दी में नहीं था। क्योंकि तू करना चाहता था। आज करने का कोई सवाल न था। क्योंकि अब तक तू चाहता था, सफल हो जाऊं। आज सफलता-असफलता की कोई बात न थी। तू बैठा हुआ था, जस्ट वेटिंग, सिर्फ प्रतीक्षा कर रहा था।
अथक श्रम का अर्थ है, प्रतीक्षा की अनंत क्षमता। कब घटना घटेगी, नहीं कहा जा सकता। कब घटेगी? क्षण में घट सकती है; और अनंत जन्मों में न घटे। कोई प्रेडिक्टेबल नहीं है मामला। कोई घोषणा नहीं कर सकता कि इतने दिन में घट जाएगी। और जिस बात की घोषणा की जा सके, जानना कि वह क्षुद्र है और आदमी की घोषणाओं के भीतर है। परमात्मा आदमी की घोषणाओं के बाहर है।
हम सिर्फ प्रतीक्षा कर सकते हैं। प्रयत्न कर सकते हैं और प्रतीक्षा
कर सकते हैं। और ऊब गए, तो खो जाएंगे। और ऊब पकड़ेगी। ऊब बुरी तरह पकड़ती है। सच तो यह है कि जितने लोग मंदिरों और मस्जिदों में आपको ऊबे हुए दिखाई पड़ेंगे, उतने कहीं न दिखाई पड़ेंगे। मधुशालाओं में भी उनके चेहरों पर थोड़ी रौनक दिखेगी, मंदिरों में वह भी नहीं दिखेगी। होटलों में बैठकर वे जितने

ताजे दिखाई पड़ते हैं, उतने भी मस्जिदों और गुरुद्वारों में दिखाई नहीं पड़ते। ऊबे हुए हैं! जम्हाइयां ले रहे हैं! सो रहे हैं!
मैंने सुना है कि एक चर्च में एक पादरी बोल रहा है। एक आदमी जोर से घुर्राटे लेने लगा, सो गया है। पादरी उसके पास आया और कहा कि भाई जान, थोड़ा धीरे से घुर्राटे लें, क्योंकि दूसरे लोगों की नींद न टूट जाए! पूरा चर्च ही सो रहा है।
मंदिरों में लोग सो रहे हैं। धर्मसभाओं में लोग सो रहे हैं। ऊबे हुए हैं; जम्हाइयां ले रहे हैं। कैसे, फिर कैसे होगा?
कृष्ण कहते हैं, अथक! बिना ऊबे श्रम करना पड़े योग का।
हां, एक ही भरोसे की बात कही जा सकती है कि वे जो कह रहे हैं, प्राप्ति
पर जीवन की सारी खोज पूरी हो जाती है। और प्राप्ति पर फिर कभी ऊब नहीं आती। और ध्यान रहे, प्रयत्न में ऊब आ जाए तो हर्जा नहीं, प्राप्ति में ऊब नहीं आनी चाहिए। अन्यथा जीवनभर का श्रम व्यर्थ गया। और इस संसार में प्रयत्न में तो बड़ा रस रहता है और पा लेने पर कुछ हाथ नहीं लगता, और ऊब आ जाती है।
लेकिन यह बात ट्रस्ट पर ही ली जा सकती है, भरोसे पर ही। यह श्रद्धा का
ही सूत्र है।
पर कृष्ण किसी को धोखा किसलिए देंगे? कोई प्रयोजन तो नहीं है। बुद्ध किसलिए लोगों को धोखा देंगे? महावीर किसलिए लोगों को धोखा देंगे? क्राइस्ट या मोहम्मद किसलिए लोगों को धोखा देंगे? कोई भी तो प्रयोजन नहीं है। फिर एकाध आदमी धोखा देता, तो भी ठीक था। इस पृथ्वी पर न मालूम कितने लोग! किसलिए धोखा देंगे?
और फिर मजे की बात यह है कि ये लोग अगर धोखा देने वाले लोग होते, तो इतनी शांति और इतने आनंद और इतनी मौज और इतने रस में नहीं जी सकते थे। कोई धोखा देने वाला जीता हुआ दिखाई नहीं पड़ता। ये जो कह रहे हैं, कुछ जानकर कह रहे हैं। लेकिन इस जानने के लिए आपको कुछ करना पड़ेगा। अगर आप सोचते हैं कि सुनकर, पढ़कर, स्मृति से, समझ से काम हो जाएगा, तो कुछ भी काम नहीं होगा। कुछ करना पड़ेगा।
और ध्यान रहे, श्रम का एक कदम भी उतने दूर ले जाता है, जितने विचार के हजार कदम भी नहीं ले जाते। विचार में आप वहीं खड़े रहते हैं। सिर्फ हवा में पैर उठाते रहते हैं; कहीं जाते नहीं। श्रम का एक कदम भी दूर ले जाता है। और एक-एक कदम कोई चले, तो लंबी से लंबी यात्रा पूरी हो जाती है।
लेकिन इस बड़ी यात्रा में सबसे बड़ी बाधा आपकी ऊब से पड़ेगी, आपके घबड़ा जाने से पड़ेगी, कि पता नहीं, पता नहीं कुछ होगा कि नहीं होगा! आपकी प्रतीक्षा जल्दी ही थक जाएगी। उससे सबसे बड़ी कठिनाई पड़ेगी। साधक के लिए ऊब सबसे बड़ी बाधा है।
यह अगर स्मरण रहे, तो जब भी आप ऊब जाएं, तब थोड़े सजग होकर देखना कि ऊब
मन को पकड़ रही है, तुड़वा देगी सारी व्यवस्था को। तो ऊब से बचना। और जब ऊब पकड़े तो और जोर से श्रम करना, तो ऊब की जो ताकत है, वह भी श्रम में कनवर्ट होती है, वह भी श्रम में लग जाती है।
ऊबने में भी ताकत खर्च होती है। ऊबने में भी ताकत खर्च होती है; उस ताकत को भी श्रम में लगा देना। जब ऊब पकड़े मन को, तो और तेजी से श्रम करना। अगर ऊब पकड़े मन को, तो बैठकर ध्यान मत करना, दौड़कर ध्यान करना।
बुद्ध दो तरह का ध्यान करवाते थे भिक्षुओं को। कहते थे, एक घंटा बैठकर करो; और जैसे ही तुम्हें लगे कि ऊब पकड़ी, कि दौड़कर करो। जानते थे कि ऊब तो पकड़ेगी ही। तो पहले बैठकर करो, फिर चलकर करो।
अगर आप कभी बुद्धगया गए हों, तो आज भी वे पत्थर लगे हुए हैं, जहां बुद्ध घंटों चलते रहते थे। बोधिवृक्ष के नीचे बैठते, फिर चलते। फिर बैठते, फिर चलते। फिर बैठते, फिर चलते।
आज भी बर्मा, थाईलैंड जैसे मुल्कों में, जहां बुद्ध के ध्यान-केंद्र अभी भी थोड़ा-बहुत काम करते हैं, वहां भिक्षु एक घंटा बैठकर ध्यान करेगा, फिर दूसरे घंटे चलेगा। फिर बैठकर ध्यान करेगा, फिर तीसरे घंटे चलेगा। फिर बैठकर ध्यान करेगा। जब भी बैठकर देखेगा कि जरा-सी ऊब का क्षण आया, फौरन उठकर चलने लगेगा। ऊबेगा नहीं। ऊब नहीं आने देगा!

और अगर आपने तय कर लिया है कि ऊब को नहीं आने देंगे, तो आप थोड़े ही दिन में पाएंगे कि आप ऊब का अतिक्रमण कर गए। अब आप अथक योग में प्रवेश कर सकते हैं।

संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः।। 24।।
शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत्।। 25।।
इसलिए मनुष्य को चाहिए कि संकल्प से उत्पन्न होने वाली संपूर्ण कामनाओं को निःशेषता से अर्थात वासना और आसक्ति सहित त्यागकर और मन के द्वारा इंद्रियों के समुदाय को सब ओर से ही अच्छी प्रकार वश में करके, क्रम-क्रम से अभ्यास करता हुआ उपरामता को प्राप्त होवे तथा धैर्ययुक्त बुद्धि द्वारा मन को परमात्मा में स्थित करके परमात्मा के सिवाय और कुछ भी चिंतन न करे।

परमात्मा के सिवाय और कुछ भी चिंतन न करे, यही इस सूत्र का सार है। शेष
सब कृष्ण ने पुनः दोहराया है। कामनाओं को वश में करके, मन के पार होकर, इंद्रियों के अतीत उठकर, संकल्प-विकल्प से दूर होकर--सब जो उन्होंने पहले कहा है, पुनः दोहराया है। और अंत में, सदा परमात्मा के चिंतन में लीन रहे। दो बातें। एक, कृष्ण क्यों बार-बार वही-वही बात दोहराते हैं? इतना रिपीटीशन, इतनी पुनरुक्ति क्यों है? बुद्ध ने तो इतने वचन दोहराए हैं कि बुद्ध के जो नए वचनों के संग्रह प्रकाशित हुए हैं, उनको संपादित करने वाले लोगों को बड़ी कठिनाई पड़ी। क्योंकि अगर बुद्ध के ही हिसाब से पूरे वचन कहे जाएं, तो संग्रह कम से कम दस गुना बड़ा होगा। इतनी बार वचन दोहराए हैं कि फिर संपादित करने वाले लोग वचन लिख देते हैं और बाद में डिट्टो निशान लगाते जाते हैं कि वही, जो ऊपर कहा है, फिर कहा। वही, जो ऊपर कहा है, फिर कहा। दस गुना छंटाव करना पड़ता है।
लेकिन संपादन करने वाले लोगों से बुद्ध ज्यादा बुद्धिमान थे। इतने दोहराने की बात क्या हो सकती है? इस दोहराने का... कृष्ण भी क्या गीता में कुछ सूत्र दोहराए चले जा रहे हैं। फिर, और फिर, और फिर। बात क्या है? अर्जुन बहरा है?
होना चाहिए। सभी श्रोता होते हैं। सुनता हुआ मालूम पड़ता है, शायद सुन नहीं पाता। बिल्कुल दिखाई पड़ता है कि सुन रहा है, लेकिन कृष्ण को दिखाई पड़ता होगा उसके चेहरे पर कि नहीं सुना। फिर दोहराना पड़ता है।
ये किताबें लिखी गई नहीं हैं, बोली गई हैं। दुनिया में जो भी श्रेष्ठतम सत्य हैं, वे लिखे हुए नहीं हैं, बोले हुए हैं। वह चाहे कुरान हो, कि चाहे बाइबिल, कि चाहे गीता, चाहे धम्मपद। जो भी श्रेष्ठतम सत्य इस जगत में कहे गए हैं, वे बोले गए सत्य हैं। वे किसी के लिए एड्रेस्ड हैं। कोई सामने मौजूद है, जिसकी आंखों में कृष्ण देख रहे हैं कि कहा मैंने जरूर, लेकिन सुना नहीं।
जीसस तो बहुत जगह बाइबिल में कहते हैं--बहुत जगह कहते हैं--कान हैं तुम्हारे पास, लेकिन सुन सकोगे क्या? आंख है तुम्हारे पास, लेकिन देख सकोगे क्या? बार-बार कहते हैं कि जिनके पास कान हों, वे सुन लें। जिनके पास आंख हो, वे देख लें। तो क्या अंधों और बहरों के बीच बोलते होंगे?
नहीं; इतने अंधे और बहरे तो कहीं भी नहीं खोजे जा सकते कि सारी बाइबिल उन्हीं के लिए उपदेश दी जाए। हमारे जैसे ही लोगों के बीच बोल रहे होंगे, जिनके कान भी ठीक मालूम पड़ते हैं, आंख भी ठीक मालूम पड़ती है, फिर भी कहीं कोई बात चूक जाती है। तो कृष्ण और बुद्ध जैसे आदमी को दोहराना पड़ता है। बार-बार वही बात दोहरानी पड़ती है। फिर नए कोण से वही बात कहनी पड़ती है। शायद सुन ली जाए।
और एक कारण है। सुनने के भी क्षण हैं, मोमेंट्स। नहीं कहा जा सकता कि किस क्षण आपकी चेतना द्वार दे देगी। किस क्षण आप उस स्थिति में होंगे कि आपके भीतर शब्द प्रवेश कर जाए, नहीं कहा जा सकता।

अमेरिका में एक बहुत बड़ा करोड़पति, अरबपति था, रथचाइल्ड। उससे किसी नए युवक ने, संपत्ति के तलाशी ने पूछा कि आपकी सफलता का रहस्य क्या है? तो रथचाइल्ड ने कहा कि मेरी सफलता का एक ही रहस्य है कि मैं किसी अवसर को चूकता नहीं, छलांग मारकर अवसर को पकड़ लेता हूं। पर, उस आदमी ने कहा कि यह पता कैसे चलता है कि यह अवसर है? और जब तक पता चलता है, तब तक तो अवसर हाथ से निकल जाता है। तो छलांग मारने का मौका कैसे मिलता है? रथचाइल्ड ने कहा कि मैं खड़ा रहता ही नहीं; मैं तो छलांग लगाता ही रहता हूं। जब अवसर आता है, उस पर सवार हो जाता हूं। मैं छलांग लगाता ही रहता हूं। अवसर के लिए रुका नहीं रहता कि जब आएगा, तब छलांग लगाऊंगा। एक सेकेंड चूके, कि गए। हम तो छलांग लगाते रहते हैं। अवसर आया, हम सवार हो जाते हैं।
ठीक ऐसे ही व्यक्ति की चेतना में कोई क्षण होते हैं, जब द्वार खुलता है।
तो कृष्ण जैसे व्यक्ति तो कहे चले जाते हैं सत्य को। अर्जुन के चारों तरफ गुंजाते चले जाते हैं सत्य को। पता नहीं कब, किस क्षण में अर्जुन की चेतना उस बिंदु पर आ जाए, उस ट्यूनिंग पर, जहां आवाज सुनाई पड़ जाए और सत्य भीतर प्रवेश कर जाए! इसलिए इतना दोहराना पड़ता है।
पर दोहराने में भी हर बार वे कोई एक नई बात साथ में जोड़ते चले जाते हैं। हर बार कोई एक नया सत्य, कोई एक नया इंगित। नहीं तो अर्जुन भी उनसे कहेगा कि आप क्या वही-वही बात दोहराते हैं!
मजा यह है कि जो बिल्कुल नहीं सुनते, वे भी इतना तो समझ ही लेते हैं कि बात दोहराई जा रही है। जिनकी समझ में कुछ भी नहीं आता, वे भी शब्द तो सुन ही लेते हैं। उनको यह तो पता चल ही जाता है कि आपने यही बात पहले कही थी, वही बात आप अब भी कह रहे हैं। शब्द पुनरुक्त हो रहे हैं, यह जानने के लिए समझ आवश्यक नहीं है, केवल स्मृति काफी है।
तो इसलिए कृष्ण या बुद्ध फिर वही शब्द दोहराते हैं, लेकिन फिर कुछ नया इशारा जोड़ते हैं। शायद उस नए इशारे से कुंजी पकड़ में आ जाए और अर्जुन का ताला खुल जाए। इसमें नया शब्द जोड़ते हैं, प्रभु का सतत चिंतन।
इसमें दो बातें समझने जैसी हैं। एक तो, प्रभु का।
जिसे हम नहीं जानते, उसका चिंतन कैसे करेंगे? जिसे हम जानते ही नहीं, उसका हम चिंतन कैसे करेंगे? क्या करेंगे चिंतन?
दूसरी बात, चिंतन का अर्थ?
चिंतन का अर्थ विचार नहीं है। क्योंकि विचार तो उसका ही होता है, जो ज्ञात है, नोन है। अज्ञात का कोई विचार नहीं होता।
चिंतन का कुछ और अर्थ है। वह समझ में आ जाए तो प्रभु का चिंतन ख्याल में आ जाए। समझें, आपको प्यास लगी है। आप पच्चीस काम में लगे रहें, तो भी प्यास का चिंतन भीतर चलता रहेगा। विचार नहीं। विचार तो आप दूसरा कर रहे हैं। हो सकता है, हिसाब लगा रहे हैं, खाता-बही कर रहे हैं, किसी से बात कर रहे हैं। लेकिन भीतर एक अनुधारा, एक अनुचिंतन, एक बारीक अंडर करेंट, भीतर प्यास की चलती रहेगी। कोई भीतर बार-बार कहता रहेगा, प्यास लगी है, प्यास लगी है, प्यास लगी है।
यह मैं आपसे कह रहा हूं, इसलिए शब्द का उपयोग कर रहा हूं। वह जो आपके भीतर है, वह शब्द का उपयोग नहीं करेगा। वह तो प्यास की ही चोट करता रहेगा कि प्यास लगी है। शब्द का उपयोग नहीं करेगा, वह यह नहीं कहेगा कि प्यास लगी है। प्यास ही लगती रहेगी। फर्क आप समझ रहे हैं?
अगर आप कहें कि प्यास लगी है, प्यास लगी है, प्यास लगी है, तो यह विचार हुआ। और अगर प्यास ही लगती रहे; सब काम जारी रहे, विचार जारी रहे और भीतर एक खटक, एक चोट, द्वार पर कोई कुंडी खटखटाता रहे, शब्द में नहीं, अनुभव में; प्यास, प्यास भीतर उठती रहे, तो चिंतन हुआ।
प्रभु का विचार तो हम कर ही नहीं सकते। लेकिन प्रभु की प्यास हम सबके भीतर है। हालांकि हममें से बहुत कम लोगों ने पहचाना है कि प्रभु की प्यास हमारे भीतर है। लेकिन हम सबके भीतर है। कोई आदमी प्रभु-प्यास के बिना पैदा ही नहीं होता, हो नहीं सकता।

हां, यह हो सकता है कि वह अपनी प्रभु-प्यास की व्याख्या कुछ और कर ले।
और वह प्रभु-प्यास की व्याख्या करके कुछ और खोजने निकल जाए। मिस-इंटरप्रिटेशन हो सकता है; लेकिन प्यास सदा मौजूद रहती है।
अगर एक आदमी धन की तलाश में जाता है, तो बहुत ठीक से समझें तो भी वह प्रभु की तलाश में ही जाता है, गलत दिशा में। क्योंकि धन से लगता है, प्रभुता मिल जाएगी। धन से लगता है, प्रभुता मिल जाएगी। बहुत होगा धन, तो दीनता न रह जाएगी; प्रभु हो जाएंगे; मालकियत हो जाएगी।
एक आदमी पद की तलाश करता है कि राष्ट्रपति हो जाऊं; राष्ट्रपति के सिंहासन पर बैठ जाऊं। गलत व्याख्या कर रहा है वह। मन में तो परम पद पर पहुंचने की आकांक्षा है कि उस पद पर पहुंच जाऊं, जिसके ऊपर कोई पहुंचने की जगह न रह जाए। लेकिन वह यहीं की छोटी-बड़ी कुर्सियां चढ़ रहा है! बड़ी से बड़ी कुर्सी पर खड़े होकर भी पाएगा, कहीं नहीं पहुंचा। सिर्फ एक जगह पहुंचा है, जहां से अब कोई गिराएगा--सिर्फ एक जगह पहुंचा है। क्योंकि नीचे दूसरे चढ़ रहे हैं। वे टांगें खींच रहे हैं।
उसको वे पालिटिक्स कहते हैं; या और कुछ नाम दें। एक-दूसरे की टांग को खींचने का नाम पालिटिक्स! और जितने ऊपर आप गए, उतने ज्यादा लोग आपकी टांग खींचेंगे। क्योंकि आप अकेले रह जाएंगे और चढ़ने वाले बहुत हो जाएंगे। लाओत्से ने कहा है कि हमको कोई नीचे कभी न उतार पाया, क्योंकि हमने कहीं चढ़ने की कोशिश ही नहीं की।
अगर ऐसा करें, तो ठीक है। नहीं तो कोई न कोई खींचेगा। लेकिन वह जो पद
की आकांक्षा है, वह जो पावर की, शक्ति की आकांक्षा है, वह भी वस्तुतः प्रभुता की आकांक्षा है।
नेपोलियन से कोई पूछ रहा था कि कानून की क्या व्याख्या है? व्हाट इ.ज
दि ला? तो नेपोलियन ने कहा, आई एम दि ला, मैं हूं कानून।
अब ऐसा सिर्फ प्रभु कह सकता है, परमात्मा, कि मैं हूं कानून। नेपोलियन
कह रहा है! और उसे पता नहीं कि हृदय की धड़कन अभी बंद हो जाए, तो आई एम दि ला कुछ काम न करे; मैं कानून हूं, कुछ काम न करे। और जिस दिन उसने यह बात कही, उसके थोड़े ही दिन बाद वह हार गया। और बड़ी छोटी-सी चीज से हारा, बिल्लियों से!
नेपोलियन छोटा बच्चा था, तो एक छः महीने का बच्चा था जब नेपोलियन, तो
एक बिलाव ने जंगली बिलाव ने उसकी छाती पर पंजा मार दिया था। नौकरानी इधर-उधर हट गई थी, जैसा कि नौकरानियां हट जाती हैं। बिल्ली ने पंजा मार दिया। भागी नौकरानी आई। बिल्ली तो हट गई। लेकिन छः महीने के बच्चे पर बिल्ली का पंजा बैठ गया। वह जो बाद में कहता था, आई एम दि ला, वह सिर्फ बिल्ली का पंजा था उसकी छाती में, कोई कानून नहीं था। फिर वह बहादुर आदमी सिद्ध हुआ। शेर से लड़ सकता था, लेकिन बिल्ली से डरता था। वह छः महीने में जो कानून बनकर बैठ गई थी बिल्ली! बिल्ली को देखता था तो छः महीने के बच्चे की हैसियत हो जाती थी उसकी, रिग्रेस कर जाता। कभी हारा नहीं था।
लेकिन उसके दुश्मन ने, नेल्सन ने, जो उसके खिलाफ लड़ने आया था, पता लगा लिया कि उसकी कमजोरी बिल्ली है। तो सत्तर बिल्लियां नेल्सन अपनी युद्ध की फौज के सामने बांधकर लाया। और जब नेपोलियन ने बिल्लियां देखीं, तो जैसा अर्जुन ने कृष्ण से कहा कि हे कृष्ण, मेरा गांडीव धनुष शिथिल हो गया; मेरे गात शिथिल हुए जाते हैं, पसीना छूट रहा है। अब मेरी हिम्मत नहीं होती। ऐसा ही नेपोलियन ने अपने सेनापति से कहा कि तू सम्हाल। बिल्लियों को देखकर मेरे गात शिथिल हुए जाते हैं! हार गया उसी सांझ।
और जिसने पंद्रह दिन पहले कहा था, आई एम दि ला, वह पंद्रह दिन बाद हेलेना के द्वीप पर कैद था कारागृह में। सुबह घूमने निकला था। छोटा-सा द्वीप। द्वीप पर उसको मुक्त रखा गया था, क्योंकि छोटे द्वीप के बाहर भाग नहीं सकता था। द्वीप पर कारागृह था, पूरा द्वीप ही उसके लिए कारागृह था। सुबह घूमने निकला था। छोटी-सी पगडंडी है जंगल की और एक घास वाली औरत एक बड़ा घास का गट्ठर लिए उस तरफ से आती थी। नेपोलियन के साथ एक चिकित्सक रखा गया था, क्योंकि नेपोलियन जो कि कभी भी बीमार नहीं पड़ा था, हारते ही इस बुरी तरह बीमार पड़ गया, जिसका कोई हिसाब नहीं।

सभी राजनीतिज्ञ पड़ जाते हैं, हारते ही! ज्यादा दिन जिंदगी नहीं रहती फिर। फिर मौत बड़ी जल्दी करीब आ जाती है।
तो चिकित्सक साथ था। दोनों चल रहे थे। चिकित्सक तो भूल गया, चिल्लाकर जोर से कहा कि ओ घसियारिन! रास्ता छोड़। लेकिन घसियारिन क्यों रास्ता छोड़े? हो कौन तुम, जिसके लिए रास्ता छोड़े! घसियारिन तो बढ़ी चली आई। तब नेपोलियन को ख्याल आया। नेपोलियन रास्ते से नीचे उतर गया, डाक्टर को भी नीचे उतार लिया और उसने कहा कि वे दिन चले गए, जब हम पहाड़ों से कहते थे, रास्ता छोड़ दो और पहाड़ रास्ता छोड़ देते थे। अब घास वाली औरत रास्ता नहीं छोड़ेगी। नीचे उतरकर किनारे खड़ा हो गया। पंद्रह दिन पहले उस आदमी ने कहा था, आई एम दि ला, मैं हूं कानून, मैं हूं नियम।
असल में नेपोलियन की या सिकंदर की यात्रा भी इसी आशा में है कि एक जगह मिल जाए, जहां जाकर मैं कह सकूं, मैं हूं प्रभु। पद की हो, कि धन की हो, कि यश की हो, सारी यात्रा मिस-इंटरप्रिटेशन है, उस प्यास की गलत व्याख्या है, जो हमारे भीतर प्रभु के लिए है। वह सबके भीतर है।
बस, इस गलत व्याख्या को तोड़ देने की जरूरत है और आपके भीतर चिंतन चलने लगेगा चौबीस घंटे। चाहे दुकान पर बैठे होंगे, तो भीतर कोई प्रभु की प्यास सरकने लगेगी। चाहे घर पर होंगे, चाहे काम करते होंगे, चाहे विश्राम करते होंगे, चाहे जागते होंगे, चाहे सो गए होंगे, भीतर एक खटक चलती ही रहेगी। उस खटक का नाम चिंतन है। उस खटक का, कि प्रभु हुए बिना कोई उपाय नहीं,
कि प्रभु से एक हुए बिना कोई उपाय नहीं, कि प्रभु की गोद में पड़े बिना कोई उपाय नहीं, कि प्रभु की शरण में गए बिना कोई उपाय नहीं, कि प्रभु के साथ लीन हुए बिना कोई उपाय नहीं।
ऐसी जब प्यास--शब्द नहीं, ऐसी प्यास--जब भीतर सरकने लगती है, तो उसका नाम प्रभु का सतत चिंतन है।
कृष्ण कहते हैं, ऐसे सतत चिंतन को जो उपलब्ध होता है, समस्त वासनाओं
को क्षीण करके और समस्त इंद्रियों के पार उठकर, परम है सौभाग्य उसका, वह योगीजन उस सबको पा लेता है, जो पा लेने योग्य है।
आज इतना ही। फिर कल सुबह।
लेकिन पांच मिनट बैठेंगे, कोई जाएगा नहीं। धैर्य रखेंगे पांच मिनट।
यहां थोड़ा प्रभु का चिंतन चलता है; प्रभु के प्यासे लोग नाचते हैं उसकी यात्रा पर। उनको देखें। देखें ही न, उनका साथ दें। बैठकर ताली भी बजाएं।
उनके गीत में सम्मिलित भी हों। एक पांच मिनट के लिए भूल जाएं सब।
उठें मत। दो-चार लोग उठकर दूसरे लोगों को परेशान करते हैं। अपनी जगह बैठे रहें। एक पांच मिनट का धैर्य रख लें। इतनी देर धीरज की बात सुनी, तो उसको जल्दी खराब न करें। बैठ जाएं अपनी जगह पर। साथ दें उनके कीर्तन में।
मग्न हों। पांच मिनट के लिए आनंदित हों और यह प्रसाद लेकर घर जाएं।

गीता दर्शन, भाग तीन
गीता दर्शन अध्याय 6
बारहवां प्रवचन

मन साधन बन जाए

यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्।। 26।।
परंतु जिसका मन वश में नहीं हुआ हो, उसको चाहिए कि यह स्थिर न रहने वाला और चंचल मन जिस-जिस कारण से सांसारिक पदार्थों में विचरता है, उसे उससे रोककर बारंबार परमात्मा में ही निरोध करे।

मन चंचल है। वही उसकी उपयोगिता भी है, वही उसका खतरा भी। मन चंचल होगा ही, क्योंकि मन का प्रयोजन ही ऐसा है कि उसे चंचल होना पड़े। मन की चंचलता ठीक वैसी है, जैसे कि हवा का रुख देखने के लिए कोई घर के ऊपर पक्षी का पंख लगा दे। अगर पंख चंचल न हो, तो हवा का रुख न बता पाए। हवा जिस तरफ बहे, पंख को उसी तरफ घूम जाना चाहिए, तो ही वह खबर दे पाएगा कि हवा का रुख क्या है। मन, मनुष्य के व्यक्तित्व में चारों तरफ जो अंतर हो रहे हैं, उनकी खबर देने का यंत्र है। इसलिए वह चंचल होगा ही। चंचल होगा, तो ही अर्थपूर्ण है, अन्यथा उसका कोई अर्थ नहीं है। आपके बाहर सर्दी बदलकर गर्मी हो गई है। मन अगर खबर न दे, तो जीवन असंभव है। रास्ते पर कांटा पड़ा है, मन अगर खबर न दे; पैर में चोट लग गई है, मन अगर खबर न दे; मित्र शत्रु हो गया है, मन अगर खबर न दे; भूख लगी है, मन अगर खबर न दे--तो जीवन असंभव है।
तो मन को तो प्रतिपल खबर देनी पड़ेगी, हजार तरह की। और वह हजार तरह की खबर तभी दे सकता है, जब प्रत्येक छोटी-सी घटना से चंचल हो, विचलित हो--तभी खबर दे पाएगा।
तो मन का प्रयोजन ही यही है कि वह आपके जीवन को अस्तित्व में रखने का यंत्र है। और अस्तित्व प्रतिपल बदल रहा है। एक क्षण भी वही नहीं है, जो एक क्षण पहले था। सब कुछ बदलता जा रहा है। हर घड़ी, हर क्षण, चारों तरफ प्रवाह है परिवर्तन का।
इस परिवर्तन की आपको खबर होनी चाहिए, अन्यथा आप जी न सकेंगे। और इस परिवर्तन की जो खबर देगा, उसको हवा का रुख बताने वाले पंख की तरह कंपते रहना पड़ेगा, तैयार रहना पड़ेगा कि हवा कब बदल जाए, पंख उसके साथ ही बदल जाए। क्षणभर की देरी, कि जीवन खतरे में पड़ सकता है।
तो मन की उपादेयता, यूटिलिटी ही यही है। मन है ही इसलिए कि वह जीवन में
हो रहे परिवर्तन की सूचना आपको प्रतिपल देता रहे। यह उसका प्रयोजन है। लेकिन यहीं उसका खतरा भी शुरू होता है। क्योंकि हम इसी मन से परमात्मा को भी जानना चाहते हैं, जिस मन से संसार जाना जाता है। तब भूल हो जाती है। क्योंकि संसार है प्रतिपल परिवर्तन, और परमात्मा है सनातन, शाश्वत। वह कभी बदलता नहीं। वह सदा वही है, जो है। और संसार कभी वही नहीं है, जो क्षणभर पहले था। संसार तो बहती हुई गंगा है, जहां एक क्षण भी कुछ ठहरा हुआ नहीं है। फ्लक्स है, प्रवाह है। और परमात्मा सदा वही है, जहां कभी कुछ कणभर भी नहीं बदला है।
तो मन संसार को जानने में तो बिल्कुल ही समर्थ और सहयोगी है, परमात्मा
को जानने में बिल्कुल व्यर्थ और बाधा है। अगर इसी मन से परमात्मा को जानना चाहा, तो आप कभी न जान पाएंगे। कभी कोई उपाय इससे परमात्मा को जानने का नहीं है।
इस बात को ठीक से समझ लें। मन के दुश्मन हो जाने की कोई जरूरत नहीं है, सिर्फ मन का प्रयोजन समझ लेने की जरूरत है।
मन का प्रयोजन ही जो चंचल है उसको जानना है, इसलिए मन चंचल है। मन का प्रयोजन ही नहीं है उसको जानना, जो शाश्वत है, नित्य है। इसलिए शाश्वत और नित्य की तरफ मन का उपयोग करना पागलपन है। गलत, असंगत आयाम है परमात्मा मन के लिए। या परमात्मा के लिए मन असंगत विधि है।

इसलिए जो भी परमात्मा की तरफ, सत्य की तरफ, नित्य की तरफ, अपरिवर्तनीय
की तरफ, शाश्वत की तरफ, इटरनल की तरफ यात्रा करना चाहता है, उसे मन की चंचलता को छोड़कर, मन को ठहराकर ही गति करनी पड़ेगी।
इसका यह भी मतलब नहीं है कि आप बिल्कुल जड़ हो जाएं। इसका यह भी मतलब नहीं है कि मन आपका पत्थर हो जाए। इसका इतना ही मतलब है कि मन को आन और आफ करने की कला आपके पास होनी चाहिए। जब आप चाहें, तो मन की गति शून्य की जा सके; और जब आप चाहें, तो मन की गति पूरी की जा सके। इसकी गुलामी न रह जाए, इसकी परवशता न रह जाए; इसके आप मालिक हो जाएं कि आप बटन दबाएं और मन काम बंद कर दे, ताकि आप शाश्वत को जान सकें। आप बटन दबाएं और मन सक्रिय हो जाए, ताकि आप संसार में जी सकें।
और अस्तित्व दोहरा है। बाहर की तरफ संसार है, भीतर की तरफ परमात्मा है। इसलिए अक्सर एक भूल हो जाने का डर है कि जो लोग परमात्मा की तरफ जाते हैं, वे मन को इस भांति बंद कर देते हैं कि संसार से टूट जाते हैं। वह वही की वही भूल हो गई, जो पहले हो रही थी, कि इस मन को इतना गतिमान कर लेते हैं कि उस पर काबू नहीं रह जाता और परमात्मा से टूट जाते हैं।
सम्यक! सम्यक व्यक्तित्व वह है, कृष्ण कह रहे हैं, जो मन का मालिक हो जाए। मालकियत का मतलब, मन को मार डालना नहीं है। मरी हुई चीज के मालिक होने का कोई मतलब नहीं होता। मरी हुई चीज के मालिक होने का क्या मतलब होता है? दुश्मन को मार डाला और उसकी छाती पर बैठ गए, उसका क्या मतलब? मृत चीज की मालकियत का कोई मतलब नहीं होता है; जीवित चीज की मालकियत का कुछ मतलब होता है।
मालकियत का इसलिए अर्थ, मन को मार डालना नहीं है। मालकियत का अर्थ, मन
को स्वेच्छा से गतिमान करना या गतिहीन कर देने की क्षमता है--स्वेच्छा से, जब चाहें। जैसे कोई आदमी अपने घर के बाहर आ जाता है। जब चाहता है, घर के भीतर चला जाता है। बाहर आ जाता है, तो बाहर ऐसा नहीं अटक जाता कि अब कहे कि मैं घर के भीतर कैसे जाऊं! भीतर चला जाता है, तो अटक नहीं जाता। यह नहीं कहता कि अब भीतर आ गया, तो घर के बाहर कैसे जाऊं!
घर के भीतर और बाहर जैसी सहज गति आप करते हैं, ऐसे ही स्वयं के बाहर और भीतर सहज गति स्वेच्छा से संभव हो जाए, तो मन की मालकियत है। तो कहा जाएगा, मन निरुद्ध हुआ। लेकिन मन पूरी तरह जीवित है। और जब उसकी जरूरत हो, तब उसको स्फुरणा दी जा सकती है। और उसकी जरूरत चौबीस घंटे पड़ेगी। अस्तित्व संसार में है। मन की जरूरत पड़ेगी। लेकिन मन आपके हाथ में एक साधन हो जाए, तो आप मालिक हो गए।
अभी तो हम मन के हाथ में एक साधन हैं। मन चलता है; हम उससे कहते हैं, कृपा करो, मत चलो! वह सुनता ही नहीं। वह चलता ही चला जाता है! हमारे मन की हालत ऐसी है, जैसे किसी आदमी के पैरों की हालत हो जाए। उसको चलना नहीं है, लेकिन पैर उसको कहें कि हम तो चलेंगे! उसको कहीं जाना नहीं है, उसे कुर्सी पर बैठकर आराम करना है, लेकिन पैर हैं कि चले जा रहे हैं। तो उस आदमी को हम विक्षिप्त कहेंगे। हम कहेंगे, इस आदमी के पैर इसके मालिक हो गए। यह कहता है, रुको। लेकिन पैर नहीं रुकते। जब यह कभी कहता है, चलो! तब पैर कहते हैं, नहीं चलते; रुकेंगे।
नहीं, लेकिन पैर के आप मालिक हैं। जब आप चलना चाहते हैं, पैर चलते हैं।
जब आप रुकना चाहते हैं, पैर थिर हो जाते हैं। ठीक ऐसी ही मालकियत मन की भी होनी चाहिए। मन भी एक उपकरण है, जैसे पैर एक उपकरण है। मन भी एक इंस्ट्रूमेंट है।
लेकिन आप रात सोने को बिस्तर पर पड़े हैं। आप मन से कहते हैं कि अब चुप
हो जाओ; अब बंद हो जाओ; मुझे सो जाने दो। लेकिन वह चले चला जा रहा है! वह आपकी सुनता ही नहीं। इसमें मन का कोई कसूर नहीं है, ध्यान रखना। नहीं तो आप सोचें कि अरे, यह मन ही ऐसी चीज है। मन का इसमें कोई कसूर नहीं है। इसमें मन का कोई भी कसूर नहीं है, इसलिए जो मन को गालियां देते रहते हैं, वे निपट नासमझ हैं।
आपने ही मन की ऐसी व्यवस्था कर रखी है। आपने ही मन को जीवनभर इस तरह का शिक्षण दिया है। आपने ही कभी मन पर अपनी मालकियत की घोषणा नहीं की। आपने कभी मन को बंद करने का कोई उपाय नहीं किया। आप अपने मन को चलाते ही रहे

हैं। आप चलाते ही रहे हैं अकारण-कारण। मन को चलाते ही रहे हैं। मन का ट्रैक तैयार हो गया है।
मन जन्मों-जन्मों से चलने का आदी हो गया है। ठहरने की उसे कोई खबर ही नहीं रही। उसे पता ही नहीं है कि ठहरना भी होता है। और इसलिए जब आप अचानक एक दिन मन से कहते हैं, ठहर जाओ, तब वह नहीं ठहरता, तो इसमें उसका कसूर नहीं है। और आपके कहने से नहीं ठहरेगा।
सच तो यह है कि आप जितने घबड़ाकर कहते हैं कि ठहर जाओ, वह भी मन की ही गति है। आपका घबड़ाकर कहना कि ठहर जाओ, मन की ही गति है। और आपके कहने से नहीं ठहरेगा, आपको कला आनी चाहिए ठहराने की।
कार चलाते हों और ब्रेक लगाना न आता हो, और चिल्लाते हों कि ठहर जाओ; वैसा ही पागलपन है। चिल्लाते रहें, कार नहीं ठहरेगी। और एक्सेलरेटर पर पैर दबाए चले जा रहे हैं! और चिल्ला रहे हैं, ठहर जाओ! और ब्रेक लगाना आता नहीं। और ब्रेक कभी लगाया नहीं। ब्रेक जाम हो गए हैं। आज अचानक पैर भी रखेंगे, तो जंग खा गए हैं। उनको तेल की जरूरत पड़ेगी; ब्रेक आयल की जरूरत पड़ेगी। उनको फिर से गति देने के लिए सुगम, सरल और ढीला होना पड़ेगा। उनको कभी नहीं लगाया, सदा एक्सेलरेटर दबाया और सदा चिल्लाते रहे। फिर धीरे- धीरे आपको पता चलने लगा कि कितना ही चिल्लाओ, यह कार बड़ी खराब है; यह रुकती नहीं है।
कार का कोई भी कसूर नहीं है। कोई भी कसूर नहीं है। और मजा यह है कि जब
आप चिल्ला रहे हैं, तब भी आपका पैर एक्सेलरेटर को दबाए चला जा रहा है--तब भी! ठीक हम मन के साथ ऐसा ही कर रहे हैं। और इसलिए मन को दोष देते हैं जीवनभर, लेकिन हल नहीं होता कुछ।
कृष्ण कहते हैं, मन चंचल है। स्वभाव है मन का चंचल होना। होना ही चाहिए मन चंचल, नहीं तो मन का कोई अर्थ नहीं है। मन का प्रयोजन ही वही है। लेकिन मन के यंत्र में मन को रोकने की भी व्यवस्था है। उस व्यवस्था को, उस ब्रेक सिस्टम को ठीक से समझ लेना चाहिए कि वह क्या व्यवस्था है, जो मन को रोकती भी है।
दो बातों का ध्यान रखना जरूरी है, एक तो जब मन को रोकना हो, तो एक्सेलरेटर पर पैर न रहे। इसलिए कार में एक ही पैर से दो काम लेते हैं हम, ताकि भूल न हो जाए। नहीं तो एक पैर से ब्रेक लगा सकते हैं, एक से एक्सेलरेटर चला सकते हैं। लेकिन एक ही पैर से दोनों काम लेते हैं, ताकि कभी भूल न हो जाए। जब ब्रेक दबाएं, तो एक्सेलरेटर न दब जाए साथ में। अगर दोनों पैर से काम लें, तो खतरे का पूरा डर है। एक पैर से एक्सेलरेटर दबा दें और एक से ब्रेक दबा दें, तो उपद्रव हो ही जाने वाला है। इसलिए एक ही पैर से दो काम लेते हैं। उसी पैर को ब्रेक पर रखते हैं, ताकि एक्सेलरेटर अनिवार्यतः छूट जाए।
मन में भी वैसी ही व्यवस्था है। ठीक वैसी ही व्यवस्था है। जिस ढंग से
हम दबाते हैं मन को काम लेने के लिए, उसी ढंग से मन की रुकावट के लिए भी उसी व्यवस्था का उपयोग करना पड़ता है। थोड़ा-सा स्थान हटना पड़ता है। थोड़ा-सा स्थान भर पैर को हटाना पड़ता है। उसे समझ लें कि वह व्यवस्था क्या है।
जब आपको मन को दौड़ना होता है, तो क्या व्यवस्था है? एक्सेलरेटर क्या
है मन का? उसको गत्यात्मक करने का क्या ढांचा है? हम सब दौड़ाते हैं; इसलिए दौड़ाने से ही शुरू करना ठीक होगा। जब आपको मन को दौड़ाना होता है, तब आप क्या करते हैं?
शायद आपने ख्याल न किया हो, जब मन को दौड़ाना हो, तो मन के साथ तादात्म्य स्थापित करना पड़ता है। जितना तादात्म्य स्थापित हो जाए, मन उतना ही दौड़ता है। तादात्म्य एक्सेलरेटर है। तादात्म्य का मतलब है कि मन की जिस वृत्ति को दौड़ाना हो, उसके साथ एकात्म हो जाना पड़ता है।
अगर आपको कामवासना के साथ मन को दौड़ाना है, तो आप दूर खड़े रहेंगे, तो
मन नहीं दौड़ेगा। ऐसे ही होगा कि कार स्टार्ट कर दी और एक्सेलरेटर नहीं दबाया। भड़भड़, भड़भड़ होगी, लेकिन गाड़ी चलेगी नहीं; और थोड़ी देर में इंजन बंद पड़ जाएगा। अगर कामवासना के साथ दौड़ाना है, तो ऐसा मत सोचें कि मैं कामवासना का विचार करता हूं; ऐसा सोचेंगे, तो एक्सेलरेटर पर पैर नहीं पड़ेगा। ऐसा सोचें कि मैं कामवासना हूं। बस, मन दौड़ना शुरू कर देगा। थोड़ी

देर में कामवासना आपकी पूरी आत्मा को घेर लेगी। आप उसके साथ एक हो जाएंगे।
और जितना एक हो जाएंगे, उतनी मन की गति तेज हो जाएगी।
ब्रेक की व्यवस्था ठीक उलटी है; तादात्म्य तोड़ना पड़ेगा। जितना मन की किसी भी वृत्ति से दूर हो जाएंगे, पार हो जाएंगे, अलग हो जाएंगे, अनुभव कर पाएंगे, मैं भिन्न हूं, उतना ही ब्रेक लग जाएगा।
एक ही पैर का उपयोग करना है--तादात्म्य। अगर दबाया तादात्म्य को, एक हुए, तो गति पकड़ेगा; मन और चंचल हो जाएगा। अगर दूर हटाया तादात्म्य को, मन अचंचल हो जाएगा। और आपके सहयोग के बिना न तो चंचल हो सकता है, न आपके असहयोग के बिना अचंचल हो सकता है। टु कोआपरेट एंड नाट टु कोआपरेट।
सहयोग गति देता है, असहयोग गति तोड़ देता है।
तो जिस वृत्ति को चलाना हो, उसके साथ सहयोग कर लें; इतना सहयोग कर लें
कि आप उसी वृत्ति के रंग में रंग जाएं। इसका जो टेक्निकल, तकनीकी शब्द है, वह है, राग। राग का मतलब रंग ही होता है। राग का मतलब रंग ही होता है। किसी भी वृत्ति के राग में पड़ जाएं, अर्थात वृत्ति में ऐसे रंग जाएं कि रंग आपके ऊपर पूरा फैल जाए, तो मन की गति तीव्र हो जाती है।
अनेक हत्यारे अदालतों में कहते हैं कि हत्या हमने नहीं की। वे ठीक ही कहते हैं। पहले तो लोग सोचते थे कि हत्यारे सिर्फ इसलिए कहते हैं कि हमने हत्या नहीं की, क्योंकि वे अदालत को धोखा देना चाहते हैं। लेकिन अब मनसविद कहते हैं कि बहुत अर्थों में वे ठीक ही कहते हैं, धोखा देने के लिए नहीं कहते।
असल में हत्यारा जब हत्या करता है, तो हत्यारा मौजूद ही नहीं रहता; हत्या के साथ इतना रंग जाता है, जिसका कोई हिसाब नहीं। सोचने वाला, विवेक का जरा-सा भी बिंदु बाहर नहीं रह जाता, जो कहे कि मैंने हत्या की। हत्या हुई। मैं इतना भी अलग नहीं बचता कि वह कह सके, मैंने हत्या की। हत्यारा इतना ही कह सकता है कि हत्या के भाव ने मुझे इस बुरी तरह पकड़ लिया कि मैं तो था ही नहीं। हत्या मुझसे हुई है, मैंने की नहीं है। और मनसविद कहते हैं कि वह ठीक ही कह रहा है।
सच तो यह है कि बहुत-से हत्यारे हत्या करने के बाद भूल ही जाते हैं कि उन्होंने हत्या की। भूल ही जाते हैं! और बहुत जांच-पड़ताल करके पता चला है कि उनके भीतर कोई भी स्मृति नहीं रह जाती कि उन्होंने हत्या की है। क्यों नहीं रह जाती?
स्मृति बनने के लिए भी थोड़ा-सा फासला चाहिए; थोड़ा-सा फासला, अन्यथा स्मृति नहीं बनेगी। अगर आप वृत्ति के साथ पूरे रंग गए, तो घटना हो जाएगी, लेकिन स्मृति नहीं बनेगी। स्मृति बनेगी किसको? मैं तो बचता ही नहीं, जो नोट कर ले कि हत्या की जा रही है। मैं इतना डूब जाता हूं, इतना बेहोश हो जाता हूं, इतना एक हो जाता हूं कि मेरे द्वारा हत्या हो जाती है, लेकिन मेरे द्वारा उसकी कोई स्मृति नहीं बन पाती। मेरा कांशस माइंड इतना लीन हो जाता है कि वह कोई स्मृति नहीं बनाता। अनकांशस मेमोरी बनती है।
इसलिए हत्यारा कहता है होश में कि मैंने हत्या नहीं की। लेकिन उसे हिप्नोटाइज करके बेहोश करते हैं, तो वह कह देता है, मैंने हत्या की। शराब पिला देते हैं, उसे बेहोश कर देते हैं, तो वह कह देता है, मैंने हत्या की। होश में रहता है, तो कहता है, मैंने हत्या नहीं की। होश वाले मन को कोई खबर ही नहीं है। खबर के लिए दूरी चाहिए। वह दूरी मौजूद नहीं है।
आपने हत्या तो नहीं की है, सोचा बहुत बार होगा। क्योंकि ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जिसने किसी न किसी की हत्या करने का कभी न कभी न सोचा हो। अगर किसी और की नहीं, तो अपनी करने का सोचा होगा। फर्क नहीं है। किसी न किसी की--उसमें स्वयं भी सम्मिलित हैं--हत्या करने का न सोचा हो, ऐसा आदमी खोजना बहुत मुश्किल है, रेयर।
जो जानते हैं, वे कहते हैं कि प्रत्येक आदमी सत्तर साल की उम्र में औसतन दस बार अपनी या किसी की हत्या करने का विचार करता है। कम से कम, यह मिनिमम है। करता नहीं है, यह दूसरी बात है। लेकिन विचार करता है। क्यों नहीं कर पाता? कारण वही है। एक्सेलरेटर पूरा नहीं दब पाता, नहीं तो हो जाए। थोड़ा फासला बना रहता है। थोड़ा सोच-विचार भीतर कायम रहता है कि यह मैं क्या सोच रहा हूं! यह मैं क्या सोच रहा हूं! या भय के कारण एक्सेलरेटर पूरा

नहीं दबा पाता कि कहीं स्पीड बहुत तेज न हो जाए, कोई एक्सिडेंट न हो जाए; तो धीरे चलाता है।
फासला रह जाए, तो वृत्ति नहीं कार्य कर पाती; फासला छूट जाए, तो वृत्ति कार्य कर जाती है। वृत्ति के साथ तादात्म्य मन को गति, मन को प्राण देना है, खून देना है। और वृत्ति के साथ तादात्म्य तोड़ लेना मन को रुकावट डालनी है, ठहराना है।
इसको प्रयोग करके देखें, तो ख्याल में आ जाएगा। जिस वृत्ति के साथ मन दौड़ रहा हो, यह मत कहें कि रुक जाओ। रुक जाओ कहने का कोई मतलब नहीं है। उस वृत्ति के साथ तादात्म्य तोड़ें। मन में क्रोध आ रहा है, तब ऐसा न समझें कि मैं क्रोध कर रहा हूं। ऐसा ही समझें कि मन में क्रोध आ रहा है, मैं दूर खड़े होकर देख रहा हूं, जस्ट ए विटनेस, एक साक्षी। मैं देख रहा हूं कि मन कह रहा है कि क्रोध करो; मन कह रहा है कि गर्दन दबा दो; मन कह रहा है कि आग लगा दो-- मैं देख रहा हूं।
और जैसे ही देखने का ख्याल आएगा, आप अचानक पाएंगे कि एक्सेलरेटर से पैर हट गया, मन की गति धीमी हो गई। और यह अनुभव इतना सहज और सरल है कि प्रत्येक को ही होगा, इसमें कोई अड़चन नहीं है। सिर्फ खड़े होकर देखने की प्रक्रिया का अभ्यास जरूरी है।
और कर सकते हैं अभ्यास। रोज मौके मिलते हैं। रात विचार चल रहे हैं मन में, यह मत कहें, करवट न बदलें परेशानी से कि मन बंद हो जाए, तो मैं सो जाऊं। न; जब विचार चल रहे हैं मन में, तो देखना शुरू करें। यह मत कहें कि बंद हो जाएं। विचारों को देखें कि विचार चल रहे हैं, मैं दूर खड़ा देख रहा हूं। मैं एक साक्षी हूं। मैं सिर्फ देखूंगा; तुम चलो।
और आप पाएंगे, जैसे ही आपने निर्णय लिया कि मैं देखूंगा, तुम चलो, उनकी चलने की ताकत कम होने लगी, उनके पैर शिथिल होने लगे, उनकी गति नीचे गिरने लगी। और जिस क्षण आप पूरे देखने वाले की तरह खड़े हो जाएंगे, मन एकदम शांत हो जाएगा। इधर आया साक्षी, उधर गया मन। इस द्वार से साक्षी ने प्रवेश किया, उस द्वार से मन विदा हुआ। यह एक साथ, युगपत घटना घटती है।
मन से लड़ने की जरूरत नहीं है। लड़ने वाला तो पागल है। मन के प्रति जागने की जरूरत है। जागने से निरोध फलित होता है।
और जब तक मन का निरोध न हो जाए, तब तक प्रभु की तरफ यात्रा नहीं होती। क्योंकि मन संसार के लिए साधन, प्रभु के लिए बाधा। मन संसार के लिए सहयोगी, प्रभु के लिए विरोधी।
इसमें कोई कसूर नहीं है। यह मैकेनिज्म की बात है सिर्फ। यह अनिवार्यता है। क्योंकि ऐसा मैकेनिज्म नहीं हो सकता, जो दोनों तरफ काम दे सके। क्योंकि संसार के लिए बिल्कुल और तरह की जरूरत है। वहां सब बदल रहा है, इसलिए बदलने वाला सचेतन चित्त चाहिए, जो पूरे समय बदलता रहे।
और ध्यान रखें, जो चित्त जितनी गति से बदल सकता है संसार में, संसार में उसका सरवाइवल उतना ही सुनिश्चित है; उसका अस्तित्व उतना ही सुरक्षित है।
जमीन पर आदमी जीत गया, और पशु हार गए। उसका और कोई कारण नहीं था। पशुओं
के पास इतना चंचल मन नहीं है; और कोई कारण नहीं है। आदमी के पास चंचल मन है, वह जीत गया।
इस पृथ्वी पर बड़े शक्तिशाली पशु नष्ट हो गए हैं, पूरी की पूरी जातियां नष्ट हो गईं। उनके पास शरीर महा शक्तिशाली था। आज से कोई दस लाख साल पहले वैज्ञानिक कहते हैं--अब तो अस्थिपंजर भी मिलते हैं--हाथी हमारा छोटा-सा जानवर है उस जमाने का, बहुत छोटा-सा; उस जमाने का बहुत मिनिएचर, बहुत छोटा- सा प्रतीक। हाथी से दस-दस गुने, पंद्रह-पंद्रह गुने बड़े जानवर इस पृथ्वी पर थे। लेकिन सबके सब नष्ट हो गए। बात क्या है?
शरीर तो उनके पास बहुत बड़े थे, शक्ति उनके पास महान थी। छोटे-मोटे पहाड़ी को धक्का दे दें, तो खिसक जाए, गिर जाए। लेकिन उनके पास बहुत चंचल चित्त नहीं था, जो कि स्थितियों के साथ बदल सके। स्थितियां बदलीं, उनका मन नहीं बदला। स्थितियां बदल गईं, मन नहीं बदला; मर गए। क्योंकि स्थिति के साथ जिसका मन नहीं बदलेगा, वह मर जाएगा।

स्थिति के साथ बदलने से ही एडजस्टमेंट होता है। नहीं तो आप मैलएडजस्टेड हो जाएंगे। आपकी उम्र तो ज्यादा हो गई, लेकिन पायजामा बचपन का पहने चले गए, वैसी मुसीबत हो जाएगी। पायजामा बदलना पड़ेगा। जवानी आ गई और बुद्धि बचपन की रही आई, मन नहीं बदला, थिर मन हुआ आपके पास, तो आप मुश्किल में पड़ जाएंगे। वही काम बच्चा करेगा, तो हम खुश होंगे। वही जवान करेगा, तो जेलखाने में डाल देंगे। क्यों? बच्चा कर रहा है, तो कोई परेशान नहीं हो रहा है! क्योंकि हम मानते हैं कि बच्चा अभी जिस परिस्थिति में है, उसके साथ उसका मन बिल्कुल एडजस्टेड है। लेकिन आदमी जवान हो गया है और वही काम कर रहा है, तो बर्दाश्त के बाहर हो जाएगा। उसका मतलब यह है कि उसका मन रिटार्डेड है। उसका मन बच्चा था, तभी वहीं रुक गया। और वह तो बड़ा हो गया, और मन पीछे छूट गया। हमारी जिंदगी की अधिक तकलीफें यही हैं।
पिछले महायुद्ध में अमेरिका में जिन सैनिकों को भर्ती किया गया, उनके
आई क्यू, उनकी बुद्धि के माप की जांच की गई पहली दफा बड़े पैमाने पर, तो बड़ी हैरानी हुई। किसी आदमी की बुद्धि तेरह साल से ज्यादा नहीं निकली। तेरह साल पर बुद्धि रुकी हुई मालूम पड़ी।
औसत बुद्धि तेरह साल पर रुक जाती है। बड़ी घबड़ाहट की बात है। आदमी सत्तर साल का हो जाता है, लेकिन बुद्धि का अंक उसका तेरह साल के पास ठहरा रहता है। इसी से सब दिक्कतें खड़ी होती हैं। जैसे बूढ़ा भी क्रोध में आ जाए, तो बच्चों की तरह पैर पटकने लगता है। वह तेरह साल की बुद्धि भीतर काम करने लगती है। रिग्रेस करना आसान हो जाता है।
आपके घर में आग लग जाए, आप एकदम पैर पटककर छाती पीटकर रोने लगते हैं, वैसे ही जैसे छोटा तीन साल का बच्चा, उसका खिलौना टूट जाए, तो रोता और छाती पीटता है। फर्क क्या है? फर्क इतना ही है कि साधारण हालतों में आप गंभीरता बनाए रखते हैं, असाधारण हालतों में आपका बचकानापन प्रकट हो जाता है। वह जुवेनाइल भीतर जो छिपा है, वह असाधारण हालत में प्रकट हो जाता है। साधारणतः अपने को सम्हाल-सम्हूलकर चलाते रहते हैं। जरा-सी कोई विशेष घटना घट जाए, पता चल जाता है कि भीतर का बच्चा जाहिर हो गया।
तेरह साल पर रुक जाती है बुद्धि! हां, जिसकी नहीं रुकती, वह जीनियस है। लेकिन नहीं रुकने का मतलब है कि गति जारी रहे। बुद्धि इतनी गतिमान रहे कि कहीं ठहरे न; हर स्थिति के साथ बदलती चली जाए; हर नई स्थिति में नई हो जाए। तो मन को तो बदलना ही पड़ेगा। बदले मन, यही शुभ है। लेकिन यह सामर्थ्य
के भीतर हो कि हम जब चाहें, तब कहें, बस। और मन शांत होकर बैठ जाए। और हम उस दिशा में भी चेहरा फेर पाएं, जहां अपरिवर्तनीय का वास है, जहां नित्य का निवास है। हम उस मंदिर की तरफ भी आंखें उठा पाएं, जहां वह रहता है, जो कभी नहीं बदलता।
और उसको देखते ही ऐसी अपूर्व शांति प्राणों को घेर लेती है। क्योंकि परिवर्तन के साथ शांति कभी नहीं हो सकती। परिवर्तन के साथ अशांति ही होगी। परिवर्तन के साथ तनाव और टेंशन ही होगा। परिवर्तन के साथ तो बेचैनी और चिंता ही होगी। अपरिवर्तनीय के साथ ही शाश्वत शांति उतर आती है।
और एक बार आदमी इस कला में निष्णात हो जाए कि जब चाहे मन को रोक दे, जब चाहे मन को गतिमान कर दे, तो वैसा व्यक्ति संसार में भी और परमात्मा में भी, दोनों में समान रूप से जीने लगता है। और वैसा व्यक्ति फिर कह पाता है कि संसार भी परमात्मा का रूप है। फिर वैसे व्यक्ति को संसार और परमात्मा में कोई शत्रुता नहीं दिखाई पड़ती।
शत्रुता हमें दिखाई पड़ती है, क्योंकि हमारा मन दोनों तरफ नहीं मुड़ पाता। हमारी चेतना एक ही तरफ फिक्स्ड, फोकस्ड हो जाती है। हमारी हालत ऐसी है, जैसे किसी आदमी की गर्दन को लकवा लग जाए और वह एक ही तरफ देख पाए; सिर न घुमा पाए। हमारी वैसी मन की हालत है--लकवा खा गई, पैरेलाइज्ड। बस, संसार को ही देख पाते हैं। जब इधर देखना चाहते हैं, तो कुछ मुड़ नहीं पाता। पर इसमें कसूर मन का नहीं है। कसूर आपका है।
लेकिन इधर मैं देखता हूं कि अधिक धार्मिक लोग मन का कसूर समझकर गालियां देते रहते हैं। वह जो गालियां दे रहा है, वह भी मन है। वह जो कह रहा है, मन चंचल है, वह भी मन है। क्योंकि वह जो मन नहीं है, वह तो बोला ही नहीं कभी; वह तो अबोल है। वह जो मन नहीं है, उसने तो गाली क्या, कभी प्रशंसा भी

नहीं की। उससे तो शब्द भी नहीं निकला है। वह जो धार्मिक आदमी बेचैनी जाहिर कर रहा है कि बड़ा खराब है यह मन, बड़ा दुष्ट है, इससे कैसे छुटकारा पाऊं! वह मन ही कह रहा है ये सब बातें। क्योंकि मन के बाहर जो है वहां तो मौन है, सतत मौन है। वहां तो कभी कोई शब्द की झंकार पैदा नहीं हुई। वहां तो निःशब्द का निवास है।
वह मन ही कह रहा है। और मन की यह खूबी है कि वह अपने विपरीत भी वक्तव्य देता है। देना ही पड़ता है। जिसे प्रतिदिन बदलना पड़ेगा, उसे अपने ही वक्तव्य के खिलाफ बोलना पड़ेगा। एक क्षण पहले उसने कहा था कि मैं तुम्हारे लिए जान दे दूंगा। और एक क्षण बाद सोचता है कि तुम्हारी जान ले लूं! एक क्षण पहले कहा था, तुम्हारे बिना एक क्षण न जी सकूंगा; और एक क्षण बाद सोचता है कि इससे छुटकारा कैसे हो!
स्थिति बदलती है, मन बदल जाता है। मन कभी कंसिस्टेंट नहीं हो सकता। कोई उपाय नहीं है। उसको इनकंसिस्टेंट होना ही पड़ेगा, असंगत होना ही पड़ेगा। हर बार बदलना पड़ेगा; हर बार रूप नया लेना पड़ेगा। तो मन अपने ही खिलाफ बोलता चला जाएगा। अशांत होगा, और कहेगा कि शांति चाहिए मुझे। मन ही कहेगा। मन ही कहेगा, मुझे शांति दो। और आप मन को ही मन के खिलाफ लड़ाने लगेंगे। एक मन का हिस्सा कहेगा, शांति चाहिए। और एक मन का हिस्सा अशांति को बुनता चला जाएगा। फिर आप दोनों पर एक साथ पैर रख रहे हैं, एक्सेलरेटर पर भी और ब्रेक पर भी। अब एक्सिडेंट सुनिश्चित है।
और हम में से अधिक लोग एक्सिडेंट हैं। आदमी नहीं, दुर्घटनाएं हैं। हम में से अधिक लोग दुर्घटनाएं हैं। लेकिन चूंकि सभी दुर्घटनाएं हैं, इसलिए पता लगाना मुश्किल होता है। हम सब दुर्घटनाएं हैं, क्योंकि जो हम हो सकते थे, वह हम नहीं हो पाए हैं; और जो हमें नहीं होना चाहिए था, वह हम हो गए हैं। इसलिए तो इतनी पीड़ा है, इतना दुख है, इतनी परेशानी है। हमारी पूरी जिंदगी एक लंबी दुर्घटना है। हर चीज दुर्घटना है। प्रेम करने जाओ, घृणा हाथ लग जाती है। मित्रता बनाओ, शत्रुता बन जाती है। किसी को सुख देने जाओ, दुख के सिवा कुछ भी नहीं दिया जाता। किसी से अच्छी बात बोलो, वह न मालूम क्या समझ लेता है। वह कुछ अच्छी बात बोलता है, हम न मालूम क्या समझ लेते हैं। न कोई किसी को समझता, न कोई किसी से सहानुभूति कर पाता, न कोई किसी पर करुणा कर पाता। सब विक्षिप्त की तरह दौड़ते चले जाते हैं। और हर चीज उलझती चली जाती है।
इसीलिए तो बूढ़े आदमी कहते हैं कि बचपन बड़ा सुखद था। बचपन में था क्या आपके जिसकी वजह से सुखद था? हां, ये बुढ़ापे में जितनी आपने जटिलताएं पैदा कर लीं, ये भर नहीं थीं। और कोई खास बात नहीं थी। ये जितने उपद्रव आपने इकट्ठे कर लिए बूढ़े होते-होते, ये नहीं थे। कोई पाजिटिव, खास बात नहीं थी बचपन में। अगर होती, तो बुढ़ापा इतना उलझा हुआ नहीं हो सकता था। आपके पास कोई हीरे नहीं थे। अगर होते तो और बड़े हो गए होते; उनकी और ग्रोथ हो गई होती। कुछ नहीं था। बचपन सिर्फ कोरी स्लेट थी।
हां, बुढ़ापे में दुख होता है। कुछ लिखा नहीं था उस पर, कोई अमृत वचन नहीं लिखे थे, कोई वेद नहीं लिखा था उस पर; सिर्फ कोरी स्लेट थी। लेकिन बुढ़ापे में पाते हैं, तो ऐसा लगता है कि जैसे कार्बन का बहुत उपयोग किया गया हो, तो जो उसकी गति हो जाती है, ऐसी सब चित्त की स्थिति हो जाती है। कुछ समझ में नहीं आता कि क्या लिखा है। और फिर भी लिखते चले जाते हैं, उसके ऊपर ही लिखते चले जाते हैं! और जटिल होता चला जाता है, आखिर में सिर्फ एक पागलपन के अतिरिक्त कुछ नहीं बचता। खुद नहीं पढ़ सकते, दूसरे की तो बात अलग है। जिंदगी के बाद में जिंदगी ने क्या पाया, जिंदगी ने क्या निष्कर्ष लिया, जिंदगी कहां पहुंची, खुद नहीं बता सकते; दूसरे की तो बात अलग है। सुना है मैंने, एक बहुत अदभुत फकीर हुआ, मुल्ला नसरुद्दीन। गांव में अकेला आदमी था, जो लिख-पढ़ सकता था। तो गांव के लोग उससे चिट्ठियां लिखवाते थे। तो दो घटनाएं उसकी मैं कहना चाहता हूं। वह बहुत कीमती आदमी था। उसने आदमी पर गहरे मजाक किए हैं। उसकी सब घटनाएं आदमियों पर मजाक हैं।
एक बूढ़ी औरत उससे चिट्ठी लिखवाने आई। नसरुद्दीन ने कहा कि माफ कर। आज चिट्ठी नहीं लिख सकूंगा। क्योंकि मेरे अंगूठे में बहुत दर्द है, पैर के अंगूठे में बहुत दर्द है। उस स्त्री ने कहा, लेकिन मैंने कभी सुना नहीं कि

पैर के अंगूठे से कोई चिट्ठी लिखता है! पैर के अंगूठे में दर्द है, तो रहने दो। मेरी चिट्ठी तो लिख दो। उसने कहा कि माई, तू समझती नहीं। मुझे झंझट में मत डाल। तो उसने कहा, इसमें झंझट क्या है! तुम्हारा हाथ तो ठीक है। उसने कहा, हाथ बिल्कुल ठीक है। सब ठीक है। लेकिन पैर के अंगूठे में बड़ी तकलीफ है। बूढ़ी औरत ने कहा कि मैं पढ़ी-लिखी नहीं, लेकिन इतना तो मैं भी समझती हूं कि पैर के अंगूठे से लिखने का कोई संबंध नहीं।
नसरुद्दीन ने कहा, अब तू नहीं मानती, तो हम बताए देते हैं। चिट्ठी तो
हम लिख देंगे, लेकिन उसको पढ़ेगा कौन दूसरे गांव में? चिट्ठी लिखकर फिर हमीं को पढ़ने भी जाना पड़ता है! और कई बार तो ऐसा हो जाता है, नसरुद्दीन ने कहा कि तू किसी को बताना मत, कि हम खुद भी नहीं पढ़ पाते कि क्या लिखा है! पैर में मेरे बहुत तकलीफ है, अभी मुझे तू झंझट में मत डाल।
एक बार ऐसा हुआ कि एक दूसरा आदमी नसरुद्दीन से चिट्ठी लिखवाने आया। नसरुद्दीन ने पूरी चिट्ठी लिख दी। चिट्ठी लिखने के बाद उस आदमी ने कहा कि अब जरा मुझे पढ़कर तो सुना दो, कहीं मैं कुछ भूल तो नहीं गया लिखवाने को। नसरुद्दीन मुश्किल में पड़ा। उसने कहा कि देख भाई, यह गैरकानूनी है। उसने कहा कि इसमें क्या गैरकानूनी बात है! नसरुद्दीन ने कहा, यह चिट्ठी तू बता किसके नाम लिखी गई है? वही इसके पढ़ने का हकदार है। मैं नहीं पढ़ सकता। उस आदमी ने कहा कि बात तो ठीक है। जिस आदमी के नाम लिखी गई है, वही पढ़े। मैं नहीं पढ़ सकता। जब वह आदमी जाने लगा कि बात ठीक है, तो नसरुद्दीन ने कहा कि सुन, असली बात यह है कि लिखना आसान है, पढ़ना बहुत कठिन है। हम खुद ही नहीं पढ़ पाते कि क्या लिखा है!
ये जिंदगी के बाबत उसके मजाक हैं। जिंदगी के आखिर में जब आप अपनी जिंदगी को उठाकर देखेंगे, तो पाएंगे कि कुछ समझ में नहीं आता, यह क्या लिखा है मैंने! इस सारी कथा की न कोई शुरुआत है, न कोई अंत है। न इस कथा में कोई तुक है, न इस कथा में कोई संगति है। यह मैंने किया क्या? यह करीब-करीब ऐसा है, जैसा एक पागल आदमी लिखता और जो परिणाम होता, वह मेरा हो गया है।
यह होगा; यह होने वाला है। इसीलिए हम बुढ़ापे में बचपन की याद करते हैं
कि बड़े सुखद दिन थे! सुखद वगैरह कुछ भी न था। बच्चों से पूछो। सब बच्चे जल्दी बड़े होना चाहते हैं। बचपन बड़ी तकलीफ में गुजरता है। क्योंकि बचपन से ज्यादा गुलामी और कभी नहीं होती जिंदगी में। मां कहती है, इधर बैठो। बाप कहता है, उधर बैठो। इसी में वक्त जाया होता है।
एक बच्चे से उसके स्कूल में उसके शिक्षक ने पूछा कि तू बनना क्या चाहता है? उसने कहा, मैं बहुत कनफ्यूज्ड हूं। क्यों? क्योंकि मेरी मां मुझे गणितज्ञ बनाना चाहती है। मेरा बाप मुझे कवि बनाना चाहता है। मेरी चाची मुझे संगीतज्ञ बनाना चाहती है। मेरा बड़ा भाई मुझे नेता बनाना चाहता है। और भी बहुत रिश्तेदार हैं, वे सब बनाना चाहते हैं। और मुझे तो कुछ पता नहीं है कि मुझे क्या बनना है। बस, इस सबके बीच डोल रहा हूं।
बचपन, बच्चों से पूछो, सुखद नहीं है! बच्चे बहुत पीड़ा से गुजरते हैं।
और एक बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक जी.एन.पियागेट ने, जिसने बच्चों के साथ कोई पचास वर्ष मेहनत की है, उसका कहना है कि पांच साल के पहले की स्मृति इसीलिए भूल जाती है, क्योंकि बहुत दुखद है। आपको याद नहीं आती, पांच साल की उम्र के पहले की कोई स्मृति याद नहीं आती। क्यों भूल जाती है? कारण क्या है? जी.एन.पियागेट कहता है कि सिर्फ इसलिए भूल जाती है कि वह इतनी दुखद है कि मन उसे याद नहीं करना चाहता। लेकिन बुढ़ापे में हम कहते हैं कि बचपन बड़ा सुखद था, स्वर्ग था!
वह बुढ़ापे के नर्क की वजह से कह रहे हैं; और कोई कारण नहीं है। नर्क हम अपने हाथ से बना लेते हैं।
इस मन की विक्षिप्त अवस्था को जब तक कोई संयम में न ले आए, निरोध को न उपलब्ध हो जाए, तब तक प्रभु की यात्रा नहीं हो सकती है। और निरोध को उपलब्ध होने की विधि साक्षी भाव है, विटनेसिंग है, तादात्म्य को तोड़ देना है। तादात्म्य को तोड़ना ही योग है। योग का अर्थ है, जुड़ जाना।
संसार से जो टूटने की कला सीख लेता है, वह प्रभु से जुड़ने की कला सीख लेता है। वह एक ही चीज के दो नाम हैं। इसलिए जैन-शास्त्रों ने योग का बड़ा दूसरा उपयोग किया है। इसलिए कई दफे बड़ी भ्रांति होती है।

जो लोग हिंदू-शास्त्र को पढ़ते हैं और हिंदू योग की परिभाषा से परिचित हैं, वे अगर जैन-शास्त्र पढ़ेंगे, तो बड़ी हैरानी में पड़ेंगे। क्योंकि जैन-शास्त्र कहते हैं, तीर्थंकर अयोग को उपलब्ध हो जाता है--अयोग को, योग को नहीं!
लेकिन जैन-शास्त्र योग का अर्थ करते हैं, संसार से जुड़ना। तो तीर्थंकर अयोग को उपलब्ध हो जाता है; संसार से टूट जाता है। हिंदू-शास्त्र योग का अर्थ करते हैं, परमात्मा से जुड़ना। इसलिए परम ज्ञानी योग को उपलब्ध हो जाता है, क्योंकि परमात्मा से जुड़ जाता है।
अगर आप जैन-शास्त्र पढ़ेंगे, तो बड़ी बेचैनी में पड़ेंगे कि ये जैन-शास्त्र कहते हैं, योग से छूटो, अयोग को उपलब्ध हो जाओ। हिंदू-शास्त्र कहते हैं, योग को उपलब्ध होओ।
दोनों उपयोग हो सकते हैं। क्योंकि एक जगह से छूटना, दूसरी जगह जुड़ना है। संसार से छूटो, अयोग हो जाए, तो परमात्मा से योग हो जाता है। संसार से योग हो जाए, जुड़ जाओ, तो परमात्मा से अयोग हो जाता है।
कला, जो आर्ट है जीवन का, जीवन की जो कला है, वह इतनी ही है कि तुम मालिक
हो जाओ। जब चाहो जुड़ सको, जब चाहो टूट सको। मालकियत इतनी हो कि क्षण का इशारा और बात बदल जाए, हवा का रुख बदल जाए, चेतना दूसरी तरफ बहने लगे। ऐसे, ऐसे स्वतंत्रचेता व्यक्ति को ही प्रभु की उपलब्धि होती है।

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्।। 27।।
क्योंकि जिसका मन अच्छी प्रकार शांत है और जो पाप से रहित है और जिसका रजोगुण शांत हो गया है, ऐसे इस सच्चिदानंदघन ब्रह्म के साथ एकीभाव हुए योगी को अति उत्तम आनंद प्राप्त होता है।

पाप से रहित है जो, रजोगुण जिसका शांत हो गया--इन दो बातों को इस सूत्र में समझ लेना चाहिए।
पाप से मुक्त है जो! पाप क्या है? चोरी पाप है। हिंसा पाप है। असत्य पाप है। ऐसा हम मोटा हिसाब रखते हैं। लेकिन वस्तुतः ये पाप के रूप हैं, पाप नहीं। जब मैं कहता हूं, पाप के रूप हैं, पाप नहीं, तो मेरा मतलब ऐसा है कि जब हम कहते हैं, यह हार है गले का, यह हाथ की चूड़ी है, यह पैर की पांजेब है, तो ये रूप हैं सोने के, आभूषण हैं सोने के, आकार हैं सोने के।
सोने को हम समझ लें, तो सब रूपों को हम समझ लेंगे। और अगर रूपों को हमने समझा, तो हम धोखे में पड़ेंगे। धोखे में इसलिए पड़ेंगे कि अगर नए रूप का सोना सामने आ गया, तो हम न समझ पाएंगे कि यह सोना है। क्योंकि अनंत रूप हो सकते हैं सोने के। आपने अगर समझा कि चूड़ी सोना है, और आपने गले का हार देखा, तो आप न समझ पाएंगे कि यह सोना है।
अगर आपने एक चीज को पाप समझा और दूसरी चीज का आपको पता नहीं है, पहचान नहीं है, और वह जिंदगी में आई, तो आप न समझ पाएंगे कि पाप है। आकार से बांधकर पाप को समझा कि भूल होगी। निराकार से समझना जरूरी है। स्वर्ण से समझें, आभूषण से नहीं।
पाप तो एक ही है, पाप के रूप अनेक हो जाते हैं। सोना तो एक ही है, आभूषण अनेक हो जाते हैं। मूल को ठीक से समझ लें, तो सब जगह पहचान लेंगे कि पाप क्या है। और अगर आपने आकार को पकड़ा--आकार को पकड़ने की ही वजह से दुनिया में अलग-अलग समाज अलग-अलग चीजों को पाप कहता है। आकार को पकड़ने की वजह से अलग-अलग समाज अलग-अलग चीज को पाप कहते हैं।
जो चीज एक समाज में पाप है, वह दूसरे में पाप नहीं है। ऐसा भी हो सकता
है कि जो चीज एक समाज में पुण्य है, वह दूसरे में पाप है। और जो चीज एक समाज में पाप है, वह दूसरे में पुण्य है। और ऐसा भी हो जाता है कि जो एक युग में पाप है, वह दूसरे युग में पुण्य हो जाता मालूम पड़ता है। इसलिए बड़ा ही विभ्रम पैदा हुआ है। बड़ा विभ्रम पैदा हुआ है।
आकार को अगर पकड़ेंगे, तो विभ्रम पैदा होगा। क्योंकि आकार बदलते रहते हैं। पाप की भी फैशन बदलती है, आभूषण की ही नहीं। तो अगर आप पुराने पाप की परिभाषा पकड़े बैठे रहे, तो पाप जो नए रूप लेगा--वह भी फैशन बदलता है; पुराने

पाप करते-करते भी मन ऊब जाता है, नए पाप खोजता है--तो नए पाप आपकी पुरानी व्याख्या में पकड़ में नहीं आते हैं, तो आप मजे से करते चले जाते हैं। मजे से करते चले जाते हैं। थोड़ा देखें कि कैसे यह हो जाता है!
और इसलिए हर युग दिक्कत में पड़ता है। परिभाषा होती है पुरानी और पाप होते हैं नए। पुरानी परिभाषा में कहीं उनके लिए सूचना नहीं होती। जब तक परिभाषा बनती है, तब तक पाप की फैशन बदल जाती है। परिभाषा बनने में तो समय लगता है, डेफिनीशन बनने में समय लगता है, वक्त लगता है। अनुभव से परिभाषा बनती है, तब तक फैशन बदल जाती है। और अब तो इतने जोर से पाप की फैशन बदल रही है कि बहुत मुश्किल है कि कोई परिभाषा काम करेगी।
हालत करीब-करीब वैसी है, जैसा मैंने सुना है कि एक आदमी पेरिस की सड़क
पर जोर से भागा जा रहा है। एक मित्र रास्ते में मिला, नमस्कार की और कहा कि इतनी जल्दी में कहां जा रहे हो? उसने कहा, मेरी पत्नी के कपड़े हैं हाथ में। इतनी दौड़ने की क्या जरूरत है? पत्नी कोई मुसीबत में है? उसने कहा, मुसीबत में नहीं। वैसे ही दर्जी ने देर कर दी है। और अगर मेरे पहुंचने में देर हो जाए, तब तक तो फैशन बदल जाएगी। काफी खर्च उठाया है। कहीं पहुंचने के पहले फैशन न बदल जाए। इसलिए क्षमा करो। फिर कभी मिलना। अभी मैं जरा जल्दी में हूं।
वह ठीक कह रहा है। पेरिस में इतने ही जोर से बदल रही है फैशन। सारी दुनिया में ऐसे ही बदल रही है। और कपड़ों की फैशन बदले, तो बहुत दिक्कत नहीं आती, क्योंकि क्या दिक्कत आने वाली है! लेकिन पाप भी फैशन बदलता है। और जब पाप फैशन बदलता है, तो बड़ी मुश्किल हो जाती है, क्योंकि एकदम पकड़ में नहीं आता है कि यह पाप है। एकदम पकड़ में नहीं आता कि यह पाप है।
तो पाप के हम अगर मूल को समझ लें, तो ही हम पाप से बच सकेंगे, अन्यथा पाप से बचना कठिन है।
अब जैसे, कोई भी व्यवस्था को हम ले लें। कोई भी व्यवस्था को हम ले लें;
जो कल पाप थी, आज पाप नहीं मालूम पड़ती। कल पुण्य थी, आज पाप हो गई। वक्त था एक, दान पुण्य था; दानी पुण्यात्मा था। आज जो भी दान करता है, हर एक समझता है कि बिना पाप किए दान नहीं हो सकता। पहले पाप करो, तब धन इकट्ठा करो, तभी दान कर पाओगे। तो आज जो दान करता है, वह सिर्फ पापी होने की खबर देता है; या ज्यादा से ज्यादा पाप का प्रायश्चित्त करने की खबर देता है; और कोई खबर नहीं देता।
धनी के घर पैदा होना पुण्य था। धन पुण्य से मिलता था कभी। वह पुरानी परिभाषा थी। अब धनी के घर पैदा होना जैसे भीतर एक पश्चात्ताप लाता है कि कहीं कोई पाप, कहीं कोई अपराध, कहीं कोई गिल्ट हो रही है।
प्रूधो, पश्चिम का एक बहुत बड़ा विचारक लिखता है कि सब धन चोरी है। पुराने विचारक कहते थे, धन पुण्य से मिलता है। प्रूधो कहता है, सब धन चोरी है। तो चोरों के घर में पुण्य से कोई पैदा नहीं हो सकता, पाप से ही पैदा हो सकता है। स्वभावतः, चोरों के घर--अगर सब धन चोरी है--तो चोरों के घर कोई पुण्य से कैसे पैदा होगा! पाप से ही पैदा हो सकता है। अगर प्रूधो की बात सच है, तो गरीब के घर पैदा होना बड़ा पुण्य कर्म है।
युग बदलते हैं, परिभाषाएं बदल जाती हैं, लेकिन पाप नहीं बदलता। परिभाषाएं बदलती हैं। आभूषण बदलते हैं। सोना नया आभूषण बन जाता है। आकार बदल जाते हैं। बदलने से भूल होती है।
इसलिए कृष्ण ने उसमें दूसरी बात तत्काल जोड़ी है, वह मूल की है। पहले कहा कि पाप से जो मुक्त है और फिर पीछे कहा, रजोगुण के जो बाहर है। क्योंकि रजोगुण ही पाप का आधार है।
अगर आपके भीतर रजोगुण है, तो वह नए-नए पाप खोज लेगा; पुराने छोड़ेगा, नए खोज लेगा। लेकिन अगर भीतर रजोगुण खो गया, तो पाप को खोजने का उपाय खो गया। आपके भीतर पाप निर्मित हो सके, उसकी ऊर्जा खो गई। इसलिए बहुत गहरे में रजोगुण की क्षमता ही पाप है।
रजोगुण का मतलब है--रजोगुण का मतलब क्या है? तीन गुण इस देश के मनसविद
ने खोजे हैं। गहरे हैं वे गुण। मन के तीन गुण इस देश की बड़ी गहरी खोज है। इस देश ने जो गहरे से गहरे अनुदान जगत को दिए हैं, उसमें त्रिगुण प्रकृति की

खोज बड़ी गहरी है। बड़ी गहरी है। वे तीन गुण हैं--सत्व, रज, तम। चित्त भी इन तीन गुणों से काम करता है।
तम का अर्थ है, वह शक्ति, जो चीजों में अवरोध डालती है। तम का अर्थ है,
वह शक्ति, जो चीजों में अवरोध डालती है, स्टैग्नेंसी पैदा करती है, चीजों को रोकती है। स्टैटिक फोर्स है। और अगर कोई स्टैटिक फोर्स न हो आपके भीतर, तो आप कहीं रुक न पाएंगे; कहीं भी न रुक पाएंगे। कहीं भी न रुक पाएंगे, परमात्मा में भी न रुक पाएंगे, अगर स्टैटिक फोर्स आपके भीतर न हो।
तम सिर्फ रोकने वाली शक्ति है। जैसे जमीन से आप एक पत्थर फेंकें ऊपर
की तरफ, थोड़ी देर में जमीन पर गिर जाएगा, क्योंकि जमीन में एक कशिश है, जो रोकती है। नहीं तो फेंका गया पत्थर फिर कभी नहीं रुकेगा; अनंत काल तक चलता ही रहेगा, चलता ही रहेगा। फिर कहीं गिर नहीं सकता। कोई अवरोध शक्ति चाहिए। नहीं तो आप चल पड़े घर से, तो फिर घर दुबारा वापस न आ सकेंगे। हां, घर में कोई तमस भी बैठा है, जो वापस खींच लाएगा। पत्नी है, बच्चे हैं, वह स्टैग्नेंसी फोर्स है।
जो लोग सभ्यता का अध्ययन करते हैं, वे कहते हैं, घर पुरुष ने नहीं बनाया, स्त्री ने बनाया। इसीलिए उसको घरवाली कहते हैं। आपको कोई घरवाला नहीं कहता। घर उसी का है। अगर स्त्री न हो, तो पुरुष जन्मजात खानाबदोश है। भटकता रहेगा; ठहर नहीं सकता। वह स्त्री की खूंटी बन जाती है, फिर उसके आस-पास वह रस्सी बांधकर घूमने लगता है कोल्हू के बैल की तरह।
पुरुष को अगर हम ठीक से समझें, तो वह रज है, गति है। स्त्री को ठीक से समझें, तो वह तम है, अगति है। इसलिए इस जगत में जितनी चीजों को ठहरना है, उन्हें स्त्री का सहारा लेना पड़ता है। और जिन चीजों को चलना है, उन्हें पुरुष का सहारा लेना पड़ता है।
बड़े मजे की बात है कि सब चीजों को चलाने वाले पुरुष होते हैं और ठहराने वाली स्त्रियां होती हैं। दुनिया में इतने धर्म पैदा हुए, एक भी स्त्री ने पैदा नहीं किया; सब पुरुषों ने पैदा किए। लेकिन दुनिया में जितने धर्म टिके हैं, स्त्रियों की वजह से; पुरुषों की वजह से कोई भी नहीं। सब धर्म पुरुष पैदा करते हैं--चाहे जैन धर्म हो, चाहे हिंदू, चाहे बौद्ध, चाहे इस्लाम, चाहे ईसाई, चाहे जोरोस्ट्रियन, चाहे कोई भी--दुनिया के सब धर्म पुरुष पैदा करता है। मगर उसकी सुरक्षा स्त्री करती है। मंदिर में जाकर देखें। पुरुष दिखाई नहीं पड़ता। हां, कोई पुरुष अपनी स्त्री के पीछे चला गया हो, बात अलग है! कोई दिखाई नहीं पड़ता। स्त्रियां दिखाई पड़ती हैं। एक बार किसी चीज को गति मिल जाए, तो उसको ठहराने के लिए जगह स्त्री में है, पुरुष के पास नहीं है। वह तो गति देकर दूसरी चीज को गति देने में लग जाएगा। वह रुकेगा नहीं।
रोकने की शक्ति, मन के पास भी ऐसी ही शक्ति है एक, जो रोकती है; और एक शक्ति है, जो दौड़ाती है। तमस अवरोध शक्ति है, रज गति शक्ति है।
ध्यान रहे, जैसा मैंने पहले सूत्र में समझाया, मन गति है। अगर आपमें
रज की शक्ति बहुत ज्यादा है, तो मन को आप रोक न पाएंगे। मन गति करता ही रहेगा।
मैंने आपको कहा कि एक्सेलरेटर दबाना पड़े, तो गाड़ी चलती है। लेकिन गाड़ी में पेट्रोल होना चाहिए। बिना पेट्रोल के एक्सेलरेटर मत दबाते रहें, नहीं तो गाड़ी नहीं चलेगी। नहीं तो आप कहेंगे कि गलत बात कही। हम तो एक्सेलरेटर दबा रहे हैं, वह चलती नहीं! पेट्रोल भी चाहिए, वह ऊर्जा भी चाहिए, जो गति ले सके। उस ऊर्जा का नाम रज है। रज कहें, मूवमेंट है। तम ठहराव है, रेस्ट है। दोनों, आदमी को चलाने और ठहराने का कारण हैं।
सत्व स्थिति है। वह न गति है, न ठहराव है; स्वभाव है। अगर आपके भीतर रज बहुत है, तो आप सत्व में ठहर न सकेंगे। आप ठहर न सकेंगे सत्व में, रज दौड़ाता ही रहेगा। रज कम होना चाहिए। लेकिन अगर रज बिल्कुल शून्य हो जाए, तो आप सत्व में ठहर तो जाएंगे, लेकिन बेहोश हो जाएंगे; होश में नहीं रहेंगे। सुषुप्ति में ऐसा ही होता है। रज बिल्कुल शून्य हो जाता है, बिल्कुल नहीं रह जाता, गति बिल्कुल नहीं रह जाती, और ठहराव की शक्ति पूरा आपको पकड़ लेती है। लेकिन तब आपमें इतनी भी गति नहीं रह जाती कि आप जान सकें कि मैं

कहां हूं। क्योंकि यह जानना भी एक मूवमेंट है। नोइंग इ.ज ए मूवमेंट, ज्ञान एक गति है। इसलिए सुषुप्ति में कुछ भी नहीं रह जाता, आप जड़वत हो जाते हैं। समाधि का अर्थ है, रज और तम उस स्थिति में आ जाएं कि एक-दूसरे को संतुलित कर दें, एक-दूसरे को निगेट कर दें, काट दें। रज और तम ऐसे संतुलन में आ जाएं कि एक-दूसरे को काट दें। ऋण और धन बराबर शक्ति के हो जाएं, तो शून्य हो जाएंगे। उस शून्य में सत्व का उदभावन होता है। उस शून्य में सत्व का फूल खिलता है। उस शून्य में आप सत्व में ठहर भी जाते हैं और जान भी लेते हैं। इतना रज रहता है कि जान सकते हैं; इतना तम रहता है कि ठहर सकते हैं। खड़े हो सकते हैं, जान सकते हैं। और सत्व में स्थिति हो जाती है; स्वभाव हो जाता है।
सब पाप रज की अधिकता से होते हैं। सब पाप रज की अधिकता से होते हैं।
रजाधिक्य पाप करवा देता है। और कभी-कभी अकारण पाप भी करवा देता है।
सार्त्र की एक कथा है, जिसमें एक आदमी पर अदालत में मुकदमा चलता है।
क्योंकि उसने समुद्र के तट पर, किसी व्यक्ति को, जो धूप ले रहा था सुबह की, उसकी पीठ पर जाकर छुरा भोंक दिया। मुकदमा इसलिए महत्वपूर्ण हो जाता है कि उस आदमी ने, छुरा भोंकने वाले ने, जिसकी पीठ में छुरा भोंका, उसका चेहरा कभी नहीं देखा था। झगड़े का तो कोई सवाल नहीं; दुश्मनी का कोई सवाल नहीं। पहचान ही नहीं थी। दुश्मनी के लिए कम से कम पहचान तो अनिवार्य शर्त है। दुश्मनी के लिए पहले तो मित्रता बनानी ही पड़ती है। बिना मित्रता बनाए, तो दुश्मनी नहीं बन सकती।
कोई मित्रता ही नहीं थी, कोई पहचान नहीं थी। कोई एक्वेनटेंस भी नहीं था, परिचय भी नहीं था। वह यह भी नहीं जानता था, इस आदमी का नाम क्या है। सिर्फ पीठ देखी थी! पीठ तो फेसलेस होती है। उसका तो कोई चेहरा नहीं होता। उसने छुरा भोंक दिया!
अदालत उससे पूछती है कि तूने छुरा क्यों भोंका इस आदमी की पीठ में? क्योंकि न तू इसे पहचानता है, न तू इसे जानता है। न तो तेरी कोई दुश्मनी है, न कोई तेरा संबंध है!
वह आदमी कहता है कि मैं सिर्फ कुछ करने को बेचैन था। कुछ करने को बेचैन! और कुछ दिन से ऐसा बेचैन था कि कुछ सूझ ही नहीं रहा था, क्या करूं! और कुछ ऐसा करना चाहता था, जिसको कहा जा सके ईवेंट, घटना! मन बड़ा बेचैन था। मैं प्रफुल्ल हूं, प्रसन्न हूं। अखबार में फोटो भी छप गई है; चर्चा भी हो रही है। आई हैव डन समथिंग, कुछ मैंने किया। और जब आदमी कुछ करता है, ही बिकम्स समबडी, वह कुछ हो जाता है। मैं प्रसन्न हूं, आप कारण वगैरह मत पूछें मुझसे।
वह मजिस्ट्रेट कहता है कि कैसा मामला है! कुछ तो कारण होना चाहिए?
वह आदमी कहता है, मुझे बताइए कि मेरे जन्म का कारण क्या है? और जब मैं
मर जाऊंगा, तो कोई कारण होगा? कुछ कारण नहीं है। मेरे जवान होने का कारण क्या है? और मैं एक स्त्री के प्रेम में गिर गया था, तो अदालत बता सकती है कि कारण क्या है? कोई कारण जब किसी चीज के लिए नहीं है, तो इस नाहक छोटी-सी घटना को इतना तूल क्यों दे रहे हैं कि मैंने इसकी पीठ में छुरा भोंक दिया! मजिस्ट्रेट निर्णय करने में बड़ी मुश्किल में पड़ा हुआ है कि क्या निर्णय करे, क्या सजा दे!
यह शुद्ध पाप है! शुद्ध पाप की सजा किसी कानून में नहीं लिखी है। आभूषणों की सजा लिखी हुई है! यह बिल्कुल शुद्ध पाप है, जो सिर्फ शक्ति की गति की वजह से हो गया है।
लेकिन मजिस्ट्रेट कहता है कि फांसी तो मुझे तुझे देनी ही होगी। वह आदमी कहता है, आप फांसी दे दें। कारण न बताएं। कारण बताने की कोई जरूरत नहीं है। हम राजी हैं। मैं बिल्कुल राजी हूं। आप फांसी दे दें। कारण बताने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन मजिस्ट्रेट कहता है, जजमेंट मुझे लिखना पड़े, तो कारण तो चाहिए ही। वह कैदी कहता है, तो सारी जिरह आप इसीलिए कर रहे हैं, ताकि फांसी लगाने का कारण मिल जाए! और मैं कहता हूं, मैंने अकारण छुरा भोंका है। छुरा भोंकने के आनंद के लिए छुरा भोंका है। और जब उसकी पीठ में छुरा भुंका और खून का फव्वारा फैला, तो मैंने जिंदगी में पहली दफा, जिसको कहें, थ्रिल, पुलक अनुभव की। मैं प्रसन्न हूं।

आप सोचें, क्या सारे पाप ऐसी ही पुलक से पैदा नहीं होते? नहीं, आप सब कारण खोज लेते हैं। और कारण खोजकर आप रेशनलाइज कर लेते हैं। आप कहते हैं, मैंने इसलिए किया। लेकिन अगर गहरे में जाएंगे, तो पाप करने के लिए ही किया जाता है; कोई और कारण नहीं होता। आपके भीतर ऊर्जा होती है, रज होता है, जो कुछ करना चाहता है। कुछ धक्के देना चाहता है। कुछ करना चाहता है। उस करने से ही सारे पाप रूप लेते हैं।
कृष्ण कहते हैं, वह जो रजोगुण है, उस रजोगुण के पार जाना जरूरी है।
लेकिन पार जाने का अर्थ? रजोगुण और तमोगुण इस संतुलन में आ जाएं कि शून्य हो जाएं। अगर आप रजोगुण को बिल्कुल काट डालें, जो कि संभव नहीं है। क्योंकि काटेगा कौन? काटने का काम रजोगुण ही करता है, गति। काटेगा कौन? अगर एक आदमी कहता है कि मैं करूंगा साधना और रजोगुण को काट दूंगा, तो साधना रजोगुण करता है, एफर्ट रजोगुण से आता है। काटेगा कौन? काटने वाला बच जाएगा पीछे। काटने में मत पड़ें, सिर्फ संतुलन काफी है। रज और तम बराबर अनुपात में आ जाएं जीवन में, तो आपकी प्रतिष्ठा सत्व में हो जाती है।
और वैसे सत्व को उपलब्ध हुआ व्यक्ति, कृष्ण कहते हैं, अति उच्च, अति श्रेष्ठ आनंद को उपलब्ध होता है। अति उत्तम आनंद को उपलब्ध होता है, वैसे सत्व में खिल गया व्यक्ति। सत्व में खिल जाना फूल की भांति। उस खिलने का राज तम और रज का संतुलित हो जाना है।
यह ट्राएंगल है जीवन की शक्तियों का, एक त्रिभुज। दो भुजाएं, दो कोणों
को नीचे बनाती हैं। वे जो नीचे के दो कोण हैं, वे रज और तम हैं। अगर वे बिल्कुल संतुलित हो जाएं, साठ-साठ डिग्री के हो जाएं, तो सत्व का संतुलित कोण ऊपर प्रकट हो जाता है।
वह जो तीसरा कोण प्रकट होता है सत्व का, वही कोण फ्लावरिंग है, वही फूल
का खिलना है। यह जो सत्व के फूल का खिलना है, यह अति उच्च श्रेष्ठतम आनंद का शिखर छू लेता है। वह शिखर है।
इस शिखर को छूने के लिए क्या करें? गति को और अगति को संतुलन में लाएं। कैसे लाएंगे? क्या रास्ता है, क्या विधि है, क्या मार्ग है कि इनमें से एक चीज विक्षिप्त होकर ओवरफ्लो न करने लगे, बाहर न दौड़ने लगे?
एक ही रास्ता है। और वह रास्ता, जैसा मैंने पहले सूत्र में कहा, यदि आपका मन आपके काबू में आ जाए और आप जब चाहें तब मन को ठहरा सकें, और जब चाहें तब मन को चला सकें, तो चलना और ठहरना संतुलित हो जाएगा। क्योंकि आपके हाथ में हो जाएगा। जब तक आपके हाथ में नहीं है, तब तक संतुलन असंभव है। तब तक हम सभी असंतुलित रहते हैं। कोई एक चीज पर ठहर जाता है।
एक आदमी को हम कहते हैं, एकदम तामसी है, आलसी है, प्रमादी है। उठता ही नहीं, पड़ा ही रहता है; बिस्तर पर ही पड़ा हुआ है। वह एक तम भारी पड़ गया है उसके ऊपर; रज बिल्कुल नहीं है। उठने का भी मन होता है, तो एक करवट ही ले पाता है, ज्यादा से ज्यादा। करवट लेकर फिर सो जाता है।
एक दूसरा आदमी है कि दौड़ता ही रहता है। रात सोने भी बिस्तर पर जाता है,
तो सिवाय करवटें लेने के सो नहीं पाता। एक तामसी है, जो करवट लेकर फिर सो जाता है। और एक रजोगुण से भरा हुआ आदमी है, जिसका मन इतना दौड़ता है कि रात सोना भी चाहता है, तो सिर्फ करवट ही ले पाता है और कुछ नहीं कर पाता। करवटें बदलता रहता है! रात भी मन ठहरता नहीं, दौड़ता ही रहता है।
सारा मनुष्य का व्यक्तित्व ऐसा ही असंतुलित है। और इन दो के बीच असंतुलन है। और अगर यह संतुलन ठीक न हो पाए, तो जीवन की सारी जटिलताएं पैदा होती हैं--सारी जटिलताएं!
सारी जटिलताएं असंतुलन, इम्बैलेंस का फल हैं। सारे पाप इम्बैलेंस का
फल हैं। और पाप दो तरह के हैं। एक ऐसा पाप, जो रजोगुण से पैदा होता है, पाजिटिव। रजोगुण से वह पाप पैदा होता है, जैसा इस आदमी ने पीठ में छुरा भोंक दिया। एक ऐसा पाप भी है, जो तमोगुण से पैदा होता है। उसको उदाहरण के लिए समझ लें कि आप भी इस पीठ में छुरा जब भोंका जा रहा था, तब आप भी बैठे हुए थे। लेकिन आप बैठे ही रहे। आपने उठकर यह भी न कहा कि क्या कर रहे हो? यह क्या हो रहा है? बल्कि आपने और आंख बंद कर ली और ध्यान करने लगे।

आप भी पाप में भागीदार हो रहे हैं, लेकिन निगेटिवली। यह तमोगुण का पाप है। आप भी जिम्मेवार हैं। यह घटना आपके भी नकारात्मक सहयोग से फलित हो रही है।
दुनिया में दो तरह के पापी हैं, पाजिटिव और निगेटिव, विधायक और नकारात्मक। विधायक वे, जो कुछ करते हैं; और नकारात्मक वे, जो खड़े होकर देखते रहते हैं।
अब बंगाल है। एक गांव में पांच आदमी नक्सलाइट हो जाते हैं। पांच हजार
का गांव है। पांच आदमी रोज हत्या करते हैं, पांच हजार का गांव बैठा देखता रहता है। वे निगेटिव नक्सलाइट हैं, वे जो बैठकर देख रहे हैं। पांच आदमी हत्या कर रहे हैं, और वे कहते हैं कि बड़ा मुश्किल हो गया। पांच आदमी हत्या कर रहे हैं रोज, पांच हजार आदमी रोज देख रहे हैं! कलकत्ता मैं जाता हूं, तो देखकर हैरान होता हूं। ट्राम में सौ आदमी सवार हैं, लटके हैं दरवाजों से। दो लड़के आ जाते हैं, ट्रेन में आग लगा देते हैं। बाकी लोग खड़े होकर देखते हैं, फिर अपने घर चले जाते हैं कि नक्सलाइट बहुत उपद्रव कर रहे हैं।
यह निगेटिव पाप है। यह तमस के आधिक्य से पैदा हुआ पाप है। यह करता कुछ नहीं, लेकिन बहुत-सा करना इसके ही सहयोग से फलित होते हैं। यह करता कुछ नहीं; यह देखता रहता है। हम पाजिटिव पापी को तो पकड़ लेते हैं, जेल में डाल देते हैं। लेकिन निगेटिव पापी के लिए अभी तक कोई जेल नहीं है। लेकिन निगेटिव पापी भी छोटा-मोटा पापी नहीं है।
इसलिए मैंने कहा कि पाप के आभूषणों को मत पकड़ें। पाप की जड़ को पहचानने
की कोशिश करें।
अगर आपका चित्त तमस की तरफ ज्यादा झुका, तो आप नकारात्मक पापों में लग जाएंगे। अगर आपका चित्त रज की तरफ ज्यादा झुका, तो आप विधायक पापों में लग जाएंगे। और पाप के बाहर होने का उपाय है कि रज और तम दोनों संतुलित हो जाएं, तो आपकी फ्लावरिंग सत्व में हो जाएगी। और सत्व ही पुण्य है।
लेकिन जिन्हें हम पुण्य कहते हैं, वे पुण्य नहीं हैं। अगर हम ठीक से समझें, तो जिन्हें हम पुण्य कहते हैं, वे भी दो तरह के ही होते हैं, जैसे दो तरह के पाप होते हैं। कुछ लोग इसलिए पुण्यात्मा मालूम पड़ते हैं कि तमस इतना ज्यादा है कि पाप नहीं कर पाते, नकारात्मक हैं।
एक आदमी कहता है कि मैंने कभी चोरी नहीं की। इसका यह मतलब नहीं कि वह चोर नहीं है। अचोर होना बहुत मुश्किल बात है। इतना ही हो सकता है कि इतना तामसी है कि चोरी करने भी नहीं जा सका। इतना तामसी है कि चोरी करने में भी कुछ तो करना पड़ेगा।
जनरल मौंटगोमरी ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि दुनिया में चार तरह
के लोग हैं। एक वे, जो ज्ञानी हैं, लेकिन निष्क्रिय हैं। उनके ज्ञान से जगत को कोई लाभ नहीं होता; उनको भी होता हो, संदिग्ध है। एक वे, जो अज्ञानी हैं, लेकिन बड़े सक्रिय हैं। वे सारे जगत को हजारों तरह के नुकसान पहुंचाते हैं। जगत को तो पहुंचाते ही हैं, खुद को भी पहुंचाते हैं। एक वे, जो ज्ञानी हैं और सक्रिय हैं। लेकिन ऐसे लोग विलक्षण हैं; मुश्किल से कभी पैदा होते हैं। एक वे, जो अज्ञानी हैं और निष्क्रिय हैं। ये भी विलक्षण हैं; ये भी मुश्किल से कभी पैदा होते हैं। ये दोनों छोर वाले लोग बहुत मुश्किल से पैदा होते हैं।
श्रेष्ठतम तो वह है, जो ज्ञानी है और सक्रिय है। नंबर दो पर वह है, जो अज्ञानी है और निष्क्रिय है; कम से कम किसी उपद्रव में विधायक रूप से नहीं जाएगा। नंबर तीन पर वे हैं, जो ज्ञानी हैं और निष्क्रिय हैं। और नंबर चार पर वे हैं, जो अज्ञानी हैं और सक्रिय हैं। और ये नंबर चार के लोग निन्यानबे प्रतिशत हैं पृथ्वी पर।
यह विभाजन भी अगर ठीक से देख लें, तो तम और रज का ही विभाजन है। वह जो सत्व वाला व्यक्ति है, वह वही है, जो ज्ञानी है और सक्रिय है। लेकिन ज्ञान और सक्रिय, क्रिएटिव नालेज, सर्जनात्मक ज्ञान तभी फलित होता है, जब तम और रज दोनों संतुलित हो जाते हैं, जैसे तराजू के पलड़े।
और ऐसी स्थिति में, कृष्ण कहते हैं, परम आनंद को उपलब्ध होता है योगी।
शेष हम रात लेंगे।

अभी हम थोड़े-से संतुलन की दिशा में, तराजू के पलड़ों को थोड़ा एक जगह लाकर खड़ा करने की कोशिश करें। कोई जाए न! एक पांच मिनट संन्यासी यहां आनंद में डूबते हैं। संन्यासियों से कहना चाहता हूं, पूरे आनंद में डूबें, भूल जाएं अपने को। और आपसे कहता हूं, उनके भूलने में सहयोगी बनें। तालियां बजाएं, गीत गाएं। डोलें अपनी जगह पर। ये पांच मिनट भूल जाएं सब, जो सोचा, समझा, विचारा। और पांच मिनट लीन हो जाएं प्रभु में।

गीता दर्शन, भाग तीन
गीता दर्शन अध्याय 6
तेरहवां प्रवचन

पदार्थ से प्रतिक्रमण--परमात्मा पर

युंजन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते।। 28।।
और वह पापरहित योगी इस प्रकार निरंतर आत्मा को परमात्मा में लगाता हुआ सुखपूर्वक परब्रह्म परमात्मा की प्राप्तिरूप अनंत आनंद को अनुभव करता है।

पाप से रहित हुआ व्यक्तित्व आत्मा को सदा परमात्मा में लगाता हुआ परम आनंद को उपलब्ध होता है।
पाप से रहित हुआ पुरुष ही आत्मा को परमात्मा की ओर सतत लगा सकता है। पाप से रहित हुआ जो नहीं है, पाप में जो संलग्न है, वह आत्मा को सतत रूप से पदार्थ में लगाए रखता है।
अगर पाप की हम ऐसी व्याख्या करें, तो भी ठीक होगा, आत्मा को पदार्थ में लगाए रखना पाप है। आत्मा को पदार्थ में लगाए रखना पाप है और आत्मा को परमात्मा में लगाए रखना पुण्य है। पाप का फल दुख है, पुण्य का फल आनंद है। पदार्थ का उपयोग एक बात है, और पदार्थ में आत्मा को लगाए रखना बिल्कुल दूसरी बात है। पदार्थ का उपयोग किया जा सकता है बिना पदार्थ में आत्मा को लगाए। वही योग की कला है। उस कुशलता का नाम ही योग है।
पदार्थ का उपयोग किया जा सकता है बिना आत्मा को पदार्थ में लगाए। उपयोग तो करना पड़ता है शरीर से। जैसे आप भोजन कर रहे हैं। भोजन तो करना पड़ता है शरीर से। जाता भी शरीर में है, पचता भी शरीर में है। जरूरत भी, भोजन, शरीर की है। लेकिन भोजन में आत्मा को भी लगाए रखा जा सकता है। और मजा यह है बिना भोजन किए भी आत्मा को भोजन में लगाए रखा जा सकता है। उपवास अगर आपने किया हो, तो आपको पता होगा। भोजन नहीं करते हैं, लेकिन आत्मा भोजन में लगी रहती है।
आत्मा को लगाने के लिए भोजन करना जरूरी नहीं है; और भोजन करने के लिए आत्मा को लगाना जरूरी नहीं है। ये अनिवार्य नहीं हैं बातें। जैसे बिना भोजन किए भी हम आत्मा को भोजन में लगाए रख सकते हैं, वैसे ही हम भोजन करते हुए भी आत्मा को भोजन में न लगाएं, इसकी संभावना है।
एक तो हमारा अनुभव है कि बिना भोजन किए आत्मा शरीर में लग सकती है। वह हमारा सब का अनुभव है। दूसरा अनुभव हमारा नहीं है। लेकिन दूसरा अनुभव इसी अनुभव का दूसरा अनिवार्य छोर है। अगर यह संभव है कि आत्मा भोजन में लगी रहे बिना भोजन के, तो यह संभव क्यों नहीं है कि भोजन चलता रहे और आत्मा भोजन में न लगे?
यह भी संभव है। क्योंकि पदार्थ का सारा संबंध, सारा संसर्ग शरीर से होता है। पदार्थ का कोई संसर्ग आत्मा से होता नहीं। आत्मा तो सिर्फ ख्याल करती है कि संसर्ग हुआ, और ख्याल से ही बंधती है। आत्मा पदार्थ से नहीं बंधती, विचार से बंधती है।
आत्मा तो सिर्फ विचार करती है, और विचार करके बंध जाती है। विचार ही छा.ेड दे, तो मुक्त हो जाती है। आत्मा के ऊपर पदार्थ का कोई बंधन नहीं है, रस का बंधन है। और हम सब पदार्थ में रस लेते हैं। और जहां हम रस लेते हैं, वहीं ध्यान प्रवाहित होने लगता है। जहां हम रस लेते हैं, वहीं ध्यान की धारा बहने लगती है।
परमात्मा में हमने कोई रस लिया नहीं। उस तरफ कभी ध्यान की कोई धारा बहती नहीं। पदार्थ में हम रस लेते हैं, उस तरफ धारा बहती है।
क्या करें? इस पाप से कैसे छुटकारा हो? यह जो पदार्थ को पकड़ने का पागलपन है, इससे कैसे छुटकारा हो?
एक आधारभूत बात इस छुटकारे के लिए जरूरी है, और वह यह कि पदार्थ में जब
हम रस लेते हैं, तो यह बड़ी मजे की बात है कि जितना ज्यादा आप रस लेने की

कोशिश करते हैं, उतना कम रस मिलता है। जितना ज्यादा रस लेने की कोशिश करते हैं, उतना कम रस मिलता है।
अगर आप कभी खेल खेलने गए हैं और आपने सोचा कि आज खेल में बहुत आनंद लें, बहुत सुख लें, तो आपको पता चलेगा कि आप कोशिश करते रहना सुख लेने की और आप पाएंगे कि सुख बिल्कुल हाथ नहीं लगा। कोशिश से सुख हाथ लगता नहीं। कोई डायरेक्ट, सीधा सुख पाया जा सकता नहीं। जिस चीज से भी आप सीधा सुख पाने की कोशिश करेंगे, पाएंगे कि चूक गए।
आज तय करके जाएं घर कि आज घर जाकर सुख लेंगे। भोजन में सुख लेंगे। बच्चों से मिलकर सुख लेंगे। प्रियजनों से प्रेम करके सुख लेंगे। और पूरी, सतत कोशिश करना कि प्रेम कर रहे, और सुख लेंगे; भोजन कर रहे, और सुख लेंगे; खेल रहे, और सुख लेंगे। और आप अचानक पाएंगे कि सुख तो तिरोहित हो गया, वह कहीं है नहीं।
सुख बाइ-प्रोडक्ट है। सुख सीधी चीज नहीं है। सुख ऐसा है जैसे कि गेहूं
के साथ भूसा पैदा होता है। गेहूं बो देते हैं, बालियां लग जाती हैं, गेहूं फल जाता है और साथ में भूसा पैदा हो जाता है। कभी भूलकर भूसे को सीधा मत बो देना। ऐसा मत सोचना कि भूसा बो देंगे, तो पौधा पैदा होगा; पौधे में और भी ज्यादा भूसा लगेगा। क्योंकि गेहूं में इतना भूसा लग गया, तो भूसे में कितना भूसा नहीं लगेगा!
कुछ भी हाथ नहीं लगेगा। हाथ का भूसा भी सड़ जाएगा। भूसा बाइ-प्रोडक्ट है; गेहूं के साथ पैदा होता है, सीधा पैदा नहीं होता। सुख बाइ-प्रोडक्ट है। दुख सीधा पैदा होता है। दुख गेहूं की तरह है। अब मैं आपको कहूं, दुख गेहूं की तरह है। सुख उसके भूसे की तरह है। आस-पास दिखाई पड़ता है; सत्व नहीं होता सुख में कुछ। बीज में दुख छिपा होता है।
ध्यान रहे, जब हम जमीन में बोते हैं, तो गेहूं बोते हैं। गेहूं भीतर होता है, भूसा बाहर होता है। लेकिन जो बाहर से देखता है, उसे भूसा पहले दिखाई पड़ता है। भूसे को खोले, तब गेहूं मिलता है। प्रकृति में गेहूं पहले आता है, भूसा पीछे आता है। दृष्टि में भूसा पहले आता है, गेहूं पीछे आता है।
दुख तो बीज है। उसके चारों तरफ सुख का भूसा छाया रहता है। देखने वाले
को सुख पहले दिखाई पड़ता है, और जब सुख को छीलता है, तब दुख हाथ लगता है। लेकिन बोने वाले को दुख ही बोना पड़ता है। और अगर आपने सीधा सुख बोने की कोशिश की, तो कुछ हाथ नहीं लगने वाला है। कुछ भी हाथ लगने वाला नहीं है। पदार्थ में जो आदमी जितना ज्यादा सीधा रस लेगा, उतना ही कम रस उपलब्ध
कर पाएगा। अगर पदार्थ में कोई सीधा रस न ले, सिर्फ पदार्थ का उपयोग करे-- उपयोग सीधी बात है--तो बड़े हैरानी की बात है कि पदार्थ का उपयोग करने वाला पदार्थ से बहुत रस ले पाता है। और पदार्थ में रस लेने वाला उपयोग तो कर ही नहीं पाता, बहुत तरह के दुखों में पड़ जाता है।
लेकिन हम पदार्थ का उपयोग नहीं करते हैं, हम पदार्थ में रस लेने की कोशिश करते हैं। इसका फर्क समझें। थोड़ा बारीक है, इसलिए एकदम से शायद ख्याल में न आए।
जो आदमी भोजन में रस लेने की कोशिश करेगा, उसे भोजन से नुकसान पहुंचेगा, रस नहीं मिलने वाला है। इसलिए अक्सर ज्यादा भोजन से लोग पीड़ित और परेशान हैं। चिकित्सक कहते हैं, कम भोजन से बहुत कम लोग मरते हैं, ज्यादा भोजन से ज्यादा लोग मरते हैं। कम भोजन से बहुत कम लोग बीमार पड़ते हैं, ज्यादा भोजन से ज्यादा लोग बीमार पड़ते हैं।
अगर आज अमेरिका सबसे ज्यादा बीमार कौम है, तो उसका कारण कुछ और नहीं है, अत्यधिक भोजन उपलब्ध है। पहली दफा ओवरफेड मुल्क है, जिसके पास खाने को जरूरत से ज्यादा है। और खाए चला जा रहा है सुबह से शाम तक, पांच बार! सारी बीमारी घेर रही है। सारी तकलीफ, सारी पीड़ा घेर रही है।
ख्याल है कि भोजन ज्यादा कर लेंगे, तो सुख मिलेगा। जब थोड़े भोजन से थोड़ा मिलता है, ज्यादा भोजन से ज्यादा मिल जाएगा, तो भोजन करते चले जाओ। सुख तो नहीं मिलता, सिर्फ दुख हाथ लगता है।
भोजन से सिर्फ उसे ही सुख मिलता है, जो भोजन में रस लेने नहीं जाता, सिर्फ भोजन का उपयोग करता है; भोजन करता है। और जो ठीक से भोजन करता है, रस

की फिक्र छोड़कर, वह भोजन से बहुत रस उपलब्ध करता है। क्योंकि वह चबाकर खाएगा। स्वाद से खाने वाला कभी चबाकर खाने वाला नहीं होगा। स्वाद से खाने वाला गटकेगा, क्योंकि इतनी फुर्सत कहां! जितना ज्यादा गटक जाए। पेट का उपयोग स्वाद वाला ऐसे करता है, जैसे कोई तिजोरी में रुपए डाल रहा हो। लेकिन जो भोजन का उपयोग करता है, वह गटकता नहीं; वह चबाता है। और जो चबाता है, उसको रस मिल जाता है। मैं आपसे कह रहा हूं, बाइ-प्रोडक्ट है। और जो रस पाना चाहता है, गटक जाता है, उसे रस तो नहीं मिलता, सिर्फ बीमारी हाथ लगती है।
जीवन में जो भी रसपूर्ण है, वह उपयोग से मिलता है--सम्यक उपयोग। सम्यक उपयोग तब संभव हो पाता है, जब पदार्थ से हमारी आत्मा का कोई आसक्ति, कोई राग, कोई लगाव न हो। हम सिर्फ उपयोग कर रहे हों।
आसक्ति बहुत और बात है। आसक्ति का मतलब है, हम सीधा रस लेने की कोशिश
कर रहे हैं। आसक्ति का अर्थ है कि हम सोचते हैं कि जितना ज्यादा पदार्थ हमारे पास होगा, हम उतने सुखी हो जाएंगे। ऐसा होता नहीं। अक्सर इतना ही होता है कि जितनी ज्यादा वस्तुएं होती हैं, उतने हम चिंतित हो जाते हैं। और हर वस्तु की रक्षा के लिए और वस्तुएं चाहिए, और वस्तुओं की रक्षा के लिए और वस्तुएं चाहिए। और अंत में हम पाते हैं कि आदमी खो गया और वस्तुओं का ढेर रह गया।
आदमी खो ही जाता है। वस्तुएं धीरे-धीरे इतने जोर से चारों तरफ इकट्ठी
हो जाती हैं कि उनके बीच में हम कहां समाप्त हो गए, हमें पता भी नहीं चलता। वस्तुओं में जिसने भी सीधा रस लेने की कोशिश की, वह वस्तुओं से दब जाएगा और स्वयं को खो देगा। और जिस व्यक्ति ने स्वयं को बचाने की कोशिश की और वस्तुओं से अपने को पार रखा; जाना सदा कि वस्तुओं का उपयोग है; वस्तुएं साधन हैं, साध्य नहीं; मीन्स हैं, एंड नहीं; उनका उपयोग कर लेना है; जरूरत है उनकी, लेकिन जीवन का परम सौभाग्य उनसे फलित नहीं होता है।
जीसस का वचन है--विचारणीय है--जीसस ने कहा है, मैन कैन नाट लिव बाइ ब्रेड अलोन, आदमी अकेली रोटी से नहीं जी सकता।
इसका यह मतलब नहीं है कि आदमी बिना रोटी के जी सकता है। इसका यह मतलब नहीं है। क्योंकि बिना रोटी के कोई नहीं जी सकता। लेकिन जब जीसस कहते हैं कि आदमी अकेली रोटी से नहीं जी सकता, तो उनका कहना यह है कि रोटी जरूरत तो है, लक्ष्य नहीं है।
अगर आपकी सब जरूरतें भी पूरी कर दी जाएं, तो भी आपको जिंदगी न मिलेगी।
तो भी जीवन का फूल नहीं खिलेगा। तो भी जीवन की सुगंध नहीं प्रकट होगी। तो भी जीवन की वीणा नहीं बजेगी। सब मिल जाए, तो भी अचानक पाया जाता है कि कुछ शेष रह गया।
वह शेष वही रह गया, जो हमारे भीतर था और जिसे हम वस्तुओं से पार करके कभी न देख पाए, और कभी न जान पाए। वही शेष रह गया। वही खाली जगह रह जाएगी। इसलिए अक्सर ऐसा होता है, जिनके पास सब होता है, वे बड़ी एंप्टीनेस, बड़ा खालीपन अनुभव करते हैं। सब रिक्त हो जाता है भीतर। ऐसा लगता है कि सब तो है, लेकिन अब! जब तक सब नहीं होता, तब तक एक भरोसा भी रहता है कि एक कार और पोर्च में खड़ी हो जाएगी, तो शायद सब कुछ मिल जाएगा। फिर कारों की कतार पोर्च में लग जाती है और कुछ भी नहीं मिलता है। और आदमी को भीतर अचानक पता चलता है कि मेरा सारा श्रम, सारी दौड़-धूप व्यर्थ गई। कारें तो खड़ी हो गईं, पर मैं कहां हूं? मुझे तो कुछ मिला नहीं। इसलिए जिसको ठीक वस्तुएं उपलब्ध हो जाती हैं, उसे ही पहली दफे पता चलता है कि आत्मा खो गई है।
कृष्ण कह रहे हैं, पाप से रहित पुरुष!
पापरहित का अर्थ है, वस्तुओं की तरफ लगा हुआ रस जिसके मन में नहीं है। वस्तुओं का रस ही सभी तरह के पाप करवा देता है फिर। फिर वस्तुओं की दौड़ में कौन से पाप करने, कौन से नहीं करने, इसका विचार करना मुश्किल हो जाता है। वस्तुएं सब पाप करवा लेती हैं। आखिर बड़े सम्राट अगर इतनी हत्याएं कर जाते हैं--नादिर या सिकंदर या हिटलर या स्टैलिन--अगर बड़े राजनीतिज्ञ सब तरह के पाप कर जाते हैं, तो किसलिए? ख्याल है कि सत्ता हाथ में होगी, तो वस्तुओं की मालकियत हाथ में होगी। ख्याल है कि धन हाथ में होगा, तो सारी वस्तुएं खरीदी जा सकती हैं।

लेकिन सारी वस्तुएं खरीद ली जाएं और मुझे यह पता न चले कि मैं वस्तुओं
से अलग भी कुछ हूं, तो मेरे जीवन में पाप घिर जाएगा, अंधकार भी घिर जाएगा, पदार्थ भी भारी पत्थर की तरह मेरी छाती पर पड़ जाएंगे, लेकिन मैं खो जाऊंगा।
स्वामी राम टोकियो में मेहमान थे। और तब की बात है, जब टोकियो में नए ढंग के मकान बहुत कम थे, सभी लकड़ी के मकान थे। एक सांझ निकलते थे, और एक मकान में आग लग गई है; लोग सामान बाहर निकाल रहे हैं। जिसका मकान है, वह छाती पीटकर रो रहा है। राम भी उस आदमी के पास खड़े होकर उस आदमी को गौर से देखने लगे।
वह छाती पीट रहा है, रो रहा है और चिल्ला रहा है, कह रहा है, मैं मर गया! राम थोड़े चिंतित हुए, क्योंकि वह आदमी बिल्कुल नहीं मरा है। बिल्कुल साबित, पूरा का पूरा है। चारों तरफ उसके घूमकर भी देखा। उस आदमी ने कहा भी कि क्या देखते हो! मैं मर गया हूं, लुट गया, सब खो गया।
राम बड़े चिंतित हुए, क्योंकि उसका कुछ भी नहीं खोया है। वह आदमी पूरा
का पूरा है। लेकिन हां, मकान में तो आग लगी है, और लोग ला रहे हैं सामान। तिजोड़ियां निकाली जा रही हैं। कीमती वस्त्र निकाले जा रहे हैं। हीरे- जवाहरात निकाले जा रहे हैं। फिर आखिरी बार आदमियों ने आकर कहा कि अब एक बार और हम भीतर जा सकते हैं। अंतिम क्षण है। एक बार और, इसके बाद मकान में जाना असंभव होगा। लपटें बहुत भयंकर हो गई हैं। अगर कोई जरूरी चीज रह गई हो, तो बता दें।
उस आदमी ने कहा, मुझे कुछ याद नहीं आता। मुझे कुछ भी याद नहीं आता कि क्या रह गया और क्या आ गया। मैं होश में नहीं हूं। मैं बिल्कुल बेहोश हूं। तुम मुझसे मत पूछो। तुम भीतर जाओ। तुम जो बचा सको, वह ले आओ।
हर बार वे आदमी बाहर आते थे, तो बहुत खुश। कुछ बचाकर लाते थे। आखिरी बार छाती पीटते रोते हुए बाहर निकले और एक लाश लेकर बाहर निकले। उस आदमी का इकलौता बेटा अंदर रह गया था और जलकर समाप्त हो गया था।
स्वामी राम ने अपनी डायरी में लिखा कि उस दिन उस मकान से चीजें तो सब बचा ली गईं, लेकिन मकान का मालिक, होने वाला मालिक, जलकर समाप्त हो गया। उन्होंने अपनी डायरी में लिखा है कि करीब-करीब हर आदमी की जिंदगी में ऐसी ही घटना घटती है। चीजें तो बच जाती हैं, मालिक मर जाता है! चीजें सब बच जाती हैं। आखिर में सब मकान, सब धन, तिजोड़ी, सब व्यवस्थित हो जाता है। और वह जिसके लिए किया था, वह मालिक मर जाता है!
हमारी सारी सफलता सिवाय हमारी कब्र के और कुछ नहीं बनती। और हमारे सारे प्रयत्न हमें सिवाय मरघट के और कहीं नहीं ले जाते। और जिंदगी का पूरा अवसर, जिन चीजों को जोड़ने में, इकट्ठा करने में हम गंवाते हैं, कृष्ण जैसे लोग कहते हैं कि उस अवसर में हम परमात्मा को भी पा सकते थे, जिसे पाकर परम आनंद भी मिलता है और मृत्यु के अतीत भी आदमी हो जाता है; मरता भी नहीं। लेकिन पाप से भरा चित्त यह न कर पाएगा। पाप से भरा चित्त, अर्थात पदार्थ की ओर दौड़ता हुआ चित्त। हम सबका दौड़ रहा है पदार्थ की ओर। इधर पदार्थ दिखा नहीं कि चित्त दौड़ा नहीं! रास्ते पर देखते हैं एक सुंदर व्यक्ति को गुजरते हुए, चित्त दौड़ गया। देखा एक मकान खूबसूरत, चित्त दौड़ गया। एक चमकती हुई कार गुजरी, चित्त दौड़ गया।
इस चित्त को समझना पड़ेगा, अन्यथा पाप में ही जीवन बीत जाता है। यह दौड़
ही रहा है पूरे वक्त, यह तलाश ही कर रहा है। और अगर सड़क से कोई कार न गुजरे, और सड़क से कोई स्त्री न निकले, और कोई सुंदर भवन न दिखाई पड़े, कोई सुंदर पुरुष न दिखाई पड़े, कुछ भी न दिखाई पड़े, तो हम आंख बंद करके दिवास्वप्न देखने लगते हैं। उसमें कारें गुजरने लगती हैं; स्त्री-पुरुष गुजरने लगते हैं; धन, शान-शौकत गुजरने लगती है। सब भीतर चलाने लगते हैं। लेकिन चित्त पदार्थ की तरफ ही दौड़ता रहता है। जागते हैं तो, सोते हैं तो, सपना देखते हैं तो--चित्त पदार्थ की तरफ ही दौड़ता रहता है।
यह पदार्थ की तरफ दौड़ता हुआ चित्त परमात्मा की तरफ नहीं दौड़ पाएगा।
इन दो में से एक ही चुनना पड़ता है। वह गली बहुत संकरी है, उसमें दो नहीं समाते।

और उसकी दिशा बड़ी विपरीत है। वह डायमेंशन अलग है। वह डायमेंशन बिल्कुल भिन्न है, वह आयाम भिन्न है। अगर पदार्थ की तरफ चित्त दौड़ता है, तो उसकी तरफ कभी नहीं दौड़ पाएगा। क्योंकि पदार्थ साकार है, और वह निराकार है। क्योंकि पदार्थ जड़ है, और वह चेतन है। क्योंकि पदार्थ बाहर है, और वह भीतर है। क्योंकि पदार्थ नीचे है, और वह ऊपर है। क्योंकि पदार्थ मृत्यु में ले जाता, और वह अमृत में। वह बिल्कुल उलटा है, बिल्कुल विपरीत। तो पदार्थ की तरफ दौड़ता हुआ चित्त वहां न जा सकेगा।
सुना है मैंने, एक आदमी भागा हुआ जा रहा है एक रास्ते से। तेजी में है। सांझ ढलने के करीब है। राह के किनारे बैठे हुए एक आदमी से उसने पूछा कि दिल्ली कितनी दूर है? उस बूढ़े आदमी ने कहा, दो बातों का जवाब पहले दे दो, फिर मैं बताऊं कि दिल्ली कितनी दूर है। उसने कहा, अजीब आदमी मिले तुम भी! इतना सीधा बता दो कि दिल्ली कितनी दूर है। दो बातों के सवाल और जवाब का क्या सवाल है? उस बूढ़े आदमी ने कहा, फिर मुझसे मत पूछो। क्योंकि मैं गलत जवाब देना कभी पसंद नहीं करता।
कोई और नहीं था, इसलिए मजबूरी में उस जल्दी जाने वाले आदमी को भी उस बूढ़े से कहना पड़ा, अच्छा भाई, पूछ लो तुम्हारे सवाल। लेकिन मेरी समझ में नहीं आता; कोई संगति नहीं है। मैं पूछता हूं, दिल्ली कितनी दूर है, इसमें मुझसे पूछने का कोई सवाल ही नहीं है।
पर उस बूढ़े ने कहा, तो तुम जाओ। नहीं तो मेरे दो सवाल! पहला तो यह कि तुम जिस तरफ जा रहे हो, इसी तरफ जाने का इरादा है? तो दिल्ली बहुत दूर है। क्योंकि दिल्ली आठ मील पीछे छूट गई है। अगर ऐसे ही जाने का है, तो दिल्ली पहुंचोगे जरूर, यह मैं नहीं कहता कि गलत जा रहे हो, लेकिन पूरी जमीन का चक्कर लगाकर। और वह भी बिल्कुल सीधी, नाक की रेखा में चलना। जरा चूके, कि चक्कर चूक गया, तो दिल्ली से फिर बचकर निकल जा सकते हो। सिर मत हिलाना जरा भी। बिल्कुल नाक की सीध में जाना। फिर भी मैं पक्का नहीं कहता कि दिल्ली पहुंचोगे। सारी जमीन घूमकर भी जरा भी चूक गए, इरछे-तिरछे हो गए, तो फिर चूक जाओगे। इसलिए मैं पूछता हूं कि इरादा क्या है? इसी तरफ जाने का है? और अगर लौटने की तैयारी हो, तो दिल्ली बहुत पास है; पीठ के पीछे है। आठ ही मील का फासला है।
उस आदमी ने कहा, यह मेरी समझ में आया। माफ करो कि मैंने तुमसे कहा कि असंगत बात पूछते हो। संगत बात थी। लेकिन दूसरा क्या सवाल है?
उस आदमी ने कहा कि जरा चलकर भी मुझे बताओ कि कितनी चाल से चलते हो। क्योंकि दूरी चाल पर निर्भर करती है, मीलों पर नहीं। आठ मील, तेज चलने वाले के लिए चार मील हो जाएंगे; धीरे चलने वाले के लिए सोलह मील हो जाएंगे। और एक कदम चलकर बैठ गए, तो आठ मील अनंत हो जाएंगे। इसलिए जरा चलकर बताओ! चाल क्या है? क्योंकि सब रिलेटिव है। दिल्ली की दूरी या सभी दूरियां रिलेटिव हैं, सापेक्ष हैं। कितना चलते हो?
उस आदमी ने कहा कि माफ करना। यह भी मेरे ख्याल में नहीं था। तुम ठीक ही पूछते हो।
परमात्मा भी, जिस दिशा में हम जाते हैं, पदार्थ की दिशा में, वहां हमें कभी नहीं मिलेगा। दिल्ली तो शायद मिल जाए, दिल्ली के उलटे चलकर भी, क्योंकि जमीन का घेरा बहुत बड़ा नहीं है। लेकिन पदार्थ का घेरा अनंत है। अगर हम पदार्थ की तरफ खोजते हुए चलते हैं, तो हम अनंत तक भटक जाएं, तो भी परमात्मा तक नहीं लौटेंगे।
तो एक तो पदार्थ का घेरा अनंत है, जमीन का घेरा तो बहुत छोटा है। यह जमीन तो बहुत मीडियाकर प्लेनेट है; बहुत ही गरीब, छोटा-मोटा, क्षुद्र। इसकी कोई गिनती नहीं है। यह हमारा सूरज इस पृथ्वी से साठ हजार गुना बड़ा है। लेकिन हमारा सूरज भी बहुत मीडियाकर है। वह भी बहुत मध्यमवर्गीय प्राणी है, मिडिल क्लास! उससे हजार-हजार, दस-दस हजार गुने बड़े सूर्य हैं, महासूर्य हैं। इस पृथ्वी की तो कोई गिनती नहीं है। यह तो बड़ी छोटी जगह है। वह तो हम बहुत छोटे हैं, इसलिए पृथ्वी बड़ी मालूम पड़ती है। इसकी स्थिति बहुत बड़ी नहीं है। चले जाएं, तो पहुंच ही जाएंगे दिल्ली। लेकिन पदार्थ तो अनंत है। उसके फैलाव का तो कोई अंत नहीं। वह तो हम कितना ही चलते जाएंगे, वह आगे-आगे-आगे मौजूद रहेगा।

तो एक फर्क तो यह करना चाहता हूं कि पदार्थ अनंत है, इसलिए उस दिशा से कभी परमात्मा तक नहीं आ पाएंगे, लौटना ही पड़ेगा।
जैनों के पास एक बहुत अच्छा शब्द है, वह है, प्रतिक्रमण। प्रतिक्रमण
का अर्थ है, रिटर्निंग बैक, वापस लौटना। आक्रमण का अर्थ है, जाना, हमला करना; और प्रतिक्रमण का अर्थ है, वापस लौटना। हम सब आक्रामक हैं पदार्थ की तरफ, वही पाप है। प्रतिक्रमण पुण्य है। वापस लौट आएं।
तो एक तो यह आपसे कहना चाहता हूं कि पदार्थ अनंत है, इसलिए कितना ही आक्रमण करो, कभी भी पा न सकोगे प्रभु को। और जब तक प्रभु न मिल जाए, तब तक शांति नहीं, संतोष नहीं, चैन नहीं। और दूसरी बात यह कहना चाहता हूं कि उस बूढ़े ने कहा कि पीछे लौटो, दिल्ली आठ मील दूर है। मैं आपसे कहना चाहता हूं, पीछे लौटो, परमात्मा आठ इंच भी दूर नहीं है। आठ मील बहुत ज्यादा है। असल में पीछे लौटो, तो आप ही परमात्मा हो। अगर ठीक से कहें, तो ऐसा कहना पड़ेगा। जरा-सा भी फासला नहीं है।
मोहम्मद ने कहा है--कोई पूछता है मोहम्मद से कि प्रभु कितने दूर है--तो
वे कहते हैं कि यह जो गले की धड़कती हुई नस है, इससे भी ज्यादा निकट। इसे काट दो, तो आदमी मर जाता है। यह जीवन के बहुत किनारे है। मोहम्मद कहते हैं, यह जो गले की धड़कती नस है, इससे भी निकट, इससे भी पास, जीवन से भी पास।
लौटने भर की देरी है। लौटकर चलना भी नहीं पड़ता, क्योंकि चलने लायक फासला भी नहीं है। सिर्फ लौटना, जस्ट रिटर्निंग इ.ज इनफ। पर अबाउट टर्न, पूरा का पूरा लौटना पड़े, एकदम पूरा। मुख जहां है, उससे उलटा कर लेना पड़े। पदार्थ की तरफ जो उन्मुखता है, वह पाप है। और पदार्थ की तरफ पीठ कर लेना पुण्य है। इसलिए दान पुण्य बन गया, और कोई कारण न था। क्योंकि जिसने धन दिया, उसने प्रतिक्रमण शुरू किया। जिसने धन लिया, उसने आक्रमण किया। इसलिए त्याग पुण्य बन गया, क्योंकि त्याग का अर्थ है, पदार्थ की तरफ पीठ कर ली।
बुद्ध घर छोड़कर गए हैं, तो जो सारथी उन्हें छोड़ने गया है, रास्ते में बहुत रोने लगा। और उसने कहा कि मैं कैसे लौटूं आपको छोड़कर! इतना धन, इतना अपार धन छोड़कर जा रहे हैं आप, पागल तो नहीं हैं? मैं छोटा हूं, छोटे मुंह बड़ी बात मुझे नहीं कहनी चाहिए। लेकिन इस अंतिम क्षण में न कहूं, यह भी ठीक नहीं। आप पागल हैं! इतना धन छोड़कर जा रहे हैं!
बुद्ध ने कहा, कहां है धन? तुम मुझे दिखाओ, तो मैं वापस लौट जाऊं। उन महलों में, तुम तो बाहर ही थे, मैं भीतर था। उन तिजोड़ियों को तुमने दूर से देखा है; उनकी चाबियां मेरे हाथ में थीं। उस राज्य के रथ के तुम सिर्फ चालक थे, मैं उसका मालिक था। मैं तुमसे कहता हूं कि मैंने वहां धन कहीं नहीं पाया। क्योंकि धन तो वही है, जिससे आनंद मिल जाए।
बुद्ध ने जो शब्द उपयोग किया है, वह है, संपत्ति। वह बहुत बढ़िया शब्द है। बुद्ध ने कहा, संपत्ति तो वही है, जिससे संतोष मिल जाए। वहां तो मैंने सिर्फ विपत्ति पाई, क्योंकि सिवाय दुख के कुछ भी न पाया। विपत्ति पाई। जिसे तुम संपत्ति कहते हो, वह विपत्ति है। मैं उसे छोड़कर जा रहा हूं।
विपत्ति को छोड़कर जा रहा हूं संपत्ति की तलाश में।
पदार्थ की तरफ से मुंह मोड़ना पड़े। जरूरी नहीं कि बुद्ध की तरह छोड़कर जंगल जाएं। बुद्ध जैसा छोड़ने को भी तो नहीं है हमारे पास। बुद्ध जैसा हो, तो छोड़ने का मजा भी है थोड़ा। कुछ भी तो नहीं है, पदार्थ भी नहीं है।
परमात्मा नहीं है, वह तो ठीक है। पदार्थ भी क्या है! कुछ भी नहीं है।
मगर बड़े मजे की बात है कि बुद्ध को इतनी संपत्ति विपत्ति दिखाई पड़ी।
और हम वह जो छोटा-सा मनीबेग खीसे में रखे हैं, वह संपत्ति मालूम पड़ती है! बुद्ध को साम्राज्य व्यर्थ मालूम पड़ा। हमने जो अपने मकान के आस-पास थोड़ी- सी फेंसिंग कर रखी है, वह साम्राज्य मालूम पड़ता है! इसे थोड़ा देखना जरूरी है; समझना जरूरी है कि जिसे हम संपत्ति कह रहे हैं, वह संपत्ति है?
छोड़ने को नहीं कह रहा हूं, समझने को कह रहा हूं। समझ से तत्काल रस छूट जाता है। फिर आप कहीं भी रहें; फिर आप कहीं भी रहें--मकान में रहें कि मकान के बाहर--इससे फर्क नहीं पड़ता। फिर मकान के भीतर भी आप जानते हैं कि मकान में नहीं हैं। फिर आपके हाथ में धन रहे या न रहे, लेकिन भरा हुआ हाथ भी

जानता है कि गहरे अर्थों में सब कुछ खाली है। और जिस दिन वह समझ पैदा हो जाती है, उस दिन प्रतिक्रमण शुरू हो जाता है।
पाप है, आक्रमण पदार्थ पर; पुण्य है, प्रतिक्रमण पदार्थ से। और समझ के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है। क्योंकि नासमझी के अतिरिक्त पदार्थ से कोई जोड़ नहीं है हमारा। नासमझी ही हमारा जोड़ है। नासमझ हैं, इसीलिए जुड़े हैं। सोचते हैं, संपत्ति है, इसलिए पकड़े हैं। जान लेंगे कि संपत्ति नहीं है, हाथ खुल जाएंगे, पकड़ छूट जाएगी।
ध्यान रहे, पकड़ छूट जाने का अर्थ भाग जाना नहीं है, एस्केप नहीं है; क्लिंगिंग छूट जाना है, पकड़ छूट जाना है। ठीक है, वस्तुएं हैं, उनका उपयोग किया जा सकता है। बराबर किया जाना चाहिए। वह परमात्मा की अनुकंपा है कि इतनी वस्तुएं हैं और उनका उपयोग किया जाए। जीवन के लिए उनकी जरूरत है। लेकिन प्रभु को पाने के लिए उन पर जो हमारी पकड़ है... ।
पकड़ बड़ी अजीब चीज है। पकड़ सिर्फ ख्याल है। एक छोटी-सी कहानी से समझाने
की कोशिश करूं, मुझे बहुत प्रीतिकर रही है।
सुना है मैंने कि एक सांझ, रात उतरने के करीब है, अंधेरा घिर रहा है, और
एक वनपथ से दो संन्यासी भागे चले जा रहे हैं। बूढ़े संन्यासी ने पीछे युवा संन्यासी से कई बार, बार-बार पूछा, कोई खतरा तो नहीं है? वह युवा संन्यासी थोड़ा हैरान हुआ कि संन्यासी को खतरा कैसा! और जिसको खतरा है, उसी को तो गृहस्थ कहते हैं। खतरा होता ही है कुछ चीज हो पास, तो खतरा होता है! न हो कुछ, तो खतरा होता है? और कभी इस बूढ़े ने नहीं पूछा कि कोई खतरा है; आज क्या हो गया!
फिर एक कुएं पर पानी पीने रुके। बूढ़े ने अपना झोला जवान संन्यासी के, अपने शिष्य के कंधे पर दिया और कहा, सम्हालकर रखना! तभी उसे लगा कि खतरा झोले के भीतर ही होना चाहिए। बूढ़ा पानी भरने लगा, उसने हाथ डालकर खतरे को टटोला। देखा कि सोने की ईंट अंदर है। खतरा काफी है! उसने ईंट को निकालकर तो फेंक दिया कुएं के नीचे, और एक पत्थर करीब-करीब उसी वजन का झोले के भीतर रखकर कंधे पर टांगकर खड़ा हो गया।
बूढ़े ने जल्दी-जल्दी पानी पीया।
जिसके पास खतरा है, वह पानी भी तो जल्दी-जल्दी पीता है! आप सभी जानते हैं उसको! सबके भीतर वह बैठा हुआ है, जो जल्दी-जल्दी पानी पीता है, जल्दी- जल्दी खाना खाता है, जल्दी- जल्दी चलता है, जल्दी-जल्दी पूजा-प्रार्थना करता है। जल्दी-जल्दी बेटे-बच्चों को प्रेम की थपकी लगाता है। जल्दी- जल्दी सब चल रहा है, क्योंकि खतरा भारी है।
नहीं, पानी पीया भी कि नहीं पीया! प्यास बुझी कि नहीं बुझी! जल्दी से झोला कंधे पर लिया; टटोलकर देखा, खतरा साबित है; चल पड़े। फिर रास्ते में पूछने लगा कि अंधेरा घिरता जाता है। रास्ता सूझता नहीं। कोई दूर गांव का दीया भी दिखाई नहीं पड़ता। बात क्या है! हम भटक तो नहीं गए? कुछ खतरा तो नहीं है?
वह युवक खिलखिलाकर हंसने लगा। और उस अंधेरी रात में उसकी खिलखिलाहट वृक्षों में गूंजने लगी। उस बूढ़े ने कहा, हंसते हो पागल! कोई सुन लेगा, खतरा हो जाएगा! उस युवक ने कहा, अब आप बेफिक्र हो जाएं। खतरे को मैं कुएं पर ही फेंक आया हूं।
बूढ़े ने घबड़ाकर झोले के भीतर हाथ डाला। निकाला, तो सोने की ईंट तो नहीं है, पत्थर का टुकड़ा है। लेकिन दो मील तक पत्थर का टुकड़ा भी खतरा देता रहा! हृदय धड़कता रहा जोरों से! क्लिंगिंग! सोना तो था नहीं, इसलिए सोने को आप दोष नहीं दे सकते। सोना तो था नहीं झोले में, इसलिए सोने को कसूरवार नहीं ठहरा सकते। पत्थर का टुकड़ा था, लेकिन मन में सोना था। मन में तो पकड़ थी सोने की।
एक क्षण तो बूढ़े के हृदय की धड़कन जैसे बंद हुई-हुई हो गई। फिर उसे भी हंसी आ गई यह सोचकर कि दो मील पत्थर को ढोया, नाहक डरे। युवक खिलखिलाकर हंस ही रहा था, वह भी खिलखिलाकर हंसा। झोले को वहीं पटक दिया। और कहा कि अब हम यहीं सो जाएं, अब तो कोई खतरा नहीं है।
अगर पत्थर का टुकड़ा मन में सोना हो, तो खतरा हो जाता है। और अगर सोने
का टुकड़ा मन में पत्थर हो, तो आदमी बेखतरा हो जाता है। आप पर निर्भर है।

और मजे की बात है कि सोने और पत्थर में कोई बुनियादी फर्क है नहीं। सब आदमी के बनाए हुए डिसटिंक्शन हैं; सब आदमी के बनाए हुए भेद हैं; बिल्कुल ह्यूमन, बिल्कुल मानवीय।
आदमी न हो जमीन पर, तो क्या आप सोचते हैं, सोना सिंहासन पर बैठेगा और पत्थर पैरों में? इस भूल में न पड़ना। कोई सोने को नहीं पूछेगा। कोई पत्थर को छोटा नहीं मानेगा। हीरे-जवाहरात कंकड़ों के पास कंकड़ों जैसे ही पड़े रहेंगे।
आदमी को हटा लें पृथ्वी से, फिर एक कंकड़ में और एक हीरे में कोई फर्क है? कोई फर्क नहीं है! सब फर्क आदमी के मन के दिए हुए हैं। सब फर्क आदमी के मन के दिए हुए हैं। सब ह्यूमन इनवेनशंस हैं, आदमी के झूठे आविष्कार हैं। आदमी ने ही आरोपित किए मूल्य, और फिर उन्हीं मूल्यों में बंधता और सोचता और मुट्ठी बांधकर जीता है।
कृष्ण कहते हैं, पाप से जो मुक्त हो, वह प्रभु की तरफ गति कर पाता है, प्रभु की तरफ उन्मुख हो जाता है। पदार्थ से मुक्त हो मन, तो प्रभु की तरफ तत्काल लीन हो जाता है।
उस रात फिर वह साधु आधी रात तक प्रभु के भजन गाता रहा। उस जवान ने कहा
भी कि अब सो जाएं! पर उस बूढ़े साधु ने कहा कि आज मुझे जीवन में जो दिखाई पड़ा है, वह कभी दिखाई नहीं पड़ा था। मुझे जरा प्रभु को धन्यवाद दे लेने दे। एक पत्थर सोने का धोखा दे गया! और मैं धोखा खाता रहा। तो मेरे मन में ही कहीं खोट है। और अब अगर मेरे झोले में कोई सोना लटका दे, तो भी मैं पत्थर ही समझूंगा। और अब मुझे कभी खतरा होने वाला नहीं है। अब मैं कभी भयभीत न होऊंगा। क्योंकि भय मेरे मन में था, क्योंकि मूल्य भी मेरे मन में था। कीमत भी मेरी, भय भी मेरा, दोनों मेरी ईजादें, और मैं परेशान था! मुझे प्रभु को धन्यवाद दे लेने दे।
जीवन में थोड़ा तलाश करें। पदार्थ को दिए गए मूल्य हमारे मूल्य हैं। थोड़ा खोज करें। पदार्थ की पकड़ हमारा दुख, हमारी चिंता, हमारा संताप, हमारी एंग्विश है। थोड़ा खोज करें। पदार्थ को पकड़-पकड़कर हम पागल हो गए हैं। इसको थोड़ा समझें। और आपके मन की पकड़ ढीली हो जाएगी। और वह दिन आ सकता है कभी भी, जब उस बूढ़े की तरह रात आप देर तक भजन गाते रहें और प्रभु को धन्यवाद दें कि पदार्थ से पकड़ छूट गई।
उसी क्षण प्रतिक्रमण हो जाता है। इधर छूटा पदार्थ से हाथ, उधर प्रभु में प्रवेश हुआ। यह युगपत, साइमलटेनियस, एक साथ घट जाते हैं। प्रभु को खोजने जाने की जरूरत नहीं है, सिर्फ पदार्थ से छूटने की जरूरत है। यहां जला दीया, वहां अंधेरा गया। ऐसे ही यहां जला प्रतिक्रमण, यात्रा लौटी पीछे की तरफ, वहां प्रभु से मिलन हुआ।
तो कृष्ण कहते हैं, ऐसा व्यक्ति सतत आत्मा को परमात्मा में लगाए रखता है।
जिसका पदार्थ से संबंध छूट जाता है, उसका सतत संबंध परमात्मा से बन जाता है। बिना संबंध के तो हम रह नहीं सकते। अगर ठीक से समझें, तो वी एक्झिस्ट इन रिलेशनशिप्स, हम संबंधों में ही जीते हैं। अभी पदार्थों के संबंध में जीते हैं, जब पदार्थ का संबंध छूट जाता है, तो नए संबंधों का जगत शुरू होता है; हम प्रभु के संबंध में जीने लगते हैं। और आत्मा निरंतर प्रभु में लगी रहती है। क्योंकि फिर तो इतना आनंद है उस तरफ कि एक क्षण को भी भूलना मुश्किल है प्रभु को। फिर कुछ भी काम करते रहें--फिर दुकान चलाते रहें, दफ्तर में काम करते रहें, मिट्टी खोदते रहें, पहाड़ तोड़ते रहें--जो भी करना हो, करते रहें।
कबीर कहते थे कि फिर ऐसा हो जाता है... । कबीर से लोग पूछते होंगे। कबीर
तो उन लोगों में से थे, जो पाप के बाहर हुए और जिन्होंने प्रभु का दर्शन जाना। तो कबीर से लोग पूछते होंगे कि आप कपड़ा बुनते रहते दिनभर, फिर प्रभु का स्मरण कब करते हैं?
कबीर तो जुलाहे थे और जुलाहे ही बने रहे। वे छोड़कर नहीं गए। जान लिया प्रभु को, फिर भी कपड़ा ही बुनते रहे, झीनी-झीनी चदरिया बुनते रहे। रोज सांझ बेचने चले जाते बाजार में। लोग पूछते कि आप कभी कपड़ा बुनते, कभी बाजार में बेचते, प्रभु का स्मरण कब करते हैं?

तो कबीर, कोई पूछ रहा था, उसे उठाकर अपने झोपड़े के बाहर ले गए और कहा, यहां आ! क्योंकि शायद मैं कह न सकूं, लेकिन बता तो सकता हूं। विट्गिंस्टीन ने अपनी एक अदभुत किताब में, ट्रेक्टेटस में एक वाक्य लिखा है कि कुछ चीजें हैं, जो कही नहीं जा सकतीं, लेकिन बताई जा सकती हैं। देअर आर थिंग्स व्हिच कैन नाट बी सेड, बट व्हिच कैन बी शोड। कही नहीं जा सकतीं, बताई जा सकती हैं। बहुत-सी चीजें हैं। जो भी महत्वपूर्ण चीजें हैं, कही नहीं जा सकतीं। लेकिन इशारा तो किया ही जा सकता है।
विट्गिंस्टीन तो बड़ा तर्क-निष्णात व्यक्ति था। शायद इस सदी में उससे बड़ा कोई तार्किक नहीं था। पर उसने भी यह अनुभव किया कि कुछ चीजें हैं, जो नहीं कही जा सकतीं, सिर्फ बताई जा सकती हैं।
तो कबीर ने कहा कि बाहर आओ, शायद कोई चीज से मैं तुम्हें बता दूं। कबीर
उस आदमी को लेकर चले। थोड़ी देर बाद उस आदमी ने कहा, अब बताइए भी! कबीर ने कहा, जरा कोई मौका तो आ जाने दो। मुझे कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा है कि कैसे तुम्हें बताऊं। वही मैं खोज रहा हूं। जरा और चलें। थोड़ी देर में वह आदमी थक गया। उसने कहा, मैं घर जाऊं, मुझे दूसरे काम करने हैं। कब बताइएगा? कबीर ने कहा कि ठहरो-ठहरो, आ गया मौका।
नदी से एक स्त्री पानी की गागर भरकर सिर पर रखकर चल पड़ी है। शायद उसका प्रियजन उसके घर आया होगा--कोई अतिथि, कोई मेहमान। उसके चेहरे पर बड़ी प्रसन्नता है। उसकी चाल में तेज गति है। वह उमंग से भरी और नाचती जैसी चलती है, और ऐसी चल रही है। गागर उसने बिल्कुल छोड़ रखी है, सिर पर गागर संभली है।
कबीर ने कहा, इस स्त्री को देखो। यह कुछ गुनगुना रही है गीत। शायद उसका प्रियजन आया होगा, उसका प्रेमी आया होगा। प्रेमी प्यासा होगा, उसके लिए पानी लेकर जाती है। दौड़ती जाती है! हाथ दोनों छूटे हुए हैं, गागर सिर पर है। मैं तुमसे पूछता हूं, इसको गागर की याद होगी या नहीं होगी? गीत गाती है, चलती है रास्ते पर; काम में लगी है पूरा; गागर का स्मरण होगा कि नहीं होगा?
उस आदमी ने कहा, स्मरण नहीं होगा, तो गागर नीचे गिर जाएगी!
तो कबीर ने कहा, यह साधारण-सी औरत रास्ता पार करती है, गीत गाती है, फिर
भी गागर का स्मरण इसके भीतर बना है। तो तुम मुझे इससे भी गया-बीता समझते हो कि मैं कपड़ा बुनता हूं और परमात्मा का ख्याल करने के लिए मुझे अलग से समय निकालना पड़ेगा? मेरी आत्मा उसमें निरंतर लगी ही है। इधर कपड़ा बुनता रहता है, कपड़े के बुनने का काम शरीर करता है, आत्मा उधर प्रभु के गुणों में लीन बनी रहती है, डूबी रहती है। और ये हाथ भी, आत्मा प्रभु में डूबी रहती है, इसलिए आनंद से मग्न होकर कपड़ा बुनते हैं।
कपड़ा भी फिर कबीर का साधारण नहीं बुना जाता। और कबीर जब ग्राहक को बेचते थे कपड़ा, तो कहते थे, राम, बहुत सम्हलकर वापरना। साधारण कपड़ा नहीं है; प्रभु की स्मृति भी इसमें बुनी है। वे ग्राहक से कहते थे, राम, जरा सम्हलकर वापरना।
कोई ग्राहक कभी-कभी पूछ भी लेता कि मेरा नाम राम नहीं है! तो कबीर कहते
कि मैं तुम्हारे उस नाम की बात कर रहा हूं, जो इस नाम के भी पहले तुम्हारा था और इस नाम के बाद भी तुम्हारा होगा। मैं तुम्हारे असली नाम की बात कर रहा हूं। यह बीच में तुमने कौन से नाम रखे, तुम हिसाब-किताब रखो। बाकी जब आखिर में सब नाम गिर जाएंगे, तो जो बच रहेगा, मैं उसकी बात कर रहा हूं। प्रभु का स्मरण, आत्मा का उसमें सतत लगा रहना, तभी संभव है, जब चित्त पाप से मुक्त हो जाए। चित्त पाप से मुक्त हो जाए, पार हो जाए, अतीत हो जाए, उठ जाए ऊपर, पदार्थ की दौड़ छूट जाए, तो फिर लगा ही रहता है। यह ऐसा लग जाता है, जिसका कोई हिसाब नहीं। सब करते हुए भी लगा रहता है।
और जिस दिन सब करता हुआ लगा रहे, उसी दिन योग पूर्ण हुआ। अगर कोई कहे
कि मैं काम करता हूं, तो मुझे प्रभु की स्मृति भूल जाती है, तो उसका प्रभु बड़ा बचकाना है, बड़ा छोटा है। काम से हार जाता है! क्षुद्र-सा काम और प्रभु की स्मृति को तोड़ दे, तो अभी प्रभु की स्मृति नहीं है, कोई नकली स्मृति होगी। ऐसा जबर्दस्ती थोप-थापकर बैठ गए होंगे अपने को कि प्रभु का स्मरण कर रहे हैं। लेकिन होगा नहीं। हो नहीं सकता। अगर प्रभु की स्मृति आ गई है,

पदार्थ से मन छूट गया है और प्रभु की याद आ गई है, तो अब कुछ भी करिए और कहीं भी चले जाइए, और जागिए कि सोइए, स्मृति जारी रहेगी।
राम एक रात सो रहे हैं अपने कमरे में। एक मित्र सरदार पूर्णसिंह उनके कमरे पर मेहमान थे स्वामी राम के। आधी रात कुछ गर्मी थी, नींद खुल गई; बड़े चौंककर हैरान हुए। जोर-जोर से राम की आवाज आ रही है, राम! सोचा कि कहीं रामतीर्थ उठकर प्रभु-स्मरण तो नहीं करने लगे! लेकिन अभी आधी रात मालूम पड़ती है। अंधेरा है।
उठे। देखा कि राम तो बिस्तर पर मजे से सो रहे हैं। पर आवाज आ रही है! बहुत हैरान हुए कि कोई और तो आस-पास नहीं है। एक चक्कर झोपड़े का लगा आए। कोई भी नहीं है। फिर पास आए। लेकिन जैसे राम के पास आते, आवाज बढ़ जाती; दूर जाते, आवाज कम हो जाती। तो बहुत पास आकर, पैर के पास कान रखकर सुना। भरोसा नहीं हुआ; विश्वास नहीं आया। हाथ के पास जाकर कान रखकर सुना; भरोसा नहीं आया। पूरे शरीर के रोएं-रोएं से जैसे राम की आवाज उठ रही है। घबड़ा गए कि मैं कोई सपना तो नहीं देख रहा हूं! जाकर आंखें धोईं। मैं किसी भ्रांति, किसी हेल्यूसिनेशन में तो नहीं हूं! क्योंकि यह कैसे हो सकता है कि शरीर से आवाज आए! रातभर जगे बैठे रहे, कि जब राम उठें सुबह, तो उनसे पूछ लें। सुबह उठकर राम से पूछा, तो राम ने कहा, आ सकती है। क्योंकि जब से स्मरण हुआ उसका, तब से दिन हो या रात, भीतर तो सतत उसकी अनुगूंज चलती रहती है। हो सकता है, शरीर भी कंपित हो रहा हो और आवाज आ गई हो। हो सकता है, राम ने कहा, क्योंकि मैंने तो कभी सोते में उठकर--अपने शरीर को सुनने का उपाय भी नहीं है। हो सकता है। लेकिन भीतर मेरे चलता रहता है। भीतर चलता रहता है।
कठिन नहीं है यह। क्योंकि शरीर भी तो विद्युत की तरंगों का जाल है; ध्वनि भी तो विद्युत की तरंग है। दोनों में कोई भेद तो नहीं है। और अगर भीतर बहुत गहरी अनुगूंज हो, तो कोई कारण नहीं है कि शरीर के तंतु क्यों न ध्वनित होने लगें! कोई कारण तो नहीं।
जो संगीत की गहरी पकड़ जानते हैं, उन्हें पता होगा कि अगर एक सूने कमरे में बंद द्वार करके, खाली कमरे में एक वीणा बजाई जाए और दूसरी वीणा को दूसरे कोने में खाली टिका दिया जाए, तो थोड़ी देर में उसके तार रिजोनेंस करने लगते हैं। एक वीणा बजे, दूसरी वीणा जो खाली रखी है, कोई बजाता नहीं, उसके तार भी कंपकर जवाब देने लगते हैं। रिजोनेंस पैदा हो जाता है। ध्वनियां टकराती हैं उस वीणा से, उसके तार भी कंपित होकर उत्तर देने लगते हैं।
पूरा शरीर है तो विद्युत की तरंग। ध्वनि भी विद्युत का एक रूप है। कोई आश्चर्य तो नहीं है कि भीतर ध्वनि बहुत गहरे, हृदय की अंतर-गुहा तक गूंजने लगे, तो शरीर रिजोनेंस करने लगे, रोआं-रोआं शरीर का कंपने लगे।
ऐसे भी, अगर मैं बहुत प्रेम से भरा हुआ हाथ आपके हाथ पर रखूं, तो मेरे हाथ की तरंगों में भेद होगा। और मैं क्रोध से भरकर और घृणा से भरकर यही हाथ आपके हाथ पर रखूं, तो मेरी हाथ की तरंगों में भेद होगा। मेरे हृदय के भाव मेरे हाथ की तरंगें बनते तो हैं। इसलिए प्रेम से छुआ गया हाथ कुछ और ही स्पर्श लाता है। घृणा से छुआ गया हाथ कोई और ही स्पर्श लाता है। अभिशाप से भरे हाथ में जहर आ जाता है। वरदान से भरे हाथ में अमृत बरस जाता है।
तो भाव दौड़ते तो हैं शरीर के कोने-कोने तक। कोई कारण नहीं है कि प्रभु
का स्मरण इतने गहरे में उतर जाए कि शरीर के कोने-कोने तक उसकी ध्वनि पैदा हो जाए। लेकिन जीवन के बहुत-से रहस्य अज्ञात हैं; उनके नियम अज्ञात हैं। इसलिए वे हमें रहस्यपूर्ण मालूम होते हैं, क्योंकि उनका विज्ञान हमें ज्ञात नहीं है।
सतत स्मरण आत्मा को परमात्मा का बना रहता है--एक बार पदार्थ से चित्त
हट जाए, पाप से चित्त हट जाए।
कृष्ण कहते हैं, वैसा व्यक्ति परम आनंद को उपलब्ध होता है।
कृष्ण हर सूत्र के बाद यही कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति परम आनंद को उपलब्ध होता है, ऐसा व्यक्ति परम आनंद को उपलब्ध होता है, ऐसा व्यक्ति परम आनंद को उपलब्ध होता है। यह परम आनंद क्या है? कुछ हमारी समझ में आता नहीं है सीधा। आनंद हमने जाना ही नहीं। परम आनंद क्या है? कोरा शब्द। कान पर गूंजता है, खो जाता है।

हमने सुख जाना है थोड़ा-सा। थोड़ा-सा! जब प्रतीक्षा करते हैं तब, अपेक्षा करते हैं तब, इंतजार करते हैं तब। और हमने दुख जाना है बहुत--जब मिलता है तब, जब पा लेते हैं तब, जब पहुंच जाते हैं तब। जब प्रतीक्षा का होता है अंत और उपलब्धि आती है हाथ में, तो दुख। रास्ते पर जानी हैं सुख की कल्पनाएं, सुख के सपने; और मंजिल पर पहुंचकर झेली है पीड़ा दुख की। ये हम जानते हैं, सुख और दुख हम जानते हैं। परम आनंद क्या है?
तो आमतौर से हम समझ लेते हैं, सुख का ही कोई बहुत बड़ा रूप होगा। नहीं,
इस भ्रांति में न पड़ जाना आप। ऐसा मत सोचना कि महा सुख होगा। शब्दकोश में यही लिखा हैं। शब्दकोशों में यही लिखा है, आनंद--महा सुख, महान सुख, अनंत सुख। हमारे पास सुख के अलावा तौलने का कोई उपाय नहीं है।
लेकिन एक चम्मच से भी हिंद महासागर तौला जा सके, लेकिन सुख से आनंद नहीं तौला जा सकता। एक चम्मच से भी हिंद महासागर को नाप लेना इनकंसीवेबल नहीं है। इसको हम सोच सकते हैं कि हो सकता है। बहुत वक्त लगेगा, लेकिन फिर भी हो जाएगा। ऐसी कोई कठिनाई नहीं है। क्योंकि आखिर कितने ही अनंत चम्मचों से भरा होगा, लेकिन एक चम्मच कुछ तो सागर को खाली कर ही लेती है। दूसरी और कर लेगी, तीसरी और कर लेगी। हो सकता है, पूरी मनुष्य जाति अनंत जन्मों तक भी एक-एक चम्मच निकालती रहे, खाली करती रहे, लेकिन कभी न कभी खाली हो जाएगा। इसकी कल्पना की जा सकती है। यह असंभव नहीं है।
लेकिन सुख की चम्मच से हम आनंद को जरा भी नहीं तौल पाएंगे; वह असंभव है। क्यों? कारण है उसका। चम्मच में सागर बंध जाए, तो क्वांटिटी का भर फर्क रहता है, क्वालिटी का फर्क नहीं रहता। एक चम्मच में आपने सागर भर लिया, और नीचे हिंद महासागर है, और चम्मच में थोड़ा-सा सागर आ गया। दोनों में क्वांटिटी का फर्क है, परिमाण का; गुण का कोई भेद नहीं है, क्वालिटी का कोई भेद नहीं है। चम्मच का सागर चखो कि नीचे का महासागर चखो; एक-सा स्वाद है, एक-सा पानी है। चम्मच के कणों का विश्लेषण करो, सागर के कणों का विश्लेषण करो, एक-सा हाइड्रोजन, आक्सीजन है। चम्मच सागर के बाबत पूरी खबर दे देगी। चम्मच सागर का मिनिएचर रूप है।
लेकिन सुख और आनंद में गुणात्मक, क्वालिटेटिव अंतर है, क्वांटिटी का नहीं। इसलिए कोई कल्पना सुख से नहीं बनेगी। पर जब भी हम सुनते हैं, अर्जुन, इससे परम आनंद उपलब्ध होगा, तो हमारे मन में होता है, जरूर बड़ा सुख मिलेगा। बिल्कुल भूल जाना, सुख की बात ही भूल जाना। सुख से आनंद का कोई भी संबंध नहीं है।
तो फिर हम तो दो ही चीजें जानते हैं, सुख और दुख; तीसरी कोई चीज जानते नहीं। तो या तो सुख से संबंध होगा, अगर सुख से नहीं है, तो फिर क्यों हमें उलझाते हैं! क्योंकि फिर दुख ही बच रहता है। उसके अलावा तीसरी चीज हमें कुछ पता नहीं है।
दुख से भी आनंद का कोई संबंध नहीं है। अगर ठीक से समझें, तो जहां दुख
और सुख दोनों शेष नहीं रह जाते, वहां आनंद फलित होता है। लेकिन वह अपरिचित है, वह अननोन है।
इसलिए आप अगर सुख की खोज में हों, तो कृष्ण की बातों में मत पड़ना। अगर सुख की खोज में हों, तो भूलकर कृष्ण की बात मानना ही मत। गीता बंद कर देना, सुख को खोज लेना। कृष्ण सुख तक जाने का कोई रास्ता नहीं बता सकते। कृष्ण जो रास्ता बता रहे हैं, वह सुख के पार जाने का है। लेकिन जो सुख के पार जाएगा, वही दुख के पार जाएगा।
इसलिए बुद्ध ने तो आनंद शब्द का उपयोग ही बंद कर दिया था इसी भ्रांति
की वजह से। क्योंकि सुख और आनंद में हमें कुछ समानता मालूम पड़ती है। तो बुद्ध ने अपने जीवन में कभी आनंद का उपयोग नहीं किया। जब भी कोई पूछता था कि क्या होगा निर्वाण में? तो वे कहते थे, दुख क्षय हो जाएगा, बस। यह नहीं कहते थे कि आनंद मिल जाएगा। अगर कोई बहुत ही जिद्द करता और कहता कि विधायक रूप से कुछ बताओ, तो बुद्ध कहते, शांति। आनंद का उपयोग नहीं करते थे। क्योंकि आनंद से सुख का हमारा ख्याल बना हुआ है। कहीं ऐसा लगता है कि सुख ही बढ़ते-बढ़ते-बढ़ते आनंद हो जाएगा।
सुख आनंद नहीं होगा। सुख भी पदार्थ से जुड़ाव है, दुख भी पदार्थ से जुड़ाव है। सुख भी पाप है, दुख भी पाप है। दोनों ही पदार्थ से जुड़े हैं।

आपने कोई ऐसा सुख जाना है, जो पदार्थ से न जुड़ा हो? आपने कोई ऐसा दुख जाना है, जो पदार्थ से न जुड़ा हो? अगर जाना हो, तो वह आनंद है। लेकिन हम तो जो भी जाने हैं, वह पदार्थ से जुड़ा है। दुख जाना है तो; धन खो गया, दुख आ गया। सुख जाना है तो; धन मिल गया, सुख आ गया। दुख जाना है तो; प्रियजन बिछुड़ गया, तो दुख आ गया। सुख जाना है तो; प्रियजन मिल गया, तो सुख आ गया। लेकिन सब पदार्थ से है।
आमतौर से हमारे मुल्क के लोग पश्चिम के लोगों को मैटीरियलिस्ट कहते हैं। लेकिन इस जमीन पर सभी मैटीरियलिस्ट हैं, सभी लोग पदार्थवादी हैं। पश्चिम के लोग हैं, ऐसी बात कहनी उचित नहीं है। सभी लोग पदार्थवादी हैं। अपदार्थवादी तो वह है, जिसकी कृष्ण बात कर रहे हैं। वैसे लोग न पूरब में हैं, न पश्चिम में हैं। कभी-कभी कोई एकाध आदमी होता है। बाकी सब पदार्थवादी हैं। चाहे सुख, चाहे दुख, हम पदार्थ की ही तलाश करते हैं।
हां, एक फर्क हो सकता है कि पश्चिम के लोग सिंसियर मैटीरियलिस्ट हैं,
और हम इनसिंसियर मैटीरियलिस्ट हैं। वे ईमानदार पदार्थवादी हैं। वे कहते हैं कि ठीक है, हमें तो सुख और दुख ही सब कुछ है; आनंद हमें मालूम ही नहीं कि है। हम मानते भी नहीं कि है, हम तो सुख और दुख में जीते हैं।
हम बेईमान पदार्थवादी हैं। हम कहते हैं, आनंद! हम आनंद के लिए ही जीते हैं। और जीवनभर सुख और दुख की ही चेष्टा करते हैं।
और ध्यान रहे, बेईमान पदार्थवादी से ईमानदार पदार्थवादी बेहतर है, कम
से कम ईमानदार है। और ध्यान रहे, ईमानदार पदार्थवाद कभी भी आध्यात्मिक हो सकता है। बेईमान पदार्थवाद कभी भी आध्यात्मिक नहीं हो सकता। क्योंकि बेईमान है! दोहरी बीमारियां जुड़ी हैं। पदार्थ तो बीमारी है ही, बेईमानी और भारी बीमारी है।
हमारे मुल्क में एक बड़ी भ्रांति छा गई है कि हम सब आध्यात्मिक हैं। इससे बड़ा दुर्भाग्य घटित नहीं हो सकता। यह ऐसा ही है कि किसी अस्पताल के सब मरीजों को ख्याल आ जाए कि हम परम स्वस्थ हैं; हम गामा हैं! वह अस्पताल गया! मरीज मरेंगे। क्योंकि डाक्टर की अब सुन नहीं सकते वे। डाक्टर अगर कहेगा, इलाज; वे कहेंगे, बाहर हो जाओ। तुम्हारा दिमाग खराब है! हम परम स्वस्थ हैं! इलाज करना है, पश्चिम चले जाओ। उधर लोग बीमार हैं। इस अस्पताल में सब स्वस्थ हैं। यहां तो कोई बीमार कभी पड़ता ही नहीं।
बीमार को भ्रांति पैदा हो जाए कि मैं स्वस्थ हूं, तो उसका इलाज भी नहीं हो सकता। बीमार को तो ठीक से जानना चाहिए कि मैं बीमार हूं। बीमारी की पीड़ा जितनी साफ हो, उतना इलाज हो सकता है।
इस मुल्क के अध्यात्मवाद का जो ख्याल हमारे दिमाग में बैठ गया भारी होकर, उसके कारण हैं। इस मुल्क में ऐसे लोग पैदा हुए, जो आध्यात्मिक थे। लेकिन यह मुल्क आध्यात्मिक नहीं हो जाता इसलिए कि इस मुल्क में लोग पैदा हुए जो आध्यात्मिक थे। किसी घर में आइंस्टीन पैदा हो जाए, तो पूरा घर कोई नोबल प्राइज विनर नहीं हो जाता। कि सब कह दें कि हमारे घर में आइंस्टीन पैदा हुए, तो नोबल प्राइज तो हमारे घर के हर बच्चे का जन्मसिद्ध अधिकार है! बुद्ध पैदा हो जाएं, कृष्ण पैदा हो जाएं, इससे हम अध्यात्मवादी नहीं
हो जाते। बल्कि इससे हमारे ऊपर एक और बड़ा दायित्व, एक और बड़ी रिस्पांसिबिलिटी गिर जाती है कि जिन्होंने बुद्ध पैदा किया, उनका भौतिकवाद होना अत्यंत दुखद और पीड़ादायी हो जाता है। इससे हम आध्यात्मिक नहीं हो जाते, बल्कि इससे हमारा भौतिकवाद और भी पीड़ादायी हो जाना चाहिए। कि जिन्होंने बुद्ध, और महावीर, और कृष्ण, और ऋषभ पैदा किए, उनकी हालत! उनकी हालत दो-दो कौड़ी को पकड़ने की हो, उनकी हालत चौबीस घंटे पदार्थ के चिंतन की हो!
हां, इसको अगर अध्यात्मवाद हम समझते हों कि रोज उठकर हम सुबह गीता पढ़ लेते हैं। कितनी बार पढ़िएगा? और जब पहली बार आपकी बुद्धि में नहीं आई, तो आप समझते हैं, दूसरी बार आपकी बुद्धि थोड़ी ज्यादा हो जाएगी? डिटेरियोरेट हो रही है बुद्धि रोज। कल जितनी थी, कल और कम हो जाने वाली है। दूसरी बार और कम समझ में आएगी। और तीसरी बार समझने की जरूरत ही नहीं रह जाएगी, तोते की तरह दोहराए चले जाएंगे। फिर जिंदगीभर आदमी गीता पढ़ता रहता है और सोचता है। कुछ नहीं समझता; शब्द दोहराता है।

आध्यात्मिक होना हो, तो जीवंत प्रयोग की जरूरत है। कृष्ण प्रयोग की
ही बात कर रहे हैं। वे कह रहे हैं, पदार्थ से हटाओ।
सोचेंगे, कभी न हटा पाएंगे। हटाना शुरू करें। अभी थोड़ी ही देर में पदार्थ पकड़ेगा, तब पदार्थ से दूर रहकर--अभी प्यास लगेगी और पानी पीएंगे, तब थोड़ा प्यास से दूर खड़े होकर प्यास को भी देखना, पानी को भी देखना। पानी प्यास को बुझा रहा है, यह भी देखना। और आप देखने वाले रहना। आप न प्यासे बनना और न पानी बनना। जब प्यास मिट जाए, तब भी आप जानने वाले रहना कि अब प्यास मिट गई। आप प्यास मत बन जाना, अन्यथा पानी पर पागलपन शुरू हो जाएगा। आप जरा दूर खड़े होकर देखते रहना।
यह दूर खड़े होने की कला, यह प्रतिपल दूर खड़े होने की कला, ठीक वस्तुओं
के बीच में अनासक्त होने की कला ही किसी क्षण उस विस्फोट में ले आती है जीवन को, जहां हम परमात्मा से एक हो जाते हैं।
अभी इतना ही। पर बैठें। पांच मिनट थोड़ा प्रयोग कर लें। दो-तीन बातें आपसे कह दूं, तो आपको आसानी होगी।

कई मित्र मुझे पूछ रहे हैं कि संकीर्तन क्या है?
तो दो-तीन बात आप समझ लें। फिर आप देख भी लें। क्योंकि कुछ चीजें हैं,
जो कही नहीं जा सकतीं और बताई जा सकती हैं। तो कुछ मैं आपको बताऊं कि संकीर्तन क्या है। कुछ थोड़ा-सा कह दूं, तो आपको ख्याल में आ जाए।
एक, संकीर्तन छलांग है--ए जंप--बुद्धि के बाहर। ध्यान रखना, बुद्धि के बाहर। वह जो सोच-विचार का जगत है हमारे मन का, उसके बाहर भाव के जगत में एक छलांग है। सोचेंगे-विचारेंगे, तो नाच न सकेंगे। सोचेंगे-विचारेंगे, तो गा न सकेंगे। सोचेंगे- विचारेंगे, तो सब पागलपन लगेगा कि ये तो पागल हो गए। लेकिन सोच-विचारकर जिंदगीभर देख लिया, कहीं पहुंचे नहीं हैं। काफी गणित कर लिया, काफी दर्शनशास्त्र पढ़ लिया, काफी तर्क कर लिया--हाथ में राख भी नहीं है।
तो थोड़ी देर के लिए, एक सात मिनट के लिए सोचने के बाहर की दुनिया में
भी झांककर देख लें। और बिना झांके कोई उपाय नहीं है। मैं आपसे कहूं कि जरा खिड़की पर आ जाएं। आकाश है बाहर, तारे निकले हैं, फूल खिले हैं। तो आप खिड़की पर आने के पहले नहीं जान सकेंगे कि तारे खिले हैं। खिड़की पर आ जाएं, तो आकाश दिखाई पड़ सकता है।
एक छोटा-सा आकाश यहां संकीर्तन का संन्यासी पैदा करेंगे। संन्यासियों से कहूंगा, वे लोगों को भूल जाएं। लोग हैं या नहीं, इसकी फिक्र छोड़ दें। वे तो अपने रस में पूरे डूब जाएं। अपने हाथों को परमात्मा की तरफ फैला दें और नाच में मग्न हो जाएं।
तीन मिनट अगर ठीक से पूरी सामर्थ्य से डूबा कोई भी व्यक्ति, तो चौथे मिनट छलांग में उतर जाता है। और जब आदमी भीतर प्रवेश करता है प्रभु के, तब खुद नहीं नाचता, प्रभु उसमें नाचने लगता है। तब खुद गीत नहीं गाता, प्रभु ही गीत गाता है। तब थोड़ी ही देर में आदमी मिट जाता है, नृत्य ही शेष रह जाता है।
इस संकीर्तन को आप भी साथ दें। ताली बजाएं। गीत गाएं। डोलें। मग्न हों। एक सात मिनट इस प्रयोग को समझें।

गीता दर्शन, भाग तीन
गीता दर्शन अध्याय 6
चौदहवां प्रवचन

अहंकार खोने के दो ढंग

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।। 29।।
यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।। 30।।
और हे अर्जुन, सर्वव्यापी अनंत चेतन में एकीभाव से स्थिति रूप योग से युक्त हुए आत्मा वाला तथा सबमें समभाव से देखने वाला योगी आत्मा को संपूर्ण भूतों में बर्फ में जल के सदृश व्यापक देखता है और संपूर्ण भूतों को आत्मा में देखता है।
और जो पुरुष संपूर्ण भूतों में सबके आत्मरूप मुझ वासुदेव को ही व्यापक देखता है और संपूर्ण भूतों को मुझ वासुदेव के अंतर्गत देखता है, उसके लिए मैं अदृश्य नहीं होता हूं और वह मेरे लिए अदृश्य नहीं होता है।

परमात्मा अदृश्य है, ऐसी हमारी मान्यता है। लेकिन यह मान्यता बड़ी भूल भरी है। परमात्मा अदृश्य नहीं है, हम ही अंधे हैं; खोजेंगे, तो ऐसा पाएंगे। अंधा अगर कहे कि प्रकाश अदृश्य है, तो जो अर्थ होगा, वही अर्थ हमारे कहने का होता है कि परमात्मा अदृश्य है।
आदमी बहुत अदभुत है। स्वयं का अंधापन स्वीकार करना पीड़ादायी है; परमात्मा को ही अदृश्य मान लेना सुखद है। अंधे को भी आसान पड़ेगा यह मान लेना कि प्रकाश कुछ ऐसी चीज है जो दिखाई नहीं पड़ती; बजाय यह मानने के कि मैं अंधा हूं। अहंकार को चोट लगती है कि मैं अंधा हूं। और फिर भी आंख के अंधेपन से इतनी चोट नहीं लगती, जितनी मेरी चेतना अंधी है, तो चोट लगती है। इसलिए आपसे कहता हूं, जो-जो लोग कहे चले जाते हैं कि परमात्मा अदृश्य है, परमात्मा अदृश्य है, वे सिर्फ अपने अंधेपन को ढांके चले जाते हैं। आंख खुली हो, तो परमात्मा ही दृश्य है। या ऐसा समझें कि जो भी दृश्य है, वही परमात्मा है। न दिखाई पड़ना, अदृश्य होने का सबूत नहीं है अनिवार्य रूप से; अंधेपन का सबूत भी हो सकता है।
कृष्ण इस सूत्र में यही कहते हैं। वे कहते हैं कि जिसने अनुभव किया समस्त भूतों में एक को, और जिसने एक में अनुभव किया समस्त भूतों को, उसके लिए न तो मैं अदृश्य हूं और न वह मेरे लिए अदृश्य है।
इसमें दूसरी और अदभुत बात कही है। उसके लिए मैं अदृश्य नहीं हूं, यह पहले समझ लें। फिर इससे भी अदभुत बात कृष्ण ने कही है, वह मेरे लिए अदृश्य नहीं है। क्योंकि हम, परमात्मा अदृश्य है, इस बात को तो अपने अंधेपन से समझा लेंगे। लेकिन परमात्मा के लिए हम अदृश्य हैं, इसे हम कैसे समझाएंगे! समस्त भूतों में देख पाए जो एक को... ।
आकार प्रत्येक वस्तु का अलग है। प्रत्येक व्यक्ति का आकार अलग है। प्रत्येक वस्तु का गुण अलग है। प्रत्येक वस्तु भिन्न-भिन्न है। लेकिन भिन्नता के भीतर जो अभिन्नता देख पाए। यूनिटी इन डायवर्सिटी। वह जो इतना अनेक-अनेक होकर दिखाई पड़ रहा है, वह कहीं गहरे में एक है--ऐसा जो देख पाए! सोच पाए नहीं। सोचना तो बहुत कठिन नहीं है।
सोच तो विज्ञान भी पाता है कि समस्त पदार्थों के बीच कोई एक ही है। लेकिन सोचने से कुछ हल नहीं होता। सोच तो हम भी सकते हैं कि समस्त सोने के आभूषणों के बीच सोना ही है; और समस्त सागरों में एक ही जल है। सोचने का सवाल नहीं है। सोचने से आंख नहीं खुलती। अंधा भी प्रकाश के संबंध में सोच-विचार करता रह सकता है। इससे अनुभव उपलब्ध नहीं होता।
देख पाए!
इसलिए दुनिया में समस्त भाषाओं में, चाहे वे किसी कोने में पैदा हुई हों, हम प्रभु-साक्षात करने वाले के लिए जो उपयोग करते हैं, उसमें आंख का उपयोग जरूर करते हैं। भारत में हम कहते हैं, द्रष्टा। उसका अर्थ है, देखने

वाला। विचारक नहीं, सोचने वाला नहीं। तत्व अनुभव को हम कहते हैं, दर्शन; चिंतन नहीं, मनन नहीं, आंख। पश्चिम में भी देखने वाले को सीअर ही कहते हैं, देखने वाला ही कहते हैं, जिसने देखा--सोचा-विचारा नहीं--देखा, अनुभव किया। कैसे अनुभव होगा? समस्त रूपों में वह अरूप कैसे दिखाई पड़ेगा?
जब तक आप रूप देखेंगे, तब तक दिखाई नहीं पड़ेगा। थोड़ा अरूप की तरफ साधना करनी पड़ेगी। लेकिन हम जो भी देखते हैं, सब रूपवान है। हम जो भी देखते हैं, साकार है। हम जहां भी जाते हैं, साकार से मुलाकात होती है। निराकार से मुलाकात नहीं होती। और मजा यह है कि सब जगह निराकार मौजूद है, लेकिन हमें साकार से ही मुलाकात होती है। और सब जगह निर्गुण मौजूद है, और हमें सगुण से ही मुलाकात होती है। और सब जगह असीम मौजूद है, और हमें सीमा से ही मुलाकात होती है। बात क्या है?
बात करीब-करीब ऐसी है, जैसे कोई आदमी अपने घर के बाहर कभी न गया हो और
जब भी आकाश को देखा हो, तो अपनी खिड़की से देखा हो। आकाश तो असीम है, लेकिन खिड़की से देखा गया आकाश फ्रेम में हो जाता है। खिड़की का फ्रेम आकाश से लग जाता है। आकाश में कोई फ्रेम नहीं होता, कोई ढांचा नहीं होता। आकाश का कोई चौखटा नहीं होता। आकाश चौखटे से बिल्कुल मुक्त है। लेकिन खिड़की के पीछे से खड़े होने पर खिड़की का चौखटा आकाश पर जड़ जाता है।
और जिसने कभी खुले आकाश को जाकर न देखा हो, सदा खिड़की से ही देखा हो, वह
यह न मान सकेगा कि आकाश असीम है, निराकार है। वह यही मान पाएगा कि आकाश की सीमा है। यद्यपि जिसे वह आकाश की सीमा कह रहा है, वह उसकी खिड़की की सीमा है। लेकिन खिड़की आकाश पर जड़ जाती है। और आकाश जरा भी बाधा नहीं देता। क्योंकि जो असीम है, वह किसी चीज को बाधा नहीं देता; सिर्फ सीमित बाधा देता है।
ध्यान रखना, सीमित हमेशा बाधा देता है। उसकी सीमा के आगे आप खींचोगे, इनकार कर देगा। असीम बाधा नहीं देता। असीम का अर्थ ही यह है कि आप कुछ भी करो, कोई बाधा नहीं पड़ती।
तो एक छोटी-सी खिड़की आकाश पर जड़ जाती है, आकाश इनकार भी नहीं करता। आकाश कहता भी नहीं कि ज्यादती हो रही है, अन्याय हो रहा है। आकाश चुपचाप अपनी जगह बना रहता है। आकाश को पता भी नहीं चलता कि किसी की खिड़की उसके ऊपर बैठ गई है। लेकिन आप जो भीतर खड़े होकर देखते हैं, आपकी खिड़की की सीमा आकाश की सीमा बन जाती है। एक।
फिर अगर आपके घर में बहुत खिड़कियां हैं, तो आप बहुत-से आकाशों को जानने वाले हो जाएंगे। एक खिड़की से देखेंगे, एक आकाश दिखाई पड़ेगा, जहां से सूरज निकलता है। दूसरी खिड़की से देखेंगे, वहां अभी कोई सूरज नहीं है; आकाश में बदलियां तैर रही हैं। तीसरी खिड़की से देखेंगे, वहां बदलियां भी नहीं हैं, सूरज भी नहीं है; आकाश में पक्षी उड़ रहे हैं।
जो आदमी घर के बाहर कभी नहीं गया, क्या वह किसी भी तरह सोच पाएगा कि ये तीनों आकाश एक ही आकाश हैं? नहीं सोच पाएगा। सीधा गणित यही होगा कि तीन आकाश हैं मेरे घर के आस-पास। पांच खिड़कियां होंगी, तो पांच आकाश हो जाएंगे। दस खिड़कियां होंगी, तो दस आकाश हो जाएंगे। उस घर के भीतर रहने वाले को क्या कभी स्वप्न में भी यह सूझ पाएगा कि एक ही आकाश होगा? यह असंभव मालूम पड़ता है। और आकाश एक ही है।
इंद्रियों से देखते हैं हम जगत को, इसलिए आकार दिखाई पड़ता है। इंद्रियां विंडोज हैं, खिड़कियां हैं। और प्रत्येक इंद्रिय का ढांचा विराट के ऊपर बैठ जाता है। कान से सुनते हैं, आंख से देखते हैं, हाथ से छूते हैं। हर इंद्रिय अपने ढांचे को दे देती है निराकार को।
जब भी छूते हैं, निराकार छूते हैं। लेकिन हाथ स्पर्श को आकार दे देता है। हाथ की सीमा है। हाथ असीम को नहीं छू सकता। जिसको भी छुएगा, उसे ही सीमित बना लेगा।
जब भी देखते हैं, निराकार को देखते हैं। लेकिन आंख की सीमा है। आंख निराकार को नहीं देख सकती। तो जब भी देखते हैं, आंख अपनी खिड़की बिठा देती है निराकार पर, और आकार निर्मित हो जाता है। जब भी सुनते हैं, तब फिर... । सभी इंद्रियां निराकार को आकार देती हैं। और फिर जैसा मैंने कहा, उस मकान में पांच खिड़कियां हों। या हम ऐसा समझें कि वह मकान ठहरा हुआ मकान न

हो, आन दि व्हील्स हो, उस पर चक्के लगे हों और मकान दिन-रात चलता रहे, तो पांच खिड़कियां करोड़ों आकाश बना देंगी।
हम चलते हुए मकान हैं, जिसके नीचे पैर लगे हैं। घूमती हुई आंखें हैं हमारे पास। हमारी सारी इंद्रियां, पांच इंद्रियां पांच अरब इंद्रियों का काम करती हैं। क्योंकि चलते वक्त पूरे समय आकाश बदलता रहता है और हमारी इंद्रिय हर बार नई-नई चीज को देखती रहती है। इसलिए हमने यह अनंत-अनंत रूपों का जगत अनुभव किया है।
कृष्ण इस सूत्र तक आने के पहले बार-बार दोहराते हैं कि वही जान पाएगा मुझे, जो इंद्रियों के पार है। तब इतने सूत्रों के बाद वे कहते हैं कि जो मुझे सब भूतों में देख लेगा एक को, और एक में देख लेगा सब भूतों को... ।
यह एक साथ ही घटित हो जाता है। कहीं से भी शुरू कर लें। चाहे सबमें देख लें एक को, तो दूसरी बात, एक में सब दिखाई पड़ने लगता है। या एक में देख लें सबको, तो सबमें एक दिखाई पड़ने लगता है। ये दो बातें नहीं हैं। ये दो छोर हैं एक ही घटना के, एक ही हैपनिंग के। कहीं से भी शुरू हो सकता है। और हर आदमी को अलग-अलग शुरू होगा।
इसे भी थोड़ा ख्याल में ले लें। अन्यथा गलत छोर से आपने शुरू किया, तो
आप कभी भी ठीक स्थिति में नहीं पहुंच पाएंगे।
ये दो ढंग हैं। स्त्रैण चित्त--स्त्रैण चित्त कहता हूं, स्त्री का चित्त नहीं। क्योंकि कुछ स्त्रियों के पास पुरुष का चित्त होता है। और पुरुष चित्त का उपयोग करूंगा, तब भी मेरा मतलब चित्त पर आग्रह है। क्योंकि कुछ पुरुषों के पास स्त्रियों का चित्त होता है। स्त्रैण चित्त एक में सबको देख सकता है आसानी से।
इसलिए स्त्री मोनोगेमस है; एक को ही पकड़ना चाहती है। यह दुनिया में जो परिवार है, पतिव्रत धर्म है, एक पति है, यह स्त्री की पकड़ है। स्त्री एक से ही शुरू कर सकती है। हां, बढ़ती चली जाए, तो ऐसी घटना आ सकती है कि एक में सबको देख ले।
लेकिन पुरुष अनेक से शुरू कर सकता है। और ऐसी घटना आ सकती है कि अनेक में एक को देख ले। पुरुष जो है वह पोलीगेमस। पुरुष चित्त और स्त्री चित्त का यह फासला, इन दो चीजों का फासला निर्मित करता है।
इसलिए पुरुष बहु पर दौड़ता रहता है, अनेक पर दौड़ता रहता है। एक से उसे तृप्ति नहीं होती। होती ही नहीं। सब-सब रूपों में, जीवन की सब विधाओं में, सब दिशाओं में पुरुष अनेक पर दौड़ता रहता है। स्त्री को एक से तृप्ति हो जाती है। और अगर स्त्री भी अनेक पर दौड़ती है, तो उसके भीतर पुरुष चित्त की प्रधानता है, स्त्री चित्त की कमी है।
पश्चिम की स्त्री ने अनेक पर दौड़ना शुरू किया है, क्योंकि पश्चिम की स्त्री धीरे-धीरे पुरुष जैसी होती जा रही है। उसकी साइक में, उसके चित्त में बुनियादी परिवर्तन हो रहे हैं। और बहुत आश्चर्य न होगा कि थोड़े दिनों में पश्चिम का पुरुष एक पर ठहरने की कोशिश में लग जाए! क्योंकि प्रकृति संतुलन कभी भी नहीं खोती है।
जिन समाजों में बहुपत्नी प्रथा थी, उन समाजों में चित्त का एक ढंग हुआ। और जिन समाजों में बहुपति प्रथा रही है, कि एक स्त्री बहुत-से पति कर सके, उन समाजों के पूरे चित्त की व्यवस्था बदल जाती है। जिस समाज में एक स्त्री बहुत पति कर लेती है, उस समाज में पुरुष कमजोर हो जाता है और स्त्री बलवान हो जाती है। पुरुष स्त्रैण हो जाता है, स्त्री पुरुष-चेतना को पकड़ लेती है।
ऐसे समाज हैं जमीन पर, जहां एक स्त्री बहुपति कर सकती है। लेकिन बड़े मजे की बात है, उनकी पूरी सामाजिक व्यवस्था बदल जाती है। पूरी साइकोलाजी, पूरा मनस बदल जाता है। जहां एक स्त्री बहुपति कर सकती है, वहां स्त्री कमाने लगती है और पुरुष घर बैठकर खाने लगता है। वहां पुरुष कमाने नहीं जाता। सेकेंडरी हो जाता है, द्वितीय हैसियत का हो जाता है। स्त्री प्रथम हैसियत की हो जाती है।
अगर ठीक समझें, तो उस समाज में पुरुष स्त्रियों जैसा व्यवहार कर रहे हैं, स्त्रियां पुरुष जैसा व्यवहार कर रही हैं। पुरुष अनाक्रामक हो जाते हैं, स्त्रियां आक्रामक हो जाती हैं।

चित्त को समझ लेना आप। जब मैं स्त्रैण और पुरुष कह रहा हूं, तो स्त्री
और पुरुष के शरीर से मेरा मतलब नहीं है, चित्त के ढंग से मतलब है।
स्त्रैण चित्त एक पर रुकना चाहता है। इसलिए स्त्री जितना प्रगाढ़ प्रेम कर सकती है, पुरुष नहीं कर पाता। पुरुष का प्रेम बिखर जाता है।
स्त्री का प्रेम एक पर, एक टूट, एक धारा में गिरता रहता है। और इसीलिए सारी दुनिया में अब तक स्त्री और पुरुष के बीच हम कभी सुलह पैदा नहीं करवा पाए। क्योंकि उनके चित्त के ढंग इतने भिन्न हैं कि कभी सुलह हो पाएगी, यह कठिन दिखाई पड़ता है। जब तक कि हम चित्त के ढंग को बदल न लें, कलह जारी रहेगी। क्योंकि स्त्री एक को चाहती है, पुरुष अनेक को चाहता है। यह कलह का बुनियादी कारण है। और इसलिए स्त्री ईर्ष्यालु हो जाती है, सदा भयभीत रहती है कि पुरुष कहीं किसी और स्त्री को न चाहने लगे। ईर्ष्यालु होने के कारण उसकी सारी प्रकृति कुरूप हो जाती है। और पुरुष झूठा हो जाता है, असत्य बोलने लगता है। क्योंकि उसे भय रहता है कि कहीं दूसरे की तरफ जो प्रेम से देखी गई आंख, उसकी स्त्री की पकड़ में न आ जाए। तो व्यर्थ की कहानियां गढ़ता रहता है, झूठी बातें करता रहता है।
यह मजबूरी है चित्त की। और इस चित्त को अगर हम ठीक से समझ लें, तो ही हम समझ पाएंगे कि ये जो दो छोर कृष्ण ने कहे हैं, ये क्यों कहे हैं।
पुरुष अगर जाएगा, तो अनेक में एक की खोज उसके लिए अध्यात्म में भी आसान होगी। यद्यपि आध्यात्मिक उपलब्धि पर पुरुष भी मिट जाता है, स्त्री भी मिट जाती है। लेकिन जब तक यह नहीं हुआ, तब तक हमारी प्रत्येक साधना में, हमारे प्रत्येक कर्म में हमारा चित्त मौजूद रहता है।
यही वजह है कि स्त्रियां स्टैटिक सोसायटी का आधार बन जाती हैं, ठहरे हुए समाज का। स्त्रियां बदलाहट बिल्कुल पसंद नहीं करतीं, या बहुत क्षुद्र ढंग की बदलाहट पसंद करती हैं। कपड़े, जेवर, जिनकी बदलाहट से कोई बदलाहट दुनिया में नहीं होती। कोई बुनियादी बदलाहट स्त्रियां पसंद नहीं करतीं। स्त्रियां बहुत रेसिस्टेंट, बहुत प्रतिरोधी शक्ति की तरह बदलाहट के खिलाफ खड़ी रहती हैं। कोई बदलाहट!
लेकिन पुरुष बदलाहट के लिए बहुत आतुर रहता है। ऊपरी बदलाहट के लिए बहुत आतुर नहीं रहता। कपड़े वह जिंदगीभर एक से पहने रह सकता है, इससे अड़चन नहीं आती। उसकी समझ के बाहर है कि बहुत कपड़े बदलने की क्या जरूरत है! वह एक ही ढंग के कपड़े जिंदगीभर पहने रह सकता है, कोई अड़चन नहीं आती। लेकिन किसी गहरी बुनियादी बदलाहट के लिए वह आतुर रहता है कि चीजों का कोई गहरा रूप बदल जाए। क्योंकि गहरा रूप बदले, तो वह अनेक जीवन एक जीवन में जी सके। स्त्री गहरी बदलाहट नहीं चाहेगी, वह एक ही जीवन की एक तारतम्यता को पसंद करेगी। एक सुर उसके व्यक्तित्व का है। यह साइक, चित्त का भेद है। इस चित्त के भेद के अनुसार अध्यात्म में भी गति करते वक्त ख्याल रखना जरूरी है।
हां, अगर कोई स्त्री एग्रेसिव हो, आक्रामक हो, जैसा कि कुछ स्त्रियां होती हैं, तो उनके लिए अनेक में एक को देखना आसान पड़ेगा। कोई पुरुष रिसेप्टिव हो, जैसा कि कुछ पुरुष होते हैं, ग्राहक हो, एग्रेसिव न हो, आक्रामक न हो, तो उसके लिए एक में अनेक को देखना आसान होगा। कैसे देखेंगे? चाहे दो में से कुछ भी करें, एक काम तो दोनों को करना पड़ेगा कि इंद्रियों के पार उठने की चेष्टा करनी पड़ेगी। आंख से बहुत देखा, कभी आंख बंद करके देखें। एक ख्याल रखें, आंख से तो बहुत देखा, रूप के अतिरिक्त कुछ न पाया। खिड़की से बहुत देखा, अब खिड़की से हटकर देखें।

लेकिन डर यह है कि हमारी आदतें ऐसी कंडीशंड, ऐसी संस्कारित हो जाती हैं कि जब हम आंख बंद करते हैं, तब भी हम आंख से ही देखते रहते हैं। बंद आंख में भी आंख से ही देखते रहते हैं।
आंख ने हजार-हजार संस्कार इकट्ठे कर रखे हैं खिड़की से देखने के। वही संस्कार आंख री-प्ले करती है, फिर से फिल्म को चढ़ा देती है। और हमारे मस्तिष्क का ढंग ठीक टेप रिकार्डर जैसा है; उसमें कुछ भेद नहीं है। हमारे मस्तिष्क में प्रत्येक चीज अंकित है, वह अंकित चीज हम फिर से खोलकर देखने लगते हैं।

आंख बंद करके हम वही देखने लगते हैं, जो हमने खुली आंख से कभी देखा। हां, कभी-कभी नए कांबिनेशन बना लेते हैं। उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन सब पुराना ही रहता है। उस पुराने को हम फिर जुगाली करने लगते हैं, जैसे जानवर जुगाली करते हैं न!
लेकिन जानवर की जुगाली सिर्फ भोजन के लिए होती है। और हमारी जुगाली भोजन के लिए तो नहीं होती, विचारों के लिए होती है। जानवर खाना खा लेता है, फिर निकाल-निकालकर चबाता रहता है बैठकर। भैंस को कभी देखें, तो समझ में आएगा। खाए हुए खाने को फिर-फिर से खाती रहती है। हम भी गृहीत किए गए, ग्रहण किए गए संस्कारों को फिर-फिर दोहराते रहते हैं।
आंख बंद करके बैठ जाएं, दिवास्वप्न शुरू हो जाएगा। फिल्म चढ़ गई पर्दे पर। वह जो हमने देखा है, जाना है, वह फिर-फिर दोहरने लगेगा।
न; इससे भी हटना पड़ेगा। अन्यथा आंख की खिड़की से आप न हटे। यह जो भीतर विचार की दुनिया जारी हो जाती है, इसके भी समझना कि मैं पार हूं, इससे भी पार हूं, इससे भी भिन्न हूं। इससे भी दूर खड़े होकर देखना कि ये विचार चल रहे हैं, मैं देखने वाला हूं। और अगर तीन महीने कोई इस स्मरण में ठहर जाए, कि ये जो विचार चल रहे हैं, ये दूर हैं, और मैं देखने वाला हूं... ।
और निश्चित ही आप देखने वाले हैं, आप विचार नहीं हैं। आप विचार होते,
तो आपको कभी पता ही न चलता कि विचार चल रहे हैं। क्योंकि यह उसे ही पता चल सकता है, जो दूर खड़ा है।
आपने रात जाकर फिल्म देखी है सिनेमागृह में। अगर आप फिल्म ही होते, तो देखता कौन? आप फिल्म नहीं हैं। आप कुर्सी पर बैठे हुए हैं। बिल्कुल अलग। लेकिन अंधेरा है कमरे में। खुद दिखाई नहीं पड़ते, फिल्म ही दिखाई पड़ती है। और फिल्म ऐसी ग्रिप बांध लेती है मन पर कि कभी-कभी दर्शक भूल ही जाता है कि वह है भी। वह करीब-करीब अभिनय का पात्र हो जाता है। लोगों के रूमाल गीले निकलते हैं सिनेमागृह से; आंसू पोंछ-पोंछ कर आ गए हैं!
कभी पीछे लौटकर सोचा है कि पर्दे पर कुछ भी न था, जिसके लिए आप रोते थे। सिर्फ छाया और धूप का खेल था। तब मन में बड़ी बेचैनी होगी कि मैं भी कैसा नासमझ हूं! वहां कुछ था नहीं। सिर्फ विद्युत के दौड़ते हुए रूप थे। कोई जीवन भी न था वहां, लेकिन भ्रम जीवन का हो जाता है। भ्रम जीवन का हो जाता है। भूल जाते हैं अपने को, फिल्म सब कुछ हो जाती है, खुद खो जाते हैं। और सिनेमागृह में तो तीन घंटे बैठते हैं, उसमें इतनी गड़बड़ हो जाती है-- आंसू आ जाते हैं, रूमाल भीग जाता है, छाती धड़कने लगती है, हृदय भारी हो जाता है, दुखी हो जाते हैं, सुखी हो जाते हैं--लेकिन चित्त की जिस फिल्म को आप अनंत जन्मों से देख रहे हैं, अगर उसमें ऐसा तादात्म्य गहन हो गया हो, तो आश्चर्य नहीं है। वहां वह पूरे वक्त चल रहा है। सोते-जागते, मन के पर्दे पर फिल्म जारी है। इसमें कभी अंतराल नहीं आया, गैप नहीं पड़ा। इसलिए भयंकर तादात्म्य हो गया है। जैसे कोई आदमी जिंदगीभर सिनेमा में ही बैठा रहे और भूल जाए कि मैं हूं। सिनेमा ही हो जाए! ऐसी हमारी स्थिति है।
इसे तोड़ना पड़े। इसे तोड़ने के लिए जरूरी है जानना कि मैं दर्शक हूं। बस, यह स्मरण कि मैं द्रष्टा हूं।
कृष्ण की सारी साधना पद्धति द्रष्टा की है। मैं दर्शक हूं, मैं द्रष्टा हूं। इसका स्मरण कि मैं देख रहा हूं। विचारो, मैं तुम्हारे साथ एक नहीं हूं; तुम से दूर खड़ा देख रहा हूं।
यह स्मरण गहरा हो जाए, तो विचार भी बंद हो जाएंगे। आंख भी बंद हो गई, बाहर का आकाश दिखाई पड़ना बंद हो गया। विचार भी बंद हो गए, बाहर के आकाश के बने प्रतिबिंब भी बंद हो गए। और जिस दिन यह होगा, उसी दिन आप अंतर के लोक से पुनः उस विराट आकाश में पहुंच जाएंगे, जिस पर कोई खिड़की नहीं है। और जिस दिन आप उस विराट आकाश को जान लेंगे--चौखटे से रहित, फ्रेमलेस--उसी दिन आपको अनेक में एक और एक में अनेक दिखाई पड़ने लगेगा।
जिन्हें एक में अनेक देखना है, उनके लिए भक्ति सुगम मार्ग है। मैंने कहा, स्त्रैण चित्त का वह लक्षण है। भक्ति का मार्ग मूलतः स्त्रैण है। महावीर से भक्ति नहीं करवा सकते आप, मीरा से ही करवा सकते हैं। महावीर जैसे कि पुरुष चित्त के प्रतीक हैं। अगर पुरुष चित्त शुद्ध हो, तो महावीर

जैसा होगा। अगर स्त्री चित्त शुद्ध हो, तो मीरा जैसा होगा। एक प्रतीक की तरह ले रहा हूं इन दो को।
स्त्री चित्त शुद्ध हो, तो मीरा जैसा होगा। तो मीरा गई है वृंदावन और मंदिर के पुजारी ने कहा कि अंदर न आने दूंगा, क्योंकि मैं स्त्री का चेहरा नहीं देखता। तो मीरा ने खबर भिजवाई कि मैं तो सोचती थी, कृष्ण के सिवाय और कोई पुरुष नहीं है। आप भी पुरुष हैं, इसका मुझे कुछ पता न था! मैं एक दर्शन आपका करना ही चाहती हूं। मैं दूसरे पुरुष को भी देख लूं!
यह एक में अनेक को खोजने वाला चित्त है, जो कहता है कि सिर्फ एक ही पुरुष है, कृष्ण। सब उसी में लीन हो गए। दूसरा तो कोई पुरुष है नहीं; बाकी तो सब स्त्रियां हैं।
पुजारी ने चिट्ठी पढ़ी, घबड़ाया कि पता नहीं कौन आ गया! उस पुजारी को पता
भी न होगा कि कभी कोई शुद्ध स्त्री आ सकती है, जिसे सिर्फ एक ही पुरुष है। माफी मांगी और कहा, भीतर आ जाओ, क्योंकि मुझसे ज्यादती हो गई कि मैंने भी पुरुष होने का दावा किया। कृष्ण के मंदिर में पुरुष होने का दावा करने वाला पुजारी गलत पुजारी है।
भक्ति का मार्ग स्त्रैण चित्त का मार्ग है--समर्पण का, किसी के चरणों में सब रख देने का, और एक ही चरण में पूरे जगत के चरणों को उपलब्ध कर लेने का। मूर्तियां स्त्रियों ने विकसित की हैं, भला पुरुषों ने बनाई हों। मूर्ति स्त्रैण चित्त के निकट है।
महावीर शुद्ध पुरुष चित्त हैं। वे कहते हैं, कोई परमात्मा नहीं है। महावीर का यह कहना कि कोई परमात्मा नहीं है, आत्मा ही परमात्मा है, पुरुष की शुद्धतम घोषणा है। पुरुष किसी परमात्मा को मान नहीं सकता। क्योंकि मानेगा, तो समर्पण करना पड़ेगा। पुरुष समर्पण नहीं कर सकता। पुरुष संकल्प कर सकता है, साधना कर सकता है, गौरीशंकर पर चढ़ सकता है। महावीर कहते हैं, कोई परमात्मा नहीं है। प्रत्येक परमात्मा है। स्वयं को जान लिया, तो परमात्मा को जान लिया। किसी दूसरे को नहीं जानना है।
पुरुष स्वयं में जीता है; स्त्री सदा दूसरे में जीती है। कभी वह बेटे में जीती है, कभी पति में जीती है, पर सदा दूसरे में जीती है। दूसरे के बिना उसका होना न होने के बराबर हो जाता है। स्त्री का सारा रस, सारा जीवन दूसरे से प्रतिध्वनित होता है। उसका बेटा प्रसन्न है, और वह प्रसन्न है। पुरुष दूसरे में नहीं जीता, अपने में जीता है, स्व-केंद्रित जीता है। स्त्री पर-केंद्रित जीती है।
परमात्मा पर है। इसलिए जैसे-जैसे दुनिया में पुरुष द्वारा निर्मित विज्ञान विजयी हुआ, वैसे-वैसे भक्ति के रूप खंडित हुए। क्योंकि विज्ञान पुरुष की खोज है, स्त्री की खोज नहीं है। कोई एक मैडम क्यूरी नोबल प्राइज पा लेती हो; अपवाद है। और मैडम क्यूरी के पास पुरुष जैसा चित्त था, स्त्री जैसा नहीं।
विज्ञान पुरुष की खोज है। इसलिए जैसे-जैसे विज्ञान जीतता गया, वैसे- वैसे धर्म की बहुत बुनियादी शिलाएं आदमी तोड़ता चला गया। क्योंकि उसके मार्ग ही अलग हैं।
अगर आपके पास समर्पण करने की क्षमता है, तो आपके लिए कोई भी चरण परमात्मा के चरण बन सकते हैं। इसलिए अगर स्त्रियां कह पाईं कि उन्हें पति ही परमात्मा है, और अगर कोई स्त्री पति में परमात्मा देख पाए, तो पति इतना विराट हो जाएगा धीरे-धीरे कि सब, एक में अनेक समा जाएगा। अगर देख पाए। वही उसकी साधना बन सकती है। न देख पाए, तो भी वह किसी को खोजेगी।
अब महावीर जैसा व्यक्ति, जो कहता है, कोई परमात्मा नहीं है, उसके पास भी... । महावीर के पास पचास हजार संन्यासी थे, तो केवल आठ हजार संन्यासी पुरुष थे, बयालीस हजार संन्यासिनियां स्त्रियां थीं। महावीर कहते हैं, कोई परमात्मा नहीं है। लेकिन बयालीस हजार स्त्रियां कहती हैं, तुम हमारे लिए परमात्मा हो, भगवान हो! महावीर के चरण में भी उन्होंने परमात्मा को खोज लिया। महावीर कितना ही कहें, वह महावीर के चरण में भी परमात्मा को खोज लिया।
बुद्ध ने इनकार किया, कोई परमात्मा नहीं है। और इसलिए बुद्ध ने बहुत दिन तक जिद्द की कि मैं स्त्रियों को दीक्षा न दूंगा। बहुत मजेदार घटना

है। बुद्ध ने बहुत दिन जिद्द की कि मैं स्त्रियों को दीक्षा नहीं दूंगा। एक अर्थ में जिद्द ठीक थी, क्योंकि बुद्ध का पथ बिल्कुल पुरुष का पथ है। और मजा यह है कि पुरुष के पथ पर स्त्री को लाओ, तो स्त्री न बदलेगी, पथ को बदल लेगी। इसलिए बुद्ध बहुत इनकार किए कि क्षमा करो। बहुत मजबूरी में, बहुत दबाव में, और बड़ी एक तार्किक घटना के कारण बुद्ध को दीक्षा देने के लिए राजी होना पड़ा।
बुद्ध की वृद्ध एक रिश्तेदार है, गौतमी। बुद्ध से उम्र में बड़ी है। रिश्ते में चाची लगती है। गौतमी बुद्ध के पास आई। जब सैकड़ों स्त्रियों को बुद्ध इनकार कर चुके, तो गौतमी बुद्ध के पास आई। उसने यह नहीं कहा, मुझे दीक्षा दो। उसने यह कहा कि क्या स्त्रियां सत्य को नहीं पा सकेंगी? बुद्ध ने कहा, जरूर पा सकेंगी। क्या स्त्रियों के लिए सत्य का द्वार बंद है? बुद्ध ने कहा, नहीं, द्वार बंद नहीं है। क्या स्त्रियां ऐसी अपवित्र हैं कि सत्य के निकट न पहुंच सकें? बुद्ध ने कहा कि नहीं-नहीं, स्त्रियां उतनी ही पवित्र हैं, जितने पुरुष। तो गौतमी ने कहा कि फिर बुद्ध हमें दीक्षा क्यों नहीं देते हैं? क्या हम वंचित रह जाएं बुद्ध की मौजूदगी से? फिर हमें कब दूसरा बुद्ध मिलेगा? उसका कोई वचन है? उसका कोई आश्वासन है? और अगर हम नहीं पहुंच पाए सत्य तक, तो जिम्मेवार आप भी होंगे।
बुद्ध कठिनाई में पड़ गए। बुद्ध ने कहा, मैं दीक्षा देता हूं। लेकिन साथ ही यह भी घोषणा करता हूं कि मेरा जो धर्म पांच हजार वर्ष तक लोगों के काम आता, अब पांच सौ साल से ज्यादा काम नहीं आ सकेगा। और जब किसी ने बुद्ध से पूछा कि ऐसा आप क्यों कहते हैं? तो उन्होंने कहा, मैं स्त्रियों को दीक्षा दिया हूं। पांच साल भी बहुत है कि मेरी पद्धति शुद्ध रह जाए, स्त्रियां उसको बदल देंगी। क्योंकि स्त्रैण चित्त!
और बदल डाला, बिल्कुल बदल डाला!
चित्त हमारा दो प्रकार का है। लेकिन किसी भी चित्त के पार जाना हो, तो इंद्रियों के पार जाना जरूरी है। लेकिन जाने की विधि में थोड़े फर्क होंगे। स्त्री चित्त समर्पण से जाएगा। समर्पण कर दिया अपना प्रभु के लिए, तो सब इंद्रियां समर्पित हो गईं, स्वयं भी समर्पित हो गए। खुला आकाश, विराट आकाश उपलब्ध हो गया।
पुरुष समर्पण से नहीं, संकल्प से जाएगा। संकल्पपूर्वक एक-एक इंद्रिय
के ऊपर उठेगा।
भेद ऐसा है, रामकृष्ण के पास एक आदमी आया। एक हजार स्वर्ण-मुद्राएं जाकर उसने रामकृष्ण के पैर में जोर से पटकीं। जोर से, ताकि घाट पर इकट्ठे लोगों को सोने की खनखनाहट का पता चल जाए कि किसी ने आकर सोना दान किया! दानी जब करता है, तो घोषणा से ही करता है! उसी में दान बेकार हो जाता है यद्यपि।
रामकृष्ण ने कहा, इतने जोर से भाई क्यों पटकता है? दान चुपचाप भी कर सकता है! उस आदमी को कुछ होश आया। उसने कहा, क्षमा करें, भूल हो गई। अनजाने हो गया। स्वीकार करके मुझे कृतार्थ करें। रामकृष्ण ने कहा, स्वीकार कर लेता हूं। क्योंकि कोई मुझे गालियां देने आए, तो वह भी स्वीकार कर लेता हूं, तू तो स्वर्ण की मुद्राएं लाया! मैंने स्वीकार कर लीं। अब मेरी तरफ से जाकर इनको गंगा में फेंक आ।
तो वह आदमी मुश्किल में पड़ा। एक हजार स्वर्ण-मुद्राएं! गया गंगा के किनारे। बड़ी देर लगा दी। लौटा नहीं। रामकृष्ण ने कहा, भाई, जरा देखो, वह आदमी कहां है? बड़ी देर लग गई। फेंकने को कहा था! एक सेकेंड का काम था। फेंककर चलकर आ गया होता।
लोग देखने गए। और उन्होंने आकर बताया कि वह एक-एक अशर्फी को बजाकर देख रहा है। और बजाकर फेंकता है और कहता है, आठ सौ दस, आठ सौ ग्यारह, आठ सौ बारह... ! वह गिन-गिनकर फेंक रहा है! भीड़ इकट्ठी है वहां भारी।
जब वह आदमी लौटा, पसीना-पसीना, घंटों की मेहनत के बाद। रामकृष्ण ने कहा, तू बड़ा पागल है। जो काम एक ही कदम में किया जा सकता था, वह तूने हजार कदम में किया! फेंकनी ही थीं, जोड़नी तो नहीं थीं। जोड़ते वक्त गिनती की कोई सार्थकता भी है। फेंकते वक्त तो गिनती की कोई सार्थकता नहीं है। आदमी तिजोड़ी में जोड़ता है, तो एक-एक गिनकर जोड़ता है। जोड़ने के वक्त तो गिनती की

सार्थकता है। क्योंकि जोड़ने वाला चित्त अगर गिनेगा नहीं, तो पता कैसे चलेगा कि कितना जोड़ा? लेकिन छोड़ते वक्त गिनती की कौन-सी आवश्यकता है? तू इकट्ठा ही झोला फेंक देता!

एक-एक करके फेंका उसने। संकल्प एक-एक करके ही फेंक पाता है। समर्पण इकट्ठा फेंक देता है। समर्पण का मतलब है कि तुम्हीं सम्हालो ये इंद्रियां; तुम्हीं सम्हालो ये सब कुछ। तुम्हारे चरणों में रख दिया सिर, तुम जानो। इकट्ठा फेंक देता है। संकल्प एक-एक इंद्रिय से लड़ेगा। एक-एक इंद्रिय से लड़ेगा, एक-एक इंद्रिय को छोड़ेगा। परिणाम वही होता है। पुरुष का रास्ता थोड़ा लंबा है। स्त्री का रास्ता शार्टकट है। लेकिन पुरुष के लिए शार्टकट नहीं है, बहुत लंबा हो जाएगा। स्त्री का रास्ता बहुत निकटतम है-- छलांग का।
अपने चित्त की तलाश कर लेनी चाहिए। जरूरी नहीं है कि आप पुरुष हैं, तो आपके पास पुरुष चित्त हो। इस भ्रम में मत पड़ना कि पुरुष होने से पुरुष चित्त होता है। स्त्री हों, तो स्त्री चित्त हो, इस भ्रम में मत पड़ना। इसकी तलाश कर लेना कि आपके चित्त का ढंग क्या है? समर्पण का ढंग है या संकल्प का ढंग है? आपकी सामर्थ्य अपने को किसी के हाथ में छोड़ देने की है? नदी से अगर सागर तक पहुंचना हो, तो आप तैरकर पहुंचिएगा कि बहकर पहुंचिएगा? इसकी जरा ठीक से खोज कर लेना।
अगर बहकर पहुंच सकते हों, तो समर्पण मार्ग है। फिर नदी के हाथ में छोड़ दिया कि ले चल। नदी तो सागर जा ही रही है, ले जाएगी। लेकिन अगर आप तैरने वाले आदमी हैं, तो तैरेंगे सागर की तरफ। नदी तो मेहनत कर ही रही है, आप भी मेहनत करेंगे। जरूरी नहीं है कि तैरकर आप थोड़ी जल्दी पहुंच जाएंगे। हो सकता है, थोड़ी देर से ही पहुंचें, क्योंकि तैरने में नाहक शक्ति व्यय होगी। नदी सागर की तरफ बह ही रही है, आप सिर्फ बह गए होते, तो भी पहुंच गए होते। लेकिन आप पर निर्भर है।
पुरुष चित्त को बहने में रस न आएगा। वह कहेगा, यह भी क्या हो रहा है! तैरने का कोई मौका ही नहीं! तो पुरुष चित्त अक्सर नदी से उलटा तैरने लगता है, क्योंकि उलटा नदी में तैरने में ज्यादा संकल्प को मौका मिलता है, क्रिस्टलाइजेशन। पुरुष का मार्ग है, क्रिस्टलाइजेशन। सख्त हीरे की तरह भीतर कोई चीज मजबूत होती चली जाएगी। इसलिए पुरुष के सब मार्ग आत्मा की घोषणा करेंगे।
स्त्री का मार्ग है, विसर्जन। कोई चीज पानी की तरह तरल होकर बह जाएगी। इसलिए स्त्री के मार्ग परमात्मा की घोषणा करेंगे।
एक में देख लें सबको या सबमें देख लें एक को। थोड़े विधियों के भेद होंगे। लेकिन इंद्रियों से पार उठना पड़ेगा। या तो एक-एक इंद्रिय के साक्षी बनकर पार उठें, या समस्त इंद्रियों को एक बार ही प्रभु के चरणों में सौंप दें।
आप सोचते होंगे, बड़ा सरल है; एक बार जाकर प्रभु के चरणों में सौंप दें; झंझट से छूटे। अगर आपके मन में ऐसा ख्याल आया हो कि एक बार जाकर प्रभु के चरणों में सौंप दें, झंझट से छूटे, तो आप सौंप न पाएंगे। आप सौंप न पाएंगे, क्योंकि आप झंझट से छूटने को सौंप रहे हैं। झंझट आप ही हैं।
लेकिन अगर आपको ऐसा ख्याल आया कि यह तो बात बिल्कुल ठीक है; छोड़ दिया। छोड़ देंगे नहीं; कल छोड़ देंगे नहीं। वह पुरुष चित्त का लक्षण है--जाऊंगा, करूंगा, छोडूंगा। वह छोड़ने में भी करना करेगा। समर्पण भी उसके लिए एक संकल्प ही होगा। वह कहेगा, मैं तैयारी कर रहा हूं, संकल्प कर रहा हूं कि समर्पण कर दूं! अगर समर्पण भी आएगा, तो संकल्प के ही द्वार से आएगा। अगर वह प्रभु के चरणों में अपने को झुकाएगा भी, तो यह बड़े व्यायाम और कसरत का फल होगा। भारी कसरत करेगा! और कसरत से कोई झुका है? अकड़ना हो, तो कसरत ठीक है। झुकना हो, तो नहीं। लेकिन अकड़ना हो, तो पूरे अकड़ जाएं।
बड़े मजे की बात है कि अगर पूरे अकड़ जाएं, तो एक दिन अचानक पाएंगे कि सब बिखर गया। यह मुट्ठी है मेरी, इसको मैं बांधता चला जाऊं और इतना बांधूं, इतना जितना कि मेरी ताकत है। फिर एक क्षण आ जाएगा कि यह मुट्ठी खुल जाएगी--

जिस क्षण मेरी ताकत चुक जाएगी बांधने की। और ताकत चुक जाएगी; ताकत सीमित है।
आप करके देखना। बांधते जाना, बांधते जाना, पूरी ताकत लगा देना। एक क्षण आप अचानक पाएंगे कि अब आप और नहीं बांध सकते हैं, और देखेंगे कि अंगुलियां खुल रही हैं! हां, कुनकुना बांधे रहें, धीरे-धीरे, तो जिंदगीभर बांधे रह सकते हैं।
अकड़ना ही हो, तो पूरे अकड़ जाना। कहना, कोई ब्रह्म नहीं है, मैं ही ब्रह्म हूं। लेकिन फिर इसको इस घोषणा से कहना कि पूरा जीवन इस पर लगा देना। एक क्षण आएगा कि यह बिखराव उपलब्ध हो जाएगा। लेकिन तनाव से विश्राम आएगा पुरुष को। थ्रू टेंशन इ.ज रिलैक्सेशन।
पुरुष के लिए गहरे तनाव से विश्राम आएगा। जैसे कि तीर को खींचा है प्रत्यंचा पर। खींचते गए, खींचते गए, पूरा खींच लिया। फिर कभी आपने ख्याल किया है कि बड़ी उलटी घटना घटती है! तीर की प्रत्यंचा को खींचते हैं पीछे की तरफ, और तीर जाता है आगे की तरफ। फिर एक क्षण आता है कि और नहीं खींच सकते और प्रत्यंचा छूट जाती है, और तीर आगे की यात्रा पर निकल जाता है।
आप तो पीछे की तरफ खींच रहे थे, यात्रा तो उलटी हो गई। आप तो खींच रहे थे--मैं, मैं, मैं। पूरा खींचते चले जाएं, एक दिन आप अचानक पाएंगे, बिखराव आ गया; तीर छूट गया, प्रत्यंचा टूट गई; ना मैं की तरफ यात्रा शुरू हो गई; परमात्मा में उपलब्धि हो गई। लेकिन मैं को खींचकर होगी पुरुष की उपलब्धि। स्त्री मैं को ऐसे ही समर्पित कर सकती है। इसलिए स्त्री और पुरुष के बीच कभी अंडरस्टैंडिंग नहीं हो पाती।
एक स्त्री ने आकर मुझे कहा कि मुझे संन्यास लेना है, लेकिन मेरे पति कहते हैं, क्या होगा संन्यास लेने से! मैं उनको कैसे समझाऊं? मुझे तो लग रहा है, सब कुछ होगा। लेकिन वे कहते हैं, बताओ क्या होगा? कैसे होगा? मुझे तो लग रहा है कि यह ख्याल ही कि संन्यास लेना है, मेरे भीतर कुछ होना शुरू हो गया। जब लूंगी, तब तो होगा। अभी तो ख्याल से कुछ मेरे भीतर हो रहा है। और वे कहते हैं, क्या होगा? कैसे होगा? मुझे बताओ। मुझे भी तो सिद्ध करो।
वह स्त्री सिद्ध न कर पाएगी। सिद्ध करने में पड़ेगी, तो कठिनाई में पड़ेगी। जो हो रहा है, वह भी बंद हो जाएगा। सिद्ध करना पुरुष चित्त का लक्षण है। स्वीकार कर लेना स्त्री चित्त का लक्षण है। और सिद्ध करके भी स्वीकार ही तो उपलब्ध होता है! मगर जरा लंबी यात्रा है। स्त्री बिना सिद्ध किए भी स्वीकार कर सकती है। और स्वीकार करते ही सिद्ध हो जाता है। बस, इतना ही फर्क होगा, आगे-पीछे का। पुरुष पहले सिद्ध करेगा, फिर स्वीकार करेगा। स्त्री पहले स्वीकार लेगी, और फिर सिद्ध कर लेगी। पर इतना फर्क होगा।
और वे पुरुष ठीक पूछ रहे हैं। उनका पूछना बिल्कुल दुरुस्त है। लेकिन
वह अपने लिए ही पूछें, तो ठीक है; स्त्री के लिए न पूछें। उसे अपने मार्ग से जाने दें। उसे अपने मार्ग से जाने दें। हां, जब उनका सवाल हो खुद का, तो पूरा सिद्ध करके फिर संन्यास लें। लेकिन स्त्री को जाने दें। जिसे बिना सिद्ध किए संन्यास का भाव आता हो, उसे सिद्ध करने की कोई जरूरत नहीं रही, क्योंकि सिद्ध करने की जरूरत इतनी ही है कि भाव आ जाए।
लेकिन पुरुष सोचेगा, विचारेगा, गणित लगाएगा, हिसाब लगाएगा, हर चीज की जांच करेगा, कि होगा कि नहीं होगा? कितना होगा? जितना छोड़ेंगे, जितना कष्ट पाएंगे, उससे सुख ज्यादा होगा कि कम होगा? वह यह सब सोचेगा।
और अगर कोई स्त्री पुरुष से बहुत प्रभावित हो जाए, तो नुकसान में पड़ेगी। और अगर कोई पुरुष स्त्री से बहुत प्रभावित हो जाए, तो नुकसान में पड़ेगा। और दुर्भाग्य यह है कि पुरुष स्त्रियों से प्रभावित होते हैं, और स्त्रियां पुरुषों से प्रभावित होती हैं। ऐसा होता है। और दोनों का रुख जीवन के प्रति बहुत भिन्न है।
करीब-करीब ऐसा कि जैसे हम जमीन पर एक वर्तुल, एक सर्किल खींच दें। उस वर्तुल के एक बिंदु पर पुरुष खड़ा हो, बाईं तरफ मुंह किए; उसी बिंदु पर स्त्री खड़ी हो, दाईं तरफ मुंह किए। दोनों की पीठें मिलती हों। पुरुष और स्त्रियां बहुत कोशिश करते हैं कि दोनों आमने-सामने से आलिंगन में मिल जाएं। वह घटना घटती नहीं। धोखा ही सिद्ध होती है। क्योंकि उनके रुख बड़े विपरीत हैं। उनकी दोनों की पीठ ही मिल सकती हैं।

लेकिन अगर वे दोनों अपनी-अपनी यात्रा पर निकल जाएं, तो वर्तुल पर एक बिंदु ऐसा भी आएगा, जहां उन दोनों के चेहरे मिल जाएंगे।
दोनों चले जाएं अपनी यात्रा पर; पुरुष बाएं चला जाए, स्त्री दाएं चली जाए। और पुरुष न कहे कि दाएं जाने से कुछ न होगा, क्योंकि मैं बाएं जा रहा हूं। और स्त्री न कहे कि बाएं जाने से क्या होने वाला है, मुझे तो दाएं जाने से बहुत कुछ हो रहा है।
मत लड़ो। दाएं-बाएं ही चले जाओ। जरूर वह बिंदु एक दिन आ जाएगा तुम्हारी
ही यात्रा से, जहां तुम आमने-सामने मिल जाओगे। लेकिन वह बिंदु अंतिम बिंदु है। पड़ाव का प्रारंभ बिंदु नहीं है यात्रा का; मंजिल का अंतिम बिंदु है। और इतनी समझ हो, तो स्त्री-पुरुष एक-दूसरे के सहयोगी हो जाते हैं। इतनी समझ न हो, तो एक-दूसरे के विरोधी हो जाते हैं और जीवनभर बाधा डालते हैं।
कृष्ण कहते हैं, ऐसा जो इंद्रियों के पार गया हुआ व्यक्ति है, उसके लिए परमात्मा दृश्य हो जाता है। निश्चित ही हो जाता है। क्योंकि निराकार तब आकारों में खंडित नहीं होता, तब निराकार अपनी समग्रता में प्रकट होता है।
ध्यान रहे, आकार को देखना हो, तो आपके भीतर अहंकार जरूरी है। निराकार
को देखना हो, तो आपके भीतर अहंकार बाधा है। क्योंकि अहंकार आकार देता रहेगा। अहंकार बड़ी छोटी-सी चीज है, लेकिन बड़े-बड़े आकार उससे पैदा होते हैं। ठीक ऐसे जैसे कोई शांत झील में एक पत्थर का छोटा-सा कंकड़ डाल दे। कंकड़ तो बड़ा छोटा-सा होता है, बहुत जल्दी जाकर जमीन में बैठ जाता है। लेकिन कंकड़ से जो लहरें पैदा होती हैं, वे विराट होती चली जाती हैं, फैलती चली जाती हैं।
अहंकार तो बहुत छोटी-सी चीज है, लेकिन वह बड़े-बड़े आकार पैदा करता है, निराकार कभी नहीं। बड़े से बड़ा आकार पैदा कर सकता है, निराकार कभी नहीं। निराकार तो तब पैदा होगा, जब कंकड़ ही न हो, लहर ही न उठे, तब निराकार की निस्तरंग स्थिति होगी।
अहंकार खो जाए! या तो अहंकार इतना मजबूत होता चला जाए कि अपने आप अपनी
ही ताकत से टूट जाए, जैसा पुरुष के जीवन में घटित होता है। जैसा महावीर के जीवन में घटित होता है। अहंकार सख्त, सख्त और मजबूत होता चला जाता है। छोटा होता चला जाता है--छोटा, छोटा, छोटा--एटामिक, अणु जैसा हो जाता है, परमाणु जैसा हो जाता है। और फिर आखिर इतना छोटा हो जाता है कि उसके आगे जाने का कोई उपाय नहीं रहता। इतना कंडेंस्ड कि अब आखिरी कोई गति नहीं रहती। टूटकर बिखर जाता है, एक्सप्लोजन हो जाता है।
स्त्री का अहंकार बड़ा होता चला जाता है; इतना बड़ा कि परमात्मा से एक
हो जाता है। अगर मीरा से कृष्ण की बातें सुनी हैं, तो ख्याल में आएगा। इधर पैर पर सिर भी रखती है, उधर कृष्ण से नाराज भी हो जाती है। डांट-डपट भी कर देती है। इधर सिर रख देती है पैर पर, उधर कृष्ण पर नाराज भी हो जाती है! उधर कृष्ण से कभी रूठ भी जाती है। बड़ा होता जाता है। इतना बड़ा, इतना बड़ा कि परमात्मा से रूठने की सामर्थ्य भी आ जाती है। और जब इतना बड़ा हो जाता है कि परमात्मा के बराबर हो जाए, तो खो जाता है।
दो खोने के ढंग हैं। या तो मैं इतना बड़ा हो जाए कि परमात्मा जैसा। और
या मैं इतना छोटा हो जाए, जितना हो सकता है। दोनों स्थितियों में छूट जाएगा, विदा हो जाएगा।
कृष्ण कहते हैं, ऐसी स्थिति को उपलब्ध व्यक्ति के लिए मैं साकार जैसा, दृश्य हो जाता हूं, निराकार होते हुए। और दूसरी बात तो और भी अदभुत कहते हैं कि और ऐसा व्यक्ति मुझे दृश्य हो जाता है।
यह दूसरी बात का क्या राज है?
परमात्मा को तो हम सब दृश्य होने ही चाहिए, चाहे हम कैसे भी हों। चाहे
हम कैसे भी हों--बुरे हों, भले हों, अज्ञानी हों, पापी हों--कैसे भी हों; बाकी उसकी आंख में तो हम दिखाई पड़ने ही चाहिए। उसकी आंख में हम दिखाई नहीं पड़ते! कृष्ण का यह वक्तव्य बहुत अदभुत है। शायद दुनिया के किसी शास्त्र में ऐसा वक्तव्य नहीं है।

सभी शास्त्र ऐसा कहते हैं कि वह तो हमें देख ही रहा है। सब तरफ से देख रहा है। सब जगह से देख रहा है। ऐसी कोई जगह नहीं है, जहां वह हमें न देख रहा हो; उसकी आंख हम पर न लगी हो।
कृष्ण का यह वक्तव्य तो बहुत भिन्न है। भिन्न ही नहीं, बहुत डायमेट्रिकली अपोजिट है। इस वक्तव्य का दूसरा मतलब यह हुआ कि जब तक हम इस स्थिति में नहीं हैं, तब तक परमात्मा हमें नहीं देख रहा है? हम उसके लिए न होने के बराबर हैं? अदृश्य हैं? हम उसी दिन दृश्य होंगे, जिस दिन वह हमारे लिए दृश्य हो जाएगा? इसका क्या मतलब हो सकता है?
इसके दो-तीन मतलब ख्याल में ले लेने जैसे हैं, गहरे हैं, सूक्ष्म। और
यह वक्तव्य बहुत कीमती है।
पहला मतलब तो यह है कि परमात्मा ही नहीं, कहीं भी, हम सिर्फ वही देख पाते हैं जो हम हैं। परमात्मा भी वही देख पाता है, जो वह है। जब तक हम परमात्मा जैसे नहीं हो जाते, हम उसे दिखाई नहीं पड़ सकते।
हम उसे दिखाई नहीं पड़ सकते, क्योंकि वह इतना शुद्धतम, और हम अभी इतने अशुद्ध कि उस शुद्धि में हमारी अशुद्धि का कोई प्रतिफलन नहीं हो सकता। उस शुद्धतम में हमारी अशुद्धि का कोई प्रतिफलन नहीं हो सकता। वह अशुद्धि हमसे कटे, हटे, तो ही हम शुद्ध होकर उसमें प्रतिफलित हो सकते हैं।
इसमें कसूर परमात्मा का नहीं है, इसमें हमारी अशुद्धि बाधा है। वह इतना विराट, इतना निराकार, इतना असीम! और हम इतने आकार से भरे हुए कि उस निराकार की आंख में हमारा आकार पकड़ में नहीं आ सकता।
ध्यान रहे, जिस तरह आकार वाली आंख में निराकार पकड़ में नहीं आ सकता, उसी तरह निराकार की आंख में आकार पकड़ में नहीं आ सकता। आकार इतनी क्षुद्र घटना है कि उस निराकार की आंख में कैसे पकड़ में आएगा? असल में निराकार और आकार का कोई संबंध नहीं बन सकता। असंभव है। निराकार आकार से मिलेगा कैसे! इसे थोड़ा ऐसा समझें कि अगर निराकार आकार से मिल सके, तो निराकार भी आकार वाला हो जाएगा। क्योंकि निराकार अगर आकार से मिले, तो उसका अर्थ है कि आकार तो निराकार के बाहर होगा, समथिंग आउट साइड। और अगर निराकार के बाहर कोई चीज है, तो जो चीज बाहर है, वह निराकार का आकार बना देगी।
सब आकार दूसरे से बनते हैं। आपके घर की जो बाउंड्री है, वह आपके घर से नहीं बनती, आपके पड़ोसी के घर से बनती है। अगर इस पृथ्वी पर आपका ही अकेला घर हो, तो आपके घर की कोई बाउंड्री न होगी।
सब सीमाएं दूसरे से बनती हैं। इसलिए जो असीम है, उसके लिए दूसरा तो हो
ही नहीं सकता, क्योंकि वह सीमित हो जाएगा।
हम तो उसी दिन उसके लिए हो सकते हैं, जिस दिन हम भी असीम हों। असीम का असीम से मिलन हो सकता है; असीम का सीमित से मिलन नहीं हो सकता। सीमित का सीमित से मिलन हो सकता है। असीम का असीम से मिलन हो सकता है। सीमित का असीमित से मिलन नहीं हो सकता। असीमित का सीमित से भी मिलन नहीं हो सकता। यह असंभव है। इसका कोई उपाय नहीं है।
इसलिए कृष्ण ठीक कहते हैं। वे कहते हैं, हम उन्हें तब तक दिखाई नहीं पड़ेंगे, उनकी दृष्टि में नहीं पड़ेंगे, जब तक कि हम ऐसे न हो जाएं कि या तो हमें एक में सब दिखाई पड़ने लगे, और या सब में एक दिखाई पड़ने लगे।
उसी क्षण हम परमात्मा के साक्षात्कार में हो जाएंगे। साक्षात्कार में कहना ठीक नहीं, भाषा की गलती है। हम परमात्मा के साथ एकात्म हो जाएंगे, एकाकार हो जाएंगे। उस क्षण हम भी निराकार होंगे। या ऐसा कहें कि उस क्षण हम भी परमात्मा होंगे।
परमात्मा ही परमात्मा से मिल सकता है, उससे नीचे मिलने का उपाय नहीं है। मिलना हमेशा समान का होता है। असमान का कोई मिलना नहीं होता। सम्राट से मिलना हो, तो सम्राट हो जाना जरूरी है; चपरासी होकर मिलना बहुत कठिन है। परमात्मा से मिलना हो, तो परमात्मा हो जाना जरूरी है। वही योग्यता है मिलने की, अन्यथा कोई योग्यता नहीं है।
इसी चेहरे को, इसी स्थिति को लेकर परमात्मा के सामने हम न जा सकेंगे।
आग से किसी को मिलना हो, तो जलना सीखना चाहिए; बस, मिल जाएगा। जल जाए, तो आग से एक हो जाएगा। लेकिन कोई सोचता हो कि बिना जले आग से मुलाकात हो जाए, तो न होगी; मुलाकात ही न होगी। मुलाकात ही तब होगी, जब जलने की तैयारी हो।

जब कोई परमात्मा के साथ खोने को राजी है, मिटने को राजी है, एकाकार होने को राजी है... । और एकाकार होने को वही राजी होता है, जिसको अपने निराकार का बोध हो जाता है। नहीं तो आप अपने आकार को बचाते फिरते हैं कि कहीं नष्ट न हो जाए। क्योंकि मैं आकार हूं, अगर आकार मिट गया, तो मैं मिट गया। जिस दिन आप जानते हैं, मैं निराकार हूं, उस दिन इस शरीर को आप कपड़े की तरह उतारकर रख देने को राजी हो सकते हैं। उस दिन इन इंद्रियों को आप चश्मे की तरह उतारकर रख देने को राजी हो सकते हैं। उस दिन आप निराकार हैं। फिर निराकार और निराकार के बीच कोई व्यवधान नहीं है। कोई व्यवधान नहीं है। दोनों के बीच फिर कोई सीमा नहीं है। दोनों एक हो गए हैं।
जैसे कोई बूंद कहे कि मैं बूंद रहकर सागर से मिल जाऊं, तो न मिल सकेगी। सागर भी चाहे--बूंद तो समझ लें कि असमर्थ है बेचारी, कमजोर है--अगर सागर भी चाहे कि मैं बूंद को बूंद रहने दूं और मिल जाऊं, तो सागर भी न मिल सकेगा।
अगर बूंद को सागर से मिलना है, तो सागर में खो जाना पड़ेगा। और अगर सागर को बूंद में अपने को मिलाना है, तो बूंद को खो देने के सिवाय कोई रास्ता नहीं है।
हम परमात्मा के लिए तभी दृश्य होते हैं, जब परमात्मा हमारे लिए दृश्य
हो जाता है। जब तक परमात्मा हमारे लिए अदृश्य है, हम भी उसके लिए अदृश्य हैं। जब तक परमात्मा हमें ऐसा है, जैसे नहीं है, तब तक हम भी परमात्मा के लिए ऐसे हैं, जैसे नहीं हैं।
एक कैथोलिक नन के जीवन को मैं पढ़ता था। एक कैथोलिक संन्यासिनी का जीवन मैं पढ़ता था। कैथोलिक मान्यता है कि परमात्मा हर वक्त देख रहा है सब जगह। आश्रम में थी वह संन्यासिनी। वह अपने बाथरूम में भी कपड़े पहनकर ही स्नान करती थी! जब लोगों को पता चला, मित्रों को, साथी-संगिनियों को पता चला, तो उन्होंने कहा कि तू पागल तो नहीं है! बाथरूम बंद करके, कपड़े उतारकर स्नान कर सकती है! कपड़े पहनकर स्नान करने की क्या जरूरत है? वहां तो कोई भी देखने वाला नहीं है। उस स्त्री ने कहा--गणित उसका साफ था--उसने कहा कि मैंने पढ़ा है किताब में कि परमात्मा सब जगह देखता है।
मगर उसकी नासमझी भी गहरी है, क्योंकि जो बाथरूम में घुसकर देख लेगा,
वह कपड़े के भीतर घुसकर नहीं देख लेगा! इससे अच्छा तो यह होता कि वह सड़क पर नग्न खड़ी हो जाती; क्योंकि जब वह सभी जगह देख ही रहा है! कपड़े के पार भी उसकी आंख चली ही जाती होगी, जब ईंट-पत्थर के पार चली जाती है। और हड्डी के पार भी चली जाती होगी!
सभी जगह वह देख रहा है, फिर भी हम उसकी पकड़ में आने वाले नहीं हैं। उसकी आंख बहुत बड़ी है और हम बहुत छोटे हैं। वह बहुत निराकार है, हम बहुत साकार हैं। वह बिल्कुल निर्गुण है, हम बिल्कुल सगुण हैं। वह बिल्कुल शून्यवत है और हम अहंकार हैं। इसलिए पकड़ में हम न आएंगे। हम गुजरते रहेंगे आर-पार उसके। उसके ही आर-पार गुजरते रहेंगे--उसमें ही जीएंगे, उसमें ही जगेंगे, उसमें ही सोएंगे, उसमें ही पैदा होंगे, उसमें ही मरेंगे--और फिर भी वह हमें नहीं देख पाएगा।
अभी हमारी पात्रता भी नहीं कि वह हमें देखे। हमारी पात्रता की घोषणा उसी क्षण होती है, जिस क्षण हम उसे देख लेते हैं।
कृष्ण का यह सूत्र कीमती है, समझने जैसा है।

प्रश्नः ओशो, इस श्लोक में कृष्ण कहते हैं, मुझ वासुदेव को देखता है।
यह वासुदेव शब्द का उपयोग यहां किस अर्थ में है?

जब कृष्ण कहते हैं, मुझ वासुदेव को देखता है, मुझ कृष्ण को देखता है, मुझे देखता है, तो कृष्ण जब अपने लिए वासुदेव या मैं या कृष्ण, मामेकं--इस तरह के शब्दों का प्रयोग करते हैं, तब ध्यान रखना कि इन सब शब्दों का प्रयोग अर्जुन के निमित्त है। इन सब शब्दों का प्रयोग अर्जुन के निमित्त है।
अर्जुन समझ ही नहीं पाएगा, अगर कृष्ण कहें कि मुझ निराकार को देखता है। या कहें कि मुझ में शून्य को देखता है। या कहें कि उसे देखता है, जो मेरे भीतर है ही नहीं!

अगर कृष्ण निगेटिव शब्दों का उपयोग करें, जो कि ज्यादा सही होंगे, तो अर्जुन बिल्कुल समझ न पाएगा। बात ठीक होगी, लेकिन अर्जुन की समझ के बाहर पड़ जाएगी।
अर्जुन तो कृष्ण को ही समझता है, वासुदेव को समझता है, अर्जुन तो अभी कृष्ण के रूप को समझता है, आकार को समझता है। अभी तो आकार की भाषा में ही अर्जुन से बात की जा सकती है। नहीं तो डायलाग, संवाद नहीं होगा।
हां, जब कृष्ण धीरे-धीरे तैयार कर लेंगे अर्जुन को, तो अपना निराकार रूप भी दिखा देंगे। तब वे वासुदेव नहीं रह जाएंगे, तब वे परात्पर ब्रह्म हो जाएंगे। तब वे कृष्ण नहीं रह जाएंगे, स्वयं जगत की सत्ता हो जाएंगे। तब वे अपने सब आकारों को उतारकर नीचे रख देंगे और विराट को खुला छोड़ देंगे। लेकिन तब भी अर्जुन कहां पूरा तैयार हो पाया था? कैसा घबड़ा गया! और कहा कि बंद करो यह रूप। बंद करो। घबड़ाते हैं प्राण। घबड़ाएगा ही।
कृष्ण को तो अर्जुन के पास आना है, तो सागर की भाषा नहीं बोलनी पड़ेगी, बूंद की ही भाषा बोलनी पड़ेगी। नहीं तो अर्जुन तो समझेगा ही नहीं। और अगर प्रयोजन यही है कि अर्जुन समझे, तो अर्जुन की ही भाषा का उपयोग करना उचित है।
ध्यान रहे, इस पृथ्वी पर जो शिक्षक अपनी भाषा का उपयोग करते हैं, वे किसी के काम नहीं पड़ते। जो शिक्षक आपकी भाषा का उपयोग करते हैं, वे ही काम पड़ते हैं। मगर दुर्भाग्य ऐसा है कि जो शिक्षक अपनी भाषा का उपयोग करते हैं, वे आपको खूब जंचते हैं। और जो शिक्षक आपकी भाषा का उपयोग करते हैं, वे आपको बहुत जंचते नहीं। क्योंकि आपकी भाषा का उपयोग करने के साथ ही गलतियां शुरू हो जाती हैं। आपमें गलतियां हैं, आपकी भाषा में गलतियां हैं।
हां, अगर शिक्षक अपनी ही भाषा का उपयोग करे, तो गलतियां कभी न होंगी; लेकिन बात इतनी सही होगी कि आपकी बुद्धि में न पड़ेगी। आपकी बुद्धि में पड़ने के लिए बात को थोड़ा गैर-सही होना जरूरी है।
कृष्ण जो कह रहे हैं, उसमें गलती है। गलती अर्जुन के कारण है, कृष्ण उसके लिए दोषी नहीं हैं। हां, कृष्ण की करुणा भर दोषी हो सकती है। क्योंकि वह अर्जुन को चाहते हैं, वह समझ ले। इसलिए उसकी भाषा का उपयोग कर रहे हैं। आप एक छोटे बच्चे को सिखाते हैं। सिखाते हैं, ग गणेश का; या अभी सिखाते हैं, ग गधे का! सेकुलर, धर्म-निरपेक्ष राज्य होने की वजह से गणेश का ग तो कह नहीं सकते, तो ग गधे का! गणेश को लाने में सेकुलर बुद्धि को ज्यादा तकलीफ होती है; गधा आ जाए, तो ज्यादा तकलीफ नहीं होती! धर्म-निरपेक्ष राज्य है, कोई गधा एम.पी. होना चाहे, अक्सर होना चाहते हैं; हो जाते हैं। गणेश होना चाहें, दरवाजा बंद कर देंगे वे कि धर्म-निरपेक्ष! तुम यहां कहां आ रहे हो! देवी-देवताओं की यहां कोई जरूरत नहीं, यहां सिर्फ गधों के लिए द्वार खुला है!
तो बच्चे को सिखाना पड़ता है, ग गणेश का, या ग गधे का। ग का गधे से या गणेश से कोई लेना-देना है? ग तो गंवार का भी होता है। ग तो अनेकों का होता है। ग का गधे से या गणेश से क्या ठेका? लेकिन बच्चे को कहीं से तो शुरू करना पड़ेगा। वन हैज टु बिगिन समव्हेयर।
अगर हम कहें कि ग सब का, तो बच्चे की कुछ समझ में न आएगा। बच्चे को तो कहीं से शुरू करना पड़ेगा। फिर धीरे-धीरे हम कहेंगे, ग गणेश का भी और ग गधे का भी और ग गंवार का भी। और तब बच्चे को धीरे-धीरे समझ में आएगा कि ग का किसी से कोई लेना-देना नहीं। ग सबका हो सकता है। फिर वह गधे को भी भूल जाएगा, गणेश को भी भूल जाएगा। ग रह जाएगा।
ठीक वैसे ही कृष्ण को भी बच्चे के साथ बात करनी पड़ रही है। इस पृथ्वी
पर बुद्ध को, महावीर को, या कृष्ण को, या क्राइस्ट को, या मोहम्मद को बच्चों के साथ बात करनी पड़ रही है। उम्र से भला बूढ़े हों; ज्ञान से तो बच्चे ही हैं, जिनसे बात करनी पड़ रही है।
और बच्चों के साथ बात करनी इतनी कठिन नहीं होती, क्योंकि बच्चों को ख्याल होता है कि वे बच्चे हैं। बूढ़ों के साथ और कठिनाई हो जाती है, क्योंकि वे समझते हैं, वे बूढ़े हैं। होते बच्चे ही हैं।

इसलिए दुनिया के सारे शास्त्र बच्चों के लिए हैं। जो जानने की यात्रा
पर थोड़ा आगे जाएगा, जैसा ग गधे से छूट जाता है, ऐसे ही बुद्धि शास्त्र से छूट जाती है। सब शास्त्र क ख ग हैं। उनमें सिर्फ यात्रा का प्रारंभ है, अंत नहीं है। हां, अंत की झलक देने की जगह-जगह कोशिश होती है कि शायद थोड़ी-सी झलक ख्याल में आ जाए, तो आदमी यात्रा पर निकल जाए।
तो कृष्ण जो कह रहे हैं, मुझ वासुदेव को। अर्जुन यही समझ सकता है। अगर कृष्ण कहें कि मुझ परात्पर ब्रह्म को, तो अर्जुन कहेगा, महाराज, आप मेरे सारथी। परात्पर ब्रह्म!
एक-एक इंच उसको सरकाना पड़ेगा। एक-एक इंच। एक-एक इंच कृष्ण अपने को प्रकट करेंगे--वाणी से, व्यक्तित्व से, जीवन से। एक-एक इंच प्रकट करेंगे और उस जगह लाएंगे, जहां अर्जुन के सामने वे भगवान की तरह प्रकट हो सकें। वही उनका होना सत्य होना है। कृष्ण होना तो सिर्फ शब्द है। भगवान होना ही उनका सत्य होना है। आपका भी नाम तो केवल शब्द है। आपका भी भगवान होना ही सत्य होना है। लेकिन उसका स्मरण दिलाने के लिए प्रक्रिया से गुजरना पड़ेगा। इसलिए कृष्ण कह रहे हैं, मुझ वासुदेव को।
अर्जुन इसको समझ पाएगा कि ठीक है। और अर्जुन इसको इसलिए भी समझ पाएगा
कि इन वासुदेव से उसका बड़ा प्रेम है; परात्पर ब्रह्म से कोई प्रेम भी नहीं है। सुखद होगा उसे कि मैं तुम्हें सबमें देख पाऊं। सुख होगा उसे कि मैं तुम्हें सबमें पा पाऊं। सुख होगा उसे कि तुम भी मुझे देख पाओगे; तुम वासुदेव कृष्ण, तुम मुझे देख पाओगे, मैं तुम्हें देख पाऊंगा! यह उसकी समझ में पड़ेगी बात।
लेकिन यह सिर्फ प्रलोभन है। यह सिर्फ शिक्षक के द्वारा दिया गया प्रलोभन है। इस प्रलोभन के आसरे उसको कृष्ण इंच-इंच सरकाएंगे।
कभी-कभी कोई शिक्षक ऊबकर, परेशान होकर इस तरह की प्रक्रिया छोड़ देता है। कभी-कभी कोई शिक्षक ऐसी प्रक्रिया छोड़ देता है। जैसे कि नागार्जुन एक बौद्ध शिक्षक हुआ, अदभुत। ठीक उतना ही जानने वाला, उतनी ही गहराई में, जैसे कृष्ण। लेकिन वह यह प्रक्रिया उपयोग न करेगा। वह शिक्षक की भाषा बोलेगा। वह विद्यार्थी की भाषा बोलेगा ही नहीं। तो एक आदमी के काम नहीं पड़ सका। जैसे कृष्णमूर्ति। वे शिक्षक की भाषा बोल रहे हैं, विद्यार्थियों की नहीं। और आध्यात्मिक शिक्षकों का कोई टीचर्स ट्रेनिंग कालेज तो है नहीं कि जहां आध्यात्मिक शिक्षकों के सामने भाषण किया जा सके। कोई कबीर और नानक तो सुनने आते नहीं। अगर कबीर सुनने आते हों कृष्णमूर्ति को, तो ठीक है! लेकिन वे समझकर चल रहे हैं कि कबीर सुनने आते हैं! और क ख ग सुन रहे हैं! उनकी पकड़ में कुछ नहीं आ रहा! लेकिन फिर भी सुनते-सुनते भ्रम पैदा हो जाएगा कि पकड़ में आ गया, फिर मौत हुई।
नहीं; विद्यार्थी की भाषा बोलनी पड़ेगी। शिक्षाशास्त्र कहता है कि ठीक शिक्षक वही है, जिसकी क्लास के विद्यार्थी, जो अंतिम वर्ग है विद्यार्थी का या जो अंतिम विद्यार्थी है, जो उसे समझ पाए, अंतिम विद्यार्थी जिस शिक्षक को समझ पाए, वही योग्य शिक्षक है। अगर आप सिर्फ प्रथम विद्यार्थी के लिए बोल रहे हैं, तो बाकी उनतीस को छुट्टी कर दें!
मगर यहां तो कुछ शिक्षक ऐसे भी हो जाते हैं पृथ्वी पर, जो सिर्फ अपने लिए बोल रहे हैं, मोनोलाग। डायलाग नहीं है। कृष्णमूर्ति जो बोल रहे हैं, वह मोनोलाग है, एकालाप। दूसरे से बात नहीं चल रही है; उसमें दूसरे का कोई सवाल ही नहीं है। आप न हों, तो भी चलेगा।
मेरे एक शिक्षक थे, मेरे एक प्रोफेसर थे, बहुत अदभुत आदमी थे। जब मैं उनके पास दर्शनशास्त्र पढ़ने गया विद्यार्थी की हैसियत से, तो मैं उनका अकेला विद्यार्थी था, क्योंकि उनके पास विद्यार्थी टिकते नहीं थे। कई साल से उनके पास कोई विद्यार्थी नहीं टिकता था। कोई पांच-सात साल से वे खाली थे। टिकते इसलिए भी नहीं थे कि उनका विद्यार्थी कभी एम.ए. पास नहीं हुआ। जो भी उनके पास आया, फेल होकर गया। फिर आना लोगों ने बंद कर दिया। उनका विषय ही कोई नहीं लेता था। कौन झंझट में पड़े! उसमें फेल होना पक्का ही था।
उनसे कई बार पूछा गया कि आप सभी को फेल कर देते हैं? वे बोले कि मैं दो में से एक ही कर सकता हूं। अगर ईमानदारी से जांचूं, तो वे फेल होते हैं। और

अगर बेईमानी से जांचूं, तो पास हो सकते हैं। लेकिन बेईमानी से मैं जांच नहीं सकता। फेल होंगे।
छः-सात साल से कोई नहीं गया था। मुझे भी मित्रों ने समझाया कि वहां मत जाओ। पर मैंने कहा कि उस आदमी में कुछ खूबी तो होनी ही चाहिए, जो कहता है, ईमानदारी से जांचेंगे, तो ही पास करेंगे। तो, ऐसे आदमी के पास पास होने का कोई मतलब है। मैं जाता हूं। ऐसे आदमी के पास फेल होने का भी कुछ मतलब है। उन्होंने मुझे आते ही से समझाया कि दो-तीन बातें साफ समझ लो। क्योंकि तुम अकेले हो, पांच-सात साल बाद आए हो, और मेरी आदत डायलाग की नहीं है, मेरी आदत मोनोलाग की है। क्या मतलब आपका? उन्होंने कहा, मैं बोलूंगा, तुम से नहीं। मैं बोलूंगा, तुम सुनना, यह दूसरी बात है। तुम्हारा मैं ध्यान नहीं रखूंगा, नहीं तो मेरे बोलने में गड़बड़ होती है। मुझे जो बोलना है, वह मैं बोलूंगा; तुम सुन लोगे, यह दूसरी बात। एक्सिडेंटल है यह कि तुमने सुन लिया, सांयोगिक है। मैं तुम्हारे लिए नहीं बोल सकता हूं, क्योंकि तुम्हारे लिए बोलूंगा, तो मुझे कुछ गलत, नीचे तल पर उतरकर बोलना पड़ेगा।
मैंने कहा कि मैं भी आपसे कह दूं कि आप भूलकर मत समझना कि मैं यहां मौजूद हूं। और अगर बीच-बीच में मैं उठकर चला जाऊं, तो आप बोलना बंद मत करना। आप जारी रखना बोलना। मैं फिर लौट आऊंगा। मेरी मौजूदगी आप मानना ही मत। और रजिस्टर आप बंद कर दो; मेरी अटेंडेंस नहीं भरी जाएगी। जब आप कहते हैं कि मैं तुम्हारे बिना बोलूंगा, तो मुझे भी सुनाई पड़ जाएगा, तो एक्सिडेंट है। मैं भी आता-जाता रहूंगा। मैं भी कोई सुनने के लिए उत्सुक नहीं हूं!
बहुत चौंके। कहने लगे, तुम आदमी कैसे हो? मैंने कहा कि आदमी ऐसा न होता, तो मैं आपके पास आता नहीं। छः साल से कोई आया नहीं! फिर यह एकालाप चला दो साल तक। कभी-कभी मैं दस-दस, पंद्रह-पंद्रह मिनट के लिए बाहर चला जाता। लौटकर आता। मगर उन्होंने निभाया। वे पंद्रह मिनट बोलते रहते थे खाली कमरे में! पर ऐसे शिक्षक बहुत कम विद्यार्थियों के काम पड़ सकते हैं, नहीं के बराबर।
अगर शिक्षक अपने आनंद में बोले, तो ऐसा ही हो जाएगा। वह आपको भूल जाएगा। आपको याद रखे, तो नीचे उतरना ही पड़ेगा। और आपको याद न रखे, तो बोलना व्यर्थ हो जाता है; बोलने का कोई मतलब नहीं रह जाता। फिर चुप ही हो जाना बेहतर है।
इसलिए बहुत-से शिक्षक इस पृथ्वी पर चुप भी रहे। और कोई कारण नहीं था। कुल कारण इतना ही था कि वे बोलते, तो एकालाप होता। और अगर संवाद करना चाहते, तो उनको कहीं उस जगह से बात शुरू करनी पड़ती, जहां वे जानते थे, बात बेकार है।
लेकिन कृष्ण बहुत करुणावान हैं। वे अर्जुन की तरफ देखकर ही बोल रहे हैं। एक-एक शब्द उनका एड्रेस्ड है, वह डायलाग है। गीता एक महानतम संवाद है, जिसमें शिक्षक विद्यार्थी को पूरे समय स्मरण रखे हुए है। इसलिए वह पूरी दफे उतार-चढ़ाव लेते हैं। जब वे अर्जुन को देखते हैं कि नहीं, यह समझ में नहीं आएगा, और नीचे उतर आते हैं। जब वे समझते हैं कि अर्जुन की समझ थोड़ी चमक रही है, तब वे तत्काल ऊपर चले जाते हैं।
कृष्ण की गीता में बहुत उतार-चढ़ाव है। कृष्ण की गीता सपाट नहीं है। उसमें कई बार वह अर्जुन के बहुत निकट उन्हें आना पड़ता है। बहुत छोटी बात कहनी पड़ती है, जो कि उन्हें नहीं कहनी चाहिए थी, जो कि उन्होंने नहीं कहनी चाही होगी। लेकिन अर्जुन पर यह भरोसा रखकर कि इस तरह धीरे-धीरे उसे आगे ले जाकर कहीं वह चीज प्रकट कर देंगे, जो कहनी है। और जब एक दफा वह उस चीज को समझ लेगा, तो वह यह भी जान जाएगा कि पहले जो बातें कही थीं, वे मुझे ध्यान में रखकर कही थीं; वे कृष्ण की तरफ से नहीं थीं, मेरी तरफ से थीं। अर्जुन निमित्त है। इसलिए वैसी बात कही है।
अभी इतना ही। फिर सांझ हम बैठेंगे।
अभी जाएंगे नहीं। और आज तो रविवार है, इसलिए दस मिनट हम कीर्तन करेंगे। और रविवार है इसलिए मैं आपसे चाहूंगा कि आपमें से भी जो लोग कीर्तन करना चाहें, वे ग्राउंड के चारों तरफ बैठे हुए लोगों के चारों तरफ फैल जाएं। जो लोग बैठकर कीर्तन करते हैं, जिनको आनंद है, वे चारों तरफ खड़े

हो जाएं। बैठे हुए लोग बीच में रह जाएंगे। आपमें से जिन लोगों को कीर्तन में भाग लेना है, वे चारों तरफ फैल जाएं। शर्माएं न! फैल जाएं।

गीता दर्शन, भाग तीन
गीता दर्शन अध्याय 6
पंद्रहवां प्रवचन

सर्व भूतों में प्रभु का स्मरण

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते।। 31।।
इस प्रकार जो पुरुष एकीभाव में स्थित हुआ संपूर्ण भूतों में आत्मरूप
से स्थित मुझ सच्चिदानंदघन वासुदेव को भजता है, वह योगी सब प्रकार से बर्तता हुआ भी मेरे में बर्तता है।

कृष्ण इस सूत्र में अर्जुन को सब भूतों में प्रभु को भजने के संबंध में कुछ कह रहे हैं। भजन का एक अर्थ तो हम जानते हैं, एकांत में बैठकर प्रभु के चरणों में समर्पित गीत; एकांत में बैठकर प्रभु के नाम का स्मरण; या मंदिर में प्रतिमा के समक्ष भावपूर्ण निवेदन। लेकिन कृष्ण एक और ही रूप का, और ज्यादा गहरे रूप का, और ज्यादा व्यापक आयाम का सूचन कर रहे हैं। वे कहते हैं कि जो व्यक्ति समस्त भूतों में मुझ सच्चिदानंद को भजता है! क्या होगा इसका अर्थ?
इसका अर्थ होगा, जब भी कुछ आपको दिखाई पड़े, तब स्मरण करें कि वह परमात्मा है। राह पर पड़ा हुआ पत्थर हो, कि आकाश से गुजरता हुआ बादल हो, कि सुबह उगता हुआ सूरज हो, कि आपके बच्चे की आंखें हों, कि आपका मित्र हो, कि आपका शत्रु हो, जो भी आपको मिले, उसके मिलन के साथ ही जो पहला स्मरण आपके प्राणों में प्रवेश करे, वह यह हो, यह भी प्रभु है। तब सच्चिदानंद रूप को हम समस्त भूतों में भज रहे हैं, ऐसा कहा जा सकेगा।
रास्ते पर वृक्ष मिल जाए, कि गाय मिल जाए, कि नदी बहती हो--जो भी--जो भी आकार मिले कहीं जीवन में, उन समस्त आकारों में उस निराकार का स्मरण। इसके पहले कि हमें पता चले कि पत्थर है, पता चल जाए कि परमात्मा है। तो भजन हुआ, कृष्ण के अर्थों में।
इसके पहले कि मैं आपको देखूं और समझूं कि आप आदमी हैं, उसके पहले मुझे पता चल जाए कि आप परमात्मा हैं। आदमी का होना पीछे प्रकट हो। निराकार की स्मृति पहले आ जाए, आकार पीछे निर्मित हो। मैं पीछे पहचानूं कि आप कौन हैं; पहले तो यही पहचानूं कि परमात्मा है। तो समस्त भूतों में प्रभु को भजा गया, ऐसा कहा जा सके।
एकांत में भजन बहुत आसान है, क्योंकि आप अकेले हैं। प्रतिमा के सामने
भी भजन बहुत आसान है, क्योंकि बहुत ठीक से समझें, तो फिर भी आप अकेले हैं। लेकिन जीवन के सतत प्रवाह में, जहां न मालूम कितने रूपों में लोग मिलेंगे; जहां कोई छुरा लिए हुए छाती पर खड़ा हो सकता है, वहां भी पहले स्मरण आ जाए कि प्रभु छुरा लिए हुए खड़ा है, तो फिर प्रभु का भजन हुआ।
जीवन में जहां घना संघर्ष है, जहां तनाव है, अशांति है, जहां शत्रुता
भी फलित होती है, वहां पहला स्मरण यही आए कि प्रभु है। पीछे पहचानें रूप को, पहले अरूप की पहचान हो जाए। ऐसे अरूप को प्रतिपल देखने की जो साधना है, उसका नाम कृष्ण इस सूत्र में कह रहे हैं, प्रभु को भजना।
जीवंत साधना तो ऐसी ही होगी। जीवंत साधना कोनों में बंद होकर नहीं होती, जीवन के विराट घनेपन में होती है। जीवंत साधना द्वार बंद करके नहीं होती, जीवंत साधना तो मुक्त आकाश के नीचे होती है। द्वार तो हम इसीलिए बंद करते हैं कि बाहर जो है, वह परमात्मा नहीं है; वह कहीं भीतर न आ जाए! मंदिर में तो हम इसीलिए जाते हैं कि मकान में परमात्मा को देखना कठिन पड़ेगा। लेकिन वह साधना संकुचित है, बहुत सीमित है; उसके भी प्रयोजन और अर्थ हैं। लेकिन कृष्ण इस सूत्र में जिस विराट साधना की खबर दे रहे हैं, वह बहुत और है।
सुना है मैंने, एक आदमी था महाराष्ट्र में। घोर नास्तिक था। साधु- संतों के पास जाता, तो साधु-संत बड़ी मुश्किल में पड़ जाते। क्योंकि यह

दुर्भाग्य की घटना है कि नास्तिक भी हमारे तथाकथित साधु-संतों से ज्यादा समझदार होते हैं।
साधु-संत मुश्किल में पड़ जाते। उस नास्तिक को जवाब देते उनसे न बन पड़ता। वह जो भी पूछता, उन साधु-संतों को बेचैन कर जाता। साधु-संत होना चाहिए ऐसा कि जिसे कोई बेचैन न कर जाए; बल्कि बेचैनी से भरा कोई पास आए, तो चैन लेकर जा सके। लेकिन वह नास्तिक बहुत-से साधु-संतों के लिए तकलीफ और परेशानी का कारण बन गया था। बड़े-बड़े साधुओं के पास जाकर भी उसने पाया कि उसके प्रश्नों का उत्तर नहीं है।
तब एक साधु ने उससे कहा कि तू इधर-उधर मत भटक। तेरे लायक सिर्फ एक ही आदमी है, एकनाथ नाम का। तू उसके पास चला जा। अगर उससे उत्तर मिल जाए, तो ठीक। नहीं तो फिर परमात्मा से ही उत्तर लेना। फिर बीच में दूसरा आदमी काम नहीं पड़ेगा। उस आदमी ने कहा, लेकिन परमात्मा तो है ही नहीं! तो उस साधु ने कहा, फिर एकनाथ आखिरी आदमी है। उत्तर मिल जाए, ठीक; न मिले, तो तू जान। बहुत आशा से भरा हुआ वह नास्तिक एकनाथ के पास पहुंचा। सुबह थी। कोई सुबह के आठ, साढ़े आठ, नौ बज रहे थे। धूप घनी थी, सूरज ऊपर निकल आया था। गांव में पूछता हुआ गया, तो लोगों ने कहा कि एकनाथ के बाबत पूछते हो! नदी के किनारे मंदिरों में देखना, अभी कहीं सोता होगा! उसके मन में थोड़ी-सी चिंता हुई। साधु तो ब्रह्ममुहूर्त में उठ आते हैं। नौ बज रहे हैं; कहीं सोता होगा!
गया जब मंदिर में, तो देखकर और मुश्किल में पड़ गया। क्योंकि एकनाथ शंकर के मंदिर में सोए हैं, पैर दोनों शंकर की पिंडी से टिके हैं; आराम कर रहे हैं! सोचा कि नास्तिक हूं मैं, अगर इतना महानास्तिक मैं भी नहीं हूं। शंकर को पैर लगाते मेरी भी छाती कंप जाएगी। कहीं हो ही अगर! कहता हूं कि नहीं है। लेकिन पक्का भरोसा नहीं है नहीं होने का। कहीं हो ही अगर? और पैर लग जाए, तो कोई झंझट खड़ी हो जाए। किसके पास मुझे भेज दिया! लेकिन जब अब आ ही गया हूं, तो इससे दो बात कर ही लेनी चाहिए। वैसे बेकार है। यह मुझसे भी गया- बीता मालूम पड़ता है!
और जो आदमी शंकर की पिंडी पर पैर रखकर सो रहा है, उसको उठाने की हिम्मत
न हो सकी। पता नहीं नाराज हो, क्या करे! ऐसे आदमी का भरोसा नहीं। बैठकर प्रतीक्षा की। कोई दस बजे एकनाथ उठे।
उस आदमी ने कहा कि महाराज, आया था पूछने कुछ ज्ञान; अब तो कोई जरूरत न रही पूछने की। क्योंकि आप मुझसे भी आगे गए हुए मालूम पड़ते हैं! पूछने कुछ और आया था, अभी पहले तो मैं यह पूछना चाहता हूं, यह कोई उठने का समय है? साधु-संत ब्रह्ममुहूर्त में उठते हैं!
एकनाथ ने कहा कि ब्रह्ममुहूर्त ही है। असल में जब साधु-संत उठते हैं, तभी ब्रह्ममुहूर्त! न हम अपनी तरफ से सोते हैं, न अपनी तरफ से उठते हैं। जब वह सो जाता है, सो जाता है; जब वह उठता है, तब उठ जाता है। तो हमने तो एक ही जाना कि जब नींद खुल गई ब्रह्म की, तो ब्रह्ममुहूर्त है! हम अपनी तरफ से सोते भी नहीं, अपनी तरफ से जागते भी नहीं। ब्रह्म को जब सोना है, सो जाता है; ब्रह्म को जब जगना है, जग जाता है। यह ब्रह्ममुहूर्त है, क्योंकि ब्रह्म उठ रहे हैं!
उसने कहा, गजब की बात कह रहे हैं आप भी। और मुश्किल में डाल दिया। हम
तो पूछने आए थे, ब्रह्म है या नहीं? अब हम और मुश्किल में पड़ गए! क्योंकि आप तो कह रहे हैं, आप ही ब्रह्म हैं! एकनाथ ने कहा कि यह ही नहीं कह रहा हूं कि मैं ही ब्रह्म हूं, यह भी कह रहा हूं कि तू भी ब्रह्म है। फर्क इतना ही है कि तुझे अपने होने का पता नहीं, मुझे अपने होने का पता है।
उसने कहा, छोड़िए इस बात को। यह भी आपसे पूछ लूं कृपा करके कि शंकर की पिंडी पर पैर रखकर सोना कौन-सा तुक है! एकनाथ कहने लगे, मैंने सब जगह पैर रखकर देखा, शंकर को ही पाया। कहीं भी पैर रखूं, फर्क क्या पड़ता है! जहां भी पैर रखूं, वही है। शंकर की पिंडी पर रखूं, तो वही है, अगर ऐसा होता, तो एक बात थी। जहां भी पैर रखूं, वही है। तो फिर मैंने फिक्र छोड़ दी।
उस आदमी ने कहा, तो मैं जाऊं! क्योंकि अभी हम भी इस हालत पर नहीं पहुंचे कि शंकर की पिंडी पर पैर रख सकें! हम तो कुछ ज्ञान लेने आए थे।

आस्तिक होने आए थे। आप महानास्तिक मालूम पड़ते हो। एकनाथ ने कहा, अब इतनी धूप चढ़ गई, जाओगे कहां। भोजन बनाता हूं, भोजन कर लो, फिर जाना।
और एकनाथ गांव में जाकर आटा मांग लाए। फिर उन्होंने बाटियां बनाईं।
और जब वे बाटियां बनाकर रख रहे थे, तो एक कुत्ता आकर एक बाटी लेकर भाग गया।
तो एकनाथ हंडी लेकर घी की उसके पीछे भागे।
उस आदमी ने समझा कि यह दुष्ट, कुत्ते से भी बाटी छुड़ाकर लाएगा। अजीब संन्यासी मिल गया! ले गया कुत्ता एक बाटी, तो ले जाने दो।
यह भी उसके पीछे दौड़ा कि देखें, यह करता क्या है? एक मील दौड़ते-दौड़ते एकनाथ बामुश्किल उस कुत्ते को पकड़ पाए और पकड़कर कहा कि राम, हजार दफे समझाया कि बिना घी की बाटी हमको पसंद नहीं है खानी; तुमको भी नहीं होगी। नाहक एक मील दौड़वाते हो। हम घी लगाकर थोड़ी देर में रखते; फिर उठाकर ले जा सकते थे! छुड़ाकर बाटी, घी की हंडी में डालकर--कुत्ते के मुंह की जूठी बाटी वापस डालकर--घी में पूरा सराबोर करके मुंह में लगा दी और कहा कि आइंदा ख्याल रखना, नहीं तो हड्डी-पसली तोड़ देंगे। न इस राम को पसंद है, न उस राम को पसंद है! जब हम बाटी में घी लगा लें, तभी ले जाया करें। नाहक एक मील दौड़वाया!
उस आदमी ने सोचा कि बड़े मजे का आदमी है! शंकर की पिंडी पर पैर रखकर सोता है, कुत्ते को राम कहता है!
अगर ठीक से समझें, तो यह भजन चल रहा है। ये दोनों ही भजन के रूप हैं। अगर प्रभु सब जगह है, ऐसा स्मरण आ जाए, तो शंकर की पिंडी को अलग कैसे करिएगा! और अगर सब जगह प्रभु है, तो कुत्ते को बिना घी की बाटी कैसे खाने दीजिएगा!
ये दोनों विरोधी बातें नहीं हैं, ये एक ही प्रभु के भजन में लीन चित्त
के दो रूप हैं। और संगतिपूर्ण हैं; इनमें कोई विरोध नहीं है। असल में जो शंकर की पिंडी पर पैर रख सकता है, वही कुत्ते को राम कह सकता है। और जो कुत्ते को राम कह सकता है, वही शंकर की पिंडी पर पैर रख सकता है। यह शंकर की पिंडी पर पैर रखने का साहस, सामर्थ्य, उसी का है, जो कुत्ते के सामने सिर झुका सके। और कुत्ते के सामने सिर झुकाने की, समर्पण की स्थिति उसी में हो सकती है, जो शंकर की पिंडी पर पैर रख सके।
लेकिन हमारी कुछ उलटी स्थिति है। हमें जहां भी कुछ दिखाई पड़ता है, पहले संसार स्मरण आता है, पहले। अगर रास्ते में आप अकेले चले जा रहे हैं, और अंधेरे में एक आदमी निकल आता है, तो आपको पहले भला आदमी नहीं दिखाई पड़ता है। पहले कोई चोर, बदमाश, लुच्चा! आपका स्मरण ऐसा है, आपका भजन ऐसा चल रहा है! और भगवान न करे कि आपके भजन की वजह से वह कहीं आदमी लुच्चा हो जाए। क्योंकि भजन प्रभाव तो करता ही है।
आप जब दूसरे के प्रति एक दृष्टि लेते हैं, तो आप दूसरे को वैसा होने का मौका देते हैं। जब आप दूसरे के प्रति रुख लेते हैं, तो आप दूसरे को वैसा होने का अवसर देते हैं। इस जमीन पर हजारों लोग इसलिए बुरे हैं, क्योंकि उनके आस-पास हर आदमी उन्हें बुरा सोचने का मौका दे रहा है।
आपको ख्याल न होगा कि अगर आपको दस ऐसे आदमियों के बीच में रख दिया जाए,
जो आपको भगवान मानते हों, तो आप चोरी करना बहुत मुश्किल पाएंगे--कि अगर पकड़ा गए भगवान चोरी करते, तो क्या हालत होगी! अगर दस लोग आप पर भगवान जैसा भरोसा भी करते हों, आपको देखकर भगवान जैसा प्रणाम करते हों, तो अचानक आप पाएंगे कि आपकी संभावनाएं रूपांतरित होने लगीं।
एक भी आदमी भरोसा कर ले, तो भी आपके भीतर कुछ नए का जन्म होता है। और एक
भी आदमी अविश्वास कर दे, तो आपके भीतर शैतान की प्रतीति शुरू हो जाती है। जो दूसरे हमसे अपेक्षा करते हैं, हम उसे सिद्ध करने में लग जाते हैं। जाने- अनजाने जो हमें दूसरे सोचते हैं, हम वैसे ही हो जाते हैं।
लेकिन हमें जब भी कोई दिखाई पड़ता है, तो हमें प्रभु का स्मरण नहीं आता, हमें संसार का ही स्मरण आता है। और संसार में भी जो बहुत क्षुद्र है, अंधकारपूर्ण है, अशुभ है, उसका ही स्मरण आता है।
प्रभु का इस अर्थ में भजन गहरी बात है, आर्डुअस, कठिन, तपश्चर्यापूर्ण है। इसका अर्थ यह है कि जहां भी रूप प्रकट हो, वहां तत्काल स्मरण करना कि प्रभु है। और अगर ऐसा स्मरण बैठता चला जाए, तो धीरे-धीरे आप पाएंगे कि सच

में सभी जगह प्रभु है। और धीरे-धीरे आप पाएंगे कि प्रभु के अतिरिक्त और कोई दिखाई पड़ना असंभव हो गया है।
कृष्ण बहुत-सी विधियों की बात कर रहे हैं। यह भी एक विधि है। यह भी एक विधि है।
एक सूफी फकीर हुआ है, हसन। संस्मरण लिखा है हसन ने अपना कि जब मंसूर को फांसी दी जाती थी, और लोग मंसूर पर नुकीले पत्थर फेंक रहे थे, और मंसूर के शरीर से लहूलुहान धाराएं खून की बह रही थीं, तब हसन भी उस भीड़ में खड़ा था। मंसूर हंस रहा था, और हसन भीड़ में खड़ा था, और सारे लोग पत्थर फेंक रहे थे। हसन का इरादा नहीं था कि मंसूर पर पत्थर फेंके। लेकिन जिस भीड़ में खड़ा था, वह दुश्मनों की थी। और हसन की इतनी हिम्मत न थी--तब तक इतनी हिम्मत न थी--कि उस भीड़ में खड़ा रहे, जो दुश्मनों की है। कहीं कोई पहचान न ले कि यह आदमी पत्थर नहीं फेंक रहा है! तो उसके हाथ में एक फूल था, उसने वह फूल फेंककर मंसूर को मारा। सिर्फ इस ख्याल से कि लोग समझेंगे, मैं भी कुछ फेंककर मार रहा हूं।
लेकिन मंसूर दूसरों के पत्थर खाकर तो प्रसन्न था, हसन का फूल खाकर रोने लगा। हसन बहुत घबड़ाया। और हसन ने पूछा कि मेरी समझ में नहीं आता! लहूलुहान कर रहे हैं जो पत्थर, घाव कर रहे हैं जो पत्थर, उनकी चोट खाकर तुम हंसे चले जाते हो, और मैंने एक फूल मारा और तुम रोने लगे?
मंसूर ने कहा कि मैं एक साधना में लगा रहा हूं सदा। वह साधना मेरी यह रही है कि जब भी मुझे कोई दिखाई पड़े, तो मैं उसमें पहले परमात्मा देखूं। तो ये जो लोग मुझे पत्थर मार रहे हैं, इनमें तो मैं परमात्मा देख रहा था। लेकिन तुझे तो मैं समझता था कि तू परमात्मा है ही, इसलिए मैंने देखने की कोशिश न की। तुझे तो मैं समझता था, तू ज्ञान को उपलब्ध है ही, इसलिए तुझे परमात्मा देखने की क्या कोशिश! इनके साथ तो मैं भजन में रत था। ये पत्थर फेंक रहे थे और मैं परमात्मा देख रहा था। लेकिन तूने जब फूल फेंका, तो मैं चूक गया। तेरे से मैंने कभी सोचा भी नहीं था कि तेरे बाबत भी परमात्मा होना मैं पहले सोचूं! तुझे तो मैं परमात्मा मानता ही था, जानता ही था। लेकिन चूक गया भजन एक क्षण को। मैं परमात्मा तुझ में नहीं देख पाया, तेरा फेंकना ही मुझे पहले दिखाई पड़ गया, यद्यपि फूल था। मैं तेरे फूल की वजह से नहीं रो रहा हूं; मेरा भजन चूक गया, उसकी वजह से रो रहा हूं। तुझसे अपेक्षा न थी कुछ फेंकने की। कभी सोचा भी नहीं था, इसलिए चूक गया। लेकिन प्रभु को धन्यवाद कि उसने आखिरी क्षण में तुझसे एक फूल फिंकवा दिया, तो मुझे पता चल गया कि मुझमें भी अभी कमी है। मेरा भजन पूरा नहीं है।
इसलिए कोई कभी ऐसा न समझ ले अपने को कि भजन पूरा हो गया। सतत जारी रखना
ही पड़ेगा। जब तक दूसरा दिखाई पड़ता है, तब तक उसमें परमात्मा को खोजने की कोशिश जारी रखनी ही पड़ेगी। एक घड़ी ऐसी आती है जरूर, जब दूसरा ही दिखाई नहीं पड़ता। तब फिर भजन की कोई जरूरत नहीं रह जाती। जब परमात्मा ही दिखाई पड़ने लगता है, तब फिर परमात्मा को भजने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। लेकिन जब तक वह नहीं दिखाई पड़ता, तब तक उसका आविष्कार करना है, पर्तें तोड़नी हैं, उघाड़ना है।
और आदमी के ऊपर रूप की पर्त-पर्त जमी हैं, जैसे प्याज पर जमी होती हैं-- पर्त, और पर्त, और पर्त। एक पर्त उघाड़ो, दूसरी पर्त आ जाती है। दूसरी उघाड़ो, तीसरी आ जाती है। लेकिन अगर हम प्याज को उघाड़ते ही चले जाएं, तो एक घड़ी ऐसी आती है, जब शून्य रह जाता है, कोई पर्त नहीं रहती। प्याज बचती ही नहीं, शून्य रह जाता है। ठीक ऐसे ही एक-एक पर्त आदमी की उघाड़ेंगे, उघाड़ेंगे, और जब आदमी के भीतर सिर्फ शून्य रह जाएगा, तब भागवत चैतन्य का, तब भगवान का अनुभव होगा।
लेकिन लंबी यात्रा है। जैसे कि कोई कुआं खोदता है। कुआं खोदता है, तो पानी एकदम से हाथ नहीं लग जाता। पहले तो कंकड़-पत्थर हाथ लगते हैं। लेकिन वह पानी का ध्यान रखकर कुआं खोदता चला जाता है। मिट्टी हाथ लगती है, पत्थरों की चट्टानें हाथ लगती हैं। अभी पानी बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन पानी का स्मरण रखकर खोदता चला जाता है। भरोसा ही है कि पानी होगा। और भरोसा सच है। क्योंकि कितनी ही गहरी जमीन क्यों न हो, पानी होगा ही। दूरी कितनी ही हो सकती है, पानी होगा ही। भरोसा झूठा भी नहीं है। हां,

आपकी ताकत कम पड़ जाए और जमीन ज्यादा हो, तो बात अलग है। वह भी आपकी ताकत की कमी है। और थोड़ा खोदते, और थोड़ा खोदते, तो एक जगह आ जाती, जहां पानी है ही। लेकिन पहले पानी हाथ नहीं लगता। पहले तो कंकड़-पत्थर हाथ लगते हैं। अब कंकड़-पत्थर से कोई भरोसा नहीं मिलता है कि आगे पानी होगा। कंकड़-पत्थर से क्या संबंध है पानी का?
लेकिन आदमी खोदता है। फिर थोड़ी-सी जमीन तर मिलती है; थोड़ी-सी पानी की झलक दिखाई पड़नी शुरू होती है। लगता है कि अब जमीन गीली होने लगी। आशा बढ़ जाती है, सामर्थ्य बढ़ जाती है, हिम्मत बढ़ जाती है, और हुंकार करके आदमी खोदने में लग जाता है। फिर धीरे-धीरे गंदा पानी झलकने लगता है। आशा और घनी होने लगती है। और एक दिन आदमी उस जल-स्रोत पर पहुंच जाता है, जो शुद्ध है। ठीक ऐसे ही रूप में अरूप को खोदना पड़ता है। और जब हम खोदने चलते हैं,
तब रूप ही हाथ में मिलता है; अरूप तो सिर्फ स्मरण रखना पड़ता है। जब रास्ते पर कोई आदमी मिलता है, तो सिर्फ स्मरण ही हम रख सकते हैं कि प्रभु होगा गहरे में भीतर; अभी कुछ पता तो नहीं। जब छुएंगे, तो आदमी की हड्डी-पसली हाथ में आएगी। जब मिलेंगे, तो दोस्ती-दुश्मनी हाथ में आएगी; घृणा, क्रोध, प्रेम हाथ में आएगा। ये सब कंकड़-पत्थर हैं। इन पर रुक नहीं जाना है, और इनको अंतिम नहीं मान लेना है। जो इनको अंतिम मान लेता है, वह प्रभु की खोज में रुक जाता है।
आप मुझे मिले और आपने मुझे एक गाली दे दी। बस, मैंने समझ लिया कि अंतिम बात हो गई। यह आदमी बुरा है। यह अल्टिमेट हो गया मेरे लिए। यह गाली मेरे लिए चरम हो गई। मैंने पहली पर्त को, कंकड़-पत्थर को कुएं की आखिरी स्थिति मान ली।
जिससे गाली मिली है, उसके भीतर भी परमात्मा है। थोड़ा खोदना पड़ेगा। हो सकता है, थोड़ा ज्यादा खोदना पड़े। जिससे प्रेम मिला है, उसके भीतर थोड़े जल्दी परमात्मा मिल जाए। जिससे घृणा मिली है, दो पर्त और ज्यादा आगे मिले। लेकिन इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। पर्त कितनी ही हो, भीतर परमात्मा सदा मौजूद है।
परमात्मा यानी अस्तित्व, वह जो है। इसलिए वह सब जगह मौजूद है। हम कहीं
भी खोजेंगे, वह मिल जाएगा। कहीं भी खोजेंगे, वह मिल जाएगा। और अगर हमने खोज न की, तो वह कहीं भी न मिलेगा।
यह बड़े मजे की बात है कि परमात्मा, जो सदा और सर्वदा मौजूद है, हमारी बिना खोज के नहीं मिलेगा। प्रत्येक चीज के लिए कीमत चुकानी पड़ती है। बिना कीमत कुछ भी नहीं मिलता, न मिलना चाहिए। क्योंकि बिना कीमत कुछ मिल जाए, तो खतरा यही है कि आप पहचान भी न पाएं कि आपको क्या मिला है।
एक छोटी-सी घटना मुझे स्मरण आती है। नंदलाल बंगाल के एक बहुत अदभुत चित्रकार हुए। रवींद्रनाथ ने एक संस्मरण लिखा है नंदबाबू के संबंध में कि जब नंदलाल बड़े चित्रकार नहीं थे, सिर्फ विद्यार्थी थे और अवनींद्रनाथ ठाकुर के पास पढ़ते थे। अवनींद्रनाथ एक दूसरे बड़े चित्रकार थे। अवनींद्रनाथ के पास पढ़ते थे।
एक दिन रवींद्रनाथ अवनींद्रनाथ के पास बैठे हैं। नंदलाल कृष्ण की एक तस्वीर बनाकर लाए। रवींद्रनाथ ने लिखा है कि मैंने अपने जीवन में कृष्ण की इतनी सुंदर तस्वीर नहीं देखी। बड़े से बड़े चित्रकारों ने बनाई है, लेकिन नंदलाल ने जो बनाई थी, वह बात ही कुछ और थी। मैं तो एकदम विमुग्ध हो गया। मेरे मन में ख्याल उठा कि अवनींद्रनाथ कितने प्रसन्न न होंगे, उनके विद्यार्थी ने कैसी अदभुत तस्वीर बनाई है!
लेकिन अवनींद्रनाथ ने वह तस्वीर हाथ में उठाकर दरवाजे के बाहर फेंक
दी और नंदलाल से कहा कि इसको चित्र कहते हो? इसको कला कहते हो? शर्म नहीं आती? बंगाल में जो पटिए होते हैं, जो दो-दो पैसे का कृष्ण-पट बनाकर जन्माष्टमी के समय बेचते हैं, अवनींद्रनाथ ने कहा कि तुमसे अच्छा तो बंगाल के पटिए बना लेते हैं!
रवींद्रनाथ ने लिखा है कि मुझे जैसे किसी ने छाती में छुरा भोंक दिया हो। यह तो अपेक्षित ही न था। मुझे ख्याल आया कि अवनींद्रनाथ के भी मैंने चित्र देखे हैं, इतना सुंदर कृष्ण का चित्र उनका भी कोई नहीं है। यह क्या हो रहा है! लेकिन बोलना ठीक न था। शिष्य और गुरु के बीच बोलना उचित भी न था।

नंदलाल पैर छूकर विदा हो गए। वह तस्वीर साथ में उठाकर बाहर ले गए। चले जाने पर रवींद्रनाथ ने कहा कि क्या किया आपने? देखा--मन था कि अवनींद्रनाथ से लड़ेंगे, जूझ पड़ेंगे; लेकिन जूझने की हिम्मत टूट गई--आंख उठाकर देखा, तो देखा, अवनींद्रनाथ की आंखों से आंसुओं की धारा बह रही है। और मुश्किल में पड़ गए। कहा कि आप रो रहे हैं! बात क्या है? अवनींद्रनाथ ने कहा कि बड़ा कष्ट होता है, इतना सुंदर चित्र मैं भी बना नहीं सकता! तो रवींद्रनाथ ने कहा कि यही मैं सोचता था। फिर फेंका क्यों है?
अवनींद्रनाथ ने कहा कि बिना मूल्य के कुछ भी मिल जाए, तो रिकग्नीशन, प्रत्यभिज्ञा नहीं होती। उसे थोड़ा कष्ट देना ही पड़ेगा। इसलिए भी कष्ट देना पड़ेगा, ताकि उसे पता हो, जो उसे उपलब्ध हो रहा है, वह आसान नहीं है, तपश्चर्या है। और इसलिए भी कष्ट देना होगा कि अभी उसकी और भी संभावना है। यह चित्र आखिरी नहीं है। अभी इससे बेहतर भी निकल सकता है। अगर वह मेरी आंखों में जरा-सा भी प्रशंसा का भाव देख लेता, तो यह अंतिम हो जाता। इसके आगे फिर नहीं निकल सकता था।
परमात्मा भी हमसे बड़ी संभावनाओं और अपेक्षाओं में है--बड़ी संभावनाओं में। इसलिए जल्दी प्रकट नहीं हो जाता। तपश्चर्या है, मूल्य चुकाना पड़ता है। और हम पर उसकी आस्था इतनी है, जितनी हममें से किसी की भी उस पर आस्था नहीं है। इसलिए तो हजार दफे भूल करते हैं, फिर भी माफ हुए चले जाते हैं। हजार जन्म लेते हैं, व्यर्थ गंवा देते हैं, फिर जन्म मिल जाता है। लेकिन खोजे बिना नहीं मिलेगा। और खोज जब भी शुरू होती है, तो जिसे हम खोजने जाते हैं, उससे उलटी चीजें पहले हाथ आती हैं।
अगर मैं आपके पास परमात्मा खोजने गया, तो पहले आप मिलेंगे, जो कि परमात्मा नहीं हैं। पहले आपका शरीर मिलेगा, जो कि निराकार नहीं है। फिर आपका मन मिलेगा, जो कि हजार गंदगियों से भरा है। और अगर मैं इनको पार करने की सामर्थ्य नहीं रखता हूं, तो मैं आपके बाहर से ही लौट आऊंगा और आपके उस मंदिर के अंतर्कक्ष से वंचित ही रह जाऊंगा, जहां प्रभु विराजमान है। मैं कांटों से ही लौट आया, फूलों तक पहुंच ही न पाया, यद्यपि सभी फूलों की सुरक्षा के लिए कांटे होते हैं।
प्रभु को भजना समस्त भूतों में, इसका अर्थ है, चाहे कितना ही विपरीत कुछ क्यों न हो, चाहे बिल्कुल शैतान क्यों न खड़ा हो; जहां शैतान खड़ा हो, समझना कि साधना का और भी शुभ अवसर उपलब्ध हुआ है; वहां भी प्रभु को भजना, वहां स्मरण करना कि प्रभु है।
जिस रात जीसस को पकड़ा गया, तो जिस व्यक्ति ने जीसस को पकड़वाया, जुदास ने, यहूदा ने, तो जीसस ने जाने के पहले उसके पैर अपने हाथों से धोए। उसी आदमी ने पकड़वाया जीसस को; उसी ने दुश्मन को खबर दी। उसी ने तीस रुपए की रिश्वत में जीसस की खबर दी कि जीसस कहां हैं। और विदा होने के पहले आखिरी रात सबसे पहले जीसस ने यहूदा के पैर अपने हाथ से धोए। फिर बाकी शिष्यों के भी पैर अपने हाथ से धोए।
एक शिष्य ने पूछा भी कि आप यह क्या करते हैं? हम तो आपके शिष्य हैं। आप हमारे पैर धोते हैं! तो जीसस ने कहा कि मैं प्रभु का स्मरण करता हूं।
और जब दूसरे दिन लोगों को पता चला कि यहूदा ने ही उनको पकड़वाया है, तो बहुत हैरान हुए। अब तक वह बात गुत्थी की तरह उलझी रह गई कि यहूदा के पैर धोना जीसस ने क्यों किया होगा?
कृष्ण के इस सूत्र में व्याख्या है। ईश्वर को भजने का यह अवसर छोड़ना उचित न था। जो आदमी फांसी पर लटकवाने ले जा रहा है, उस आदमी में भी परमात्मा को देखने की आखिरी कोशिश जीसस ने की।
प्रभु को इस अर्थ में जो भजना शुरू कर दे, उसे फिर किसी और भजन की कोई
भी जरूरत नहीं है। प्रभु को जो इस रूप में देखना शुरू कर दे, उसे फिर किसी मंदिर और तीर्थ की जरूरत नहीं है। प्रभु को जो इस रूप में सोचना, समझना और जीना शुरू कर दे, उसके लिए पूरी पृथ्वी मंदिर हो गई, उसके लिए सब रूप प्रतिमाएं हो गए प्रभु के, उसके लिए सब आकार निराकार का निवास हो गए। कृष्ण से अर्जुन को मिला यह सूत्र बहुत कीमती है कि जो सब भूतों में मुझ वासुदेव को, मुझ परमात्मा को, परमात्मा को, प्रभु को देखना शुरू कर देता है, भजना शुरू कर देता है, वह योगी परम सिद्धि को उपलब्ध होता है।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः।। 32।।
और हे अर्जुन, जो योगी अपनी सादृश्यता से संपूर्ण भूतों में सम देखता
है और सुख अथवा दुख को भी सब में सम देखता है, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है।

समत्व योग है। समता का बोध श्रेष्ठतम योग है। सुख में, दुख में, अनुकूल में, प्रतिकूल में, सब स्थितियों में, सब परिस्थितियों में जो सम बना रहता है, समता को देखता है--एक। इस संबंध में काफी बात कृष्ण ने कही है। इसमें एक दूसरी छोटी-सी बात वे कह रहे हैं, जो कीमती है। वह है, जो अपने सादृश्य से सब में ही सम स्थिति देखता है। इसे थोड़ा समझना जरूरी है।
अपने सादृश्य से! कठिनतम बात है यह। इसका अर्थ यह है कि जब भी हम दूसरे
के संबंध में कोई निर्णय लें, तब सदा अपने सादृश्य से लें। हम इससे उलटा ही करते हैं। जब भी हम दूसरे के संबंध में कोई निर्णय लेते हैं, तो कभी अपने सादृश्य से नहीं लेते।
अगर दूसरा बुराई करता है, बुरा काम करता है, तो हम कहते हैं, वह बुरा आदमी है। और अगर हम बुराई करते हैं, तो हम कहते हैं, वह मजबूरी है। अगर दूसरा आदमी चोरी करता है, तो वह चोर है। और अगर हम चोरी करते हैं, तो वह आपदधर्म है! लेकिन कभी अपने सादृश्य से नहीं सोचते। अगर हम क्रोध करते हैं, तो वह दूसरे के सुधार के लिए है। और अगर दूसरा क्रोध करता है, तो वह हिंसक है, हत्यारा है! अगर हम किसी को मारते भी हैं, तो जिलाने के लिए। और अगर दूसरा जिलाता भी है, तो मारने के लिए।
दूसरे को हम कभी भी उस भांति नहीं सोचते, जैसा हम स्वयं को सोचते हैं। स्वयं में जो श्रेष्ठतम है, उसे हम स्वभाव मानते हैं; और दूसरे में जो निकृष्टतम है, उसे उसका स्वभाव मानते हैं!
ध्यान रहे, स्वयं का जो शिखर है, वह हमारा स्वभाव है; और दूसरे की जो खाई है, वह उसका स्वभाव है! उसका भी शिखर है, और हमारी भी खाई है।
सादृश्य का अर्थ यह है कि जब मैं दूसरे की खाई के संबंध में सोचूं, तो पहले अपनी खाई को देख लूं। तो मैं पाऊंगा कि शायद मुझसे बड़ी खाई किसी दूसरे की नहीं है। जब मैं अपने शिखर के संबंध में सोचूं, तो मैं दूसरों के शिखर भी सोच लूं, तो शायद मैं पाऊंगा कि मुझसे छोटा शिखर किसी का भी नहीं है।
लेकिन हमारे सोचने की विधि, पद्धति यह है कि दूसरे का जो बुरा है, निकृष्टतम है, वही उसका सार तत्व है; और हमारा जो श्रेष्ठतम है, वह हमारा सार तत्व है। इसलिए हमसे निरंतर अन्याय हुआ चला जाता है। समता होगी कैसे? ध्यान रहे, एक समता तो यह है कि मैं दो आदमियों को समान समझूं, अ और ब समान हैं। यह समता बहुत गहरी नहीं है। असली समता यह है कि मैं, मैं और तू को समान समझूं, जो बहुत गहरी है। दो आदमियों को समान समझने में बहुत कठिनाई नहीं है, क्योंकि दो आदमियों को समान समझने में ही मैं ऊपर उठ जाता हूं। मैं पैट्रोनाइजिंग हो जाता हूं। मैं दो को समान समझने वाला। मैं ऊपर उठ जाता हूं। मैं करीब-करीब मजिस्ट्रेट की कुर्सी पर बैठ जाता हूं। दो को समान समझने में बहुत कठिनाई नहीं है। दूसरे के साथ स्वयं को समान समझने में सबसे बड़ी कठिनाई है।
सुना है मैंने, सोरोकिन ने कहीं एक छोटा-सा मजाक लिखा है। लिखा है कि सोरोकिन एक समाजवादी से बात कर रहा था, जो कहता था, सब चीजें बांट दी जानी चाहिए समान। सोरोकिन ने उससे कहा कि जिन आदमियों के पास दो मकान हैं, क्या आपका ख्याल है, एक उसको दे दिया जाए, जिसके पास एक भी नहीं? उस आदमी ने कहा, निश्चित। बिल्कुल ठीक। यही चाहता हूं। जिन आदमियों के पास दो कारें हैं, सोरोकिन ने कहा, एक उसको दे दी जाए, जिसके पास एक भी नहीं? उस आदमी ने कहा कि बिल्कुल दुरुस्त। यही तो मेरी फिलासफी है, यही तो मेरा दर्शन है। सोरोकिन ने कहा कि क्या आपका यह मतलब है कि जिस आदमी के पास दो मुर्गियां हैं, एक उसको दे दी जाए, जिसके पास एक भी नहीं? उस आदमी ने कहा, बिल्कुल गलत। कभी नहीं! सोरोकिन ने कहा कि कैसा समाजवाद है! अभी तक तो आप कहते थे,

बिल्कुल ठीक! उसने कहा, न मेरे पास दो मकान हैं और न दो कारें हैं, मेरे पास दो मुर्गियां हैं। यह बिल्कुल गलत। यहां तक समाजवाद लाने की कोई जरूरत नहीं है।
दूसरों को समान कर दिया जाए, यह बहुत कठिन मामला नहीं है। कृष्ण और गहरी समानता की बात कर रहे हैं। वे कह रहे हैं, स्वयं के सादृश्य से समता, स्वयं को दूसरे के समान समझना।
यह बड़ी जटिल बात है। क्योंकि अहंकार भयंकर बाधा डालता है। वह कहता है, कुछ भी कहो, सब कहो, इंचभर भी जरा मुझे ऊंची जगह दे दो, बस, फिर ठीक है। सबके साथ!
अभी भीतर मन में सोचेंगे, तब पता चलेगा कि सबके साथ मैं समान! यह नहीं
हो सकता। सब समान हो सकते हैं, सबके बीच मुझे जरा बचाओ। भीतर गहरे में मन कहेगा, मुझे बचाओ। मैं सबको समान करने को राजी हूं। और सबको समान करने में ही मैं विशेष हो जाऊंगा, मैं अलग हो जाऊंगा, मैं ऊपर उठ जाऊंगा।
इसलिए समाजवादी नेता हैं सारी दुनिया में, साम्यवादी नेता हैं सारी दुनिया में, वे सबको समान करने के लिए बहुत पागल हैं, बहुत विक्षिप्त हैं। लेकिन आखिर में कुल फल इतना होता है कि सब समान हो जाते हैं, वे सबके ऊपर हो जाते हैं! कोई इस बात के लिए राजी नहीं है कि मुझसे कोई समान हो।
कृष्ण कहते हैं, स्वयं के सादृश्य से!
जब भी दूसरे के संबंध में सोचो, तो स्वयं के सादृश्य से सोचना। और तब
एक अदभुत घटना घटेगी। तीन घटनाएं घटेंगी। एक तो घटना यह घटेगी, जो स्वयं के सादृश्य से सोचेगा, वह दूसरे का निर्णय लेना बंद कर देगा। नहीं; निर्णय नहीं लेगा। क्योंकि वह पाएगा, मैं कौन हूं निर्णय लेने वाला! मैं भी तो वहीं खड़ा हूं, जहां सारे लोग खड़े हैं।
इसलिए हमारे जो तथाकथित साधु-संत होते हैं, जो स्वयं को कुछ पवित्र, ऊपर, और शेष सबको नारकीय जीव मानकर देखते हैं, इन्हें कृष्ण के सूत्र का कोई पता नहीं।
तथाकथित साधु-संन्यासियों के पास जाओ, तो वे ऐसे देखते हैं कि कहां है, पासपोर्ट ले आए नर्क जाने का कि नहीं! नीचे से ऊपर तक जांच करके उनकी आंख का भाव यह होता है कि वे कहीं ऊपर, आप कहीं नीचे!
ठीक संत तो वह है, जो यह जान लेता है कि सभी सम हैं। क्योंकि वह जो भीतर बैठा है, वह जरा भी ऊपर-नीचे नहीं हो सकता। एक ही बैठा हुआ है, तो असमानता का सवाल कहां है!
बुद्ध ने अपने पिछले जन्म की कथा कही है। और कहा है कि अपने पिछले जन्म में, जब मैं ज्ञान को उपलब्ध नहीं था, तब उस समय एक बुद्धपुरुष थे, कोई ज्ञान को उपलब्ध हो गए थे, तो मैं उनके दर्शन करने गया। मैंने झुककर उनके पैर छुए। स्वाभाविक! उन्होंने जान लिया था, मैं अज्ञानी था। मैं पैर छूकर खड़ा भी न हो पाया था कि मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया। मैंने क्या देखा, अनपेक्षित, कि वे बुद्धपुरुष मेरे चरणों में सिर रखे हैं, झुक गए हैं। घबड़ाकर मैंने उन्हें ऊपर उठाया और कहा कि आप यह क्या करते हैं! यह तो मेरे साथ... मुझे पाप लगेगा। मैं आपके पैर छुऊं, यह तो ठीक, क्योंकि आप जानते हैं और मैं नहीं जानता। और आप मेरे पैर छुएं!
तो उन बुद्धपुरुष ने हंसकर कहा था कि जो तेरे भीतर बैठा है, मैं भलीभांति जानता हूं, वह वही है जो मेरे भीतर बैठा है। तुझे पता नहीं है, कभी पता चल जाएगा। जब तुझे पता चल जाएगा, तब तेरी समझ में आ जाएगा यह राज कि मैंने तेरे पैर क्यों छुए थे! मैंने तेरे पैर क्यों छुए थे, यह राज तुझे कभी समझ में आ जाएगा। आज तुझे पता नहीं कि तेरे भीतर वही हीरा छिपा है, जो मेरे भीतर। तू तो नहीं जानता है, इसलिए अगर मैं तेरे पैर न भी छुऊं, तो तुझे पता नहीं चलेगा। लेकिन मैं तो जानता हूं; अगर मैं तेरे पैर न छुऊं, तो मेरे सामने ही मैं गिल्टी और अपराधी हो जाऊंगा। मैं जानता हूं कि वही तेरे भीतर भी छिपा है, जो मेरे भीतर छिपा है।
यह सादृश्य है।
तो कृष्ण कहते हैं, यह श्रेष्ठतम स्थिति है योग की। पर यह समता और है।
यह अ और ब के बीच में नहीं; यह मेरे और तेरे के बीच, मैं और तू के बीच समता है।

मैं को तू के सम लाना महायोग है। क्योंकि मैं की सारी चेष्टा ही यही
है कि तू को नीचे कर दे। हम जिंदगीभर यही करते हैं। तू को नीचे करने की कोशिश ही हमारी जिंदगी का रस है। और अगर वस्तुतः न कर पाएं, तो हम दूसरी तरकीबों से करते हैं।
अगर एक आदमी को धन मिल जाए, तो जिनके पास धन नहीं है, वह उनके ऊपर खड़ा
हो जाता है। एक को मिनिस्ट्री मिल जाए, तो जिनको नहीं मिली, वह उनके ऊपर खड़ा हो जाता है। उसकी चाल बदल जाती है। उसका ढंग बदल जाता है। उसकी आंखें बदल जाती हैं। लेकिन जिसको नहीं मिली, वह क्या करे? जो हार गया, वह क्या करे?
वह दूसरी तरकीबों से नीचा दिखाने की कोशिश करता है। वह कहता है, तुम जीते नहीं हो, पैसा बांटकर जीत गए हो। मोरारजी भाई से पूछें! जो जीत गया, वह पैसा बांटकर जीत गया। जैसे जो हार गया, उसने पैसे नहीं बांटे थे! हार जाना, कोई पैसे न बांटने की प्रामाणिकता है? लेकिन जो जीत गया, उसे अब किस तरह नीचे दिखाएं? वह तो दिखा रहा है नीचे, छाती पर चढ़ गया। अब जो हार गया है, वह क्या करे? वह दूसरे रास्ते खोजेगा नीचे दिखाने के। इसीलिए हम निंदा में इतना रस लेते हैं। हम एक-दूसरे की निंदा में इतना रस लेते हैं।
बहुत मजे की बात है। अगर मैं आपसे आकर कहूं कि आपका पड़ोसी बहुत अच्छा आदमी है, तो आप एकदम से मान न लेंगे। आप कहेंगे, अच्छा! भरोसा तो नहीं आता। पड़ोसी और अच्छा आदमी! मेरे रहते और मेरा पड़ोसी अच्छा आदमी! क्या कह रहे हैं आप! भला आप ऊपर से कहें या न कहें, भीतर बेचैनी शुरू हो जाएगी। और आप कहेंगे, मान नहीं सकता। आपको पता नहीं है शायद। जरा पुलिस की किताब में जाकर देखें ब्लैक लिस्ट में नाम है उसका। इसको आप अच्छा आदमी कहते हैं! यह आदमी महा दुष्ट है। पत्नी को पीटते मैंने सुना है।
आप पच्चीस बातें निकालकर दलील देंगे कि यह आदमी अच्छा नहीं है। क्यों? क्योंकि अगर वह अच्छा है, तो आपके मैं का क्या होगा! आप पच्चीस दलीलें खोजकर, उसे नीचे करके, अपने सिंहासन पर पुनः विराजमान हो जाएंगे। लेकिन अगर कोई आपसे आकर कहे कि सुना, पड़ोस का आदमी फलाने की स्त्री को लेकर भाग गया! आप कहेंगे, मैं पहले से ही जानता था कि वह भागेगा।
अब आप बिल्कुल खोजबीन न करेंगे। बिल्कुल खोजबीन ही न करेंगे। जरा संदेह-शंका न उठाएंगे। कोई प्रमाण न पूछेंगे। बिल्कुल राजी हो जाएंगे कि दुरुस्त। यह तो हम पहले जानते थे कि यह होने वाला है। हम पहले ही कह चुके थे कि वह आदमी भाग जाएगा। वह आदमी ही ऐसा था।
बड़े मजे की बात है कि जब कोई आपसे किसी की निंदा करता है, तो आप प्रमाण नहीं पूछते। और जब कोई किसी की प्रशंसा करता है, तब बड़े प्रमाण पूछते हैं! बात क्या है? निंदा मान लेने में दिल को बड़ी राहत मिलती है, क्योंकि मैं ऊपर हो जाता हूं। प्रशंसा मानने में बड़ी पीड़ा होती है, बड़ी चोट लगती है। सुना है मैंने, एक विद्यार्थी नंबर तीन पास हुआ। उसके बाप ने उसे डांटा कि हमारे कुल में कभी न चला ऐसा। ऐसा कभी नहीं हुआ हमारे कुल में कि कोई नंबर तीन आया हो। हालांकि न होने का कुल कारण इतना था कि कुल में कोई पढ़ा ही नहीं था! नंबर तीन आएगा कैसे? लड़के ने बड़ी मेहनत की। वह सालभर मेहनत करके नंबर दो आया। बाप ने कहा कि क्या रखा है! कौन-सी बड़ी उन्नति कर ली! एक ही लड़के को पीछे हटा पाए! लड़के ने और मेहनत की और तीसरे साल वह नंबर एक आ गया। तो बाप ने कहा कि इसमें कुछ नहीं है। इससे पता चलता है कि तुम्हारी क्लास में गधों के सिवाय कोई भी नहीं है!
बाप को भी अड़चन होती है कि बेटा कुछ है। हालांकि सब बाप कोशिश करते हैं कि मेरा बेटा कुछ हो, दूसरों के सामने। क्योंकि मेरा बेटा कुछ है, ऐसा दूसरों को बताकर वे भी कुछ होते हैं। लेकिन अगर बेटा सच में कुछ है, तो बाप अड़चन में पड़ जाता है बेटे के साथ। दूसरों के साथ चर्चा करता है, मेरा बेटा कुछ है। क्योंकि मेरा बेटा! लेकिन बेटा सामने पड़ता है, तो बेचैनी शुरू होती है। बाप के मन को तक बेटे के मन से बेचैनी शुरू होती है!
अगर लड़की सुंदर हो, तो मां तक चिंतित हो जाती है। और रास्ते पर जब गुजरती है, तो देखती रहती है कि लोग लड़की को देख रहे हैं कि उसको देख रहे हैं। अगर लड़की को देख रहे हैं, तो बहुत बेचैनी होती है। उसका बदला वह घर लौटकर लड़की से लेगी!

आदमी का मन इतने निकट संबंधों में भी मैं को ऊपर रखता है। मां और बेटी
के संबंध में भी, बाप और बेटे के संबंध में भी, वह मैं को ऊपर रखता है।
निकटतम के साथ भी हमारी दुश्मनी चलती है मैं और तू की।
महायोग है, कृष्ण कहते हैं कि स्वयं के सादृश्य से सब के साथ समता समझ लेना।
जरा भी फासला न रह जाए, कि दूसरा ठीक वैसा ही है, जैसा मैं हूं। बुराई में भी, भलाई में भी, पाप में भी, पुण्य में भी, दूसरे और मुझमें कोई फासला नहीं है। ऐसी प्रतीति की जो गहराई है, वह बहुत बड़ा विस्फोट लाती है।
पर इसको चाहने के लिए, इस दिशा में यात्रा करने के लिए, जब भी दूसरे के संबंध में सोचें, तो एक बार पुनः उसी बात को लेकर अपने संबंध में पहले सोचना। और अपने मन के धोखों में मत पड़ जाना, क्योंकि मन कहेगा, ये तो मजबूरियां थीं। ऐसा तो उसका मन भी कहता है, यह भी जानना। ऐसा मत कहना कि यह मेरा स्वभाव नहीं है। उसका मन भी यही कहता है कि यह मेरा स्वभाव नहीं है। जैसा हमें लगता है, वैसा ही प्रत्येक को लगता है।
महावीर ने तो इसे अहिंसा कहा, इस सूत्र को। यह स्वयं के सादृश्य सब को मान लेने को महावीर ने अहिंसा कहा। महावीर ने कहा कि जैसा हमें लगता है, वैसा सब को लगता है, इसलिए तुम जो व्यवहार अपने साथ करो, वही दूसरे के साथ करो।
जीसस ने भी यही कहा। अगर जीसस के पूरे जीवन के उपदेश का सार-निचोड़ हम रखें, तो एक ही वाक्य है जीसस का, जो परम है, महावाक्य है, डू नाट डू अनटु अदर्स, दैट यू वुड नाट लाइक टु बी डन विद यू--मत करो दूसरों के साथ वह, जो तुम न चाहोगे कि दूसरे तुम्हारे साथ करें।
लेकिन हम वही कर रहे हैं। और तब अगर हम योग को उपलब्ध नहीं होते, तो आश्चर्य नहीं। और अगर हम श्रेष्ठ शांति को और आनंद को उपलब्ध नहीं होते, तो आश्चर्य नहीं। यह हमारे ही कर्मों का सुनिश्चित फल है। जो हम कर रहे हैं, उसकी यह नियति है। यही होगा।
लेकिन बहुत कठिन है दूसरे के साथ अपने को सम भाव में रखना। सबसे बड़ी कठिनाई उस ईगो और अहंकार की है, जो कहता है, मैं! मेरे जैसा कोई भी नहीं। अरब में एक कहावत है, एक मजाक है कि परमात्मा जब लोगों को बनाता है, तो सबके साथ एक मजाक कर देता है। धक्का देते वक्त दुनिया में, उनके कान में कह देता है, तुम जैसा किसी को भी नहीं बनाया। सभी से कह देता है, दिक्कत तो यह है। अगर एकाध से कहे, तो चले। झंझट न हो कुछ। सभी से कह देता है!
यह मजाक, यह कहावत बड़ी प्रीतिकर है, बड़े अनुभव की है। हर एक से कह देता
है कि गजब, तुम जैसा तो लाजवाब, तुम जैसा दूसरा कभी बनाया ही नहीं। और अब बना सकूंगा, इसकी भी कोई आशा नहीं। और हर आदमी इसको दिल में लिए घूमता है जिंदगीभर। कह भी नहीं पाता, क्योंकि कहे तो झंझट आ जाए, क्योंकि दूसरे भी यही लिए घूम रहे हैं! कह भी नहीं पाता साफ-साफ। छिपा-छिपाकर कहता है। गोल-मोल बातें करके कहता है। परोक्ष-परोक्ष रूप से घोषणा करता है। न मालूम कितनी तरकीबें खोजता है कि तुम्हें पता चल जाए कि मुझ जैसा कोई नहीं। लेकिन बिल्कुल पागल हो, क्योंकि दूसरा भी इसी कोशिश में लगा है कि मुझ जैसा कोई भी नहीं! हम सब इसी खेल में रत हैं।
परमात्मा यह मजाक करता है या नहीं, मुझे पता नहीं। लेकिन आदमी का मन जरूर यह मजाक कर रहा है। और गहरी मजाक है। और पूरी जिंदगी इस मजाक में व्यतीत हो जाती है; व्यर्थ ही व्यतीत हो जाती है।
मार्क ट्वेन के संस्मरणों में मैंने कहीं देखा है। वह फ्रेंच नहीं जानता था, और फ्रांस आया। तो एक बहुत मजेदार घटना हो गई। फ्रांस में उसका लड़का शिक्षित हो रहा था, यूनिवर्सिटी में पढ़ रहा था। तो उसका स्वागत किया पेरिस के साहित्यकारों ने। तो उसने अपने लड़के से कहा कि तू जरा मेरे साथ बैठे रहना, क्योंकि लोग जब हंसेंगे, अगर मैं न हंसूं, तो वे समझेंगे, फ्रेंच नहीं जानता।
और फ्रेंच न जाने कोई उन दिनों, तो अशिक्षित, थोड़ा अनाड़ी, थोड़ा अश्रेष्ठ। फ्रेंच तो जाननी ही चाहिए, संस्कृति की भाषा! तो मैं यह चाहता हूं, मार्क ट्वेन ने कहा कि पता न चले कि मैं नहीं जानता हूं। तो तू मेरे पास बैठ रहना। तू मुझे इशारा कर देना। तो तू जो करेगा, वही मैं करने

लगूंगा। जब तू हंसेगा, मैं हंस दूंगा। जब तू गंभीर हो जाएगा, मैं गंभीर हो जाऊंगा। तुझ पर ध्यान रखूंगा। तू ख्याल रखना। ताकि किसी को यह पता न चल पाए।
लेकिन बड़ी गड़बड़ हो गई। क्योंकि जब मार्क ट्वेन की तारीफ की जाती थी,
तो सारा हाल ताली बजाता; लड़का भी बजाता और मार्क ट्वेन भी बजाते, क्योंकि वे समझ नहीं पाते। लड़का बड़ा बेचैन हुआ कि यह तो बड़ी मुसीबत है! लेकिन अब बीच मंच पर कुछ कहना भी ठीक नहीं है कार्यक्रम चलते वक्त। यह भूल कई दफे हुई। लोग खिलखिलाकर हंसते। लड़का भी हंसता। मार्क ट्वेन भी हंसता। और उसे पता ही नहीं चलता कि मार्क ट्वेन के संबंध में कोई मजाक कही गई है।
बाद में लड़का तो पसीने से तरबतर हो गया। जब रात लौटने लगे, लड़के ने कहा, आपने तो मुझे दिक्कत में डाल दिया। लोग सब मेरी तरफ भी देखते थे कि तेरा बाप क्या कर रहा है! मार्क ट्वेन ने पूछा, क्या गलती हो गई? उसने कहा कि जब लोग ताली बजाते थे, मैं ताली बजाता था, तो वह तो आपकी प्रशंसा की जा रही थी कि आप बहुत महान हैं। और आप भी ताली बजा देते थे, उससे बहुत गड़बड़ हो जाती थी।
मार्क ट्वेन ने कहा, घबड़ा मत। जिंदगी में पहली दफा, जो मैं सदा करना चाहता था, वह अपने आप हो गया है। मार्क ट्वेन ने कहा, घबड़ा मत, जिंदगी में जो सदा करना चाहता था कि जब लोग मेरी प्रशंसा करें, तो मैं भी ताली बजाऊं! बजाता नहीं था, क्योंकि मैं समझता था भाषा। आज तो गलती में हो गया। लेकिन हुआ वही, जो मेरे दिल में सदा से है।
हम सब के दिल में यही है कि देखो, कैसे मूढ़ हम भी, कि सब तो हमारे लिए ताली बजा रहे हैं, और हम बैठे हैं! यही तो मौका था, जब हम भी ताली बजाते। लेकिन भाषा समझ में आती है, इसलिए चुप रह जाते हैं। वह तो भूल से हो गई घटना। लेकिन मन में हमारे यही होता है। मन हमारा यही करता है।
वह जो हमारा मैं है, वह सदा इसी तलाश में है कि कोई कह दे कि तुम महान, तुम यह, तुम वह--और हम फूलकर कुप्पा हो जाएं। फिर सादृश्य नहीं सधेगा। इसलिए बुद्ध कहते थे कि जिसे सादृश्य-योग साधना हो, वह पहले तो तीन महीने मरघट पर जाकर निवास करे। सादृश्य-योग साधना हो, तो पहले तीन महीने मरघट पर निवास करे। जब कोई भिक्षु आता, बुद्ध कहते, जा तीन महीने मरघट पर रह। वह कहता, इससे क्या होगा? मैं योग साधने आया! बुद्ध कहते, पहले जरा मरघट पर तीन महीने रहकर आ। वह कहता, वहां क्या करूंगा?
तो बुद्ध कहते, जब भी कोई मुर्दा आए, तो जानना कि ऐसा ही एक दिन मैं भी आऊंगा। जब उसको जलाया जाए, तो जानना कि ऐसा ही एक दिन मैं भी जलाया जाऊंगा। जब उसका बेटा खोपड़ी तोड़े, तो जानना कि मेरा बेटा एक दिन खोपड़ी तोड़ेगा। जब सब लोग उसको जला-बुझाकर जाने लगें, तो जानना कि एक दिन लोग मुझे इसी तरह जला-बुझाकर चले जाएंगे।
पर वह आदमी पूछता, इससे होगा क्या? बुद्ध कहते, मौत से सादृश्य शुरू कर, बाद में जिंदगी में आसान हो जाएगा।
और बात ठीक कहते हैं। जिंदगी में सादृश्य बनाना जरा मुश्किल पड़ेगा, क्योंकि किसी के पास बड़ा मकान है और किसी के पास छोटा मकान है। सादृश्य बनाओ कैसे! और किसी के पास नाक जरा लंबी है, और लोग कहते हैं, खूबसूरत है। और किसी के पास थोड़ी चपटी है, और लोग कहते हैं, बिल्कुल न होती तो अच्छी। करो क्या? कोई है कि गणित के बड़े सवाल हल कर देता है, और कोई है कि सोलह आने गिनने में दस दफे भूल कर जाता है। करो क्या? यहां जीवन में सादृश्य को बनाने में जरा कठिनाई पड़ेगी, क्योंकि बहुत-सा असादृश्य प्रकट है।
तो बुद्ध कहते, पहले मौत से शुरू करो, लेट अस बिगिन फ्राम दि एंड, चलो पीछे से शुरू करें। क्योंकि मौत में तो बड़ी अटारी वाला भी वहीं पहुंच जाता है, जहां छोटा झोपड़े वाला। जिसका गणित बड़ा कुशल था और जो गणित में सदा फेल हुआ, वे भी वहीं पहुंच जाते हैं। जिसकी शक्ल पर लोग मरे जाते थे और जिसकी शक्ल से लोग ऐसे बचते थे कि कहीं मिल न जाए, वह भी वहीं पहुंच गया। सब वहीं चले आ रहे हैं। नेता और अनुयायी, गुरु और शिष्य, साधु और असाधु, सम्मानित और अपमानित, संत और चोर--सब चले आ रहे हैं। एक जगह जाकर--मौत। मौत जो है, बहुत कम्युनिस्ट है; एकदम समान कर देती है! इस बुरी तरह समान करती है कि राख ही रह जाती है। सब समान हो जाता है।

तो बुद्ध कहते, वहीं से शुरू करो और जब यह साफ दिखाई पड़ जाए कि अंत में इतना सब सादृश्य हो जाने वाला है, तो बीच की झंझट में क्यों पड़ते हो। उसमें कुछ बहुत सार नहीं है। आखिरी तो यह है।
और जो भी भिक्षु तीन महीने मौत पर स्मरण करके आता, जिंदगी में सादृश्य
को उपलब्ध हो जाता। अगर उससे कोई कभी कहता भी कि तुम तो बहुत ही ज्ञानी हो, तो वह कहता, क्षमा करो। अब मुझे धोखा न दे पाओगे। मैं देख आया मरघट। वहां मैंने ज्ञानियों को धूल में मिलते देखा। और अगर कोई उससे कहता कि आपकी आंखें तो बड़ी सुंदर, तो वह कहता, क्षमा करो। अब तुम धोखा न दे पाओगे। मैं देख आया मरघट। सब आंखें राख से ज्यादा सिद्ध नहीं होतीं।
कृष्ण कहते हैं, यह सादृश्य-योग उच्चतम योग की स्थिति को पहुंचा देता है।
शुरू करें कहीं से। मौत से शुरू करें, आसान पड़ेगा। लेकिन हिम्मत न जुटेगी मरघट जाने की। डर लगता है मरघट जाने में। इसीलिए डर लगता है, क्योंकि मरघट कुछ बुनियादी खबरें देता है।
एक अंग्रेज कवि ने एक छोटा-सा गीत लिखा है, जिसमें कहा है--पुराने ईसाई आर्थोडाक्स ढंग से, गांव में जब कोई मरता है, तो चर्च की घंटी बजती है--उस कवि ने एक छोटा-सा गीत लिखा है और कहा है कि जब चर्च की घंटी बजे, तो किसी को पूछने मत भेजना कि किसके लिए बजती है। तुम्हारे लिए ही बजती है, तुम्हारे लिए ही बजती है।
जब चर्च की घंटी बजे, तो गांव में कोई मर गया। तो स्वभावतः गांव के लोग किसी को बाहर पूछने भेजते हैं, किसके लिए बजती है? उस गीतकार ने ठीक लिखा है, मत भेजना किसी को पूछने कि किसके लिए बजती है। तुम्हारे लिए ही बजती है, तुम्हारे लिए ही बजती है--इट टाल्स फार दी, इट टाल्स फार दी।
जब रास्ते से कोई मुर्दा निकले, तो मत पूछना कि कौन मर गया? जानना कि मैं ही मर गया हूं, मैं ही मर गया हूं। जब कोई अपमानित हो, जब कोई हारे और धूल-धूसरित हो जाए, तो मत सोचना कि कोई और गिर गया है। जानना कि मैं ही गिर गया हूं। और तब जीवन में भी धीरे-धीरे-धीरे सादृश्य फैलता चला जाएगा। सादृश्य के आते ही बड़ी करुणा पैदा होती है; बड़ी करुणा, महाकरुणा पैदा होती है। अंग्रेजी में शब्द बहुत अच्छा है करुणा के लिए, कंपैशन। उसमें अगर आधे कम को हम अलग कर दें, तो पीछे पैशन रह जाता है। दो तरह के लोग हैं, पैसोनेट और कंपैसोनेट। पैशन यानी वासना, और कंपैशन यानी करुणा। जब तक कोई आदमी कहता है कि मैं दूसरों से भिन्न हूं, तब तक वासना में जीएगा, पैशन में। और जब जानेगा कि मैं दूसरों के ही समान हूं, तो कंपैशन में प्रवेश कर जाएगा, करुणा में।
दो ही तरह के लोग हैं, वासना से जीने वाले और करुणा से जीने वाले। वासना में वे जीते हैं, जो अहंकार को केंद्र बनाते हैं। करुणा में वे जीते हैं, जो दूसरे के साथ सादृश्य को उपलब्ध हो जाते हैं।
सादृश्य अहंकार की मृत्यु है। और सादृश्य करुणा का जन्म है। सादृश्य
यह खबर देता है कि दूसरा भी उतना ही कमजोर है, जितना कमजोर मैं। सादृश्य कहता है, दूसरा भी उतनी ही सीमाओं में बंधा है, जितनी सीमाओं में मैं। मुझे भी किसी ने गाली दी है, तो क्रोध आ गया है। और अगर किसी दूसरे को भी गाली दी गई है, तो क्रोध आ गया है, तो मैं कठोर न हो जाऊं। करुणा अपेक्षित है, अगर सादृश्य का थोड़ा बोध है।
लेकिन सादृश्य का बोध हमें नहीं है। और इस बोध को समझने से नहीं समझा
जा सकता; इस बोध को जन्माने से समझा जा सकता है। इसका प्रयोग करना शुरू करें।
जब आप एक छोटे-से बच्चे को डांट रहे हैं बूढ़े होकर, तब आपको कभी भी ख्याल नहीं आता कि एक दिन आप भी छोटे-से बच्चे थे। इसी तरह डांटे गए थे। और आपको यह भी ख्याल नहीं आता कि यह बच्चा कल इसी तरह बूढ़ा हो जाएगा। अगर बूढ़े को बच्चे में यह सादृश्य दिखाई पड़ जाए, तो इस दुनिया में बूढ़ों और बच्चों के बीच जो कलह है, वह विदा हो जाए। वह कलह विदा हो जाए। उस कलह की कोई जगह न रह जाए।

लेकिन यह दिखाई नहीं पड़ता है। हम इसके लिए बिल्कुल अंधे हैं। इसलिए हमारे जीवन में महा दुख फलित होता है। लेकिन वह अति उत्तम योग और उससे उपलब्ध होने वाली शांति फलित नहीं होती।
शेष कल सुबह हम बात करेंगे।
अभी कीर्तन में पांच मिनट जाएंगे। नहीं, उठेगा कोई भी नहीं। अपनी जगह बैठे रहें। और साथ दें, बैठे न रहें। साथ देकर ही कीर्तन को समझा जा सकता है। देखें, देखने वाले कोई भी मंच पर नहीं आएंगे। आप वहीं बैठकर ताली बजाएं, गीत गाएं, डोलें, आंदोलित हों।

गीता दर्शन, भाग तीन
गीता दर्शन अध्याय 6
सोलहवां प्रवचन

मन का रूपांतरण

अर्जुन उवाच
योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन।
एतस्याहं न पश्यामि चंचलत्वात्स्थितिं स्थिराम्।। 33।।
चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।। 34।।
हे मधुसूदन, जो यह ध्यानयोग आपने समत्वभाव से कहा है, इसकी मैं मन के चंचल होने से बहुत काल तक ठहरने वाली स्थिति को नहीं देखता हूं। क्योंकि हे कृष्ण, यह मन बड़ा चंचल और प्रमथन स्वभाव वाला है, तथा बड़ा दृढ़ और बलवान है, इसलिए उसका वश में करना मैं वायु की भांति अति दुष्कर मानता हूं।

योग की आधारभूत शिलाओं के संबंध में कृष्ण के द्वारा बात किए जाने पर अर्जुन ने वही पूछा है, जो आप भी पूछना चाहेंगे। अर्जुन कह रहा है, बातें होंगी ठीक आपकी, मिलता होगा परम आनंद। आकर्षण भी बनता है कि उस आयाम में यात्रा करें। लेकिन मन बड़ा चंचल है। और समझ में नहीं पड़ता है कि इस चंचल मन के साथ कैसे उस थिर स्थिति को पाया जा सकेगा! क्षणभर भी ठहरेगी वह स्थिति, इसका भी भरोसा नहीं आता है।
फिर चंचल ही नहीं है यह मन, बहुत शक्तिशाली, बहुत जिद्दी भी है। बहुत अडिग, अपने स्वभाव को कायम भी रखता है। ऐसा लगता है कि हे मधुसूदन, जैसे वायु को वश में करना कठिन हो, वैसा ही कठिन इस मन को वश में करना है।
वायु के साथ खूबी है एक। वायु पर मुट्ठी बांधें, तो पकड़ में नहीं आती है। जितने जोर से मुट्ठी बांधें, उतनी ही मुट्ठी के बाहर हो जाती है। न तो दिखाई पड़ती है वायु कि हम उसका पीछा कर सकें। ऐसा ही मन भी दिखाई नहीं पड़ता है। और न ही वायु जरा ही देर थिर रहती है। जो अथिर है प्रतिपल, यहां से वहां डांवाडोल है, दौड़ती फिरती है, ऐसा ही यह मन है--प्रतिपल दौड़ता हुआ; अदृश्य; न दिखाई पड़ता, न पकड़ में आता; सिर्फ अनुभव होता है इसके कंपन का।
वायु का आपको अनुभव क्या है? वायु का कोई अनुभव नहीं है। वायु की दौड़ती, भागती धारा के थपेड़ों का अनुभव है। वायु अगर थिर हो, तो वायु का कोई भी अनुभव न होगा। उसकी अथिरता का ही अनुभव है, उसके प्रवाह का ही अनुभव है। दौड़ती है वायु आपको छूकर, तो उसका स्पर्श होता है। दौड़ता हुआ ही स्पर्श होता है। और तो कोई अनुभव नहीं है।
मन का भी, उसके परिवर्तन का ही अनुभव होता है; मन का तो कोई अनुभव नहीं है। उसकी चंचलता ही प्रतीति में आती है, और तो कुछ प्रतीति में आता नहीं है।
जैसे वायु की गति प्रतीति में आती है, वायु नहीं; ऐसे ही मन की भी चंचलता प्रतीति में आती है, मन नहीं। ऐसा जो अदृश्य, जो पकड़ के बाहर और सदा ही भागता हुआ मन है।
तो अर्जुन की शंका उचित ही है। वह पूछता है कृष्ण को, संभावी नहीं मालूम पड़ता, इंप्रोबेबल है, असंभव दिखता है। आप कहते हैं, सदा के लिए थिर हो जाए; क्षण के लिए भी थिर होना असंभव मालूम पड़ता है। मन का यह स्वभाव ही नहीं है कि थिर हो जाए। मन तो चंचल ही है। या कहें कि चंचलता ही मन है। दुरूह मालूम होती है बात। आकर्षण भारी। मन को देखकर, कमजोरी को देखकर, मन की स्थिति को देखकर असंभव मालूम होती है बात।
यह अर्जुन का ही सवाल नहीं है, यह पूरे मनुष्य के मन का सवाल है। इसमें दो-तीन बातें ध्यान में ले लेनी जरूरी हैं।
एक, कि मन के संबंध में जो भी हम जानते हैं, स्वभावतः उसी जानने के भीतर सोचते हैं। हमने मन को कभी थिर नहीं जाना। तो उचित ही लगता है, स्वाभाविक ही तर्कयुक्त लगता है कि मन की थिरता असंभव है। हमने कभी मन को

थिर नहीं जाना। इसलिए स्वाभाविक ही लगता है कि यह शंका उठे कि यह मन थिर नहीं हो सकेगा।
लेकिन यह हमारी धारणा नकारात्मक है। यह हमारी धारणा निगेटिव है। हमें थिरता का कोई अनुभव नहीं है, चंचलता का ही अनुभव है। इसलिए हमारा यह सोचना कि थिरता असंभव है, थोड़ा जरूरत से ज्यादा सोचना है। हम इतना ही कहें कि चंचल हैं हम, थिरता का हमें कोई पता नहीं। वहां तक बात तथ्य की है। लेकिन तत्काल हमारा मन एक कदम आगे बढ़कर नतीजा लेता है, जिसके लिए कोई कारण नहीं है। हमारा मन कहता है कि नहीं, थिरता असंभव है।
चंचलता हमने जानी है, वह हमारे अतीत का अनुभव है। थिरता हमारा अनुभव नहीं है। लेकिन जो हमारा अनुभव नहीं है, वह असंभव है, ऐसा कहने का कोई कारण नहीं है। अगर बहरे को कोई कहे, बहरे को कोई समझाए लिखकर कि वाणी संभव है; बहरा कहेगा, असंभव है। अंधे को कोई समझाने की कोशिश करे कि प्रकाश संभव है; अंधा कहेगा, असंभव है। अंधा कहेगा, हे मधुसूदन, अंधकार के सिवाय कभी कुछ जाना नहीं। मान नहीं सकता कि आंखें प्रकाश भी देख सकती हैं, क्योंकि अंधकार ही देखती रही हैं। एक क्षण को भी देख सकती हैं, यह अकल्पनीय मालूम पड़ता है, क्योंकि सदा से अंधकार ही जाना है।
फिर भी हम जानते हैं कि वह अंधे की धारणा नकारात्मक है। लेकिन अंधे की बात गलत न कह सकेंगे हम। अंधा अपने अनुभव से कहता है। और अनुभव के सिवाय कहने का उपाय भी क्या है!
हम जब मन के संबंध में कह रहे हैं, तब भी हम अपने अनुभव से कहते हैं। लेकिन अनुभव अंधे जैसा है। मन के अतिरिक्त हमने कभी कुछ जाना ही नहीं। जो हमने नहीं जाना है, उसके बाबत पाजिटिव कनक्लूजन लेना उचित नहीं है। अर्जुन का यह कहना तो ठीक है कि मन चंचल है, बहुत कठिन मालूम पड़ता है। लेकिन यह कहना उचित नहीं है कि अकल्पनीय मालूम पड़ता है, कृष्ण। यह हम अपनी अनुभूति के बाहर का नतीजा ले रहे हैं, जो खतरनाक हो सकता है। क्योंकि वैसा नतीजा, रोकने वाला सिद्ध होगा। वैसा नतीजा अवरोध बन जाएगा।
एक बार किसी ने सोच लिया कि ऐसी बात असंभव है, तो करने की धारणा ही छूट जाती है। असंभव को कोई करने नहीं निकलता। जब कोई असंभव को भी करने निकलता है, तो मानकर चलता है कि संभव है। अगर संभव को भी कोई मान ले कि असंभव है, तो करने ही नहीं निकलता। और मान्यता फिर असंभव ही बना देगी; क्योंकि जब करने ही नहीं जाएंगे, तो सिद्ध ही हो जाएगा कि देखो, असंभव है; क्योंकि फलित नहीं होगा। और इस तरह तर्क का अपना एक दुष्चक्र, एक विशियस सर्किल है। अगर आप मानते हैं कि असंभव है, तो आप करेंगे नहीं; करेंगे नहीं, तो संभव नहीं हो पाएगा। आपकी मान्यता और दृढ़ हो जाएगी कि असंभव है। देखो, कहा था पहले ही कि असंभव है!
अगर आप असंभव को भी संभव मानकर चलते हैं, तो करने की सामर्थ्य, शक्ति बढ़ती है। और कुछ आश्चर्य नहीं कि असंभव भी संभव हो जाए। क्योंकि बहुत असंभव संभव होते देखे गए हैं। असल में हम असंभव उसे कहते हैं, जिसे हम नहीं कर पा रहे हैं। लेकिन जिसे हम नहीं कर पा रहे हैं, उसे नहीं ही कर पाएंगे, ऐसा निष्कर्ष लेने की तो कोई भी जरूरत नहीं है।
पर अक्सर हम अतीत से निष्कर्ष लेते हैं भविष्य का। अतीत भविष्य का निर्धारक नहीं है; और अतीत से कोई नतीजा भविष्य के लिए नहीं लिया जा सकता। मैं अभी तक नहीं मरा हूं, इसलिए मैं अगर कहूं कि मृत्यु असंभव है, तो गलती है कुछ? इतने दिन का अनुभव है, इतने दिन जीकर जाना है कि नहीं मरता हूं। अगर मैं कहूं कि इतने वर्ष का अनुभव!
एक आदमी कहे कि अस्सी वर्ष का मेरा अनुभव कि नहीं मरता हूं, नतीजा देता है कि मृत्यु असंभव है। अस्सी वर्ष तक जो संभव नहीं हो पाया, वह अचानक एक क्षण में संभव हो जाएगा, यह तर्कयुक्त नहीं मालूम होता। जो अस्सी वर्ष तक नहीं आ सकी मौत, अस्सी वर्ष तक मैं प्रतीक्षा करता रहा हूं, वह एक क्षण में कैसे आ जाएगी? जिसको अस्सी वर्ष मैंने हराया, वह एक क्षण में मुझे कैसे हराएगी? जो अस्सी वर्ष तक मेरी प्रतीति नहीं बनी, वह एक क्षण में मेरा अनुभव नहीं बन सकता है--ऐसा अगर कोई कहे, तो गलत कह रहा है? ठीक ही मालूम पड़ता है, तर्कयुक्त मालूम पड़ता है।

लेकिन सभी तर्कयुक्त बातें सत्य नहीं होतीं। सच तो यह है कि सभी असत्य तर्कयुक्त रूप लेते हैं। सभी असत्य अपने आस-पास तर्क का जाल बुन लेते हैं।
अर्जुन कहता है, असंभव मालूम पड़ता है--अकल्पनीय, इनकंसीवेबल--कोई धारणा नहीं बनती कि यह हो सकता है, एक क्षण को भी ठहरेगा मन। लेकिन यह अर्जुन बिना जाने कह रहा है।
अर्जुन एक अर्थ में ठीक कह रहा है, क्योंकि हम सब का अनुभव यही है। एक अर्थ में गलत कह रहा है, क्योंकि जो हमारा अनुभव नहीं है, उसके संबंध में कोई भी विधायक वक्तव्य ठीक नहीं है।
एक आदमी कहता है कि मेरा जीवन हो गया, मैंने ईश्वर का कहीं दर्शन नहीं किया, इसलिए ईश्वर नहीं है। उसे इतना ही कहना चाहिए कि ईश्वर है या नहीं, मुझे पता नहीं। इतना ही मुझे पता है कि मैंने उसका अभी तक दर्शन नहीं किया है। तो बात बिल्कुल ही तथ्य की है।
लेकिन मैंने दर्शन नहीं किया है, इसलिए ईश्वर नहीं है, तो फिर तर्क अपनी सीमा के बाहर गया। और अक्सर तर्क कब अपनी सीमा के बाहर चला जाता है, हमें पता नहीं चलता। एक छोटी-सी छलांग तर्क लेता है, और खतरनाक स्थितियों में पहुंचा देता है।
एक बिल्कुल छोटी-सी छलांग; मैंने ईश्वर को नहीं जाना अब तक; बहुत खोजा, नहीं पाया। सब तरह खोजा, नहीं दर्शन हुआ, तो ईश्वर नहीं है। इन दोनों के बीच में गैप है, जो आपको दिखाई नहीं पड़ रहा है। इस निष्पत्ति तक पहुंचने के लिए उतने आधार काफी नहीं हैं। इस निष्पत्ति पर तो वही पहुंच सकता है, जो यह भी कह सके कि जो भी संभव था, वह सब मैंने देख लिया; जो भी अस्तित्व था, वह मैंने पूरा छान डाला; कोना-कोना जहां तक असीम का विस्तार था, मैंने सब पा लिया, देख लिया। अब एक रत्तीभर अस्तित्व नहीं बचा है छानने को, इसलिए मैं कहता हूं कि ईश्वर नहीं है। तब उसकी बात में कोई तर्कयुक्तता हो सकती है। लेकिन सदा शेष है।
तो अर्जुन के इस संदेह में वास्तविकता है। फिर भी कहीं कोई गहरी भूल है।
दूसरी बात वह कहता है कि वायु की तरह है। और ठीक उसने उपमा ली है। ठीक उसने उपमा ली है। लेकिन फिर भी उपमा में कुछ बुनियादी भूलें हैं, वह ख्याल में ले लें, तो कृष्ण का उत्तर समझना आसान हो जाएगा।
एक तो बुनियादी भूल यह है कि वायु पदार्थ है, मन पदार्थ नहीं है। वायु पदार्थ है, मन पदार्थ नहीं है। अर्जुन के वक्त में तो वायु को पकड़ना मुश्किल था, अब मुश्किल नहीं है। अगर आज अर्जुन सवाल पूछता, तो वायु की उपमा नहीं ले सकता था। आज तो विज्ञान ने सुलभ कर दिया है। हम चाहें तो वायु को ठंडा करके पानी बना ले सकते हैं। और ज्यादा ठंडा कर सकें, तो ठोस पत्थर की तरह वायु जम जाएगी।
क्योंकि विज्ञान कहता है, प्रत्येक पदार्थ की तीन अवस्थाएं हैं। जैसे बर्फ, पानी, भाप। इसी तरह प्रत्येक पदार्थ की तीन अवस्थाएं हैं। और प्रत्येक पदार्थ एक अवस्था से दूसरी अवस्था में प्रवेश कर सकता है। वायु भी एक विशेष ठंडक पर जल की तरह हो जाती है; और एक विशेष ठंडक पर पत्थर की तरह जम जाएगी। पदार्थ की तीन अवस्थाएं हैं।
खैर, अर्जुन को उसका कोई पता नहीं था। अगर आज कोई अर्जुन की तरफ से पूछता, तो वायु का उदाहरण नहीं ले सकता था। क्योंकि वायु अब बिल्कुल मुट्ठी में पकड़ी जा सकती है; ठंडी करके पानी बनाई जा सकती है; बर्फ की तरह जमाई जा सकती है। उसे कोई आदमी हाथ में लेकर चल सकता है।
पदार्थ की तुलना मन से देने में एक बुनियादी भूल हो गई। मन तो सिर्फ विचार है। मन है क्या, इसे हम थोड़ा ठीक से समझ लें, तो बहुत साफ हो जाएगी बात।
दो चीजों के बाबत हमें बड़ी सफाई है। एक तो शरीर के बाबत बहुत साफ स्थिति है कि शरीर है। वह पदार्थ का समूह है। वह पंचभूत कहें, या जितने भूत हों उतने कहें, उन सब का समूह है। उसके बाबत बहुत स्थिति साफ है। आत्मा है, उसके बाबत भी स्थिति साफ है कि वह पदार्थ नहीं है। इतना तो साफ है

नकारात्मक, कि वह पदार्थ नहीं है। वह चैतन्य है, वह कांशसनेस है। यह मन क्या है दोनों के बीच में?
यह मन दोनों के मिलन से उत्पन्न हुई एक बाइ-प्रोडक्ट है। यह मन पदार्थ
और चेतना के मिलन से पैदा हुई एक उत्पत्ति है। वस्तुतः देखा जाए, तो शरीर का भी बहुत गहन अस्तित्व है और आत्मा का भी। मन का गहन अस्तित्व नहीं है। मन ऐसा है, जैसे कि मैं आपको एक जंगल में मिल जाऊं। और हम दोनों के बीच मैत्री का जन्म हो। आप भी बहुत हैं, मैं भी बहुत हूं, लेकिन यह मैत्री हम दोनों के बीच एक संबंध है। यह मैत्री पदार्थ भी नहीं है, और यह मैत्री आत्मा भी नहीं है। क्योंकि अकेले दो पदार्थों के बीच यह घटित नहीं हो सकती, इसलिए पदार्थ तो नहीं है। और अकेली दो आत्माओं के बीच भी घटित नहीं हो सकती बिना शरीरों को बीच में माध्यम बनाए, तो यह सिर्फ आत्मा भी नहीं है। लेकिन शरीर और आत्मा मौजूद हों, तो मैत्री नाम का एक संबंध, एक रिलेशनशिप घटित हो सकती है।
मन वस्तु नहीं है, संबंध है। मन पदार्थ नहीं है, संबंध है। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें; क्योंकि संबंध को पदार्थ से तुलना देने में बड़ी भूल हो जाएगी। पदार्थ को कभी तोड़ा नहीं जा सकता। आप कहेंगे, तोड़ा जा सकता है; हम एक पत्थर के दस टुकड़े कर सकते हैं। आपने पदार्थ नहीं तोड़ा, सिर्फ पत्थर तोड़ा है। पदार्थ तोड़ने का मतलब यह है कि पत्थर को आप इतना तोड़ें, इतना तोड़ें कि पत्थर शून्य में विलीन हो जाए। आप नहीं तोड़ सकते। विज्ञान कहता है, कोई पदार्थ तोड़ा नहीं जा सकता इस अर्थ में। नष्ट नहीं किया जा सकता। लेकिन संबंध नष्ट किया जा सकता है। मेरे और आपके बीच की मैत्री के नष्ट होने में कौन-सी कठिनाई है! मैत्री नष्ट हो सकती है; बिल्कुल नष्ट हो सकती है। अस्तित्व में फिर वह कहीं ढूंढ़े से न मिलेगी।
संबंध नष्ट हो सकते हैं, पदार्थ नष्ट नहीं होता। वायु पदार्थ है, मन संबंध है। मन संबंध है शरीर और आत्मा के बीच। शरीर और आत्मा के बीच जो दोस्ती है, उसका नाम मन है। शरीर और आत्मा के बीच जो मैत्री हो गई है, उसका नाम मन है। शरीर और आत्मा के बीच जो राग है, उसका नाम मन है। शरीर और आत्मा के बीच जो लेश्या है, उसका नाम मन है। शरीर और आत्मा के बीच जो संबंध है, रिलेशनशिप है, उसका नाम मन है।
निश्चित ही, यह संबंध शरीर की तरफ से आत्मा की तरफ नहीं हो सकता, क्योंकि शरीर जड़ है। अगर मैं अपनी कार को प्रेम करने लगता हूं, तो भी मैं यह नहीं कह सकता कि मेरी कार मुझे प्रेम करती है। कार की तरफ से मेरी तरफ कोई प्रेम नहीं हो सकता। इकतरफा है; वन वे ट्रैफिक है।
तो संबंध में भी एक बात ख्याल रख लेना कि जब दो व्यक्तियों के बीच मैत्री होती है, तो टू वे ट्रैफिक, डबल ट्रैफिक है। यहां से भी कुछ जाता है, वहां से भी कुछ आता है। लेकिन जब एक व्यक्ति और एक वस्तु के बीच संबंध होता है, तो वन वे ट्रैफिक है। एक ही तरफ से जाता है; दूसरी तरफ से कुछ आता नहीं। तो संबंध भी यह इस तरह का है, जैसा कि एक व्यक्ति और वस्तु के बीच होता है; दो व्यक्तियों के बीच नहीं। एक तरफ चेतना है भीतर, और दूसरी तरफ पदार्थ है शरीर। चेतना की तरफ से ही यह संबंध है।
और ध्यान रहे, इकतरफा संबंध में एक सुविधा है, उसे तोड़ने में सदा ही इकतरफा निर्णय काफी होता है। दो तरफा संबंध तोड़ने में कठिनाई है। अगर मैं किसी व्यक्ति को प्रेम करूं, तो झंझट है तोड़ते वक्त; क्योंकि दूसरी तरफ से भी कुछ लेन-देन हुआ है। और जब तक दोनों राजी न हो जाएं तोड़ने को, तब तक तोड़ने में कठिनाई है, अड़चन है।
वस्तु के साथ संबंध तोड़ने में कोई भी अड़चन नहीं है, क्योंकि इकतरफा है। मेरा ही निर्णय था कि संबंधित हूं। मेरा ही निर्णय है कि संबंधित नहीं हूं, बात समाप्त हो गई। वस्तु जाकर किसी अदालत में मुकदमा नहीं करेगी कि यह आदमी मुझे डायवोर्स कर रहा है, कि यह तलाक मांगता है। वस्तु को कोई प्रयोजन नहीं है। जब मेरा संबंध था, तब भी वस्तु का कोई संबंध मुझसे नहीं था।
इसलिए ध्यान रखें कि मन एक संबंध है, पहली बात, वस्तु नहीं। दूसरी बात,
मन इकतरफा संबंध है--चेतना का शरीर की तरफ; शरीर से चेतना की तरफ नहीं।

शरीर की तरफ से चेतना की तरफ कोई संबंध की धारा ही नहीं है। सारी धारा चेतना से शरीर की तरफ है।
इसलिए अर्जुन जब कहता है, वायु जैसा है, तो कई भूलें करता है। उपमा में भूलें अक्सर हो जाती हैं। मन पदार्थ नहीं है, इसलिए वायु जैसा नहीं है। इसलिए वायु तो किसी दिन पकड़ ली जाएगी, पकड़ ली गई; मन को किसी भी दिन नहीं पकड़ा जा सकेगा। संबंध को पकड़ने का कोई उपाय नहीं है। इसीलिए विज्ञान मन को मानने तक को राजी नहीं है। उसका कारण है कि उसकी लेबोरेटरी में, उसकी प्रयोगशाला में कहीं भी मन पकड़ा नहीं जा सकता।
एक आदमी को काटकर, विज्ञान सब तरफ से डिसेक्ट करके खोज लेता है। हड्डी मिलती है, मांस मिलता है, मज्जा मिलती है, खून मिलता है, पानी मिलता है, लोहा, तांबा सब मिलता है। एक चीज नहीं मिलती, मन। इसलिए विज्ञान कहता है, हमने खोज करके देख लिया, मन नहीं मिलता। और जो नहीं मिलता है, वह नहीं है। वही भूल तर्क की फिर हो रही है। क्योंकि जो नहीं मिलता, जरूरी नहीं है कि नहीं हो। हो सकता है, खोजने का ढंग ऐसा है कि वह नहीं मिल सकता।
अगर आपके हृदय की काट-पीट करके हम खोजें कि प्रेम है या नहीं; और न मिले--नहीं मिलेगा; अब तक नहीं मिला। कभी नहीं मिलेगा। फेफड़ा खोलकर पूरा देख लेंगे। फुफ्फुस मिलेगा, हवा को फेंकने का यंत्र मिलेगा। प्रेम-व्रेम नहीं मिलेगा।
इसलिए वैज्ञानिक कहते हैं कि फेफड़ा है, हृदय है ही नहीं। नाहक हृदय-हृदय की लोग बातें किए जा रहे हैं! एक कविता है हृदय, यह है नहीं।
लेकिन क्या आप मानने को राजी होंगे कि प्रेम नहीं है? सबका अनुभव है
कि है। मां जानती है कि है। बेटा जानता है कि है। मित्र जानते हैं कि है। प्रेमी जानते हैं कि है।
अनुभव में सबके है प्रेम, लेकिन फिर भी प्रयोगशाला में सिद्ध नहीं होगा। और अगर प्रयोगशाला के वैज्ञानिक से आपने जिद्द की, तो आप ही गलत सिद्ध होंगे। असल में प्रयोगशाला जिन साधनों का उपयोग कर रही है, वे वस्तुओं के पकड़ने के साधन हैं, उनसे संबंध पकड़ में नहीं आते। संबंध छूट जाते हैं।
संबंध वस्तु नहीं है। और इसलिए संबंध की एक खूबी है कि संबंध बन सकता
है और विनष्ट हो सकता है। संबंध शून्य से पैदा होता है और शून्य में विलीन हो जाता है।
इस बात को ठीक से समझ लें।
वस्तु कभी भी पैदा नहीं होती; वस्तु सदा है। और कभी नष्ट नहीं होती; सदा है। न तो वस्तु का कोई सृजन होता है और न कोई विनाश होता है; सिर्फ रूपांतरण होता है। जो अभी पानी था, वह बर्फ बन जाता है। जो बर्फ था, वह पानी बन जाता है। जो पानी था, वह भाप बन जाता है। जो अभी पहाड़ पर जमा था, वह समुद्र में पिघलकर बह जाता है। जो अभी शरीर था, वह कल खाद बन जाता है। जो अभी खाद है, वह कल शरीर बन जाता है। जो अभी पौधे में बीज की तरह प्रकट हुआ है, वह कल आपका खून बन जाता है। जो अभी आपके भीतर खून है, कल जमीन में समाकर फिर किसी बीज में प्रवेश कर जाएगा। सब रूपांतरण हैं; लेकिन मूल नहीं खोता है। मूल थिर है।
आइंस्टीन का ख्याल स्वीकृत हुआ है, और वह यह कि इस जगत में जितनी वस्तु है, जितना मैटर है, वह सीमित है। क्योंकि उसमें नया नहीं जुड़ सकता और पुराना घट भी नहीं सकता। वह कितना ही विराट हो, लेकिन पदार्थ सीमित है। हम नाप पाएं कि न नाप पाएं; हमारे नापने के साधन छोटे पड़ जाएं, लेकिन पदार्थ सीमित है, क्योंकि उसमें नया एडीशन नहीं हो सकता। एक पानी की बूंद ज्यादा नहीं जोड़ी जा सकती इस जगत में!
आप कहेंगे, हम हाइड्रोजन और आक्सीजन को मिलाकर पानी बना सकते हैं। बिल्कुल बना सकते हैं। लेकिन हाइड्रोजन आक्सीजन को ही मिलाकर बना सकते हैं। वह हाइड्रोजन आक्सीजन का एक रूप है। वह कोई नई घटना नहीं है। आज तक एक रेत का टुकड़ा भी हम नया नहीं बना सकते हैं। न बना सके हैं और न बना सकेंगे। पदार्थ जैसा है, है। जितना है, है। उतना ही है, उतना ही रहेगा। लेकिन संबंध रोज नए बन सकते हैं, और रोज खो जा सकते हैं।

इस जमीन पर जितने लोग रहे हैं, उनके शरीरों में जितना था, वह सब अभी इस जमीन में मौजूद है; जमीन का वजन कम-ज्यादा नहीं होता। हम कितने ही लोग पैदा हों, मर जाएं, जमीन का वजन उतना ही रहता है। हम जब जिंदा रहते हैं, तब भी उतना रहता है; जब मर जाते हैं, तब भी जमीन का वजन उतना ही रहता है। हमारे शरीर में से कुछ खोता नहीं। हां, जमीन में गिर जाता है, रूप बदल जाते हैं। लेकिन हमारे संबंधों का क्या होता है? कोई प्रेम किया था। कोई फरिहाद किसी शीरी को प्रेम किया था। उस प्रेम का क्या हुआ? जब वह प्रेम चल रहा था, तब भी जमीन पर कोई चीज बढ़ी नहीं थी, और जब वह प्रेम नहीं है, तब भी जमीन पर कोई चीज घटी नहीं है। वह प्रेम क्या था? वह चला है, यह निश्चित है। क्योंकि वह प्रेम इतना बड़ा भी हो जाता है कभी कि कोई अपने पदार्थगत शरीर की गर्दन काट दे। प्रेमी अपने को मार डाल सकता है। प्रेम इतना हो सकता है गहन कि शरीर को तोड़ दे, जीवन को नष्ट कर दे। तो वह प्रेम नहीं है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। वह है तो है ही। और कभी-कभी तो जीवन से भी ज्यादा वजनी हो जाता है। लेकिन वह है क्या?
वह संबंध है, रिलेशनशिप है। संबंध की एक खूबी है कि वह खो सकता है; बन
भी सकता है, मिट भी सकता है।
इसलिए अर्जुन का यह ख्याल कि वायु की तरह है यह मन, ठीक नहीं है। उदाहरण करीब-करीब सूचक है, लेकिन ठीक नहीं है। प्रामाणिक नहीं है। जमता है, फिर भी बहुत गहरे में नहीं जमता है। मन एक संबंध है।
और यह भी बात अर्जुन की ठीक नहीं है--हम सबके मन में हैं ये बातें, इसलिए मैं कह रहा हूं--यह भी बात अर्जुन की ठीक नहीं है कि इस मन को थिर नहीं किया जा सकता। क्योंकि एक और गहरे नियम की आपको मैं बात कर दूं, जो भी चीज चंचल हो सकती है, वह थिर हो सकती है। और जो चीज थिर नहीं हो सकती, वह चंचल भी नहीं हो सकती। जो भी दौड़ सकता है, वह खड़ा हो सकता है। और जो खड़ा भी नहीं हो सकता, वह दौड़ भी नहीं सकता। अगर आप दौड़ सकते हैं, तो आप खड़े हो सकते हैं। दौड़ने की क्षमता साथ में ही खड़े होने की क्षमता भी है। भला आप कभी खड़े न हुए हों, दौड़ते ही रहे हों, और अब ऐसी आदत बन गई हो कि आपको ख्याल ही न आता हो कि खड़े कैसे होंगे! बन जाता है।
मैंने सुना है कि एक आदमी पक्षाघात से, पैरालिसिस से परेशान है दस साल से। घर के भीतर बंद पड़ा है; उठ नहीं सकता। लेकिन एक दिन रात, आधी रात अंधेरे में आग लग गई। सारे घर के लोग बाहर निकल गए। वह पैरालिसिस से करीब-करीब मरा हुआ आदमी, वह भी दौड़कर बाहर आ गया। जब वह दौड़कर बाहर आया, तो लोग चकित हुए। वे तो हैरान थे कि अब क्या होगा, उसको निकाला नहीं जा सकता। लेकिन जब उसको लोगों ने दौड़ते देखा, तो मकान की आग तो भूल गए लोग। दस साल से वह आदमी हिला नहीं था, वह दौड़ रहा है!
लोगों ने कहा, यह क्या हो रहा है। चमत्कार, मिरेकल! आप, और दौड़ रहे हैं!
उस आदमी ने नीचे झांककर अपने पैर देखे। उसने कहा, मैं दौड़ कैसे सकता हूं! वापस गिर गया। मैं दौड़ ही कैसे सकता हूं? दस साल से... !
लेकिन अब वह कितना ही कहे कि दौड़ नहीं सकता, लेकिन वह खाट से मकान के बाहर आया है। फिर नहीं उठ सका वह आदमी। पर क्या हुआ क्या? इस बीच आ कैसे गया?
वह जो एक कंडीशनिंग थी, एक ख्याल था कि मैं उठ नहीं सकता, चल नहीं सकता,
आग के सदमे में भूल गया। बस, इतना ही हुआ। एक शॉक। और वह भूल गया पुरानी आदत। दौड़ पड़ा।
सौ में से नब्बे पक्षाघात के बीमार मानसिक आदत से बीमार हैं। सौ में
से नब्बे! शरीर में कहीं कोई खराबी नहीं है। सौ में से नब्बे, मैं कह रहा हूं। लेकिन एक आदत है।
और मन के मामले में तो सौ में से सौ दौड़ने के बीमार हैं। पक्षाघात से उलटा। इतने जन्मों से मन को दौड़ा रहे हैं कि अब यह सोच में भी नहीं आता कि मन खड़ा हो सकता है? नहीं हो सकता। कौन कहता है, नहीं हो सकता? यह मन ही कह रहा है।
तो अर्जुन जो सवाल पूछ रहा है, वह अगर ठीक से हम समझें, तो अर्जुन नहीं पूछ रहा है। अर्जुन अभी है भी नहीं, पूछेगा कैसे! मन ही पूछ रहा है। मन ही कह रहा है कि मैं कभी खड़ा नहीं हो सकता। मैं कभी खड़ा हुआ ही नहीं। मैं सदा

चलता ही रहा। दा.ैडना मेरी प्रकृति है। चंचलता मेरा स्वभाव है। मैं चंचलता ही हूं; मैं खड़ा नहीं हो सकता।
लेकिन ध्यान रहे, इस जगत में प्रत्येक शक्ति अपनी विपरीत शक्ति से जुड़ी होती है। जो जीएगा, वह मरेगा। जीने के साथ मरना जुड़ा रहता है। यहां कोई भी शक्ति अकेली पैदा नहीं होती, पोलेरिटी में पैदा होती है। अस्तित्व पोलर है, ध्रुवीय है। यहां हर चीज अपने विपरीत से जुड़ी है, विपरीत के बिना अस्तित्व में नहीं हो सकती।
अगर हम दुनिया से प्रकाश समाप्त कर दें, तो आप सोचते होंगे, अंधेरा ही अंधेरा रह जाएगा। आप गलत सोचते हैं। अगर हम दुनिया से प्रकाश समाप्त कर दें, अंधेरा तत्काल समाप्त हो जाएगा। आप कहेंगे, फिर क्या होगा? कुछ भी हो, अंधेरा नहीं हो सकता। हां, बात असल यह है कि प्रकाश आप समाप्त न कर पाएंगे। इसलिए पता करना मुश्किल है। प्रकाश और अंधेरा संयुक्त अस्तित्व हैं।
और आसान होगा समझना, अगर दुनिया से हम गर्मी समाप्त कर दें, तो क्या आप सोचते हैं, सर्दी बच रहेगी? ऊपर से तो ऐसे ही दिखाई पड़ता है कि गर्मी बिल्कुल समाप्त हो जाएगी, तो एकदम ठंडक हो जाएगी दुनिया में। लेकिन ठंडक गर्मी का एक रूप है, गर्मी के साथ ही समाप्त हो जाएगी। वह दूसरा पोल है। अगर आप सोचते हों कि हम सब पुरुषों को समाप्त कर दें, तो दुनिया में स्त्रियां ही स्त्रियां रह जाएंगी, तो आप गलत सोचते हैं। अगर सब पुरुषों को समाप्त कर दें, स्त्रियां तत्काल समाप्त हो जाएंगी। या सब स्त्रियों को समाप्त कर दें, तो पुरुष तत्काल समाप्त हो जाएंगे। वे पोलर हैं। वे एक-दूसरे के छोर हैं। एक ही साथ हो सकते हैं, अन्यथा नहीं हो सकते।
क्या आप सोचते हैं, इस दुनिया में हम शत्रुता समाप्त कर दें, तो मित्रता ही बचेगी? तो आप गलत सोचते हैं। हालांकि बहुत लोग इसी तरह सोचते हैं कि दुनिया से शत्रुता समाप्त कर दो, तो मित्रता ही मित्रता बच जाएगी! उन्हें कोई पता नहीं है अस्तित्व के नियमों का। जिस दिन दुनिया से शत्रुता समाप्त होगी, उसी दिन मित्रता समाप्त हो जाएगी। मित्रता जीती है शत्रुता के साथ।
दुनियाभर के शांतिवादी हैं, वे कहते हैं कि दुनिया से युद्ध बंद कर दो, तो शांति ही शांति हो जाएगी। वे गलत कहते हैं। उन्हें जीवन के नियम का कोई पता नहीं है। अगर आप युद्ध समाप्त करते हैं, उसी दिन शांति भी समाप्त हो जाएगी। पोलर है। अस्तित्व एक-दूसरे से बंधा है, विपरीत से बंधा है। ऊपर से सोचने में ऐसा लगता है कि ठीक है, पुरुष को समाप्त करने से... हम
सब पुरुषों की छाती में छुरा भोंक दें। तो स्त्रियों की छाती में तो छुरा भोंक ही नहीं रहे, तो वे तो बचेंगी ही! पर आपको पता ही नहीं है। वे तत्काल विनष्ट हो जाएंगी। इधर पुरुष समाप्त होंगे, उधर स्त्रियां कुम्हलाएंगी, सूखेंगी और विदा हो जाएंगी। जिस दिन आखिरी पुरुष समाप्त होगा, उस दिन आखिरी स्त्री मर जाएगी।
अस्तित्व पोलर है, ध्रुवीय है। हर चीज अपने विपरीत के साथ जुड़ी है।
इसलिए अर्जुन का यह कहना कि मन चंचल है, इसलिए ठहर नहीं सकता, गलत है। चंचल है, इसीलिए ठहर सकता है। चंचल है, इसीलिए ठहर सकता है। अगर जीवन के नियम का बोध हो, तो कहना था ऐसा कि मन का स्वभाव चूंकि चंचल है, हे मधुसूदन, इसलिए मेरी बात समझ में आ गई। मन ठहर सकता है।
यह ठीक नियमयुक्त बात होती, लेकिन बड़ी एब्सर्ड। अगर अर्जुन ऐसा कहता
कि मन चंचल है, इसलिए मैं समझ गया कि ठहर सकता है, तो हमें भी बड़ी दिक्कत पड़ती गीता समझने में। हम कहते, यह अर्जुन कैसा पागल है! जब मन चंचल है, तो ठहरेगा कैसे?
तो यह तो हमें, यह सिलोजिज्म, यह तर्क-वाक्य तो ठीक मालूम पड़ता है कि
मन चंचल है, मधुसूदन, इसलिए, देअर फोर, ठहर नहीं सकता। यह तो बिल्कुल तर्कयुक्त मालूम पड़ता है।
लेकिन मैं आपसे कहता हूं, यह तर्कयुक्त है, लेकिन सत्य नहीं है। सत्य वचन तो यह होगा कि चूंकि मन चंचल है, मधुसूदन, इसलिए, देअरफोर, ठहर सकता है। यह सत्य होगा। क्योंकि आदमी जीवित है, इसलिए मर सकता है। अगर आपने कहा, चूंकि आदमी जीवित है, इसलिए नहीं मर सकता, तो गलत होगा। अगर आपने कहा कि

आदमी स्वस्थ है, इसलिए बीमार नहीं पड़ सकता, तो गलत है। अगर आप कहें कि आदमी स्वस्थ है, इसलिए बीमार पड़ सकता है, तो ठीक है।
असल में स्वस्थ आदमी ही बीमार पड़ता है। अगर आप इतने बीमार हो जाएं कि डाक्टर कह दे, स्वास्थ्य रत्तीभर नहीं बचा, तो फिर आप बीमार न पड़ सकेंगे, ध्यान रखना। मरा हुआ आदमी कभी बीमार पड़ते देखा है आपने? आप कह सकते हैं कि यह मुर्दा बीमार पड़ गया? मुर्दा बीमार पड़ता ही नहीं। पड़ ही नहीं सकता। जिंदा ही बीमार पड़ सकता है। स्वास्थ्य हो, तो ही आप बीमार पड़ सकते हैं। असल में बीमारी का पता ही इसलिए चलता है कि स्वास्थ्य का भी पता चलता है। यह पोलर है, यह ध्रुवीय है।
पर अर्जुन को इस सत्य का कोई बोध नहीं है। हम जैसा ही उसका मन है। जिस तर्क-विधि से हम चलते हैं, उसी तर्क-विधि से वह चलता है। हम कहते हैं कि फलां व्यक्ति से मेरा इतना प्रेम है कि कभी झगड़ा नहीं होगा। बस, हम गलत बातों में पड़ गए। जिससे प्रेम है, उससे झगड़ा होगा। पोलर हैं। जब आपका किसी से प्रेम हो, तो आप समझ लेना कि आप झगड़े का एक नाता स्थापित कर रहे हैं। लेकिन हमारा तर्क नहीं है ऐसा। हम कहते हैं, मेरा इतना प्रेम है कि झगड़ा कभी नहीं होगा। बस, मूढ़ता में पड़े आप। आपको जिंदगी की पोलेरिटी का कोई पता नहीं है। जिससे जितना ज्यादा प्रेम है, उससे उतनी ही कलह की संभावना है। अगर कलह से बचना हो, तो कृपा करके प्रेम से बच जाना। और आप सोचते हों कि प्रेम-प्रेम हम सम्हाल लेंगे, और कलह-कलह से बच जाएंगे, तो आप निपट अंधकार में हो। आपको जिंदगी में यह कभी भी रास्ते पर नहीं लाएगी बात। जिसको शत्रुता से बचना हो, उसको मित्रता से बच जाना चाहिए। लेकिन हम करते हैं कोशिश कि मित्र बना लें, ताकि शत्रुता से बच जाएं। प्रेम फैला दें, ताकि संघर्ष न हो। अपना बना लें, ताकि कोई पराया न रहे। जो जितना गहरा आपका अपना है, उससे आपको उतने ही पराएपन के क्षण उपलब्ध होंगे। जो आपके जितना निकट है, किन्हीं क्षणों में वह आपको इस पृथ्वी पर सर्वाधिक दूर मालूम पड़ेगा।
मगर यह जीवन का गहरा नियम है, जो हमारे सामान्य हिसाब में नहीं आता।
और इसलिए हम जिंदगीभर गलती किए चले जाते हैं। जिंदगीभर गलती किए चले जाते हैं। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि मेरा तो मेरी पत्नी से इतना प्रेम है, फिर कलह क्यों होती है? मैं कहता हूं, इसीलिए। और तो कोई कारण नहीं है।
अभी एक मौका आया। कोई आठ साल पहले एक महिला ने मुझे आकर कहा था कि मेरे पति से बहुत कलह होती है। और मेरा प्रेम इतना है! मेरा यह प्रेम-विवाह है, और हमने जी-जान लगाकर यह शादी की है। न मेरे घर के लोग पक्ष में थे, न उस घर के लोग पक्ष में थे। और जब तक हम घर के लोगों से लड़ रहे थे, तब तक ही हमारा प्रेम रहा। और जब से हमने शादी की, तब से हम दोनों लड़ रहे हैं! इतना प्रेम था कि हम जीवन देने को तैयार थे, और अब हालत ऐसी है कि एक साथ बैठना मुश्किल हो गया है। बात क्या है? मैंने कहा, यही बात है। इतना प्रेम होगा, तो यही फल होगा।
फिर आठ साल बाद वह महिला मुझे मिली। मैंने उससे पूछा, कहो, कलह कैसी चल रही है? उसने कहा, कलह! कलह अब बिल्कुल नहीं चलती, क्योंकि प्रेम ही नहीं रहा। अब कलह भी नहीं चलती। उसने जो शब्द मुझे कहे, वे बहुत ठीक थे। उसने कहा, अब कलह भी नहीं चलती है। अब तो कोई संबंध ही नहीं रहा। बात ही शांत हो गई। प्रेम ही नहीं बचा; अब कलह भी नहीं बची!
जितना हम मन के भीतर जाएंगे या जीवन के भीतर जाएंगे, उतना इस विरोधी तत्व को पाएंगे। रिपल्शन और अट्रैक्शन, विकर्षण और आकर्षण एक साथ हैं। राग और विराग एक साथ हैं। विरोध साथ में खड़े हैं।
इसलिए अर्जुन लगता है कि ठीक पूछ रहा है; ठीक नहीं पूछ रहा है। और अर्जुन को यह भी ख्याल नहीं है कि कृष्ण जो कह रहे हैं, वह कोई सिद्धांत नहीं कह रहे हैं। अगर कृष्ण कोई सिद्धांत कह रहे हैं, तो अर्जुन कृष्ण को हरा देगा। अगर कृष्ण कोई सिद्धांत कह रहे हैं, तो अर्जुन कृष्ण को हरा देगा। क्योंकि सिद्धांत के माध्यम से मन को हल करने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि सब सिद्धांत मन की संततियां हैं। सिद्धांत के द्वारा मन को हराने

का कोई उपाय नहीं है, क्योंकि सब सिद्धांत मन ही पैदा करता है और निर्मित करता है।
अभी मैं एक महानगर में था। एक पंडित, बड़े सज्जन, भले आदमी। एक ही बुराई, कि पंडित। वे मुझे मिलने आए। मैंने उनसे पूछा, क्या कर रहे हैं आप जिंदगीभर से? उन्होंने कहा कि मेरा तो एक ही काम है कि मैं जैन साधु- साध्वियों को सिद्धांत की शिक्षा देता हूं। मैंने कहा, कितनों को दिया? उन्होंने कहा, सैकड़ों जैन साधु-साध्वियों को मैंने निष्णात किया है। शास्त्र का बोध दिया है। मैंने कहा, इतने सैकड़ों जैन साधु-साध्वी आपने बना दिए, लेकिन आप अब तक साधु नहीं हुए? उन्होंने कहा, मैं तो नौकरी बजाता हूं। मैंने कहा, तो कभी सोचा कि नौकरी बजाने वाला पंडित जिन साधु-साध्वियों को पैदा किया होगा, वे किस हालत के होंगे? नौकर से भी गए-बीते होंगे! कितनी महीने की तनख्वाह मिलती है! वे कहने लगे, ज्यादा नहीं देते। पैसा तो जैनियों पर बहुत है, लेकिन डेढ़ सौ रुपए महीने से ज्यादा नहीं देते! मैंने कहा, तुमने जो साधु-साध्वी पैदा किए, उनकी कीमत कितनी होगी? डेढ़ सौ रुपए महीने का मास्टर साधु-साध्वी पैदा कर रहा है! सिद्धांत की शिक्षा दे रहा है!
मैंने कहा, जिन सिद्धांतों को तुम लोगों को समझाते हो, उनके सत्य का तुम्हें खुद कोई अनुभव नहीं हुआ? उसने कहा कि बिल्कुल नहीं। मैं तो अपने डेढ़ सौ रुपए के लिए करता हूं।
अगर अर्जुन किसी पंडित के पास होता, तो पंडित को हरा देता। क्योंकि अर्जुन जो कह रहा है, वे जीवन की गहराइयां हैं। हमारी ऐसी उलझन है। लेकिन कृष्ण के साथ कठिनाई है, क्योंकि कृष्ण कोई सिद्धांत की बात नहीं कर रहे, सत्य की बात कर रहे हैं। इसलिए अर्जुन कितनी ही कठिनाइयां उठाए, वे सत्य के सामने एक-एक जड़ सहित उखड़कर गिरती चली जाएंगी। उसने उचित कठिनाई उठाई है। मनुष्य की वह कठिनाई है। मनुष्य के मन की कठिनाई है। लेकिन जिस आदमी के सामने उठाई है, उसे सिद्धांतों में कोई रस नहीं है।
इसीलिए गीता में एक अभूतपूर्व घटना घटी है कि गीता में कृष्ण ने इतने सिद्धांतों का उपयोग किया है कि दुनिया में जितने सिद्धांत हो सकते हैं, करीब-करीब सबका। और इसलिए सभी सिद्धांतवादी पंडितों को गीता बड़े काम की मालूम पड़ी है, क्योंकि सब अपने मतलब की बात गीता से निकाल सकते हैं। इसीलिए तो गीता पर इतनी टीकाएं हो सकी हैं। एकदम एक-दूसरे से विरोधी! लेकिन उन टीकाओं में एक भी कृष्ण को समझने की सामर्थ्य की टीका नहीं है। उसका कारण है। क्योंकि जो भी टीका निकाल रहा है, उसका सिद्धांत पहले से तय है, गीता को जानने के पहले से तय है। और अपने सिद्धांत को वह गीता पर थोप देता है। जब कि कृष्ण का कोई सिद्धांत नहीं है। कृष्ण का कुछ सत्य जरूर है। और वह उस सत्य तक पहुंचाने के लिए किसी भी सिद्धांत का उपयोग कर सकते हैं। इसलिए वे भक्ति की भी बात करते हैं, ज्ञान की भी, कर्म की भी, ध्यान की भी, योग की भी। वे सारी बात करते चले जाते हैं। ये सब सिद्धांत सिद्धांत की तरह विरोधी हैं, सत्य की तरह अविरोधी हैं। सत्य की तरह कोई विरोध नहीं है, लेकिन सिद्धांत की तरह भारी विरोध है।
इसलिए गीता पर जितना अनाचार हुआ है, ऐसा अनाचार किसी पुस्तक पर पृथ्वी पर नहीं हुआ है। क्योंकि एक सिद्धांत को मानने वाला जब गीता की व्याख्या करता है, तो वह अपने सिद्धांत को सब सिद्धांतों की गर्दन काटकर गीता पर थोप देता है। एक गर्दन बचा लेता है। जो उसके सिद्धांत से कहीं मिलता है, उसको बचा लेता है। बाकी सब की गर्दन कलम कर देता है। गीता की हत्या हो जाती है।
गीता सिद्धांतवादी शास्त्र नहीं है, गीता एक सत्य की उदघोषणा है। सिद्धांत का मोह नहीं है। इसलिए विपरीत सिद्धांतों की एक साथ चर्चा है--एक साथ। गीता तर्क का शास्त्र नहीं है। अगर तर्क का शास्त्र होता, तो कंसिस्टेंट होता, एक संगति होती उसमें।
गीता जीवन का शास्त्र है। जितना विरोधी जीवन है, उतनी ही विरोधी गीता है। जितना जीवन पोलर है, स्वविरोधी है, उतने ही गीता के वक्तव्य स्वविरोधी हैं।

और कृष्ण से ज्यादा तरल आदमी, लिक्विड आदमी खोजना कठिन है। वे कहीं भी
बह सकते हैं। पत्थर की तरह नहीं हैं कि बैठ गए एक जगह। पानी की तरह बह सकते हैं। या और भी उचित होगा कि भाप की तरह हैं। बादल की तरह कोई भी रूप ले सकते हैं। कोई ढांचा नहीं है।
इसलिए अर्जुन दिक्कत में पड़ता जाता है। अपनी ही शंकाएं उठाकर दिक्कत में पड़ता जाता है। क्योंकि उसकी प्रत्येक शंका उसके मन की सूचना देती है कि वह कहां खड़ा है। इस प्रश्न ने अर्जुन की स्थिति को बहुत साफ किया है। अर्जुन को मन के ऊपर किसी चीज का उसे कोई अनुभव नहीं है। तर्क-बुद्धि उसके पास गहरी है। सोचता-समझता है, लेकिन भाव के जगत में उसका कोई प्रवेश नहीं है। नियम की बात करता है, लेकिन गहरे, अल्टिमेट नियम का उसे कोई भी अहसास नहीं है।
इस वक्तव्य ने अर्जुन के अर्जुन की स्थिति बहुत साफ की है। और कृष्ण
के लिए अब उसकी स्थिति को हल करना प्रतिपल आसान होता चला जाएगा। सबसे बड़ी कठिनाई यह है, वह कठिनाई है, डायग्नोसिस की, निदान की। और जहां तक शरीर की डायग्नोसिस, बीमारियों का पता लगाने का सवाल है, हम उपाय कर सकते हैं। लेकिन जहां तक मन की बीमारियों का सवाल है, उनको कन्फेस करवाना पड़ता है। और कोई उपाय नहीं है। उनको बीमार से ही स्वीकृति दिलवानी पड़ती है। फ्रायड एक काम करता रहा है--करीब-करीब कृष्ण वही काम कर रहे हैं-- फ्रायड एक काम करता रहा है, और फ्रायड के पीछे चलने वाले मनसविदों का जो समूह है, साइकोएनालिस्ट्स का, वे भी एक काम करते रहे हैं। वे मरीज को पर्दे के पीछे एक कोच पर लिटा देते हैं। और उससे कहते हैं, जो तुझे बोलना है बोल। कुछ भी छिपाना मत, जो तेरे मन में आए, बोलते जाना। कभी वह गीत गाता है। कभी गालियां बकता है। कभी भजन बोलने लगता है। जो तेरे मन आए, बस मन में आए, उसको तू शब्द देते जाना। तू यह भी मत फिक्र करना कि वह ठीक है कि गलत।
पर्दे के पीछे छिपा हुआ मनोवैज्ञानिक बैठा रहता है। वह आदमी पर्दे के पार अनर्गल--हमें अनर्गल दिखाई पड़ता है बाहर से, उसके भीतर तो उसकी भी संगति है--वह बोलता चला जाता है। जैसा हम सब अंदर बोलते रहते हैं, अगर जोर से बोल दें, बस वैसे ही। वह बोलता चला जाता है।
एक-दो दिन, तीन दिन तो थोड़ा रोकता है, कोई-कोई बात छिपा जाता है। लगता
है कि नहीं बोलनी चाहिए, तो छिपा लेता है। लेकिन तीन-चार दिन में वह धीरे- धीरे राजी हो जाता है, हल्का हो जाता है, बहने लगता है, और बोलने लगता है। फिर मनोवैज्ञानिक पीछे बैठकर खोज करता रहता है कि उसके मन का सार मिल जाए। कृष्ण भी अर्जुन से ऐसी बातें कह रहे हैं कि अर्जुन के मन का सार मिल जाए। अर्जुन का मन साफ प्रकट हो जाए। इस वक्तव्य में अर्जुन के मन का सार साफ हुआ है, अर्जुन के मन का निदान हुआ है। अब कृष्ण चिकित्सा में ज्यादा व्यवस्था से लग सकते हैं।

श्रीभगवानुवाच
असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।। 35।।
हे महाबाहो, निःसंदेह मन चंचल और कठिनता से वश में होने वाला है, परंतु हे कुंतीपुत्र अर्जुन, अभ्यास अर्थात स्थिति के लिए बारंबार यत्न करने से और वैराग्य से
वश में होता है।
कृष्ण ने अर्जुन की मनोदशा को देखकर कहा, निश्चय ही अर्जुन, मन बड़ी मुश्किल से वश में होने वाला है।

यह जो कहा, निश्चय ही, यह मनुष्य के मन की स्थिति के लिए कहा है। निश्चय ही, जैसा मनुष्य है, ऐज वी आर, जैसे हम हैं; हमें देखकर, निश्चय ही मन बड़ी मुश्किल से वश में होने वाला है। जैसा आदमी है, अगर हम उसे वैसा ही स्वीकार करें, तो शायद मन वश में होने वाला ही नहीं है।
लेकिन--और उस लेकिन में गीता का सारा सार छिपा है-- लेकिन अर्जुन, अभ्यास और वैराग्य से मन वश में हो जाता है।

जैसा मनुष्य है, अगर हम उसे अनछुआ, वैसा ही रहने दें, और चाहें कि मन वश में हो जाए, तो मन वश में नहीं होता है। क्योंकि जैसा मनुष्य है, वह सिर्फ मन ही है। मन के पार उसमें कुछ भी नहीं है। मन के पार उसका कोई भी अनुभव नहीं है। मन को वश में करने की कोई भी कीमिया, कोई भी तरकीब उसके हाथ में नहीं है। लेकिन--और लेकिन बहुत महत्वपूर्ण है; और ये दो शब्द, अभ्यास और वैराग्य गीता के प्राण हैं--लेकिन अभ्यास और वैराग्य से मन वश में हो जाता है। अभ्यास और वैराग्य का आधार आपको समझा दूं, फिर हम अभ्यास और वैराग्य को समझेंगे।
अभ्यास और वैराग्य का पहला आधार तो यह है कि मनुष्य जैसा है, उससे अन्यथा हो सकता है।
मन की बात ही नहीं कर रहे वे। वे कह रहे हैं, मन को छोड़ो। तुम जैसे हो, ऐसे में मन वश में नहीं होगा। पहले हम तुम्हें ही थोड़ा बदल लें। पहले हम तुम्हें ही थोड़ा बदल लें, फिर मन वश में हो जाएगा। अभ्यास और वैराग्य इस बात की घोषणा है कि मनुष्य जैसा है, उससे अन्यथा भी हो सकता है। मनुष्य जैसा है, उससे भिन्न भी हो सकता है। मनुष्य जैसा है, वैसा होना एकमात्र विकल्प नहीं है, और विकल्प भी हैं। हम जैसे हैं, यह हमारी एकमात्र स्थिति नहीं है, और स्थितियां भी हमारी हो सकती हैं।
अगर हम एक बच्चे को जंगल में छोड़ दें पैदा हो तब, तो क्या आप सोचते हैं,
वह बच्चा कभी भी मनुष्य की कोई भी भाषा बोल पाएगा! कोई भाषा नहीं बोल पाएगा। ऐसा नहीं कि वह आपके घर में पैदा हुआ था, तो गुजराती बोलेगा जंगल में! कि हिंदुस्तान की जमीन पर पैदा हुआ था, तो हिंदी बोलेगा। कि अंग्रेज के घर में पैदा हुआ था, तो अंग्रेजी बोलेगा। नहीं, वह कोई भाषा नहीं बोलेगा। शायद आप सोचते होंगे, वह कोई नई भाषा बोलेगा। वह नई भाषा भी नहीं बोलेगा। वह भाषा ही नहीं बोलेगा।
उन्नीस सौ बीस में बंगाल में दो बच्चियां पकड़ी गईं, जिनको भेड़िए उठाकर ले गए थे और उन्होंने उनको बड़ा कर लिया। भेड़िए शौकीन हैं। और कई दफे दुनिया में कई जगह उन्होंने यह काम किया है। बच्चों को उठा ले जाते हैं, फिर उनको पाल लेते हैं। एक बच्ची ग्यारह साल की थी और एक तेरह साल की थी, जब वे पकड़ी गईं। और पहली दफा हैरानी हुई, वे कोई भाषा नहीं बोलती थीं। भाषा की तो बात दूसरी है, वे दो पैर से खड़ी भी नहीं हो सकती थीं। वे चारों हाथ-पैर से ही चलती थीं।
अभी कुछ दिन पहले, पांच-सात वर्ष पहले यू.पी. में एक बच्चा पकड़ा गया जंगल में, वह भी भेड़ियों ने पाल लिया था। वह कोई चौदह साल का था, वह भी कोई भाषा नहीं बोल सकता था। उसका नाम रख लिया था राम, पकड़ने के बाद। छः महीने कोशिश करके बामुश्किल उससे राम निकलवाया जा सका कि वह राम कह सके। लेकिन छः महीने में वह मर गया। और चिकित्सक कहते हैं कि वह राम कहलवाने की कोशिश ही उसकी जान लेने वाली सिद्ध हुई।
चौदह साल का बच्चा एक शब्द नहीं बोलता था। क्या हुआ? चारों हाथ-पैर से चलता था। छः महीने मसाज कर-करके उसको बामुश्किल खड़ा कर पाए। नहीं तो रीढ़ उसकी सीधी नहीं होती थी, फिक्स्ड हो गई थी। चार हाथ-पैर से वह भेड़ियों की तेजी से दौड़ता था! लेकिन खड़ा करके वह ऐसा चलता था कि रत्ती-रत्ती मुश्किल हो गया। क्या हो गया?
आदमी वही हो जाता है, जिस आयाम में उसका अभ्यास करवा दिया जाता है; वही
हो जाता है। वह भेड़िए के साथ रहा, भेड़िए का अभ्यास हो गया। अभ्यास कर लिया, वही हो गया।
आदमी एक अनंत संभावना है, इनफिनिट पासिबिलिटी। हम जो हो गए हैं, वह हमारी एक पासिबिलिटी है सिर्फ। वह हमारी एक संभावना है, जो हम हो गए हैं। अगर हम दुनिया की मनुष्य जातियों को भी देखें, तो हमको पता चलेगा कि अनंत संभावनाएं हैं।
ऐसे कबीले हैं आज भी, जो क्रोध करना नहीं जानते हैं। आप हैरान होंगे!
आप कहेंगे, क्रोध! क्रोध तो हर मनुष्य करता है। आपको सब मनुष्यों का पता नहीं है।
ऐसे कबीले हैं आज भी आदिवासियों के, जो क्रोध करना नहीं जानते।
क्योंकि क्रोध भी अभ्यास से आता है; अचानक नहीं आ जाता। बाप कर रहा है, मां

कर रही है, घर भर क्रोध कर रहा है, और तख्ती भी लगी है कि क्रोध करना पाप है घर में। और सब चल रहा है। वह बच्चा सीख रहा है, वह कंडीशन हो रहा है। वह जवान होकर बच्चा कहेगा कि ऐसा हो ही कैसे सकता है कि आदमी क्रोध न करे! तो यह सिखावन है। बच्चा तो एक तरल चीज थी। आपने उसे एक दिशा में ढाल दिया। कठिनाई हो गई। वह अड़चन हो गई।
ऐसे कबीले हैं, जिनमें संपत्ति का कोई मोह नहीं है; कोई मोह नहीं है। संपत्ति का मोह ही नहीं है। अभी एक छोटे-से कबीले की खोज हुई, तो बड़े चकित हो गए लोग, उस कबीले में संपत्ति की मालकियत का ख्याल ही नहीं है। किसी आदमी को यह ख्याल नहीं है कि यह मेरी जमीन है। किसी को ख्याल नहीं है कि यह मेरा मकान है।
लेकिन कबीले का पूरा ढंग और है कंडीशनिंग का। कोई अपना मकान नहीं बनाता, सारा गांव मिलकर उसका मकान बनाता है। जब भी गांव में एक नए मकान की जरूरत पड़ती है, पूरा गांव मिलकर एक मकान बनाता है। गांव में कोई नया आदमी रहने आ जाता है, तो पूरा गांव एक मकान बना देता है। वह आदमी उसमें रहने लगता है। पूरा गांव घर-घर से चीजें देकर उसके घर को जमा देता है पूरा। वह घर का उपयोग करने लगता है।
उस कबीले में ख्याल ही नहीं है प्राइवेट ओनरशिप का, कि व्यक्तिगत संपत्ति भी कोई चीज होती है। आप उस कबीले में कम्युनिज्म न फैला सकेंगे। क्योंकि कम्युनिज्म पोलेरिटी है। व्यक्तिगत संपत्ति हो, तो कम्युनिज्म का ख्याल पैदा हो सकता है; नहीं तो पैदा नहीं हो सकता। उस कबीले में आप किसी को नक्सलाइट नहीं बना सकते हैं। कोई उपाय नहीं है। उस कबीले में किसी को ख्याल ही नहीं है कि वस्तु और व्यक्ति में कोई संबंध मालकियत का होता है।
और हम मरे जाते हैं अपरिग्रह का सिद्धांत दोहरा-दोहराकर। वह कुछ हल होता नहीं। अपरिग्रही से अपरिग्रही भी... अब दिगंबर जैन मुनि नग्न रहते हैं।
दो दिगंबर जैन मुनि शिखरजी के पास के वन में झगड़ पड़े। अब झगड़ा लोग कहते हैं कि या तो स्त्री के कारण होता है या धन के कारण। न उनके पास स्त्री है, न धन है, जहां तक जानकारी है। झगड़ा हो गया, तो जो पिच्छी वगैरह रखते हैं साथ में, उससे एक-दूसरे की खोपड़ी पर हमला बोल दिया! लोगों ने, गांव वालों ने आकर छुड़ाया। पुलिस भी आ गई। और तब बड़ी हैरानी हुई कि वह जो पिच्छी का डंडा था, उसमें सौ-सौ के नोट अंदर भरे हुए थे। उसी पर झगड़ा हो गया था। वह बंटवारे में झगड़ा हो गया था। गए थे शौच को जंगल में, लेकिन वह बंटवारे में झगड़ा हो गया!
पुलिस थाने ले गई। आस-पास के गांव के जैनी हाथ-पैर जोड़कर उनको छुड़वाए,
कि हमारी इज्जत का ख्याल करो। कोई क्या कहेगा! दिगंबर मुनि हैं! चर्चा बंद करो। रिश्वत खिलाई मुनि को छुड़ाने के लिए।
बड़े आश्चर्य की बात है, एक आदमी नग्न खड़ा होने की हिम्मत जुटा पाया, तो पिच्छी में रुपए के बंडल रखे हुए है! कंडीशनिंग है। कंडीशनिंग भारी है। मगर यह एक रूप ही है। यह अनिवार्य नहीं है। ऐसे रूप आदमी के हैं, जहां उनको पता भी नहीं है।
अब यहां हम सोचते हैं। जिस ढंग से हम सोचते हैं, वह एक विकल्प है। यह मैंने इसलिए उदाहरण के लिए आपको कहा कि अन्य विकल्प सदा हैं।
अभ्यास का मूल आधार यह है कि आप जैसे हैं, उससे अन्यथा हो सकते हैं। अभ्यास का अर्थ है, ऐसी विधि, जो आपको अन्यथा कर देगी। अब जैसे एक आदमी है, वह कहता है कि मेरे हाथ में बहुत तकलीफ है, आपरेशन करवाना है। आपरेशन आप करिएगा, तो मैं न करवा पाऊंगा, मैं हाथ को खींच लूंगा। इतनी तकलीफ होगी। हम कहते हैं, कोई फिक्र नहीं। हम तुम्हें अनस्थेसिया दे देंगे, पहले बेहोशी की दवा दे देंगे, फिर आपरेशन कर लेंगे। फिर तुम्हें तकलीफ न होगी।
अर्जुन कहता है, मन बड़ा चंचल है। कृष्ण कहते हैं, बिल्कुल ठीक कहते हो। हम पहले अभ्यास करवा देंगे। फिर मन चंचल न रहेगा। हम पहले तुम्हें बदल देंगे। हम सारी स्थिति बदल देंगे।

अभ्यास का अर्थ है, सारी बाह्य और आंतरिक स्थिति की बदलाहट। अभ्यास
का अर्थ है, वे जो संस्कार हैं, कंडीशनिंग है, वह जो हमारे भीतर पुराना जमा हुआ प्रवाह है, उसको जगह-जगह से तोड़कर नई दिशा दे देना।
और दूसरा शब्द कृष्ण उपयोग करते हैं, वैराग्य। उनका अर्थ तो मैं सांझ आपसे कहूंगा। अभी मैं सिर्फ मूल आधार आपको कह दूं।
अभ्यास का अर्थ है, आप जैसे हैं, उससे अन्यथा करने की विधियां, मेथड्स। और आप जैसे हैं, वह भी किन्हीं विधियों के कारण हैं, अपने कारण नहीं। अगर आप गुजराती बोलते हैं, तो सिर्फ इसलिए कि गुजराती का अभ्यास करवा दिया गया है। और कोई कारण नहीं है। आप अंग्रेजी बोल सकेंगे, अगर अंग्रेजी का अभ्यास करवा दिया जा सके। कोई अड़चन नहीं है।
जो भी आप हैं, वह अभ्यास का फल है। लेकिन अभी जो अभ्यास करवाया है, वह समाज ने करवाया है। और समाज बीमारों का समूह है। अभी जो अभ्यास करवाया है, वह भीड़ ने करवाया है। और भीड़ मनुष्य की निम्नतम अवस्था है। इसलिए आप उस भीड़ के एक हिस्से हैं। अभी आप हैं नहीं। अभी आप जो भी हैं, वह भीड़ का ही हिस्सा हैं। और भीड़ ने जो करवा दिया है, वह आप हैं।
अभ्यास का अर्थ है, व्यक्तिगत चेष्टा उस दिशा में, जहां आप नए हो सकें, जहां आप भिन्न हो सकें।
यह मन की धारा, जो बहुत चंचल दिखाई पड़ती है, वह चंचल इसीलिए है कि पूरी व्यवस्था उसे चंचल कर रही है।
हमारी हालत करीब-करीब ऐसी है कि मैंने सुना है, एक कुत्ते के मन में ख्याल आ गया कि वह दिल्ली चला जाए। सारी दुनिया दिल्ली जा रही थी। उसने सोचा कि कुत्ते क्यों पीछे रह जाएं! और जब सभी दिल्ली पहुंच जाएंगे, तो कुत्तों के अधिकारों का क्या होगा? फिर वह कुत्ता कोई छोटा-मोटा कुत्ता भी नहीं था, एक एम.पी. का कुत्ता था। नेता का कुत्ता था। दिन-रात दिल्ली जाओ, दिल्ली आओ की बात सुनाई पड़ती थी। दिल्ली जाने की विधियां और उपाय और सीढ़ियां ईजाद किए जाते थे; आदमियों के कंधों पर कैसे चढ़ो, लोगों की आंखों में धूल कैसे झोंको, सब उसने सुन लिया था। वह ठीक ट्रेंड हो गया था।
एक दिन उसने अपने गुरु को कहा--गुरु, मालिक जो उसका एम.पी. था--कहा कि
अब बहुत देर हुई जा रही है। अब मुझे आशीर्वाद दें, मैं भी दिल्ली जाऊं! उसने कहा कि तू क्या करेगा दिल्ली जाकर? कुत्ता होकर और तेरी ऐसी हिम्मत? समझ गया था। वह कुत्ता तो बहुत दिन से रहता था; वह सब राज समझ गया था। उसने कहा कि आप देखते नहीं कि आपका वह जो विरोधी पहुंच गया है इस बार, वह कुत्तों से बेहतर है? बदतर है। नेता ने कहा कि बिल्कुल ठीक। यह बात तो बिल्कुल ठीक है। तू जा। तू दिल्ली जा। उसने कहा, रास्ता कुछ बता दें। मैं कैसे दिल्ली जाऊं!
तो रास्ता, नेता ने कहा कि सूत्र सरल है। जिस तरकीब से मैं जाता रहा, वही तरकीब तू भी उपयोग कर। क्योंकि वह अनुभव में लाई गई तरकीब है। तरकीब उसने बता दी कि जब अमीर कोई दिखाई पड़े, अमीर कुत्ता... !
कुत्तों में भी अमीर और गरीब होते हैं। अमीर कुत्ता आपने देखा होगा; कार में भी चलता है; सुंदरतम स्त्रियों की गोद में भी बैठता है; शानदार गलीचों पर विश्राम भी करता है! आदमी को रोटी न मिले, उसको तो विशेष भोजन मिलता है। वह अमीर कुत्ता है।
तो उसने कहा, जब अमीर कोई कुत्ता दिखे, तो कहना कि सावधान। गरीब कुत्ते इकट्ठे हो रहे हैं; तुम्हारे लिए खतरा है। मैं तुम्हारी रक्षा कर सकता हूं। और जब कोई गरीब कुत्ता दिखे, तो फौरन कहना कि मर जाओगे। लूटे जा रहे हो। शोषण किया जा रहा है। लाल झंडा हाथ में लो। मैं तुम्हारा नेता हूं। इन अमीरों को ठीक करना जरूरी है। और जब तक--जैसा कि अहमदाबाद की सड़कों पर मैंने दो-चार जगह लिखा देखाः जनता जागे, सेठिया भागे--उसने कहा होगा, कुत्ते जागे, सेठिया भागे। तैयार हो जाओ!
पर उस कुत्ते ने कहा कि महाराज, यह तो ठीक है। लेकिन अमीर और गरीब कुत्ते दोनों साथ मिल जाएं, तो मैं क्या करूं? तो कहना, मैं सर्वोदयी हूं! मैं सबके उदय में विश्वास करता हूं। गरीब का भी उदय हो, अमीर का भी उदय हो। सूरज पूरब से भी निकले, पश्चिम से भी साथ निकले। हम सर्वोदयी हैं।

सूत्र पूरा हो गया। कुत्ते ने प्रचार शुरू कर दिया। और नेता ने कहा, ध्यान रखना, जोर से बोले चले जाना। कुत्ते ने कहा, यह तो अभ्यास है हमारा। इसमें कोई चिंता न करें। इसमें हम नेताओं को मात दे देते हैं। इसमें कोई दिक्कत नहीं है। हम चिल्लाते रहेंगे। नेता ने कहा, अगर चिल्लाते रहे, तो दिल्ली पहुंच जाओगे। बस, चिल्लाने में कुशलता चाहिए। इसकी फिक्र मत करना कि क्या चिल्ला रहे हो। जोर से चिल्ला रहे हो, इसका ख्याल रखना। दूसरे को दबा देना चिल्लाने में, बस!
कुत्ते ने शुरू कर दिया काम। महीने पंद्रह दिन में उसने काशी के कुत्तों को राजी कर लिया। नेता से कहा कि अब मैं जाता हूं। आप वहां खबर करवा दें दिल्ली में कि मैं आ रहा हूं। ठहरने का इंतजाम, सब व्यवस्था करवा दें। कितनी देर लगेगी, नेता ने पूछा, तेरे पहुंचने में? कुत्ते ने कहा कि कुत्ते की चाल से जाऊंगा; और सर्वोदयी कहकर फंस गया हूं। तो वे कुत्ते कह रहे हैं, पैदल जाओ। झंझट हो गई। वे कहते हैं, सर्वोदयी, पैदल जाओ, पदयात्रा करो! फंस गया झंझट में; नहीं तो ट्रेन में निकल जाता। अब तो पैदल ही जाना पड़ेगा। कम से कम महीनाभर लग जाएगा।
खबर कर दी गई। दिल्ली के कुत्ते बड़े प्रसन्न हुए। काशी का कुत्ता आता है; धर्मतीर्थ से आता है। जरूर कुछ ज्ञान लेकर आता होगा! काम पड़ेगा। लेकिन बड़ी मुश्किल तो यह हुई कि एक महीने के बाद उन्होंने स्वागत का इंतजाम किया, द्वार-दरवाजे बनाए। लेकिन कुत्ता सात ही दिन में पहुंच गया। वे तो इंतजाम कर रहे थे एक महीने बाद का, कुत्ता सात दिन में दिल्ली पहुंच गया। बड़े चकित हुए।
उन्होंने कहा, बिल्कुल समझ नहीं तुम्हें। बेवक्त आ गए। हम सब इंतजाम किए थे। मेयर को राजी किए थे। फूलमाला पहनवाते। यह तुमने क्या किया! सब विरोधी पार्टी के नेताओं को इकट्ठा कर रहे थे कि फूलमाला पहनाते। तुम यह क्या किए? इतनी जल्दी आ गए बेवक्त। कोई तैयारी नहीं है।
उस कुत्ते ने कहा कि मैं क्या कर सकता हूं? काशी से निकला; एक मिनट रुक नहीं सका कहीं। जिस गांव में पहुंचा, उसी गांव के कुत्ते इस बुरी तरह पीछे लग जाते कि मैं जान बचाकर गांव के बाहर होता। वे दूसरे गांव के बाहर तक जब तक मुझे छोड़ते, तब तक दूसरे गांव के कुत्ते मेरे पीछे लग जाते। मैं ठहरा ही नहीं, रुका ही नहीं, विश्राम नहीं किया। बस, भागता ही चला आ रहा हूं! और कहते हैं, इतना ही कहकर वह कुत्ता मर गया, क्योंकि इतना थक गया था।
दिल्ली आमतौर से कब्र बनती है पहुंचने वालों की। बड़ी कब्र है। दौड़-दौड़कर किसी तरह पहुंचते हैं वहां; गिरकर मर जाते हैं। शायद मरने के लिए पहुंचते हैं या किसलिए पहुंचते हैं, कुछ कहना कठिन है। मर गया वह कुत्ता। पर एक राज की बात बता गया कि ठहर नहीं पाया कहीं; दौड़ाते ही रहे लोग।
हम भी एक-एक आदमी के मन को बचपन से दौड़ा रहे हैं। सब मिलकर दौड़ा रहे हैं। सब मिलकर दौड़ा रहे हैं। बाप दौड़ा रहा है कि नंबर एक आओ। मां दौड़ा रही है कि क्या कर रहे हो, बगल के पड़ोसी का लड़का देख रहे हो? स्पोर्ट्स में नंबर एक आ गया। मां-बाप किसी तरह पीछा छोड़ेंगे, तो एक पत्नी उपलब्ध होगी। वह कहेगी, दौड़ो। देखते हो, बगल का मकान बड़ा हो गया। बगल की पत्नी के पास हीरों की चूड़ियां आ गईं। तुम देखते रहोगे ऐसे ही बैठे! दौड़ो। किसी तरह दौड़-दाड़कर और थोड़ी उम्र गुजारता है, तो बच्चे पैदा हो जाते हैं। वे कहते हैं कि क्या बाप मिले तुम भी! न घर में कार है, न टेलीविजन सेट है। कुछ भी नहीं है। बड़ी दीनता मालूम होती है। इनफीरिआरिटी कांप्लेक्स पैदा हो रहा है हममें, स्कूल जाते हैं तो। दौड़ो।
पूरी शिक्षा, पूरा समाज, पूरी व्यवस्था दौड़ने के एक ढांचे में ढली हुई है। दिल्ली पहुंचो। दौड़ो, चाहे जान चली जाए, कोई फिक्र नहीं। दौड़ते रहो। ठहरना भर मत।
अगर इतने सारे अभ्यास में आदमी का मन ठहरने का स्थान नहीं पाता, किसी विश्रामगृह में नहीं रुक पाता, भागता ही चला जाता है; तो अगर अर्जुन एक दिन कह रहा है कृष्ण से कि यह मन बड़ा भागने वाला है, यह रुकता नहीं क्षणभर को, तो ठीक ही कह रहा है। हम सब का मन ऐसा है।
लेकिन कृष्ण कहते हैं, यह मन का ढंग सिर्फ एक संस्कारित व्यवस्था है। अभ्यास से इसे तोड़ा जा सकता है। अभ्यास से नई व्यवस्था दी जा सकती है। और

वैराग्य से! क्यों? वैराग्य को क्यों जोड़ दिया? क्या अभ्यास काफी न था? अभ्यास की विधि बता देते कि इससे बदल जाओ।
वैराग्य इसलिए जोड़ दिया कि अगर वैराग्य न हो, तो आप विधियों का उपयोग
न करेंगे। क्योंकि राग दौड़ाने की व्यवस्था है। राग के बिना कोई दौड़ता नहीं है। दिल्ली कोई ऐसे ही वैराग्य भाव से नहीं दौड़ता। राग, कुछ उपलब्धि की आकांक्षा, कुछ पाने का ख्याल दौड़ाता है। कोई लक्ष्य, कोई राग दौड़ाता है।
तो राग चंचल होने का आधार है, तो वैराग्य विश्राम का आधार बनेगा। अभी
हम सब राग में जीते हैं। हमारा पूरा समाज राग से भरा है। हमारी पूरी शिक्षा, समाज की व्यवस्था, परिवार, संबंध--सब राग पर खड़े हैं। इसलिए हम सब दा.ैडते हैं। राग बिना दौड़े नहीं फलित हो सकता। राग यानी दौड़।
चंचलता का बुनियादी आधार राग है। इसलिए ठहराव का बुनियादी आधार वैराग्य होगा।
तो वैराग्य की शर्त जरूरी है, नहीं तो आप ठहरने को राजी नहीं होंगे।
आप कहेंगे, ठहरकर मर जाएंगे। पड़ोसी तो ठहरेगा नहीं, वह तो दौड़ता रहेगा। आप मुझसे ही क्यों कहते हैं कि ठहर जाओ? अगर मैं ठहर गया, तो दूसरा तो ठहरेगा नहीं; वह पहुंच जाएगा!
जब तक आपको कहीं पहुंचने का राग है, जब तक कुछ पाने का राग है, तब तक मन अचंचल नहीं हो सकता, चंचल रहेगा। इसमें मन का क्या कसूर है! आप राग कर रहे हैं, मन दौड़ रहा है। मन आपकी आज्ञा मान रहा है।
इसलिए वैराग्य की शर्त पीछे जोड़ दी कि वैराग्य की भावना हो, तो फिर ऐसी विधियां हैं, जिनके अभ्यास से आदमी मन को विश्राम को पहुंचा सकता है। संध्या हम वैराग्य के संबंध में और अभ्यास के संबंध में थोड़ी गहरी छान-बीन करेंगे। अभी तो पांच-सात मिनट के लिए सब राग छोड़कर, एक पांच-सात मिनट कीर्तन के वैराग्य में--क्योंकि कीर्तन कहीं ले जाएगा नहीं।
एक युवक मेरे पास आया था। वह पूछ रहा था, कीर्तन से फायदा क्या होगा? सोचते हैं आप, वह पूछता है, कीर्तन से फायदा क्या होगा?
फायदा! फायदे की भाषा में जो सोचता है, वह कीर्तन नहीं कर पाएगा। कीर्तन से फायदा होता है, लेकिन उसी को, जो फायदे की भाषा छोड़ देता है। कीर्तन तो वैराग्य के मन की दशा है। और कीर्तन एक अभ्यास भी है; एक अभ्यास मन को ठहराने का। शरीर नाचेगा। शब्द वाणी से निकलेंगे। और भीतर कोई बिल्कुल ठहरा रहेगा। नाच के बीच कोई बिल्कुल ठहरा रहेगा।
आप भी साथ दें। साथ देंगे, तो ही अनुभव हो पाएगा। और संकोच न करें, छोटे-से संकोच व्यर्थ ही बाधा डाल देते हैं। देखते हैं कि कहीं पड़ोस का आदमी क्या सोचने लगे! वह पहले ही से आपके बाबत बहुत अच्छा नहीं सोचता है।
आप बिल्कुल बेफिक्र रहें।

गीता दर्शन, भाग तीन
गीता दर्शन अध्याय 6
सत्रहवां प्रवचन

वैराग्य और अभ्यास

प्रश्नः ओशो, सुबह के श्लोक में चंचल मन को शांत करने के लिए अभ्यास
और वैराग्य पर गहन चर्चा चल रही थी, लेकिन समय आखिरी हो गया था, इसलिए पूरी बात नहीं हो सकी। तो कृपया अभ्यास और वैराग्य से कृष्ण क्या गहन अर्थ लेते हैं, इसकी व्याख्या करने की कृपा करें।

राग है संसार की यात्रा का मार्ग, संसार में यात्रा का मार्ग। वैराग्य है संसार की तरफ पीठ करके स्वयं के घर की ओर वापसी। राग यदि सुबह है, जब पक्षी घोंसलों को छोड़कर बाहर की यात्रा पर निकल जाते हैं, तो वैराग्य सांझ है, जब पक्षी अपने नीड़ में वापस लौट आते हैं।
वैराग्य को पहले समझ लें, क्योंकि जिसे वैराग्य नहीं, वह अभ्यास में नहीं जाएगा। वैराग्य होगा, तो ही अभ्यास होगा। वैराग्य होगा, तो हम विधि खोजेंगे--मार्ग, पद्धति, राह, टेक्नीक--कि कैसे हम स्वयं के घर वापस पहुंच जाएं? कैसे हम लौट सकें? जिससे हम बिछुड़ गए, उससे हम कैसे मिल सकें? जिसके बिछुड़ जाने से हमारे जीवन का सब संगीत छिन गया, जिसके बिछुड़ जाने से जीवन की सारी शांति खो गई, जिसके बिछुड़ जाने से, खोजते हैं बहुत, लेकिन उसे पाते नहीं; उस आनंद को किस विधि से, किस मेथड से हम पाएं? यह तो तभी सवाल उठेगा, जब वैराग्य की तरफ दृष्टि उठनी शुरू हो जाए। तो पहली तो बात, वैराग्य को समझें, फिर हम अभ्यास को समझेंगे।
वैराग्य का अर्थ है, राग के जगत से वितृष्णा, फ्रस्ट्रेशन। जहां-जहां राग है, जहां-जहां आकर्षण है, वहां-वहां विकर्षण पैदा हो जाए। जो चीज खींचती है, वह खींचे नहीं, बल्कि विपरीत हटाने लगे। जो चीज बुलाती है, बुलाए नहीं, बल्कि द्वार बंद कर ले। मालूम पड़े कि द्वार बंद कर लिया, और द्वार में प्रवेश से इनकार कर दिया।
विकर्षण हम सभी को होता है। अगर ऐसा मैं कहूं, तो आप थोड़े हैरान होंगे
कि हम सभी रोज वैराग्य को उपलब्ध होते हैं। लेकिन वैराग्य को उपलब्ध होकर हम अभ्यास की तरफ नहीं जाते। वैराग्य को उपलब्ध होकर, पुराने राग तो गिर जाते हैं, हम नए राग के निर्माण में लग जाते हैं।
हम सभी वैराग्य को उपलब्ध होते हैं, रोज, प्रतिदिन। ऐसा कोई राग नहीं है, जिसके प्रति हम रोज विकर्षण से नहीं भर जाते। प्रत्येक राग के पीछे खाई छूट जाती है विषाद की; प्रत्येक राग के पीछे पश्चात्ताप गहन हो जाता है। लेकिन तब ऐसा नहीं कि हम विराग की तरफ चले जाते हों, तब सिर्फ इतना ही होता है कि हम नए राग की खोज में निकल जाते हैं।
वैराग्य कोई नई घटना नहीं है। एक स्त्री से विरक्त हो जाना सामान्य घटना है। लेकिन स्त्री से विरक्त हो जाना बहुत असामान्य घटना है। एक सुख की व्यर्थता को जान लेना सामान्य घटना है, लेकिन सुख मात्र की व्यर्थता को जान लेना बहुत असामान्य घटना है। और असामान्य इसीलिए है कि हमारे हाथ में एक ही सुख होता है एक बार में। एक सुख व्यर्थ हो जाता है, तो तत्काल मन कहता है कि नए सुख का निर्माण कर लो; दूसरे सुख की खोज में निकल जाओ। ठहरो मत; यात्रा जारी रखो। यह सुख व्यर्थ हुआ, तो जरूरी नहीं कि सभी सुख व्यर्थ हों! ययाति की बहुत पुरानी कथा है, जिसमें ययाति सौ वर्ष का हो गया। बहुत मीठी, बहुत मधुर कथा है। तथ्य न भी हो, तो भी सच है। और बहुत बार जो तथ्य नहीं होते, वे भी सत्य होते हैं। और बहुत बार जो तथ्य होते हैं, वे भी सत्य नहीं होते।
यह ययाति की कथा तथ्य नहीं है, लेकिन सत्य है। सत्य इसलिए कहता हूं कि उसका इंगित सत्य की ओर है। तथ्य नहीं है इसलिए कहता हूं कि ऐसा कभी हुआ नहीं होगा। यद्यपि आदमी का मन ऐसा है कि ऐसा रोज ही होना चाहिए।
ययाति सौ वर्ष का हो गया, उसकी मृत्यु आ गई। सम्राट था। सुंदर पत्नियां थीं, धन था, यश था, कीर्ति थी, शक्ति थी, प्रतिष्ठा थी। मौत द्वार

पर आकर दस्तक दी। ययाति ने कहा, अभी आ गई? अभी तो मैं कुछ भोग नहीं पाया। अभी तो कुछ शुरू भी नहीं हुआ था! यह तो थोड़ी जल्दी हो गई। सौ वर्ष मुझे और चाहिए। मृत्यु ने कहा, मैं मजबूर हूं। मुझे तो ले जाना ही पड़ेगा। ययाति ने कहा, कोई भी मार्ग खोज। मुझे सौ वर्ष और दे। क्योंकि मैंने तो अभी तक कोई सुख जाना ही नहीं।
मृत्यु ने कहा, सौ वर्ष आप क्या करते थे? ययाति ने कहा, जिस सुख को जानता था, वही व्यर्थ हो जाता था। तब दूसरे सुख की खोज करता था। खोजा बहुत, पाया अब तक नहीं। सोचता था, कल की योजना बना रहा था। तेरे आगमन से तो कल का द्वार बंद हो जाएगा। अभी मुझे आशा है। मृत्यु ने कहा, सौ वर्ष में समझ नहीं आई। आशा अभी कायम है? अनुभव नहीं आया? ययाति ने कहा, कौन कह सकता है कि ऐसा कोई सुख न हो, जिससे मैं अपरिचित होऊं, जिसे पा लूं तो सुखी हो जाऊं! कौन कह सकता है?
मृत्यु ने कहा, तो फिर एक उपाय है कि तुम्हारे बेटे हैं दस। एक बेटा अपना जीवन दे दे तुम्हारी जगह, तो उसकी उम्र तुम ले लो। मैं लौट जाऊं। पर मुझे एक को ले जाना ही पड़ेगा।
बाप थोड़ा डरा। डर स्वाभाविक था। क्योंकि बाप सौ वर्ष का होकर मरने को राजी न हो, तो कोई बेटा अभी बीस का था, कोई अभी पंद्रह का था, कोई अभी दस का था। अभी तो उन्होंने और भी कुछ भी नहीं जाना था। लेकिन बाप ने सोचा, शायद कोई उनमें राजी हो जाए। शायद कोई राजी हो जाए। पूछा, बड़े बेटे तो राजी न हुए। उन्होंने कहा, आप कैसी बात करते हैं! आप सौ वर्ष के होकर जाने को तैयार नहीं। मेरी उम्र तो अभी चालीस ही वर्ष है। अभी तो मैंने जिंदगी कुछ भी नहीं देखी। आप किस मुंह से मुझसे कहते हैं?
सबसे छोटा बेटा राजी हो गया। राजी इसलिए हो गया--जब बाप से उसने कहा कि मैं राजी हूं, तो बाप भी हैरान हुआ। ययाति ने कहा, सब नौ बेटों ने इनकार कर दिया, तू राजी होता है। क्या तुझे यह ख्याल नहीं आता कि मैं सौ वर्ष का होकर भी मरने को राजी नहीं, तेरी उम्र तो अभी बारह ही वर्ष है!
उस बेटे ने कहा, यह सोचकर राजी होता हूं कि जब सौ वर्ष में भी तुमने कुछ न पाया, तो व्यर्थ की दौड़ में मैं क्यों पडूं! जब मरना ही है और सौ वर्ष के समय में भी मरकर ऐसी पीड़ा होती है, जैसी तुमको हो रही है, तो मैं बारह वर्ष में ही मर जाऊं। अभी कम से कम विषाद से तो बचा हूं। अभी मैंने दुख तो नहीं जाना। सुख नहीं जाना, दुख भी नहीं जाना। मैं जाता हूं।
फिर भी ययाति को बुद्धि न आई। मन का रस ऐसा है कि उसने कल की योजनाएं बना रखी थीं। बेटे को जाने दिया। ययाति और सौ वर्ष जीया। फिर मौत आ गई। ये सौ वर्ष कब बीत गए, पता नहीं। ययाति फिर भूल गया कि मौत आ रही है। कितनी ही बार मौत आ जाए, हम सदा भूल जाते हैं कि मौत आ रही है। हम सब बहुत बार मर चुके हैं। हम सब के द्वारों पर बहुत बार मौत दस्तक दे गई है।
ययाति के द्वार पर दस्तक हुई। ययाति ने कहा, अभी! इतने जल्दी! क्या सौ वर्ष बीत गए? मौत ने कहा, इसे भी जल्दी कहते हैं आप! अब तो आपकी योजनाएं पूरी हो गई होंगी?
ययाति ने कहा, मैं वहीं का वहीं खड़ा हूं। मौत ने कहा, कहते थे कि कल और मिल जाए, तो मैं सुख पा लूं! ययाति ने कहा, मिला कल भी, लेकिन जिन सुखों को खोजा उनसे दुख ही पाया। और अभी फिर योजनाएं मन में हैं। क्षमा कर, एक और मौका! पर मौत ने कहा, फिर वही करना पड़ेगा।
इन सौ वर्षों में ययाति के नए बेटे पैदा हो गए; पुराने बेटे तो मर चुके थे। फिर छोटा बेटा राजी हो गया। ऐसे दस बार घटना घटती है। मौत आती है, लौटती है। एक हजार साल ययाति जिंदा रहता है।
मैं कहता हूं, यह तथ्य नहीं है, लेकिन सत्य है। अगर हमको भी यह मौका मिले, तो हम इससे भिन्न न करेंगे। सोचें थोड़ा मन में कि मौत दरवाजे पर आए और कहे कि सौ वर्ष का मौका देते हैं, घर में कोई राजी है? तो आप किसी को राजी करने की कोशिश करेंगे कि नहीं करेंगे! जरूर करेंगे। क्या दुबारा मौत आए, तो आप तब तक समझदार हो चुके होंगे? नहीं, जल्दी से मत कह लेना कि हम समझदार हैं। क्योंकि ययाति कम समझदार नहीं था।
हजार वर्ष के बाद भी जब मौत ने दस्तक दी, तो ययाति वहीं था, जहां पहले
सौ वर्ष के बाद था। मौत ने कहा, अब क्षमा करो! किसी चीज की सीमा भी होती है।

अब मुझसे मत कहना। बहुत हो गया! ययाति ने कहा, कितना ही हुआ हो, लेकिन मन मेरा वहीं है। कल अभी बाकी है, और सोचता हूं कि कोई सुख शायद अनजाना बचा हो, जिसे पा लूं तो सुखी हो जाऊं!
अनंत काल तक भी ऐसा ही होता रहता है। तो फिर वैराग्य पैदा नहीं होगा। अगर एक राग व्यर्थ होता है और आप तत्काल दूसरे राग की कामना करने लगते हैं, तो राग की धारा जारी रहेगी। एक राग का विषय टूटेगा, दूसरा राग का निर्मित हो जाएगा। दूसरा टूटेगा, तीसरा निर्मित हो जाएगा। ऐसा अनंत तक चल सकता है। ऐसा अनंत तक चलता है। वैराग्य कब होगा?
वैराग्य उसे होता है, जो एक राग की व्यर्थता में समस्त रागों की व्यर्थता को देखने में समर्थ हो जाता है। जो एक सुख के गिरने में समस्त सुखों के गिरने को देख पाता है। जिसके लिए कोई भी फ्रस्ट्रेशन, कोई भी विषाद अल्टिमेट, आत्यंतिक हो जाता है। जो मन के इस राज को पकड़ लेता है जल्दी ही कि यह धोखा है। क्यों? क्योंकि कल मैंने जिसे सुख कहा था, वह आज दुख हो गया। आज जिसे सुख कह रहा हूं, वह कल दुख हो जाएगा। कल जिसे सुख कहूंगा, वह परसों दुख हो जाएगा। जो इस सत्य को पहचानने में समर्थ हो जाता है, जो इतना इंटेंस देखने में समर्थ है, जो इतना गहरा देख पाता है जीवन में... ।
अब दुबारा जब मन कोई राग का विषय बनाए, तो मन से पूछना कि तेरा अतीत अनुभव क्या है! और मन से पूछना कि फिर तू एक नया उपद्रव निर्मित कर रहा है! एक मनोवैज्ञानिक के पास एक व्यक्ति गया था। ऐसे ही एक मित्र, यहां मैं आया, उस पहले दिन ही मुझसे मिलने आ गए। उस मनोवैज्ञानिक के पास जो व्यक्ति गया था, उसने कहा कि मेरी पहली पत्नी मर गई। मनोवैज्ञानिक भलीभांति जानता था कि पहली पत्नी और उसके बीच क्या घटा था। लेकिन पति भूल चुका था मरते ही। तो मैं दूसरा विवाह कर लूं या न कर लूं?
उस मनोवैज्ञानिक ने कहा, क्या तेरे मन में दूसरे विवाह का ख्याल आता है? उसने कहा, आता है। आप इससे क्या नतीजा लेते हैं? उस मनोवैज्ञानिक ने कहा, इससे मैं नतीजा लेता हूं, अनुभव के ऊपर आशा की विजय।
अनुभव के ऊपर आशा की विजय! एक पत्नी की कलह और उपद्रव और संघर्ष और दुख
और पीड़ा से बाहर नहीं हुआ है कि वह नई पत्नी की तलाश में चित्त निकल गया। लेकिन मन कहता है कि इस स्त्री के साथ सुख नहीं बन सका, तो जरूरी तो नहीं है कि किसी स्त्री के साथ न बन सके। पृथ्वी पर बहुत स्त्रियां हैं। कोई दूसरी स्त्री सुख दे पाएगी; कोई दूसरा पुरुष सुख दे पाएगा। कोई दूसरी कार, कोई दूसरा बंगला, कोई दूसरा पद, कोई दूसरा गांव, कोई कहीं और जगह सुख होगा। यहां नहीं, कोई बात नहीं। यद्यपि इस जगह आने के पहले भी यही सोचा था। और जिस गांव में आप जाने की सोच रहे हैं, उस गांव के लोग भी यही सोच रहे हैं कि कहीं चले जाएं, तो उन्हें सुख मिल जाए!
सुना है मैंने कि एक दिन सुबह-सुबह एक आदमी भागा हुआ पागलखाने पहुंचा। जोर से दरवाजा खटखटाया। पागलखाने के प्रधान ने दरवाजा खोला। उस आदमी ने पूछा कि मैं यह पूछने आया हूं कि आपके पागलखाने से कोई निकलकर तो नहीं भाग गया? नहीं; कोई निकलकर भागा नहीं। आपको इसका शक क्यों पैदा हुआ? उसने कहा, और कोई कारण नहीं है। मेरी पत्नी को कोई लेकर भाग गया है! तो मैं अपने होश में नहीं मान सकता कि जिसमें थोड़ी भी बुद्धि होगी, वह मेरी पत्नी को लेकर भाग जाएगा! तो मैंने सोचा, पागलखाने में जाकर देख लूं कि कोई निकल तो नहीं गया।
पर उस प्रधान ने कहा कि माफ कर मेरे भाई। तेरी पत्नी के साथ मैंने तुझे कई बार रास्ते पर घूमते देखा है। मेरा तक मन बहुत बार हुआ कि तेरी पत्नी को लेकर भाग जाऊं। वह देखने में बहुत सुंदर है। उस आदमी ने कहा, उसी देखने की सुंदरता के पीछे तो मैं फंसा। फिर पीछे नरक ही निकला है!
जीवन के जो चेहरे हमें दिखाई पड़ते हैं, वे असलियत नहीं हैं। इसलिए बुद्ध अपने भिक्षुओं से कहते थे, जब तुम्हें कोई चेहरा सुंदर दिखाई पड़े, तो आंख बंद करके स्मरण करना, ध्यान करना, चमड़ी के नीचे क्या है? मांस। मांस के नीचे क्या है? हड्डियां। हड्डियों के नीचे क्या है? उस सब को तुम जरा गौर से देख लेना। एक्सरे मेडिटेशन, कहना चाहिए उसका नाम। बुद्ध ने ऐसा नाम नहीं दिया। मैं कहता हूं, एक्सरे मेडिटेशन! एक्सरे कर लेना, जब मन में कोई

चमड़ी बहुत प्रीतिकर लगे, तो दूर भीतर तक। तो भीतर जो दिखाई पड़ेगा, वह बहुत घबड़ाने वाला है।
मैं एक गांव में ठहरा हुआ था। वहां गोली चली। चार लोगों को गोली लग गई,
तो उनका पोस्टमार्टम होता था। मेरे एक मित्र, जो चमड़ी के बड़े प्रेमी हैं... ।
अधिक लोग होते हैं। उपनिषद कहते हैं इस तरह के लोगों को चमार--चमड़ी के प्रेमियों को। चमड़े के जूते बनाने वाले को नहीं; जरूरी नहीं कि वह चमार हो। लेकिन चमड़ी के प्रेमी को!
तो एक चमड़ी के प्रेमी मेरे मित्र थे। मुझे मौका मिला, मैंने उनसे कहा
कि चलो, डाक्टर परिचित है, मैं तुम्हें पोस्टमार्टम दिखा दूं। उन्होंने कहा, उससे क्या होगा? मैंने कहा, थोड़ा देखो भी, आदमी के भीतर क्या है, उसे थोड़ा देखो।
पोस्टमार्टम के गृह में भीतर प्रवेश किए, तो भयंकर बदबू थी, क्योंकि लाशें तीन दिन से रुकी थीं। वे नाक पर रूमाल रखने लगे। मैंने कहा, मत घबड़ाओ। जिन चमड़ियों को तुम प्रेम करते हो, उनकी यही गति है। थोड़ा और भीतर चलो। उन्होंने कहा, बहुत उबकाई आती है। वॉमिट न हो जाए! मैंने कहा, हो जाए तो कुछ हर्जा नहीं है। और भीतर आओ।
जब हम गए, तो डाक्टर ने एक आदमी, जिसके पेट में गोली लगी थी, उसके पूरे पेट को फाड़ा हुआ था। तो सारी मल की ग्रंथियां ऊपर फूटकर फैल गई थीं। वे मेरे मित्र भागने लगे। मैं उन्हें पकड़ रहा हूं, खींच रहा हूं; वे भागते हैं! कहते हैं, मुझे मत दिखाओ! उन्होंने आंखें बंद कर लीं। मैंने कहा, आंखें खोलो। ठीक से देख लो। उन्होंने कहा, मुझे मत दिखाओ, नहीं तो मेरी जिंदगी खराब हो जाएगी! तुम्हारी जिंदगी क्यों खराब हो जाएगी? उन्होंने कहा, फिर मैं किसी शरीर को प्रेम न कर पाऊंगा। जब भी शरीर को देखूंगा, तो यह सब दिखाई पड़ेगा।
बुद्ध कहते थे, जब शरीर आकर्षक मालूम पड़े, तो थोड़ा भीतर गौर करना कि है क्या वहां? तो शायद शरीर का जो राग है, वह टूट जाए और वैराग्य उत्पन्न हो। बुद्ध को वैराग्य उत्पन्न होने की जो बड़ी कीमती घटना है, वह मैं आपसे कहूं।
बुद्ध के पिता ने बुद्ध के महल में उस राज्य की सब सुंदर स्त्रियां इकट्ठी कर दी थीं। रात देर तक गीत चलता, गान चलता, मदिरा बहती, संगीत होता और बुद्ध को सुलाकर ही वे सुंदरियां नाचते-नाचते सो जातीं। एक रात बुद्ध की नींद चार बजे टूट गई। एर्नाल्ड ने अपने लाइट आफ एशिया में बड़ा प्रीतिकर, पूरा वर्णन किया है।
चार बजे नींद खुल गई। पूरे चांद की रात थी। कमरे में चांद की किरणें भरी थीं। जिन स्त्रियों को बुद्ध प्रेम करते थे, जो उनके आस-पास नाचती थीं और स्वर्ग का दृश्य बना देती थीं, उनमें से कोई अर्धनग्न पड़ी थी; किसी का वस्त्र उलट गया था; किसी के मुंह से घुर्राटे की आवाज आ रही थी; किसी की नाक बह रही थी; किसी की आंख से आंसू टपक रहे थे; किसी की आंख पर कीचड़ इकट्ठा हो गया था।
बुद्ध एक-एक चेहरे के पास गए और वही रात बुद्ध के लिए घर से भागने की रात हो गई। क्योंकि इन चेहरों को उन्होंने देखा था; ऐसा नहीं देखा था। लेकिन ये चेहरे असलियत के ज्यादा करीब थे। जिन चेहरों को देखा था, वे मेकअप से तैयार किए गए चेहरे थे, तैयार चेहरे थे। ये चेहरे असलियत के ज्यादा करीब थे। यह शरीर की असलियत है।
लेकिन जैसी शरीर की असलियत है, वैसे ही सभी सुखों की असलियत है। और एक-
एक सुख को जो एक्सरे मेडिटेशन करे, एक-एक सुख पर एक्सरे की किरणें लगा दे, ध्यान की, और एक-एक सुख को गौर से देखे, तो आखिर में पाएगा कि हाथ में सिवाय दुख के कुछ बच नहीं रहता। और जब आपको एक सुख की व्यर्थता में समस्त सुखों की व्यर्थता दिखाई पड़ जाए, और जब एक सुख के डिसइलूजनमेंट में आपके लिए समस्त सुखों की कामना क्षीण हो जाए, तो आपकी जो स्थिति बनती है, उसका नाम वैराग्य है।
वैराग्य का अर्थ है, अब मुझे कुछ भी आकर्षित नहीं करता। वैराग्य का अर्थ है, अब ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसके लिए मैं कल जीना चाहूं। वैराग्य का

अर्थ है, ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसके लिए मैं कल जीना चाहूं। ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसे पाए बिना मेरा जीवन व्यर्थ है।
वैराग्य का अर्थ है, वस्तुओं के लिए नहीं, पर के लिए नहीं, दूसरे के लिए नहीं, अब मेरा आकर्षण अगर है, तो स्वयं के लिए है। अब मैं उसे जान लेना चाहता हूं, जो सुख पाना चाहता है। क्योंकि जिन-जिन से सुख पाना चाहा, उनसे तो दुख ही मिला। अब एक दिशा और बाकी रह गई कि मैं उसको ही खोज लूं, जो सुख पाना चाहता है। पता नहीं, वहां शायद सुख मिल जाए। मैंने बहुत खोजा, कहीं नहीं मिला; अब मैं उसे खोज लूं, जो खोजता था। उसे और पहचान लूं, उसे और देख लूं।
वैराग्य का अर्थ है, विषय से मुक्ति और स्वयं की तरफ यात्रा।
चित्त दो यात्राएं कर सकता है। या तो आपसे पदार्थ की तरफ, और या फिर पदार्थ से आपकी तरफ। आपसे पदार्थ की तरफ जाती हुई जो चित्त की धारा है, उसका नाम राग है। पदार्थ से आपकी तरफ लौटती हुई जो चेतना है, उसका नाम वैराग्य है।
कभी आपने ऐसा अनुभव किया, जब पदार्थ से आपकी चेतना आपकी तरफ लौटती हो? सबको छोटा-छोटा अनुभव आता है वैराग्य का। लेकिन थिर नहीं हो पाता। थिर इसलिए नहीं हो पाता कि वैराग्य का हम कोई अभ्यास नहीं करते हैं। राग का तो अभ्यास करते हैं। वैराग्य का क्षण भी आता है, तो चूंकि अभ्यास नहीं होता, इसलिए खो जाता है।
करीब-करीब ऐसे जैसे आपने कबूतर पालने वाले लोगों को देखा होगा, अपने
घर पर एक छतरी लगाकर रखते हैं। कबूतर आता है, तो छतरी पर बैठ पाता है। हमारे ऊपर भी वैराग्य का कबूतर कई बार आता है, लेकिन कोई छतरी नहीं होती, जिस पर बैठ पाए। फिर उड़ जाता है। अभ्यास, छतरी का बनाना है कि जब वैराग्य का कबूतर आए, जब वैराग्य का पक्षी आए अपनी तरफ उड़कर, तो हमारे पास उसके बैठने की, बिठाने की, निवास की जगह हो।
अभ्यास वैराग्य को थिर करने का उपाय है। वैराग्य तो सबके भीतर पैदा होता है, अभ्यास थिर करने का उपाय है। वैराग्य तो सबके ऊपर आता है, अभ्यास उसे रोक लेने का उपाय है, उसे प्राणों में आत्मसात कर लेने का उपाय है। अभी हमारी जैसी स्थिति है, वह ऐसी है कि राग का तो हम अभ्यास करते हैं। राग का हम अभ्यास करते है। हर राग व्यर्थ होता है, लेकिन अभ्यास जारी रहता है। और वैराग्य कभी-कभी आता है राग की असफलता में से, लेकिन उसका कोई अभ्यास न होने से वह कहीं भी ठहर नहीं पाता; हमारे ऊपर रुक नहीं पाता; वह बह जाता है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, वैराग्य और अभ्यास।
अभ्यास क्या है? वैराग्य तो इस प्रतीति का नाम है कि इस जगत में बाहर कोई भी सुख संभव नहीं है। सुख असंभावना है। दूसरे से किसी तरह की शांति संभव नहीं है। दूसरे से सब अपेक्षाएं व्यर्थ हैं। इस प्रतीति को उपलब्ध हो जाना वैराग्य है।
लेकिन इस प्रतीति को हम सब उपलब्ध होते हैं, मैं आपसे कह रहा हूं। इससे आपको थोड़ी हैरानी होती होगी। हम सभी वैराग्य को उपलब्ध होते हैं रोज।
कामवासना मन को पकड़ती है। लेकिन आपने देखा है कि कामवासना के बाद आदमी क्या करता है? सिर्फ करवट लेकर निढाल पड़ जाता है। वैराग्य पकड़ता है। हर कामवासना के बाद एक विषाद मन को पकड़ लेता है, एक फ्रस्ट्रेशन। फिर वही! कुछ भी नहीं, फिर वही। कुछ भी नहीं, फिर वही। और चित्त ग्लानि अनुभव करता है। चित्त को लगता है, यह मैं क्या कर रहा हूं! लेकिन तब आप चुपचाप करवट लेकर सो जाते हैं। चौबीस घंटे में फिर राग पैदा हो जाता है।
वैराग्य को स्थिर करने का आपने कोई उपाय नहीं किया। जब कामवासना व्यर्थ होती है, तब आपने उठकर ध्यान किया कुछ? तब आपने उठकर कोई अभ्यास किया कि यह वैराग्य का क्षण गहरा हो जाए! नहीं; तब आप चुपचाप सो गए।
लेकिन कामवासना के लिए आप बहुत अभ्यास करते हैं। राह चलते अभ्यास चलता है। फिल्म देखते अभ्यास चलता है। रेडियो सुनते अभ्यास चलता है। किताब पढ़ते अभ्यास चलता है। मित्रों से बात करते अभ्यास चलता है। मजाक करते अभ्यास चलता है। अगर कोई आदमी ठीक से जांच करे अपने चौबीस घंटे की, तो

चौबीस घंटे में कितने समय वह कामवासना का अभ्यास कर रहा है, देखकर दंग हो जाएगा। अगर मजाक भी करता है किसी से, तो भीतर कामवासना का कोई रूप छिपा रहता है।
दुनिया की सब मजाकें सेक्सुअल हैं, निन्यानबे परसेंट। निन्यानबे प्रतिशत मजाक सेक्स से संबंधित हैं, कामवासना से संबंधित हैं। हंसता है, घूरकर देखता है, रास्ते पर चलता है; चलने का ढंग, कपड़े पहनने का ढंग, उठने का ढंग, बोलने का ढंग, अगर थोड़ा गौर करेंगे तो कामवासना से संबंधित पाएंगे।
कभी आपने ख्याल किया, अगर एक कमरे में दस पुरुष बैठकर बात कर रहे हों
और एक स्त्री आ जाए, तो उनके बोलने की सबकी टोन फौरन बदल जाती है; वही नहीं रह जाती। बड़े मृदुभाषी, मधुर, शिष्ट, सज्जन हो जाते हैं! क्या हो गया? क्या, हो क्या गया एक स्त्री के प्रवेश से? उनको भी ख्याल नहीं आएगा कि यह अभ्यास चल रहा है। यह अभ्यास है, बहुत अनकांशस हो गया, अचेतन हो गया। इतना कर डाला है कि अब हमें पता ही नहीं चलता।
इसकी हालत करीब-करीब ऐसी हो गई है, जैसे साइकिल पर आदमी चलता है, तो उसको घर की तरफ मोड़ना नहीं पड़ता हैंडिल, मुड़ जाता है। चलता रहता है, साइकिल चलती रहती है, जहां-जहां से मुड़ना है, हैंडिल मुड़ता रहता है। अपने घर के सामने आकर गाड़ी खड़ी हो जाती है। उसे सोचना नहीं पड़ता कि अब बाएं मुड़ें कि अब दाएं। अभ्यास इतना गहरा है कि अचेतन हो गया है। साइकिल होश से नहीं चलानी पड़ती। बिल्कुल मजे से वह गाना गाते, पच्चीस बातें सोचते, दफ्तर का हिसाब लगाते... चलता रहता है। पैर पैडिल मारते रहते हैं, हाथ साइकिल मोड़ता रहता है। यह बिल्कुल अचेतन हो गया है। इतना अभ्यास हो गया कि अचेतन हो गया।
कामवासना का अभ्यास इतना अचेतन है कि हमें पता ही नहीं होता कि जब हम कपड़ा पहनते हैं, तब भी कामवासना का अभ्यास चल रहा है। जब आप आईने के सामने खड़े होकर कपड़े पहनकर देखते हैं, तो सच में आप यह देखते हैं कि आपको आप कैसे लग रहे हैं? या आप यह देखते हैं कि दूसरों को आप कैसे लगेंगे? और अगर दूसरों का थोड़ा ख्याल करेंगे, तो अगर पुरुष देख रहा है आईने में, तो दूसरे हमेशा स्त्रियां होंगी। अगर स्त्रियां देख रही हैं, तो दोनों हो सकते हैं, पुरुष और स्त्रियां भी। क्योंकि स्त्रियों की कामवासना ईर्ष्या से इतनी संयुक्त हो गई है, जिसका कोई हिसाब नहीं है। पुरुष होंगे कि कोई देखकर प्रसन्न हो जाए, इसलिए; और स्त्रियों की याद आएगी कि कोई स्त्री जल जाए, राख हो जाए, इसलिए। मगर दोनों कामवासना के ही रूप हैं। दोनों के भीतर गहरे में तो वासना ही चल रही है।
यह अभ्यास चौबीस घंटे चल रहा है। तो फिर वैराग्य का जो पक्षी आता है आपके पास, कोई जगह नहीं पाता जहां बैठ सके; व्यर्थ हो जाता है। आपने जो मकान बनाया है, वह वासना के पक्षी के लिए बनाया है। इसलिए सब तरफ से उसको निमंत्रण है, निवास के लिए मौका है।
जीवन दोनों देता है आपको, वैराग्य भी और राग भी। लेकिन राग का अभ्यास है, इसलिए राग टिक जाता है। वैराग्य का अभ्यास नहीं है, इसलिए वैराग्य नहीं टिकता है। जीवन में अंधेरा भी है, उजेला भी। राग भी, विराग भी। यहां क्रोध भी आता है, पश्चात्ताप भी। लेकिन क्रोध के लिए पूरा इंतजाम है, पूरी मशीनरी है आपके पास। पश्चात्ताप की कोई मशीनरी नहीं है। आ जाता है, चला जाता है। उसकी कोई गहरी आप पर पकड़ नहीं छूट जाती।
जीवन आपको पूरे अवसर देता है। लेकिन जिस चीज का अभ्यास है, आप उसी का उपयोग कर सकते हैं। करीब-करीब ऐसा समझिए कि आप पैदल चल रहे हैं और रास्ते में आपको पड़ी हुई कार मिल जाए, बिल्कुल ठीक। जरा स्विच आन करना है कि कार चल पड़े। लेकिन अगर आपका कोई अभ्यास नहीं है, तो आप पैदल ही चलते रहेंगे। और खतरा एक है कि कहीं कार का मोह पकड़ जाए, तो गले में रस्सी बांधकर, कार से बांधकर उसको खींचने की कोशिश करेंगे, उसमें और झंझट में पड़ेंगे। उससे तो पैदल ही तेजी से चल लेते।
अभ्यास जो है, वही आप कर पाएंगे। जिसका अभ्यास नहीं है, वह आप नहीं कर पाएंगे। इसलिए कृष्ण ने वैराग्य को नंबर दो पर कहा। मैंने जानकर नंबर एक

पर वैराग्य आपको समझाया। कृष्ण के सूत्र में अभ्यास पहले और वैराग्य बाद में उन्होंने कहा है। उन्होंने कहा, जिसे अभ्यास और वैराग्य... ।
वैराग्य को नंबर दो पर कृष्ण ने क्यों रखा? वैराग्य है तो प्रथम। क्योंकि वैराग्य न हो, तो अभ्यास नहीं हो सकता। लेकिन नंबर दो पर रखने का कारण है। और वह कारण यह है कि वैराग्य तो रोज आता है, लेकिन अभ्यास न हो तो टिक नहीं सकता। अभ्यास क्या हो वैराग्य का?
जैसे आपने कामवासना का अभ्यास किया है, वैसे ही वैराग्य का भी अभ्यास करना पड़े। जैसे आपने राग का अभ्यास किया है, वैसे ही वैराग्य का अभ्यास करना पड़े। जिस तरह आप काम का चिंतन करते हैं, उसी तरह निष्काम का चिंतन करना पड़े। ठीक वही करना पड़े, उलटे मार्ग पर। जैसे कि आप यहां तक आए अपने घर से, तो जिस रास्ते से आए हैं, उसी से वापस लौटिएगा न! और तो कोई उपाय नहीं है। मुझ तक जिस रास्ते से आप आए हैं, लौटते वक्त उसी रास्ते से वापस लौटिएगा। एक ही फर्क होगा, रास्ता वही होगा, आप वही होंगे, एक ही फर्क होगा कि आपका चेहरा उलटी तरफ होगा। और तो कोई फर्क होने वाला नहीं है।
राग का रास्ता वही है, जो वैराग्य का। सिर्फ आपका चेहरा उलटी तरफ होगा। जिन-जिन चीजों में आपने रस लिया था, उन-उन चीजों में विरस। जिन-जिन चीजों के लिए दीवाने हुए थे, उन-उन चीजों की व्यर्थता। जैसे-जैसे दौड़े थे, वैसे-वैसे विपरीत यात्रा।
किस-किस चीज में रस लिया है? किस-किस चीज में रस लिया है? उस-उस चीज के यथार्थ को देखना जरूरी है। क्योंकि यथार्थ उसके विरस को भी उत्पन्न कर देता है। किस चीज का आकर्षण है? किसी प्रियजन का हाथ बहुत प्रीतिकर लगता है, हाथ में लेने जैसा लगता है। तो लेकर बैठ जाएं, लेकिन लेकर भूलें न। हाथ हाथ में ले लें और अब थोड़ा ध्यान करें कि क्या रस मिल रहा है? सिवाय पसीने के कुछ भी मिलता नहीं है। थोड़ी ही देर में मन होगा कि अब यह हाथ छोड़ना चाहिए। वैराग्य अपने आप ही आता है!
लेकिन खुद के ही राग में किए गए वायदे दिक्कत देते हैं। राग में हम कहते हैं कि तेरा हाथ हाथ में आ जाए, तो दुनिया की कोई ताकत छुड़ा नहीं सकती। दुनिया की ताकत की बात दूर है, पांच-सात मिनट के बाद दुनिया की कोई ताकत दोनों के हाथ साथ नहीं रख सकती, इकट्ठा नहीं रख सकती। पांच-सात मिनट के बाद पसीना-पसीना ही रह जाता है! बदबू-बदबू ही छूट जाती है। पांच-सात मिनट के बाद कोई बहाना खोजकर हाथ अलग करना पड़ता है।
जरा गौर से देखना कि जब हाथ अलग करते हैं, तब मन में वैराग्य का एक क्षण है। उस क्षण को थोड़ा गहरा करने की जरूरत है, पहचानने की जरूरत है। क्योंकि नहीं तो कल फिर हाथ हाथ में लेने की आकांक्षा पैदा होगी। अभी वैराग्य का क्षण है, अभ्यास कर लें। थोड़ा गौर से देखें। और दो मिनट ज्यादा लिए रहें हाथ को, और थोड़ा गौर से सोचें कि क्या दुबारा फिर हाथ को हाथ में लेने की आकांक्षा पैदा करेगा मन? अगर करता हो, तो अब इस हाथ को जिंदगीभर हाथ में ही लिए रहें! अब जल्दी क्या है? हाथ हाथ में है, हम रुक जाएं। मन को थोड़ा मौका दें कि वह वैराग्य को भी पहचाने। जल्दी न करें। क्योंकि जल्दी खतरनाक है। जल्दी के बाद वैराग्य थिर न हो पाएगा।
भोजन बहुत अच्छा लग रहा है, तो खा लें जरा; खाते चले जाएं। फिर रुकें मत, जब तक कि प्राण संकट में न पड़ जाएं। रुकें मत। और जरा देख लें कि इस सब स्वाद का क्या फल हो सकता है! और जब स्वाद पूरा ले चुकें, तो जब मुंह में किसी चीज को, जिसकी लोग कल्पना करते हैं... । खाने वाले प्रेमी हैं... । टाइप हैं लोगों के अलग-अलग। कुछ हैं, जिनको सब चीज छूट जाए, लेकिन भोजन
का रस कठिनाई दे जाए। कुछ हैं, जिन्हें सब छूट जाए, लेकिन काम का रस कठिनाई दे जाए। कुछ हैं, जिन्हें काम, भोजन किसी चीज की चिंता नहीं। सिर्फ अहंकार का रस है, यश का। वे भूखे रह सकते हैं, जेल जा सकते हैं, लेकिन कोई पद पर बिठा दो! तो वे सब कर सकते हैं। पत्नी छोड़ सकते हैं, बच्चे छोड़ सकते हैं। सब जीवन भारी तपश्चर्या में गुजार सकते हैं। बस इतना ही पक्का कर दो कि कोई कुर्सी पर... । और ऐसा भी जरूरी नहीं है कि वे पहले ही से कहें, कुर्सी पर बिठा दो। हो सकता है, उनको भी पक्का पता न हो कि कुर्सी पर बैठने के लिए जेल जा रहे हैं। चित्त बड़ा अचेतन काम करता है। लेकिन जब जेल से छूटेंगे, तब सबको पता चल जाएगा कि वे जेल किसलिए गए थे।

जो त्यागी दिखाई पड़ते हैं, उनमें भी सौ में से मुश्किल से एकाध आदमी होता है, जो वैराग्य को उपलब्ध होता है। त्याग भी इनवेस्टमेंट की तरह काम करता है। इधर त्याग करते हैं, उधर कुछ उनकी भोग की इच्छा है। लेकिन हम पहचान नहीं पाते। यह हो सकता है कि मैं गोली खाने को राजी हो जाऊं, अगर फूलमाला मेरे ऊपर पड़ने को हो। यह हमें दिखाई नहीं पड़ेगा, कि कौन फूलमाला पड़ने के लिए गोली अपने ऊपर डलवाएगा! यह वह आदमी कह रहा है, जिसको यश की आकांक्षा और पकड़ नहीं है। जिसको है, वह पूरा जीवन इस पर दांव पर लगा सकता है।
लेकिन यह जो चित्त की व्यवस्था है, इसमें जब वैराग्य का क्षण आता है,
उस वक्त ठहरने की जरूरत है। उस अंतराल में रुकने की जरूरत है। तो अभ्यास की शुरुआत हो जाएगी। जैसे समुद्र में पानी बढ़ता है, फिर गिरता है, ठीक वैसे ही चित्त में राग आता है, फिर गिरता है। जब राग आता है, तब आप बड़ा इंतजाम करते हैं। और जब वैराग्य आता है, जब गिरता है राग, तब आप कुछ नहीं करते। तब आप कोई व्यवस्था नहीं करते कि वह विराग थिर हो जाए। उस विराग को थिर करने के लिए वैराग्य के क्षणों का उपयोग करिए।
और जिंदगी में जितने क्षण राग के हैं, उतने ही विराग के हैं। जितने दिन हैं, उतनी ही रातें हैं। उसमें कोई अंतर नहीं है। वह अनुपात बराबर है। हर राग के साथ विराग आएगा ही, इसलिए अनुपात बराबर है। पर उस उतरते हुए क्षण का आप उपयोग नहीं करते हैं। उसका कैसे उपयोग करें? जैसा आपने चढ़ते हुए क्षण का उपयोग किया था। कितना रस लिया था!
अगर कोई प्रेमी अपनी प्रेयसी से मिलने जा रहा है, या कोई धनी कोई सौदा करने जा रहा है जिसमें लाभ होने वाला है, या कोई नेता वोटर से वोट मांगने जा रहा है, तब उनकी टपकती हुई लार देखें! तब उनके चेहरे से जो झलक रहा है, वह देखें! वह हम सबके ऊपर उतरता है वैसा ही। लेकिन जब विरक्ति का क्षण पीछे आता है, तब? तब हम विरक्ति के क्षण को जल्दी से गुजारने की कोशिश करते हैं। अभी एक महिला मुझे मिलने आईं; उनके पति चल बसे। तो मुझसे वे कहने लगीं, हमने बहुत सुख पाया। साथ रहे। बहुत सुख पाया। अब मुझे बहुत पीड़ा है, बहुत दुख है। मुझे कुछ सांत्वना चाहिए। मैंने कहा, तुम गलत जगह आ गई हो। मैं सांत्वना नहीं दूंगा। सुख तुमने पाया, सांत्वना मैं दूं? मेरा क्या कसूर है? मेरा इसमें कोई हाथ ही नहीं है। उसने कहा, नहीं-नहीं; आपका तो कोई हाथ नहीं है। लेकिन कई संतों-महात्माओं के पास इसीलिए जा रही हूं कि सांत्वना मिल जाए। मैंने कहा, किन्हीं ने दी? उन्होंने कहा, बहुतों ने दी। तो मैंने कहा, फिर मेरे पास किसलिए आईं? अगर मिल गई, तो खतम करो अब यह बात! उसने कहा, नहीं, मिलती नहीं। मैंने कहा, मिलेगी भी नहीं। सुख तुम पाओगी, तो जब दुख का क्षण आएगा, उसे कौन पाएगा? राग तुम भोगोगी, जब विराग का क्षण आएगा, उसे कौन भोगेगा? अब तुम इस तरकीब में लगी हो कि तुमने राग तो भोग लिया, अब यह जो विराग की उतरती धारा है, इसको कोई भुलाने की तरकीब दे दे। यह नहीं होगा। मैंने कहा, मैं तो तुमसे प्रार्थना करूंगा कि तुम एक काम करो; यह कीमती होगा। जितना पति का साथ रहना कीमती नहीं हुआ, उससे ज्यादा पति की मृत्यु कीमती हो सकती है। क्योंकि पति के साथ से कुछ मिल गया हो, ऐसा मैं नहीं मानता। तुम फिर ईमानदारी से मुझसे कहो कि सच में सुख था?
वह महिला थोड़ी बेचैन हुई। उसने कहा कि नहीं; कहने को कहते हैं। सुख तो क्या था; ठीक था, सो-सो; ऐसा ही ऐसा था! मैंने कहा, और थोड़ा गौर से सोचो। क्योंकि पहले तो तुम बिल्कुल आश्वस्त थीं कि बहुत सुख पाया। अब तुम कहती हो, सो-सो, ऐसा-ऐसा। थोड़ा और जरा भीतर जाओ। उसने कहा, लेकिन आप क्यों दबे हुए घाव उघाड़ना चाहते हैं? मैं नहीं उघाड़ना चाहता। मैं तुम्हें दिखाना चाहता हूं कि स्थिति सच में क्या है। कहीं ऐसा तो नहीं कि अब तुम कल्पना कर रही हो कि तुमने सुख भोगा। यह कल्पना, अतीत में सुख भोगने की, वैराग्य के क्षण को गंवा दोगी। ठीक से देखो कि तुमने सुख भोगा?
वह स्त्री थोड़ी डर गई। उसने आंख बंद कर ली। फिर उसने कहा कि नहीं, सुख
तो नहीं भोगा। मैंने कहा, कभी तुम्हारे मन में ऐसा ख्याल आया था कि इस पति के साथ विवाह न होता, तो अच्छा था? क्योंकि ऐसी पत्नी जरा खोजना मुश्किल है। उसने कहा, आप भी कैसी बात करते हैं! मैंने कहा, मैं तुम्हें एक कहानी कहता हूं।

एक चर्च में एक पादरी ने एक सांझ कहा कि जिन दंपतियों में कभी झगड़ा न हुआ हो, वे आगे आ जाएं। कोई पांच सौ लोग थे। पांच-सात जोड़े आगे आए। उस पादरी ने भगवान से कहा, हे परमात्मा, इन पक्के झूठों को आशीर्वाद दे, ब्लेस दीज डैम लायर्स! उन्होंने कहा, आप हमें झूठा कह रहे हैं?
कहने की कोई जरूरत नहीं है। मैंने यही जानने के लिए तुम्हें बाहर बुलाया था कि कितने झूठे आज यहां इकट्ठे हैं। उनमें से एक ने पूछा, लेकिन आपको पता कैसे चला? उसने कहा कि मैं भी दंपति हूं। मुझे भी बहुत कुछ पता है। और तुम सब अलग-अलग आकर मुझसे चर्चा कर गए हो। तुम भूल गए हो।
वे पति भी आकर चर्चा कर चुके हैं। वे उसी के सुनने वाले हैं। और ईसाइयों में कन्फेशन होता है। पादरी के पास जाकर पति भी बता आता है, किस मुसीबत में गुजर रहा है; पत्नी भी बता आती है। तुम अलग-अलग सब बता गए हो मुझे। और अब तुम जोड़े की तरह खड़े हो कि हममें कोई कलह नहीं है!
मैंने उस महिला को कहा कि ठीक से देख ले। कहीं अब यह सुख का ख्याल झूठा
न हो।
हम भविष्य में भी झूठे सुख निर्मित करते हैं और अतीत में भी। हम अदभुत हैं। जो सुख हमने कभी नहीं पाए, हम सोचते हैं, हमने अतीत में पाए। यह तरकीब है मन की। क्योंकि अतीत में सुख निर्मित करें, तो ही भविष्य में आशा करना आसान है। अन्यथा भविष्य में आशा करना दुरूह हो जाएगा। यह अभ्यास है काम का।
वैराग्य का अभ्यास करना है, तो अतीत के सुखों को ठीक से देखना, ताकि साफ हो जाए कि वे दुख थे। अगर पूरा अतीत दुख सिद्ध हो जाए, तो भविष्य में सुख की आशा क्षीण हो जाएगी, गिर जाएगी; क्योंकि भविष्य अतीत के प्रोजेक्शन, अतीत के फैलाव के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। कल्पनाएं हमारी स्मृतियों के ही नए रूप हैं। भविष्य की योजनाएं, हमारे अतीत की ही विफल योजनाओं को फिर से सम्हालना है।
काम का अभ्यास चलता है। तो अतीत में हम सोचते हैं, कैसा सुख मिला! उस दिन भोजन किया था उस होटल में, कैसा सुख पाया था! हालांकि उस दिन बिल्कुल नहीं पाया था; लेकिन आज सोच रहे हैं। आज सोच रहे हैं, ताकि कल फिर उस होटल की तरफ पैर जा सकें।
तो मैं आपसे कहूंगा कि अतीत का भी सत्य साफ है। उस महिला को मैंने कहा, ठीक से देखो। उसने हिम्मत जुटाकर कहा कि नहीं, कोई सुख तो नहीं पाया। मैंने कहा, जिसके जीवन से तुमने सुख नहीं पाया, और जिसको तुम कहती हो खुद कि मैंने कई बार सोचा कि इस आदमी से मिलना न होता, तो अच्छा; विवाह न किया होता, तो अच्छा... । क्या कभी तुम्हारे मन में ऐसा भी ख्याल आया था कि यह आदमी मर जाए या मैं मर जाऊं?
उस स्त्री ने कहा, अब आप जरा ज्यादा बात कर रहे हैं! मैं धीरे-धीरे आपसे कुछ बातों पर राजी होती जाती हूं, तो आप ज्यादा बात कर रहे हैं! मैंने कहा कि मैं कुछ ज्यादा नहीं कर रहा। ऐसा मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि बहुत मुश्किल है कि जिन्हें हम प्रेम करते हैं, उनकी हत्या का या उनके मर जाने का ख्याल हमें न आता हो। स्वीकार करना कठिन पड़ता है। खुद भी स्वीकार करना कठिन पड़ता है कि ऐसा कैसे! कई दफे जब मन में आता है, तो हम कहते हैं, नहीं- नहीं, यह ठीक नहीं है। इस तरह की बात बड़ी गलत है। यह मन बड़ा खराब है। जैसे कि मन दोषी है और हम निर्दोष, अलग खड़े हैं!
वह महिला ईमानदार थी और उसने कहा कि ऐसा ख्याल आया। लेकिन जैसे ही उसने कहा कि ऐसा ख्याल आया, जैसे उसके ऊपर से एक भार उतर गया। और उसने कहा, सच में ही मैं हैरान हूं। जिस व्यक्ति के साथ रहकर मैं सुख न पा सकी, जिस व्यक्ति के साथ रहकर मैंने कई बार सोचा कि दो में से एक समाप्त ही हो जाए तो अच्छा, आज उसकी मृत्यु पर मैं दुख क्यों पा रही हूं?
और मैंने कहा कि जो दुख पा रही हो, उससे बचने की भी कोशिश चल रही है। इस दुख को पूरा पाओ। छाती पीटो, रोओ, चिल्लाओ। जिस तरह नाची थीं शादी के वक्त, उसी तरह अब मृत्यु के वक्त छाती पीटो, तड़पो, जमीन पर लोटो। दुख भोगो। और देखो इस दुख को गौर से, ताकि यह वैराग्य का क्षण ठहर जाए, और कल फिर पुरानी आशाएं और फिर पुराने जाल फिर खड़े न हों।

लाओत्से ने लिखा है कि एक आदमी मरने के करीब था। लाओत्से गांव का बूढ़ा आदमी था, फकीर था। तो उसकी पत्नी उसे कई बार कहने आई कि मेरे पति को बचा लो। उसके बिना मैं बिल्कुल न रह सकूंगी। लाओत्से ने कहा, बचाना तो मेरे हाथ में नहीं है। लेकिन तुम बिल्कुल बिना उसके न रह सकोगी, इस पर भरोसा मत करना। क्योंकि मैंने कई लोगों को--मैं बूढ़ा आदमी हूं--मैंने कई लोगों को मरते और कई लोगों को यही बात करते सुना। और सब बिना उसके रह लेते हैं। नहीं; वह नहीं मानी। उसने कहा, वे और और होंगे; मैं और हूं। हर आदमी को यही ख्याल है कि मैं एक्सेप्शन हूं। वे और और होंगे, मैं और हूं। मैं मर जाऊंगी, एक क्षण न जी सकूंगी। लाओत्से ने कहा, अब तक किसी को मरते नहीं देखा। इस गांव में मैं बहुत दिन से हूं। हालांकि यही बात बहुतों को कहते सुना। और जितने जोर से तुम कहती हो, इतने ही जोर से कहते सुना। लेकिन उस स्त्री ने कहा, आप औरों की बात कर रहे हैं। मेरी बात करिए। लाओत्से ने कहा, वक्त आएगा; तो तुझसे मुलाकात करूंगा।
पति मर गया। तो उन दिनों चीन में एक प्रथा थी कि पति की कब्र पर गीली मिट्टी लगाते थे और उस पर थोड़ी दूब उगाते थे। और रिवाज यह था कि जब तक पति की कब्र की गीली मिट्टी सूखकर कड़ी न हो जाए और उस पर दूब पूरी छा न जाए, तब तक उस स्त्री को दूसरा विवाह--कम से कम तब तक--नहीं करना चाहिए।
लाओत्से ने देखा कि वह मर गया आदमी। पांच-सात दिन के बाद वह कब्रिस्तान के पास से गुजरता था, तो देखा कि वह औरत कब्र पर पंखा कर रही है! उसने सोचा कि यह औरत ठीक ही कहती थी कि यह एक्सेप्शनल है, यह विशेष। हद! मरे हुए पति को हवा कर रही है! आश्चर्य! लाओत्से ने कहा, मुझसे गलती हो गई। निश्चित गलती हो गई। जिंदा आदमियों को पत्नियां हवा नहीं करतीं, मरे हुए आदमी को पत्नी हवा कर रही है! मुझसे गलती हो गई। यह औरत निश्चित ही विशेष है।
लाओत्से पास गया और कहा कि देवी, मैं प्रणाम करता हूं। मुझे भरोसा नहीं आया कि कोई मुर्दा पति को हवा करेगा।
उसने कहा कि भरोसे की जरूरत नहीं है। हवा पति को नहीं कर रही हूं, कब्र जल्दी सूख जाए! वह एक आदमी मेरे पीछे पड़ा है, उसके मैं प्रेम में पड़ गई हूं। और यह कब्र सूखने में देर ले रही है। आकाश में बादल घिरे हैं; कहीं बरसा न हो जाए!
ऐसा है आदमी का मन! मत सोचना किसी और का! अगर किसी और का सोचा, तो राग
का अभ्यास होगा। अगर जाना कि मेरा भी, तो विराग का अभ्यास होगा। फिर से दोहरा दूं। अगर सोचा कि और का होगा ऐसा, तो राग का अभ्यास कर रहे हैं आप। अगर सोचा कि मेरा भी ऐसा ही है, तो वैराग्य का अभ्यास होता है।
अभ्यास के संबंध में कुछ दो-तीन बातें और आपसे कहूं।
एक तो यह कि कुछ लोगों का ख्याल है कि परमात्मा को पाने के लिए किसी अभ्यास की कोई भी जरूरत नहीं है। जैसा कि जापान में कुछ झेन फकीर कहते हैं कि परमात्मा को पाने के लिए कोई भी अभ्यास की जरूरत नहीं। यद्यपि वे ऐसा कहते ही हैं, अभ्यास पूरी तरह करते हैं। पर वे उसको नाम देते हैं, अभ्यासरहित अभ्यास, एफर्टलेस एफर्ट, प्रयत्नरहित प्रयत्न।
ठीक है। उनके कहने में कुछ अर्थ है। अगर गीता का यह वचन उन्हें बताया जाए, तो वे कहेंगे, अभ्यास से नहीं मिलेगा परमात्मा। क्योंकि स्वभाव अभ्यास से नहीं मिलता। अभ्यास से आदतें मिलती हैं।
इसको थोड़ा समझना पड़ेगा। स्वभाव अभ्यास से नहीं मिलता; अभ्यास से आदतें मिलती हैं। स्वभाव तो मिला ही हुआ है। और परमात्मा को पाना कोई आदत नहीं है कि आप अभ्यास कर लें।
जैसे किसी को धनुर्विद्या सीखनी हो, तो अभ्यास करना पड़ेगा। क्योंकि धनुर्विद्या एक आदत है, स्वभाव नहीं। अगर न सिखाया जाए, तो आदमी कभी भी धनुर्विद न हो सकेगा। जैसा मैंने सुबह कहा, किसी को भाषा सीखनी हो, तो अभ्यास करना पड़ेगा। क्योंकि भाषा एक आदत है, एक हैबिट है, स्वभाव नहीं है। लेकिन श्वास तो चलेगी आदमी की बिना अभ्यास के, कि उसका भी अभ्यास करना पड़ेगा! खून तो बहेगा बिना अभ्यास के, कि उसका भी अभ्यास करना पड़ेगा! हड्डियां तो बड़ी होती रहेंगी बिना अभ्यास के, कि उनका भी अभ्यास करना पड़ेगा!

तो झेन फकीर कहते हैं, परमात्मा को पाना तो स्वभाव को पाना है, इसलिए अभ्यास की कोई भी जरूरत नहीं। तो हम कह सकते हैं, हम तो कोई अभ्यास कर ही नहीं रहे, तो फिर हमको परमात्मा क्यों नहीं मिलता? झेन फकीर कहेंगे, आप नहीं कर रहे, ऐसा मत कहिए। आप परमात्मा को खोने का अभ्यास कर रहे हैं। अभ्यास आप कर रहे हैं परमात्मा को खोने का। तो झेन फकीर कहते हैं, सिर्फ परमात्मा को खोने का अभ्यास मत करिए, और आप परमात्मा को पा लेंगे।
मगर परमात्मा को खोने का अभ्यास न करना, बहुत बड़ा अभ्यास है। उसमें सारा वैराग्य साधना पड़ेगा। और सारी विधियां साधनी पड़ेंगी।
लेकिन झेन फकीर संगत हैं। उनकी बात का अर्थ है। वे यह जोर देना चाहते हैं कि जब परमात्मा आपको मिल जाए, तो आप ऐसा मत समझना कि आपके अभ्यास से मिल गया। कोई नहीं समझता ऐसा। जब परमात्मा मिलता है, तो ऐसा ही पता चलता है कि वह तो मिला ही हुआ था। मेरे गलत अभ्यासों के कारण बाधा पड़ती थी। ऐसा समझ लें कि एक झरना है, उसके ऊपर एक पत्थर रखा है। पत्थर को हटा दें, तो झरना फूट पड़ता है। झरने को फूटने के लिए कोई अभ्यास नहीं करना पड़ता। लेकिन पत्थर अगर अटा रहे ऊपर, तो बाधा बनी रहती है।
तो झेन फकीर कहते हैं, आदमी की आदतें बाधाओं का काम कर रही हैं, रुकावटों का।
ऐसा समझें कि आप मकान के भीतर बैठे हैं, दरवाजा बंद करके। अगर मैं आपसे कहूं कि अगर आपको सूरज चाहिए, तो सूरज को भीतर लाने का अभ्यास करना पड़ेगा! तो आप कहेंगे, यह कहीं हो सकता है? सूरज को हम भीतर लाने का अभ्यास कैसे करेंगे?
झेन फकीर कहते हैं, भीतर लाने का कोई अभ्यास नहीं करने की जरूरत है; सिर्फ दरवाजा बंद करने का जो अभ्यास किया हुआ है, उसको छोड़िए। दरवाजा खुला करिए, सूरज भीतर आ जाएगा। सूरज भीतर लाना नहीं पड़ेगा, सूरज आ जाएगा। आप सिर्फ दरवाजा बंद मत करिए।
इसका यह मतलब हुआ कि हम चाहें तो अभ्यास से परमात्मा से वंचित हो सकते हैं। और चाहें तो अनभ्यास से, नो एफर्ट से, अभ्यास छोड़ देकर परमात्मा को पा सकते हैं। लेकिन अभ्यास को छोड़ना अभ्यास करने से कम कठिन बात नहीं है। इसलिए झेन फकीर अभ्यास की विधियां उपयोग करते हैं।
लेकिन कृष्णमूर्ति ने एक कदम और हटकर बात कही है। वे कहते हैं, अभ्यास छोड़ने के भी अभ्यास की जरूरत नहीं है। अगर गीता के इस वक्तव्य के खिलाफ इस सदी में कोई वक्तव्य है, तो वह कृष्णमूर्ति का है। कृष्णमूर्ति कहते हैं, इतने भी अभ्यास की जरूरत नहीं है--अभ्यास छोड़ने के लिए भी। कोई मेथड, किसी विधि की जरूरत नहीं है।
लेकिन जो कृष्णमूर्ति को थोड़ा भी समझेंगे, वे पाएंगे, वे जिंदगीभर से
एक विधि की बात कर रहे हैं। उस विधि का नाम है, अवेयरनेस। उस विधि का नाम है, जागरूकता। वह मेथड है। सिर्फ इतना ही है कि वे उसको मेथड नहीं कहते हैं। कोई हर्जा नहीं, उसको नो-मेथड कहिए। कहिए कि यह अविधि है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मगर जागरूकता का अभ्यास करना ही पड़ेगा। जागना पड़ेगा ही। और अगर जागरूकता का कोई अभ्यास नहीं करना है, तो कहना ही फिजूल है किसी से कि जागो।
अगर मैं आपसे कहता हूं, जागो, तो इसका मतलब यह हुआ कि मैं आपसे कह रहा हूं कि कुछ करो। वह करना कितना ही सूक्ष्म हो, लेकिन करना ही पड़ेगा। अगर मैं यह भी कहता हूं, नींद तोड़ो, तो क्या फर्क पड़ता है। गीता कहती है, राग तोड़ो। कोई कहता है, नींद तोड़ो। कोई कहता है, मूर्च्छा तोड़ो। कोई कहता है, होश लाओ। कोई कहता है, जागो। उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। एक बात तय है कि कुछ करना पड़ेगा, समथिंग इ.ज टु बी डन। या यह भी अगर हम कहना चाहें, तो हम कह सकते हैं, समथिंग इ.ज टु बी अनडन। लेकिन वह भी एक काम है। अगर हम यह कहें कि कुछ करना ही पड़ेगा, या अगर हम यह कहें कि कुछ नहीं ही करना पड़ेगा, तो भी कुछ करने की जरूरत है। जैसे हम हैं, वैसे ही हम स्वीकृत नहीं हो सकते।
अभ्यास का इतना ही अर्थ है कि आदमी जैसा है, ठीक वैसा परमात्मा में प्रवेश नहीं कर सकता; उसे रूपांतरित होकर ही प्रवेश होना पड़ेगा। वह रूपांतरण कैसे करता है, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता। हजार विधियां हो सकती हैं। हजार विधियां हो सकती हैं। हजार विधियां हैं।

जैसे पर्वत पर चढ़ने के लिए हजार मार्ग हो सकते हैं। और जरूरी नहीं कि
आप बने-बनाए मार्ग से ही चढ़ें। आप चाहें, थोड़ी तकलीफ ज्यादा लेनी हो, तो बिना मार्ग के चढ़ें। जहां पगडंडी नहीं है, वहां से चढ़ें। पगडंडी बचाकर चढ़ें। आपकी मर्जी। लेकिन पगडंडी बचाकर भी आप जब चढ़ रहे हैं, तब फिर एक पगडंडी का ही उपयोग कर रहे हैं; सिर्फ आप पहले आदमी हैं उसका उपयोग करने वाले; इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। कहीं से भी चढ़ें, पहाड़ पर हजार तरफ से चढ़ा जा सकता है, लेकिन चढ़कर एक ही पर्वत पर पहुंच जाना हो जाता है।
हजार विधियां हैं, अनंत विधियां हैं। दुनिया के सब धर्मों ने अलग-अलग विधियों का उपयोग किया है। और इन विधियों के कारण बहुत वैमनस्य पैदा हुआ है--बहुत वैमनस्य पैदा हुआ है। क्योंकि प्रत्येक विधि की एक शर्त है; वह मैं आपसे कहूं, तो बहुत उपयोगी होगी।
प्रत्येक विधि की यह शर्त है कि जिस आदमी को उस विधि का उपयोग करना हो, उसे उस विधि को एब्सोल्यूट मानना चाहिए। प्रत्येक विधि की यह शर्त है कि जिस आदमी को उस विधि पर जाना हो, उसे इस भाव से जाना चाहिए कि यही विधि सत्य है।
क्यों? क्योंकि हम इतने कमजोर लोग हैं कि अगर हमें जरा भी पता चल जाए
कि बगल का रास्ता भी जाता है, उससे बगल का भी रास्ता जाता है, तो बहुत संभावना यह है कि दो कदम हम इस रास्ते पर चलें, दो कदम बगल के रास्ते पर चलें, दो कदम तीसरे रास्ते पर चलें। और जिंदगीभर रास्ते बदलते रहें, और मंजिल पर कभी न पहुंचें!
इसलिए दुनिया के प्रत्येक धर्म को डाग्मेटिक असर्सन्स करने पड़े। कुरान को कहना पड़ा, यही सही है; और मोहम्मद के सिवाय उस परमात्मा का रसूल कोई और नहीं है। एक ही परमात्मा और एक ही उसका पैगंबर है। इसका कारण यह नहीं है कि मोहम्मद डाग्मेटिक हैं। इसका यह कारण नहीं है कि मोहम्मद पागल हैं और कहते हैं कि मेरा ही मत ठीक है।
लेकिन असलियत यह है कि यह मोहम्मद उन लोगों के लिए कहते हैं, जो सुन रहे हैं। क्योंकि उनको अगर यह कहा जाए, सब मत ठीक हैं, मुझसे विपरीत कहने वाले भी ठीक हैं, उलटा जाने वाले भी ठीक हैं; इस तरफ जाने वाले, उस तरफ जाने वाले भी ठीक हैं; तो वह जो कनफ्यूज्ड आदमी है, जो भ्रमित आदमी है, जो वैसे ही भ्रमित खड़ा है, वह कहेगा, जब सभी ठीक हैं, तो शक होता है कि कोई भी ठीक नहीं है। बहुत संभावना यह है कि जब हम कहें, सभी ठीक हैं, तो आदमी को शक हो। महावीर के साथ ऐसा ही हुआ! इसलिए दुनिया में महावीर के मानने वालों की संख्या बढ़ नहीं सकी; और कभी नहीं बढ़ सकेगी। उसका कारण है। उसके कारण महावीर हैं। आज भी महावीर के मानने वालों की संख्या--मानने वालों की, सच में जानने वालों की नहीं; मानने वालों की संख्या--पैदाइशी मानने वालों की संख्या; अब पैदाइश से मानने का कोई भी संबंध नहीं है, लेकिन पैदाइशी मानने वालों की संख्या तीस लाख से ज्यादा नहीं है। महावीर को हुए पच्चीस सौ वर्ष हो गए हैं। अगर महावीर तीस दंपतियों को कनवर्ट कर लेते, तो तीस लाख आदमी पैदा हो जाते पच्चीस सौ साल में।
महावीर की बात कीमती है बहुत, लेकिन फैल नहीं सकी, क्योंकि महावीर ने नान-डाग्मेटिक असर्सन किया। महावीर ने कहा, यह भी ठीक, वह भी ठीक; उसके विपरीत जो है, वह भी ठीक। महावीर ने सप्तभंगी का उपयोग किया। अगर महावीर से आप एक वाक्य का उत्तर पूछें, तो वे सात वाक्यों में जवाब देते।
आप पूछें, यह घड़ा है? तो महावीर कहते हैं, हां, यह घड़ा है। कहते हैं, रुको, दूसरी भी बात सुन लो। यह घड़ा नहीं भी है; क्योंकि मिट्टी है। रुको, चले मत जाना, तीसरी बात भी सुन लो। यह घड़ा भी है, घड़ा नहीं भी है। आप भागने लगे, तो महावीर कहेंगे कि जरा रुको, चौथी बात और सुन लो। यह घड़ा है भी, यह घड़ा नहीं भी है, और यह घड़ा ऐसा है कि वक्तव्य में कहा नहीं जा सकता, रहस्य है। आप कहने लगे कि बस, अब मैं जाऊं! तो वे कहेंगे, एक वक्तव्य और सुन लो, यह घड़ा है; अवक्तव्य है। नहीं है; अवक्तव्य है। है भी, नहीं भी है; अवक्तव्य है।
अब आप घड़ा को थोड़ा-बहुत समझते भी रहे होंगे, वह भी गया! अब आप घड़े में पानी भी मुश्किल से भर पाएंगे। क्योंकि सोचेंगे, घड़ा है भी, घड़ा नहीं भी

है। पानी भरना कि नहीं भरना! पानी बचेगा कि निकल जाएगा! आप दिक्कत में पड़ेंगे।
यद्यपि महावीर ने सत्य को जितनी पूर्णता से कहा जा सकता है, कहने की कोशिश की है। इतनी पूर्णता से कहने की कोशिश किसी की भी नहीं है, जितनी महावीर की है। लेकिन इतनी पूर्णता से कहकर वह किसी के काम का नहीं रह जाता। किसी के काम नहीं रह जाता। अगर वे चुप रह जाते, तो भी बेहतर था; शायद आप कुछ समझ जाते। उनकी इतनी बातों से, जो समझते थे, वह भी गड़बड़ हो गया। इसलिए महावीर को अनुगमन नहीं मिल सका।
कोई भी विधि, अगर चाहते हैं कि आपके काम पड़ जाए, तो उसे कहना पड़ेगा कि यही विधि ठीक है; कोई और विधि ठीक नहीं है। जानते हुए कि और विधियां भी ठीक हैं। इसलिए दुनिया का प्रत्येक धर्म अपनी विधि को आग्रहपूर्वक कहता है कि यह ठीक है। वह आग्रह आपके ऊपर करुणा है। आपके ऊपर करुणा है, इसलिए।
वह करीब-करीब हालत वैसी है कि डाक्टर आपके पास आए। आप उसका प्रिस्क्रिप्शन लेकर कहें कि डाक्टर साहब, यही दवा ठीक है कि और दवाएं भी ठीक हैं? वह कहे कि और भी दवाएं ठीक हैं। हकीम के पास जाओ, तो भी ठीक हो जाओगे। एलोपैथ के पास जाओ, तो भी ठीक हो जाओगे। आयुर्वेद के पास जाओ, तो भी ठीक हो जाओगे। किसी के पास न जाओ, साईं बाबा के पास जाओ, तो भी ठीक हो जाओगे। कहीं भी जाओ, ठीक हो जाओगे। तो आप उस डाक्टर से कहेंगे, फीस के बाबत क्या ख्याल है! आपको दूं कि न दूं? नहीं, आपको देने का कोई कारण नहीं है। और ध्यान रखना, वह डाक्टर कितनी ही महत्वपूर्ण दवा दे जाए, वह कचरे की टोकरी में गिर जाएगी; आपके पेट में जाने वाली नहीं है। क्योंकि यह डाक्टर भरोसे का नहीं रहा। यह डाक्टर आपके भीतर वह जो एक कनविक्शन, वह जो एक आस्था, एक निष्ठा जन्माता, इसने नहीं जन्मायी। हालांकि बेचारा ठीक कह रहा था। लेकिन निष्ठा आपके भीतर नहीं आई। यह डाक्टर की दवा कितनी ही ठीक हो, यह डाक्टर थोड़ा-सा गलत साबित हुआ। यह डाक्टर डाक्टर जैसा लगा ही नहीं। यह भरोसा पैदा नहीं करवा पाया। तब फिर दवा काम नहीं करेगी। दवा को लिया भी न जा सकेगा। उपयोग भी संदिग्ध होगा। संदिग्ध उपयोग खतरों में ले जाएगा। इसलिए प्रत्येक धर्म अपनी विधि के बाबत आग्रहपूर्ण है। वह कहता है, यही विधि ठीक है। और जो इस आग्रहपूर्ण विधि का उपयोग करेगा, वह एक दिन जरूर उस जगह पहुंच जाता है, जहां वह जानता है, और विधियों के लोग भी पहुंच गए। लेकिन यह अंतिम अनुभव है; यह अंतिम अनुभव है।
तो मैं पसंद नहीं करता कि कोई पढ़े, अल्लाह-ईश्वर तेरे नाम। यह बहुत कनफ्यूजिंग है। कोई ऐसा बैठकर याद करे, अल्लाह-ईश्वर तेरे नाम, तो गलत है। अल्लाह का अपना उपयोग है, राम का अपना उपयोग है। राम का करना हो, तो राम का करना। अल्लाह का करना हो, तो अल्लाह का करना। क्योंकि दोनों के स्वर विज्ञान हैं, और दोनों की अपनी गहरी चोट है। राम की चोट अलग है, अल्लाह की चोट अलग है।
जो आदमी कह रहा है, अल्लाह-ईश्वर तेरे नाम, वह पालिटिक्स में कह रहा हो, तो ठीक है। धर्म की दुनिया में बात न करे, क्योंकि राम का पूरा का पूरा वैज्ञानिक रूप भिन्न है; राम की चोट भिन्न है। अलग केंद्र पर, अलग चक्रों पर उसकी चोट है। और अगर इन दोनों का एक साथ उपयोग किया, तो खतरा है कि आप पागल हो जाएं। लेकिन वे जो लोग उपयोग करते हैं, वे ऊपर-ऊपर उपयोग करते हैं। पागल भी नहीं होते, चर्खा चलाते रहते हैं, अल्लाह-ईश्वर तेरा नाम कहते रहते हैं!
अगर भीतर उपयोग करें, तो पागल हो जाएंगे। दोनों शब्दों का एक साथ उपयोग नहीं किया जा सकता। यह ठीक वैसा ही, जैसे आयुर्वेद की दवा ले लें, ठीक है। एलोपैथी की ले लें, ठीक है। लेकिन कृपा करके दोनों का मिक्सचर न बनाएं। यह मिक्सचर है। और ये नासमझों के द्वारा प्रचलित बातें हैं। जिनको धर्म की साइंस का कोई भी बोध नहीं है। तो कुरान भी ठीक, गीता भी ठीक! दोनों में से खिचड़ी इकट्ठी तैयार करो। वह किसी के काम की नहीं है। वह जहर है। गीता अपने में पूरी ठीक है, कुरान अपने में पूरा ठीक है। गीता के ठीक होने से कुरान गलत नहीं होता। कुरान के ठीक होने से गीता गलत नहीं होती। सत्य इतना बड़ा है कि अपने विरोधी सत्य को भी आत्मसात कर लेता है। सत्य इतना महान है कि अपने से विपरीत को भी पी जाता है। और सत्य के इतने द्वार

हैं। लेकिन कृपा करके ऐसा मत कहो कि दोनों द्वार एक हैं। नहीं तो वह आदमी दिक्कत में पड़ेगा। न इससे निकल पाएगा, न उससे निकल पाएगा। द्वार से तो एक से ही निकलना पड़ेगा।
अगर मैं किसी मंदिर में प्रवेश करता हूं, उसके हजार द्वार हैं, तो भी
दो द्वार से प्रवेश नहीं हो सकता। प्रवेश एक ही द्वार से करना पड़ेगा। हां, भीतर जाकर मैं जानूंगा कि सब द्वार भीतर ले आते हैं। लेकिन फिर भी मैं आने वालों से कहूंगा कि तुम किसी एक से ही प्रवेश करना। दो से प्रवेश करने की कोशिश में डर यह है कि दोनों दरवाजों के बीच में जो दीवाल है, उससे सिर टकरा जाए, और कुछ न हो। दो नावों पर यात्रा नहीं होती, दो धर्मों में भी यात्रा नहीं होती, दो विधियों में भी यात्रा नहीं होती।
लेकिन विधि का उपयोग अनिवार्य है। क्यों अनिवार्य है? अनिवार्य इसलिए है कि हमने जो कर रखा है अब तक, उसको काटना जरूरी है। हमने जो कर रखा है अब तक, उसे काटना जरूरी है।
एक छोटी-सी कहानी कहूं, उससे मेरी बात ख्याल में आ जाए, फिर हम सुबह बात करेंगे।
रामकृष्ण बहुत दिन तक साकार उपासना में थे; सगुण साकार की उपासना में लीन थे। काली के भक्त थे। मां की उन्होंने पूजा-अर्चना की थी। और मां की साकार प्रतिमा को भीतर अनुभव कर लिया था। मनुष्य के मन की इतनी सामर्थ्य है कि वह जिस पर भी अपने ध्यान को पूरा लगा दे, उसकी जीवंत प्रतिमा भीतर उत्पन्न हो जाती है। लेकिन फिर भी रामकृष्ण को तृप्ति नहीं थी। क्योंकि मन से कभी तृप्ति नहीं मिल सकती। मन के ऊपर ही संतृप्ति का लोक है। तो बहुत बेचैन थे। अब बड़ी मुश्किल में पड़ गए थे। जहां तक साकार प्रतिमा ले जा सकती थी, पहुंच गए थे। लेकिन कोई तृप्ति न थी, तो तलाश करते थे कि कोई मिल जाए, जो निराकार में धक्का दे दे।
तो एक संन्यासी गुजरता था। गुजरता था कहना शायद ठीक नहीं है, रामकृष्ण की पुकार के कारण निकला वहां से। इस जगत में जब आप किसी ऐसे व्यक्ति को खोज लेते हैं, जो आपको किसी विधि के जीवन में प्रवेश करा दे, तो आप यह मत सोचना कि आपने उसे खोजा। आप न खोज पाएंगे। वही आपको खोजता है। तोतापुरी निकले। तोतापुरी दो दिन से एहसास कर रहे थे कि किसी को मेरी बहुत जरूरत है। दक्षिणेश्वर के मंदिर के पास से निकलते थे, रुक गए। किसी से पूछा कि मंदिर के भीतर कौन है? तो उन्होंने कहा कि रामकृष्ण मंदिर के भीतर साधना करते हैं। तोतापुरी भीतर गए, देखा कि रामकृष्ण को उनकी जरूरत है; कोई निराकार की यात्रा पर धक्का दे दे।
अदृश्य का जगत इतना ही बड़ा है। जो हमें दिखाई पड़ता है, वह बहुत कम है।
जो नहीं दिखाई पड़ता है, वह बहुत बड़ा है। न तो हम आकस्मिक किसी से मिलते हैं, न मिल सकते हैं। आकस्मिक हम किसी को सुन भी नहीं सकते। आकस्मिक किसी का शब्द भी हमारे कान में नहीं पड़ सकता। बहुत कार्य-कारणों का जाल है। तोतापुरी ने जाकर रामकृष्ण को हिलाया। आंख खोली रामकृष्ण ने। रामकृष्ण को लगा, आ गया वह आदमी। उन्होंने नमस्कार किया और कहा कि मैं प्रतीक्षा कर रहा हूं। दो दिन से चिल्ला रहा हूं कि भेजो किसी को जो मुझे आकार से मुक्त कर दे। आ गए आप! तोतापुरी ने कहा, आ गया मैं। लेकिन कठिनाई पड़ेगी, क्योंकि तुमने इतनी मेहनत से जो साकार निर्मित किया है, उसे तोड़ना भी पड़ेगा। रामकृष्ण ने कहा, मेरी काली को बचने दो। मेरी प्रतिमा को बचने दो, और मुझे निराकार में जाने दो। तोतापुरी ने कहा, तो मैं लौट जाऊं। यह दोनों बात एक साथ न हो सकेगी। तुम्हें इस प्रतिमा को भीतर से तोड़ना पड़ेगा, जैसे तुमने बनाया। रामकृष्ण ने कहा, मैं तोड़ ही नहीं सकता। और तोडूंगा कैसे! भीतर कोई औजार भी तो नहीं है।
तोतापुरी ने कहा, आंख बंद करो और तोड़ने की कोशिश करो। रामकृष्ण आंख बंद करते। आनंदमग्न हो जाते। नाचने लगते। तोतापुरी रोकते और कहते, मैंने इसलिए आंख बंद करने को नहीं कहा। रामकृष्ण कहते, लेकिन जब प्रतिमा दिखाई पड़ती है, तोड़ने की बात कहां, मैं बचता ही नहीं। आनंदमग्न हो जाता हूं। तो तोतापुरी ने कहा, फिर इस आनंद में तृप्त हो जाओ। तृप्त भी नहीं हो पाता, किसी और महाआनंद की तलाश है। तो तोतापुरी ने कहा, फिर इस प्रतिमा को तोड़ो।

रामकृष्ण कहने लगे, कैसे तोडूं? न कोई हथौड़ी, न कोई छेनी, कुछ भी तो नहीं है! तोतापुरी ने जो कहा, वह मैं आपसे कहता हूं।
उसने कहा, बनाई कैसे थी? छेनी थी भीतर? किस छेनी से बनाई थी प्रतिमा? उसी छेनी से तोड़ दो। रामकृष्ण ने कहा कि किस छेनी से बनाई थी! मन के ही भाव से बनाई थी। तो तोतापुरी ने कहा, एक काम करो। आंख बंद करो, और मैं एक कांच का टुकड़ा उठाकर लाता हूं बाहर से, और मैं तुम्हारे माथे पर कांच के टुकड़े से काटूंगा, और जब तुम्हें भीतर मालूम पड़े कि लहूलुहान तुम्हारा माथा हो गया तब हिम्मत करके, तलवार उठाकर दो टुकड़े कर देना प्रतिमा के। रामकृष्ण ने कहा, तलवार!
तोतापुरी ने कहा, जब प्रतिमा तक तुम अपने मन से बना सके, तो तलवार न बना सकोगे? बना लेना। रामकृष्ण बड़े रोते हुए, क्षमा मांगते हुए कि बड़ी मुश्किल की बात है, भीतर गए। फिर तोतापुरी ने माथे पर कांच से काट दिया। काटते वक्त उन्होंने हिम्मत की, तलवार उठाई, प्रतिमा दो टुकड़े होकर गिर गई। रामकृष्ण छः दिन के लिए गहन समाधि में खो गए। छः दिन के बाद जब वापस लौटे, तो उन्होंने कहा, अंतिम बाधा गिर गई--दि लास्ट बैरियर हैज फालेन अवे। आखिरी! वह प्रतिमा भी आखिरी बाधा बन गई थी।
जो हम निर्मित करते हैं, उसे मिटाना भी पड़ता है फिर। हमने राग की प्रतिमाएं निर्मित की हैं, तो हमें विराग की तलवारें उठानी पड़ेंगी। नहीं तो कृष्णमूर्ति ठीक कहते हैं। अगर राग निर्माण न किया हो, तो विराग की तलवार उठाने की कोई जरूरत नहीं। लेकिन जिसने राग निर्माण नहीं किया है, वह कृष्णमूर्ति को सुनने कहां जाता है! पूछने कहां जाता है! वह जाता नहीं। और जिसने राग निर्माण किया है, वह सुनने-पूछने जाता है। वह उससे कह रहे हैं कि कुछ न करना। कुछ करने की जरूरत नहीं है। अभ्यास व्यर्थ है।
तो वह जो रागी है, अपने अभ्यास को तो जारी रखता है राग के। बड़ा मजा यह
है हमारे मन का। अगर वह यह भी मान ले कि अभ्यास व्यर्थ है, तो राग का अभ्यास भी बंद कर दे। वह तो बंद नहीं करता। उसको जारी रखता है। सिर्फ वैराग्य का अभ्यास बंद कर देता है। बंद कर देता है, कहना ठीक नहीं; शुरू नहीं करता। बंद कहां! उसने शुरू ही नहीं किया है।
लेकिन कृष्ण साधक की दृष्टि से बोल रहे हैं। वे कह रहे हैं, अभ्यास से तोड़ना पड़ेगा। राग, अभ्यास से तोड़ना पड़ेगा! अभ्यास की विधियों के संबंध में आगे वे बात करेंगे, तो धीरे-धीरे हम उनको उघाड़ेंगे और समझने की कोशिश करेंगे। समझ पूरी तो तभी आएगी, जब कोई एकाध विधि पकड़कर आप प्रयोग में लग जाएंगे। प्रयोग के अतिरिक्त और कोई समझ नहीं है।
अब हम एक विधि का उपयोग यहां भी करते हैं, अभी उसको थोड़ा गौर से देखें।
यह भी एक विधि है। अगर कीर्तन में इतने लीन हो जाएं कि आपको पता ही न रहे कि कौन नाच रहा है, कि कौन देख रहा है, कि ये हाथ किसके हिल रहे हैं--मेरे या किसी और के! यह वाणी किसकी निकल रही है--मेरी या किसी और की! अगर इतनी तल्लीनता आ जाए, तो आप वैराग्य की एक स्थिति को अभी अनुभव कर सकेंगे--यहीं। तो हमारे संन्यासी जाएंगे संकीर्तन में। उठकर कोई न जाए। और जिनको उठकर जाना होता हो, उन्हें आना ही नहीं चाहिए यहां। उन्हें आने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि मैं जो मेहनत कर रहा हूं, वह इसलिए कि आपको कोई विधि ख्याल में आ जाए। आप उन नासमझों में से हैं कि सारी बात सुनकर जब विधि की बात उठती है, तब भागने की कोशिश करते हैं! बैठ जाएं अपनी जगह पर। कोई वहां से उठेगा नहीं। पांच मिनट कीर्तन चलेगा, फिर आप जाएंगे।
और कीर्तन सिर्फ सुनें न, सम्मिलित हों। इतने लोग हैं, अगर कीर्तन जोर
से हो, तो यह पूरा वायुमंडल पवित्र होगा और दूर-दूर तक उसकी किरणें पहुंच जाएंगी।
ताली बजाएं। गीत दोहराएं। अपनी जगह पर डोलें भी।

गीता दर्शन, भाग तीन
गीता दर्शन अध्याय 6
अठारहवां प्रवचन

तंत्र और योग

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः।। 36।।
मन को वश में न करने वाले पुरुष द्वारा योग दुष्प्राप्य है अर्थात प्राप्त होना कठिन है और स्वाधीन मन वाले प्रयत्नशील पुरुष द्वारा साधन करने से प्राप्त होना सहज है, यह मेरा मत है।

कृष्ण ने दो-तीन बातें इस सूत्र में कही हैं, जो समझने जैसी हैं।
एक, मन को वश में न करने वाले पुरुष द्वारा योग की उपलब्धि अति कठिन है; असंभव नहीं कहा। बहुत मुश्किल है; असंभव नहीं कहा। नहीं ही होगी, ऐसा नहीं कहा। होनी अति कठिन है, ऐसा कहा है। तो एक तो इस बात को समझ लेना जरूरी है।
दूसरी बात कृष्ण ने कही, मन को वश में कर लेने वाले के लिए सरल है, सहज
है उपलब्धि योग की।
और तीसरी बात कही, ऐसा मेरा मत है। ऐसा नहीं कहा, ऐसा सत्य है। ऐसा कहा, दिस इ.ज माइ ओपीनियन, ऐसा मेरा मत है। ये तीन बातें इस श्लोक में ख्याल ले लेने जैसी हैं।
पहली बात तो यह, जो बहुत अजीब मालूम पड़ेगी कि कृष्ण ऐसा कहें। कहना था
कि मन को जो वश में नहीं करता, उसके लिए योग की उपलब्धि असंभव है, इंपासिबल है; नहीं होगी। लेकिन कृष्ण कहते हैं, कठिन है, असंभव नहीं। इसका अर्थ? इसका अर्थ यह हुआ कि कठिन हो, लेकिन किसी स्थिति में, किसी व्यक्ति के लिए, मन को वश में बिना किए भी उपलब्धि संभव हो सकती है। कठिन है, लेकिन संभव हो सकती है। अति कठिन है, लेकिन फिर भी हो सकती है।
मन को वश में करने वाला कैसे उपलब्धि को प्राप्त होता है, उसकी हमने बात की। अब थोड़ा हम उस थोड़े-से अल्पवर्ग के संबंध में बात कर लें, जिसकी वजह से कृष्ण असंभव न कह सके।
बहुत ही छोटा वर्ग है। कभी करोड़ में एकाध आदमी ऐसा होता है, जो मन को बिना वश में किए योग को उपलब्ध हो जाता है। बहुत रेयर फिनामिनन है; बहुत करीब-करीब न घटने वाली घटना है; लेकिन घटती है। खुद कृष्ण भी उन्हीं लोगों में से एक हैं।
इसलिए कृष्ण ने जानकर कहा है यह, बहुत समझकर कहा है। खुद कृष्ण भी उन्हीं लोगों में से एक हैं। क्योंकि अर्जुन जरूर ही पूछ लेता कि हे मधुसूदन, आपको कभी आसन लगाए नहीं देखा! आपको कभी प्राणायाम करते नहीं देखा। आपको कभी प्रभु-स्मरण करते नहीं देखा। आपको किसी तपश्चर्या में से गुजरते नहीं देखा। जिस योग-साधना की आप बात कर रहे हैं, जिस अभ्यास की आप बात कर रहे हैं, वह कभी आपके आस-पास दिखाई नहीं पड़ा। और जिस वैराग्य की आप बात कर रहे हैं, उसका तो आपके आस-पास कोई भी अंदाज नहीं मिलता, अनुमान नहीं लगता। मोर पंख बांधकर, बांसुरी बजाकर आप नाचते हैं। सुंदरतम बृज की गोपियां आपके चारों तरफ रास करती हैं। वैराग्य कहीं दिखाई नहीं पड़ता, मधुसूदन!
अर्जुन निश्चित ही ऐसा पूछता। लेकिन अर्जुन को पूछने का उपाय कृष्ण
ने नहीं छोड़ा। इसलिए अर्जुन ने नहीं पूछा। क्योंकि कृष्ण ने कहा, बहुत कठिन है अर्जुन, असंभव नहीं है।
तो उस थोड़े-से वर्ग, जिसमें कृष्ण भी आते हैं और कभी एकाध-दो आदमी आ पाते हैं सदियों में, उस छोटे-से वर्ग की भी हम बात कर लें, क्योंकि उसका भी खतरा बड़ा है। क्योंकि जो उस वर्ग में नहीं आता, वह अगर सोच ले कि यह होगा कठिन, लेकिन हम कठिन मार्ग से ही जाएंगे, तो बहुत डर यह है कि वह कभी नहीं पहुंचेगा, भटकेगा, व्यर्थ समय और जीवन को कर लेगा।

ऐसा हुआ इस देश में। इस देश ने बड़े गहरे प्रयोग किए हैं। तंत्र उन प्रयोगों में से है, जो उनके लिए है वस्तुतः, जो मन को वश में न करें। इसलिए तंत्र जब इसोटेरिक था, कुछ थोड़े-से लोग उस पर प्रयोग करते थे, तब वह बड़ी अदभुत प्रक्रिया थी। लेकिन और लोगों को भी लगा कि यह तो बहुत अच्छा है। मन को वश में भी न करना पड़े और योग उपलब्ध हो जाए!
तंत्र के तो सभी सूत्र उलटे हैं।
यह जो थोड़ी-सी जगह छोड़ी है कृष्ण ने, वह तंत्र के लिए छोड़ी है। उसकी बात करनी उन्होंने उचित नहीं समझी है, क्योंकि उसकी बात करनी सदा ही खतरे से भरी है। क्योंकि हम सबका मन ऐसा होगा कि अपने को अपवाद मान लें। और हम सबका मन ऐसा होगा कि जब मन को बिना वश में किए हो सकता है, तो होगा लंबा मार्ग, लेकिन यही ज्यादा आनंदपूर्ण रहेगा। मन को वश में भी न करेंगे और पहुंच भी जाएंगे योग को। दूसरे न पहुंचते होंगे, हम तो पहुंच ही जाएंगे! इसलिए तंत्र जब व्यापक फैला, तो अति कठिनाई उसने पैदा की। हजारों लोग
यह सोचकर कि ठीक है, क्योंकि तंत्र कहता है... । तंत्र के पंच मकार प्रसिद्ध हैं। वह कहता है, पांच म का जो सेवन करेगा--सेवन, त्याग नहीं--वही योग को उपलब्ध होगा। मदिरा का त्याग नहीं, सेवन। मैथुन का त्याग नहीं, सेवन। मांस का त्याग नहीं, सेवन। जो उसको भोगेगा, वही योग को उपलब्ध होगा। यह बहुत ही छोटा-सा अल्पवर्ग है, जिसके लिए यह बात बिल्कुल सही है।
और ध्यान रहे, वह अल्पवर्ग अति कठिन मार्ग से गुजरता है। दिखता सरल पड़ता है कि शराब पीने से ज्यादा सरल और क्या हो सकता है! शराबी सड़कों पर पीकर रास्तों पर पड़े हैं। शराब पीने से ज्यादा सरल क्या होगा? लेकिन तंत्र की प्रक्रिया बहुत कठिन है, अति दूभर है।
तंत्र कहता है, शराब पीना, लेकिन बेहोश मत होना। यह साधना है। शराब पीए जाना और बेहोश होना मत। अगर बेहोश हो गए, तो साधना का सूत्र टूट गया।
तो शराब पीना और बेहोश मत होना, शराब पीना और होश को कायम रखना।
हम तो होश बिना शराब पीए कायम नहीं रख पाते। शराब पीकर कायम रख पाएंगे? बिना ही पीए पीए-सी हालत रहती है दिन-रात! जरा में होश खो जाता है। तंत्र कहता है, शराब पीना, उसकी मनाही नहीं है। लेकिन होश कायम रखना।
तो तंत्र की अपनी विधि है, कि जब शराब पीयो, कितनी मात्रा में पीयो, कहां रुक जाओ; होश को कायम रखो। फिर धीरे-धीरे मात्रा बढ़ाते जाओ। वर्षों की लंबी यात्रा में वह घड़ी आती है कि कितनी ही शराब कोई पी जाए, होश कायम रहता है। फिर तो तंत्र को यहां तक करना पड़ा कि कोई शराब काम नहीं करती, तो सांप पालने पड़ते थे। अभी भी आसाम में कुछ तांत्रिक सांप पालते हैं और जीभ पर सांप से कटाएंगे। और साधना की आखिरी कसौटी यह होगी कि सांप काट ले, और होश कायम रहे।
है प्रक्रिया अदभुत, पर बड़ी दूभर है। शराब छोड़ने को तंत्र नहीं कहता। तंत्र बहुत साहसियों का मार्ग है। वे कहते हैं, हम छोड़ेंगे नहीं। अगर कीचड़ में से कमल हो सकता है, तो हम शराब में से होश पैदा करेंगे। और बेहोशी में अगर होश न रह सका, तो होश की कीमत कितनी है! और अगर शराब पीकर सारी बुद्धि नष्ट हो जाए, तो ऐसी बुद्धि को बचाने में भी कितना सार है!
तंत्र कहता है, मैथुन का हम त्याग न करेंगे; ब्रह्मचर्य हम न साधेंगे।
हम तो मैथुन में प्रवेश करेंगे, और वीर्य को अस्खलित रखेंगे।
बहुत कठिन है मामला। पर तंत्र ने इसके प्रयोग किए। पर इसोटेरिक थे, गुप्त थे। साधारणतः वे समूह में नहीं किए जा सकते थे। पर धीरे-धीरे खबर तो फैलनी शुरू हुई। और उनको भी पता चल गया, जो शराब पीकर नालियों में पड़े रहते थे। उन्होंने सोचा कि हम भी तंत्र की साधना क्यों न करें? यह तो बहुत ही उचित है। फिर कोई यह भी नहीं कह सकता कि शराब पीना पाप है। फिर तो शराब पीना पुण्य हो गया।
तो नाली में शराब पीकर जो पड़ा था, उसने जब शराब पीकर तंत्र की साधना शुरू की, तो मंदिर में नहीं पहुंचा, वह और नाली में, और नाली में चला गया। और मैथुन तो सारा जगत कर रहा है। तंत्र ने जब कहा कि मैथुन में ही उपलब्धि हो जाएगी परमात्मा की, कहीं भागने की जरूरत नहीं, त्यागने की जरूरत नहीं।
तो लोगों ने कहा, फिर ठीक ही है। कहीं कुछ करने की जरूरत नहीं। मैथुन तो हम कर ही रहे हैं। लेकिन तंत्र की शर्त है।

एक घटना मुझे याद आती है। एक तांत्रिक के पास एक त्यागी साधु गया। वहां बड़ी-बड़ी मटकियों में भरी हुई शराब रखी थी और एक युवा तांत्रिक बैठकर ध्यान कर रहा था। साधु बहुत घबड़ाया। शराब की बास चारों तरफ थी। उस साधु ने कहा कि मटके-मटके भरकर शराब कौन पीता है यहां? उस तांत्रिक गुरु ने कहा कि यह जो युवक बैठा है, इसके लिए रखी है। एक मटका तो यह एक ही गटक में पी जाता है, एक सांस में। उस आदमी ने कहा कि मुझे भरोसा नहीं आता। फिर इसकी हालत क्या होती है? उसके गुरु ने कहा कि हालत वही रहती है, जो थी। शराब अछूती गुजर जाती है। आर-पार निकल जाती है, बीच में नहीं पहुंचती है, केंद्र को नहीं छूती है। उसने कहा, मैं मानूंगा नहीं, मैं देखना चाहूंगा। एक सांस में पानी की एक मटकी पीना मुश्किल है, और शराब... !
उस तांत्रिक गुरु ने युवक को कहा कि एक मटकी शराब पी जा। उसने कहा कि
एक मिनट का मुझे मौका दें, मैं अभी आया। गुरु थोड़ा हैरान हुआ कि एक मिनट का मौका उसने क्यों मांगा? एक मिनट बाद वह आया और एक मटकी उठाकर पी गया। वह साधु भी चकित हुआ। एक सांस में!
साधु के जाने पर गुरु ने उससे पूछा कि एक मिनट का समय तूने क्यों मांगा था? उसने कहा कि मैंने कभी एक दफे में पीया नहीं था, तो मैं अंदर जाकर अभ्यास करके आया, एक मटकी अंदर पीकर, कि मैं पी पाऊंगा कि नहीं पी पाऊंगा। कभी मैंने एकदम से ऐसा किया नहीं था, इसलिए जरा अभ्यास के लिए अंदर गया। एक मटकी पीकर देखी, कि ठीक है; हो जाएगा।
यह जो वर्ग था साधकों का, यह बहुत कठिन वर्ग है। मैथुन हो, स्खलन नहीं।
और मैथुन की यात्रा पर आदमी निकलता ही इसलिए है कि स्खलन हो। तो आप यह मत सोचना कि तंत्र मैथुन के पक्ष में है। तंत्र तो मैथुन के अतिक्रमण की बात है।
मैथुन के लिए जाता ही आदमी इसलिए है कि स्खलन हो। जो बोझ उसके चित्त
पर और शरीर पर है, वह फिंक जाए। और तंत्र कहता है, मैथुन सही, स्खलन नहीं। और अगर कोई व्यक्ति मैथुन की स्थिति में अस्खलन को उपलब्ध हो जाए, तो इससे बड़ा ब्रह्मचर्य और क्या होगा? उन ब्रह्मचारियों से, जो कि स्त्री को देखने में डरते हैं, इस आदमी के ब्रह्मचर्य की बात ही और है।
मगर यह मार्ग है अति संकीर्ण, इसलिए कृष्ण ने उसकी सिर्फ निगेटिव खबर देकर सूत्र छोड़ दिया।
कुछ लोग हैं, जो मन को बिना किसी तरह वश में किए, मन को पूरी छूट दे देते हैं। पूरी छूट! मन से कहते हैं, जो तुझे करना है कर, लेकिन उस करने में वे पार खड़े हो जाते हैं। मन को नहीं रोकते, लगाम नहीं पकड़ते मन की। घोड़ों को कह देते हैं, दौड़ो, जहां दौड़ना है। लेकिन दौड़ते हुए घोड़ों में, भागते हुए रथ में, गड्ढों में, खाई में, खड्ड में, वह जो ऊपर रथ पर बैठा है वह, वह अकंप बैठा रहता है।
तंत्र कहता है कि लगाम सम्हालकर और आप अकंप बैठे रहे, तो कुछ मजा नहीं है। छोड़ दो लगाम; घोड़ों को दौड़ने दो; रथ को खड्डों में, खाइयों में गिरने दो; और तुम अकंप रथ पर बैठे रहो, तो ही असली मालकियत है।
पर वह मालकियत बहुत थोड़े-से लोगों का मार्ग है। भूलकर आप लगाम छोड़कर
मत बैठ जाना, नहीं तो पहले ही गड्ढे में प्राणांत हो जाएगा! दूसरे संतुलन के लिए नहीं बचेंगे आप।
इसलिए कृष्ण ने असंभव नहीं कहा। असंभव नहीं है, कृष्ण भलीभांति जानते हैं। और कृष्ण से बेहतर कोई भी नहीं जानता। यह असंभव नहीं है, बिल्कुल संभव है। लेकिन बहुत ही थोड़े-से लोगों के लिए है, अत्यल्प, न के बराबर; उन्हें गिनती के बाहर छोड़ा जा सकता है। और उनकी गिनती करनी ठीक भी नहीं है, क्योंकि गिनती करने का कोई फायदा नहीं है। अपवाद को बाहर छोड़ा जा सकता है। नियम की बात कर रहे हैं वे अर्जुन से। और अर्जुन उन लोगों में से नहीं
है, जो कि तंत्र के मार्ग पर जा सके। इसीलिए कहा, दुष्प्राप्य है। बड़ी कठिनाई से मिलने वाला है; मिल सकता है। यह वैज्ञानिक चिंतक का लक्षण है।
वैज्ञानिक चिंतक अल्प भी शेष हो कुछ मार्ग की सुविधा, उसे छोड़कर चलता है।
उसे छोड़कर चलता है।

दूसरी बात कृष्ण ने कही, सरल है उसके लिए, जो मन को वश में कर ले। कठिन
है उसके लिए, जो मन को बिना वश में किए यात्रा करे। सरल है उसके लिए, जो मन को वश में कर ले।
सरल इसलिए है मन को वश में कर लेने के बाद, कि मन ही व्यवधान डालता है।
वह व्यवधान डालने वाला अब आपके काबू में है। आप सरलता से उसका अतिक्रमण कर सकते हैं, बाधाएं आपके काबू में हैं।
करीब-करीब ऐसा समझें कि कोई चाहे तो मकान की सीढ़ियों से नीचे उतर सकता है, कोई चाहे तो छलांग भी लगाकर मकान से नीचे उतर सकता है। छलांग लगाने में खतरा है। हाथ-पैर टूट जाने का खतरा है। जब तक कि हाथ-पैरों की ऐसी कुशलता न हो, जैसी कि होती नहीं है, हाथ-पैर टूटने को सदा तैयार रहते हैं। और जब आप मकान पर से कूदते हैं और आपके हाथ-पैर टूटते हैं, तो न तो मकान की लंबाई तुड़वाती है हाथ-पैर, न जमीन तुड़वाती है; आपके ही हाथ-पैर का ढंग हाथ-पैर को तुड़वा देता है।
कभी आपने ख्याल किया होगा कि एक बैलगाड़ी में अगर आप बैठकर जा रहे हों, साथ में एक शराबी धुत बैठा हो, और आप होश में बैठे हों। और गाड़ी उलट जाए, तो आपको चोट लगे, धुत शराबी को न लगे। आप समझते हैं! कोई आसान बात है! शराबी रोज नालियों में गिरता है, लेकिन न कहीं चोट है, न हड्डी टूटती, न फ्रैक्चर होता! बात क्या है? आप जरा गिरकर देखें! शराबी के पास कौन-सी तरकीब है, जिससे कि गिरता है और चोट नहीं खाता?
तरकीब शराबी के पास नहीं है। असल में शरीर जब भी गिरने के करीब होता है, तो रेसिस्टेंट हो जाता है, अकड़ जाता है। अकड़ी हुई हड्डी टूट जाती है। वह शराबी बेहोश है, वह रेसिस्ट नहीं करता। उसको पता ही नहीं कि कब गाड़ी उलट गई। जब उलट गई, तब भी वे गाड़ी में ही बैठे हुए हैं! तब भी वे हांक रहे हैं नाली में पड़े हुए। उनको पता ही नहीं, गाड़ी कब उलट गई। शरीर को मौका नहीं मिलता है कि अकड़ जाए। अकड़ न पाए, तो जमीन चोट नहीं पहुंचा पाती। चोट पहुंचती है अकड़ी चीज पर।
इसलिए बच्चे इतने गिरते हैं और चोट नहीं खाते। आप जरा बच्चों की तरह गिरकर देखें, तब आपको पता चलेगा। एक दफे गिर गए, तो फैसला हुआ! और बच्चा दिनभर गिर रहा है और उठकर फिर चल पड़ा है। बात क्या है? बच्चे के पास सीक्रेट क्या है?
सीक्रेट इतना ही है कि जब वह गिरता है, तब शरीर को इस बात का कोई पक्का पता ही नहीं चलता कि गिर रहे हैं, सम्हल जाएं। सम्हलता नहीं, इसलिए चोट नहीं खाता है। सम्हलेगा, तो चोट खा जाएगा। सम्हलने में ही चोट खा जाता है आदमी।
मकान से उतरना हो, तो सीढ़ियां ही ठीक हैं। सम्हलता है जो आदमी, उसको सीढ़ियां ही ठीक हैं। क्योंकि सीढ़ियों पर सम्हलकर उतर सकते हैं। सम्हलकर छलांग लगाई तो खतरा है।
छलांग तो वह लगा सकता है, जो गैर-सम्हले लगाता है। जो गिरता हो मकान से जमीन की तरफ, लेकिन इतना भी न अकड़े कि गिर रहा हूं। शरीर पर जिसके पता ही न चले। जो ऐसा ही गिरे मकान से, जैसा छत पर खड़ा था, ठीक वैसा ही गिरे, जरा फर्क न पड़े। शराब पी जाए, और वैसा ही रहे, जैसा शराब पीने के पहले था। मैथुन कर जाए, और चित्त वैसा ही रहे, जैसा मैथुन करने के पहले था। क्रोध कर जाए, और क्रोध के बीच वैसा ही रहे, जैसा क्रोध करने के पहले था। जरा अंतर न पड़े। तो फिर वह जो छोटा-सा संकीर्ण मार्ग है, यात्रा की जा सकती है।
लेकिन वह कभी जनपथ नहीं बन सकता; वह पब्लिक हाई-वे नहीं है। वह बहुत, अति संकीर्ण है। जनपथ पर, जहां सबको चलना है, वहां सीढ़ियां हैं।
कभी आपने ख्याल किया है कि सीढ़ियों पर भी आप छलांग ही लगाते हैं, उतरते नहीं हैं। उतर तो कोई सकता ही नहीं। चाहे पूरे मकान की छलांग लगाएं, चाहे सीढ़ी पर। सीढ़ी पर कोई आप उतर सकते हैं? एक सीढ़ी से दूसरी पर छलांग लगाते हैं। एक आदमी एक मंजिल से दूसरी मंजिल पर लगाता है। बड़ी सीढ़ी है, और कोई फर्क नहीं है। लेकिन छोटी सीढ़ी होने की वजह से आपको अड़चन नहीं आती, आप सम्हलकर उतर आते हैं। इतना ही फर्क पड़ता है।
मन को वश में करना सीढ़ियों वाला मार्ग है। और मन को निरंकुश छोड़कर छलांग लगा जाना गैर-सीढ़ियों वाला मार्ग है।

जापान में बौद्ध धर्म की दो शाखाएं हैं। एक शाखा को कहते हैं, सोटो झेन। और एक शाखा का नाम है, रिंझाई झेन। एक शाखा है, जो मानती है कि सडेन एनलाइटेनमेंट, अचानक निर्वाण की उपलब्धि। वह छलांग वाला रास्ता है। दूसरी मानती है, ग्रेजुअल एनलाइटेनमेंट; वह क्रमशः, एक-एक क्रम, एक-एक सीढ़ी चलने वाला मार्ग है।
मोझर्ट के पास एक आदमी गया। और उस आदमी ने मोझर्ट से पूछा कि जिस भांति तुमने सात वर्ष की उम्र में संगीत की समस्त कला उपलब्ध कर ली थी, मैं भी किस भांति उसको उपलब्ध करूं, उसी तरह? मोझर्ट ने कहा, तुम्हारी उम्र कितनी है? उस आदमी ने कहा, मेरी उम्र तो पैंतालीस पार कर गई है। उसने कहा, तुमको सात वर्ष में आना चाहिए था, एक। और दूसरी बात ध्यान रखना, यह तुमसे न हो सकेगा। उसने कहा, लेकिन क्यों न हो सकेगा? तुमसे हो सका, मुझसे क्यों न हो सकेगा? मोझर्ट ने कहा, इसलिए कि मैं किसी से कभी पूछने नहीं गया। तुम पूछने आए हो!
पूछने वाला तो सीढ़ियां ही चढ़ सकता है। पूछने वाला सडेन नहीं हो सकता। पूछने का मतलब ही है कि सीढ़ियां पूछने गया है कि सम्हलकर कैसे चढ़ जाएं, उतर जाएं। न पूछने वाला छलांग लगाता है।
मोझर्ट ने कहा, मुझमें तुममें फर्क है। मैं किसी से पूछने नहीं गया।
तुम पूछने आए हो।
पूछने वाले को सीढ़ियां बतानी पड़ेंगी। जो लोग छलांग लगा सकते हैं, वे बिना गुरु के यात्रा कर सकते हैं। लेकिन जिसको गुरु की जरूरत हो, वह छलांग नहीं लगा सकता।
बिना गुरु के वही आदमी चल सकता है, जो छलांग लगा सकता हो। क्योंकि गुरु की कोई जरूरत नहीं है। हम न कोई मार्ग पूछ रहे हैं, न हम कोई सीढ़ियां पूछ रहे हैं। सीढ़ियां और मार्ग पूछने का मतलब यह है कि कुशलता से, बिना तकलीफ के, बिना अड़चन के, सरलता से, बिना किसी झंझट के, बिना किसी उपद्रव में पड़े, बिना किसी खतरे में पड़े, मैं कैसे निकल जाऊं? गुरु ढूंढ़ने का यही मतलब है।
इसलिए छलांग लगाने वाले के लिए मार्ग बताने की कोई जरूरत नहीं है। जो छलांग लगाने वाला है, वह लगा जाता है।
यही तो झंझट होती है। कृष्णमूर्ति के पास लोग जाते हैं और पूछते हैं, हाउ टु बी अवेयर? और कृष्णमूर्ति कहते हैं, डोंट आस्क मी हाउ। मत पूछो, कैसे!
नहीं, कृष्णमूर्ति को पता नहीं है कि जो पूछता नहीं है कैसे, वह आएगा काहे के लिए आपके पास! वह जो आया है, वह कैसे पूछने वाला ही है। असल में कैसे पूछने के लिए ही तो कोई आता है। नहीं तो आने की कोई जरूरत नहीं। आप जहां हैं, वहीं से छलांग लगा जाएं, पूछने की जरूरत क्या है, किस दिशा में लगाएं? कैसे लगाएं? जिसने पूछा, किस दिशा में, कैसे, किस विधि से, वह आदमी सीढ़ियां उतरेगा।
मन को वश में करना सीढ़ियों वाला उपाय है। एक-एक कदम उठाया जा सकता है। धीरे-धीरे अभ्यास किया जा सकता है। छलांग लगाने वाला मामला बहुत उलटा है। कभी-कभी कोई आदमी छलांग लगा पाता है।
बुद्ध के जीवन में उल्लेख है कि बुद्ध एक गांव से गुजरते हैं। लोग कहते हैं, मत जाओ, आगे एक डाकू है, वह हत्या कर रहा है लोगों की। रास्ता निर्जन हो गया है। वह अंगुलिमाल किसी को भी मार देता है। तुम मत जाओ इस रास्ते से। बुद्ध कहते हैं, अगर मुझे पता न होता, तो शायद मैं दूसरे रास्ते से भी चला जाता। लेकिन अब जब कि मुझे पता है, इसी रास्ते से जाना होगा। लोग कहते हैं, लेकिन किसलिए? बुद्ध कहते हैं, इसलिए कि वह बेचारा प्रतीक्षा करता होगा। लोग मिल न रहे होंगे; उसको बड़ी तकलीफ होती होगी। कोई गर्दन तो मिलनी चाहिए गर्दन काटने वाले को! और अपनी गर्दन का इतना भी उपयोग हो जाए कि किसी को थोड़ी शांति मिल जाए, तो बुरा क्या है! बुद्ध आगे बढ़ जाते हैं। अंगुलिमाल देखता है, कोई आ रहा है दूर से, तो अपने पत्थर पर, अपने फरसे
पर धार रखने लगता है। बहुत दिन हो गए, जंग खा गया फरसा। कोई निकलता ही नहीं रास्ते से। उसने कसम खा ली है कि एक हजार लोगों की गर्दन काटकर, उनकी अंगुलियों का हार बनाना है, इसलिए वह अंगुलिमाल उसका नाम पड़ गया। उसने नौ

सौ निन्यानबे आदमी मार दिए, एक की ही दिक्कत है। उसी में वह अटका हुआ है। कोई निकलता ही नहीं! रास्ता करीब-करीब बंद हो गया है! किसी को आते देखकर, अति प्रसन्न होकर वह अपने फरसे पर धार रखता है।
लेकिन जैसे-जैसे बुद्ध करीब आते हैं, और जैसे-जैसे वह साफ देख पाता है, उसको थोड़ा लगता है कि निरीह आदमी, सीधा-सादा आदमी, शांत आदमी! इस बेचारे को शायद पता नहीं है कि यहां अंगुलिमाल है और रास्ता निर्जन हो गया है। इसको एक चेतावनी दे देनी चाहिए। इसको एक दफा कह देना चाहिए कि तू खतरनाक रास्ते पर आ रहा है।
अंगुलिमाल के पास जब बुद्ध पहुंच जाते हैं, तो वह चिल्लाता है कि हे भिक्षु! लौट जा वापस। शायद तुझे पता नहीं, तू भूल से आ गया है। इस मार्ग पर कोई आता नहीं। और तेरी शांत मुद्रा को देखकर, तेरी धीमी गति को देखकर, तेरे संगीतपूर्ण चलने को देखकर मुझे लगता है कि तुझे माफ कर दूं। तू लौट जा। एक शर्त, अगर तू लौट जाए, तो मैं फरसा न उठाऊं। लेकिन अगर एक कदम भी आगे बढ़ाया, तो तू अपने हाथ से मरने जा रहा है। फिर मेरा कोई जिम्मा नहीं है।
लेकिन बुद्ध आगे बढ़े चले जाते हैं। अंगुलिमाल और हैरान होता है। ठिठके भी नहीं वे। एक दफे उसकी बात के लिए रुककर सोचा भी नहीं कि विचार कर लें। वे आगे ही बढ़ते चले आते हैं। अंगुलिमाल कहता है कि देखो, सुना? समझे कि नहीं? बहरे तो नहीं हो!
बुद्ध कहते हैं, भलीभांति सुनता हूं, समझता हूं। अंगुलिमाल कहता है, रुक जाओ। मत बढ़ो! बुद्ध कहते हैं, अंगुलिमाल, मैं बहुत पहले रुक गया। तब से मैं चल ही नहीं रहा हूं। मैं तुझसे कहता हूं, अंगुलिमाल, तू रुक जा, मत चल। अंगुलिमाल बोला कि बहरे तो नहीं हो, लेकिन पागल मालूम होते हो। मैं खड़ा हुआ हूं। मुझ खड़े हुए को कहते हो कि रुक जाओ! तुम चल रहे हो। चलते हुए को कहते हो कि खड़े हो!
तो बुद्ध ने कहा, मैंने जब से जाना कि मन ही चलता है, और जब मन रुक जाता है, तो सब रुक जाता है। तेरा मन बहुत चल रहा है। इतनी दूर से तू मुझे देख रहा है, और तेरा मन चल रहा है। फरसे पर धार रख रहा है, तेरा मन चल रहा है। अभी तू सोच रहा है, तेरा मन चल रहा है। मारूं, न मारूं। यह आदमी लौट जाए, आए।
तेरा मन चल रहा है। तेरे मन के चलने को मैं कहता हूं, अंगुलिमाल, तू रुक जा।
अंगुलिमाल ने कहा, मेरी किसी की बात मानने की आदत नहीं है। तो ठीक है।
तुम आगे बढ़ो, मैं भी फरसे पर धार रखता हूं। वह फरसे पर धार रखता है; बुद्ध आगे आ जाते हैं। बुद्ध सामने खड़े हो जाते हैं। वह अपना फरसा उठाता है। बुद्ध कहते हैं, लेकिन मरते हुए आदमी की एक बात पूरी कर सकोगे? अंगुलिमाल ने कहा, बोलो। कोई बात पूरी करने के लिए तो हजार आदमी मैंने काटे! तुम बोलो; बात पूरी करूंगा। मेरे वचन का भरोसा कर सकते हो। बुद्ध ने कहा, वह मैं जानता हूं। कोई दिया गया वचन ही हजार आदमी मारने के लिए उसको मजबूर किया है। तो बुद्ध ने कहा, इसके पहले कि मैं मरूं, एक छोटी-सी बात जानना चाहता हूं। यह सामने जो वृक्ष लगा है, इसके दो-चार पत्ते मुझे काटकर दे दो।
उसने फरसा वृक्ष में मारा। दो-चार पत्ते क्या, दो-चार शाखाएं कटकर नीचे गिर गईं। बुद्ध ने कहा, यह आधी बात तुमने पूरी कर दी। अब इनको वापस जोड़ दो! उस अंगुलिमाल ने कहा, तुम निश्चित पागल हो। तोड़ना संभव था, जोड़ना संभव नहीं है।
तो बुद्ध ने कहा, अंगुलिमाल, तोड़ना तो बच्चे भी कर सकते हैं। अगर जोड़ सको, तो कुछ हो, अन्यथा कुछ भी नहीं। तोड़ना तो बच्चे भी कर सकते हैं। अगर जोड़ सको, तो कुछ हो। हजार गर्दन भी काट ली, तो मैं कहता हूं, कुछ भी नहीं हो। एक गर्दन जोड़ दो, तो मैं समझूंगा, कुछ हो।
अंगुलिमाल ने फरसा नीचे पटक दिया। वह बुद्ध के पैरों पर गिर गया। और बुद्ध ने कहा, अंगुलिमाल, तू आज से उपलब्ध हुआ। तू आज से ब्राह्मण हुआ। तू आज से संन्यासी हुआ।
बुद्ध के भिक्षु पीछे खड़े थे। उन्होंने कहा कि हम वर्षों से आपके साथ हैं। हम से कभी आपने ऐसे वचन नहीं बोले कि तुम ब्राह्मण हुए, कि तुम उपलब्ध हुए, कि तुम पा गए। और अंगुलिमाल हत्यारे से, जो अभी क्षणभर पहले गर्दन

काटने को तैयार था, और फरसा फेंककर सिर्फ पैर पर गिरा है, उससे आप ऐसे वचन बोल रहे हैं!
बुद्ध ने कहा, यह उन थोड़े-से लोगों में से है, जो छलांग लगा सकते हैं।
यह छलांग लगा गया है। और जब अंगुलिमाल को उठाकर खड़ा किया, तो लोग उसका चेहरा भी न पहचान सके। वह क्रूर हत्यारा न मालूम कहां विदा हो गया था। उन आंखों में जहां आग जलती थी, वहां फूल खिल गए थे। वह व्यक्ति, जिसके हाथ में फरसा था, कोई भरोसा न कर सकता था कि इस हाथ में कभी फरसा रहा होगा। इस हाथ ने कभी फूल भी तोड़े होंगे, इतनी भी इस हाथ में कठोरता नहीं है।
लेकिन बुद्ध के भिक्षुओं को तो ईर्ष्या होनी स्वाभाविक थी। आज का नया आदमी एकदम सीनियर हो गया। एकदम सीनियर! सब छलांग लगा गया! सब व्यवस्था तोड़ दी! अंगुलिमाल बुद्ध के बगल में चलने लगा। गांव में प्रवेश किया। भिक्षु ईर्ष्या से भर गए। उन्होंने कहा, यह अंगुलिमाल हत्यारा है।
बुद्ध ने कहा, थोड़ा ठहरो। उस आदमी को तुम नहीं जानते हो। वह उन थोड़े-से लोगों में से है, जो छलांग लगा लेते हैं। वह हत्या कर-करके हत्या से मुक्त हो गया। और तुम हत्या बिना किए हत्या से मुक्त नहीं हो पाए हो। मैं तुमसे पूछता हूं भिक्षुओ, तुम्हारे मन में अंगुलिमाल की हत्या का ख्याल तो नहीं उठता?
एक भिक्षु जो पीछे था, वह घबड़ाकर हट गया। उसने कहा, आपको कैसे पता चला? मेरे मन में यह ख्याल आ रहा था कि इसको तो खतम ही कर देना चाहिए। नहीं तो मुफ्त, यह नंबर दो का आदमी हो गया! बुद्ध के बाद ऐसा लगता है कि यही आदमी है! और अभी-अभी आया!
तो बुद्ध ने कहा कि मैं तुमसे कहता हूं, तुम हत्या छोड़-छोड़कर भी नहीं छोड़ पाए। यह हत्या कर-करके भी मुक्त हो गया। इसके लिए मन को वश में करने की कोई प्रक्रिया नहीं है। और जब गांव में गए, तो बुद्ध ने कहा, अब तुम्हें अभी, जल्दी ही प्रमाण मिल जाएगा। थोड़ी प्रतीक्षा करो, जल्दी प्रमाण मिल जाएगा।
गांव में जब सब भिक्षु गए, तो बुद्ध ने कहा, अंगुलिमाल, भिक्षा मांगने जा।
सम्राट भी डरते थे। अंगुलिमाल का नाम कोई ले दे, तो उनको भी कंपन हो जाता था। सारे गांव में खबर फैल गई कि अंगुलिमाल भिक्षु हो गया। लोगों ने दरवाजे बंद कर लिए। क्योंकि भरोसा क्या, कि वह आदमी एकदम किसी की गर्दन दबा दे! दरवाजे बंद हो गए। दुकानें बंद हो गईं। गांव बंद हो गया। लोग अपनी छतों पर, छप्परों पर चढ़ गए।
अंगुलिमाल जब नीचे भिक्षा का पात्र लेकर भिक्षा मांगने निकला, तो कोई भिक्षा देने वाला नहीं था। हां, लोगों ने ऊपर से पत्थर जरूर फेंके। और इतने पत्थर फेंके कि अंगुलिमाल सड़क पर लहूलुहान होकर गिर पड़ा। और जब लोगों ने पत्थर फेंके, तो अंगुलिमाल ने सिर्फ अपने भिक्षा-पात्र में पत्थर झेलने की कोशिश की। न उसने एक दुर्वचन कहा, न एक क्रोध से भरी आंख उठाई।
और जब वह लहूलुहान, पत्थरों में दबा हुआ नीचे पड़ा था, बुद्ध उसके पास गए। और उन्होंने कहा, अंगुलिमाल, इन लोगों के इतने पत्थर खाकर तेरे मन में क्या होता है? तो अंगुलिमाल ने कहा, मेरे मन में यही होता है कि जैसा नासमझ मैं कल तक था, वैसे ही नासमझ ये हैं। परमात्मा, इनको क्षमा कर। और मेरे मन में कुछ भी नहीं होता। तो बुद्ध ने अपने भिक्षुओं से कहा कि इसको देखो, यह बिना विधि के छलांग लगा गया है।
कृष्ण इसलिए उस छोटे-से हिस्से में छोड़ देते हैं, दुष्प्राप्य कहते हैं, असंभव नहीं कहते हैं। सरल कहते हैं उसको, जिसने मन को वश में किया, क्योंकि मन को इंच-इंच वश में किया जा सकता है। अगर हजार घोड़े हैं आपके मन के रथ में, तो आप एक-एक घोड़े को धीरे-धीरे लगाम पहना सकते हैं। एक-एक घोड़े को धीरे-धीरे ट्रेन कर सकते हैं, प्रशिक्षित कर सकते हैं। और एक दिन ऐसा आ सकता है कि रथ ऐसा चलने लगे कि आप समता को उपलब्ध हो जाएं।
विपरीत के बीच समता को उपलब्ध होना कठिन है, सानुकूल के बीच समता को उपलब्ध होना आसान है। अनुकूल के बीच समता को उपलब्ध होना आसान है, प्रतिकूल के बीच समता को उपलब्ध होना अति कठिन है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, मन को वश में करके, अनुकूल स्थिति बनाकर, शांत
हो जाना सरल है।
अगर चारों तरफ हरियाली भरे वृक्ष हों, पक्षियों के मधुर गीत हों, सुबह
की ताजी हवा हो, सूरज का उठता हुआ, जागता हुआ नया रूप हो, तो उसके बीच बैठकर ध्यान करना आसान है। बाजार हो, चारों तरफ उपद्रव चल रहा हो, आग लगी हो, उसके बीच बैठकर, प्रतिकूल के बीच ध्यान में उतरना कठिन है।
लेकिन असंभव नहीं है। ऐसे लोग हैं, जो मकान में आग लगी हो, और ध्यान में उतर सकते हैं। ऐसे लोग हैं, जो बीच बाजार में बैठकर ध्यान में उतर सकते हैं।
कृष्ण उन लोगों में से ही हैं। नहीं तो कृष्ण युद्ध के मैदान पर जाने
को राजी न होते। राजी हो जाते हैं, क्योंकि कोई अड़चन नहीं है। वहां भी चित्त वैसा ही रहेगा। युद्ध होगा, लाशें पट जाएंगी, खून की धाराएं बहेंगी-- चित्त वैसा ही रहेगा। इसीलिए तो वे अर्जुन को कह पाते हैं कि अर्जुन, तू बेफिक्री से काट, कोई कटता ही नहीं। बस, तू एक ख्याल छोड़ दे कि तू काटने वाला है, बस। कटने वाला कोई भी नहीं है यहां। तेरी भ्रांति भर तू छोड़ दे कि मैं किसी को मार डालूंगा, कि कोई मेरे द्वारा मार डाला जाएगा, कि मेरे द्वारा किसी को दुख पहुंच जाएगा।
कृष्ण कहते हैं, दुख सदा अपने ही द्वारा पहुंचता है, किसी और के द्वारा नहीं। तू भर यह ख्याल छोड़ दे कि तेरे द्वारा! अन्यथा तेरा यह ख्याल तुझे दुख पहुंचा जाएगा, और कुछ नहीं होगा। सब अपने ही कारण से मरते हैं, निमित्त कुछ भी बन जाए। तू निमित्त से ज्यादा नहीं होगा, कर्ता नहीं होगा। इसलिए तू मारने-काटने की फिक्र छोड़ दे। और फिर कौन कब कटता है! शरीर ही कटता है। वह जो भीतर है, अनकटा रह जाता है। उसे तो शस्त्र भी नहीं छेद पाते; उसे तो कोई काट नहीं पाता। आग जला नहीं पाती, पानी डुबा नहीं पाता।
यह जो कृष्ण ऐसा कह सकते हैं, ऐसा जानते हैं इसलिए। इसलिए युद्ध के मैदान पर खड़े हो सके हैं। ये वे थोड़े-से जो लोग हैं करोड़ों में, उनमें से एक आदमी युद्ध के मैदान पर खड़ा हो सकता है। नहीं तो अहिंसावादी भागेगा युद्ध के मैदान से। सिर्फ वही अहिंसावादी युद्ध के मैदान पर भी खड़ा होकर अहिंसक हो सकता है, जिसने मन को वश में करने की विधि से पार नहीं पाया, मन को स्वच्छंद छोड़कर पाया है। जिसने मन को वश में किया है, वह अहिंसावादी युद्ध से दूर भागेगा। वह कहेगा, कहीं कोई मेरी लगाम टूट जाए! युद्ध का उपद्रव, कोई घोड़ा छूट जाए! कोई झंझट हो जाए! तो मेरी सारी व्यवस्था बनी बनाई, कभी भी विशृंखल हो सकती है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, सरल है। और सरल से ही जाना उचित है। सरल का अर्थ
ही यही है कि जो अधिकतम लोगों के लिए सुगम पड़ेगा, अनुकूल पड़ेगा, स्वभाव के साथ पड़ेगा। सहज है।
लेकिन तीसरी बात, और महत्वपूर्ण, कृष्ण कहते हैं, यह मेरा मत है। ऐसा कहने की क्या जरूरत है कृष्ण को कि यह मेरा मत है? कह सकते थे, यह सत्य है। सत्य और मत का थोड़ा फर्क समझ लें।
ट्रुथ का मतलब होता है, ऐसा है, मैं कहूं या न कहूं। कोई जाने न जाने; कोई माने न माने--ऐसा है। मत का अर्थ होता है, जैसा है, उसके बाबत मेरा विचार, ओपीनियन अबाउट दि ट्रुथ, सत्य के संबंध में मेरा विचार। सत्य नहीं, मेरा विचार। विचार में भूल-चूक हो सकती है। विचार में कमी भी हो सकती है। विचार में अभिव्यक्ति-दोष भी हो सकता है। विचार में भाषा के कारण, जो कहा गया, वह अन्यथा भी समझा जा सकता है। शब्द बोलते ही आपके हाथ में चला जाता है। मैंने शब्द बोला, तो आपके हाथ में चला जाता है। व्याख्या आप करेंगे। इसलिए कृष्ण बहुत ही ठीक बात कह रहे हैं। वे कहते हैं, यह मेरा मत है अर्जुन। मत का अर्थ है कि जैसे ही सत्य को शब्द दिया गया, वह मत हो जाता है, सत्य नहीं रह जाता। सत्य जब निःशब्द होता है, तभी सत्य होता है।
इसलिए जो लोग शब्दों में सत्य का आग्रह करते हैं, उनको सत्य का कोई भी पता नहीं है। शब्दों में जो सत्य का आग्रह करता है, उसे सत्य का कोई भी पता नहीं है। शब्दों में ज्यादा से ज्यादा, बस मत की बात कही जा सकती है, कि मेरा ओपीनियन है अर्जुन।

फर्क है बहुत। अगर कहें कि सत्य है यह, तो मानने का आग्रह वजनी हो जाता है। मत है यह, तो मानो न मानो, स्वतंत्रता कायम रहती है। सत्य को तो मानना ही पड़ेगा। मत को अस्वीकार भी किया जा सकता है।
फिर और भी कारण हैं। जैसे ही सत्य को हम प्रकट करते हैं, वह मत हो जाता है। इसलिए सभी शास्त्र मत हैं, ओपीनियन का संग्रह हैं। कोई शास्त्र सत्य का संग्रह नहीं है, न हो सकता है।
काश, दुनिया के सभी धर्म यह समझ पाएं कि उनका जो शास्त्र है, वह एक मत है, सत्य नहीं है, तो झगड़ा न हो। क्योंकि सत्य के संबंध में हजार मत हो सकते हैं। हजार सत्य नहीं हो सकते। लेकिन चूंकि प्रत्येक शास्त्र दावा करता है सत्य का, इसलिए दो सत्यों में--दो सत्य कैसे मानें--कलह खड़ी हो जाती है। मत है! अर्जुन को कहा गया कृष्ण का यह वक्तव्य बड़ा कीमती है, यह मेरा
मत है। कृष्ण जैसा आदमी कहे कि यह मेरा मत है, अदभुत है। क्योंकि कृष्ण जैसा आदमी सहज ही कह पाता है, यह सत्य है। बिना फिक्र किए, बिना सोचे-समझे उससे निकलता है, यह सत्य है, क्योंकि वह सत्य को जानता है। यह बहुत कंसीडर्ड वक्तव्य है, बहुत सोचकर कहा गया कि यह मत है अर्जुन। इसको तुम ऐसा मत समझ लेना कि यही सत्य है। अन्यथा शब्दों पर गांठ बन जाएगी और शब्दों की व्याख्या तुम करोगे।
अगर मत है, तो इसका अर्थ यह हुआ कि सत्य तुम्हें पाना पड़ेगा, इस मत से सत्य नहीं मिलेगा। मत से सिर्फ सूचना मिलती है कि मुझे सत्य मिला। अगर तुम्हें भी सत्य पाना है, तो तुम्हें भी चेष्टा और श्रम और अभ्यास और साधना करनी पड़ेगी, तब तुम सत्य पाओगे। अगर मैं कहूं कि जो मैं कह रहा हूं, यही सत्य है, तो आपको शब्द से ही सत्य मिल गया। अब साधना की और क्या जरूरत रह गई है! साधना की सुविधा बनी रहे। अर्जुन को पता रहे कि सत्य अभी पाना है। जो मिला है, वह मत है। भगवान भी बोले, तो जो मिलेगा, वह मत होगा, सत्य नहीं होगा। साधना के लिए उपाय शेष रहेगा ही।
फिर साथ में यह भी जरूरी है समझ लेना कि मत को विचारा जा सकता है। इसलिए जब तक जो आदमी विचार में पड़ा है, उससे मत की ही बात की जा सकती है, सत्य की बात नहीं की जा सकती है। क्योंकि वह इस पर सोचेगा। अर्जुन जो सुनेगा, उस पर सोचेगा भी, उसका अर्थ भी निकालेगा, व्याख्या भी करेगा। और अर्थ और व्याख्याएं! अर्थ और व्याख्याएं हमारी होती हैं।
जब अर्जुन अर्थ निकालेगा, तो वह कृष्ण का नहीं होगा, वह अर्जुन का होगा। हां, अगर अर्जुन इस हालत में आ जाए कि सोचना छोड़ दे, व्याख्या करना छोड़ दे, अर्थ निकालना छोड़ दे, सिर्फ सुन सके; इतना शून्य और खाली हो जाए कि अपने मन को विदा कर दे--तो फिर मत सत्य की तरह प्रवेश कर सकता है। लेकिन ऐसा अति कठिन है। ऐसा अति कठिन है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, यह मत है।

अर्जुन उवाच
अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति।। 37।।
कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि।। 38।।
एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते।। 39।।
इस पर अर्जुन बोला, हे कृष्ण, योग से चलायमान हो गया है मन जिसका, ऐसा शिथिल यत्न वाला श्रद्धायुक्त पुरुष, योग-सिद्धि को अर्थात भगवत-साक्षात्कार को न प्राप्त होकर, किस गति को प्राप्त होता है।
और हे महाबाहो, क्या वह भगवत्प्राप्ति के मार्ग में मोहित हुआ आश्रयरहित पुरुष छिन्न-भिन्न बादल की भांति दोनों ओर से अर्थात भगवतप्राप्ति और सांसारिक भोगों से भ्रष्ट हुआ नष्ट तो नहीं हो जाता है। हे कृष्ण, मेरे इस संशय को संपूर्णता से छेदन करने के लिए आप ही योग्य हैं, क्योंकि आपके सिवाय दूसरा इस संशय का छेदन करने वाला मिलना संभव नहीं है।

सुना अर्जुन ने कृष्ण की बात को; जो उठना चाहिए था संशय, वही उसके मन में उठा। अर्जुन बहुत प्रेडिक्टेबल है। अर्जुन के संबंध में भविष्यवाणी की जा सकती है कि उसके मन में क्या उठेगा। जो मनुष्य के मन में उठता है सहज, वह उठा उसके मन में।
उठा यह सवाल कि योग से चलायमान हो जाए जिसका चित्त, प्रभु-मिलन से जो विचलित हो गया है, खो चुका है जो उस निधि को--यद्यपि श्रद्धायुक्त है, चाहता भी है कि पा ले, कोशिश भी करता है कि पा ले, फिर भी मन थिर नहीं होता-- तो ऐसे व्यक्ति की गति क्या होगी?
यह डर स्वाभाविक है। तत्काल पीछे पूछता है कि कहीं ऐसा तो न होगा कि जैसे कभी आकाश में वायु के झोंकों में बादल छितर-बितर होकर नष्ट हो जाता है। कहीं ऐसा तो न होगा कि दोनों ही छोरों को खो गया आदमी! यहां संसार को छोड़ने की चेष्टा करे कि परमात्मा को पाना है, और वहां मन थिर न हो पाए और परमात्मा मिले नहीं! तो कहीं ऐसा तो न होगा कि राम और काम दोनों खो जाएं और वह आदमी एक बादल की तरह हवाओं के दोनों तरफ के झोंकों में छितर-बितर होकर नष्ट हो जाए। कहीं ऐसा तो न होगा?
संसार को छोड़ते समय मन में यह सवाल उठता ही है कि कहीं ऐसा तो न हो कि मैं संसार की तरफ वैराग्य निर्मित कर लूं, तो संसार भी छूट जाए, और परमात्मा को पा न सकूं, क्योंकि मन बड़ा चंचल है। तो संसार भी छूट जाए और परमात्मा भी न मिले; तो मैं घर का न घाट का; धोबी के गधे जैसा न हो जाऊं! अभी कहीं तो हूं, संसार में सही। अभी कुछ तो मेरे पास है। माना कि भ्रामक है, माना कि सपने जैसा है, फिर भी है तो। सपना ही सही, झूठा ही सही, फिर भी भरोसा तो है कि मेरे पास कुछ है। कोई मेरा है। पत्नी है, पति है, बेटा है, बेटी है, मित्र हैं, मकान है। माना कि झूठा है। कल मौत आएगी, सब छीन लेगी। लेकिन मौत जब तक नहीं आई है, तब तक तो है। और माना कि कल सब राख में गिर जाएगा। लेकिन जब तक नहीं गिरा, तब तक तो है; तब तक तो सांत्वना है। कहीं ऐसा तो न होगा, हे महाबाहो, कि इसे भी छोड़ दे आदमी, और जिसकी तुम बात करते हो, उस राम को पाने की वासना से मोहित हो जाए, तुम्हारा आकर्षण पकड़ ले। और तुम जैसे आदमी खतरनाक भी हैं। उनकी बातें आकर्षण में डाल देती हैं। मोह पैदा हो जाता है कि पा लें इस ब्रह्म को, पा लें इस आनंद को, मिले यह समाधि, हो जाए निर्वाण हमारा भी, हम भी पहुंचें उस जगह, जहां सब शून्य है और सब मौन है, और जहां परम सत्य का साक्षात्कार है। तुम्हारे मोह में पड़ा, तुम्हारी बात के आकर्षण में पड़ा आदमी संसार को छोड़ दे, खूंटी तोड़ ले यहां से, और नई खूंटी न गाड़ पाए। यह तट भी छूट जाए संसार का, उस तट की कोई खबर नहीं। नाव कमजोर है, हवा के झोंके तेज हैं, कंपती है बहुत। पतवार कमजोर, हाथ चलते नहीं, और दूसरे किनारे भी न पहुंच पाएं, तो कहीं दोनों किनारों से भटक गई नौका की तरह, हवा के तूफानी थपेड़ों में नाव डूब तो न जाए! कहीं ऐसा तो न हो कि यह भी छूटे और वह भी न मिले!
धर्म की यात्रा पर निकले हुए आदमी को यह सवाल उठता ही है। उठेगा ही।
यह बिल्कुल स्वाभाविक है। जब भी हम कुछ छोड़ते हैं, तो यह सवाल उठता है कि यह छूटता है, दूसरा मिलेगा या नहीं? एक सीढ़ी से पैर उठाते हैं, तो भरोसा पक्का कर लेते हैं कि दूसरी सीढ़ी पर पैर पड़ेगा या नहीं? दूसरी सीढ़ी पक्की हो जाए, तो हम उस पर पैर रख लें। कि जब भरोसा है पूरा, तब पहले से उठाते हैं। इसलिए अर्जुन कहता है, हे कृष्ण, मेरे संशय को पूर्ण रूप से छेद डालें। मुझे पक्का करवा दें आश्वासन, कि मिल ही जाएगा दूसरा तट, ताकि मैं निःसंशय इस तट को छोड़ सकूं। छेद कर दें, छेद डालें मेरे इस संदेह को। जरा भी बाकी न रहे। यह अगर जरा भी बाकी रहा, तो तट छोड़ने में मुझे कठिनाई होगी। एकाध जंजीर को मैं तट से बांधे ही रहूंगा। एकाध लंगर नाव का मैं डाले ही रहूंगा। दूसरे तट पर जाने की मेरी हिम्मत कमजोर होगी। डर लगेगा कि पता नहीं, पता नहीं दूसरा किनारा है भी या नहीं! होगा भी, तो मिलेगा भी या नहीं! और जैसा मन मेरा है, उसे मैं भलीभांति जानता हूं। और जो शर्तें तुमने कहीं, वे भी मैंने ठीक से सुन लीं कि मन बिल्कुल थिर हो जाए। और मैं भलीभांति जानता हूं कि क्षण को मन थिर होता नहीं। सब घोड़े वश में आ जाएं! और मैं भलीभांति जानता हूं कि एक भी घोड़ा वश में आता नहीं। सब इंद्रियों के मैं

पार चला जाऊं! और भलीभांति जानता हूं कि इंद्रियों के अतिरिक्त मेरा कोई पार का अनुभव नहीं है।
तो कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारी शर्तें! और कल तुम तो कह दोगे कि शर्तें तुमने पूरी नहीं कीं, तो तुम्हें किनारा नहीं मिला। लेकिन मेरा क्या होगा? यह तट भी छूट जाए, वह तट भी न मिले, तो कहीं बिखर तो न जाऊंगा! टूट ही तो न जाऊंगा! गति क्या होगी मेरी? इस संशय को पूरा ही छेद डालो कृष्ण! पूरा ही। और कृष्ण से वह कहता है, तुम जैसा आदमी दूसरा मिलना मुश्किल है। संभव नहीं कि तुम जैसा आदमी मैं फिर पा सकूं, जो मेरे इस संशय को छेद डाले।
ऐसा अर्जुन ने क्यों कहा होगा?
संशय को वही छेद सकता है, जिसकी आंखों में स्वयं संशय न हो। जो असंदिग्धमना हो, जो निःसंशय हो, जो अपने ही भीतर इतने भरोसे से भरपूर हो कि उसका भरोसा ओवरफ्लो करता हो, बाहर बहता हो। जिसके रोएं-रोएं से पता चलता हो कि उस आदमी के मन में कोई संशय, कोई प्रश्न नहीं हैं।
कृष्ण जैसे आदमी प्रश्न नहीं पूछते कभी। कृष्ण जैसे आदमी कभी किसी के पास शंका निवारण के लिए नहीं जाते। अर्जुन भलीभांति जानता है कि कृष्ण कभी किसी के पास शंका निवारण को नहीं गए। भलीभांति जानता है, इनके मन में कभी प्रश्न नहीं उठा। भलीभांति जानता है कि ये बिल्कुल निःसंशय में जीते हैं। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, कठिन है। सदियां बीत जाती हैं, तब कभी ऐसा आदमी उपलब्ध होता है।
जिसके मन में कोई संशय नहीं है, वही तो दूसरे के संशय को काट पाएगा। जिसके मन में स्वयं ही बहुत तरह के संशय हैं, वह दूसरे के संशय को काटने भला जाए, और जड़ों को पानी सींचकर लौट आएगा।
हम सब यही करते हैं। हम सब एक-दूसरे का संशय काटते हैं। बेटे का संशय बाप काट रहा है; और बाप खुद संदिग्ध है! उसे खुद पता नहीं कि मामला क्या है! बेटा पूछता है, यह पृथ्वी किसने बनाई? बाप कहता है, भगवान ने। और भीतर-भीतर डरता है कि बेटा अब आगे न पूछे कि भगवान किसने बनाए? और कहीं बेटा जोर से न पूछ ले कि भगवान कहां है? देखा है? क्योंकि बेटे आमतौर से नहीं पूछते, इसलिए बाप अपने झूठ कहे चले जाते हैं।
लेकिन थोड़े ही दिन में बेटा जवान होगा और जान लेगा कि बाप को भी पता नहीं है। लेकिन वह यह भी जान लेगा कि बेटों के सामने जानने का मजा लिया जा सकता है। अपने बेटों के सामने वह भी लेगा। और ऐसा चलता है। गुरु असंदिग्ध भाव से जवाब देता मालूम पड़ता है, लेकिन भीतर संदेह खड़ा होता है।
कृष्ण जैसा आदमी अर्जुन को मिले, तो स्वाभाविक है उसका कहना कि हे महाबाहो, तुम जैसा आदमी फिर नहीं मिलेगा। तुम काट ही डालो। अगर तुम न काट पाए मेरे संदेह को, तो फिर मैं आशा नहीं करता कि कुछ हो सकता है। फिर मैं होपलेस हालत में हो जाऊंगा, बिल्कुल आशारहित। फिर मेरी कोई आशा नहीं है। क्योंकि जैसा मैं अपने को जानता हूं, वैसा तो मैं इसी किनारे से बंधा रहूंगा। कम से कम कुछ तो मुट्ठी में है। और जो तुम कह रहे हो, वह बात जंचती है, लेकिन मेरे संशय को काट डालो।
यहां दो-तीन बातें ख्याल में ले लेनी जरूरी हैं।
एक तो बात यह ख्याल में ले लेनी जरूरी है कि सांसारिक मन का यह लक्षण
है कि वह किसी चीज को छोड़ सकता है किसी चीज के पाने के भरोसे। सहज नहीं छोड़ सकता। पाने का भरोसा हो, तो छोड़ सकता है किसी चीज को। त्याग करने में सांसारिक मन मुश्किल नहीं पाता, लेकिन त्याग इनवेस्टमेंट होना चाहिए। त्याग कुछ और पाने के लिए सिर्फ व्यवस्था बनाना चाहिए।
और जब त्याग किसी और को पाने के लिए होता है, तो त्याग नहीं होता, सिर्फ सौदा होता है। इसलिए सांसारिक मन त्याग को समझ ही नहीं पाता, सिर्फ बार्गेनिंग समझता है, सौदा समझता है। वह कहता है कि ठीक है; पक्का है कि मैं यहां कुछ दान करूं, तो स्वर्ग में उत्तर मिल जाएगा? पक्का है कि यहां एक मंदिर बना दूं, तो भगवान के मकान के पास ही ठहरने की जगह मिलेगी? पक्का है? तो मैं कुछ त्याग कर सकता हूं।
सांसारिक मन, पाने का पक्का हो जाए, तो छोड़ सकता है। पाने के लिए ही छोड़ सकता है। बड़ा अदभुत है यह। बड़ा कंट्राडिक्टरी है यह। यह हो नहीं सकता।

अगर पाने के लिए ही छोड़ रहे हैं, तो छोड़ना नहीं हो सकता। और कठिनाई यह है कि जो छोड़ता है, वही पाता है।
अब इस वक्तव्य को, इस पैराडाक्स को, इस उलटबांसी को ठीक से समझ लेना चाहिए।
कबीर के पास लोग जाते थे, तो वे उलटबांसियां कहते थे। कोई उनसे पूछता
था कि उलटी-सीधी बातें आप कहते हैं, हमारी कुछ समझ में नहीं पड़तीं! तो वे कहते, तुम जाओ। क्योंकि फिर आगे की जिस यात्रा पर मुझे तुम्हें ले जाना है, वे सब उलटबांसियां हैं। उलटबांसी का मतलब होता है, पैराडाक्स।
जैसे कबीर के पास कोई जाएगा और पूछेगा, परमात्मा है? तो कबीर उसको इसका उत्तर न देंगे। वे कहेंगे, समुंद लागी आगि, नदियां जल भईं राख। वह आदमी कहेगा, आप क्या कह रहे हैं! समुद्र में आग लग गई है और नदियां जलकर राख हो गई हैं? कबीर कहेंगे, तू जा। अगर राजी हो, तो रुक। क्योंकि आगे फिर और उपद्रव होगा।
कोई आकर पूछेगा, आत्मा क्या है? और कबीर कहेंगे, जाग कबीरा जाग। माछी
चढ़ गई रूख! मछली जो है, वह झाड़ पर चढ़ गई है; कबीर जाग! वह आदमी कहेगा, मैं आत्मा के संबंध में समझने आया। कहां की मछलियां! कहां के रूख! कभी मछलियां झाड़ों पर चढ़ी हैं? कबीर कहेंगे, तू जा। क्योंकि आगे की बातें और कठिन हैं। यह जो कृष्ण से अर्जुन पूछ रहा है, उसका उत्तर, उसकी दुविधा असल में यही है। दुविधा त्याग की यही है कि त्याग बिना पाने की आशा के किया जाए, तो होता है। और जो बिना पाने की आशा के त्याग करता है, वह बहुत पाता है। जो पाने की आशा से त्याग करता है, वह पाने की आशा से करता है, इसलिए त्याग नहीं हो पाता। और चूंकि त्याग नहीं हो पाता, इसलिए वह कुछ भी नहीं पाता है। जिसे पाना हो, उसे पाने की बात छोड़ देनी चाहिए। जिसे न पाना हो, उसे पाने की बात करते चले जाना चाहिए। सांसारिक मन नहीं समझ पाएगा यह, वह कहेगा कि पाने की बात छोड़ दूं! अच्छा छोड़े देते हैं। लेकिन पाना क्या सच में छोड़ने से हो जाएगा? उसका भीतरी, भीतरी जो सांसारिक मन की बनावट है, जो इनर स्ट्रक्चर है, जो मेकेनिज्म है, वह यह है।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि हम ध्यान बहुत करते हैं, शांति नहीं मिलती। तो मैं उनसे कहता हूं, तुम शांति की फिक्र छोड़ दो। तुम शांति चाहो ही मत। फिर तुम ध्यान करो। और शांति मिल जाएगी, बट दैट विल बी ए कांसिक्वेंस। वह परिणाम होगा सहज। तुम मत मांगो। डोंट मेक इट ए रिजल्ट, इट बिल बी ए कांसिक्वेंस। तुम फल मत बनाओ उसे, वह परिणाम होगा। वह हो ही जाएगा; उसकी तुम फिक्र न करो। वे कहते हैं, तो फिर हम शांति का ख्याल छोड़ दें, फिर शांति मिल जाएगी?
वे शांति का ख्याल भी छोड़ने को राजी हैं, एक ही शर्त पर, कि शांत मिल जाएगी?
अब शांति की तलाश अशांति है। इसलिए शांति का तलाशी कभी शांति नहीं पा सकता। तलाश अशांति है। और शांति की तलाश महा अशांति है।
ऐसा है। दिस इ.ज दि फैक्टिसिटी, यह ऐसा तथ्य है, ऐसा अस्तित्व है, इसमें कोई उपाय नहीं है। इस अस्तित्व की शर्तों को मानें तो ठीक, न मानें तो दुख भोगना पड़ता है। इस अस्तित्व की शर्त ही यह है। उस पार जाने की शर्त यह है कि यह किनारा छोड़ो। और यह भी शर्त है कि उस किनारे की बात मत करो। अर्जुन कहता है, मुझे निःसंदिग्ध कर दें। हे महाबाहो, तुम्हारी बांहें बड़ी विशाल हैं। तुम दूर के तट छू लेते हो। तुम असीम को भी पा लेते हो। तुम मुझे कह दो, भरोसा दिला दो।
लेकिन सच ही क्या कृष्ण का भरोसा अर्जुन के लिए भरोसा बन सकता है? क्या कृष्ण यह कह दें कि हां, मिलेगा दूसरा किनारा, तो भी क्या संदेह करने वाला मन चुप हो जाएगा? क्या वह मन नया संदेह नहीं उठाएगा? कि अगर कृष्ण के कहने से नहीं मिला, तो? फिर कृष्ण जो कहते हैं, वह मान ही लिया जाए, जरूरी क्या है? फिर हम कृष्ण की मानकर चले भी गए और कल अगर खो गए, तो किससे शिकायत करेंगे? कहीं बादल की तरह बिखर गए, तो फिर किससे कहेंगे? और अगर गति बिगड़ गई, तो कौन होगा जिम्मेवार? कृष्ण होंगे जिम्मेवार?
अजीब है आदमी का मन। असल बात यह है कि संदेह करने वाला मन संदेह करता
ही चला जाएगा। ऐसा नहीं है कि एक संदेह का निरसन हो जाए, तो निरसन हो

जाएगा। एक संदेह का निरसन होते ही दूसरा संदेह खड़ा हो जाएगा। दूसरे का निरसन होते ही तीसरा संदेह खड़ा हो जाएगा। फिर कृष्ण क्यों संदेहों को तृप्त करने की कोशिश कर रहे हैं? क्या इस आशा में कि संदेह तृप्त हो जाएंगे?
नहीं, सिर्फ इस आशा में कृष्ण अर्जुन के संदेह दूर करने की कोशिश करेंगे कि धीरे-धीरे हर संदेह के निरसन के बाद भी जब नया संदेह खड़ा होगा, तो अर्जुन जाग जाएगा, और समझ पाएगा कि संदेहों का कोई अंत नहीं है।
ख्याल रखिए, संदेह के निरसन से संदेह का निरसन नहीं होता। लेकिन बार-बार संदेह के निरसन करने से आपको यह स्मृति आ सकती है कि कितने संदेह तो निरसन हो गए, मेरा संदेह तो वैसा का वैसा ही खड़ा हो जाता है! यह तो रावण का सिर है। काटते हैं, फिर लग जाता है। काटते हैं, फिर लग जाता है! काटते हैं, फिर लग जाता है! कृष्ण अथक काटते चले जाएंगे।
पूरी गीता संदेह के सिर काटने की व्यवस्था है। एक-एक संदेह काटेंगे, जानते हुए कि संदेह से संदेह होता है। संदेह किसी भी भरोसे, आश्वासन से कटता नहीं है। लेकिन अर्जुन थक जाए कट-कटकर, और हर बार खड़ा हो-होकर गिरे, और फिर खड़ा हो जाए। संदेह मिटे, और फिर बन जाए; जवाब आए, और फिर प्रश्न बन जाए। ऐसा करते-करते शायद अर्जुन को यह ख्याल आ जाए कि नहीं, संदेह व्यर्थ है; और आश्वासन की तलाश भी बेकार है। किसी क्षण यह ख्याल आ जाए, तो तट छूट सकता है।
मगर अर्जुन की प्यास बिल्कुल मानवीय है, टू ह्यूमन, बहुत मानवीय है। इसलिए कृष्ण नाराज न हो जाएंगे। जानते हैं कि मनुष्य जैसा है, तट से बंधा, उसकी भी अपनी कठिनाइयां हैं।
किसी का सपना हम तोड़ दें। सुखद सपना कोई देखता हो; माना कि सपना था, पर सुखद था; तोड़ दें। तो वह आदमी पूछे कि सपना तो आपने मेरा तोड़ दिया, लेकिन अब? अब मुझे कहां! अब मैं क्या देखूं? अभी जो देख रहा था, सुखद था। आप कहते हैं, सपना था, इसलिए तुड़वा दिया। अब मैं क्या देखूं?
कुछ देखने की उसकी प्यास स्वाभाविक है। मगर उस प्यास में बुनियादी गलती है। आदमी के होने में ही बुनियादी गलती है। प्यास मानवीय है, लेकिन मानवीय होने में ही कुछ गलती है। वह गलती यह है कि सपना देखने वाला कहता है कि मैं सपना तभी तोडूंगा, जब मुझे कोई और सुंदर देखने की चीज विकल्प में मिल जाए।
और कृष्ण जैसे लोगों की चेष्टा यह है कि हम सपना भी तोड़ेंगे, विकल्प
भी न देंगे, ताकि तुम उसको देख लो, जो सबको देखता है। देखने को बंद करो। दृश्य को छोड़ो। तुम एक दृश्य की जगह दूसरा दृश्य मांगते हो। अगर कृष्ण की भाषा में मैं आपसे कहूं, तो कृष्ण कहेंगे, दूसरा किनारा है ही नहीं। यह किनारा भी झूठ है; और झूठ के विकल्प में दूसरा किनारा नहीं होता। अगर यह किनारा सच होता, तो दूसरा किनारा सच हो सकता था। एक किनारा झूठ और एक सच नहीं हो सकता। दोनों ही किनारे सच होंगे, या दोनों ही झूठ होंगे।
आप समझते हैं! एक नदी का एक किनारा सच और एक झूठ हो सकता है? या तो दोनों ही झूठ होंगे, या दोनों ही सच होंगे। अगर दोनों झूठ होंगे, तो नदी भी झूठ होगी। अगर दोनों ही सच होंगे, तो नदी भी सच होगी। अब ऐसा समझ लें कि तीनों ही सच होंगे, या तीनों ही झूठ होंगे। तीसरा उपाय नहीं है, अन्य कोई उपाय नहीं है। ऐसा नहीं हो सकता कि नदी सच हो और किनारे झूठे हों। तो नदी बहेगी कैसे? और ऐसा भी नहीं हो सकता कि एक किनारा सच और दूसरा झूठा हो। नहीं तो दूसरे झूठे किनारे का सहारा न मिलेगा। तीनों सच होंगे, या तीनों झूठ होंगे।
अब अर्जुन कहता है, यह किनारा तो झूठ है। कृष्ण, मैं समझ गया, तुम्हारी बातें कहती हैं। तुम पर मैं भरोसा करता हूं। और मेरी जिंदगी का अनुभव भी कहता है, यह किनारा झूठ है। दुख ही पाया है इस किनारे पर, कुछ और मिला नहीं। इस वासना में, इस मोह में, इस राग में पीड़ा ही पाई, नर्क ही निर्मित किए। मान लिया, समझ गया। लेकिन दूसरा किनारा सच है न!
कृष्ण क्या कहेंगे? अगर वे कह दें, दूसरा किनारा भी नहीं है, तो अर्जुन कहेगा, इसी को पकड़ लूं। कम से कम जो भी है, सांत्वना तो है, आशा तो है कि कल कुछ मिलेगा। तुम तो बिल्कुल निराश किए देते हो।

बुद्ध जैसे व्यक्ति ने यही उत्तर दिया कि दूसरा किनारा भी नहीं है, मोक्ष भी नहीं है। बड़ी कठिन बात हो गई फिर। मोक्ष भी नहीं है! और संसार छोड़ने को कहते हो, और मोक्ष भी नहीं है! धन भी छोड़ने को कहते हो, और धर्म भी नहीं है! तो फिर कहते किसलिए हो?
इसलिए बुद्ध बिल्कुल सही कहे, लेकिन काम नहीं पड़ा वह सत्य। दूसरा किनारा भी नहीं है, तो लोगों ने कहा, फिर हमें पकड़े रहने दो।
दूसरा किनारा नहीं है, जोर इस बात पर है कि मझधार में डूब जाना ही किनारा है। लेकिन वह उलटबांसी की बात हो गई। मझधार में डूब जाना ही किनारा है। लेकिन वह उलटबांसी की बात हो गई, वह पैराडाक्स हो गया। किनारा तो हम कहते हैं, जो मझधार में कभी नहीं होता। किनारा तो किनारे पर होता है। लेकिन यह किनारा भी छोड़ दो, वह किनारा भी छोड़ दो, बीच में कौन रह जाएगा? दोनों किनारे जहां छूट गए--संसार भी नहीं है, मोक्ष भी नहीं है--फिर वासना की धारा को बहने का उपाय नहीं रह जाएगा। वासना की नदी फिर बह न सकेगी, और कामना की नावें फिर तैर न सकेंगी, और अहंकार के सेतु फिर निर्मित न हो सकेंगे। तब एक तरह की डूब, एक तरह का विसर्जन, एक तरह की मुक्ति, एक तरह का मोक्ष, एक तरह की स्वतंत्रता फलित होती है। और वही उपलब्धि है।
लेकिन अर्जुन कैसे समझे उसे? कृष्ण कोशिश करेंगे। वे अभी, दूसरा किनारा है, सही है, पहुंचेगा तू, आश्वासन देता हूं मैं--इस तरह की बातें करेंगे। यह किनारा तो छूटे कम से कम; फिर वह किनारा तो है ही नहीं। और जिसका यह छूट जाता है, उसका वह भी छूट जाता है।
कई बार एक झूठ छुड़ाने के लिए दूसरा झूठ निर्मित करना पड़ता है, इस आशा में कि झूठ छोड़ने का अभ्यास तो हो जाएगा कम से कम। फिर दूसरे को भी छुड़ा लेंगे।
और दो तरह के शिक्षक हैं पृथ्वी पर। एक, जो कहते हैं, जो तुम्हारे हाथ में है, वह झूठ है। और हम तुम्हारे हाथ में कुछ देने को राजी नहीं। क्योंकि कुछ भी हाथ में होगा, झूठ होगा। ऐसे शिक्षक सहयोगी नहीं हो पाते।
दूसरे शिक्षक ज्यादा करुणावान हैं। वे कहते हैं, तुम्हारे हाथ में जो झूठ है, उसे छोड़ दो। हम तुम्हारे लिए सच्चा हीरा देते हैं। हालांकि कोई सच्चा हीरा नहीं है। हीरा मिलता है उस मुट्ठी को, जो खुल जाती है और कुछ भी नहीं पकड़ती, अनक्लिंगिंग। खुली मुट्ठी कुछ नहीं पकड़ती, उसको हीरा मिलता है। जो कुछ भी पकड़ती है, वह पत्थर ही पकड़ती है। पकड़ना ही--पत्थर आता है पकड़ में। हीरा तो खुले हाथ से पकड़ में आता है। अब खुले हाथ की पकड़--उलटबांसी हो जाती है। जाग कबीरा जाग, माछी चढ़ गई रूख। समुंद लागी आग, नदियां जल भईं राख।
कृष्ण कबीर की भाषा कभी-कभी बोलते हैं बीच-बीच में, जांचने के लिए, कि शायद अर्जुन राजी हो। नहीं तो फिर वे अर्जुन की भाषा बोलने लगते हैं।
अभी इतना। फिर हम सांझ... ।
अब थोड़ी देर--जाग कबीरा जाग, मछली चढ़ गई रूख!

गीता दर्शन, भाग तीन
गीता दर्शन अध्याय 6
उन्नीसवां प्रवचन

यह किनारा छोड़ें

श्रीभगवानुवाच
पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति।। 40।।
हे पार्थ, उस पुरुष का न तो इस लोक में और न परलोक में ही नाश होता है, क्योंकि हे प्यारे, कोई भी शुभ कर्म करने वाला अर्थात भगवत-अर्थ कर्म करने वाला, दुर्गति को नहीं प्राप्त होता है।

अर्जुन ने पूछा है कृष्ण से कि यदि न पहुंच पाऊं उस परलोक तक, उस प्रभु तक, जिसकी ओर तुमने इशारा किया है, और छूट जाए यह संसार भी मेरा; साधना न कर पाऊं पूरी, मन न हो पाए थिर, संयम न सध पाए, और छूट जाए यह संसार भी मेरा; तो कहीं ऐसा तो न होगा कि मैं इसे भी खो दूं और उसे भी खो दूं! तो कृष्ण उसे उत्तर में कह रहे हैं; बहुत कीमती दो बातें इस उत्तर में उन्होंने कही हैं।
एक तो उन्होंने यह कहा कि शुभ हैं कर्म जिसके, वह कभी भी दुर्गति को उपलब्ध नहीं होता है। और चैतन्य है जो, प्रभु की ओर उन्मुख चैतन्य है जो, इस लोक में या परलोक में, उसका कोई भी नाश नहीं है। इन दो बातों को ठीक से समझ लें।
पहली बात, चेतना का इस लोक में या उस लोक में, कोई नाश नहीं है। क्यों? चेतना विनष्ट होती ही नहीं। चेतना के विनाश का कोई उपाय नहीं है। विनाश केवल उन्हीं चीजों का होता है, जो संयोग होती हैं, कंपाउंड होती हैं। सिर्फ संयोग का विनाश होता है, तत्व का विनाश नहीं होता।
इसे ऐसा समझें कि जो चीज किन्हीं चीजों से जुड़कर बनती है, वह विनष्ट
हो सकती है। लेकिन जो चीज बिना किसी के जुड़े है, वह विनष्ट नहीं होती। हम सिर्फ जोड़ तोड़ सकते हैं और जोड़ बना सकते हैं।
इसे ऐसा भी समझ लें कि तत्व का कोई निर्माण नहीं होता; निर्माण केवल संयोगों का होता है। एक बैलगाड़ी हम बनाते हैं या एक मशीन बनाते हैं, एक कार बनाते हैं, एक साइकिल बनाते हैं। साइकिल बनती है, साइकिल नष्ट हो जाएगी। जो भी बनेगा, वह नष्ट हो जाएगा। जिसका प्रारंभ है, उसका अंत भी निश्चित है।
प्रारंभ में ही अंत निश्चित हो जाता है। और जन्म में ही मृत्यु की मुहर लग जाती है।
लेकिन हम पदार्थ को नष्ट नहीं कर सकते, क्योंकि पदार्थ को हम बना भी नहीं सकते हैं। हम केवल संयोग बना सकते हैं। हम पानी को बना सकते हैं। हाइड्रोजन और आक्सीजन को मिला दें, तो पानी बन जाएगा। फिर हाइड्रोजन आक्सीजन को अलग कर दें, तो पानी विनष्ट हो जाएगा। लेकिन आक्सीजन? आक्सीजन को हम न बना सकेंगे। या हो सकता है, किसी दिन हम बना सकें। किसी दिन यह हो सकता है--जिसकी संभावना बढ़ती जाती है--कि हम आक्सीजन को भी बना सकें। जिस दिन हम बना सकेंगे, उस दिन आक्सीजन एलिमेंट नहीं रहेगी, कंपाउंड हो जाएगी। उस दिन आक्सीजन तत्व नहीं कही जा सकेगी, संयोग हो जाएगी। किसी दिन हम आक्सीजन को बना लेंगे इलेक्ट्रान्स से, न्यूट्रान्स से, और भी जो अंतिम विघटन हो सकता है पदार्थ का, उससे। लेकिन इलेक्ट्रान को फिर हम न बना सकेंगे।
तत्व वह है, जिसे हम न बना सकेंगे। इस देश ने तत्व की परिभाषा की है, वह जिसे हम पैदा न कर सकेंगे और जिसे हम नष्ट न कर सकेंगे। अगर किसी तत्व को हम नष्ट कर लेते हैं, तो सिर्फ इतना ही सिद्ध होता है कि हमने गलती से उसे तत्व समझा था; वह तत्व था नहीं। अगर किसी तत्व को हम बना लेते हैं, तो उसका मतलब इतना ही हुआ कि हम गलती से उसे तत्व कह रहे हैं; वह तत्व है नहीं।
दो तत्व हैं जगत में। एक, जो हमें चारों तरफ फैला हुआ जड़ का विस्तार दिखाई पड़ता है, मैटर का। वह एक तत्व है। और एक जीवन चैतन्य, जो इस जगत में

फैले विस्तार को देखता और जानता और अनुभव करता है। वह एक तत्व है, चैतन्य, चेतना। इन दो तत्वों का न कोई निर्माण है और न कोई विनाश है। न तो चेतना नष्ट हो सकती है और न पदार्थ नष्ट हो सकता है।
हां, संयोग नष्ट हो सकते हैं। मैं मर जाऊंगा, क्योंकि मैं सिर्फ एक संयोग हूं; आत्मा और शरीर का एक जोड़ हूं मैं। मेरे नाम से जो जाना जाता है, वह संयोग है। एक दिन पैदा हुआ और एक दिन विसर्जित हो जाएगा। कोई छाती में छुरा भोंक दे, तो मैं मर जाऊंगा। आत्मा नहीं मरेगी, जो मेरे मैं के पीछे खड़ी है; और शरीर भी नहीं मरेगा, जो मेरे मैं के बाहर खड़ा है। शरीर पदार्थ की तरह मौजूद रहेगा, आत्मा चेतना की तरह मौजूद रहेगी, लेकिन दोनों के बीच का संबंध टूट जाएगा। वह संबंध मैं हूं। वह संबंध मेरा नाम-रूप है। वह संबंध विघटित हो जाएगा। वह संबंध निर्मित हुआ, विनष्ट हो जाएगा।
कृष्ण कहते हैं, चेतना का कोई विनाश नहीं है, इसलिए तू निर्भय हो। पापी चेतना का भी कोई विनाश नहीं है, इसलिए पुण्यात्मा चेतना के विनाश का तो कोई सवाल नहीं है। चेतना का ही विनाश नहीं है।
अर्जुन ने पूछा है, कहीं ऐसा तो न होगा कि हवाओं के झोंके में जैसे कोई छोटी-सी बदली बिखर जाए और खो जाए अनंत आकाश में, कहीं ऐसा तो न होगा कि इस कूल से छूटूं और वह किनारा न मिले, और मैं एक बदली की तरह बिखरकर खो जाऊं! तो कृष्ण कह रहे हैं, इस भांति होना असंभव है, क्योंकि चेतना अविनश्वर है, तत्व है, वह नष्ट नहीं होती। तो पापी की चेतना भी नष्ट नहीं होती। नष्ट होने का उपाय नहीं है। विनाश की कोई संभावना नहीं है। तो पहली बात तो वे यह कहते हैं कि चेतना ही नष्ट नहीं होती, न इस लोक में, न परलोक में, कहीं भी। चेतना का कोई विनाश नहीं है।
लेकिन हमें शक पैदा होगा। हम एक आदमी को एनेस्थेसिया का इंजेक्शन दे देते हैं, वह बेहोश हो जाता है। एक आदमी के सिर पर चोट लग जाती है, वह बेहोश होकर गिर जाता है। लोग कहते हैं, उसकी चेतना चली गई। चेतना नहीं जाती। लोग कहते हैं, अचेतन हो गया। अचेतन भी कोई नहीं होता है। जब बेहोश होता है कोई, तब फिर, न तो आत्मा बेहोश होती है और न शरीर बेहोश होता है। क्योंकि शरीर तो बेहोश हो नहीं सकता, उसके पास कोई होश नहीं है। आत्मा बेहोश नहीं हो सकती, क्योंकि वह पूर्ण होश है। फिर होता क्या है? जब एक आदमी के सिर पर चोट लगती है और वह बेहोश पड़ जाता है, तब होता क्या है? तब फिर वही बीच का संबंध शिथिल होता है। शरीर तक आत्मा से जो चेतना आती थी, उसका प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है।
समझ लें कि मैंने बटन दबा दी है और बिजली का बल्ब बुझ गया। तो क्या आप कहेंगे, बिजली बुझ गई? इतना ही कहिए कि बिजली के बल्ब तक वह जो बिजली की धारा आती थी, अब नहीं आती है। बिजली नहीं बुझ गई, बल्ब बुझ गया। बटन फिर आप आन कर देते हैं, बल्ब फिर जल उठता है। अगर बिजली बुझ गई होती, तो फिर बल्ब नहीं जल सकता था। और अगर आपका मेन स्विच भी बस्ती का आफ हो गया हो, तब भी बल्ब ही बुझते हैं, बिजली नहीं बुझती। और अगर आपका पूरा का पूरा बिजलीघर भी ठप्प होकर बंद हो गया हो, तब भी बिजलीघर ही बंद होता है, बिजली नहीं बुझती। बिजली तो ऊर्जा है। ऊर्जा नष्ट नहीं होती।
भीतर ऊर्जा है जीवन की, चेतना की। शरीर तक आने के रास्ते हैं। मन उसका रास्ता है, जिससे शरीर तक आती है। जब सिर पर कोई डंडा मारता है, तो आपका मन बुझ जाता है; बीच का सेतु टूट जाता है; खबर आनी बंद हो जाती है। भीतर आप उतने ही चेतन होते हैं, जितने थे; और शरीर उतना ही अचेतन होता है, जितना सदा था। सिर्फ आत्मा से जो चेतना शरीर में प्रतिबिंबित होती थी, वह प्रतिबिंबित नहीं होती है।
चेतना के बुझने का, नष्ट होने का कोई सवाल नहीं है। पापी की चेतना का
भी सवाल नहीं है। पापी भी कितना ही पाप करे और कितना ही बुरा कर्म करे और कितना ही संसार को पकड़े रहे, कुछ भी करे, चेतना नहीं मिटेगी। हां, चेतना विकृत, दुखद, संतापों से घिर जाएगी; नर्कों में जीएगी; पीड़ा में, कष्ट में, गहन से गहन संताप में गिरती चली जाएगी--नष्ट नहीं होगी। नष्ट होने का कोई उपाय नहीं है। ठीक ऐसे ही, जैसे आप एक रेत के टुकड़े को नष्ट नहीं कर सकते। कोई उपाय नहीं है।

वैज्ञानिक कितना काम कर पा रहे हैं! एटामिक एनर्जी खोज ली है, चांद पर पहुंच सकते हैं, पांच मील गहरे प्रशांत महासागर में डुबकी ले सकते हैं, सब कर सकते हैं, लेकिन एक रेत का छोटा-सा कण नहीं बना सकते। नहीं बना सकते, इसलिए नहीं कि वैज्ञानिक कमजोर हैं। नहीं बना सकते हैं इसलिए कि पदार्थ न तो निर्माण होता है, न विनष्ट होता है। वैज्ञानिक किसी दिन मनुष्य की आत्मा भी नहीं बना सकेंगे। यद्यपि इस तरफ काफी काम चलता है। और रोज खबरें आती हैं कि कुछ और खोज लिया गया, जिससे संभावना बनती है कि इस सदी के पूरे होते-होते आदमी की आत्मा को वैज्ञानिक पैदा कर लेगा।
अभी जो आदमी का जेनेटिक, जो उसका प्रजनन का मूल कोष्ठ है, उसको भी तोड़ लिया गया। जैसे अणु तोड़ लिया गया और परमाणु की शक्ति उपलब्ध हुई, वैसे ही अब मनुष्य के जीवकोष्ठ को भी तोड़ लिया गया है, और उस जीवकोष्ठ का भी मूल रासायनिक रहस्य समझ में आ गया है। और अब इस बात की पूरी संभावना है कि हम आज नहीं कल प्रयोगशाला में मनुष्य के शरीर को जन्म दे सकेंगे।
अभी एक वैज्ञानिक पत्रिका में, जो मनुष्य के जीवन के संबंध में ही समस्त शोध छापती है, एक बहुत बड़ा कार्टून छापा है। वह कार्टून मुझे बहुत प्रीतिकर लगा। इस सदी के पूरे होने के समय का कार्टून है। दो हजारवां वर्ष आ गया है। एक लड़का एक प्रयोगशाला के पास से गुजर रहा है, उस प्रयोगशाला के पास से, जिसके टेस्ट-ट्यूब में वह पैदा हुआ था। टेस्ट-ट्यूब प्रयोगशाला के दरवाजे से दिखाई पड़ रही है। वह लड़का रास्ते से कहता है, डैडी! नमस्कार! मैं स्कूल जा रहा हूं।
दो हजारवें वर्ष में इस बात की करीब-करीब संभावना है-- शायद दस साल और पहले यह घटित हो जाएगा--कि हम बच्चे के शरीर को प्रयोगशाला की परखनली में पैदा कर लेंगे। तब जो साधारण बुद्धि के आत्मवादी हैं, बड़ी मुश्किल में-- अभी पड़ गए हैं वे मुश्किल में--बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे। अगर किसी दिन प्रयोगशाला में आदमी का शरीर पैदा हो गया, तो फिर आत्मा का क्या होगा? और अगर वह आदमी हमारे ही जैसा आदमी हुआ, और वैज्ञानिक कहते हैं, हम से बेहतर होगा, क्योंकि वह ठीक से कल्टिवेटेड होगा। हमारी पैदाइश तो बिल्कुल ही अवैज्ञानिक है। उसमें कोई नियम और गणित और कोई व्यवस्था तो नहीं है। उसमें सारी व्यवस्था होगी।
वैज्ञानिक कहते हैं कि वह जो शरीर हम निर्मित करेंगे, हम जानेंगे कि इसे कितने वर्ष की जिंदगी देनी है। सौ वर्ष की? तो वह ठीक सौ वर्ष की गारंटी का सर्टिफिकेट लेकर पैदा होगा। क्योंकि हम उतना रासायनिक तत्व उसमें डालेंगे, जो सौ वर्ष तक स्वस्थ रह सके। अगर हम चाहते हैं कि वह आइंस्टीन जैसा बुद्धिमान हो, तो बुद्धि के तत्व की उतनी ही मात्रा उसमें होगी। अगर हम चाहते हैं कि वह मजदूर का काम करे, तो उस तरह की मसल्स उसमें होंगी। अगर हम चाहते हैं कि वह संगीतज्ञ का काम करे, तो उसके गले और उसकी आवाज का सारा रासायनिक क्रम वैसा होगा।
और फिर वे यह भी कहते हैं कि हम हर बच्चे को बनाते वक्त उसकी एक डुप्लीकेट कापी भी बना लेंगे। क्योंकि कभी भी जिंदगी में किसी की किडनी खराब हो गई, तो उसको बदलने की दिक्कत पड़ती है। तो उस डुप्लीकेट कापी से उसकी किडनी निकालकर बदल देंगे। किसी की आंख खराब हो गई! तो एक डुप्लीकेट कापी उस शरीर की जिंदा, प्रयोगशाला में रखी रहेगी। डीप फ्रीज, काफी गहरी ठंडक में रखी रहेगी, कि सड़ न जाए। और जब भी आपमें कोई गड़बड़ होगी, तो पार्ट्स बदले जा सकेंगे।
उनका कहना है कि जब एक दफे हमें सूत्र मिल गया, तो हम एक जैसे हजार शरीर भी पैदा कर सकते हैं, कोई कठिनाई नहीं है। फिर क्या होगा! आत्मवादियों का क्या होगा?
जिन्हें आत्मा का कोई पता नहीं है, ऐसे बहुत-से आत्मवादी हैं। सच तो
यह है कि आत्मवादियों में बहुत-से ऐसे हैं, जिन्हें आत्मा का कोई पता नहीं। वे ऐसी बातें सुनकर बड़े बेचैन हो जाते हैं। उनका एक ही उत्तर होता कि यह कभी हो नहीं सकता। मैं उनसे कहता हूं, वे समझ लें, यह होगा। और आपके कहने से कि यह कभी हो नहीं सकता, सिर्फ इतना ही पता चलता है कि आपको कुछ पता नहीं है। यह होगा। पर बड़ी घबड़ाहट होती है कि अगर यह हो जाएगा, तो फिर आत्मा का क्या हुआ?

मैं आपसे कहता हूं, इससे आत्मा पर कोई आंच नहीं आती है। इससे सिर्फ इतना ही सिद्ध होता है कि मां-बाप के शरीर जो काम करते थे गर्भ में शरीर के निर्माण करने का, वह वैज्ञानिक प्रयोगशाला में वैज्ञानिक कर देंगे। आत्मा जैसे मां-बाप के गर्भ में प्रवेश करती थी, वैसे ही वैज्ञानिक प्रयोगशाला के शरीर में प्रवेश करेगी। इससे आत्मा का कोई संबंध नहीं है। इससे कुछ भी सिद्ध नहीं होता।
आज से हजार साल पहले हम बिजली नहीं जला सकते थे; हमारे पास पंखे नहीं थे, बल्ब नहीं थे। लेकिन आकाश में तो बिजली चमकती थी। आकाश में बिजली चमकती थी। बिजली सदा से थी। आज हमने बल्ब जला लिए, तो क्या हम सोचते हैं, जो बिजली हमारे बल्बों में चमक रही है, वह कोई दूसरी है? वह वही है, जो आकाश में चमकती थी। हमने अभी भी बिजली नहीं बनाई है! अभी भी हमने बिजली को प्रकट करने के उपाय ही बनाए हैं। बिजली हम कभी न बना सकेंगे। सिर्फ जहां-जहां बिजली अप्रकट है, वहां से हम प्रकट होने के उपाय खोज लेते हैं।
अगर किसी दिन हमने आदमी का शरीर बना लिया, जो कि बना ही लिया जाएगा, तो
उस दिन भी हम आदमी को नहीं बना रहे हैं, सिर्फ शरीर को बना रहे हैं। और जिस तरह आत्माएं गर्भ के शरीर में प्रवेश करती रही हैं, वे आत्माएं मनुष्य द्वारा निर्मित शरीर में भी प्रवेश कर पाएंगी। इसमें कोई अड़चन नहीं है, इसमें कोई कठिनाई भी नहीं है। शरीर विज्ञान से निर्मित हुआ कि प्रकृति से निर्मित हुआ, कोई भेद नहीं पड़ता। आत्मा अप्रकट चेतना है। प्रकट होने का माध्यम मिल जाए, आत्मा प्रकट हो जाती है।
लेकिन न तो चेतना का कोई निर्माण हो सकता है और न कोई विनाश हो सकता है। जब आप किसी की छाती में छुरा भोंकते हैं, तब भी आत्मा नहीं मरती। और जिस दिन प्रयोगशाला की लेबोरेटरी में हम परखनली में आदमी का शरीर बना लेंगे, उस दिन भी आत्मा नहीं बनती।
कृष्ण को पता नहीं था, तो उन्होंने इतना ही कहा, नैनं छिंदन्ति शस्त्राणि। उन्होंने कहा कि शस्त्र छेद देने से आत्मा नहीं मरती है। अब अगर गीता फिर से लिखनी पड़े, तो उसमें यह भी जोड़ देना चाहिए कि परखनली में शरीर बनाने से आत्मा नहीं बनती है। दोनों एक ही चीज के दो छोर हैं। एक ही तर्क के दो छोर हैं। न तो मारने से मरती है आत्मा, और न शरीर को बनाने से बनती है आत्मा।
यह जो अनिर्मित, अजन्मी, अजात, अमृत आत्मा है, कृष्ण कहते हैं, इसका कभी कोई विनाश नहीं है अर्जुन। यह तो वे एक सामान्य सत्य कहते हैं। पापी की आत्मा का भी कोई विनाश नहीं है।
दूसरी बात वे कहते हैं, लेकिन जिसने शुभ कर्म किए!
ध्यान रहे, अर्जुन ने पूछा है कि मैं कोशिश भी करूं और सफल न हो पाऊं, श्रद्धायुक्त कोशिश करूं और असफल हो जाऊं, क्योंकि मैं मेरे मन को जानता हूं; कितनी ही श्रद्धा से करूं, मन की चंचलता नहीं जाती है। श्रद्धा से भरा हुआ असफल हो जाए मेरा कर्म, तो मैं बिखर तो न जाऊंगा बादलों की भांति! मेरी नाव डूब तो न जाएगी किनारे को खोकर, दूसरे किनारे को बिना पाए!
कृष्ण कहते हैं, शुभ कर्म जिसने किया!
जरूरी नहीं कि शुभ कर्म सफल हुआ हो। किए की बात कर रहे हैं, इसको ठीक
से समझ लेना आप। शुभ कर्म जिसने किया--जरूरी नहीं कि सफल हो--ऐसे व्यक्ति की कोई दुर्गति नहीं है। सफलता की बात नहीं है।
एक आदमी ने शुभ कर्म करना चाहा, एक आदमी ने शुभ कर्म करने की कोशिश की,
एक आदमी ने शुभ की कामना की, एक आदमी के मन में शुभ का बीज अंकुरित हुआ, कोई हर्जा नहीं कि अंकुर न बना, कोई हर्जा नहीं कि वृक्ष न बना, कोई हर्जा नहीं कि फल कभी न आए, फूल कभी भी न लगे। लेकिन जिस आदमी ने शुभ का बीज भी बोया, अनअंकुरित, अंकुर भी न उठा हो, उस आदमी के भी जीवन में कभी दुर्गति नहीं होती है।
कृष्ण बहुत अदभुत बात कह रहे हैं। शुभ कर्म सफल हो, तब तो दुर्गति होती ही नहीं अर्जुन, लेकिन तू जैसा कहता है, अगर ऐसा भी हो जाए, कि तू शुभ की यात्रा पर निकले और तेरा मन साथ न दे; तेरी श्रद्धा तो हो, लेकिन तेरी शक्ति साथ न दे; तेरा भाव तो हो, लेकिन तेरे संस्कार साथ न दें; तू चाहता तो हो कि दूसरे किनारे पर पहुंच जाऊं, लेकिन तेरी पतवार कमजोर हो; तेरी

आकांक्षा तो दृढ़ हो कि निकल जाऊं उस पार, लेकिन तेरी नाव ही छिद्र वाली हो और तू बीच में डूब भी जाए; तो भी मैं तुझसे कहता हूं कि शुभ कर्म जिसने किया, उसकी दुर्गति कभी नहीं होती है।
शुभ कर्म जिसका सफल हो जाए, उसकी तो दुर्गति का सवाल ही नहीं है।
लेकिन शुभ कर्म जिसका सफल भी न हो पाए, उसकी भी दुर्गति नहीं होती। इससे दूसरी बात भी आपको कह दूं, तो जल्दी ख्याल में आ जाएगा।
अशुभ कर्म जिसने किया, सफल न भी हो पाए, तो भी दुर्गति हो जाती है।
मैंने आपकी हत्या करनी चाही, और नहीं कर पाया, तो भी दुर्गति हो जाती है।
नहीं कर पाया, इसका यह मतलब नहीं कि मैंने आपकी गर्दन दबाई और न दब पाई।
नहीं, आपकी गर्दन तक भी नहीं पहुंच पाया, तो भी दुर्गति हो जाती है। नहीं कर पाया, इसका यह मतलब नहीं कि मैंने आपसे कहा कि हत्या कर दूंगा, और नहीं की। नहीं, मैं आपसे कह भी नहीं पाया, तो भी दुर्गति हो जाती है। भीतर उठा विचार भी अशुभ का दुर्गति की यात्रा पर पहुंचा देता है। बीज बो दिया गया। गलत विचार भी काफी है दुर्गति के लिए। सही विचार भी काफी है दुर्गति
से बचने के लिए। क्यों? क्योंकि अंततः हमारा विचार ही हमारे जीवन का फल बन जाता है। फल कहीं बाहर से नहीं आते। हमारे ही भीतर उनकी ग्रोथ, उनका विकास होता है।
बुद्ध ने धम्मपद में कहा है कि तुम जो हो, वह तुम्हारे विचारों का फल हो। अगर दुखी हो, तो अपने विचारों में तलाशना, तुम्हें वे बीज मिल जाएंगे, जिन्होंने दुख के फल लाए। अगर पीड़ित हो, तो खोजना; तुम्हीं अपने हाथों को पाओगे, जिन्होंने पीड़ा के बीज बोए। अगर अंधकार ही अंधकार है तुम्हारे जीवन में, तो तलाश करना; तुम पाओगे कि तुम्हीं ने इस अंधकार का बड़ी मेहनत से निर्माण किया। हम अपने नर्कों का निर्माण बड़ी मेहनत से करते हैं! दोनों ही बातें सोच लेना।
बुरा कर्म असफल भी हो जाए, तो भी बुरा फल मिलता है। कहेंगे आप, फिर उसको असफल क्यों कहते हैं?
बुरा कर्म असफल भी हो जाए, पूरा न हो पाए, घटित न हो पाए, वस्तु के जगत में न आ पाए, घटना के जगत में उसकी कोई प्रतिध्वनि न हो पाए, सिर्फ आपमें ही खो जाए, सिर्फ स्वप्न बनकर ही शून्य हो जाए, तो भी, तो भी फल हाथ आता है-- दुखों का, पीड़ाओं का, कष्टों का। दुर्गति हो जाती है। अच्छे कर्म का ख्याल सफल न भी हो पाए... ।
बुद्ध एक कथा कहा करते थे। एक व्यक्ति आया। राजकुमार था। बुद्ध से उसने दीक्षा ली।
और बुद्ध के समय दीक्षा ने जो शान देखी दुनिया में, वह फिर पृथ्वी पर दुबारा नहीं हो सकी। बुद्ध और महावीर के वक्त बिहार ने जो स्वर्णयुग देखा संन्यास का, वह पृथ्वी पर फिर कभी नहीं हुआ। उसके पहले भी कभी नहीं हुआ था। अदभुत दिन रहे होंगे। बुद्ध चलते थे, तो पचास हजार संन्यासी बुद्ध के साथ चलते थे। जिस गांव में बुद्ध ठहर जाते थे, उस गांव की हवाओं का रुख बदल जाता था! पचास हजार संन्यासी जिस गांव में ठहर जाएं, उस गांव में बुरे कर्म होने बंद हो जाते थे, कठिन हो जाते थे, मुश्किल हो जाते थे। इतने शुभ धारणाओं से भरे हुए लोग!
कथाएं कहती हैं कि बुद्ध जहां से निकल जाएं, वहां चोरियां बंद हो जातीं, वहां हत्याएं कम हो जातीं। आज तो कथा लगती है बात, लेकिन मैं कहता हूं कि ऐसा हो जाता है। क्योंकि हत्याएं करता कौन है? आदमी करता है। आदमी है क्या सिवाय विचारों के जोड़ के! और बुद्ध जैसी कौंध बिजली की पास से गुजर जाए, तो आप वही के वही रह सकते हैं जो थे? आप नहीं रह सकते हैं वही के वही। इतनी बिजली कौंध जाए अंधेरे में, तो फिर आप वही नहीं रह जाते, जो आप थे। थोड़ी भी झलक मिल जाती है रास्ते की, तो आदमी सम्हलकर चलता है। अंधेरी रात है अमावस की, और बिजली चमक गई एक क्षण को, फिर घुप्प अंधेरा हो गया, तो भी फिर आप उतनी ही भूल-चूक से नहीं चलते, जितना पहले चल रहे थे। अंधेरा फिर उतना ही है, लेकिन एक झलक मिल गई मार्ग की।

बुद्ध जैसा आदमी पास से गुजरे, तो बिजली कौंध जाती है। और जिस गांव में पचास हजार भिक्षु और संन्यासी... । महावीर के साथ भी पचास हजार भिक्षु

और संन्यासी चलते। और दोनों करीब-करीब समसामयिक थे। पूरा बिहार संन्यास से भर गया। उसको नाम ही बिहार इसलिए मिल गया। बिहार का मतलब है, भिक्षुओं का विहार-पथ। जहां संन्यासी गुजरते हैं, ऐसी जगह। जहां संन्यासी गुजरते हैं, ऐसे रास्ते। जहां संन्यासी विचरते हैं, ऐसा स्थान। इसलिए तो उसका नाम बिहार हो गया।
बुद्ध एक गांव में ठहरे हैं। उस गांव के सम्राट के बेटे ने आकर दीक्षा ली। उस सम्राट के लड़के से कभी किसी ने न सोचा था कि वह दीक्षा लेगा। लंपट था, निरा लंपट था। बुद्ध के भिक्षु भी चकित हुए। बुद्ध के भिक्षुओं ने कहा, इस निरा लंपट ने दीक्षा ले ली? इस आदमी से कोई आशा नहीं करता था। यह हत्या कर सकता है, मान सकते हैं। यह डाका डाल सकता है, मान सकते हैं। यह किसी की स्त्री को उठाकर ले जा सकता है, मान सकते हैं। यह संन्यास लेगा, यह कोई सपना नहीं देख सकता था! इसने ऐसा क्यों किया? बुद्ध से लोग पूछने लगे। बुद्ध ने कहा, मैं तुम्हें इसके पुराने जन्म की कथा कहूं। एक छोटी-सी घटना ने आज के इसके संन्यास को निर्मित किया है--छोटी-सी घटना ने।
उन्होंने पूछा, कौन-सी है वह कथा? तो बुद्ध ने कहा... ।
और बुद्ध और महावीर ने उस साइंस का विकास किया पृथ्वी पर, जिससे लोगों
के दूसरे जन्मों में झांका जा सकता है; किताब की तरह पढ़ा जा सकता है।
तो बुद्ध ने कहा कि यह व्यक्ति पिछले जन्म में हाथी था, आदमी नहीं था।
और तब पहली दफा लोगों को ख्याल आया कि इसकी चाल-ढाल देखकर कई दफा हमें ऐसा लगता था कि जैसे हाथी की चाल चलता है। अभी भी, इस जन्म में भी उसकी चाल-ढाल, उसका ढंग एक शानदार हाथी का, मदमस्त हाथी का ढंग था।
बुद्ध ने कहा, यह हाथी था पिछले जन्म में। और जिस जंगल में रहता था, हाथियों का राजा था। तो जंगल में आग लगी। गर्मी के दिन थे, भयंकर आग लगी आधी रात को। सारे जंगल के पशु-पक्षी भागने लगे, यह भी भागा। यह एक वृक्ष के नीचे विश्राम करने को एक क्षण को रुका। भागने के लिए एक पैर ऊपर उठाया, तभी एक छोटा-सा खरगोश वृक्ष के पीछे से निकला और इसके पैर के नीचे की जमीन पर आकर बैठ गया। एक ही पैर ऊपर उठा, हाथी ने नीचे देखा, और उसे लगा कि अगर मैं पैर नीचे रखूं, तो यह खरगोश मर जाएगा। यह हाथी खड़ा-खड़ा आग में जलकर मर गया। बस, उस जीवन में इसने इतना-सा ही एक महत्वपूर्ण काम किया था, उसका फल आज इसका संन्यास है।
रात वह राजकुमार सोया। जहां पचास हजार भिक्षु सोए हों, वहां अड़चन और कठिनाई स्वाभाविक है। फिर वह बहुत पीछे से दीक्षा लिया था, उससे बुजुर्ग संन्यासी थे। जो बहुत बुजुर्ग थे, वे भवन के भीतर सोए। जो और कम बुजुर्ग थे, वे भवन के बाहर सोए। जो और कम बुजुर्ग थे, वे रास्ते पर सोए। जो और कम बुजुर्ग थे, वे और मैदान में सोए। उसको तो बिल्कुल आखिर में, जो गली राजपथ से जोड़ती थी बुद्ध के विहार तक, उसमें सोने को मिला। रात भर! कोई भिक्षु गुजरा, उसकी नींद टूट गई। कोई कुत्ता भौंका, उसकी नींद टूट गई। कोई मच्छर काटा, उसकी नींद टूट गई। रातभर वह परेशान रहा। उसने सोचा कि सुबह मैं इस दीक्षा का त्याग करूं। यह कोई अपने काम की बात नहीं।
सुबह वह बुद्ध के पास जाकर, हाथ जोड़कर खड़ा हुआ। बुद्ध ने कहा, मालूम है मुझे कि तुम किसलिए आए हो। उसने कहा कि आपको नहीं मालूम होगा कि मैं किसलिए आया हूं। मैं कोई साधना की पद्धति पूछने नहीं आया। क्योंकि कल मैंने दीक्षा ली, आज मुझे साधना की पद्धति पूछनी थी; उसके लिए मैं नहीं आया। बुद्ध ने कहा, वह मैं तुझसे कुछ नहीं पूछता। मुझे मालूम है, तू किसलिए आया। सिर्फ मैं तुझे इतनी याद दिलाना चाहता हूं कि हाथी होकर भी तूने जितना धैर्य दिखाया, क्या आदमी होकर उतना धैर्य न दिखा सकेगा?
उस आदमी की आंखें बंद हो गईं। उसको कुछ समझ में न आया कि हाथी होकर इतना धैर्य दिखाया! यह बुद्ध क्या कहते हैं, पागल जैसी बात! उसकी आंख बंद हो गई।
लेकिन बुद्ध का यह कहना, जैसे उसके भीतर स्मृति का एक द्वार खुल गया। आंख उसकी बंद हो गई। उसने देखा कि वह एक हाथी है। एक घने जंगल में आग लगी है। एक वृक्ष के नीचे वह खड़ा है। एक खरगोश उसके पैर के नीचे आकर बैठ गया। इस डर से वह भागा नहीं कि मेरा पैर नीचे पड़े, तो खरगोश मर जाए। और जब मैं भागकर बचना चाहता हूं, तो जैसा मैं बचना चाहता हूं, वैसा ही खरगोश भी बचना

चाहता है। और खरगोश यह सोचकर मेरे पैर के नीचे बैठा है कि शरण मिल गई। तो इस भोले से खरगोश को धोखा देकर भागना उचित नहीं। तो मैं जल गया।
उसने आंख खोली, उसने कहा कि माफ कर देना, भूल हो गई। रात और भी कोई कठिन जगह हो सोने की, तो मुझे दे देना। अब मैं याद रख सकूंगा। उतना छोटा-सा, उतना छोटा-सा काम, क्या मेरे जीवन में इतनी बड़ी घटना बन सकता है?
सब छोटे बीज बड़े वृक्ष हो जाते हैं। चाहे वे बुरे बीज हों, चाहे वे भले बीज हों, सब बड़े वृक्ष हो जाते हैं--सब बड़े वृक्ष हो जाते हैं।
हमें चूंकि कोई पता नहीं होता कि जीवन किस प्रक्रिया से चलता है, इसलिए कठिनाई होती है। हमें कोई पता नहीं होता कि किस प्रक्रिया से चलता है।
अभी यहां एक घटना घटी। एक मित्र और उनकी पत्नी संन्यास लेना चाहते थे। वे काफी सोच-विचार में पड़े हैं। घर में बातचीत चलती थी, उनके दामाद ने सुन ली। वे अभी सोच ही रहे हैं, दामाद आकर संन्यास ले गया! उससे मैंने पूछा कि तूने कब सोचा? उसने कहा, मैंने सोचा नहीं। मेरे सास और ससुर बात करते हैं तीन दिन से कि संन्यास लेना है। आपसे मिल भी गए हैं। सोच-विचार चलता है। मैं उनकी सुन-सुनकर, न मालूम क्या हुआ मुझे कि मैं चलकर ले लूं। वह आकर संन्यास ले भी गया! अभी सास-ससुर सोचते ही हैं!
क्या हुआ? और फिर इस व्यक्ति का मुझसे कोई ज्यादा संबंध नहीं। फिर इस व्यक्ति की मेरे विचारों से ज्यादा पहचान नहीं। इसके सास-ससुर ही मुझसे ज्यादा परिचित और मेरे विचारों के ज्यादा निकट हैं। इसको क्या हुआ? यह संन्यास का फूल इसकी जिंदगी में अचानक कैसे खिल गया?

यह बीज पिछले जन्मों का है। यह कहीं पड़ा रहता है, चुपचाप प्रतीक्षा करता है। जैसे बीज गिर जाता है, फिर वर्षा की प्रतीक्षा करता है। महीनों बीत जाते हैं धूल में, धंवास में उड़ते, हवाओं की ठोकरें खाते, फिर वर्षा की प्रतीक्षा चलती है। फिर कभी वर्षा आती है। शायद इन आठ महीनों में बीज भी भूल गया होगा कि मैं कौन हूं। बीज को पता भी कैसे होगा कि मेरे भीतर क्या पैदा हो सकता है। फिर वर्षा आती है, बीज जमीन में दब जाता है और टूटकर अंकुर हो जाता है, तभी बीज को पता चलता है। बीज भी चौंकता होगा; चौंककर कहता होगा कि मैं सूखा-साखा सा, मुझमें इतनी हरियाली छिपी थी! मैं सूखा- साखा सा, कंकड़-पत्थर मालूम पड़ता था देखने पर, मुझमें ऐसे-ऐसे फूल छिपे थे! बीज को भी भरोसा न आता होगा।
हम भी सब बीज हैं और लंबी यात्राओं के बीज हैं।
तो कृष्ण कहते हैं, शुभ का इरादा भी, शुभ कर्म की श्रद्धा भी, दुर्गति में नहीं ले जाती है, कभी नहीं ले जाती है। सिर्फ श्रद्धा भी! जरूरी नहीं कि एक आदमी ने अच्छा काम किया हो; इतना भी काफी है कि सोचा हो; इतना भी काफी है कि कोई सोचता हो, तो उसे सहयोग दिया हो। इतना भी काफी है कि कोई कर रहा हो, तो प्रशंसा से उसकी तरफ देखा हो, तो भी वह आदमी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता है।
महावीर जब किसी को दीक्षा देते थे, तो कुछ बातें कहलवाते थे। वे कहते
थे कि तुम आश्वासन दो कि बुरा कर्म नहीं करोगे। वे कहते थे, तुम आश्वासन दो कि कोई बुरा कर्म करता होगा, तो तुम उसे प्रोत्साहन नहीं दोगे। आश्वासन दो कि कोई बुरा कर्म करता होगा, तो तुम उसकी तरफ प्रशंसा से देखोगे भी नहीं। वह आदमी पूछता, मैं बुरा कर्म नहीं करूंगा। लेकिन ये दूसरी बातें क्या हैं, कि मैं प्रोत्साहन भी न दूंगा! कि मैं प्रशंसा से देखूंगा भी नहीं!
एक आदमी रास्ते पर किसी को पीट रहा है। आप नहीं पीट रहे; आपका कोई संबंध नहीं। आप सिर्फ रास्ते से गुजरते हैं। लेकिन आपकी आंख की एक झलक उस पीटने वाले को कह जाती है कि मेरी पीठ थपथपाई गई। बस, पाप हो गया, बीज बो दिया गया।
ठीक महावीर ऐसे ही कहते थे, अच्छा कर्म करना। कोई अच्छा कर्म करता हो,
तो प्रोत्साहन देना। कोई अच्छा कर्म करता हो, कुछ न बन सके, तो अपनी आंख से, अपने इशारे से सहारा देना।

लेकिन एक आदमी को संन्यास लेना हो, तो आप सब मिलकर क्या करेंगे? आप कहेंगे, क्या कर रहे हो! पागल हो गए हो? बुद्धि ठिकाने है? आपको पता नहीं कि वह आदमी तो संन्यास की भावना करके भी न भी ले पाए, तो भी सदगति की व्यवस्था कर रहा है। और आप अकारण, आप कोई न थे बीच में, आप कह रहे हैं, पागल हो गए हो? दिमाग खराब हो गया? बुद्धि खो दी? आपको पता भी नहीं है कि आप व्यर्थ ही बीज बो रहे हो, जो आपको भटकाने का कारण हो जाएंगे।
लेकिन हमें ख्याल ही नहीं होता कि हम क्या कर रहे हैं! हमें ख्याल ही नहीं होता।
एक मित्र संन्यास लेना चाहते हैं। रातभर रोते रहे हैं कल पत्नी के चरणों में बैठकर। लेकिन पत्नी सख्त है। वह कहती है कि मर जाओ, वह बेहतर। सास कहती है, मर जाओ, वह बेहतर। शराब पीने लगो, जुआ खेलो, कुछ भी करो--चलेगा; संन्यास का नाम मत लेना। और इस संन्यास में न वे घर छोड़कर जा रहे हैं, न वे पत्नी को छोड़कर जा रहे हैं, न वे बच्चों को छोड़कर जा रहे हैं। सिर्फ संन्यास के भाव को ही तो ले रहे हैं, और क्या कर रहे हैं? कोई जंगल नहीं जा रहे हैं, कोई पहाड़ नहीं जा रहे हैं। किसी को छोड़ नहीं रहे, किसी को नंगा नहीं छोड़ रहे, भूखा नहीं छोड़ रहे; काम-धंधा करेंगे।
पुराने संन्यास से नया संन्यास कठिन है। क्योंकि संन्यासी भी हो जाएंगे; पति भी होंगे, पिता भी होंगे, सारी जिम्मेवारी होगी, सारा दायित्व होगा। कोई दायित्व तोड़ना नहीं है। क्योंकि मैं मानता हूं, वह भी हिंसा है। क्योंकि मैं मानता हूं, किसी को बीच में छोड़कर जाना, वह भी दुख देना है। उतना भी क्यों देना? उसको खेल समझकर पूरा कर देना कि ठीक है। उसको नाटक समझकर पूरा कर देना। संन्यास को भीतर साधते चले जाना, संसार को बाहर पूरा कर देना।
लेकिन पत्नी कहती है, और कुछ भी कर लो, चलेगा। यह नहीं चल सकता। क्या, मामला क्या है? हमें पता ही नहीं कि वह व्यक्ति तो रातभर रोकर उतना फायदा ले लिया, जितना कि संन्यासी को मिलना चाहिए। लेकिन इस पत्नी ने क्या किया? इसका तो कुछ लेना-देना न था! इसने करीब-करीब एक संन्यासी की हत्या से जो भी पुण्य मिल सकता है--पुण्य कह रहा हूं, ताकि पत्नी नाराज न हो जाए। यहीं कहीं मौजूद होगी! उसने नाहक पुण्य बटोर लिया। जमाने बदले। वक्त बहुत अदभुत थे कभी। महावीर का एक संस्मरण आपसे कहूं।
एक युवक बैठा है स्नानगृह में। उसकी पत्नी उबटन लगाती है। उबटन लगाते वक्त, स्नान करवाते वक्त, अपने पति को वह कहती है कि मेरे भाई ने संन्यास लेने का विचार किया है। वह पति पूछता है, कब लेगा तुम्हारा भाई संन्यास? उसकी पत्नी कहती है, एक महीने बाद का तय किया है। वह पति ऐसे ही मजाक में पूछता है कि एक महीना जीएगा, पक्का है? पत्नी कहती है, किस तरह की अपशकुन की बातें बोलते हो अपने मुंह से! यह शोभा नहीं देता। ऐसा सोचते ही क्यों हो? उसने कहा, सोचता नहीं हूं, लेकिन एक महीना जीएगा, यह पक्का है? ये ढंग संन्यास लेने के नहीं हैं। क्योंकि जो आदमी स्थगित करता है, उसके भीतर वह जो संन्यास-विरोधी कर्मों का भार है, भारी है।
वह युवक ऐसे ही कह रहा है। तो उसकी पत्नी ने सिर्फ मजाक में और व्यंग्य में कहा कि अगर तुमको संन्यास लेना हो, तो क्या करोगे? आधी उबटन लगी थी शरीर पर, आधी धुल गई थी। वह युवक नग्न था, खड़ा हो गया। पत्नी ने कहा, कहां जाते हो? उसने दरवाजा खोला। पत्नी ने कहा, कहां निकलते हो? लोग क्या कहेंगे? नग्न हो तुम! वह दरवाजे के बाहर हो गया। पत्नी ने कहा, तुम्हारा दिमाग तो ठीक है न! पर उसने कहा, मैंने संन्यास ले लिया। बात खतम हो गई। महावीर उसकी कथा जगह-जगह कहते थे।
उसने कहा कि संन्यास भी कहीं पोस्टपोन किया जाता है! कल लेंगे? अगर जो आदमी मौत को पोस्टपोन कर सकता हो, उसको संन्यास पोस्टपोन करने का हक है; बाकी किसी को हक नहीं है।
कृष्ण कहते हैं, सदभाव भी! करने की कामना भी!
अभी बंबई में एक वृद्ध महिला को संन्यास लेना था। एक दिन पहले मरने के
वह मुझसे मिलकर गई और उसने कहा कि अगले जन्मदिन पर मैं ले लूं, तो हर्ज तो नहीं? मैंने कहा, मुझे कोई हर्ज नहीं। पर मेरा क्या पक्का कि मैं बचूंगा। उससे मैंने नहीं कहा; वह नाराज हो जाए! उसने कहा कि नहीं-नहीं, ऐसी आप क्यों

बात करते हैं! आप तो जरूर बचेंगे। मैंने कहा, समझ लो कि मैं बच भी गया, लेकिन तुम बचोगी, इसका कोई पक्का? उसने कहा, अभी हुआ ही क्या है! अभी मेरी सत्तर साल की ही तो उम्र है। सत्तर की तो मेरी उम्र ही है, उसने कहा। अभी तो मैं सब तरह से स्वस्थ हूं! मैंने कहा, मान लो यह भी हुआ कि तुम भी बच गईं, मैं भी बच गया, लेकिन तुम संन्यास लोगी ही सालभर बाद, तुम्हारा मन संन्यास लेने का रहेगा, इसका कुछ पक्का? उसने कहा, क्यों नहीं रहेगा? मैंने कहा, मान लो तुम्हारा भी रहा, मेरा देने का न रहा, तो तुम क्या करोगी? उसने कहा, आप भी कहां की बातें करते हैं! अगले जन्मदिन का पक्का रहा। मैंने कहा, अगर अगला जन्मदिन पक्का है, तो ठीक।
लेकिन दूसरे दिन सुबह ही, मेरी सभा में ही आते हुए, सभा-भवन के सामने
ही कार से टकराकर बेहोश हो गई। आठ-दस घंटे बाद होश में आई, तो मैं उसे देखने अस्पताल गया। मैंने कहा, होश में आ गईं, तो अच्छा हुआ। क्या ख्याल है संन्यास के बाबत? उसने कहा, मुझे ठीक तो हो जाने दो। आप भी कैसे आदमी हो! यह भी नहीं पूछा कि चोट कहां लगी! एकदम पूछते हैं, संन्यास! मैंने कहा, क्या पता, जब तक मैं पूछूं, तुम चली जाओ। क्योंकि कल तो कोई पक्का न था इस एक्सिडेंट का। यह हो गया न आज! जन्मदिन अब उतना पक्का है, जितना कल था? उसने कहा, संदिग्ध मालूम होता है! फिर मैंने कहा, कितनी देर करनी है? उसने कहा कि कम से कम चौबीस घंटे। मैं जरा ठीक हो जाऊं, तो फिर आपसे कहूं। मैंने कहा, जैसी तेरी मर्जी। पर मैंने कहा कि एक काम करना, चौबीस घंटे सोचती रहना कि संन्यास लेना है, संन्यास लेना है।
वह तो मर गई छः घंटे बाद। चौबीस घंटे पूरे नहीं हुए। उसकी बहू मेरे पास दौड़ी आई कि अब क्या होगा! वह तो मर गई! तो मैंने कहा कि मैं उसे मरी हुई हालत में संन्यास देता हूं। उसने कहा, यह कैसा संन्यास है? मैंने कहा कि उसके मन में अगर जरा भी भाव रह गया होगा, जरा भी भाव मरते क्षण में कि संन्यास लेना है, संन्यास लेना है--तो भाव ही तो सब कुछ है। तो बीज तो निर्मित हो गया। उसकी आगे की यात्रा पर उसके फल कभी भी आ सकते हैं।
कृष्ण कहते हैं, सदकर्म की, शुभ कर्म की दिशा में किया गया विचार भी, शुभ कर्म की दिशा में उठाया गया एक कदम भी; शुभ कर्म की दिशा, चाहे पूरी हो पाए या न हो पाए, तो भी कभी दुर्गति, कभी बुरी गति नहीं होती है।

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते।। 41।।
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्।। 42।।
किंतु वह योगभ्रष्ट पुरुष पुण्यवानों के लोकों को अर्थात स्वर्गादिक उत्तम लोकों को प्राप्त होकर, उनमें बहुत वर्षों तक वास करके, शुद्ध आचरण वाले श्रीमान पुरुषों के घर में जन्म लेता है।
अथवा वैराग्यवान पुरुष उन लोकों में न जाकर ज्ञानवान योगियों के ही कुल में जन्म लेता है; परंतु इस प्रकार का जो यह जन्म है संसार में, निःसंदेह अति दुर्लभ है।

योग-भ्रष्ट पुरुष! अर्जुन जो पूछ रहा है, वह योग-भ्रष्ट के लिए ही पूछ रहा है। वह कह रहा है कि संसार को मैं छोड़ दूं, भोग को मैं छोड़ दूं और योग सध न पाए। या सधे भी, तो बिखर जाए; थोड़ा बने भी, तो हाथ छूट जाए। थोड़ा पकड़ भी पाऊं और खो जाए सहारा हाथ से, भ्रष्ट हो जाऊं बीच में। तो फिर मैं टूट तो न जाऊंगा? खो तो न जाऊंगा? नष्ट तो न हो जाऊंगा?
कृष्ण कहते हैं उसे, योग-भ्रष्ट हुए पुरुष की आगे की गति के संबंध में दो-तीन बातें कहते हैं। वे कीमती हैं। और एक बहुत गहरे विज्ञान से संबंधित हैं। थोड़ा-सा समझें।
एक, कृष्ण कहते हैं, वैसा व्यक्ति, वैसी चेतना, जो थोड़ा साधती है योग
की दिशा में, लेकिन पूर्णता को नहीं उपलब्ध होती... । पूर्णता को उपलब्ध हो जाए, तो मुक्त हो जाती है। पूर्णता को उपलब्ध न हो पाए, तो अपरिसीम सुखों को उपलब्ध होती है। इस अपरिसीम सुखों की जो संभावनाओं का जगत है, उसका नाम स्वर्ग है। बहुत सुखों को उपलब्ध होती है।

लेकिन ध्यान रहे, सभी सुख चुक जाने वाले हैं। सभी सुख चुक जाने वाले हैं। सभी सुख समाप्त हो जाने वाले हैं। और कितने ही बड़े सुख हों, और कितने ही लंबे मालूम पड़ते हों, जब वे चुक जाते हैं, तो क्षण में बीत गए, ऐसे ही मालूम पड़ते हैं।
तो वैसी चेतना बहुत सुखों को उपलब्ध होती है अर्जुन! लेकिन फिर वापस संसार में लौट आती है, जब सुख चुक जाते हैं।
एक विकल्प यह है कि बहुत-से सुखों को पाए वैसी चेतना, और वापस लौट आए
उस जगत में, जहां से गई थी। दूसरी संभावना यह है कि वैसी चेतना उन घरों में जन्म ले ले, जहां ज्ञान का वातावरण है। उन घरों में जन्म ले ले, जहां योग की हवा है, मिल्यू, योग का विचारावरण है। जहां तरंगें योग की हैं, और जहां साधना के सोपान पर चढ़ने की आकांक्षाएं प्रबल हैं। और जहां चारों ओर संकल्प की आग है, और जहां ऊर्ध्वगमन के लिए निरंतर सचेष्ट लोग हैं, उन परिवारों में, उन कुलों में जन्म ले ले। तो जहां से छूटा पिछले जन्म में योग, अगले जन्म में उसका सेतु फिर जुड़ जाए।
दो विकल्प कृष्ण ने कहे। एक तो, स्वर्ग में पैदा हो जाए। स्वर्ग का अर्थ है, उन लोकों में, जहां सुख ही सुख है, दुख नहीं है। इन दोनों बातों में कई रहस्य की बातें हैं। एक तो यह कि जहां सुख ही सुख होता है, वहां बड़ी बोर्डम, बड़ी ऊब पैदा हो जाती है। इसलिए देवताओं से ज्यादा ऊबे हुए लोग कहीं भी नहीं हैं। जहां सुख ही सुख है, वहां ऊब पैदा हो जाती है।
इसलिए कथाएं हैं कि देवता भी जमीन पर आकर जमीन के दुखों को चखना चाहते हैं, जमीन के सुखों को भोगना चाहते हैं, क्योंकि यहां दुख मिश्रित सुख हैं। अगर मीठा ही मीठा खाएं, तो थोड़ी-सी नमक की डिगली मुंह पर रखने का मन हो आता है। बस, ऐसा ही। सुख ही सुख हों, तो थोड़ा-सा दुख करीब-करीब चटनी जैसा स्वाद दे जाता है। स्वर्ग एकदम मिठास से भरे हैं, सुख ही सुख हैं। जल्दी ऊब जाता है। लौटकर संसार में वापस आ जाना पड़ता है। दुर्गति तो नहीं होती, लेकिन समय व्यर्थ व्यतीत हो जाता है।
सुखों में गया समय, व्यर्थ गया समय है। उपयोग नहीं हुआ उसका, सिर्फ गंवाया गया समय है। हालांकि हम सब यही समझते हैं कि सुख में बीता समय, बड़ा अच्छा बीता। दुख में बीता समय, बड़ा बुरा गया। लेकिन कभी आपने ख्याल किया कि दुख में बीता समय क्रिएटिव भी हो सकता है, सृजनात्मक भी हो सकता है; उससे जीवन में कोई क्रांति भी घटित हो सकती है। लेकिन सुख में बीता समय, सिर्फ नींद में बीता हुआ समय है, उससे कभी कोई क्रांति घटित नहीं होती। सुख में बीते समय से कभी कोई क्रिएटिव एक्ट, कोई सृजनात्मक कृत्य पैदा नहीं होता।
दुख तो मांज भी देता है, और दुख निखार भी देता है, और दुख भीतर साफ भी करता है, शुद्ध भी करता है; सुख तो सिर्फ जंग लगा जाता है। इसलिए सुखी लोगों पर एकदम जंग बैठ जाती है। इसलिए सुखी आदमी, अगर ठीक से देखें, तो न तो बड़े कलाकार पैदा करता, न बड़े चित्रकार पैदा करता, न बड़े मूर्तिकार पैदा करता। सुखी आदमी सिर्फ बिस्तरों पर सोने वाले लोग पैदा करता। कुछ नहीं, नींद! वक्त काट देने वाले लोग पैदा करता है। शराब पीने वाले, संगीत सुनकर सो जाने वाले, नाच देखकर सो जाने वाले--इस तरह के लोग पैदा करता है।
अगर हम दुनिया के सौ बड़े विचारक उठाएं, तो दो-तीन प्रतिशत से ज्यादा सुखी परिवारों से नहीं आते। क्या बात है? क्या सुख जंग लगा देता है चित्त पर?
लगा देता है। उबा देता है। और सुख ही सुख, तो कहीं गति नहीं रह जाती; ठहराव हो जाता है, स्टेगनेंसी हो जाती है।
स्वर्ग एक स्टेगनेंट स्थिति है।
बर्ट्रेंड रसेल ने तो कहीं मजाक में कहा है कि स्वर्ग का जो वर्णन है, उसे देखकर मुझे लगता है कि नर्क में जाना ही बेहतर होगा। कोई पूछ रहा था रसेल को कि क्यों? तो उसने कहा, नर्क में कुछ करने को तो होगा; स्वर्ग में तो कहते हैं, कल्पवृक्ष हैं; करने को भी कुछ नहीं है! करना भी चाहेंगे, तो न कर सकेंगे। सोचेंगे, और हो जाएगा! तो वहां कुछ अपने लायक नहीं दिखाई पड़ता है। नर्क में कुछ तो करने को होगा! दुख से लड़ तो सकेंगे कम से कम। दुख से

लड़ेंगे, तो भी तो कुछ निखार होगा। और वहां तो सुख सिर्फ बरसता रहेगा ऊपर से, तो थोड़े दिन में सड़ जाएंगे।
कृष्ण कहते हैं, स्वर्ग चला जाता है वैसा व्यक्ति, जो योग से भ्रष्ट होता है अर्जुन। सुखों की दुनिया में चला जाता है। शुभ करना चाहा था, नहीं कर पाया, तो भी इतना तो उसे मिल जाता है कि सुख मिल जाते हैं। लेकिन वापस लौट आना पड़ता है, वहीं चौराहे पर।
संसार चौराहा है। अगर वहां से मोक्ष की यात्रा शुरू न हुई, तो वापस-वापस लौटकर आ जाना पड़ता है। वह क्रास रोड्स पर हैं हम। जैसे कि मैं एक रास्ते के चौराहे पर खड़ा होऊं। अगर बाएं चला जाऊं, तो फिर दाएं जाना हो, तो फिर चौराहे पर वापस आ जाना पड़े। संसार चौराहा है। अगर स्वर्ग चला जाऊं, फिर मोक्ष की यात्रा करनी हो, तो चौराहे पर वापस आ जाना पड़े।
तो वे लोग, जिन्होंने योग की साधना भी सुख पाने के लिए ही की हो, स्वर्ग चले जाते हैं। लेकिन जिन्होंने योग की साधना मुक्त होने के लिए की हो, लेकिन असफल हो गए हों, भ्रष्ट हो गए हों, वे उन घरों में जन्म ले लेते हैं, जहां इस जीवन में छूटा हुआ क्रम अगले जीवन में पुनः संलग्न हो जाए। वे उन योग के वातावरणों में पुनः पैदा हो जाते हैं, जहां से पिछली यात्रा फिर से शुरू हो सके।
इसलिए अर्जुन को कृष्ण कहते हैं, तू आश्वासन रख। तू भयभीत न हो। यदि मोक्ष न भी मिला, तो स्वर्ग मिल सकेगा। अगर स्वर्ग भी न मिला, तो कम से कम उस कुल में जन्म मिल सकेगा, जहां से तूने छोड़ी थी पिछली यात्रा, तू पुनः शुरू कर सके। भयभीत न हो। घबड़ा मत। इस किनारे को छोड़ने की हिम्मत कर। अगर वह किनारा न भी मिला, तो भी इस किनारे से बुरा नहीं होगा। और कुछ भी हो जाए, यह किनारा वापस मिल जाएगा, इसलिए घबड़ा मत। इसको छोड़ने में भय मत कर। मैंने कहा सुबह आपसे कि कृष्ण जैसा शिक्षक अर्जुन की बुद्धि को समझकर बात करता है। अगर अर्जुन ने बुद्ध से पूछा होता कि अगर मैं भ्रष्ट हो जाऊं, तो कहां पहुंचूंगा? तो पता है आपको, बुद्ध क्या कहते? जहां तक संभावना तो यह है कि बुद्ध कुछ कहते ही नहीं, तू जान। लेकिन अगर हम बहुत ही खोजबीन करें बुद्ध साहित्य में, तो सिर्फ एक घटना मिलती है। बुद्ध की नहीं मिलती, बोधिधर्म की मिलती है, बुद्ध के एक शिष्य की।
वह चीन गया। चीन के सम्राट ने उसका स्वागत किया। और चीन के सम्राट ने उसका स्वागत करके कहा, बोधिधर्म, हे महाभिक्षु, तुमसे मैं कुछ बातें जानना चाहता हूं। मैंने हजारों बुद्ध के मंदिर बनाए, लाखों प्रतिमाएं स्थापित कीं। मुझे इसका क्या फल मिलेगा? बोधिधर्म ने कहा, कुछ भी नहीं। सम्राट ने कहा, कुछ भी नहीं! आप समझे, मैंने क्या कहा? मैंने अरबों रुपए खर्च किए, इसका फल मुझे क्या मिलेगा? बोधिधर्म ने कहा, कुछ भी नहीं। क्योंकि तूने फल की आकांक्षा की, उसी में तूने सब खो दिया। वह सब व्यर्थ हो गया तेरा किया हुआ। दो कौड़ी का हो गया तेरा किया हुआ। उसने कहा, क्या बातें कर रहे हैं? मैंने इतना पवित्र कार्य किया, सच होली वर्क, ऐसा पवित्र कार्य! बोधिधर्म ने कहा, तू मूढ़ है। देअर इ.ज नथिंग ऐज होली, एवरीथिंग इ.ज जस्ट एंप्टी--कोई पवित्र-अवित्र नहीं है; सब खाली है, सब शून्य है।
सम्राट ने कहा, आप कृपा करके किसी और राज्य में पदार्पण करें। क्योंकि या तो आप ऐसी बात कह रहे हैं, जो हमारी बुद्धि में नहीं पड़ती; और या फिर आपकी बुद्धि ही ठीक नहीं है। आप न मालूम क्या कह रहे हैं! बोधिधर्म ने कहा, मैं लौट जाता हूं। लेकिन ध्यान रख, आखिर में मैं ही काम पडूंगा।
वह लौट गया। नौ-दस वर्ष बाद जब सम्राट वू की मृत्यु हो रही थी, तब उसे बड़ी घबड़ाहट होने लगी। उसे लगा, अब मेरा क्या होगा? मैंने इतने मंदिर बनाए जरूर; मैंने इतने भिक्षुओं को भोजन कराया जरूर; मैंने इतनी मूर्तियां बनाईं जरूर; मैंने इतने शास्त्र छपवाए जरूर; लेकिन मेरी आकांक्षा तो यही थी कि लोग कहें कि तू कितना महान धर्मी है! मेरे अहंकार के सिवाय और तो मैंने कुछ न चाहा! ये सारे मंदिर, ये सारे तीर्थ, ये सारी मूर्तियां, मेरे अहंकार के आभूषण से ज्यादा कहां हैं? तब वह घबड़ाया। मौत करीब आने लगी, तब वह घबड़ाया। तब वह चिल्लाया, हे बोधिधर्म! अगर तुम कहीं हो, तो लौट आओ; क्योंकि शायद तुम्हीं ठीक कहते थे। अगर मैं तुम्हारी सुन लेता, तो शायद

मैं कुछ कर सकता, जो मुझे मुक्त कर देता। ये तो मैंने नए बंधन ही निर्मित किए हैं।
अगर बुद्ध होते, तो अर्जुन को ऐसा न कहते। लेकिन बुद्ध और अर्जुन की मुलाकात नहीं हो सकती थी। वह इंपासिबल है, वह असंभव है। क्योंकि बुद्ध को युद्ध के मैदान पर नहीं लाया जा सकता था। और अर्जुन बुद्ध के बोधिवृक्ष के नीचे हाथ जोड़कर, नमस्कार करके, जिज्ञासा करने नहीं जा सकता था। वे टाइप अलग थे। अर्जुन जंगल में किसी गुरु के पास जिज्ञासा करने जाता, इसकी संभावना कम थी। अगर जाता भी कहीं बुद्ध के पास, तो वृक्ष के ऊपर बैठकर पूछता, नीचे नहीं।
कृष्ण को भी उसके अहंकार को बीच-बीच में तृप्ति देनी पड़ती है। कहते हैं, हे महाबाहो, हे विशाल बाहुओं वाले अर्जुन! तो अर्जुन बड़ा फूलता है। ठीक है। कृष्ण से भी सुनने को राजी हो गया इसीलिए कि कृष्ण सारथी हैं उसके, मित्र हैं, सखा हैं; कंधे पर हाथ रख सकता है; चाहे तो कह सकता है कि सब व्यर्थ की बातें कर रहे हो! इसलिए सुनने को राजी हो गया।
तो बुद्ध और अर्जुन की मुलाकात नहीं हो सकती थी, वह असंभव दिखती है। अर्जुन जाता न बुद्ध के पास, और बुद्ध को युद्ध के मैदान पर न लाया जा सकता था।
इसलिए कृष्ण अर्जुन को जो कह रहे हैं, पूरे वक्त अर्जुन को देखकर कह रहे हैं। वे कह रहे हैं, बहुत सुख मिलेंगे अर्जुन, अगर तू अच्छे काम करते हुए मर जाता है असफल, तो स्वर्गों में पैदा हो जाएगा।
अगर बुद्ध से वह कहता कि स्वर्गों में पैदा होऊंगा, तो वे कहेंगे, स्वर्ग सपने हैं। स्वर्ग कहीं हैं ही नहीं। भटकना मत। जिसने स्वर्ग चाहा, वह नरक में पहुंच गया। स्वर्ग की चाह नरक में ले जाने का मार्ग है, बुद्ध कहते, यह बात ही मत कर। अर्जुन का तालमेल नहीं बैठ सकता था बुद्ध से। कृष्ण एक-एक कदम अर्जुन को... इसको कहते हैं, परसुएशन। अगर गीता में हम कहें कि इस जगत में परसुएशन की, फुसलाने की, एक व्यक्ति को इंच-इंच ऊपर उठाने की जैसी मेहनत कृष्ण ने की है, वैसी किसी शिक्षक ने कभी नहीं की है। सभी शिक्षक सीधे अटल होते हैं। वे कहते हैं, ठीक है, यह बात है। खरीदना है? नहीं खरीदना, बाहर हो जाओ।
शिक्षक सख्त होते हैं। शिक्षक को मित्र की तरह पाना बड़ा मुश्किल है। अर्जुन को शिक्षक मित्र की तरह मिला है, सखा की तरह मिला है। उसके कंधे पर हाथ रखकर बात चल रही है। इसलिए कई दफा वह भूल में भी पड़ जाता है और व्यर्थ के सवाल भी उठाता है।
एक फायदा होता, बुद्ध जैसा आदमी मिलता, अगर बोधिधर्म जैसा मिलता, तो बोधिधर्म तो हाथ में डंडा रखता था। वह तो अर्जुन को एकाध डंडा मार देता खोपड़ी पर, कि तू कहां की फिजूल की बकवास कर रहा है!
लेकिन कृष्ण उसकी बकवास को सुनते हैं, और प्रेम से उसे फुसलाते हैं,
और एक-एक इंच उसे सरकाते हैं। वे कहते हैं, कोई फिक्र न कर, अगर नहीं भी मिला वह किनारा, तो बीच में टापू हैं स्वर्ग नाम के, उन पर तू पहुंच जाएगा। वहां बड़ा सुख है। खूब सुख भोगकर, नाव में बैठकर वापस लौट आना। अगर तुझे सुख न चाहिए हो, तो बीच में गुरुजनों के टापू हैं, जिन पर गुरुजन निवास करते हैं; उनके गुरुकुल हैं; तू उनमें प्रवेश कर जाना। वहां तू अपनी साधना को आगे बढ़ा लेना।
लेकिन एक आकांक्षा कृष्ण की है कि तू यह किनारा तो छोड़, फिर आगे देख लेंगे। नहीं कोई टापू हैं, नहीं कोई बात है। तू किनारा तो छोड़। एक दफे तू किनारा छोड़ दे, किसी भी कारण को मानकर अभी जरा साहस जुट जाए, तू भरोसा कर पाए और यात्रा पर निकल जाए--तो आगे की यात्रा तो प्रभु सम्हाल लेता है। रामकृष्ण जगह-जगह कहे हैं, तुम नाव तो खोलो, तुम पाल तो उड़ाओ। हवाएं तो
ले जाने को खुद ही तत्पर हैं। लेकिन तुम नाव ही नहीं खोलते हो, तुम पाल ही नहीं खोलते! तुम किनारे से ही जंजीरें बांधे हुए, नाव को बांधे हुए पड़े हो और चिल्ला रहे हो, उस पार कैसे पहुंचूंगा? उस पार कैसे पहुंचूंगा? क्या है विधि? क्या है मार्ग? जरा नाव तो खोलो, तुम जरा पाल तो खोलो। हवाएं तत्पर हैं तुम्हें ले जाने को।

प्रभु तो प्रत्येक को मोक्ष तक ले जाने को तत्पर है। लेकिन हम किनारा इतने जोर से पकड़ते हैं! लोग कहते हैं कि प्रभु जो है, वह ओम्नीपोटेंट है, सर्वशक्तिशाली है। मुझे नहीं जंचता। हम जैसे छोटी-छोटी ताकत के लोग भी किनारे को पकड़कर पड़े रहते हैं, हमको खींच नहीं पाता। हमारी पोटेंसी ज्यादा ही मालूम पड़ती है।
नहीं, लेकिन उसका कारण दूसरा है। असल में जो ओम्नीपोटेंट है, जो सर्वशक्तिशाली है, वह शक्ति का उपयोग कभी नहीं करता। शक्ति का उपयोग सिर्फ कमजोर ही करते हैं। सिर्फ कमजोर ही शक्ति का उपयोग करते हैं। जो पूर्ण शक्तिशाली है, वह उपयोग नहीं करता। वह प्रतीक्षा करता है कि हर्ज क्या है! आज नहीं कल; इस युग में नहीं अगले युग में; इस जन्म में नहीं अगले जन्म में; कभी तो तुम नाव खोलोगे, कभी तो तुम पाल खोलोगे, तब हमारी हवाएं तुम्हें उस पार ले चलेंगी। जल्दी क्या है? जल्दी भी तो कमजोरी का लक्षण है। इतनी जल्दी क्या है? समय कोई चुका तो नहीं जाता!
लेकिन परमात्मा का समय भला न चुके, आपका चुकता है। वह अगर जल्दी न करे, चलेगा। उसके लिए कोई भी जल्दी नहीं है, क्योंकि कोई टाइम की लिमिट नहीं है, कोई सीमा नहीं है। लेकिन हमारा तो समय सीमित है और बंधा है। हम तो चुकेंगे। वह प्रतीक्षा कर सकता है अनंत तक, लेकिन हमारी तो सीमाएं हैं, हम अनंत तक प्रतीक्षा नहीं कर सकते हैं।
लेकिन बड़ा अदभुत है। हम भी अनंत तक प्रतीक्षा करते हुए मालूम पड़ते हैं। हम भी कहते हैं कि बैठे रहेंगे। ठीक है। जब तू ही खोल देगा नाव, जब तू ही पाल को उड़ा देगा, जब तू ही झटका देगा और खींचेगा... ।
और कई दफे तो ऐसा होता है कि झटका भी आ जाए, तो हम और जोर से पकड़ लेते हैं, और चीख-पुकार मचाते हैं कि सब भाई-बंधु आ जाओ, सम्हालो मुझे। कोई ले जा रहा है! कोई खींचे लिए जा रहा है!
कृष्ण अर्जुन को देखकर ये उत्तर दिए हैं, यह ध्यान में रखना। धीरे- धीरे वे ये उत्तर भी पिघला देंगे, गला देंगे। वह राजी हो जाए छलांग के लिए, बस इतना ही।
आज इतना। कल सुबह हम बात करेंगे।
लेकिन अभी जाएंगे नहीं। पांच मिनट, एक छलांग के लिए आप भी राजी हों। थोड़ा-सा किनारा छोड़ें। थोड़ी ये कीर्तन की हवाएं आएंगी, आपकी नाव के पाल में भी भर जाएं और आपको भी दूसरे किनारे की तरफ थोड़ा-सा ले जाएं, तो अच्छा है।
साथ भी दें। ताली भी बजाएं। गीत भी गाएं। डोलें भी। आनंदित हों। पांच मिनट के लिए सब भूल जाएं।

गीता दर्शन, भाग तीन
गीता दर्शन अध्याय 6
बीसवां प्रवचन

आंतरिक संपदा

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन।। 43।।
और वह पुरुष वहां उस पहले शरीर में साधन किए हुए बुद्धि के संयोग को अर्थात समत्वबुद्धि योग के संस्कारों को अनायास ही प्राप्त हो जाता है। और हे कुरुनंदन, उसके प्रभाव से फिर अच्छी प्रकार भगवत्प्राप्ति के निमित्त यत्न करता है।

जीवन में कोई भी प्रयास खोता नहीं है। जीवन समस्त प्रयासों का जोड़ है,
जो हमने कभी भी किए हैं। समय के अंतराल से अंतर नहीं पड़ता है। प्रत्येक किया हुआ कर्म, प्रत्येक किया हुआ विचार, हमारे प्राणों का हिस्सा बन जाता है। हम जब कुछ सोचते हैं, तभी रूपांतरित हो जाते हैं; जब कुछ करते हैं, तभी रूपांतरित हो जाते हैं। वह रूपांतरण हमारे साथ चलता है।
हम जो भी हैं आज, हमारे विचारों, भावों और कर्मों का जोड़ हैं। हम जो भी हैं आज, वह हमारे अतीत की पूरीशृंखला है। एक क्षण पहले तक, अनंत-अनंत जीवन में जो भी किया है, वह सब मेरे भीतर मौजूद है।
कृष्ण कह रहे हैं, इस जीवन में जिसने साधा हो योग, लेकिन सिद्ध न हो पाए अर्जुन, तो अगले जीवन में अनायास ही, जो उसने साधा था, उसे उपलब्ध हो जाता है। अनायास ही! उसे पता भी नहीं चलता। उसे यह भी पता नहीं चलता कि यह मुझे क्यों उपलब्ध हो रहा है। इसलिए कई बार बड़ी भ्रांति होती है। और इस जगत में सत्य अनायास मिल सकता है, इस तरह के जो सिद्धांत प्रतिपादित हुए हैं, उनके पीछे यही भ्रांति काम करती है।
कोई व्यक्ति अगर पिछले जन्म में उस जगह पहुंच गया है, जहां पानी निन्यानबे डिग्री पर उबलने लगे, और एक डिग्री कम रह गया है, वह अचानक कोई छोटी-मोटी घटना से इस जीवन में परम ज्ञान को उपलब्ध हो सकता है। आखिरी तिनका रह गया था ऊंट पर पड़ने को और ऊंट बैठ जाता है। पर एक छोटा-सा तिनका, अगर आप कभी वजन तौलते हैं तराजू पर रखकर, तो आपको पता है, एक छोटा-सा तिनका कम हो, तो तराजू का पलड़ा ऊपर रहता है। एक तिनका बढ़ा, तो तराजू का पलड़ा नीचे बैठ जाता है; दूसरा ऊपर उठ जाता है। एक तिनके की भी प्रतिष्ठा होती है। एक तिनके का क्या मूल्य है! इसे ऐसा समझने की कोशिश करें।
एक साध्वी, झेन साध्वी वर्षों तक अपने गुरु के पास थी। सब तरह के प्रवचन सुने, सब तरह के शास्त्र समझे, सब तरह के सिद्धांतों को जान लिया। लेकिन बस, कहीं कोई चीज अटकी थी और द्वार नहीं खुलते थे। ऐसा लगता था, चाबी हाथ में है, फिर भी ताला अनखुला ही रह जाता था। ऐसा लगता था कि मैं जानती हूं, फिर भी कुछ अंतराल था, कोई बाधा थी, कुछ दीवाल थी। कितनी ही बारीक और महीन पर्त थी, पर उस पार नहीं निकल पाती थी।
गुरु से बार-बार पूछती है कि कौन-सी बाधा है? कैसे टूटेगी?
गुरु कहता है, तू प्रतीक्षा कर। बहुत ही छोटी-सी बाधा है, अनायास ही टूट जाएगी। और बाधा इतनी छोटी है कि तू प्रयास शायद न कर पाए। बाधा बहुत छोटी है, अनायास ही टूट जाएगी। थोड़ी प्रतीक्षा कर; थोड़ी प्रतीक्षा कर। वर्ष पर वर्ष बीत गए। वह वृद्ध भी हो गई। फिर एक दिन उसने कहा कि कब टूटेगी वह बाधा? गुरु ने आकाश की तरफ देखा और कहा कि इस पखवाड़े में शायद चांद के पूरे होने तक टूट जाए। पांच-सात दिन बचे थे चांद की पूरी रात आने को, पूर्णिमा आने को। और पूर्णिमा की रात बाधा टूटी। और ऐसी अनायास टूटी कि झेन फकीरों के इतिहास में वह कहानी बन गई।
सांझ सूरज डूब गया। चांद निकल आया। रोशनी उसकी फैलने लगी। गुरु ने, कोई दस बजे होंगे रात, उस साध्वी को कहा, मुझे प्यास लगी है, तू जाकर कुएं से पानी ले आ। जैसा जापान में करते हैं, यहां भी करते हैं। एक बांस की डंडी पर दोनों तरफ बर्तन लटका देते हैं और कुएं से पानी लाते हैं।

बांस की डंडी पर लटके हुए मिट्टी के बर्तनों को लेकर कुएं पर पानी भरने गई। पानी भरकर लौटती थी। सोचती थी कि पूर्णिमा भी आ गई। चांद भी पूरा हो गया। आधी रात भी हुई जाती है। और गुरु ने कहा था कि शायद इस बार चांद के पूरे होते-होते बात हो जाए। अभी तक हुई नहीं। और कोई आशा भी नहीं दिखाई पड़ती! और अब तो सोने का वक्त भी आ गया। अब गुरु को पानी पिलाकर, और मैं सो जाऊंगी। कब घटेगी यह बात!
और तभी अचानक उसकी बांस की डंडी टूट गई। उसके दोनों बर्तन जमीन पर गिरे; फूट गए; पानी बिखर गया। और घटना घट गई। उसने एक गीत लिखा है कि जब बर्तन नीचे गिरा, तब मैं बर्तन में देखती थी कि चांद का प्रतिबिंब बन रहा है--पानी में। फिर मिट्टी का घड़ा था; गिरा, फूटा। घड़ा भी फूट गया। पानी बिखर गया। चांद का प्रतिबिंब कहां खो गया, कुछ पता न चला। और घड़े के फूटते ही कोई चीज मेरे भीतर फूट गई। और जैसे चांद का प्रतिबिंब खो गया, ऐसे ही मैं खो गई। घड़े के फूटते ही, कुछ मेरे भीतर भी फूट गया। और जैसे चांद का प्रतिबिंब खो गया पानी में, ऐसे ही मैं खो गई। ऊपर देखा तो चांद था, भीतर देखा तो परमात्मा था। घड़े के बर्तन का प्रतिबिंब टूट गया, चांद नहीं टूट गया।
हम परमात्मा के प्रतिबिंब से ज्यादा नहीं हैं। और हमारे अहंकार का घड़ा है, और राग का पानी है, उसमें सब प्रतिबिंब बनता है वहां।
दौड़ी हुई गुरु के पास पहुंची, और कहा, कभी सोचा भी न था कि घड़े के फूटने
से ज्ञान होगा! गुरु ने कहा, घड़े के फूटने से ही होता है। घड़ा कैसे फूटेगा, यही सवाल है। और तेरा घड़ा तो बहुत कमजोर था, फूटने को फूटने को ही था। कभी भी फूट सकता था। कोई ऐसे निमित्त की जरूरत थी, जिसमें कि वह जो तेरे भीतर आखिरी तिनका रखना है, वह पड़ जाए। वजन तो पूरा था, पलड़ा नीचे बैठने को था। बस, आखिरी तिनका, वह एक घड़े के फूटने से हो गया।
बहुत लोगों के जीवन में अनायास घटना घटती है।
एक बहुत अदभुत साधक और मिस्टिक, एडमंड बक ने एक किताब लिखी है, कास्मिक कांशसनेस। वह बड़ा हैरान है। न उसने कभी कुछ साधा, न कभी कोई प्रार्थना की, न कभी कोई पूजा की, न प्रभु में विश्वास करता है। अचानक एक दिन रात, अंधेरी रात में जंगल से निकल रहा है। एकांत है, झींगुरों की आवाज के सिवाय कोई आवाज नहीं है। धीमी सी चांदनी है। हवा के झोंके वृक्षों में आवाज कर रहे हैं।
अचानक, घड़ा भी नहीं फूटा--इस महिला के मामले में तो घड़ा फूटा, इसलिए घटना घटी--अचानक, बक ने लिखा है कि बस, न मालूम क्या हुआ। मेरी समझ में न पड़ा कि क्या हुआ, लगा कि जैसे मैं मर रहा हूं। बैठ गया। एक क्षण को ऐसा लगा, सिंकिंग, जैसे कोई पानी में डूब रहा हो, ऐसा डूबता जा रहा हूं। बहुत घबड़ाहट हुई। चिल्लाने की कोशिश की। लेकिन जैसा कभी-कभी सपने में हम सबको हो जाता है। चिल्लाने की कोशिश करते हैं, आवाज नहीं निकलती। हाथ उठाने की कोशिश करते हैं, हाथ नहीं उठता। तो बक ने लिखा है, न हाथ उठे, न चिल्लाने की आवाज निकले। फिर यह भी ख्याल आया, कोई सुनने को भी झींगुरों के अतिरिक्त वहां है नहीं। आवाज करने से भी क्या होगा? कब आंखें बंद हो गईं। कब मैं नीचे गिर पड़ा। लगा कि मर गया।
कब मुझे होश आया, कोई आधी रात हो गई, और मैंने देखा कि मैं दूसरा आदमी हूं। वह आदमी जा चुका जो कल तक था। वह संदेह करने वाला, वह अश्रद्धालु, वह अविश्वासी, वह नास्तिक नहीं है। कोई और ही मेरे भीतर आ गया है। वृक्ष के पत्ते-पत्ते में परमात्मा दिखाई पड़ रहा है। झींगुरों की आवाज ब्रह्मनाद हो गई। और बक जीवनभर कहता रहा कि मेरी समझ के बाहर है कि उस दिन क्या हुआ! अनायास!
कृष्ण कहते हैं, पिछले जन्मों की यात्रा, अगर थोड़ी-बहुत अधूरी रह गई हो, कहीं हम चूक गए हों, तो किसी दिन अनायास, किसी जन्म में अनायास बीज फूट जाता है; दीया जल जाता है; द्वार खुल जाता है। और कई बार ऐसा होता है कि इंचभर से ही हम चूक जाते हैं। और इंचभर से चूकने के लिए कभी-कभी जन्मों की यात्रा करनी पड़ती है।
कोलेरेडो में अमेरिका में जब पहली दफा सोने की खदानें मिलीं, तो एक बहुत अदभुत घटना घटी, मुझे प्रीतिकर रही है। जब पहली दफा सोना मिला

अमेरिका के कोलेरेडो में--और आज सबसे ज्यादा सोना कोलेरेडो में है, सबसे ज्यादा सोने की खदानें हैं--तो किसानों को ऐसे ही खेत में काम करते हुए सोना मिलना शुरू हो गया। पहाड़ों पर लोग चढ़ते, और सोना मिल जाता। लोगों ने जमीनें खरीद लीं और अरबपति हो गए।
एक आदमी ने सोचा कि छोटी-मोटी जमीन क्या खरीदनी है; एक पूरा पहाड़ खरीद लिया। सब जितना पैसा था, लगा दिया। कारखाने थे, बेच दिए। पूरा पहाड़ खरीद लिया। खरबपति हो जाने की सुनिश्चित बात थी। जब छोटे-छोटे खेत में से खोदकर लोग सोना निकाल रहे थे, उसने पूरा पहाड़ खरीद लिया।
लेकिन आश्चर्य, पहाड़ पर खुदाई के बड़े-बड़े यंत्र लगवाए, लेकिन सोने का कोई पता नहीं! वह पहाड़ जैसे सोने से बिल्कुल खाली था। एक टुकड़ा भी सोने का नहीं मिला। कोई तीन करोड़ रुपया उसने लगाया था पहाड़ खरीदने में, बड़ी मशीनरी ऊपर ले जाने में। लोग कुदालियों से खोदकर सोना निकाल रहे थे कोलेरेडो में। सारी दुनिया कोलेरेडो की तरफ भाग रही थी। और वह आदमी बर्बाद हो गया कोलेरेडो में जाकर। उसकी हालत ऐसी हो गई कि मशीनों को पहाड़ से उतारकर नीचे लाने के पैसे पास में न बचे कि मशीनें बेच सके। ठप्प हो गया।
अखबारों में खबर दी उसने कि मैं पूरा पहाड़ मय मशीनरी के बेचना चाहता हूं। उसके मित्रों ने कहा, कौन खरीदेगा! सारे अमेरिका में खबर हो गई है कि उस पहाड़ पर कुछ नहीं है। पर उसने कहा कि शायद कोई आदमी मिल जाए, जो मुझसे ज्यादा हिम्मतवर हो। कोई इतना पागल नहीं है, लोगों ने कहा। लेकिन उसने कहा, एक कोशिश कर लूं। क्योंकि मैं सोचता हूं, कोई मुझसे हिम्मतवर मिल सकता है।
और एक आदमी मिल गया, जिसने तीन करोड़ रुपए दिए और पूरा पहाड़ और पूरी मशीनरी खरीदी। जब उसने खरीदी, तो उसके घर के लोगों ने कहा कि तुम बिल्कुल पागल हो गए हो। दूसरा आदमी बर्बाद हो गया; अब तुम बर्बाद होने जा रहे हो! उस आदमी ने कहा, जहां तक पहाड़ खोदा गया है, वहां तक सोना नहीं है, यह साफ है। इसलिए मामला काफी हो चुका है। अब सोना नीचे हो सकता है। जहां तक खोदा गया है, वहां तक नहीं है। हम भी इस झंझट से बचे। वह आदमी मेहनत कर चुका, जो बेकार मेहनत थी। अब आगे मेहनत करनी है। बहुत-सा तो कट चुका है पहाड़। कौन जाने नीचे सोना हो! लोगों ने कहा कि इस झंझट में मत पड़ो। और जमीनें बहुत हैं, जिन पर ऊपर ही सोना है। पर उस आदमी ने वह पहाड़ खरीद ही लिया।
और आश्चर्य की बात कि पहले दिन की खुदाई में ही कोलेरेडो की सबसे बड़ी सोने की खदान मिली--सिर्फ एक फुट मिट्टी की पर्त और। एक फुट मिट्टी की पर्त और! और कोलेरेडो का सबसे बड़ा सोने का भंडार उस पहाड़ पर मिला। और वह आदमी कोलेरेडो का सबसे बड़ा खरबपति हो गया।
एक फुट! कभी-कभी एक इंच से भी चूक जाते हैं। कभी-कभी आधा इंच से भी चूक जाते हैं।
तो कृष्ण कहते हैं, भय न करना अर्जुन! कितना ही चूक जाओ, जो तूने किया है, वह निष्फल नहीं जाएगा। जितना तूने किया है, वह निष्फल नहीं जाएगा। जितना तूने किया है, वह अगले जन्म में पुनः वहीं से यात्रा शुरू होगी। समय का व्यवधान जरूर पड़ जाएगा। शायद तू समझ भी न पाए, जब अनायास घटना घटे। शायद तुझे प्रतीति भी न हो सके कि यह क्या हो रहा है। लेकिन जो तेरे साथ है, जो तेरा किया हुआ है, वह तेरे साथ होगा।
योग की दिशा में किया गया कोई भी प्रयत्न कभी खोता नहीं। प्रभु की दिशा में उठाया गया कोई भी कदम व्यर्थ नहीं जाता है। उतनी यात्रा हो जाती है। हम दूसरे हो जाते हैं। प्रभु की दिशा में सोचा गया विचार भी व्यर्थ नहीं जाता है, हम उतने तो आगे बढ़ ही जाते हैं।
आश्वासन दे रहे हैं अर्जुन को कि तू इन बातों में मत पड़। तू इस भांति
मत सोच कि कहीं पूरा न हो सका, तो क्या होगा! जितना भी होगा, उसकी भी अपनी अर्थवत्ता है। जितना भी तू कर लेगा, उतना भी काफी है।
एक मित्र मेरे पास आए। वे कहते हैं कि उनका नब्बे प्रतिशत मन संन्यास लेने का है, दस प्रतिशत मन संन्यास लेने का नहीं है। तो मैंने कहा, फिर क्या ख्याल है? उन्होंने कहा कि तो अभी नहीं लेता हूं। तो मैंने कहा कि थोड़ा सोच रहे हैं, कि न लेना भी एक निर्णय है। और दस प्रतिशत के पक्ष में निर्णय ले रहे हैं, और नब्बे प्रतिशत के पक्ष में निर्णय नहीं ले रहे हैं।

वे कहते हैं कि नब्बे प्रतिशत संन्यास लेने का मन है, दस प्रतिशत संदेह मन को पकड़ता है, तो अभी नहीं लेता हूं। पर उनको पता नहीं है कि यह भी निर्णय है। न लेना भी निश्चित निर्णय है। यह निर्णय दस प्रतिशत मन के पक्ष में लिया जा रहा है। और नब्बे प्रतिशत मन के पक्ष में जो निर्णय है, वह नहीं लिया जा रहा है। यह नब्बे प्रतिशत मन, मालूम होता है, उनका नहीं है; दस प्रतिशत मन उनका है।
मेरा मतलब समझे! यह नब्बे प्रतिशत मन, मालूम पड़ता है, उनका नहीं है, कम
से कम इस जन्म का नहीं है। अन्यथा यह कैसे हो सकता था कि आदमी नब्बे प्रतिशत को छोड़े और दस प्रतिशत को पकड़े! दस प्रतिशत उनका है, इस जन्म का है। नब्बे प्रतिशत उनके पिछले जन्मों की यात्रा का है। उससे उन्हें कोई कांशस संबंध नहीं मालूम पड़ता कि वह मेरा है। वह ऐसा लगता है कि कोई मेरे भीतर नब्बे प्रतिशत कह रहा है कि ले लो। लेकिन मैं रुक रहा हूं। मैं दस प्रतिशत के पक्ष में हूं। वे ज्यादा देर न रुक पाएंगे, क्योंकि वह नब्बे प्रतिशत धक्के मारता ही रहेगा। और दस प्रतिशत कितनी देर जीत सकता है? कैसे जीतेगा?
लेकिन समय का व्यवधान पड़ जाएगा। जन्म भी खो सकते हैं। और वह नब्बे प्रतिशत प्रतीक्षा करेगा; और हर जन्म में धक्का देगा। हर दिन, हर रात, हर क्षण वह धक्के मारेगा। क्योंकि वह नब्बे प्रतिशत आपका बड़ा हिस्सा है, जिसे आप नहीं पहचान पा रहे हैं कि आपका है। और यह दस प्रतिशत, जिसको आप कह रहे हैं मेरा, यह सिर्फ इस जन्म का संग्रह है।
ध्यान रहे, पिछले जन्मों और इस जन्म के बीच में जो संघर्ष है, उसी के कारण मनुष्य के कांशस और अनकांशस में फासला पड़ता है। फ्रायड को अंदाज नहीं है, जुंग को अंदाज नहीं है। क्योंकि जुंग और फ्रायड की बहुत गहरी पकड़ नहीं है। बहुत ऊपर-ऊपर उनकी खोज है। फ्रायड के पास जो उत्तर है, वह बहुत साफ नहीं है, कि मनुष्य के चेतन और अचेतन में फर्क क्यों पड़ता है? व्हाइ देअर इ.ज डिस्टिंक्शन? यह चेतन और अचेतन जैसे दो हिस्से क्यों हैं मनुष्य के मन के?
फ्रायड इतना ही कह सकता है कि अचेतन वह हिस्सा है, जिसको हमने दबा दिया। लेकिन क्यों दबा दिया? और फ्रायड यह भी जानता है कि वह अचेतन हिस्सा नौ गुना बड़ा है चेतन से। तो एक हिस्सा नौ गुने को दबा सकेगा? इसमें बड़ी भूल मालूम पड़ती है। फ्रायड कहता है कि अचेतन नौ गुना बड़ा है। अनकांशस नौ गुना बड़ा है कांशस से। जैसे कि बर्फ का टुकड़ा पानी में तैरता हो, तो जितना नीचे डूब जाता है, उतना अचेतन है, नौ गुना ज्यादा। जरा-सा ऊपर निकला रहता है, उतना चेतन है। अगर नौ गुना अचेतन वही हिस्सा है जो आदमी ने दबा दिया है, तो बड़े आश्चर्य की बात है कि चेतन छोटी-सी ताकत बड़ी ताकत को दबा पाती है? नहीं; फ्रायड की थोड़ी भूल मालूम पड़ती है। यह बात सच है, यह दमन की बात में थोड़ी सच्चाई है। लेकिन अचेतन असल में वह हिस्सा है मन का, जो हमारे अतीत जन्मों से निर्मित होता है; और चेतन वह हिस्सा है हमारे मन का, जो हमारे इस जन्म से निर्मित होता है।
इस जन्म के बाद हमने जो अपना मन बनाया है, शिक्षा पाई है, संस्कार पाए हैं, धर्म, मित्र, प्रियजन, अनुभव, उनका जो जोड़ है, वह हमारा मन है, कांशस माइंड है। और उसके पीछे छिपी हुई जो अंतर्धारा है हमारे अचेतन की, अनकांशस माइंड की, वह हमारा अतीत है। वह हमारे अतीत जन्मों का समस्त संग्रह है। निश्चित ही, वह ज्यादा ताकतवर है, लेकिन ज्यादा सक्रिय नहीं है। इन दोनों बातों में फर्क है। ज्यादा ताकत से जरूरी नहीं है कि सक्रियता ज्यादा हो। कम ताकत भी ज्यादा सक्रिय हो सकती है। असल में जो हमने इस जन्म में बनाया है, वह ऊपर है; वह हमारे मन का ऊपरी हिस्सा है, जो हमने अभी बनाया है। और जो हमारे अतीत का है, वह उतना ही गहरा है। जो हमने जितने गहरे जन्मों में बनाया है, उतना ही गहरा दबा है।
जैसे कोई आदमी के घर में धूल की पर्त जमती चली जाए वर्षों तक, तो आज सुबह जो धूल उसके घर में आएगी, वह ऊपर होगी, दिखाई पड़ेगी। और अगर हवा का झोंका आएगा, तो वर्षों की नीचे जो जमी धूल है, उसको पता भी नहीं चलेगा। ऊपर की हवा ही सक्रिय होती दिखाई पड़ेगी, ऊपर की ही धूल उड़ने लगेगी। नीचे की धूल तो निश्चिंत विश्राम करेगी। वह बहुत गहरी बैठ गई है; बहुत गहरी; अब वहां

कोई झोंका नहीं पहुंचता है। कभी-कभी कोई झोंका वहां तक पहुंच जाता है। जब हम कहते हैं कि कोई विचार हमारे जीवन में प्रवेश करता है, कोई प्रेरणा, कोई इंसपेरेशन, कोई घटना, कोई व्यक्ति, कोई शब्द, कोई ध्वनि, कोई चोट जब हमारे जीवन में गहरी प्रवेश करती है और हमारी पर्तों को फाड़कर भीतर चली जाती है, तब उस भीतर की आवाज आती है।
उन मित्र को नब्बे प्रतिशत की जो आवाज आ रही है, वह किसी गहरी चोट के कारण से आ रही है। लेकिन वे चोट को झुठलाने में लगे हैं। वे बड़े दुख में पड़ गए हैं। दुख भारी है। और मन में विचार आता है कि आत्महत्या कर लें।
ध्यान रहे, जब किसी आदमी के जीवन में आत्महत्या का विचार आता है, वही क्षण संन्यास में रूपांतरित किया जा सकता है। तत्काल! क्योंकि संन्यास का अर्थ है, आत्मरूपांतरण।
जब आदमी आत्महत्या करना चाहता है, तो उसका मतलब यह है कि इस आत्मा से
ऊब गया है, इससे ऊब गया है, इसको खतम कर दूं। इसके दो ढंग हैं। या तो शरीर को काट दो; इससे आत्मा खतम नहीं होती, सिर्फ धोखा पैदा होता है। वही आत्मा नए शरीर में प्रवेश करके यात्रा शुरू कर देगी। दूसरा जो सही रास्ता है, वह यह है कि इस आत्मा को ट्रांसफार्म करो, रूपांतरित करो, नया कर लो। शरीर को मारने से कुछ न होगा, आत्मा को ही बदल डालो, वह योग है।
इसलिए एक बहुत मजे की बात आपको कहूं, जिस देश में ज्यादा संन्यासी होते हैं, उस देश में आत्महत्याएं कम होती हैं। और जिस देश में संन्यासी कम होते हैं, उसमें उतनी ही मात्रा में आत्महत्याएं बढ़ जाती हैं।
आप जानकर यह हैरान होंगे कि अगर अमेरिका और भारत की आत्महत्या और संन्यासियों का आंकड़ा बिठाया जाए, तो बराबर अनुपात होगा, बराबर, एक्जेक्ट! जितने लोग यहां ज्यादा मात्रा में संन्यास लेते हैं, उतने ज्यादा लोग वहां आत्महत्या करते हैं। क्योंकि आत्महत्या का क्षण दो तरफ जा सकता है। वह एक क्राइसिस है, एक संकट है। या तो शरीर को मिटाओ, या स्वयं को मिटाओ। और ये दो दिशाएं हैं।
शरीर को मिटाने से कुछ भी नहीं होता। सिर्फ तीस-पैंतीस साल के बाद आप वहीं फिर खड़े हो जाएंगे। एक व्यर्थ की लंबी यात्रा होगी। गर्भाधारण होगा। फिर बच्चे बनेंगे। फिर शिक्षा होगी। फिर उपद्रव सब चलेगा। और फिर एक दिन आप पाएंगे कि ठीक यही क्षण आ गया, आत्महत्या का। हां, तीस-चालीस साल बाद आएगा। यह इतना समय व्यर्थ जाएगा।
संन्यास का अर्थ है, आ गई वह घड़ी, जहां हम जैसे हैं, उससे हम तृप्त न रहें। जैसे हम हैं, अब उसी को आगे खींचने में कोई प्रयोजन न रहा। उसमें बदलाहट जरूरी है। तो स्वयं को बदल डालो।
लेकिन नब्बे प्रतिशत मन कहता है, बदल डालो। पर वह पर्त गहरी है, नीचे
की है, उसको आप अपनी नहीं मान पाते। वह जो ऊपर की पर्त है, उससे आपकी पहचान है। अभी ताजी है। वह आपको अपनी लगती है। मन का ऐसा नियम है।
मन का ऐसा नियम है, जो ऊपर है, वह अपना मालूम पड़ता है। क्योंकि मन ऊपर-ऊपर जीता है, सतह पर, लहरों पर। जो गहरा है, वह अपना नहीं मालूम पड़ता है। इसलिए बहुत दफे भ्रांति होती है। जब बहुत गहरे से आवाज आती है--वह स्वयं के ही भीतर से आती है--जब बहुत गहरे से आवाज आती है, तो साधक को लगता है, कोई ऊपर से बोल रहा है। परमात्मा बोल रहा है।
परमात्मा कभी नहीं बोलता। परमात्मा तो पूरा अस्तित्व है, वह कभी नहीं बोलता, वह सदा मौन है। लेकिन स्वयं के ही इतने भीतर से आवाज आती है कि वह लगती है, किसी और की आवाज है, इतने दूर से आती मालूम पड़ती है। हम ही अपने से इतने दूर चले गए हैं। अपने घर से हम इतने दूर चले गए हैं कि अपने ही घर के भीतर से आई हुई आवाज कहीं दूर, किसी और की आवाज मालूम पड़ती है। वह अपनी ही आवाज है, अपनी ही गहरे की आवाज है, अपनी ही गहराइयों की आवाज है। पर हमारी आइडेंटिटी, हमारा तादात्म्य होता है ऊपर की पर्त से, उसको हम कहते हैं, मैं।
कृष्ण कहते हैं, अर्जुन, तू भयभीत न हो। जो तू कर सकता है इस जीवन में, कर। अगले जीवन में वह तुझे अनायास मिल जाएगा।
इसलिए भी कहते हैं, यह भी मैं आपको याद दिला दूं, कि अगर कृष्ण जैसा आदमी यह बात कह दे, तो यह बहुत गहरे प्रवेश कर जाती है। और संभावना यह है--

और इसका एक नियम और एक सूत्र और एक व्यवस्था और एक तकनीक है। कृष्ण क्यों कहते हैं यह बात? महावीर क्यों कहते हैं? बुद्ध क्यों कहते हैं? क्यों दोहराते हैं ये सारे लोग कि तुम जितना करोगे, वह अगले जन्म में अनायास तुम्हें मिल जाएगा?
वे इसलिए कहते हैं कि बुद्ध, महावीर या कृष्ण जैसे व्यक्ति के संपर्क में आपके मन की जो ऊपरी पर्त है, वह खुल जाती है और भीतर तक आप सुन पाते हैं। उनकी मौजूदगी कैटेलिटिक एजेंट का काम करती है। उनकी मौजूदगी में, आपके भीतर जो दरवाजे आप नहीं खोल पाते, खुल जाते हैं। उनकी मौजूदगी आपको बल दे जाती है, शक्ति दे जाती है, साहस दे जाती है, भरोसा दे जाती है।
तो कृष्ण जब यह कह रहे हैं कि इस जन्म का जो है अगले जन्म में अनायास मिल जाएगा, यह बात अगर अर्जुन के मन में बैठ जाए, तो अगले जन्म में जब अनायास मिलेगा, तो उसे याद भी आ जाएगी। इसलिए भी यह बात कही जाती है। तब अगले जन्म में वह याद कर सकेगा कि निश्चित ही, आज अनायास यह घट रहा है, यह कृष्ण ने कहा था। वह पहचान पाएगा; ये शब्द उसके भीतर बैठ जाएंगे।
शब्दों की भी गहराइयां हैं। व्यक्तियों की गहराइयों के साथ शब्दों की गहराइयां बढ़ती हैं। जब कोई आदमी कंठ से बोलता है, तो आपके कान से गहरा कभी नहीं जाता है। जब कोई आदमी हृदय से बोलता है, तो आपके हृदय तक जाता है। जब कोई आदमी प्राण से बोलता है, तो आपके प्राण तक जाता है। जब कोई आदमी आत्मा से बोलता है, तो आपकी आत्मा तक जाता है। और जब कोई व्यक्ति अपने परमात्मा से बोलता है, तो आपके परमात्मा तक जाता है।
गहराई उतनी ही होती है आपके भीतर, जितनी कि बोलने वाले की गहराई होती है। बोलने वाले की गहराई से ज्यादा आपके भीतर नहीं जा सकता। हां, बोलने वाले की गहराई तक भी न जाए, यह हो सकता है। यह हो सकता है कि कोई आत्मा से बोले, लेकिन आपके कानों तक जाए, क्योंकि आपके कानों के आगे मार्ग ही बंद है।
तो ध्यान रखना, बोलने वाले की गहराई से ज्यादा गहरा आपके भीतर नहीं जा सकता, लेकिन बोलने वाले की गहराई से कम गहरा आपके भीतर जा सकता है।
इसलिए पुराने दिनों में एक व्यवस्था थी कि गुरु के पास शिष्य बहुत निकट में रहे। निकट में रखने का और कोई कारण न था; सिर्फ यही कारण था कि किसी क्षण में, किसी मोमेंट में शिष्य जब इतने तालमेल में आ जाए गुरु से, इतनी हार्मनी और ट्यूनिंग में आ जाए कि गुरु अपनी गहरी से गहरी बात उससे कह सके। वह क्षण कब आएगा, कहा नहीं जा सकता।
आप चौबीस घंटे प्रेम के क्षण में नहीं होते। चौबीस घंटे में कोई क्षण होता है, जब आपको लगता है, आप ज्यादा प्रेमपूर्ण हैं। चौबीस घंटे में कई क्षण ऐसे होते हैं, जब आपको लगता है कि आप ज्यादा क्रोधपूर्ण हैं।
भिखारी सुबह आपके दरवाजे पर भीख मांगते हैं, वे जानते हैं कि सुबह दया
की ज्यादा संभावना है सांझ की बजाय। सांझ को भिखारी भीख मांगने नहीं आता, क्योंकि वह जानता है कि सांझ तक आप दिनभर भीख मांगकर खुद इतने परेशान हो गए हैं कि आपसे कोई आशा नहीं की जा सकती है। सुबह आप आ रहे हैं एक दूसरे लोक से, स्वयं के भीतर की गहराइयों से, जहां मालिक का निवास है, जहां प्रभु रहता है। सुबह-सुबह के क्षण में आपमें भी थोड़ी मालकियत होती है, थोड़ा स्वामित्व होता है। आप भी भिखारी नहीं होते। सांझ तक, बाजार के धक्के, दफ्तर की दौड़, सड़कों की चोट, सब उपद्रव सहकर आप भिखारी की हालत में पहुंच जाते हैं। सांझ आपकी हैसियत नहीं होती कि दे सकें।
इसलिए सांझ, दुनिया में किसी कोने में भीख नहीं मांगी जाती। भिखारी
भी समझ गए हैं लंबे अनुभव से मनसविज्ञान, कि आदमी की बुद्धि कब काम कर सकती है दया के लिए।
ठीक ऐसे ही गहराई के क्षण भी होते हैं। इसलिए गुरु, पुराना गुरु चाहता
था कि शिष्य निकट रहे, बहुत निकट रहे। ताकि किसी ऐसे क्षण में, जब भी उसे लगे कि अभी द्वार खुला है, वह कुछ डाल दे। और वह भीतर की गहराई तक पहुंच जाए।
कृष्ण को लगा है कि यह क्षण अर्जुन का गहरा है। क्यों? क्योंकि अर्जुन पहली दफा उत्सुक हो रहा है कुछ करने को। भय उसका उत्सुकता की वजह से ही है। अगर उत्सुक न होता, तो वह यह भी न पूछता कि कहीं मैं बिखर तो न जाऊंगा! कहीं

ऐसा तो न होगा कि मेरी नाव रास्ते में ही डूब जाए! इसका पक्का अर्थ यह है कि दूसरी तरफ जाने की पुकार उसके मन में आ गई। दूसरे किनारे की खोज का आह्वान मिल गया। चुनौती कहीं स्वीकार कर ली गई है। इसीलिए तो भय उठा रहा है। इसीलिए भय उठा रहा है। नहीं तो भय भी नहीं उठाता। वह कहता कि ठीक है, आप जो कहते हैं, बिल्कुल ठीक है।
अक्सर जो लोग एकदम से कह देते हैं कि बिल्कुल ठीक है, वे वे ही लोग होते हैं, जिन्हें कोई मतलब नहीं होता। मतलब हो, तो एकदम से नहीं कह सकते कि ठीक है। क्योंकि तब प्राणों का सवाल है, कमिटमेंट है। फिर तो एक गहरा कमिटमेंट है। आदमी कहता है, बिल्कुल ठीक है। घर चला जाता है। अक्सर जो लोग कहते हैं, बिल्कुल ठीक है बिना सोचे-समझे, बिना भयभीत हुए--और यह मामला ऐसा है कि भयभीत होगा ही कोई। यह पूरी जिंदगी के बदलने का सवाल है। यह जिंदगी और मौत का दांव है, और भारी दांव है।
अर्जुन जब चिंतित हो गया, यह चिंतित होना शुभ लक्षण है। यह चिंता शुभ लक्षण है। इसलिए कृष्ण ने समझा कि अभी वह द्वार खुला है, अब वे उससे कह दें। कह दें उससे कि घबड़ा मत। भरोसा रख। जो तू करेगा, वह अगले जन्म में तुझे मिल जाएगा, अगर यात्रा पूरी भी न हुई तो। कुछ खोता नहीं। अगले जन्म में सुगति मिल जाती है। वैसा वातावरण मिल जाता है, जहां वह फूल अनायास खिल जाए। वैसे लोग मिल जाते हैं।
तिब्बत में एक बहुत पुरानी योगियों की कहावत है, डू नाट सीक दि मास्टर, गुरु को खोजो मत। व्हेन दि डिसाइपल इ.ज रेडी, दि मास्टर एपियर्स। जब शिष्य तैयार है, तो गुरु मौजूद हो जाता है। बहुत पुरानी, कोई छः हजार वर्ष पुरानी किताब में यह सूत्र है इजिप्त की। खोजना मत गुरु को। जब शिष्य तैयार है, तो गुरु मौजूद हो जाता है।
क्योंकि जीवन के बहुत अंतर्नियम हैं, जिनका हमें ख्याल भी नहीं होता, जिनका हमें पता भी नहीं होता। वे नियम काम करते रहते हैं। आपकी जितनी योग्यता होती है, उस योग्यता की व्यवस्था के लिए परमात्मा सदा ही साधन जुटा देता है।
हां, आप ही उनका उपयोग न करें, यह हो सकता है। यह हो सकता है कि आप कहें
कि नहीं, अभी नहीं। आपका ही वह जो ऊपर का मन है, बाधा डाल दे। आपके भीतर के मन को देखकर तो अस्तित्व ने व्यवस्था जुटा दी, लेकिन आपका ऊपर का मन बाधा डाल सकता है। बुद्ध आपके गांव से गुजरें और आप कहें कि आज तो मुश्किल है। आज तो दुकान पर ग्राहकों की भीड़ ज्यादा है।
कैसे आश्चर्य की बात है! ऐसा हुआ है। बुद्ध गांव से गुजरे हैं। पूरा गांव सुनने नहीं आया है। आखिरी वक्त; बुद्ध के पास एक आदमी भागता हुआ पहुंचा, सुभद्र। बुद्ध अपने भिक्षुओं से विदा ले चुके थे। और उन्होंने कहा कि अब मैं शांत होता हूं, शून्य होता हूं, निर्वाण में प्रवेश करता हूं। अब मैं समाधि में जाता हूं। तुम्हें कुछ पूछना तो नहीं है?
भिक्षु इकट्ठे थे, कोई लाख भिक्षु इकट्ठे थे। उन्होंने कहा, हमने इतना पाया, हम उसको ही नहीं पचा पाए। हमने इतना समझा, हम उसको ही कहां कर पाए! अब हम विदा होते आपको और कष्ट न देंगे। हमें कुछ पूछना नहीं है। आपने सब बिना पूछे दिया है। बिना मांगे आपने बरसाया है। सलाह नहीं मांगी थी, तो भी सलाह दी है। आपके हम सिर्फ ऋणी हैं, अनुगृहीत हैं। हम सिर्फ रो सकते हैं, और कुछ कह नहीं सकते।
बुद्ध ने तीन बार पूछा। बुद्ध का नियम था, हर बात तीन बार पूछते थे। अनुकंपा अदभुत है बुद्ध लोगों की। वे तीन बार पूछते थे। पूछना है कुछ? सामने वाला कहता, नहीं। तो भी बुद्ध कहते, पूछना है कुछ? सामने वाला कहता, नहीं। तो भी बुद्ध कहते, पूछना है कुछ? सामने वाला कहता, नहीं। तब बुद्ध कहते, अब तू ही जिम्मेवार होगा अपनी नहीं का। तीन बार बहुत हो गया। तीन बार पूछकर बुद्ध वृक्ष के पीछे चले गए। आंखें बंद करके वे अपने प्राणों को विसर्जित करने लगे।
जो लोग भी स्वयं को जान लेते हैं, उनके लिए मृत्यु अपने ही हाथ का खेल है। वे मृत्यु में ऐसे ही प्रवेश करते हैं, जैसे आप किसी पुराने मकान को छोड़कर नए मकान में प्रवेश करते हैं। आप नहीं करते ऐसा। आपको तो एक मृत्यु से दूसरी मृत्यु में घसीटकर ले जाना पड़ता है, बड़ी मुश्किल से। क्योंकि आप

पुराने मकान को ऐसा जोर से पकड़ते हैं कि छोड़ते ही नहीं। हालांकि वह मकान बेकार हो चुका है; सड़ चुका है; अब उसमें जीवन संभव नहीं है। मृत्यु आती ही तभी है, जब जीवन एक मकान में असंभव हो जाता है।
लेकिन आप कहते हैं, चाहे असंभव हो जाए, चाहे मुझे अस्पताल में उलटा- सीधा लटका दो; चाहे मेरी आंख बंद रहे, नलियां मेरी नाक में पड़ी रहें आक्सीजन की, लेकिन मुझे बचाओ। देखा है अस्पताल में! लटके हैं लोग! सिर नीचा है, पैर ऊपर हैं। वजन बंधे हैं, नाक में नलियां लगी हैं। इंजेक्शन दिए जा रहे हैं। मगर वे कहते हैं कि बचाओ। मकान सड़ गया है बिल्कुल; बचने के योग्य नहीं। मौत कृपा करती है कि चलो, ले चलें। तुम्हें नया मकान दे दें। वे कहते हैं, पुराना मकान। पता नहीं पुराना भी छूट जाए और नया न मिले! बेहोश पड़े रहेंगे, लेकिन बचाओ। मरना नहीं है।
जो आदमी जान लेता है, वह अपने को सहज, सहज, मकान पूरा हुआ तो वह मौत को खुद कहता है, अब ले चल। यह मकान बेकार हो गया।
तो बुद्ध अपने को विसर्जित करने लगे। नए मकान में अब वे जाने को नहीं हैं, क्योंकि अब नए मकान का कोई सवाल नहीं रहा। मकानों की जरूरत मन को रहती है। अब मन विसर्जित हो चुका है। अब बुद्ध परिनिर्वाण में प्रवेश कर रहे हैं। महाशून्य में, अस्तित्व में उनकी यात्रा हो रही है। सरिता सागर में गिर रही है, सदा के लिए।
तब सुभद्र नाम का आदमी भागा हुआ पहुंचा और उसने कहा कि बुद्ध कहां हैं? वे दिखाई नहीं पड़ते? लोग रो रहे हैं। क्या उनका अंत हो गया? एक भिक्षु ने कहा, अंत तो नहीं हुआ है। लेकिन वे अंत में प्रवेश कर रहे हैं। पर, सुभद्र ने कहा, मुझे कुछ पूछना है। उन लोगों ने कहा, तूने बड़ी देर कर दी सुभद्र! और जहां तक हमें याद है, बुद्ध तेरे गांव से कम से कम तीन या चार बार गुजरे होंगे, तब तू नहीं आया!
उसने कहा, दुकान पर बड़ी भीड़ थी। बुद्ध आते थे जरूर, लेकिन कभी ग्राहक होते; कभी पत्नी बीमार पड़ जाती; कभी बेटे को कुछ काम आ जाता; कभी शादी हो जाती। कभी तो ऐसा भी होता कि बहुत धूप होती, तो सोचता कि कौन जाए इतनी धूप में; कभी शीतकाल में आएंगे, तब चला जाऊंगा। फिर कभी शीतकाल में भी आए, तो इतनी सर्दी होती कि घर में बिस्तर में पड़े रहने का मन होता। सोचता कि कौन जाए। अब की दफा जब धूप में आएंगे, तब चला जाऊंगा। ऐसे ही तीस साल बुद्ध मेरे गांव से निकले जरूर। मेरे गांव के पास से निकले। मैं उन गांवों से निकला जिनमें बुद्ध ठहरे हुए थे। लेकिन नहीं; मैंने सोचा, फिर, फिर मिल लेंगे। आज मुझे खबर मिली कि बुद्ध तो विसर्जित हो रहे हैं। तो मैं भागा हुआ आया हूं। मुझे पूछ लेने दें।
भिक्षुओं ने कहा, सुभद्र, इसमें किसका कसूर है?
लेकिन बुद्ध की अनुकंपा, कि बुद्ध वृक्ष के पास से उठकर बाहर आ गए। और उन्होंने कहा कि मेरे जीते जी कोई आदमी खाली हाथ लौट जाए, पूछने आए और लौट जाए! अभी मैं सुन सकता था। तो मेरे ऊपर सदा के लिए एक इल्जाम रह जाएगा कि कोई जानने आया था, और मेरे पास था, जो मैं उसे कह देता। कोई हर्ज नहीं सुभद्र, तीस साल में भी आया, तो जल्दी आ गया। कुछ लोग तीस जन्मों में भी नहीं आते!
कृष्ण एक शुभ क्षण देखकर अर्जुन को कहते हैं कि उसके भीतर चली जाए यह बात। नहीं; कुछ नष्ट नहीं होगा अर्जुन! तू जो भी कमाएगा, वह तेरी संपत्ति बन जाएगी।
और ध्यान रहे, और सब तरह की संपत्तियां इसी जन्म में छूट जाती हैं, सिर्फ योग में कमाई गई संपत्ति अगले जन्म में यात्रा करती है। और सब संपत्तियां इसी जन्म में छूट जाती हैं। कमाया हुआ धन छूट जाएगा। बनाए हुए मकान छूट जाएंगे। इज्जत, यश छूट जाएगा। लेकिन जो बहुत गहरे तल पर किए गए कर्म हैं, शुभ या अशुभ; योग के पक्ष में या योग के विपक्ष में--पक्ष में, तो संपत्ति बन जाएगी; विपक्ष में, तो विपत्ति बन जाएगी। अगर योग के विपक्ष में जीए हैं, तो दिवालिया निकलेंगे और अगले जन्म में अनायास पाएंगे कि दिवालिया हैं। और योग के पक्ष में कुछ किया है, तो एक महासंपत्ति के मालिक होकर गुजरेंगे और अगले जन्म में पाएंगे कि सम्राट हैं।

भिखारी के घर में भी योग की संपत्ति वाला आदमी पैदा हो, तो सम्राट मालूम होता है। और सम्राट के घर में भी योग की संपत्ति से हीन आदमी पैदा हो, तो भिखारी मालूम होता है। एक आंतरिक संपदा, उसकी ही बात कृष्ण ने कही है और अर्जुन को भरोसा दिलाया है।

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्नियते ह्यवशोऽपि सः।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते।। 44।।
और वह विषयों के वश में हुआ भी उस पहले के अभ्यास से ही, निःसंदेह भगवत
की ओर आकर्षित किया जाता है, तथा समत्वबुद्धि रूप योग का जिज्ञासु भी वेद में कहे हुए सकाम कर्मों के फल का उल्लंघन कर जाता है।

दो बातें कृष्ण और जोड़ते हैं। वे कहते हैं कि पिछले जन्मों में जिसने थोड़ी-सी भी यात्रा प्रभु की दिशा में की हो, वह उसकी संपदा बन गई है। अगले जन्मों में विषय और वासना में लिप्त हुआ भी प्रभु की कृपा का पात्र बन जाता है।
अगले जन्म में विषय-वासना में लिप्त हुआ भी--वैसा व्यक्ति जिसके पिछले जन्मों की यात्रा में योग का थोड़ा-सा भी संचय है, जिसने थोड़ा भी धर्म का संचय किया, जिसका थोड़ा भी पुण्य अर्जन है--वह विषय-वासनाओं में डूबा हुआ भी, प्रभु की कृपा का पात्र बना रहता है। वह उतना-सा जो उसका किया हुआ है, वह दरवाजा खुला रहता है। बाकी उसके सब दरवाजे बंद होते हैं। सब तरफ अंधकार होता है, लेकिन एक छोटे-से छिद्र से प्रभु का प्रकाश उसके भीतर उतरता है। और ध्यान रहे, गहन अंधकार में अगर छप्पर के छेद से भी रोशनी की एक किरण आती हो, तो भी भरोसा रहता है कि सूरज बाहर है और मैं बाहर जा सकता हूं! अंधकार आत्यंतिक नहीं है, अल्टिमेट नहीं है। अंधकार के विपरीत भी कुछ है। एक छोटी-सी किरण उतरती हो छिद्र से घने अंधकार में, तो वह छोटी-सी किरण
भी उस घने अंधकार से महान हो जाती है। वह घना अंधकार उस छोटी-सी किरण को भी मिटा नहीं पाता; वह छोटी-सी किरण अंधकार को चीरकर गुजर जाती है।
कितना ही विषय-वासनाओं में डूबा हो वैसा आदमी अगले जन्मों में, लेकिन अगर छोटे-से छिद्र से भी, जो उसने निर्मित किया है, प्रभु की कृपा उसको उपलब्ध होती रहे, तो उसके रूपांतरण की संभावना सदा ही बनी रहती है। वह सदा ही प्रभु-कृपा को पाता रहता है। जगह-जगह, स्थान-स्थान, स्थितियों- स्थितियों से प्रभु की कृपा उस पर बरसती रहती है। न मालूम कितने रूपों में, न मालूम कितने आकारों में, न मालूम कितने अनजान मार्गों और द्वारों से, और न मालूम कितनी अनजान यात्राएं प्रभु की कृपा से उसकी तरफ होती रहती हैं। बाहर वह कितना ही उलझा रहे, भीतर कोई कोना प्रभु का मंदिर बना रहता है। और वह बहुत बड़ा आश्वासन है।
कृष्ण कहते हैं, अर्जुन, वह छोटा-सा छिद्र भी अगर निर्मित हो जाए, तो तेरे लिए बड़ा सहारा होगा।
और एक दूसरी बात, और भी क्रांतिकारी, बहुत क्रांतिकारी बात कहते हैं। कहते हैं, योग का जिज्ञासु भी, जस्ट एन इंक्वायरर; योग का जिज्ञासु भी-- मुमुक्षु भी नहीं, साधक भी नहीं, सिद्ध भी नहीं--मात्र जिज्ञासु; जिसने सिर्फ योग के प्रति जिज्ञासा भी की हो, वह भी वेद में बताए गए सकाम कर्मों का उल्लंघन कर जाता है, उनसे पार निकल जाता है।
वेद में कहा है कि यज्ञ करो, तो ये फल होंगे। ऐसा दान करो, तो ऐसा स्वर्ग होगा। इस देवता को ऐसा नैवेद्य चढ़ाओ, तो स्वर्ग में यह फल मिलेगा। ऐसा करो, ऐसा करो, तो ऐसा-ऐसा फल होता है सुख की तरफ। वेद में बहुत-सी विधियां बताई हैं, जो मनुष्य को सुख की दिशा में ले जा सकती हैं। कारण है बताने का।
वेद अर्जुन जैसे स्पष्ट जिज्ञासु के लिए दिए गए वचन नहीं हैं। वेद इनसाइक्लोपीडिया है, वेद विश्वकोश है। समस्त लोगों के लिए, जितने तरह के लोग पृथ्वी पर हो सकते हैं, सब के लिए सूत्र वेद में उपलब्ध हैं। गीता तो स्पेसिफिक टीचिंग है, एक विशेष शिक्षा है। एक विशेष व्यक्ति द्वारा दी गई; विशेष व्यक्ति को दी गई। वेद किसी एक व्यक्ति के द्वारा दी गई शिक्षा नहीं

है; अनेक व्यक्तियों के द्वारा दी गई शिक्षा है। एक व्यक्ति को दी गई शिक्षा नहीं, अनेक व्यक्तियों को दी गई शिक्षा है।
और वेद विश्वकोश है। क्षुद्रतम व्यक्ति से श्रेष्ठतम व्यक्ति के लिए वेद में वचन हैं। क्षुद्रतम व्यक्ति से! उस आदमी के लिए भी वेद में वचन हैं, जो कहता है कि हे प्रभु, हे देव, हे इंद्र! बगल का आदमी मेरा दुश्मन हो गया है; तू कृपा कर और इसकी गाय के दूध को नदारद कर दे। उसके लिए भी प्रार्थना है! कुछ ऐसा कर कि इस पड़ोसी की गाय दूध देना बंद कर दे।
सोच भी न पाएंगे। दुनिया का कोई धर्मग्रंथ इतनी हिम्मत न कर पाएगा कि इसको अपने में सम्मिलित कर ले। लेकिन वेद उतने ही इनक्लूसिव हैं, जितना इनक्लूसिव परमात्मा है।
जब परमात्मा इस आदमी को अपने में जगह दिए हुए है, तो वेद कहते हैं, हम
भी जगह देंगे। जब परमात्मा इनकार नहीं करता कि इस आदमी को हटाओ, नष्ट करो; यह आदमी क्या बातें कर रहा है! यह कह रहा है कि हे इंद्र, मैं तेरी पूजा करता हूं, तेरी प्रार्थना, तेरी अर्चना, तेरे नैवेद्य चढ़ाता हूं, तेरे लिए यज्ञ करता हूं, तो कुछ ऐसा कर कि पड़ोसी के खेत में इस बार फसल न आए। दुश्मन के खेत जल जाएं, हमारे ही खेत में फसलें पैदा हों। दुश्मनों का नाश कर दे। जैसे बिजली गिरे किसी पर और वज्राघात होकर वह नष्ट हो जाए, ऐसा उस दुश्मन को नष्ट कर दे।
धर्मग्रंथ, और ऐसी बात को अपने भीतर जगह देता है! शोभन नहीं मालूम पड़ता। कृष्ण को भी शोभन नहीं मालूम पड़ा होगा। इसलिए कृष्ण ने कहा है कि वेदों में जिन सकाम कर्मों की--सकाम कर्म का अर्थ है, किसी वासना से किया गया पूजा-पाठ, हवन, विधि; किसी वासना से, किसी कामना से, कुछ पाने के लिए किया गया--जो भी वेदों में दी गई व्यवस्था है, जो कर्मकांड है, उसको कर-करके भी आदमी जहां पहुंचता है, योग की जिज्ञासा मात्र करने वाला, उसके पार निकल जाता है। सिर्फ जिज्ञासा मात्र करने वाला! इसका ऐसा अर्थ हुआ, अकाम भाव से जिज्ञासा मात्र करने वाला, सकाम भाव से साधना करने वाले से आगे निकल जाता है।
अकाम का इतना अदभुत रहस्य, निष्काम भाव की इतनी गहराई और निष्काम भाव
का इतना शक्तिशाली होना, उसे बताने के लिए कृष्ण ने यह कहा है।
कृष्ण भी वेद से चिंतित हुए, क्योंकि वेद इस तरह की बातें बता देता है। वेद से बुद्ध भी चिंतित हुए। सच तो यह है कि हिंदुस्तान में वेद की व्यवस्थाओं के कारण ही जैन और बौद्ध धर्मों का भेद पैदा हुआ, अन्यथा शायद कभी न पैदा होता। क्योंकि तीर्थंकरों को, जैनों के तीर्थंकरों को भी लगा कि ये वेद किस तरह की बातें करते हैं!
महावीर कहते हैं कि दूसरे के लिए भी वैसा ही सोचो, जैसा अपने लिए सोचते हो; और वेद ऐसी प्रार्थना को भी जगह देता है कि दुश्मन को नष्ट कर दो! बुद्ध कहते हैं, करुणा करो उस पर भी, जो तुम्हारा हत्यारा हो। और वेद कहते हैं, पड़ोसी के जीवन को नष्ट कर दे हे देव! और इसको जगह देते हैं। बुद्ध या कृष्ण या महावीर, सभी वेद की इन व्यवस्थाओं से चिंतित हुए हैं।
लेकिन मैं आपसे कहूं, वेद का अपना ही रहस्य है। और वह रहस्य यह है कि वेद इनसाइक्लोपीडिया है, वेद विश्वकोश है। विश्वकोश का अर्थ होता है, जो भी धर्म की दिशा में संभव है, वह सभी संगृहीत है। माना कि यह आदमी दुश्मन को नष्ट करने के लिए प्रार्थना कर रहा है, लेकिन प्रार्थना कर रहा है। और प्रार्थना संकलित होनी चाहिए। यह भी आदमी है; माना बुरा है, पर है। तथ्य है, तथ्य संगृहीत होना चाहिए। और जब परमात्मा इसे स्वीकार करता है, सहता है, इसके जीवन का अंत नहीं करता; श्वास चलाता है, जीवन देता है, प्रतीक्षा करता है इसके बदलने की, तो वेद कहते हैं कि हम भी इतनी जल्दी क्यों करें! हम भी इसे स्वीकार कर लें।
वेद जैसी किताब नहीं है पृथ्वी पर, इतनी इनक्लूसिव। सब किताबें चोजेन हैं। दुनिया की सारी किताबें चुनी हुई हैं। उनमें कुछ छोड़ा गया है, कुछ चुना गया है। बुरे को हटाया गया है, अच्छे को रखा गया है। धर्मग्रंथ का मतलब ही यही होता है। धर्मग्रंथ का मतलब ही होता है कि धर्म को चुनो, अधर्म को हटाओ। वेद सिर्फ धर्मग्रंथ नहीं है; मात्र धर्मग्रंथ नहीं है। वेद पूरे मनुष्य की समस्त क्षमताओं का संग्रह है। समस्त क्षमताएं!

जान्सन ने, डाक्टर जान्सन ने अंग्रेजी का एक विश्वकोश निर्मित किया। विश्वकोश जब कोई निर्मित करता है, तो उसे गंदी गालियां भी उसमें लिखनी पड़ती हैं। लिखनी चाहिए, क्योंकि वे भी शब्द तो हैं ही और लोग उनका उपयोग तो करते ही हैं। उसमें गंदी, अभद्र, मां-बहन की गालियां, सब इकट्ठी की थीं। बड़ा कोश था। लाखों शब्द थे। उसमें गालियां तो दस-पच्चीस ही थीं, क्योंकि ज्यादा गालियों की जरूरत नहीं होती, एक ही गाली को जिंदगीभर रिपीट करने से काम चल जाता है। गालियों में कोई ज्यादा इनवेंशन भी नहीं होते। गालियां करीब-करीब प्राचीन, सनातन चलती हैं। गाली, मैं नहीं देखता, कोई नई गाली ईजाद होती हो। कभी-कभी कोई छोटी-मोटी ईजाद होती है; वह टिकती नहीं। पुरानी गाली टिकती है, स्थिर रहती है।
एक महिला भद्रवर्गीय पहुंच गई जान्सन के पास। खोला शब्दकोश उसका और कहा कि आप जैसा भला आदमी और इस तरह की गालियां लिखता है! अंडरलाइन करके लाई थी! जान्सन ने कहा, इतने बड़े शब्दकोश में तुझे इतनी गालियां ही देखने को मिलीं! तू खोज कैसे पाई? मैं तो सोचता था, कोई खोज नहीं पाएगा। तू खोज कैसे पाई? जान्सन ने कहा, मुझे गाली और पूजा और प्रार्थना से प्रयोजन नहीं है। आदमी जो-जो शब्दों का उपयोग करता है, वे संगृहीत किए हैं।
वेद आल इनक्लूसिव है। इसलिए वेद में वह क्षुद्रतम आदमी भी मिल जाएगा,
जो परमात्मा के पास न मालूम कौन-सी क्षुद्र आकांक्षा लेकर गया है। वह श्रेष्ठतम आदमी भी मिल जाएगा, जो परमात्मा के पास कोई आकांक्षा लेकर नहीं गया है। वेद में वह आदमी भी मिल जाएगा, जो परमात्मा के पास जाने की हर कोशिश करता है और नहीं पहुंच पाता। और वेद में वह आदमी भी मिल जाएगा, जो परमात्मा की तरफ जाता नहीं, परमात्मा खुद उसके पास आता है। सब मिल जाएंगे। इसलिए वेद की निंदा भी करनी बहुत आसान है। कहीं भी पन्ना खोलिए वेद का, आपको उपद्रव की चीजें मिल जाएंगी। कहीं भी। क्यों? क्योंकि निन्यानबे प्रतिशत आदमी तो उपद्रव है। और वेद इसलिए बहुत रिप्रेजेंटेटिव है, बहुत प्रतिनिधि है। ऐसी प्रतिनिधि कोई किताब पृथ्वी पर नहीं है। सब किताबें क्लास रिप्रेजेंट करती हैं, किसी वर्ग का। किसी एक वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं सब किताबें। वेद प्रतिनिधि है मनुष्य का, किसी वर्ग का नहीं, सबका। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जिसके अनुकूल वक्तव्य वेद में न मिल जाए।
इसीलिए उसे वेद नाम दिया गया है। वेद का अर्थ है, नालेज। वेद का अर्थ
और कुछ नहीं होता। वेद शब्द का अर्थ है, ज्ञान, जस्ट नालेज। आदमी को जो-जो ज्ञान है, वह सब संगृहीत है। चुनाव नहीं है। कौन आदमी को रखें, किसको छोड़ दें, वह नहीं है।
कृष्ण, बुद्ध, महावीर सबको इसमें अड़चन रही है। अड़चन के भी अपने-अपने रूप हैं। कृष्ण ने वेद को बिल्कुल इनकार नहीं किया, लेकिन तरकीब से वेद के पार जाने वाली बात कही। कृष्ण ने कहा कि ठीक है वेद भी; सकाम आदमी के लिए है। लेकिन निष्काम की जिज्ञासा करने वाला भी, इन हवन और यज्ञ करने वाले लोगों से पार चला जाता है। महावीर और बुद्ध ने तो बिल्कुल इनकार किया, और उन्होंने कहा कि वेद की बात ही मत चलाना। वेद की बात चलाई, कि नर्क में पड़ोगे। इसलिए वेद के विरोध में अवैदिक धर्म भारत में पैदा हुए, बुद्ध और महावीर के।
पर, मेरी समझ यह है कि वेद को ठीक से कभी भी नहीं समझा गया, क्योंकि इतनी आल इनक्लूसिव किताब को ठीक से समझा जाना कठिन है। क्योंकि आपके टाइप के विपरीत बातें भी उसमें होंगी, क्योंकि आपका विपरीत टाइप भी दुनिया में है। इसलिए वेद को पूरी तरह प्रेम करने वाला आदमी बहुत मुश्किल है। वह वही आदमी हो सकता है, जो परमात्मा जैसा आल इनक्लूसिव हो, नहीं तो बहुत मुश्किल है। उसको कोई न कोई खटकने वाली बात मिल जाएगी कि यह बात गड़बड़ है। वह आपके पक्ष की नहीं होगी, तो गड़बड़ हो जाएगी।
वेद में कुरान भी मिल जाएगा। वेद में बाइबिल भी मिल जाएगी। वेद में धम्मपद भी मिल जाएगा। वेद में महावीर के वचन भी मिल जाएंगे। वेद इनसाइक्लोपीडिया है। वेद को प्रयोजन नहीं है।

इसलिए महावीर को कठिनाई पड़ेगी, क्योंकि महावीर के विपरीत टाइप का भी
सब संग्रह वहां है। और वह विपरीत टाइप को भी कठिनाई पड़ेगी, क्योंकि महावीर वाला संग्रह भी वहां है। और अड़चन सभी को होगी।
इसलिए वेद के साथ कोई भी बिना अड़चन में नहीं रह पाता। और अड़चन मिटाने
के जो उपाय हुए हैं, वे बड़े खतरनाक हैं। जैसे दयानंद ने एक उपाय किया अड़चन मिटाने का। वह अड़चन मिटाने का उपाय यह है कि वेद के सब शब्दों के अर्थ ही बदल डालो। और इस तरह के अर्थ निकालो उसमें से कि वेद विश्वकोश न रह जाए, धर्मशास्त्र हो जाए; एक संगति आ जाए, बस।
यह ज्यादती है लेकिन। वेद में संगति नहीं लाई जा सकती। वेद असंगत है। वेद जानकर असंगत है, क्योंकि वेद सबको स्वीकार करता है, असंगत होगा ही। शब्दकोश संगत नहीं हो सकता। विश्वकोश, इनसाइक्लोपीडिया संगत नहीं हो सकता। इनसाइक्लोपीडिया को अपने से विरोधी वक्तव्यों को भी जगह देनी ही पड़ेगी।
लेकिन कभी ऐसा आदमी जरूर पैदा होगा एक दिन पृथ्वी पर, जो समस्त को इतनी सहनशीलता से समझ सकेगा, सहनशीलता से, उस दिन वेद का पुनआर्विर्भाव हो सकता है। उस दिन वेद में दिखाई पड़ेगा, सब है। कंकड़-पत्थर से लेकर हीरे- जवाहरातों तक, बुझे हुए दीयों से लेकर जलते हुए महासूर्यों तक, सब है।
तो कृष्ण अर्जुन से कहते हैं--वह उनका अर्थ है कहने का और कारण है--वे कहते हैं कि वेदों की समस्त साधना भी तू कर डाल, सब यज्ञ कर ले, हवन कर ले, फिर भी इतना न पाएगा, जितना सिर्फ योग की जिज्ञासा से पा सकता है। और योग को साधे, तब तो बात ही अलग है। तब तो प्रश्न ही नहीं उठता। अर्जुन को भरोसा दिलाने के लिए कृष्ण की चेष्टा सतत है।

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।। 45।।
अनेक जन्मों से अंतःकरण की शुद्धिरूप सिद्धि को प्राप्त हुआ और अति प्रयत्न से अभ्यास करने वाला योगी, संपूर्ण पापों से अच्छी प्रकार शुद्ध होकर उस साधन के प्रभाव से परम गति को प्राप्त होता है अर्थात परमात्मा को प्राप्त होता है।

इस सूत्र में दो बातें कृष्ण और जोड़ते हैं। जैसे-जैसे अर्जुन, उन्हें प्रतीत होता है कि समझ पाएगा, समझ पाएगा, वैसे-वैसे वे कुछ और जोड़ देते हैं। दो बातें कहते हैं। वे कहते हैं, शुद्ध हुआ चित्त साधन के द्वारा परम गति को उपलब्ध होता है।
शुद्ध हुआ चित्त साधन के द्वारा परम गति को उपलब्ध होता है। क्या शुद्ध होना काफी नहीं है? कठिन सवाल है। जटिल बात है। क्या शुद्ध होना काफी नहीं है? और साधन की भी जरूरत पड़ेगी? इतना ही उचित न होता कहना कि शुद्ध हुआ जिसका अंतःकरण, वह परम गति को उपलब्ध होता है?

लेकिन कृष्ण कहते हैं, अनंत जन्मों में भी शुद्ध हुआ अंतःकरण वाला व्यक्ति साधन की सहायता से परम गति को उपलब्ध होता है। मेथड, विधि की सहायता से। साधारणतः हमें लगेगा, जो शुद्ध हो गया पूरा, अब और क्या जरूरत रही साधन की? क्या परमात्मा उसे बिना किसी साधन के न मिल जाएगा?
एक छोटी-सी बात समझ लें, तो ख्याल में आ जाएगी। जो शुद्ध हो जाए सब भांति और साधन का प्रयोग न किया हो, तो एक ही खतरा है, जो अंतिम बाधा बन जाता है। पायस ईगोइज्म, एक पवित्र अहंकार भीतर निर्मित होता है।
अपवित्र अहंकार तो होते ही हैं। एक आदमी कहता है कि मुझसे ज्यादा दुष्ट कोई भी नहीं। कि मैं छाती में छुरा भोंक दूं, तो हाथ नहीं धोता और खाना खा लेता हूं। अब इसके भी दावे करने वाले लोग हैं! यह असात्विक अहंकार की घोषणा है।
ध्यान रखना कि आमतौर से हम समझते हैं कि सभी अहंकार असात्विक होते हैं, तो गलत समझते हैं। सात्विक अहंकार भी होते हैं। और सात्विक अहंकार सटल, सूक्ष्म हो जाता है।

एक आदमी कहता है, मुझसे दुष्ट कोई भी नहीं; एक आदमी कहता है, मैं तो आपके चरणों की धूल हूं। अब जो आदमी कहता है, मैं आपके चरणों की धूल हूं। मैं तो कुछ भी नहीं हूं। इसका भी अहंकार है; बहुत सूक्ष्म। इसका भी दावा है। बहुत दावा शून्य मालूम पड़ता है, लेकिन दावा है। कोई दावा दिखाई नहीं पड़ता, क्योंकि यह भी कोई दावा हुआ कि मैं आपके चरणों की धूल हूं!
लेकिन उस आदमी की आंखों में झांकें। अगर आप उससे कहें कि तुम तो कुछ
भी नहीं हो, तुमसे भी ज्यादा चरणों की धूल मैंने देखी है एक आदमी में। एक आदमी मैंने देखा, तुमसे भी ज्यादा। तुम कुछ भी नहीं हो उसके सामने। तो आप देखना कि उसके भीतर अहंकार तड़पकर रह जाएगा; बिजली कौंध जाएगी। उसकी आंखों में झलक आ जाएगी। वही झलक, जो आदमी कहता है कि मुझसे ज्यादा दुष्ट कोई भी नहीं। मैं छाती में छुरा भोंक देता हूं, और बिना हाथ धोए पानी पीता हूं। वही झलक!
अहंकार बहुत चालाक है, दि मोस्ट कनिंग फैक्टर। बहुत चालाक तत्व है हमारे भीतर। वह हर चीज से अपने को जोड़ लेता है, हर चीज से! वह कहता है, धन है तुम्हारे पास, तो अकड़कर खड़े हो जाओ, और कहो कि जानते हो, मैं कौन हूं! मेरे पास धन है। अब तुमने अगर सोचा कि धन की वजह से अहंकार है। छोड़ दो धन। तो वह अहंकार कहेगा, तेरे से बड़ा त्यागी कोई भी नहीं। घोषणा कर दे कि मैं त्यागी हूं, महान!
आपको पता नहीं कि वही अहंकार, जो धन के पीछे छिपा था, अब त्याग के पीछे छिप गया है; त्याग को ओढ़ लिया है। और ध्यान रहे, धन वाला अहंकार तो बहुत स्थूल होता है, सबको दिखाई पड़ता है। त्याग वाला अहंकार सूक्ष्म हो जाता है और दिखाई नहीं पड़ता।
इसलिए कृष्ण कहते हैं कि अर्जुन, सब भांति शुद्ध हुआ व्यक्ति भी, साधन
की सहायता से प्रभु को उपलब्ध होता है।
अब ये साधन की इसलिए जरूरत पड़ी। शुद्धि हो जाए, सत्व आ जाए, सब अंतःकरण बिल्कुल पवित्र मालूम होने लगे, लेकिन यह प्रतीति एक चीज को बचा रखेगी, वह है मैं। उस मैं को बिना साधन के काटना असंभव है। उस मैं को साधन से काटना पड़ेगा।
और योग की जो परम विधियां हैं, वे इस मैं को काटने की विधियां हैं, जिनसे यह मैं कटेगा। बहुत तरह की विधियां योग उपयोग करता है, जिनसे कि यह मैं काटा जाए। अलग-अलग तरह के व्यक्ति के लिए अलग-अलग विधि उपयोगी होती है, जिससे यह मैं कट जाए। एक-दो घटनाएं मैं आपसे कहूं, तो ख्याल में आ जाए। सूफी फकीर हुआ बायजीद। बायजीद के पास, जिस राजधानी में वह ठहरा था, उस राजधानी का जो सबसे बड़ा धनपति था, नगर सेठ था, वह आया। उसने आकर लाखों रुपए बायजीद के चरणों में डाल दिए और कहा बायजीद, मैं सब त्याग करना चाहता हूं। स्वीकार करो! बायजीद ने कहा कि अगर तू त्याग को त्याग करना चाहे, तो मैं स्वीकार करता हूं। त्याग को स्वीकार नहीं करूंगा। त्याग को भी त्याग करना चाहे, तो स्वीकार करता हूं। उस आदमी ने कहा, मजे की बात कर रहे हैं आप। धन तो त्यागा जा सकता है; त्याग को कैसे त्यागेंगे! त्याग क्या कोई चीज है? बायजीद ने कहा, साधन का उपयोग करेंगे; त्याग को भी त्याग करवा देंगे।
उस आदमी ने कहा, करो साधन का उपयोग, लेकिन मेरी समझ में नहीं आता। यह त्याग तो है ही नहीं! समझिए कि एक कमरे में मैं मौजूद हूं, तो मुझे बाहर निकाला जा सकता है। लेकिन अगर मैं मौजूद नहीं हूं, तो मेरी गैर-मौजूदगी को कैसे बाहर निकाला जा सकेगा!
बायजीद ने कहा, प्यारे, जिसे तू गैर-मौजूदगी कह रहा है, वह गैर-मौजूदगी नहीं है। वह सिर्फ जो प्रकट अहंकार था, उसका अप्रकट हो जाना है। तू टेबल-कुर्सी के नीचे छिप गया है; गैर-मौजूद नहीं है। हम निकालेंगे। साधन का उपयोग करेंगे।
उसने कहा, अच्छा भाई। मैं तो सोचता था कि सब धन छोड़कर--अंतःकरण इस धन
की वजह से अशुद्ध होता है--अशुद्धि के बाहर हो जाऊंगा। तुम कहते हो कि और! और क्या चाहते हो तुम?
उस फकीर ने कहा कि तू कल से एक काम कर। रोज सुबह सड़क पर बुहारी लगा, कचरे को ढो। फिर जब जरूरत होगी, आगे साधन का उपयोग करेंगे।

बड़ा कष्ट हुआ उस आदमी को। धन छोड़ देने में कष्ट न हुआ था। यह सड़क पर बुहारी लगाने में बहुत कष्ट हुआ। कई दफा मन में ख्याल आता कि क्या सड़क पर बुहारी लगाना, यह कोई योग है? यह कोई साधन है? कई दफा आता बायजीद के पास, पूछने का मन होता। बायजीद कहता कि रुक, रुक। अभी पूछ मत। थोड़ा और बुहारी लगा।
बुहारी लगाते-लगाते एक महीना बीत गया, तब बायजीद एक दिन सड़क के किनारे
से निकल रहा था। वह धनपति इतने आनंद से बुहारी लगा रहा था कि जैसे प्रभु का गीत गा रहा हो। उसने उसके कंधे पर हाथ रखा। उसने लौटकर भी नहीं देखा बायजीद को। वह अपनी बुहारी लगाता रहा। बायजीद ने कहा, मेरे भाई, सुनो भी! उसने कहा, व्यर्थ मेरे भजन में बाधा मत डालो। बायजीद ने कहा, चल, अब बुहारी लगाने की कोई जरूरत न रही। बुहारी लगाना भजन बन गया। एक साधन का उपयोग हुआ।
योग हजार विधियों का प्रयोग करता है। योग ने जब पहली दफा संन्यासियों
को कहा कि तुम भिक्षा मांगो, तो उसका कारण सिर्फ साधन था। भिखारी बनाने के लिए नहीं था। बुद्ध खुद सड़क पर भिक्षा मांगने जाते हैं। बुद्ध को भिक्षा मांगने की क्या जरूरत थी? और जब बुद्ध के पास बड़े से बड़ा सम्राट भी दीक्षित होता है, तो वे कहते हैं, भिक्षा मांग। कई बार लोग कहते भी थे कि भिक्षा की क्या जरूरत है, हमारे घर से इंतजाम हो जाएगा! बुद्ध कहते, जिस घर को छोड़ दिया, उससे इंतजाम लेगा, तो साधन न हो पाएगा। उससे इंतजाम मत ले। तू तो सड़क पर भीख मांग। वह आदमी कहता कि कई दफा लोग ऐसा हाथ का इशारा कर देते हैं, आगे जाओ, तो बड़ा दुख होता है। बुद्ध कहते, जिस दिन दुख न हो, उस दिन तेरी भिक्षा छ.ुडवा देंगे। साधन हो गया।
इसलिए बुद्ध ने अपने संन्यासियों को भिक्खु कहा; भिक्षु, मांगने वाले। और अधिकतर बड़े परिवार के लोग थे बुद्ध के भिक्षुओं में, क्योंकि सम्राट वे खुद थे। उनके सारे संबंधी, उनके सब मित्र, उनकी पत्नी के संबंधी, वे सब दीक्षित हुए थे। उन सबको भीख मंगवाई रास्तों पर।
बुद्ध जब खुद अपने गांव में आए और भीख मांगने निकले, तो उनके पिता ने उनको जाकर रोका और कहा कि अब हद हुई जाती है! क्या कमी है तेरे लिए? कम से कम इस गांव में तो भीख मत मांग! मेरी इज्जत का तो कुछ ख्याल कर। बुद्ध ने कहा, मैं अपनी इज्जत तो गंवा चुका। तुम्हारी भी गंवा दूं, तो साधन हो जाए। इसे कहां तक बचाए रखोगे? इसको छोड़ो! बुद्ध के पिता ने फिर भी नहीं समझा। बुद्ध के पिता ने कहा कि नासमझ, तुझे पता नहीं है।
उस बुद्ध को बुद्ध के पिता नासमझ कह रहे हैं, जिससे समझदार आदमी इस जमीन पर मुश्किल से कभी कोई होता है! लेकिन बाप का अहंकार बेटे को समझदार कैसे माने! लाखों लोग उसको समझदार मान रहे हैं। लाखों लोग उसके चरणों में सिर रख रहे हैं लेकिन बुद्ध के बाप अकड़कर खड़े हैं।
कहा, नासमझ, हमारे परिवार में, हमारी कुल-परंपरा में कभी किसी ने भीख नहीं मांगी। बुद्ध ने कहा, आपकी कुल-परंपरा में न मांगी होगी। लेकिन जहां तक मैं याद करता हूं अपने पिछले जन्मों को, मैं सदा का भिखारी हूं। मैं सदा ही भीख मांगता रहा हूं। उसी भीख मांगने की वजह से तुम्हारे घर में पैदा हो गया था; और कोई कारण न था। मगर पुरानी आदत, मैंने फिर अपना भिक्षा-पात्र उठा लिया।
जब बुद्ध अपने घर पहली बार गए बारह वर्ष के बाद, तो उनकी पत्नी ने बहुत क्रोध से अपने बेटे को कहा कि मांग ले बुद्ध से! ये तेरे पिता हैं। देख तेरे बेशर्म पिता को, ये सब छोड़कर भाग गए हैं। ये मुझे छोड़कर भाग गए हैं। ये मुझसे बिना पूछे भाग गए हैं। तू एक दिन का था, तब ये भाग गए हैं। ये तेरे पिता हैं, इनसे अपनी वसीयत मांग ले। गहरा व्यंग्य कर रही थी पत्नी। पत्नी को पता नहीं कि किससे व्यंग्य कर रही है। वह आदमी अब मौजूद ही नहीं है। शून्य में यह व्यंग्य खो जाएगा। लेकिन पत्नी को तो अभी भी पुराना पत्नी का भाव मौजूद था। उसे बुद्ध दिखाई नहीं पड़ रहे थे। वह जो सामने खड़ा था सूर्य की भांति, वह उसकी अंधी आंखों में नहीं दिखाई पड़ सकता था।
राग अंधा कर देता है; सूर्य भी नहीं दिखाई पड़ता है। बुद्ध भी बुद्ध की पत्नी को नहीं दिखाई पड़ रहे हैं। पत्नी अपने बेटे से व्यंग्य करवा रही है

कि मांग। हाथ फैला। बुद्ध से मांग ले कि संपत्ति क्या है? मेरे लिए क्या छोड़े जा रहे हैं? गहरा व्यंग्य था। बुद्ध के पास तो कुछ भी न था।
लेकिन उसे पता नहीं। बुद्ध के बेटे ने, राहुल ने, हाथ फैला दिए। बुद्ध
ने अपना भिक्षा-पात्र उसके हाथ में रख दिया, और कहा, मैं तुझे भिक्षा मांगने की वसीयत देता हूं, तू भिक्षा मांग।
पत्नी रोने-चिल्लाने लगी कि आप यह क्या करते हैं? बाप घबड़ा गए और कहा
कि तू गया, अब घर का एक ही दीया बचा, उसे भी बुझाए देता है! बुद्ध ने कहा, मैं इसी के लिए आया हूं इतनी दूर। इसकी संभावनाओं का मुझे पता है। इसकी पिछली यात्राओं का मुझे अनुभव है। तुम इसे जानते हो कि छोटा-सा बच्चा है, मैं नहीं जानता। मैं जानता हूं कि इसकी अपनी यात्रा है, जो काफी आगे निकल गई है। जरा-सी चोट की जरूरत है।
बाप नहीं समझ पाए; पत्नी नहीं समझ पाई; पर बारह साल का राहुल भिक्षा- पात्र लेकर भिक्षुओं में सम्मिलित हो गया। बहुत मां ने बुलाया; बहुत पिता ने कहा कि बेटे, तू लौट आ। इस बात में मत पड़। पर राहुल ने कहा, बात पूरी हो गई। मेरी दीक्षा हो गई।
साधन का अर्थ है, वह जो सात्विक होने का भी अहंकार बच रहेगा, उसे भी काटना पड़ता है।
अगर कोई सिर्फ शुद्ध होने की कोशिश करे, सिर्फ नैतिक होने की, तो उसको साधन की जरूरत पड़ेगी। लेकिन अगर कोई योग के साथ शुद्ध होने की कोशिश करे, तो फिर साधन की जरूरत नहीं पड़ती, क्योंकि योग का साधन साथ ही साथ विकसित होता चला जाता है।
आज इतना ही। फिर शेष हम सांझ बात करेंगे। अब थोड़ी देर साधन में प्रवेश करें।
कीर्तन भी एक साधन है। जो कर पाते हैं, उनके भीतर का अहंकार गिरेगा, टूटेगा। और आप नहीं कर पाते हैं, तो और कोई कारण नहीं; वह अहंकार भीतर बैठा है। वह कहता है, मैं पढ़ा-लिखा आदमी, युनिवर्सिटी से शिक्षित हूं, बड़ी नौकरी पर हूं, मैं ताली बजाऊं, मैं नाचूं! यह ग्रामीणों जैसा काम, मैं करूं!
वह बैठा है, साधन से टूटेगा। नहीं तो वह बड़ा होता जाएगा।
सम्मिलित हों कीर्तन में। जब सारे संन्यासी नाच रहे हैं, गीत गा रहे हैं, तब उनके साथ जुड़ें; आनंदित हों; सम्मिलित हों; गीत दोहराएं।

गीता दर्शन, भाग तीन
गीता दर्शन अध्याय 6
इक्कीसवां प्रवचन

श्रद्धावान योगी श्रेष्ठ है

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन।। 46।।
योगी तपस्वियों से श्रेष्ठ है, शास्त्र के ज्ञान वालों से भी श्रेष्ठ माना गया है, तथा सकाम कर्म करने वालों से भी योगी श्रेष्ठ है, इससे हे अर्जुन, तू योगी हो।

तपस्वियों से भी श्रेष्ठ है, शास्त्र के ज्ञाताओं से भी श्रेष्ठ है, सकाम कर्म करने वालों से भी श्रेष्ठ है, ऐसा योगी अर्जुन बने, ऐसा कृष्ण का आदेश है। तीन से श्रेष्ठ कहा है और चौथा बनने का आदेश दिया है। तीनों बातों को थोड़ा-थोड़ा देख लेना जरूरी है।
तपस्वियों से श्रेष्ठ कहा योगी को। साधारणतः कठिनाई मालूम पड़ेगी। तपस्वी से योगी श्रेष्ठ? दिखाई तो ऐसा ही पड़ता है साधारणतः कि तपस्वी श्रेष्ठ मालूम पड़ता है, क्योंकि तपश्चर्या प्रकट चीज है और योग अप्रकट।
तपश्चर्या दिखाई पड़ती है और योग दिखाई नहीं पड़ता है। योग है अंतर्साधना, और तपश्चर्या है बहिर्साधना।
अगर कोई व्यक्ति धूप में खड़ा है घनी, भूखा खड़ा है, प्यासा खड़ा है, उपवासा खड़ा है, शरीर को गलाता है, शरीर को सताता है--सबको दिखाई पड़ता है। क्योंकि तपस्वी मूलतः शरीर से बंधा हुआ है। जैसे भोगी शरीर से बंधा होता है; दिखाई पड़ता है उसका इत्र-फुलेल; दिखाई पड़ता है उसके शरीरों की सजावट; दिखाई पड़ते हैं गहने; दिखाई पड़ते हैं महल; दिखाई पड़ता है शरीर का सारा का साराशृंगार। ऐसे ही तपस्वी का भी सारा का सारा शरीर-विरोध प्रकट दिखाई पड़ता है। लेकिन ओरिएंटेशन एक ही है; दोनों का केंद्र एक ही है--भोगी का भी शरीर है और तथाकथित तपस्वी का भी शरीर है।
हम चूंकि सभी शरीरवादी हैं, इसलिए भोगी भी हमें दिखाई पड़ जाता है और त्यागी भी दिखाई पड़ जाता है। योगी को पहचानना मुश्किल है, क्योंकि योगी शरीर से शुरू नहीं करता। योगी शुरू करता है अंतस से।
योगी की यात्रा भीतरी है, और योगी की यात्रा वैज्ञानिक है। वैज्ञानिक
इस अर्थों में है कि योगी साधनों का प्रयोग करता है, जिनसे अंतस चित्त को रूपांतरित किया जा सके।
त्यागी केवल शरीर से लड़ता है शत्रु की भांति। तपस्वी केवल दमन करता हुआ मालूम पड़ता है। लड़ता है शरीर से, क्योंकि ऐसा उसे प्रतीत होता है कि सब वासनाएं शरीर में हैं। अगर स्त्री को देखकर मन मोहित होता है, तो तपस्वी आंख फोड़ लेता है। सोचता है कि शायद आंख में वासना है। और अगर कोई आदमी अपनी आंख फोड़ ले, तो हमें भी लगेगा कि ब्रह्मचर्य की बड़ी साधना में लीन है।
पर आंखों के फूटने से वासना नहीं फूटती है। आंखों के चले जाने से वासना नहीं जाती है। अंधे की भी कामवासना उतनी ही होती है, जितनी गैर-अंधे की होती है। अगर अंधों के पास कामवासना न होती, तो अंधे सौभाग्यशाली थे; पुण्य का फल था उन्हें। जन्मांध जो है, उसकी भी कामवासना होती है; तो आंख फोड़ लेने से कोई कैसे कामवासना से मुक्त हो जाएगा?
लेकिन योगी? योगी आंख नहीं फोड़ता। आंख के पीछे वह जो ध्यान देने वाली शक्ति है, उसे आंख से हटा लेता है।
रास्ते पर गुजरती है एक स्त्री, और मेरी आंखें उससे बंधकर रह जाती हैं। अब दो रास्ते हैं। या तो मैं आंख फोड़ लूं; आंख फोड़ लूं, तो आप सबको दिखाई पड़ेगा कि आंख फोड़ ली गई। या मैं आंख मोड़ लूं; तो भी दिखाई पड़ेगा कि आंख मोड़ ली गई। या मैं भाग खड़ा होऊं और कहूं कि दर्शन न करूंगा, देखूंगा नहीं, तो भी आपको दिखाई पड़ जाएगा। लेकिन मेरी आंख के पीछे जो ध्यान की ऊर्जा है, अगर मैं उसे आंख से हटा लूं, तो दुनिया में किसी को नहीं दिखाई पड़ेगा, सिर्फ मुझे ही दिखाई पड़ेगा।

योग अंतर-रूपांतरण है।
भोगी भोजन खाए चला जाता है; जितना उसका वश है, भोजन किए चला जाता है। त्यागी भोजन छोड़ता चला जाता है। लेकिन योगी क्या करता है? योगी न तो भोजन किए चला जाता है, न भोजन का त्याग करता है; योगी रस का त्याग कर देता है, स्वाद का त्याग कर देता है। जितना जरूरी भोजन है, कर लेता है। जब जरूरी है, कर लेता है। जो आवश्यक है, कर लेता है। लेकिन स्वाद की वह जो लिप्सा है, वह जो विक्षिप्तता है, जो सोचती रहती है दिन-रात, भोजन, भोजन, भोजन, उसे छोड़ देता है।
लेकिन यह दिखाई न पड़ेगा। यह तो योगी ही जानेगा, या जो बहुत निकट होंगे,
वे धीरे-धीरे पहचान पाएंगे--योगी कैसे उठता, कैसे बैठता, कैसी भाषा बोलता।
लेकिन बहुत मुश्किल से पहचान में आएगा।
तपस्वी दिखाई पड़ जाएगा, क्योंकि तपस्वी का सारा प्रयोग शरीर पर है।
योगी का सारा प्रयोग अंतसचेतना पर है।
तप दिखाई पड़ने से क्या प्रयोजन है? तपस्वी को बाजार में खड़ा होने की जरूरत ही क्या है? यह प्रश्न तो अपना और परमात्मा के बीच है; यह मेरे और आपके बीच नहीं है। आप मेरे संबंध में क्या कहते हैं, यह सवाल नहीं है। मैं आपके संबंध में क्या कहता हूं, यह सवाल नहीं है। मेरे संबंध में परमात्मा क्या कहता है, वह सवाल है। मेरे संबंध में मैं क्या जानता हूं, वह सवाल है। योगी की समस्त साधना, अंतर्साधना है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, तपस्वी से महान है योगी, अर्जुन। ऐसा कहने की जरूरत पड़ी होगी, क्योंकि तपस्वी सदा ही महान दिखाई पड़ता है। जो आदमी रास्तों पर कांटे बिछाकर उन पर लेट जाए, वह स्वभावतः महान दिखाई पड़ेगा उस आदमी से, जो अपनी आरामकुर्सी में लेटकर ध्यान करता हो। महान दिखाई पड़ेगा। आरामकुर्सी में बैठना कौन-सी महानता है?
लेकिन मैं आपसे कहता हूं, कांटों पर लेटना बड़ी साधारण सर्कस की बात है, बड़ा काम नहीं है। कांटों पर, कोई भी थोड़ा-सा अभ्यास करे, तो लेट जाएगा। और अगर आपको लेटना हो, तो थोड़ी-सी बात समझने की जरूरत है, ज्यादा नहीं! आदमी की पीठ पर ऐसे बिंदु हैं, जिनमें पीड़ा नहीं होती। अगर आपकी पीठ
पर कोई कांटा चुभाए, तो कई, पच्चीस जगह ऐसी निकल आएंगी, जब आपको कांटा चुभेगा, और आप न बता सकेंगे कि कांटा चुभ रहा है। आपकी पीठ पर पच्चीस-तीस ब्लाइंड स्पाट्स हैं, हरेक आदमी की पीठ पर। आप घर जाकर बच्चे से कहना कि जरा पीठ में कांटा चुभाओ! आपको पता चल जाएगा कि आपकी पीठ पर ब्लाइंड स्पाट्स हैं, जहां कांटा चुभेगा, लेकिन आपको पता नहीं चलेगा। बस, उन्हीं ब्लाइंड स्पाट्स का थोड़ा-सा अभ्यास करना पड़ता है। व्यवस्थित कांटे रखने पड़ते हैं, जो ब्लाइंड स्पाट्स में लग जाएं। फिर पीठ पर लेटे हुए आदमी को कांटे का पता नहीं चलता है। यह तो फिजियोलाजी की सीधी-सी ट्रिक है, इसमें कुछ मामला नहीं है।
लेकिन कांटे पर कोई आदमी लेटा हो, तो चमत्कार हो जाएगा, भीड़ इकट्ठी हो जाएगी। लेकिन कोई आदमी अगर आरामकुर्सी पर बैठकर ध्यान को शांत कर रहा हो, तो कोई भीड़ इकट्ठी नहीं होगी, किसी को पता भी नहीं चलेगा। यद्यपि ध्यान को एकाग्र करना कांटों पर लेटने से बहुत कठिन काम है। ध्यान को एकाग्र करना कांटों पर लेटने से बहुत कठिन काम है, अति कठिन काम है। क्योंकि ध्यान पारे की तरह हाथ से छिटक-छिटक जाता है। पकड़ा नहीं, कि छूट जाता है। पकड़ भी नहीं पाए, कि छूट जाता है। एक क्षण भी नहीं रुकता एक जगह। इस ध्यान को एक जगह ठहरा लेना योग है।
तपस्वी दिखाई पड़ता है; बहुत गहरी बात नहीं है। इसका यह मतलब नहीं है
कि जो आदमी योग को उपलब्ध हो, उसके जीवन में तपश्चर्या न होगी। जो आदमी योग को उपलब्ध हो, उसके जीवन में तपश्चर्या होगी। लेकिन जो आदमी तपश्चर्या कर रहा है, उसके जीवन में योग होगा, यह जरा कठिन मामला है। इसको ख्याल में ले लें।
जो आदमी योग करता है, उसके जीवन में एक तरह की आस्टेरिटी, एक तरह की तपश्चर्या आ जाती है। वह तपश्चर्या भी सूक्ष्म होती है। वह तपश्चर्या बड़ी सूक्ष्म होती है। वह आदमी एक गहरे अर्थों में सरल हो जाता है। वह आदमी गहरे अर्थों में दुख को झेलने के लिए सदा तत्पर हो जाता है। वह आदमी सुख की

मांग नहीं करता। उस आदमी पर दुख आ जाएं, तो वह चुपचाप उनको संतोष से वहन करता है। उसके जीवन में तपश्चर्या होती है। लेकिन तपश्चर्या कल्टिवेटेड नहीं होती, इतना फर्क होता है।
दुख आ जाए, तो योगी दुख को ऐसे झेलता है, जैसे वह दुख न हो। सुख आ जाए,
तो ऐसे झेलता है, जैसे वह सुख न हो। योगी सुख और दुख में सम होता है। तपस्वी? तपस्वी दुख आ जाए, इसकी प्रतीक्षा नहीं करता; अपनी तरफ से दुख
का इंतजाम करता है, आयोजन करता है। अगर एक दिन भूख लगी हो और खाना न मिले, तो योगी विक्षुब्ध नहीं हो जाता; भूख को शांति से देखता है; सम रहता है। लेकिन तपस्वी? तपस्वी को भूख भी लगी हो, भोजन भी मौजूद हो, शरीर की जरूरत भी हो, भोजन भी मिलता हो, तो भी रोककर, हठ बांधकर बैठ जाता है कि भोजन नहीं करूंगा। यह आयोजित दुख है।
ध्यान रहे, भोगी सुख की आयोजना करता है, तपस्वी दुख की आयोजना करता है। अगर भोगी सिर सीधा करके खड़ा है, तो तपस्वी शीर्षासन लगाकर खड़ा हो जाता है। लेकिन दोनों आयोजन करते हैं।
योगी आयोजन नहीं करता। वह कहता है, प्रभु जो देता है, उसे सम भाव से मैं लेता हूं। वह आयोजन नहीं करता। वह अपनी तरफ से न सुख का आयोजन करता, न दुख का आयोजन करता। जो मिल जाता है, उस मिल गए में शांति से ऐसे गुजर जाता है, जैसे कोई नदी से गुजरे और पानी न छुए। ऐसे गुजर जाता है, जैसे कमल के पत्ते हों पानी पर खिले; ठीक पानी पर खिले, और पानी उनका स्पर्श न करता हो। लेकिन आयोजन नहीं है।
ध्यान रहे, किसी भी चीज का आयोजन करके मन को राजी किया जा सकता है-- किसी भी चीज का आयोजन करके। दुख का आयोजन करके भी दुख में सुख लिया जा सकता है।
वैज्ञानिक जानते हैं, मनोवैज्ञानिक जानते हैं उन लोगों को, जिनका नाम मैसोचिस्ट है। दुनिया में एक बहुत बड़ा वर्ग है ऐसे लोगों का, जो अपने को सताने में मजा लेते हैं। दूसरे को सताने में सभी मजा लेते हैं; करीब-करीब सभी। कुछ लोग हैं, जो अपने को सताने में भी मजा लेते हैं।
आप कहेंगे, ऐसा तो आदमी नहीं होगा, जो अपने को सताने में मजा लेता हो! मनोवैज्ञानिक कहते हैं, ऐसा आदमी बढ़ी प्रगाढ़ मात्रा में है, जो अपने को सताने में मजा लेता है। अगर उसको खुद को सताने का मौका न मिले, तो वह मौका खोजता है। वह ऐसी तरकीबें ईजाद करता है कि दुख आ जाए। जहां वह छाया में बैठ सकता था, वहां धूप में बैठता है। जहां उसे खाना मिल सकता है, वहां भूखा रह जाता है। जहां सो सकता था, वहां जगता है। जहां सपाट रास्ता था, वहां न चलकर कांटे-कबाड़ में चलता है! क्यों?
क्योंकि खुद को दुख देने से भी अहंकार की बड़ी तृप्ति होती है। खुद को दुख देकर भी पता चलता है कि मैं कुछ हूं। तुम कुछ भी नहीं हो मेरे सामने! मैं दुख झेल सकता हूं।
यह जो स्वयं को दुख देने की वृत्ति है, यह दूसरे को दुख देने की वृत्ति
का ही उलटा रूप है। चाहे दूसरे को दुख दें, चाहे अपने को दुख दें, असली रस दुख देने में है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, तपस्वी से योगी बहुत ऊपर है।
क्योंकि तपस्वी स्वयं को दुख देने की प्रक्रिया में लगा रहता है। मनोविज्ञान की भाषा में वह मैसोचिस्ट है।
मैसोच नाम का एक लेखक हुआ, जो अपने को ही कोड़े न मार ले, तब तक उसको नींद न आती थी। बिस्तर में कांटे न डाल ले, तब तक उसको नींद न आए। भोजन में जब तक थोड़ी-सी नीम न मिला ले, तब तक उससे भोजन न किया जाए। अगर हमारे मुल्क में मैसोच पैदा हुआ होता, तो हम कहते, बड़ा महात्मा है!
गांधीजी को भी नीम की चटनी भोजन के साथ खाने की आदत थी। जो भी लोग देखते थे, कहते थे, बड़ी ऊंची बात है! स्वभावतः। लुई फिशर गांधीजी को मिलने आया, तो उन्होंने लुई फिशर की भी थाली में एक बड़ी मोटी पिंडी नीम की चटनी की रखवा दी। जो भी मेहमान आता था, उसको खिलाते थे, क्योंकि खुद खाते थे। जो आदमी अपने को दुख देना सीख जाता है, वह दूसरे को भी दुख देने की चेष्टाएं करता है।

लुई फिशर ने देखा कि क्या है! और गांधीजी इतने रस से खा रहे हैं! तो उसने भी चखकर देखा, तो सब मुंह जहर हो गया। उसने सोचा कि बड़ा मुश्किल हो गया। उसके साथ रोटी लगाकर खानी, मतलब रोटी भी खराब हो जाए; सब्जी मिलाकर खाओ, सब्जी भी खराब हो जाए! पर उसने सोचा कि न खाएंगे, तो गांधीजी क्या सोचेंगे, कि मैंने इतने प्रेम से चटनी दी और न खाई। भला आदमी। उसने सोचा, इसको इकट्ठा ही गटक जाना बेहतर है सब भोजन खराब करने की बजाय। और अशुभ भी मालूम न पड़े, अशिष्टाचार भी मालूम न पड़े, इसलिए इसे एकदम एक दफा में गटक लेना अच्छा है। फिर पूरा भोजन तो खराब न हो। तो वह पूरी की पूरी चटनी गटक गया। गांधीजी ने रसोइए को कहा कि देखो, चटनी कितनी पसंद आई! और ले आओ!
लुई फिशर पर जो गुजरी होगी, वह हम समझ सकते हैं।
गांधीजी के आश्रम में एक सज्जन थे, अभी भी हैं, प्रोफेसर भंसाली। अभी उनका जन्मदिन मनाया गया। महा संत की तरह, गांधीजी के मानने वाले, भंसाली को मानते हैं। पक्के तपस्वी हैं। छः महीने तक गाय का गोबर खाकर ही रहे। तपस्वी पक्के हैं, इसमें कोई शक-शुबहा नहीं! लेकिन मैसोचिस्ट हैं। इलाज होना चाहिए दिमाग का। पागलखाने में कहीं न कहीं इलाज होना चाहिए। गाय का गोबर खाना! ऐसे तो मौज है आदमी की; जो उसे खाना हो, खाए। लेकिन यह तपश्चर्या बन जाती है। आस-पास के लोग कहते हैं, क्या महान तपस्वी! गाय का गोबर खाकर जीता है! हम तो नहीं जी सकते। नहीं जी सकते, तो फिर हम कुछ भी नहीं हैं; यह बहुत महान है। यह मैसोचिज्म है।
आज मनोविज्ञान जिसको पहचानता है कि खुद को सताने की वृत्ति बीमार है, रुग्ण है। यह स्वस्थ चित्त का लक्षण नहीं है। कृष्ण हजारों साल पहले पहचानते थे। वे अर्जुन से, जो आज का मनोविज्ञान कह रहा है, वह कह रहे हैं कि तपस्वी से ऊंचा है योगी।
क्यों? क्योंकि तपस्वी तो सिर्फ, जिसको हम कहें, ऊपरी तरकीबों और ऊपरी व्यर्थ की बातों में, और अपने को कष्ट देकर रस लेता है। और चूंकि कोई आदमी खुद को कष्ट देकर रस लेता है, बाकी लोग भी उसको आदर देते हैं। क्यों आदर देते हैं? अगर एक आदमी सड़क पर खड़े होकर अपने को कोड़े मार रहा है, तो आपको आदर देने का क्या कारण है?
अगर मनसविद से पूछेंगे, गहरा जो गया है आदमी के मन में, उससे पूछेंगे,
तो वे कहेंगे, इसका कारण है कि आप सैडिस्ट हैं, वह मैसोचिस्ट है। वह अपने को सताने में मजा ले रहा है, और आप दूसरे को सताने में मजा ले रहे हैं। आपने चाहा होता कि किसी को कोड़े मारें; उस तकलीफ से भी आपको बचा दिया। वह खुद ही कोड़े मार रहा है। आप भीड़ लगाकर देख रहे हैं, और चित्त प्रसन्न हो रहा है। आप दुष्ट प्रकृति के हैं, इसलिए आप उसमें रस ले रहे हैं।
अब एक आदमी गोबर खा रहा है। जो दुष्ट प्रकृति के लोग हैं, वे कहे रहे हैं, महात्मा! आप बड़ा महान कार्य कर रहे हैं। उनका वश चले, तो दूसरों को भी गोबर खिला दें। ये अपने हाथ से खाने को राजी हैं, तो उसके चरणों में सिर रखकर कह रहे हैं कि तुम बड़े अदभुत आदमी हो। और जब अहंकार को इस तरह तृप्ति दी जाए, तो वह जो स्वयं को दुख देना वाला आदमी है, वह और दुख देने लगता है। फिर यह विशियस सर्किल है; इसका कोई अंत नहीं है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, योगी श्रेष्ठ है तपस्वी से। फिर कहते हैं कि शास्त्र को जो जानता है, उससे योगी श्रेष्ठ है।
क्योंकि शास्त्र को जानने से सिवाय शब्दों के और क्या मिल सकता है! सत्य तो नहीं मिल सकता; शब्द ही मिल सकते हैं, सिद्धांत मिल सकते हैं, फिलासफी मिल सकती है। और सारे सिद्धांत सिर में घुस जाएंगे और मक्खियों की तरह गूंजने लगेंगे, लेकिन कोई अनुभूति उससे नहीं मिलेगी। हजार शास्त्रों को निचोड़कर कोई पी जाए, तो भी रत्तीभर, बूंदभर अनुभव उससे पैदा नहीं होगा।
कृष्ण इतनी हिम्मत की बात कह रहे हैं। वे कह रहे हैं, योगी श्रेष्ठ है शास्त्र को जानने वाले से।
क्यों? योगी श्रेष्ठ क्यों है? ऐसा योगी भी श्रेष्ठ है, जो शास्त्र को बिल्कुल न जानता हो, तो भी श्रेष्ठ है। योग ही श्रेष्ठ है।
कबीर बिल्कुल नहीं जानता शास्त्र को। अगर कोई उससे पूछे, तो वह कहता
है कि कागज में क्या लिखा है, हमें कुछ पता नहीं। हम तो वही जानते हैं, जो

आंखन देखी है। आंख से जो देखा है, वही जानते हैं। कागज में क्या लिखा है, वह हमें पता नहीं। हम बेपढ़े-लिखे गंवार हैं। हमें कुछ पता नहीं कि कागज में क्या-क्या लिखा है। तुम्हारे वेद, तुम्हारे शास्त्र, तुम्हारे आगम, तुम्हारे पुराण, तुम सम्हालो। हम तो उसकी खबर देते हैं, जो हमने आंख से देखा है। मैं तो कहता आंखन देखी, कबीर कहते हैं, तू कहता है कागद लेखी। किसी पंडित से कह रहे होंगे, तू कहता है कागज की लिखी हुई, और मैं कहता हूं, आंख की देखी हुई।
शास्त्र-ज्ञान में और योगी में यही फर्क है। शास्त्र-ज्ञान का मतलब है, कागज में जो लिखा है, उसे जान लिया। उसे जान लेने से जानने का भ्रम पैदा होता है, ज्ञान पैदा नहीं होता। ज्ञान तो पैदा होता है, स्वयं के दर्शन से। और दर्शन की विधि योग है। शुद्धतम चेतना शुद्ध होते-होते न्यू डायमेंशंस आफ परसेप्शन, दर्शन के नए आयाम को उपलब्ध होती है, जहां दर्शन होता है, जहां साक्षात्कार होता है, जहां हम देख पाते हैं, जहां हम जान पाते हैं। शास्त्र-ज्ञान प्रमाण बन सकता है, सत्य नहीं। शास्त्र-ज्ञान विटनेस
हो सकता है, साक्षी हो सकता है, ज्ञान नहीं। जिस दिन कोई जान लेता है, उस दिन अगर गीता को पढ़े, तो वह कह सकता है कि ठीक। गीता वही कह रही है, जो मैंने जाना। वेद को पढ़े, तो कहेगा, ठीक। कुरान को पढ़े, तो कहेगा, ठीक। कुरान वही कहता है, जो मैंने जाना।
और ध्यान रहे, जो हम नहीं जानते, उसे हम कभी भी गीता में न पढ़ पाएंगे।
हम वही पढ़ सकते हैं, जो हम जानते हैं। इसलिए गीता जब आप पढ़ते हैं, तो उसका अर्थ दूसरा होता है। जब आपका पड़ोसी पढ़ता है, तो अर्थ दूसरा होता है। जब और दूसरा पढ़ता है, तो अर्थ दूसरा होता है। जितने लोग पढ़ते हैं, उतने अर्थ होते हैं। होंगे ही, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति वही पढ़ सकता है, जो उसकी क्षमता है।
हम जब कुछ समझते हैं, तो वह व्याख्या है, वह हमारी व्याख्या है। और शब्दों से बड़ी भ्रांतियां पैदा हो जाती हैं। कोई कुछ समझता है, कोई कुछ समझता है। एक ही शब्द से हजार अर्थ निकलते हैं।
अभी मैं विनोद भट्ट की एक कथा पढ़ रहा था चार-छः दिन पहले। पढ़ रहा था कि
एक गांव के नेता बहुत मुश्किल में पड़ गए, क्योंकि कोई नया आंदोलन पकड़ में नहीं आ रहा था। और नेता का तो धंधा मर जाए, सीजन मर जाए, अगर कोई नया आंदोलन हाथ में न आए। फिर उन्होंने बहुत सोचा, फिर माथापच्ची की और उनको ख्याल आया कि पहले भूमिदान आंदोलन चला, तो वह सफल नहीं हुआ। फिर भूमि-छीनो आंदोलन चला, वह भी सफल नहीं हुआ। हम पत्नी-छीनो आंदोलन क्यों न चलाएं! जिसके पास दो पत्नियां हैं, उसकी एक छीनकर उसको दे दी जाए, जिसके पास एक भी नहीं है।
पूरा गांव राजी हो गया। कई लोगों के पास पत्नियां नहीं थीं। लोगों ने कहा, यह तो बिल्कुल समाजवादी प्रोग्राम है; यह तत्काल पूरा होना चाहिए। और गांव में कई लोग थे, जिनके पास दो-दो पत्नियां थीं। गांव का जमींदार था, जिसके पास दो पत्नियां थीं। सबकी नजरें उन पत्नियों पर थीं। उन्होंने कहा, कुछ न हो, हमको न भी मिली तो कोई हर्जा नहीं; जमींदार की तो छूट जाएगी। कोई फिक्र नहीं; आंदोलन चले।
आंदोलन चल पड़ा। जमींदार गांव के बाहर गया था। वह एक पत्नी को उठाकर आंदोलनकारी ले गए।
चल रहा है जुलूस। नारे लग रहे हैं। जमींदार भागा हुआ आया! नेता का पैर पकड़ लिया, और कहा कि बड़ा अन्याय कर रहे हो मेरे ऊपर। नेता ने कहा, अन्याय कुछ भी नहीं। अन्याय तुमने किया है। दो-दो पत्नियां रखे हो, जब कि गांव में कई लोगों के पास एक भी पत्नी नहीं है, आधी भी पत्नी नहीं है। दो-दो रखे हुए हो तुम? यह नहीं चलेगा। उसने कहा कि नहीं, आप समझ नहीं रहे हैं, बहुत अन्याय कर रहे हैं मेरे ऊपर। हाथ-पैर जोड़ता हूं। मुझ पर थोड़ा ध्यान धरो। मेरा थोड़ा ख्याल करो। रोने लगा, गिड़गिड़ाने लगा।
और फिर इस भीड़ में, जब पत्नी को उठाकर लाए थे, तब तक तो सोचा था कि दो पत्नियां हैं जमींदार के पास। जब लाए तो इस बीच में देखा कि साधारण सी औरत है; नाहक परेशान हो रहे हैं। फिर जब वह इतना गिड़गिड़ाने लगा, तो नेताओं ने कहा कि झंझट भी छुड़ाओ। इस स्त्री को कोई लेने को भी राजी न होगा।

तो कहा, अच्छा तू नहीं मानता है, तो ले जा अपनी पत्नी को; हम छोड़े देते हैं।
जमींदार बोला कि आप बिल्कुल गलत समझ रहे हैं। मेरा मतलब यह नहीं कि इसको लौटा दो। मेरा मतलब, दूसरी को क्यों छोड़ आए? बड़ा अन्याय कर रहे हैं।
उसको भी ले जाओ।
अब जब उसने कहा कि बड़ा अन्याय कर रहे हैं, तो बहुत कठिन था कि नेता समझ पाता कि यह कह रहा है कि दूसरी को भी ले जाओ। मुश्किल था मामला। वह यही समझा स्वभावतः, कि इस पत्नी को छोड़ दो।
शब्द का अपने आप में अर्थ नहीं है। शब्द की व्याख्या निर्मित होती है। जब गीता में से कुछ आप पढ़ते हैं, तो आप यह मत समझना कि कृष्ण जो कहते हैं, वह आप समझते हैं। आप वही समझते हैं, जो आप समझ सकते हैं। सत्य का अनुभव हो, तो गीता में सत्य का उदघाटन होता है। सत्य का अनुभव न हो और अज्ञानी के हाथ में गीता हो, तो सिवाय अज्ञान के गीता में से कोई अर्थ नहीं निकलता; निकल सकता नहीं।
शास्त्र-ज्ञान दूसरी कोटि का ज्ञान है। प्रथम कोटि का ज्ञान तो अनुभव है, स्वानुभव है। पहली कोटि का ज्ञान हो, तो शास्त्र बड़े चमकदार हैं। और पहली कोटि का ज्ञान न हो, तो शास्त्र बिल्कुल रद्दी की टोकरी में, उनका कोई मूल्य नहीं है।
गीता पढ़ने अगर योगी जाएगा, तो गीता में सागर है अमृत का। और गीता पढ़ने अगर बिना योग के कोई जाएगा, तो सिवाय शब्दों के और कुछ भी नहीं है। कोरे खाली शब्द हैं, ऐसे जैसे कि चली हुई कारतूस होती है। चली हुई कारतूस! कितना ही चलाओ, कुछ नहीं चलता। उठा लो सूत्र श्लोक एक गीता का, कर लो कंठस्थ! खाली कारतूस लिए घूम रहे हो; कुछ होगा नहीं। प्राण तो अपने ही अनुभव से आते हैं। और कृष्ण खुद कहते हैं अर्जुन को, शास्त्र-ज्ञान भी नहीं है उतना श्रेष्ठ। शास्त्र-ज्ञान से भी ज्यादा श्रेष्ठ है योग।
और तीसरी बात कहते हैं, सकाम कर्मों से--किसी आशा से की गई कोई भी प्रार्थना, कोई भी पूजा, कोई भी यज्ञ--उससे योग श्रेष्ठ है। क्यों? क्योंकि योग की साधना का आधारभूत नियम, उसकी पहली कंडीशन यह है कि तुम निष्काम हो जाओ। आशा छोड़ दो, अपेक्षा छोड़ दो, फल की आकांक्षा छोड़ दो, तभी योग में प्रवेश है।
तब यज्ञ तो बहुत छोटी-सी बात हो गई, सांसारिक बात हो गई। किसी के घर में बच्चा नहीं हो रहा है, किसी के घर में धन नहीं बरस रहा है, किसी को पद नहीं मिल रहा है, किसी को कुछ नहीं हो रहा है, तो यज्ञ कर रहा है, हवन कर रहा है।
वासना और कामना से संयोजित जो भी आयोजन हैं, योग उनसे बहुत श्रेष्ठ है। क्योंकि योग की पहली शर्त है, निष्काम हो जाओ।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, अर्जुन, तू योगी बन। तू योग को उपलब्ध हो। योग
से कुछ भी नीचे, इंचभर नीचे न चलेगा। और उन्होंने अब तक योग की ही शिलाएं रखीं, आधारशिलाएं रखीं। योग की ही सीढ़ियां बनाईं। और अब वे अर्जुन से कहते हैं कि योग की यात्रा पर निकल अर्जुन। तेरा मन चाहेगा कि सकाम कोई भक्ति में लग जा, युद्ध जीत जाए, राज्य मिल जाए। लेकिन मैं कहता हूं कि सकाम होना धर्म की दिशा में सम्यक यात्रा-पथ नहीं है। तेरा मन करेगा कि योग के इतने उपद्रव में हम क्यों पड़ें! शास्त्र पढ़ लेंगे, सत्य उसमें मिल जाएगा। सरल, शार्टकट; कोई चेष्टा नहीं, कोई मेहनत नहीं। एक किताब खरीद लाते हैं। किताब को पढ़ लेते हैं। भाषा ही जाननी काफी है। सत्य मिल जाएगा। तेरा मन तुझे कहेगा, शास्त्र पढ़ लो, सत्य मिल जाएगा। कहां जाते हो योग की साधना को? पर तू सावधान रहना। शास्त्र से शब्द के अलावा कुछ भी न मिलेगा। असली शास्त्र तो तभी मिलेगा, जब सत्य तुझे मिल चुका है। उसके पूर्व नहीं, उससे अन्यथा नहीं। और तेरा मन शायद करने लगे... ।
जानकर अर्जुन से ऐसा कहा है। क्योंकि अर्जुन कह रहा है कि दूसरों को मैं क्यों मारूं? दूसरे मर जाएंगे, तो बहुत दुख होगा जगत में। इससे बेहतर है, मैं अपने को ही क्यों न सता लूं! छोड़ दूं राज्य, भाग जाऊं जंगल, बैठ जाऊं झाड़ के नीचे।

अर्जुन ऐसे सैडिस्ट है। क्षत्रिय जिसको भी होना हो, उसे दूसरे को सताने की वृत्ति में निष्णात होना चाहिए, नहीं तो क्षत्रिय नहीं हो सकता। क्षत्रिय जिसे होना हो, उसे दूसरे को सताने की वृत्ति में सामर्थ्य होनी चाहिए। तो क्षत्रिय तो दूसरे को सताएगा ही। पर अगर क्षत्रिय दूसरे को सताने से किसी कारण से भी बेचैन हो जाए, तो अपने को सताना शुरू कर देगा। इसलिए ध्यान रहे, ब्राह्मणों ने इतने तपस्वी पैदा नहीं किए, जितने क्षत्रियों ने पैदा किए इस भारत में। तपस्वियों का असली वर्ग क्षत्रियों से आया, ब्राह्मणों से नहीं। और बड़े मजे की बात है कि ब्राह्मण तो सदा दुख में जीए, दीनता में, दरिद्रता में। लेकिन फिर भी ब्राह्मणों ने कभी भी स्वयं को दुख देने के बहुत आयोजन नहीं किए। क्षत्रियों ने किए स्वयं को दुख देने के आयोजन। बड़े से बड़े तपस्वी क्षत्रियों ने पैदा किए हैं।
उसका कारण है। और वह कारण यह है कि क्षत्रिय की तो पूरी की पूरी साधना
ही होती है दूसरे को सताने की। अगर वह किसी दिन दूसरे को सताने से ऊब गया, तो वह करेगा क्या? जिस तलवार की धार आपकी तरफ थी, वह अपनी तरफ कर लेगा। अभ्यास उसका पुराना ही रहेगा। कल वह दूसरे को काटता, अब अपने को काटेगा। कल वह दूसरे को मारता, अब वह अपने को मारेगा। ब्राह्मण ने कभी भी स्वयं को सताने का बहुत बड़ा आयोजन नहीं किया है।
इसलिए जब तक ब्राह्मण इस देश में बहुत प्रतिष्ठा में थे, तब तक इस देश में तपस्वी नहीं थे, योगी थे। जब तक ब्राह्मण इस देश में प्रतिष्ठा में थे, तो तपस्वियों की कोई बहुत महत्ता न थी, योगियों की महत्ता थी।
लेकिन तपस्वियों ने योगियों की महत्ता को बुरी तरह नीचे गिराया, क्योंकि योग तो दिखाई नहीं पड़ता था। तपस्वियों ने कहना शुरू किया कि ये ब्राह्मण? ये कहते तो हैं कि हम गुरुकुल में रहते हैं, लेकिन इनके पास हजार-हजार गाएं हैं, दस-दस हजार गाएं हैं। इनके पास दूध-घी की नदियां बहती हैं। इनके पास सम्राट चरणों में सिर रखते हैं, हीरे-जवाहरात भेंट करते हैं। यह कैसा योग? यह तो भोग चल रहा है!
और बड़े आश्चर्य की बात है कि जिन गुरुकुलों में, जिन वानप्रस्थ आश्रमों में ब्राह्मणों के पास आती थी संपत्ति, निश्चित ही आती थी, लेकिन उस संपत्ति के कारण उनका योग नहीं चल रहा था, ऐसी कोई बात न थी। बल्कि सच तो यह है कि वह संपत्ति इसीलिए आती थी कि जिनको भी उनमें योग की गंध मिलती थी, वे उनकी सेवा के लिए तत्पर हो जाते थे। लेकिन भीतर महायोग चल रहा था।
पर तपस्वियों ने कहा, यह कोई योग है? ये कैसे ऋषि? नहीं; ये नहीं। धूप में खड़ा हुआ, योगी होगा। भूखा, उपवास करता, योगी होगा। शरीर को गलाता, सताता, योगी होगा। रात-दिन अडिग खड़ा रहने वाला योगी होगा।
क्षत्रिय ऐसा कर सकते थे; ब्राह्मण ऐसा कर भी न सकते थे।
ब्राह्मणों के पास बहुत डेलिकेट सिस्टम थी, उनके पास शरीर तो बहुत नाजुक था। उनका कभी कोई शिक्षण तलवार चलाने का, और युद्धों में लड़ने का, और घोड़ों पर चढ़कर दौड़ने का, उनका कोई शिक्षण न था। क्षत्रियों का था। तपश्चर्या में वे उतर सकते थे सरलता से। अगर उन्हें खड़े रहना है चौबीस घंटे, तो वे खड़े रह सकते थे। ब्राह्मण तो सुखासन बनाता है। वह तो ऐसा आसन खोजता है, जिसमें सुख से बैठ जाए। वह तो नीचे आसन बिछाता है। वह तो ऐसी जगह खोजता है, जहां मच्छड़ न सताएं उसे।
क्षत्रिय खड़ा हो सकता था अधिक मच्छड़ों के बीच में। क्योंकि जिसका अभ्यास धनुष-बाणों को झेलने का हो, मच्छड़ उसको कुछ परेशान कर पाएंगे? और जिसको मच्छड़ परेशान कर दें, वह युद्ध की भूमि पर धनुष-बाण, बाण छिदेंगे जब छाती में, तो झेल पाएगा? सारी अभ्यास की बात थी।
इसलिए जब क्षत्रियों ने धर्म की साधना में गति शुरू की, तो उन्होंने तत्काल तपस्वी को प्रमुख कर दिया और योगी को पीछे कर दिया।
लेकिन कृष्ण कहते हैं अर्जुन को, योग ही श्रेष्ठ है अर्जुन। क्योंकि अर्जुन के लिए भी तपश्चर्या सरल थी। अर्जुन भी तपस्वी बन सकता था आसानी से। योगी बनना कठिन था। इसलिए कृष्ण ने तीनों बातें कहीं; सकाम भी तू बन सकता है सरलता से; युद्ध तुझे जीतना, राज्य तुझे पाना। शास्त्र भी पढ़ सकता है तू आसानी से, शिक्षित है, सुसंस्कृत है। शास्त्र पढ़ने में कोई अड़चन नहीं; सत्य मुफ्त में मिलता हुआ मालूम पड़ता है। स्वयं को सताने वाला

तपस्वी भी बन सकता है तू। तू क्षत्रिय है; तुझे कोई अड़चन न आएगी। लेकिन मैं कहता हूं तुझसे कि योग श्रेष्ठ है इन तीनों में। अर्जुन, तू योगी बन!

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः।। 47।।
और संपूर्ण योगियों में भी, जो श्रद्धावान योगी मेरे में लगे हुए अंतरात्मा से मेरे को निरंतर भजता है, वह योगी मुझे परम श्रेष्ठ मान्य है।

अंतिम श्लोक इस अध्याय का श्रद्धा पर पूरा होता है। कृष्ण कहते हैं,
और श्रद्धा से मुझमें लगा हुआ योगी परम अवस्था को उपलब्ध होता है, वह मुझे सर्वाधिक मान्य है।
दो तरह के योगी हो सकते हैं। एक बिना किसी श्रद्धा के योग में लगे हुए। पूछेंगे आप, बिना किसी श्रद्धा के कोई योग में क्यों लगेगा?
बिना श्रद्धा के भी लग सकता है। बिना श्रद्धा के लगने का अर्थ यह है
कि जीवन के दुखों से जो पीड़ित हो गया; जीवन के दुखों से जो छिन्न-भिन्न हो गया जिसका अंतःकरण; जीवन के दुख जिसके प्राणों में कांटे से चुभ गए; जीवन की पीड़ा से मुक्त होने के लिए कोई चेष्टा कर सकता है योग की। यह निगेटिव है। जीवन के दुख से हटना है। लेकिन जीवन के पार कोई परमात्मा है, इसकी कोई पाजिटिव श्रद्धा, इसकी कोई विधायक श्रद्धा उसमें नहीं है। इतना ही हो जाए तो काफी है कि जीवन के दुख से मुक्ति हो जाए। नहीं पाना है कोई परमात्मा, नहीं कोई मोक्ष, नहीं कोई निर्वाण। कोई श्रद्धा नहीं है कि ऐसी कोई चीज होगी। इतना ही हो जाए, तो काफी कि जीवन के दुख से छुटकारा हो जाए। जीवन के दुख से छुटकारा जिसको चाहिए, मात्र जीवन के दुख से छुटकारा जिसे चाहिए, जीवन की ऊब से भागा हुआ, जो अपने को किसी सुरक्षित अंतःस्थल में पहुंचा देना चाहता है; वह बिना परमात्मा में श्रद्धा के भी योग में संलग्न हो सकता है।
क्या वह परमात्मा को नहीं पा सकेगा? पा सकेगा, लेकिन यात्रा बहुत लंबी होगी। क्योंकि परमात्मा जो सहायता दे सकता है, वह उसे न मिल सकेगी। यह फर्क समझ लें।
इसलिए कृष्ण उसे कहते हैं, जो मुझमें श्रद्धा से लीन है, मेरी आत्मा
से अपनी आत्मा को मिलाए हुए है, उसे मैं परम श्रेष्ठ कहता हूं। क्यों?
एक बच्चा चल रहा है रास्ते पर। कई बार बच्चा अपने बाप का हाथ पकड़ना पसंद नहीं करता। उसके अहंकार को चोट लगती है। वह बाप से कहता है, छोड़ो हाथ। मैं चलूंगा। बच्चे को बड़ी पीड़ा होती है कि तुम मुझे चलने तक के योग्य नहीं मानते! मैं चल लूंगा; तुम छोड़ो मुझे। बाप छोड़ दे या बेटा झटका देकर हाथ अलग कर ले, तो भी बेटा चलना सीख जाएगा, लेकिन लंबी होगी यात्रा। भूल-चूक बहुत होगी। हाथ-पैर बहुत टूटेंगे। और जरूरी नहीं है कि इसी जन्म में चलना सीख पाए। जन्म-जन्म भी लग सकते हैं।
तो बेटा चलना तो चाहता है, लेकिन अपने से अन्य में कोई श्रद्धा का भाव नहीं है। खुद के अहंकार के अतिरिक्त और किसी के प्रति कोई भाव नहीं है। तो कृष्ण कहते हैं, जो मुझमें श्रद्धा से लगा है।
क्या फर्क पड़ेगा? यह फर्क पड़ेगा कि जो मुझमें श्रद्धा से लगा है, वह श्रम तो करेगा, लेकिन अपने ही श्रम को कभी पर्याप्त नहीं मानेगा, नाट इनफ। मेहनत पूरी करेगा, और फिर भी कहेगा कि प्रभु तेरी कृपा हो, तो ही पा सकूंगा। इसमें फर्क है। अहंकार निर्मित न हो पाएगा, श्रद्धा में जिसका जीवन है। वह कहेगा, मेहनत मैं पूरी करता हूं, लेकिन फिर भी तेरी कृपा के बगैर तो मिलना नहीं होगा। मेरी अकेले की मेहनत से क्या होगा? चलूंगा मैं जरूर, कोशिश मैं जरूर करूंगा, लेकिन मैं गिर जाऊंगा। तेरे हाथ का सहारा मुझे बना रहे। और आश्चर्य की बात यह है कि इस तरह का जो चित्त है, उसका द्वार सदा ही परम शक्ति को पाने के लिए खुला रहेगा।
जो श्रद्धावान नहीं है, उसका द्वार क्लोज्ड है, उसका मन बंद है। वह कहता है, मैं काफी हूं।
लीबनिज ने कहा है, कुछ लोग ऐसे हैं, जैसे विंडोलेस कोई मकान हो, खिड़की रहित कोई मकान हो; सब द्वार-दरवाजे बंद, अंदर बैठे हैं।

श्रद्धावान व्यक्ति वह है, जिसके द्वार-दरवाजे खुले हैं। सूरज को भीतर आने की आज्ञा है। हवाओं को भीतर प्रवेश की सुविधा है। ताजगी को निमंत्रण है कि आओ। श्रद्धा का और कोई अर्थ नहीं होता। श्रद्धा का अर्थ है, मुझसे भी विराट शक्ति मेरे चारों तरफ मौजूद है, मैं उसके सहारे के लिए निरंतर निवेदन कर रहा हूं। बस, और कुछ अर्थ नहीं होता।
मैं अकेला काफी नहीं हूं। क्योंकि मैं जन्मा नहीं था, तब भी वह विराट शक्ति मौजूद थी। और आज भी मेरे हृदय की धड़कन मेरे द्वारा नहीं चलती, उसके ही द्वारा चलती है। और आज भी मेरा खून मैं नहीं बहाता, वही बहाता है। और आज भी मेरी श्वास मैं नहीं लेता, वही लेता है। और कल जब मौत आएगी, तो मैं कुछ न कर सकूंगा। शायद वही मुझे अपने में वापस बुला लेगा। तो जो मुझे जन्म देता, जो मुझे जीवन देता, जो मुझे मृत्यु में ले जाता, जिसके हाथ में सारा खेल है, मैं अकड़कर यह कहूं कि मैं ही चल लूंगा, मैं ही सत्य तक पहुंच जाऊंगा, तो थोड़ी-सी भूल होगी। द्वार बंद हो जाएंगे व्यर्थ ही। विराट शक्ति मिल सकती थी सहयोग के लिए, वह न मिल पाएगी।
इसलिए अंतिम सूत्र कृष्ण कहते हैं, योग की इतनी लंबी चर्चा के बाद श्रद्धा की बात!
योग का तो अर्थ है, मैं करूंगा कुछ; श्रद्धा का अर्थ है, मुझसे अकेले
से न होगा। योग और श्रद्धा विपरीत मालूम पड़ेंगे। योग का अर्थ है, मैं करूंगा--विधि, साधन, प्रयोग, साधना। और श्रद्धा का अर्थ है, करूंगा जरूर; लेकिन मैं काफी नहीं हूं, तेरी भी जरूरत पड़ती रहेगी। और जहां मैं कमजोर पड़ जाऊं, तेरी शक्ति मुझे मिले। और जहां मेरे पैर डगमगाएं, तेरा बल मुझे सम्हाले। और जहां मैं भटकने लगूं, तू मुझे पुकारना। और जहां मैं गलत होने लगूं, तू मुझे इशारा करना।
और मजे की बात यह है कि जो इस भाव से चलता है, उसे इशारे मिलते हैं, सहारे मिलते हैं; उसे बल भी मिलता है, उसे शक्ति भी मिलती है। और जो इस भरोसे नहीं चलता, उसे भी मिलता है इशारा, लेकिन उसके द्वार बंद हैं, इसलिए वह नहीं देख पाता। उसे भी मिलती है शक्ति, लेकिन शक्ति दरवाजे से ही वापस लौट जाती है। उसे भी मिलता है सहारा, लेकिन वह हाथ नहीं बढ़ाता, और बढ़ा हुआ परमात्मा का हाथ वैसा का वैसा रह जाता है।
ऐसा मत समझना आप कि श्रद्धा का यह अर्थ हुआ कि जो परमात्मा में श्रद्धा करते हैं, उनको ही परमात्मा सहायता देता है। नहीं, परमात्मा तो सहायता सभी को देता है। लेकिन जो श्रद्धा करते हैं, वे उस सहायता को ले पाते हैं। और जो श्रद्धा नहीं करते, वे नहीं ले पाते हैं।
श्रद्धा का अर्थ है, ट्रस्ट। मैं एक बूंद से ज्यादा नहीं हूं इस विराट जीवन के सागर में। इस अस्तित्व में एक छोटा-सा कण हूं। इस विराट अस्तित्व में मेरी क्या हस्ती है?
योग तो कहता है कि तू अपनी हस्ती को इकट्ठा कर और श्रम कर। और श्रद्धा कहती है, अपनी हस्ती को पूरा मत मान लेना। नाव को खोलना जरूर किनारे से, लेकिन हवाएं तो उसकी ही ले जाएंगी तेरी नाव को। नाव को खोलना जरूर किनारे से, लेकिन नदी की धार तो उसी की है, वही ले जाएगी। नाव को खोलना जरूर, लेकिन तेरे हृदय की धड़कन भी उसी की है, वही पतवार चलाएगी। यह सदा स्मरण रखना कि कर रहा हूं मैं, लेकिन मेरे भीतर तू ही करता है। चलता हूं मैं, लेकिन मेरे भीतर तू ही चलता है।
ऐसी श्रद्धा बनी रहती है, तो छोटा-सा दीया भी सूरज की शक्ति का मालिक
हो जाता है। ऐसी श्रद्धा बनी रहती है, तो छोटा-सा अणु भी परम ब्रह्मांड की शक्ति के साथ एक हो जाता है। ऐसी श्रद्धा बनी रहती है, तो फिर हम अकेले नहीं हैं, फिर परमात्मा सदा साथ है।
एक छोटी-सी घटना, और मैं अपनी बात पूरी करूं।
संत थेरेसा, एक ईसाई फकीर औरत हुई। वह एक बहुत बड़ा चर्च बनाना चाहती थी; बहुत बड़ा, कि जमीन पर इतना बड़ा कोई चर्च न हो। उसके शिखर आकाश को छुएं, और उसके शिखर स्वर्णमंडित हों, और स्वर्ण में हीरे जड़े हों। वह दिन-रात उसी की कल्पना करती थी। फिर एक दिन उसने गांव में आकर कहा कि मुझे कोई कुछ दान कर दो। मैं एक बहुत बड़ा चर्च, मंदिर बनाना चाहती हूं प्रभु के लिए।

लेकिन जैसे कि सब गांव के लोग होते हैं, वैसे ही उस गांव के लोग भी थे। उसने बहुत, अगर उसके पास डब्बा रहा होगा, तो बहुत बजाया। तीन नए पैसे लोगों ने दिए। लेकिन थेरेसा नाचने लगी, और लोगों से बोली कि अब चर्च बन जाएगा। लोगों ने कहा, डब्बा तो इतना छोटा है, चर्च बहुत बड़ा। क्या डब्बा पूरा भर गया? तो भी क्या होगा?
डब्बा खोला। भरा तो क्या था, कुल तीन पैसे थे! फिर भी संत थेरेसा ने कहा कि नहीं, बन जाएगा चर्च। लोगों ने कहा, तू पागल तो नहीं हो गई। तीन पैसे में उतना बड़ा चर्च बनाने का इरादा रखती है! एक ईंट भी न आएगी! तू है दुबली- पतली गरीब औरत, और ये तीन पैसे हैं। तू धन तीन पैसे! कितना बड़ा चर्च बनाने का इरादा है? हिसाब क्या है?
संत थेरेसा ने कहा, तुम एक और मौजूद है हम दोनों के बीच, उसे नहीं देख रहे हो। मैं, परमात्मा, तीन पैसे--जोड़ो। चर्च बन जाएगा। जोड़ो! मुझमें तो कुछ भी नहीं है; मुझसे क्या होगा! तीन पैसे में क्या रखा है, उससे क्या होगा! लेकिन हम दोनों की जितनी ताकत थी, वह हमने पूरी लगा दी। अब परमात्मा बीच में है, वह सम्हाल लेगा।
और जिस जगह पर संत थेरेसा ने यह कहा था, उस जगह पर संत थेरेसा का कैथेड्रल है--जमीन पर श्रेष्ठतम मंदिरों में से एक। वह अब भी खड़ा है। उस चर्च के नीचे पत्थर पर यह लिखा है कि हम हार गए इस गांव के लोग इस गरीब औरत से, जिसने कहा, तीन पैसे, मैं और धन एक और, जो तुम्हें नहीं दिखाई पड़ता, मुझे दिखाई पड़ता है।
श्रद्धा का इतना ही अर्थ है। श्रम आपका, शक्ति आपकी, लेकिन काफी नहीं; तीन पैसे से ज्यादा नहीं पड़ेगी। योग आपका, लेकिन तीन पैसे से ज्यादा का नहीं हो पाएगा।
इसलिए योग की इतनी चर्चा करने के बाद कृष्ण ने जो सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण बात कही है, वह यह है कि श्रद्धायुक्त जो मुझमें है, उसे मैं परम श्रेष्ठ कहता हूं।
इतना ही इस बार।
अब थोड़ी देर, वह जो अदृश्य है, उस अदृश्य के गीत में ये संन्यासी संलग्न होंगे। आप भी संलग्न हों। कौन जाने किस क्षण उसकी वीणा का स्वर आपके भीतर भी बजने लगे; कोई नहीं जानता।
रोकें मत। आज तो आखिरी दिन है। यह पूरा का पूरा स्थान गूंज उठे आनंद से।

गीता दर्शन, भाग तीन
गीता दर्शन अध्याय 7
पहला प्रवचन

अनन्य निष्ठा

श्रीमद्भगवद्गीता अथ सप्तमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच
मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युंजन्मदाश्रयः।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु।। 1।।
श्रीकृष्ण भगवान बोले, हे पार्थ, तू मेरे में अनन्य प्रेम से आसक्त हुए मन वाला और अनन्य भाव से मेरे परायण योग में लगा हुआ मुझको संपूर्ण विभूति, बल, ऐश्वर्यादि गुणों से युक्त सबका आत्मरूप जिस प्रकार संशयरहित जानेगा, उसको सुन।

धर्म मौलिक रूप से जीवन के प्रति एक प्रेमपूर्ण निष्ठा का नाम है।
जीवन के प्रति दो दृष्टियां हो सकती हैं। एक--नकार की, इनकार की, अस्वीकार की। दूसरी--स्वीकार की, निष्ठा की, प्रीति की। जितना अहंकार होगा भीतर, उतना जीवन के प्रति अस्वीकार और विरोध होता है। जितनी विनम्रता होगी, उतना स्वीकार। जैसा है जीवन, उसके प्रति एक भरोसा और ट्रस्ट। और जीवन जहां ले जाए, उसका हाथ पकड़कर जाने की संशयहीन अवस्था होती है।
कृष्ण इस सूत्र में अर्जुन से कह रहे हैं कि जो अनन्य भाव से मेरे प्रति प्रेम और श्रद्धा से भरा है!
अनन्य भाव को ठीक से समझ लेना जरूरी है।
प्रेम दो तरह के हो सकते हैं। एक प्रेम वैसा, जिसमें अन्य का भाव मौजूद रहता है, दूसरा दूसरा ही रहता है, और हम प्रेम करते हैं। पिता बेटे को प्रेम करता है, वह अनन्य नहीं होता। बेटा बेटा ही होता है, पिता पिता ही होता है। प्रेम में ऐसा नहीं होता कि पिता बेटा हो जाए, बेटा पिता हो जाए। भेद कायम रहता है। अलगाव मौजूद रहता है। दोनों के बीच दीवाल बनी ही रहती है। कितनी ही पारदर्शी हो, कितनी ही ट्रांसपैरेंट हो, पर दीवाल बनी ही रहती है। पति पत्नी को प्रेम करता है, या मित्र मित्र को प्रेम करता है, तो भी अन्य भाव मौजूद रहता है। दि अदर, वह जो दूसरा है, कितना ही अपना मालूम पड़े, फिर भी दूसरा ही होता है। कितने ही निकट हो, फिर भी एक नहीं हो जाता। कृष्ण कहते हैं, अनन्य भाव से जो मुझे प्रेम करता! जो इस भांति प्रेम करता है कि एक ही बचे, दो न रह जाएं।
प्रार्थना और प्रेम का यही फर्क है। जहां दो कायम रहते हैं, वहां प्रेम; और जहां दो विलीन हो जाते हैं, वहां प्रार्थना।
यह प्रार्थना का सूत्र है। अनन्य भाव की दशा केवल परमात्मा के प्रति
हो सकती है, किसी व्यक्ति के प्रति नहीं हो सकती है। किसी व्यक्ति के प्रति इसलिए नहीं हो सकती कि जब भी दूसरा व्यक्ति होता है, तब उसकी सीमाएं हैं। और जब हम भी उसके पास व्यक्ति की भांति जाते हैं, तो अपनी सीमाओं को साथ लेकर जाते हैं। दोनों की सीमाएं ही दीवाल बन जाती हैं, और दोनों की सीमाएं ही दोनों को दूर करती हैं।
मनुष्य के प्रेम में हम कितने ही निकट आ जाएं, निकट आकर भी दूरी कायम रहती है। बल्कि सच तो यह है, जितने निकट आते हैं, उतनी ही दूरी का एहसास गहन, स्पष्ट होता है। प्रेमी जितने निकट आते हैं, उतना ही प्रतीत होता है कि दोनों के बीच एक बड़ा फासला है, जो पार नहीं किया जा सकता; अनब्रिजेबल; कुछ है, जिस पर कोई सेतु नहीं बन सकता।
वही तो प्रेम की पीड़ा है और कष्ट है। प्रेमी दूर हो, तो इतनी पीड़ा नहीं मालूम पड़ती, क्योंकि लगता है, पास आ सकते हैं। लेकिन जब प्रेमी बिल्कुल ही पास आ जाए, और पास आने का उपाय न रह जाए, तब पीड़ा सघन हो जाती है। क्योंकि अब पास आने का कोई उपाय भी न रहा। जितने पास आ सकते थे, उतने पास आ गए। लेकिन फिर भी दूरी कायम है। वह दूरी सिर्फ प्रार्थना में ही टूटती है। और वह

दूरी उसके साथ ही टूट सकती है, जिसकी कोई सीमा न हो। जिसकी भी सीमा है, उसके साथ वह दूरी नहीं टूट सकती है।
सिर्फ परमात्मा की तरफ ऐसा प्रेम हो सकता है जो अनन्य हो जाए, जिसमें दूसरा मौजूद न रहे, जिसमें दूसरा मिट ही जाए। बड़े मजे की बात है लेकिन यह, क्योंकि जब दूसरा मिटता है, तो मैं भी मिट जाता हूं। मैं भी तभी तक हो सकता हूं, जब तक दूसरा है। जब तक तू है, तभी तक मैं भी हो सकता हूं। मैं और तू एक ही चीज के दो पहलू हैं। एक को फेंक देंगे, दूसरा भी खो जाएगा। ऐसा नहीं हो सकता कि मैं एक को बचा लूं और दूसरे को छोड़ दूं।
इसलिए वेदांत बहुत अदभुत शब्द का उपयोग करता है, वह शब्द है, अद्वैत। वेदांत कहता है कि उस परम स्थिति में ऐसा नहीं कहते हम कि एक बचेगा; हम इतना ही कहते हैं कि दो न बचेंगे। वेदांत ऐसा भी कह सकता था कि उस परम स्थिति में एक ही बचेगा, लेकिन एक तो बच नहीं सकता बिना दूसरे के बचे। दूसरा रहेगा, तो ही एक हो सकता है। इसलिए वेदांत बड़े उलटे ढंग से इस बात को कहता है। वह कहता है, दो न बचेंगे, अद्वैत होगा। यह नहीं कहते कि एक बचेगा; इतना ही कहते हैं कि दो न बचेंगे।
अनेक लोग सोचते हैं कि जब दो न बचेंगे, तो एक बच जाएगा। वहां भूल होती है। उस भूल को मैं आपको साफ करना चाहता हूं।
अगर दो न बचेंगे और एक ही बच जाएगा, तो फिर वेदांत को यही कहना था कि एक बचेगा। अद्वैत की बात करनी व्यर्थ थी। कहनी थी एकत्व की बात, एक बचेगा। इसमें भी कृष्ण यह कहते हैं कि दूसरा नहीं बचेगा, दि अदर विल नाट बी, अनन्य।
लेकिन अगर आप सोचते हों कि दूसरा न बचेगा, तो मैं बच जाऊंगा, तो आप गलत सोचते हैं। दो बचें, तो ही आप बच सकते हैं। अगर दूसरा न बचा, तो आप भी खो जाएंगे। आपको बचने की भी कोई जगह न बचेगी।
अनन्य प्रेम का अर्थ है, प्रेम ही बचेगा। न तो प्रेमी बचेगा, और न प्रेयसी बचेगी। न तो प्रेमी बचेगा, न प्रेमपात्र बचेगा; प्रेम ही बच जाएगा। सिर्फ प्रेम ही रह जाएगा। दोनों के बीच में जो है, वही बचेगा, और दोनों खो जाएंगे।
ऐसे अनन्य भाव को जो उपलब्ध हो, उस व्यक्ति को ही कृष्ण कहते हैं, वही योगी है, वही भक्त है। उसे हम जो भी नाम देना चाहें। लेकिन जहां दोनों मिट जाएं, जहां एक भी न बचे।
डर लगता है कि अगर दोनों मिट जाएंगे, तो फिर तो कुछ भी न बचेगा। और मजे
की बात यह है कि जब दोनों मिटते हैं, तभी उसका पता चलता है, जो सब कुछ है। और जब तक दोनों रहते हैं, तब तक हमें कुछ भी पता नहीं चलता उसका, जो है। तब तक केवल दो बर्तनों के टकराने की आवाज सुनाई पड़ती है। इसलिए सभी हमारे प्रेम कलह बन जाते हैं। ऐसा प्रेम हमारे जीवन में खोजना कठिन है, जो कलह और कांफ्लिक्ट न बन जाए। कलह बन ही जाएगी।
दो व्यक्ति प्रेम में पड़े कि जानना चाहिए कि वे कलह की तैयारी में पड़ रहे हैं। शीघ्र ही कलह प्रतीक्षा करेगी। बस, दो बर्तन आवाज करेंगे, संघर्ष करेंगे, टकराएंगे। क्योंकि जहां भी मैं मौजूद हूं और दूसरा मौजूद है, वहां डामिनेशन की कोशिश जारी रहेगी, वहां मालकियत की कोशिश जारी रहेगी। अगर एक कमरे में हम दो आदमियों को बंद कर दें, तो वे न भी बोलें, चुप भी बैठें, आंख भी बंद रखें, तो भी उनकी दोनों की कोशिश एक-दूसरे के मालिक बनने की शुरू हो जाएगी। जहां दूसरा मौजूद हुआ कि मालकियत शुरू हो गई, हिंसा शुरू हो गई। दूसरे के ऊपर हावी होने की कोशिश शुरू हो गई।
अनन्य भाव का अर्थ है, जहां कोई मालकियत का सवाल नहीं है; जहां कोई ऊपर नहीं, कोई नीचे नहीं; जहां दूसरा ही नहीं। अगर दूसरा मौजूद है, तो वह हमारा ही तथाकथित प्रेम है, उसे चाहे हम भक्ति कहें। लेकिन अगर दूसरा मालूम पड़ता है कि दूसरा है, तो वह भक्ति नहीं है, हमारे सांसारिक प्रेम का ही थोड़ा-सा सब्लिमेटेड, थोड़ा-सा शुद्ध हुआ रूप है। और उस शुद्ध हुए रूप में सारी बीमारियां शुद्ध होकर मौजूद रहेंगी। और बीमारियां जब शुद्ध हो जाती हैं, तो और भी खतरनाक हो जाती हैं। जब बीमारी पूरी शुद्ध होती है, तो उसका डोज होमियोपैथिक हो जाता है, बहुत सूक्ष्म हो जाता है, बहुत प्राणों तक छेदता है।

सुना है मैंने कि एक बौद्ध भिक्षुणी अपने साथ बुद्ध की एक स्वर्ण-प्रतिमा रखती थी छोटी। पर बुद्ध के प्रति प्रेम वैसा ही था, जैसा कि लोगों का लोगों के प्रति होता है। अगर कोई राम का नाम ले देता, तो उसे पीड़ा होती। अगर कोई कृष्ण का नाम ले देता, तो उसे चोट पहुंचती। अगर कोई जीसस का नाम ले देता, तो वह बेचैन होती। यह कोई अनन्य भाव न था। इसमें बुद्ध भी एक दूसरे व्यक्ति थे, वह भी स्वयं और थी। और अभी ईर्ष्या कायम थी। बुद्ध का प्रेम कृष्ण के प्रति प्रेम में बाधा बनता।
लेकिन यह तो समझ में आ सकता है कि बुद्ध और कृष्ण और महावीर के बीच उसे ईर्ष्या मालूम पड़े। लेकिन एक बार वह चीन के एक मंदिर में ठहरी, जो मंदिर सहस्र बुद्धों का मंदिर कहलाता है। उसमें एक सहस्र बुद्ध की प्रतिमाएं हैं। बड़ी-बड़ी प्रतिमाएं, विशालकाय। जब सुबह वह अपने बुद्ध की--अपने बुद्ध की--पूजा करने बैठी, तो उसके मन में हुआ कि मैं धूप जलाऊंगी, लेकिन धुआं तो ये जो बड़े-बड़े बुद्धों की मूर्तियां खड़ी हैं, ये ले जाएंगी। मैं फूल चढ़ाऊंगी, लेकिन सुगंध तो इन बड़े-बड़े बुद्धों की मूर्तियों तक पहुंच जाएगी। उसके पास तो छोटे-से बुद्ध थे। और हमारे पास बड़ी चीज हो भी नहीं सकती। हम इतने छोटे हैं कि हमारा भगवान भी उतना ही छोटा हो सकता है। हमसे बड़ी चीज हमारे पास नहीं हो सकती। उसे हम सम्हालेंगे कैसे?
जितना छोटा उसका मन था, उससे भी छोटे उसके भगवान थे। रखी उसने मूर्ति, लेकिन उसे बड़ी पीड़ा हुई कि यह मैं जलाऊंगी तो धूप अपने बुद्ध के लिए, पहुंच जाएगी न मालूम किन के बुद्धों के लिए! तो उसने एक बांस की पोंगरी बनाई। धूप जलाई और बांस की पोंगरी से धूप के धुएं को अपने बुद्ध की नाक तक पहुंचाया। स्वभावतः जो होना था, वह हो गया। बुद्ध का मुंह काला हो गया! सभी भक्त अपने भगवानों का मुंह काला करवा देते हैं! बुद्ध का मुंह काला हो गया। बहुत बेचैन हुई, बहुत घबड़ाई। भीड़ इकट्ठी हो गई। रोने लगी। लोगों ने कहा, पागल तूने यह क्या किया है? उसने कहा, यह सोचकर कि मेरे जलाए हुए धूप की सुगंध मेरे बुद्ध तक ही पहुंचे। उस भीड़ में खड़ा था एक भिक्षु, वह हंसने लगा। उसने कहा कि तब, जहां भी अहंकार है, वहां यह होगा ही।
यह भक्ति नहीं है, यह वही राग है। वही राग जो हम जिंदगी में बसाते हैं
और एक-दूसरे का मुंह काला कर देते हैं। कलह और ईर्ष्या और हिंसा और दुख और पीड़ा, वही पूरा नर्क वहां भी मौजूद हो गया।
अनन्य भाव का अर्थ है, न भक्त बचे, न भगवान बचे, भक्ति ही बच जाए। न प्रेमी बचे, न प्रेमपात्र बचे, प्रेम ही बच जाए।
और जिस दिन ऐसी घटना घटती है--और घटती है, और किसी के भी जीवन में कभी
भी घट सकती है, सिर्फ अपने को मिटाने की तैयारी चाहिए--तो जिस दिन ऐसी घटना घटती है, उस दिन फिर ऐसा नहीं होता कि यह रहा भगवान। उस दिन फिर ऐसा होता है कि ऐसी कोई जगह नहीं, जहां भगवान नहीं। फिर ऐसा कोई चेहरा नहीं, जो भगवान का चेहरा नहीं। फिर ऐसा कोई पत्थर नहीं, जो उसकी प्रतिमा नहीं। और ऐसा कोई फूल नहीं, जो उसका नैवेद्य नहीं। फिर सभी कुछ उसका है। फिर उसके अलावा कोई और नहीं है।
कृष्ण कहते हैं, अनन्य भाव से जो मुझे प्रेम करे।
और जब भी कृष्ण इस पूरी चर्चा में प्रयोग करेंगे मुझे, तब आप थोड़ा ठीक
से समझ लेना। क्योंकि कृष्ण जब भी कहते हैं मुझे, तो कृष्ण के पास ईगो जैसी, अहंकार जैसी कोई चीज बची नहीं है। इसलिए कृष्ण का मैं अहंकार का सूचक नहीं है। कृष्ण के भीतर मैं को रिफर करने वाली वैसी कोई चीज नहीं बची है, जैसी हमारे भीतर है।
जब हम कहते हैं मैं, तो हमारी एक सीमा है मैं की। और जब कृष्ण कहते हैं मैं, तो मैं असीम है। फिर यह जो विराट आकाश है, यह भी उस मैं में समाया हुआ है। और ये जो फूल खिलते हैं वृक्षों के, ये भी उसी मैं में खिलते हैं। और ये जो पक्षी उड़ते हैं आकाश में, ये भी उसी मैं में उड़ते हैं। यह मैं विराट है। यह मैं किसी व्यक्ति का मैं नहीं है। यह मैं कृष्ण का मैं नहीं है। कृष्ण का प्रयोग किया जा रहा है, केवल एक वीहिकल, एक साधन की भांति। और जब भी कृष्ण बोलते हैं, तो परमात्मा बोलता है।
इसलिए बहुत बार भूल हो जाती है। कृष्ण की गीता पढ़ते वक्त बहुत लोगों
को ऐसी कठिनाई होती है कि कृष्ण भी कैसे अहंकारी आदमी रहे होंगे! अर्जुन

से कहते हैं, जो मुझे अनन्य भाव से प्रेम करेगा। मुझे! अर्जुन से कहते हैं, जो सब छोड़कर मेरी शरण में आ जाएगा। मेरी शरण में! कहते हैं अर्जुन से, मुझ वासुदेव को जो सब भांति समर्पित है। मुझ वासुदेव को!
जो भी पढ़ते हैं, दो तरह की भूलें होती हैं। अगर वे कृष्ण के प्रति रागयुक्त हैं, तो वे समझते हैं कि कृष्ण, वासुदेव नाम के जो व्यक्ति हैं, उनके प्रति समर्पण करना है। यह भी भूल है, राग की भूल है। जो कृष्ण के प्रति रागयुक्त नहीं हैं, उन्हें लगता है, कृष्ण भी कैसे अहंकारी हैं; कहते हैं, मेरी शरण में आ जाओ! पर दोनों की भूल एक ही है। दोनों मान लेते हैं कि कृष्ण का मैं अहंकार का सूचक और प्रतीक है।
जिसने भी कृष्ण के मैं को ठीक से न समझा, वह पूरी गीता को ही समझने में असफल हो जाएगा। इस एक छोटे-से शब्द पर गीता का पूरा सार, पूरी कुंजी निर्भर करती है। अगर आप कृष्ण के मैं को न समझ पाए, तो पूरी गीता को ही आप न समझ पाएंगे। क्योंकि गीता कृष्ण के द्वारा कही गई है, कृष्ण से नहीं कही गई है। गीता कृष्ण से प्रकट हुई है, कृष्ण गीता के रचयिता नहीं हैं। गीता कृष्ण से बही है, लेकिन कृष्ण गीता के स्रोत नहीं हैं; स्रोत तो परम ऊर्जा है, परम शक्ति है। स्रोत तो भगवान है।
इसलिए कृष्ण को अगर गीताकार बार-बार कहता है, भगवानुवाच, भगवान ने ऐसा कहा, तो थोड़ा सोचकर, समझकर कहा है। यह भगवान कहना कृष्ण को, सिर्फ इसी अर्थ में है कि कृष्ण ने नहीं कहा, भगवान ने कहा; कृष्ण से कहा है, कृष्ण के द्वारा कहा है।
भगवान को भी चलना हो, तो हमारे पैरों के अतिरिक्त उसके पास अपने कोई पैर नहीं। और भगवान को भी बोलना हो, तो हमारी वाणी के अतिरिक्त उसके पास अपनी कोई वाणी नहीं। और भगवान को भी देखना हो, तो हमारी आंखों के अतिरिक्त उसके पास देखने की कोई आंख नहीं।
लेकिन जब किसी आंख से भगवान देखता है, तो वह आंख आदमी की नहीं रह जाती। हां, जो नहीं जानते, उनके लिए तो फिर भी वह आंख वही रहेगी, जो आदमी की थी। कृष्ण को जो आंख मिली है, वह तो मां-बाप से मिली है। लेकिन आंख के पीछे से जो देख रहा है, वह परमात्मा है। अगर आप आंख पर रुक गए, तो समझेंगे कि मां- बाप से मिली हुई आंख है। कृष्ण को जो गला मिला है, वह तो मां-बाप से मिला है। लेकिन जो वाणी है, वह परमात्मा की है। अगर आप गले पर रुक गए, तो वाणी को न पहचान पाएंगे।
इसलिए कृष्ण जिस सहज मन से कहते हैं कि मेरी शरण आ; ध्यान रखें, कोई अहंकारी इतने सहज भाव से नहीं कह सकता कि मेरी शरण आ।
अगर अहंकारी को आपको अपनी शरण बुलाना है, तो बड़ी तरकीबों से बुलाएगा। अहंकार कभी भी इतना सीधा-साफ नहीं होता। अहंकार बहुत चालाक है। अहंकारी कभी न कहेगा कि मेरी शरण आ, क्योंकि अहंकारी भलीभांति जानता है कि अगर किसी से यह कहा कि मेरी शरण आ, तो उस आदमी के अहंकार को चोट लगेगी और वह शरण न आ सकेगा। बल्कि वह आदमी आपको अपनी शरण में लाने की कोशिश करेगा।
इसलिए अहंकारी आदमी दूसरे के अहंकार को जरा भी चोट नहीं पहुंचाता; परसुएड करता है, फुसलाता है, राजी करता है, खुशामद करता है। उसके अहंकार को इस तरह राजी करता है कि वह शरण में भी आ जाए और अहंकार को चोट भी न लगे। लेकिन कृष्ण जितनी सरलता से और सहजता से कहते हैं, अगर ऐसा कहें तो पैराडाक्सिकल मालूम पड़ेगा, उलटबांसी मालूम पड़ेगी कि कृष्ण जितनी विनम्रता से घोषणा करते हैं कि मेरी शरण आ, वह खबर दे रही है कि पीछे कोई अहंकार नहीं है।
अहंकार कभी भी इतना सरल नहीं होता। अहंकार हमेशा दांव-पेंच करता है, जटिल होता है। तिरछे रास्तों से यात्रा करता है; सीधा रास्ता अहंकार नहीं लेता। क्योंकि अहंकार को अनुभव है कि सीधे रास्ते से दूसरे के अहंकार को कभी भी झुकाया नहीं जा सकता।
लेकिन कृष्ण बड़ी सरलता से कहते हैं कि मुझे जो अनन्य भाव से समर्पित
है अर्जुन, वही योग को उपलब्ध होता है। जिसकी निष्ठा मुझमें पूरी है, असंशय, वह असंदिग्ध ज्ञान को उपलब्ध होता है।
असंशय निष्ठा को भी थोड़ा-सा ख्याल में ले लेना चाहिए।

निष्ठा भी दो तरह की हो सकती है। ससंशय निष्ठा होती है। जिसको विज्ञान में हाइपोथीसिस कहते हैं, वह ससंशय निष्ठा है। एक वैज्ञानिक प्रयोग करता है एक हाइपोथेटिकल भरोसे, एक विश्वास के साथ। जब प्रयोग करता है, तो एक विश्वास को लेकर प्रयोग करता है, लेकिन पूरे संशय के साथ। संशय रखता है कायम अपने भीतर, ताकि जांच कर सके कि बात सही निकली या नहीं निकली। अपने को खो नहीं देता; अपने को कायम रखता है। संशय को भी कायम रखता है। डाउट को मौजूद रखता है। और फिर भी प्रयोग करता है। प्रयोग करेगा, तो निष्ठा जरूरी है। प्रयोग तो बिना निष्ठा के न हो सकेगा। एक कदम भी बिना निष्ठा के नहीं उठाया जा सकता।
अगर आप यहां से घर वापस लौटेंगे, तो आप इस निष्ठा से ही लौट रहे हैं कि
घर उसी जगह होगा, जहां आप छोड़ आए थे। पता आपको हो या न हो, लेकिन यह निष्ठा अंदर खड़ी है कि घर वहीं मिलेगा, जहां छोड़ आए थे। यह निष्ठा पीछे काम कर रही है। कल सुबह जब आप उठेंगे, तो इसी निष्ठा से कि सूरज निकल आया होगा, जैसा कि कल निकला था।
जरूरी नहीं है। किसी दिन तो ऐसा होगा कि सूरज नहीं निकलेगा। एक दिन तो ऐसा जरूर होगा कि सूरज नहीं निकलेगा। वैज्ञानिक कहते हैं, कोई चार हजार साल में ठंडा हो जाएगा। चार हजार साल बाद किसी शरीर में आप जरूर होंगे कहीं, और किसी दिन सुबह उठेंगे और सूरज नहीं निकलेगा।
वैज्ञानिक निष्ठा तो रखता है कि सूरज निकलेगा, लेकिन ससंशय। संशय कायम रखता है कि हो सकता है कि वह दिन आज ही हो, कि न निकले। वह दिन कभी भी हो सकता है। प्रयोगशाला में प्रवेश करता है, तो निष्ठा तो रखता है कि प्रकृति अपने पुराने नियम से ही चलती होगी। कल भी आग ने जलाया था, आज भी जलाएगी। लेकिन जरूरी नहीं है। क्योंकि कोई पक्का कैसे हो सकता है कि कल आग ने जलाया था, तो आज भी जलाएगी! तो वैज्ञानिक एक हाइपोथेटिकल बिलीफ, एक ससंशय निष्ठा के साथ प्रयोगशाला में प्रवेश करता है।
विज्ञान में प्रवेश करना हो, तो ससंशय निष्ठा ही मार्ग है। लेकिन धर्म में अगर प्रवेश करना हो, तो निःसंशय निष्ठा मार्ग है। निःसंशय निष्ठा बड़ी और बात है। उसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है।
निःसंशय निष्ठा का अर्थ यह है कि अगर विपरीत भी हो, अगर आज सूरज न भी निकले, तो भी जो निष्ठावान, जिसकी कृष्ण बात कर रहे हैं, वैसा निष्ठावान व्यक्ति समझेगा कि मेरी आंख में कोई खराबी है; सूरज तो निकला ही होगा। आप फर्क समझ लेना। अगर कल सुबह ऐसा हो कि सूरज न निकले, तो निष्ठावान व्यक्ति कहेगा, मेरी आंख में कोई खराबी है, सूरज तो निकला ही होगा। अगर निष्ठावान व्यक्ति घर वापस पहुंचे और पाए कि उसका घर वहां से हट गया है, तो निष्ठावान व्यक्ति कहेगा, घर तो वहीं होगा, मैं ही भटक गया हूं।
फर्क यह है, संशय वाला व्यक्ति हमेशा संशय बाहर आरोपित करेगा और निःसंशय व्यक्ति संशय को सदा अपने पर आरोपित करेगा। संशयवान व्यक्ति सदा भूल कहीं और खोजेगा; निःसंशय व्यक्ति सदा भूल अपने में खोजेगा। निष्ठावान, संशयहीन निष्ठावान व्यक्ति अपने अतिरिक्त जगत में कहीं भूल नहीं देखेगा। अगर भूल होगी कहीं, तो मुझमें होगी; और कहीं नहीं। जीवन में जो भी घटेगा, चाहे सुख, चाहे दुख, उससे उसकी निष्ठा में कोई डांवाडोल स्थिति, कोई कंपन पैदा नहीं होगा। अगर जीवन पूरा दुख भी बन जाए, तो भी वैसा व्यक्ति जानेगा कि कहीं उसकी ही भूल है; परमात्मा की कृपा में कोई अंतर नहीं है। कहीं मैं ही चूक रहा हूं; उसका प्रसाद तो बरस रहा है। कहीं मेरा ही बर्तन उलटा रखा होगा; उसकी वर्षा तो जारी है।
संशयवान व्यक्ति का बर्तन भी उलटा रखा हो, वर्षा भी हो रही हो, तो भी
वह यही कहेगा कि मुझमें पानी नहीं भर रहा है, इससे साफ जाहिर है कि वर्षा नहीं हो रही।
इस भेद को ठीक से समझ लेना, क्योंकि यह भेद धर्म में प्रवेश में अंतर लाएगा। क्योंकि धर्म का मौलिक आधार व्यक्ति का रूपांतरण है। विज्ञान का मौलिक आधार वस्तु का रूपांतरण है। विज्ञान की खोज वस्तु की खोज है, धर्म की खोज व्यक्ति की खोज है। इसलिए उचित है कि विज्ञान वस्तु के भीतर भूल-चूक देखे और उचित है कि धर्म व्यक्ति के भीतर भूल-चूक देखे।

अगर आपका डाउट अदर ओरिएंटेड है, दूसरे पर ठहरा हुआ है, तो आपका चित्त वस्तु के संबंध में बहुत-सी बातें खोज लेगा, लेकिन स्वयं के संबंध में कुछ भी न खोज पाएगा। इसलिए धर्म और विज्ञान के आयाम, डायमेंशन अलग हैं।
कृष्ण कहते हैं, जो निःसंशय होकर मुझमें निष्ठा रखता है!
बड़ी कठिन है यह बात। निःसंशय होकर निष्ठा कैसे रखी जा सकती है! अगर निःसंशय होकर हम निष्ठा रखेंगे--यह संभव ही कहां मालूम पड़ता है! आज किसी भी व्यक्ति से कृष्ण यह कहेंगे, तो वह कहेंगे कि आप असंभव की आकांक्षा करते हैं। यह नहीं हो सकेगा। मैं कैसे सब छोड़ दूं?
लेकिन जब कृष्ण ने अर्जुन से यह कहा था, तो अर्जुन ने ऐसा सवाल नहीं उठाया। यह थोड़ा विचारणीय है। अर्जुन उस जमाने के सुशिक्षिततम लोगों में से एक था। सभ्यतम, कुलीनतम, उस समाज में जो श्रेष्ठतम जन थे, उन श्रेष्ठियों में, उन आर्यों में एक था। कृष्ण ने बहुत बार यह कहा है कि तू सब शंकाएं छोड़कर मुझ पर निष्ठा कर ले। अर्जुन जरूर यह कहता है कि मन बड़ा चंचल है, मन ठहरता नहीं। लेकिन कहीं भी अर्जुन यह नहीं कहता--यह बड़ी आश्चर्य की बात है--कि मैं कैसे आप पर निष्ठा कर लूं? निष्ठा कैसे संभव है? अर्जुन यह जरूर कहता है कि मेरी कमजोरियां हैं। आप जो कहते हैं, ठीक कहते हैं; ठीक ही कहते होंगे। मेरी कमजोरियां हैं। मैं न कर पाऊं। शायद न कर पाऊं। लेकिन अर्जुन एक भी बार यह सवाल नहीं उठाता, जो कि बहुत जरूरी है। हमारे मन में उठेगा। और अर्जुन तो उस समय का श्रेष्ठतम व्यक्ति था। आज अगर हम छोटे बच्चे से भी पूछेंगे, तो उसके मन में भी उठेगा कि भरोसा! यह तो ब्लाइंड फेथ हो जाएगा, यह तो अंधा विश्वास हो जाएगा! यह तो कृष्ण अंधेपन की शिक्षा दे रहे हैं। हमारे मन में यह उठता है। अर्जुन के मन में नहीं उठता। कुछ कारण होंगे। कुछ कारण हैं।
सबसे बड़ा कारण यह नहीं है कि आदमी बदल गया। सबसे बड़ा कारण यह है कि आदमी की कंडीशनिंग, संस्कार बदल गए। आदमी तो वही है। जब आपके मन में यह सवाल उठता है कि यह तो अंधेपन की शिक्षा है। हम भरोसा कर लें आंख बंद करके! शंका भी न करें, संदेह भी न करें! तब तो हम मिटे।
असल में आपको मिटाने के लिए ही सारा आयोजन है। अगर धर्म के जगत में प्रवेश करना है, तो स्वयं को मिटने की, मिटाने की सामर्थ्य चाहिए पड़ेगी। अगर आप अपने को बचाते हैं, तो फिर भीतर प्रवेश न हो सकेगा।
इसलिए द्वार पर ही लिखा है कि जो निःसंशय श्रद्धा कर सके, वह भीतर आ जाए। जिसकी अभी शंका मौजूद हो, वह थोड़ा और घूमे; मंदिर के बाहर थोड़े और चक्कर लगाए। वह थोड़ा और दौड़े। वह और अपनी शंकाओं को थोड़ा थका ले। और जब शंका से कुछ न पाए... । और आदमी ने शंका से कुछ पाया नहीं। हां, वस्तुएं मिलेंगी। धन मिलेगा, पद मिलेगा। लेकिन पाने जैसा कुछ भी न मिलेगा। जिस दिन शंका थक जाए और ऐसा लगे कि शंका से कुछ मिला नहीं, उस दिन भीतर प्रवेश कर आना। उस दिन भीतर चले आना उस मंदिर के, जहां शंका को बाहर रख आना पड़ता है। आदमी वही है, संस्कार बदले हैं। आज की पूरी शिक्षा विज्ञान की है, इसलिए सवाल उठता है। सवाल आप नहीं उठा रहे हैं; शिक्षा उठा रही है। क्योंकि सारी शिक्षा डाउट की है; सारी शिक्षा संदेह की है। छोटे-से बच्चे को हम संदेह करना सिखा रहे हैं। जरूरी है विज्ञान की शिक्षा के लिए, अन्यथा विज्ञान खड़ा नहीं होगा।
इसीलिए भारत में विज्ञान खड़ा नहीं हो सका। क्योंकि जिस देश ने गीता में भरोसा किया, वह देश विज्ञान पैदा नहीं कर पाएगा। लेकिन पश्चिम में धर्म डूब गया। क्योंकि जो चिंतना संदेह में भरोसा करेगी, वह धर्म से वंचित रह जाएगी।
और अगर लंबे हिसाब में तौला जाए, तो शायद हम नुकसान में नहीं हैं। और शायद इस सदी के पूरे होते-होते हमें पता चलेगा कि हम फायदे में हैं। कभी- कभी उलटा हो जाता है। अभी तो हमें लगता है कि हम बड़े नुकसान में पड़ गए हैं। न विज्ञान है, न टेक्नीक है हमारे पास। गरीबी ज्यादा है, मुसीबत ज्यादा है। लेकिन कोई नहीं कह सकता कि इस सदी के घूमते ही, इस सदी के जाते ही पश्चिम भारी मुसीबत में नहीं पड़ जाएगा। पड़ जाएगा, पड़ रहा है।
क्योंकि संदेह न करके हमने बाहर की बहुत-सी चीजें खोईं, लेकिन श्रद्धा रखकर हमने भीतर का एक द्वार खुला रखा। पश्चिम ने संदेह करके बाहर

की बहुत चीजें पाईं, लेकिन भीतर जाने वाले द्वार पर जंग पड़ गई, और वह बिल्कुल बंद हो गया। आज कितना ही ठोंको, पीटो, खटखटाओ, वह खुलता हुआ मालूम नहीं पड़ता। हालत ऐसी हो गई कि भीतर जाने वाला कोई द्वार भी है, ऐसा भी मालूम नहीं पड़ता। द्वार इतनी मजबूती से बंद है, इतने दिनों से बंद है कि करीब-करीब दीवाल हो गया है। कहीं कोई द्वार नहीं मालूम पड़ता।
याद आता है मुझे कि एक बार पिछले महायुद्ध के समय चीन में ऐसा हुआ। दो भाइयों का बंटवारा हुआ। बाप मरणशय्या पर था, तो बाप ने बंटवारा कर दिया। एक-एक लाख रुपए दोनों भाइयों के हाथ में लगे। एक भाई ने तो बहुत मेहनत करनी शुरू कर दी रुपयों से। एक-एक पैसा बचाकर, जीवन दांव पर लगाकर कमाने में लग गया। दूसरे भाई ने तो लाख रुपए की शराब पी डाली। सिर्फ शराब की बोतलें भर उसके पास इकट्ठी हो गईं।
स्वभावतः जिसने शराब पी थी, सारे लोगों ने कहा कि बर्बाद हो गए, मिट गए। लेकिन वहां कोई सुनने वाला भी नहीं था। वह तो इतना पीए रहता था कि कौन बर्बाद हो गया! कौन मिट गया! किसके संबंध में बात कर रहे हो! कुछ पता नहीं था। पर बोतलें जरूर इकट्ठी होती चली गईं।
और जिंदगी बड़े मजाक करती है कभी। और मजाक हुआ। जिस भाई ने लाख रुपया धंधे में लगाया था, उसका तो लाख रुपया डूब गया। और युद्ध आया, और शराब की बोतलों के दाम बहुत बढ़ गए। और उस आदमी ने सब बोतलें बेच लीं। और कहते हैं कि लाख रुपए उसको वापस मिल गए। लाख रुपए की बोतलें बेच लीं उसने।
जिंदगी कभी-कभी अनूठे मजाक करती है। करीब-करीब यह सदी पूरी होते-होते ऐसा ही मजाक जिंदगी में घटित होने वाला है।
यह पूरब ने भीतर का एक द्वार तो खुला रखा, बाहर का सब कुछ खो दिया। निश्चित ही, हम नासमझ सिद्ध हुए। हमारे पास कुछ है नहीं। हमने भी एक तरह की शराब पी, जिसको भीतरी शराब कहें। और ऐसा मैं कह रहा हूं, ऐसा नहीं। जो भी जानने वाले हैं, वे यही कहते रहे हैं कि एक शराब है, एक नशा है, एक मदहोशी है भीतर की, जहां डूबकर कोई वापस लौटता नहीं।
उमर खय्याम ने उसी के गीत गाए हैं। लेकिन लोग समझे नहीं कि उमर खय्याम
तो एक सूफी फकीर था। लोग समझे कि वह इसी मधुशाला की बात कर रहा है, जो बाजार में खुली हुई है। वह तो उस मधुशाला की बात कर रहा है, जो भीतर खुलती है। वह तो उस पीने और पिलाने की बात कर रहा है, जो परमात्मा का नशा है।
भीतर का यह द्वार तो श्रद्धा से खुलता है। श्रद्धा का अर्थ है, असंशय निष्ठा। लेकिन शिक्षण पूरा विज्ञान का है, इसलिए हमारा मन संदेह के सवाल उठाता है। स्वाभाविक! उस जमाने में विज्ञान का कोई शिक्षण न था, शिक्षण धर्म का था, इसलिए अर्जुन ने कोई सवाल नहीं उठाया।
अभी मैं एक छोटे-से बच्चे का जीवन पढ़ रहा हूं। उस बच्चे ने बड़ी हैरानी
का प्रयोग किया। बारह साल का लड़का घुमक्कड़ जिप्सियों के साथ भाग गया। उसके पिता ने उसको सहायता दी। कहना चाहिए, पिता ने उसे भगाया जिप्सियों के साथ। यह जानने के लिए कि छः साल वह बच्चा जिप्सियों के साथ रहेगा, तो जिप्सियों की आंतरिक जिंदगी के रहस्य पता लगा लाएगा। क्योंकि जिप्सियों के संबंध में जो भी लिखा गया है, वह बाहर के लोगों की लिखावट है। और जब तक हम किसी को भीतर से न जानें, सच्चाइयों का कोई पता नहीं चलता।
तो उस बच्चे को भगा दिया जिप्सियों के साथ। जिप्सियों का एक कबीला ठहरा है गांव के बाहर। उसके बच्चों से दोस्ती करवा दी बारह साल के बच्चे की। और उस बारह साल के बच्चे को मुसीबत की दुनिया में यात्रा पर भेज दिया। वह बच्चा भाग गया। उस बच्चे ने जो अपने संस्मरण लिखे हैं, उसमें से एक बात इस संबंध में आपसे कहना चाहता हूं।
जिप्सियों के पास कोई मकान नहीं हैं। घुमक्कड़ कौम है, खानाबदोश। यह खानाबदोश शब्द अच्छा है। इसका मतलब होता है, जिसका मकान खुद के कंधे पर है--खानाबदोश। दोश यानी कंधा, खाना यानी मकान। और जिसके कंधे पर ही अपना मकान है, उसको कहते हैं खानाबदोश।
तो जिप्सियों का तो कोई घर नहीं है। आज इस गांव में, कल दूसरे गांव में, परसों तीसरे गांव में। घुमक्कड़ कौम है। निश्चित ही, प्राइवेसी की कोई धारणा जिप्सियों में नहीं है, एकांत की। हो भी नहीं सकती। रात खुले आकाश

के नीचे सोते हैं सब। एकांत का कोई सवाल भी नहीं है। प्रेम भी करना हो, तो खुले आकाश के नीचे ही करना पड़ेगा। कोई उपाय नहीं है।
यह बच्चा पहले ही दो-चार-आठ दिनों में जब जिप्सियों के साथ रहा, तो उसे
जब भी पेशाब करनी हो, तो वह अकेले में जाकर किसी वृक्ष के नीचे बैठ जाए। जिप्सी बच्चों ने उसे बहुत बुरा माना और कहा कि तुम बहुत गलत बात करते हो! उसने कहा, इसमें कौन-सी गलत बात है? उन बच्चों ने कहा, यह बिल्कुल गलत बात है। सब काम बांटकर करने चाहिए। उसने कहा, अजीब पागलपन की बात कर रहे हो! इसको कैसे बांटा जा सकता है? उन्होंने कहा, हम भी साथ दे सकते हैं, हम भी कोआपरेट कर सकते हैं। जब तुम जाते हो, हमसे भी कह सकते हो कि तुम भी चलो। लेकिन तुम अकेले ही चले जाते हो! उस बच्चे ने कहा, लेकिन हमारे घर में तो बाथरूम होता है। और हम अंदर जाकर बंद करके ही अपनी शंका का निवारण करते हैं। वे जिप्सी बच्चे बहुत हंसे। वे बोले, कैसे नासमझ हो तुम सब! क्योंकि कोई भी आदमी उठकर बाथरूम में जाएगा, तो सबको पता है कि वह क्या करने गया! जब पता ही है, तो छिपाने का फायदा क्या है!
इस बच्चे को बड़ी कठिनाइयां आईं, क्योंकि इसकी समझ में ही न आए। क्योंकि जिप्सियों के सोचने का ढंग और, उनके संस्कार और। ग्रुप माइंड! इंडिविजुअल का कोई सवाल नहीं है, व्यक्ति का कोई सवाल नहीं है, समूह मन है। जो भी आएगा, बांटकर खाएंगे। जो भी मुसीबत होगी, उसको भी बांट लेंगे। जो भी सुख आएगा, उसको भी बांट लेंगे। साथ जीएंगे। तो ख्याल ही नहीं है कि कोई आदमी व्यक्तिगत कोई काम भी कर सकता है। तो बच्चों को सवाल उठा कि तुम व्यक्तिगत जाकर कोई काम कैसे कर सकते हो? यह असंभव है।
हमारे मन में वही सवाल उठते हैं, जो हमारा संस्कार हो जाता है।
जैसे जिप्सियों के साथ रहकर इस बच्चे को पता चला कि चोरी वे बुरा नहीं मानते हैं। हां, उस चोरी को बुरा मानते हैं, जिसको कोई संग्रह करे। जैसे कोई आदमी चोरी कर लाए और संग्रह कर ले, चुपचाप छिपा ले और सबको न बांटे, तो उसे बुरा मानते हैं। या कोई ऐसी चीज चुरा लाए, जिसका आज उपयोग न हो, छः महीने बाद उपयोग हो, तो उसको भी बुरा मानते हैं। लेकिन कोई आदमी जाकर खेत से घास तोड़ लाए, तो जिप्सी उसे बुरा नहीं मानते।
और जब पहली दफा इस बच्चे के सामने पुलिस आई और जिप्सियों को पकड़ा, क्योंकि उन्होंने अपने घोड़ों के लिए किसी खेत से घास काट लिया था। तो जिसने काटा था, उसने कहा कि इसमें चोरी कहां है? घास तुम तो नहीं बढ़ाते; परमात्मा बढ़ाता है। जमीन परमात्मा की, आकाश परमात्मा का, सूरज परमात्मा का, घोड़े परमात्मा के, तुम परमात्मा के, हम परमात्मा के। तुमने कोई घास तो बढ़ाया नहीं! हां, अगर हम घास इकट्ठा कर रहे हों, घोड़ों को खिलाने से ज्यादा इकट्ठा कर रहे हों, तो हम जुर्मी हैं। लेकिन इसमें चोरी कैसी?
जिप्सी को समझ में नहीं आता कि इसमें चोरी कैसी। क्योंकि व्यक्तिगत संपत्ति की धारणा उसके मन में नहीं है। व्यक्तिगत संपत्ति जैसी कोई चीज ही नहीं है। धारणा भी कैसे होगी? हमारे मन में ख्याल उठता है, चोरी हो गई, क्योंकि हमारा संस्कार है एक।
आज हम सारी दुनिया में विज्ञान का संस्कार दे रहे हैं बच्चों को। हम सबके मन में संदेह का संस्कार है। संशय हमारे द्वार पर खड़ा है। संशय के बिना हम एक कदम चलते नहीं। लेकिन कृष्ण ने जब यह शिक्षा दी, तब आदमी के द्वार पर संशय की जगह श्रद्धा थी। पूरा द्वार बदल गया, आदमी वही है। इसलिए आप जब गीता को पढ़ते हैं, आपके काम नहीं पड़ेगी। क्योंकि आपके दरवाजे पर जो पहरेदार खड़ा है, वह बिल्कुल बदल गया है। वह गीता को भीतर प्रवेश ही न करने देगा। आप रट भी लेंगे, कंठस्थ भी कर लेंगे, दोहराने भी लगेंगे, लेकिन हृदय के भीतर गीता का कोई प्रवेश न होगा। क्योंकि वह प्रवेश तभी हो सकता है, जब कृष्ण की शर्त पूरी हो। वे कहते हैं, असंशय! लेकिन असंशय कैसे आएगा? क्या मैं जबर्दस्ती कोशिश कर लूं कि संशय को छोड़ दूं?
नहीं; आज इसका कोई उपाय नहीं है कि हम कोशिश करके संशय को छोड़ दें। आज कोशिश करके संशय नहीं छोड़ा जा सकता। आज तो आप संशय पूरी तरह से कर लें, तो ही संशय छूट सकता है।
इतना पूरी तरह से संशय कर लें कि थक जाएं, एक्झास्टेड; ऊब जाएं, घबड़ा जाएं। और संशय इतना कर लें कि कहीं न पहुंचें सिवाय नर्क के, दुख ही दुख

चारों तरफ खड़ा हो जाए। इतना संशय कर लें कि कांटे ही कांटे संशय के सब तरफ से छिद जाएं और भीतर जिंदगी में कोई सुख का फूल न खिले। संशय कर लें पूरा, टोटल। तो शायद; तो शायद संशय से ऊब जाएं और पार हो जाएं। तो शायद संशय किसी क्षण में गिर जाए और आप बाहर हो जाएं। और वह निःसंशय स्थिति बन जाए, जो कृष्ण कहते हैं, पहली शर्त है। और इतना निःसंशय हो जा अर्जुन, तू फिर इतना निःसंशय होकर मुझे सुन।
बड़ी मजे की बात है। सुनने के लिए इतनी शर्त! कहते हैं, इतना निःसंशय होकर, इतना अनन्य होकर फिर तू मुझे सुन। अगर सुनने के ऊपर इतनी शर्त है, तब तो हममें से कोई भी सुनने में समर्थ नहीं है।
हम सब सोचते हैं कि हम सब सुनने में समर्थ हैं, क्योंकि कान हमारे पास हैं। क्योंकि ध्वनि हमारे कान में पहुंच जाती है, तो हम समझते हैं, हम सुनने में समर्थ हैं। हम सब सुनने में समर्थ नहीं हैं। कान पर आवाज पड़ती है जरूर, ध्वनि पैदा होती है जरूर, लेकिन सुनना और आंतरिक घटना है।
कृष्ण कहते हैं, इतनी शर्त तू पूरी कर, अनन्य भाव से भर जा; असंशय निष्ठा हो तेरी मुझमें, तो तू मुझे सुन पाएगा। फिर सुन! क्योंकि फिर मैं तुझे राज खोल सकता हूं वे, जो बुद्धि के लिए नहीं खोले जा सकते। फिर मैं वे रहस्य खोल सकता हूं तेरे समक्ष, जो केवल हृदय के समक्ष खोले जाते हैं, तर्क के समक्ष नहीं खोले जाते। फिर मैं तुझसे कह सकूंगा वह आंतरिक बात, जो केवल प्रेम में ही कही जाती है, जो विवाद में नहीं कही जाती।
और जिंदगी में गहरे जो सत्य हैं, वे विवाद में नहीं कहे जाते। वे प्रेम में ही कहे जा सकते हैं। एक सिम्पैथेटिक एटीट्यूड, एक सहानुभूति से भरे हुए हृदय से ही कहे जा सकते हैं। जीवन के जो भी गहन सत्य हैं, वे अनन्य भावदशा में ही कहे जा सकते हैं, क्योंकि तभी कम्युनिकेशन, तभी एक बात दूसरे तक पहुंचती है।
अन्यथा हम, जैसे युद्ध के मैदान पर सिपाही खड़े होते हैं, ऐसे बोलने और सुनने वाले भी खड़े हों। और अक्सर ऐसे ही खड़े होते हैं, अपनी रक्षा में तत्पर! दोनों के द्वार बंद। आवाज गूंजती है, संवाद नहीं होता। शब्द बिखर जाते हैं, कोई प्रतीति नहीं आती। बहुत सुना जाता है, कुछ पल्ले नहीं पड़ता; सब खाली-खाली रह जाता है।
यह शर्त कीमती है। और यह शर्त इसलिए है कि कृष्ण कुछ ऐसी बात कहना चाहते हैं अर्जुन से, जो तर्क और संशय से भरे चित्त को नहीं कही जा सकती। सिर्फ उसे ही कही जा सकती है, जो बिल्कुल खुलकर बैठा है, ओपन। जिसकी कोई क्लोजिंग नहीं है। जिसका कोई डिफेंस, जिसकी कोई सुरक्षा नहीं है। जो इतने भरोसे से भरा है कि अगर उसकी छाती में छुरा भी भोंक दो, तो वह उस छुरे को भी स्वीकार कर लेगा। अनन्य प्रेम, छाती में छुरा भी भोंक दो, तो स्वीकार कर लेगा। और सोचेगा कि मेरे हित में होगा, इसीलिए। जो अपनी छाती में छुरा लेने को तैयार है, उसी की छाती में सत्य भी प्रवेश करते हैं।
कबीर ने कहा है, जो घर बारे आपना, चले हमारे संग। तैयारी हो अगर अपने
घर को जला डालने की, तो आओ मेरे साथ।
कौन-सा घर? कबीर ने किसी का घर कभी जलवाया नहीं। एक और घर है हमारे चारों तरफ सुरक्षा का, जैसे कि सिपाही अपने चारों तरफ जिरह-बख्तर बांधकर युद्ध के मैदान पर जाता है। हम सब भी एक बड़ा जिरह-बख्तर अपने चारों तरफ बांधे हुए तैयार रहते हैं कि कहीं कोई ऐसी बात प्रवेश न कर जाए कि हमारी सुरक्षा खतरे में पड़ जाए। कहीं कोई ऐसा सत्य भीतर न चला जाए कि हमारी जिंदगी हमें बदलनी पड़े। कहीं कोई ऐसी प्रेरणा न मिल जाए कि हमें कुछ और होना पड़े। कहीं कोई हमारा जो इस्टैब्लिश्ड, हमारा जो व्यवस्थित जगत है, उसमें कोई गड़बड़ न हो जाए।
एक मित्र परसों मेरे पास आए थे। उन्होंने कहा कि मैं आपकी बात सुनने आना चाहता हूं, लेकिन जब से आपने संन्यास की बात की है, तब से मन में भय लगता है। क्या भय की बात है? उन्होंने कहा, भय लगता है कि कहीं किसी दिन मुझे भी समझ में आ जाए कि संन्यास लेना है, तो फिर क्या होगा?
अब ये आदमी अगर मुझे सुनने आए होंगे--जरूर आए होंगे, सदा आते हैं--तो जिरह-बख्तर बांधकर बैठे होंगे कि कहीं कोई बात भीतर न चली जाए। कैसा मजा

है! बात सुननी भी है और भीतर नहीं भी जाने देनी है, तो व्यर्थ मेहनत क्यों करनी? मत सुनें, बेहतर है। सुनें, तो फिर भीतर प्रवेश करने दें।
तो कृष्ण कहते हैं, यह पहली शर्त है।
पुराने समस्त गुरु शर्तें पहले लगा देते थे। कहते थे, पहले ये शर्तें पूरी कर दो, फिर हम तुमसे कहेंगे। क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि तुम बेकार हमारा समय जाया करो।
अगर सूफी फकीर के पास आप सीखने जाएं, तो कहेगा कि दो साल घर में झाडू- बुहारी लगाते रहो। आप कहेंगे, मैं सत्य खोजने आया हूं, झाडू-बुहारी लगाने नहीं। तो वह कहेगा, सत्य की खोज का यह पहला चरण हुआ। तुम दो साल झाडू- बुहारी लगाओ। बीच में मुझसे पूछना मत। लगाते रहना। जब मैं समझूंगा कि वह वक्त आ गया, अब मैं तुमसे कहूं, दि टाइम इ.ज राइप, समय पक गया, तब मैं तुमसे कह दूंगा। भाग जाएंगे हम तो तभी!
सुना है मैंने कि एक सूफी फकीर के पास एक आदमी आया और उसने कहा कि मैं सत्य की खोज में आया हूं। उस फकीर ने कहा, यह खोज बड़ी कठिन है। तुम्हारी तैयारी पूरी है? उसने कहा, मेरी तैयारी पूरी है। तो फकीर ने कहा, अपना नाम-पता लिखा दो; अगर इस खोज में तुम मर जाओ, तो तुम्हारे अस्थिपंजर मैं कहां भेजूं! व्हेयर शुड आई सेंड दि रिमेंस--जो बच रहे पीछे, उसे मैं कहां भेजूं! उस आदमी ने कहा कि अगर आप बुरा न मानें, तो मैं अस्थिपंजर खुद ही लिए जाता हूं। और भाग खड़ा हुआ! आपको कष्ट होगा भेजने का, मैं खुद ही लिए जाता हूं! उसने सोचा भी न था कि सत्य की खोज में अस्थिपंजर भी कभी भेजने की जरूरत पड़ सकती है। वह भी नहीं समझा। अस्थिपंजर से उस फकीर का मतलब बड़ा गहरा रहा होगा।
वह जो हम अपने चारों तरफ बांधे हैं, जिसकी वजह से हम सब तरफ से कट जाते हैं; एक आईलैंड, एक द्वीप की तरह बन जाते हैं; सब तरफ से टूटकर अलग खड़े हो जाते हैं। उसमें सत्य प्रवेश नहीं करेगा। सत्य के लिए द्वार चाहिए। इसलिए कृष्ण कहते हैं, इतनी तैयारी हो अर्जुन, तो फिर सुन।

प्रश्नः ओशो, एक छोटा-सा प्रश्न है। अनन्य प्रेम को यहां मूल संस्कृत में कहा गया है, आसक्तमना। मेरे में आसक्त मन वाले का कैसा आध्यात्मिक अर्थ होगा? इसे स्पष्ट करें।

शब्द तो वही रहते हैं। रुख बदल जाए, तो सब बदल जाता है।
परमात्मा में आसक्त मन वाला। और परमात्मा में आसक्त मन वाला जब हम कहेंगे, तो आसक्त शब्द का वही अर्थ न रह जाएगा, जो धन में आसक्ति वाला, यश में आसक्ति वाला।
शब्द तो बदल जाते हैं तत्काल, जैसे ही उनका आयाम बदलता है। हमारे पास शब्द तो थोड़े हैं। और हमारे सब शब्द जूठे हैं। कृष्ण के पास भी कोई उपाय नहीं है नए शब्दों के बोलने का। हमारे ही शब्दों का उपयोग करना है। अगर कहेंगे प्रेम, तो हमारे मन में जो ख्याल आता है, वह हमारे ही प्रेम का आता है। अगर कहेंगे आसक्त, तो हमारे मन में जो अर्थ आता है, वह हमारी ही आसक्ति का आता है। लेकिन जो शर्त लगी है, परमात्मा में आसक्त मन वाला!
परमात्मा में कौन होता है आसक्त?
तो कृष्ण ने पहले बहुत व्याख्या की है उसकी, कि जो सब भांति अनासक्त
हो गया, वही परमात्मा में आसक्त होता है। परमात्मा में आसक्ति का मतलब है, पूर्ण अनासक्ति। पूर्ण अनासक्ति न हो, तो परमात्मा में आसक्ति न होगी। जरा-सी भी आसक्ति कहीं बची हो, तो परमात्मा में आसक्ति न होगी।
तो चाहे हम कहें, आसक्ति। आसक्ति का अर्थ है, जिसमें हम आकर्षित हो रहे हैं; जिसमें हम खींचे जा रहे हैं; जिसमें हम बुलाए जा रहे हैं; जिसमें हम पुकारे जा रहे हैं; जिसके बिना हम न जी सकेंगे। तो चाहे कहें आसक्ति, चाहे कहें प्रेम, चाहे कहें अनन्य राग, चाहे कहें भक्ति; इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। इतना ही प्रयोजन है कि जो परमात्मा की तरफ खिंचा जा रहा है; जिसके आकर्षण का बिंदु परमात्मा हो गया। और परमात्मा का क्या अर्थ होता है?

परमात्मा का अर्थ है, सब कुछ। जो इस सब को घेरे हुए है, जो इस सब के भीतर छिपा है, वह निराकार और अरूप जो सब रूपों में व्याप्त है, उसकी तरफ जो आकर्षित हो गया। जो अब बूंद में आकर्षित नहीं है, बूंद में छिपे महासागर में आकर्षित है। जो व्यक्ति में आकर्षित नहीं है, व्यक्ति के भीतर छिपे अव्यक्ति में आकर्षित है। जो अब अगर अपनी पत्नी को भी प्रेम कर रहा है, तो पत्नी को प्रेम नहीं कर रहा है, पत्नी में छिपे परमात्मा को प्रेम कर रहा है। अब जो सब तरफ, उस परमात्मा से ही खींचा जा रहा है और बुलाया जा रहा है। जो सब भांति उसी की तरफ दौड़ रहा है, उसी महासागर के मिलन की तरफ। तो मुझ परमात्मा में आसक्त मन वाला। तो प्रेम कहें, आसक्ति कहें, इससे फर्क नहीं पड़ता। फर्क इससे पड़ता है कि आप उसका उपयोग क्या कर रहे हैं।
शब्द अपने आप में अर्थहीन हैं। सब कुछ उपयोग पर निर्भर करता है। शब्दों में खुद कोई अर्थ नहीं है। अर्थ तो हम डालते हैं और हम देते हैं। और अर्थ बदल जाता है तत्काल, जैसे ही शब्द का आयाम बदलता है, तब अर्थ बदल जाता है।
यह शर्त है कृष्ण की कि परमात्मा की तरफ आ रहे मन वाला अगर तू है, तो मुझे सुन। क्योंकि वे जो कहने जा रहे हैं, वह जो परमात्मा की तरफ पीठ करके चल रहा है, वह न सुन सकेगा; उसके किसी काम का नहीं है। वह बहरे से बात करनी हो जाएगी। उसका कोई अर्थ नहीं है।
अभी मैं एक झेन फकीर का जीवन पढ़ता था। एक युवक आया है उस फकीर के पास
और उस युवक ने कहा कि मैंने सुना है, बुद्ध ने कहा है कि मेरी बात सब के उपयोग की है। धर्म सब के लिए है। लेकिन, उस युवक ने कहा, इसमें मुझे बड़ी शंका होती है। मुझे शंका होती है कि बुद्ध के वचन अगर सब के उपयोग के लिए हैं, तो बहरों का क्या होगा? क्योंकि बहरे तो सुन ही न सकेंगे, तो उनके लिए उपयोग कैसे होगा? बुद्ध खड़े भी रहें, अंधे तो देख ही न सकेंगे, तो सत्संग कैसे होगा?
उस फकीर ने क्या किया? उस फकीर ने वही किया, जो फकीरों को करना चाहिए। पास में पड़ा था एक डंडा, उसने जोर से उस आदमी के पेट में डंडे का जोर से धक्का दिया। उस आदमी ने चीख मारी। उसने कहा, आप यह क्या करते हैं? तो उस फकीर ने कहा, अहा! मैं तो समझता था कि तुम गूंगे हो। तो तुम गूंगे नहीं हो, बोलते हो! जरा मेरे पास आओ। तो वह आदमी डरता हुआ पास आया। उसने कहा, अहा! मैं तो सोचता था कि तुम लंगड़े हो। लेकिन तुम तो चलते हो!
उस आदमी ने कहा, इन बातों से क्या मतलब जो मैं पूछने आया हूं! तो उस फकीर ने कहा कि तुम इसकी फिक्र छोड़ो, दूसरे अंधे, लूले और गूंगों की। अगर तुम गूंगे नहीं हो, लूले नहीं हो, अंधे नहीं हो, तो कम से कम तुम लाभ ले लो। और जब कोई अंधे आएंगे, तब उनसे मैं निपट लूंगा। जब कोई गूंगे आएंगे, तब उनसे मैं निपट लूंगा। तुम फिक्र छोड़ो। इतना तय है कि तुम अंधे, लूले, लंगड़े, गूंगे नहीं हो। तुमने क्या लाभ लिया बुद्ध के वचनों का? उसने कहा, अभी तक तो कुछ नहीं लिया! तो उस फकीर ने कहा कि पागल, तू फिक्र कर रहा है उनकी, जो न ले सकेंगे; और तू अपनी फिक्र कब करेगा, जो ले सकता है!
तो उस फकीर ने कहा कि जो गूंगे हैं, वे तो गूंगे हैं ही; और जो बहरे हैं,
वे तो बहरे हैं ही; लेकिन तेरे बहरेपन को हम क्या करें? तेरे गूंगेपन को हम क्या करें?
कृष्ण, अर्जुन का गूंगापन, बहरापन टूट जाए, उसकी पीठ मुड़ जाए, वह परमात्मा की तरफ उन्मुख हो जाए--क्योंकि अभी तक अर्जुन की जो उन्मुखता है, वह युद्ध से बचने की है। किसी तरह युद्ध से बच जाए। यह हिंसा न हो। बस, इससे ज्यादा उसकी उत्सुकता नहीं है।
यह बड़े मजे की बात है, अर्जुन किसी ब्रह्मज्ञान को लेने कृष्ण के पास गया नहीं था। ये कृष्ण जबर्दस्ती उसको ब्रह्मज्ञान दिए देते हैं! कारण है। क्योंकि कृष्ण के पास जो है, वही दे सकते हैं। आप अगर अमृत के सागर के पास विष लेने भी जाएं, तो भी अमृत का सागर क्या कर सकता है? वह आपको अमृत ही दे देगा। भला आप पीछे पछताएं कि गलत जगह पहुंच गए। फंस गए!
अर्जुन तो एक बहुत छोटा-सा सवाल लेकर गया था। उसने सोचा भी न होगा कि इतनी बड़ी गीता उससे पैदा होगी। उसने सोचा भी न होगा कि कृष्ण ज्ञान की इतनी गहराइयों में उसे ले जाएंगे।

मगर कृष्ण की भी अपनी मजबूरी है। कृष्ण के पास जो है, वे वही दे सकते हैं। आगे वे कुछ ऐसी गहन बातें कहने वाले हैं, जो कि अर्जुन अगर पूरी तरह उन्मुख हो, तो ही समझ पाएगा, इसलिए यह शर्त लगाई है।

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते।। 2।।
मैं तेरे लिए इस रहस्यसहित तत्वज्ञान को संपूर्णता से कहूंगा कि जिसको जानकर संसार में फिर और कुछ भी जानने योग्य शेष नहीं रहता है।

बहुत कुछ है, जो जान लिया जाए, तब भी सब कुछ जानने को शेष रह जाता है।
बहुत कुछ है, जो पूरा का पूरा जान लिया जाए, तो भी जो जानने जैसी चीज है, वह शेष ही रह जाती है।
उपनिषद में कथा है कि श्वेतकेतु वापस लौटा। तो उसके पिता ने देखा कि श्वेतकेतु वापस लौट रहा है आश्रम से अध्ययन करके। स्वभावतः, अकड़ उसमें रही होगी। जो भी थोड़ा-बहुत ज्ञान सीख ले, अकड़ पैदा होती है। श्वेतकेतु अकड़ता हुआ चला आ रहा है!
सुबह सूरज निकला है और पिता श्वेतकेतु को आता हुआ देखता है। सब कुछ जानकर लौट रहा है। अठारह शास्त्र, जो उन दिनों प्रचलित थे, उन सबका ज्ञान लेकर आया है। अब अकड़ में और कोई कमी नहीं है। अब तो पिता भी उसके सामने कुछ नहीं जानता। जैसा कि सभी बच्चों को लगता है, जब वे थोड़ा-सा जान लेते हैं। उस दिन के भी बच्चे ऐसे ही थे, जैसे आज के बच्चे हैं।
श्वेतकेतु अकड़ से घर में प्रवेश किया। पिता ने उससे पूछा, तू सब जानकर
आ गया, ऐसा मालूम पड़ता है। उसने कहा कि निश्चित ही। आप पूछ देखें। सब परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुआ। सब शास्त्र कंठस्थ हैं। गुरु ने जब प्रमाणपत्र दे दिया, तब मैं आया हूं। पर उसके पिता ने पूछा कि तूने अपने गुरु से वह भी जाना या नहीं, जिसको जान लेने से सब जान लिया जाता है?
उसने कहा, वह क्या चीज है, जिसको जान लेने से सब जान लिया जाता है! ऐसी
तो कोई चीज गुरु ने मुझे नहीं बताई, जिसको जान लेने से सब जान लिया जाता है। मैं तो वे ही चीजें जानकर आ रहा हूं, जिनको जान लेने से उन्हीं को जाना जाता है। सब का कोई सवाल नहीं है!
तो पिता ने कहा, तू वापस जा। तू बेकार ही श्रम करके घर लौट आया। तेरी अकड़ ने ही मुझे कह दिया कि तू अज्ञानी का अज्ञानी ही वापस आ रहा है। क्योंकि अकड़ अज्ञान का सबूत है। तू वापस जा। तू शास्त्रों के बोझ से तो दब गया, लेकिन ज्ञान की किरण अभी तेरे जीवन में नहीं फूटी। उसे जानकर आ, जिसे जान लेने के बाद कुछ जानने को शेष नहीं रह जाता।
वह बेचारा वापस लौटा, उदास। सब व्यर्थ हो गया, बरसों की मेहनत। गुरु
से जाकर उसने कहा कि आपने भी क्या सिखाया! पिता ने कहा कि यह तो कुछ भी नहीं है। और मैं तो यह मानकर लौटा कि सब जान लिया गया। और उन्होंने कहा है कि उसे जानकर आ, जिसे जान लेने से सब जान लिया जाता है। वह क्या है जिसे जान लेने से सब जान लिया जाता है?
उसके गुरु ने कहा, वह तू स्वयं है। लेकिन तूने कभी मुझसे पूछा ही नहीं
कि मैं कौन हूं! तूने पूछा नहीं! तूने जो पूछा, वह मैंने तुझे बताया। तूने पूछा, आकाश में बादल कैसे बनते हैं, तो मैंने बताया होगा। तूने पूछा, नदियां कैसे बहती हैं, तो मैंने बताया होगा। तूने पूछा कि अन्न कैसे पचता है, तो मैंने बताया होगा। तूने जो पूछा, वह मैंने तुझे बताया। तूने कभी यह पूछा ही नहीं कि मैं कौन हूं! और जब तक कोई स्वयं को न जान ले, तब तक वह ज्ञान नहीं मिलता, जिसे जानने से सब जान लिया जाता है। या जिसे जान लेने पर फिर जानने को कुछ शेष नहीं रह जाता है।
तो कृष्ण कहते हैं, अब मैं वह रहस्य तुझसे कहूंगा अर्जुन, और पूरा ही बता दूंगा तुझे--तीन-चार बातें कहते हैं--अब मैं वह रहस्य तुझसे कहूंगा अर्जुन।
रहस्य, मिस्ट्री। कह सकते थे कि वह सत्य मैं तुझसे कहूंगा। लेकिन कहते हैं, वह रहस्य मैं तुझसे कहूंगा। क्योंकि उस रहस्य को कहने के लिए

सत्य शब्द भी छोटा है। और उसे सत्य नहीं कहा जानकर। क्योंकि उसे कितना ही जान लो, तब भी कभी दावा नहीं कर सकते कि जान लिया है। इसलिए कहा, रहस्य। रहस्य का मतलब यह है, जानो, तो खुद मिटते हो। और जानो, तो और मिटते हो।
और जानो, तो और। और एक दिन आता है कि जानना तो पूरा हो जाता है, लेकिन खुद बिल्कुल नहीं रह जाते। दावेदार खतम हो जाता है। वह जो क्लेम कर सकता था कि मैंने जान लिया, सत्य मेरी मुट्ठी में है, वह बचता नहीं। न मुट्ठी बांधने वाला बचता है, न मुट्ठी बचती है। फिर जो बच रहता है, वह एक मिस्ट्री है, वह एक रहस्य है।
इसलिए भी रहस्य कहा कि पूरी तरह जानकर भी, पूरी तरह परिचित होकर भी, वह ज्ञान तर्कबद्ध नहीं होता है। वह लाजिकल नहीं है। वह एक रहस्य की भांति है; धुंधला है। जैसे सुबह, जब सूरज नहीं निकला है, चारों तरफ कुहरा छाया हुआ है। चीजें रहस्यपूर्ण लगती हैं। या रात पूर्णिमा की चांदनी में, जब कि कहीं वृक्षों के नीचे अंधेरा है, और कहीं धीमी चांदनी है, और सब रहस्यपूर्ण हो जाता है। एक मिस्ट, एक धुंध घेरे रहती है।
उस रहस्य में जब कोई पहुंचता है, तो एक गहन चांदनी रात में, जहां सब चीजें रहस्यपूर्ण मालूम पड़ती हैं; कोई चीज अपने में पूरी नहीं मालूम पड़ती; प्रत्येक चीज किसी और चीज की तरफ इशारा करती है। गद्य की भांति नहीं है वह, पद्य की भांति है; काव्य की भांति है; जिसका ओर-छोर नहीं मिलता। जिसे एक तरफ से शुरू करें, तो दूसरा अंत नहीं आता। और जिसमें जितने भीतर प्रवेश करें, उतनी ही पहेली बड़ी होती चली जाती है।
इसलिए नहीं कहा कि तुझे सत्य कहूंगा। कहा कि तुझे कहूंगा वह रहस्य।
और ध्यान रहे, संतों ने कभी भी सत्य का दावा नहीं किया, रहस्य की घोषणा
की है। दार्शनिकों ने सत्य का दावा किया और रहस्य की हत्या की है। और इसलिए दर्शन, फिलासफी और धर्म में एक बुनियादी फर्क है।
धर्म रहस्य की खोज है और दर्शनशास्त्र सत्य की। इसलिए दार्शनिक गणित बिठाने में लगा रहता है, और धार्मिक गणित उखाड़ने में लगा रहता है। दर्शनशास्त्री तर्क, कनक्लूजन, निष्पत्तियां निकालता रहता है। और संत, मिस्टिक, सब निष्पत्तियां तोड़कर, वह जो अनंत अज्ञात है, उसमें कूद जाता है।
इसलिए कृष्ण ने कहा, रहस्य।
कृष्ण कोई फिलासफर नहीं हैं, कोई दार्शनिक नहीं हैं; उस अर्थों में जिसमें प्लेटो या अरस्तू या हीगल दार्शनिक हैं। उस अर्थ में कृष्ण दार्शनिक नहीं हैं। कृष्ण उस अर्थ में रहस्यवादी हैं, जैसे जीसस या बुद्ध या लाओत्से।
रहस्यवादी का कहना यह है कि तुम्हारे ज्ञान की घोषणा सिर्फ तुम्हारे अज्ञान का सबूत है। काश, तुम सच में ही जान लो, तो तुम जानने का दावा छोड़ दो। काश, तुम्हें पता चल जाए, तो जो सत्य है, वह इतना बड़ा है कि तुम उसमें कहीं पाओगे भी न कि तुम कहां खड़े हो। तुम उसमें डूब तो सकते हो, लेकिन उसको मुट्ठी में नहीं ले सकते हो।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, रहस्य।
रहस्य वह है, जिसमें हम तो डूब सकते हैं, लेकिन जिसे हम अपनी मुट्ठी में बांधकर घर में लाकर तिजोड़ी में बंद नहीं कर सकते। और हम कितना ही उसे जान लें, और कितना ही उसे पहचान लें, और कितना ही उसके साथ एक हो जाएं, फिर भी हमारे मन में अज्ञात का भाव बना ही रहेगा, दि अननोन मौजूद ही रहेगा। जानें कितना ही, पहचानें कितना ही, मिलन हो जाए कितना ही, फिर भी कुछ अज्ञात, कुछ अननोन शेष रहेगा।
वह अज्ञात जो शेष रह जाता है, सदा शेष रह जाता है, वही कृष्ण को रहस्य कहने के लिए प्रेरित करता है।
दूसरी बात वे कहते हैं, सभी तुझसे कह दूंगा।
इस पर भी विचार कर लेने जैसा है।
एक दिन बुद्ध एक वृक्ष के नीचे से गुजर रहे हैं। पतझड़ हो रही है। पतझड़ है। वृक्षों से सूखे पत्ते नीचे गिरते हैं। हवाएं पत्तों को उड़ाती हैं।
पत्तों की आवाज और ध्वनि जंगल में गूंज रही है। आनंद बुद्ध से पूछता है कि प्रभु! आज एकांत का क्षण है, एक बात पूछ लूं। बहुत दिन से पूछने का मन करता

है, लेकिन कोई न कोई मौजूद होता है; मैं टाल जाता हूं। आज यहां कोई भी नहीं है, सिवाय इन सूखे गिरते पत्तों के। मैं आपसे पूछ लूं एक बात। आप जो जानते हैं, वह सभी कह दिया है, या कुछ बचा भी लिया है? आपने जो जाना, वह सभी कह दिया है, या कुछ बचा भी लिया है?
तो बुद्ध अपना हाथ खोल देते हैं उसके सामने, और कहते हैं, मैं खुली हुई मुट्ठी की तरह हूं, बंद मुट्ठी की तरह नहीं। मैंने तो सभी कह दिया है, लेकिन तुमने सभी सुन लिया होगा, यह जरूरी नहीं है। मैंने तो सब बता दिया है, लेकिन सब तुमने पा लिया होगा, यह जरूरी नहीं है। मैंने तो कुछ भी नहीं छिपाया है, लेकिन सब प्रकट हो गया होगा, यह जरूरी नहीं है। मैं तो एक खुली किताब हूं, खुली मुट्ठी हूं। सब मेरा खुला है। द्वार-दरवाजे खुले हैं। तुम कहीं से भी प्रवेश करो। तुम सब जान लो। कुछ भी छिपाया नहीं है। कुछ छिपाने का सवाल नहीं है। लेकिन सब तुम्हें प्रकट हो गया होगा, यह जरूरी नहीं है। कृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि सभी कुछ कह दूंगा तुझे--सभी। जो कहा जा सकता है, वह भी कह दूंगा; जो नहीं कहा जा सकता है, वह भी कह दूंगा। सभी में दोनों आ जाते हैं। जो कहा जा सकता है, वह भी कह दूंगा; जो नहीं कहा जा सकता है, वह भी कह दूंगा।
आप पूछेंगे, जो नहीं कहा जा सकता है, उसको कैसे कहिएगा?
शायद जो नहीं कहा जा सकता, उसको कहने की बहुत तरह की कोशिशें दुनिया में की गई हैं अलग-अलग ढंग से। लेकिन कृष्ण ने जैसी कोशिश की है, वैसी बहुत मुश्किल से शायद ही कभी की गई है। इसलिए कृष्ण जब कह-कहकर थक गए, तो फिर उन्होंने दिखाया। वह कहा, जो नहीं कहा जा सकता है। फिर अर्जुन को कहा कि अब तेरी समझ में नहीं आता शब्दों से, तो अब तू देख ले। अब मैं तुझे दिव्य-दृष्टि दे देता हूं और तू देख ले मेरे पूरे विराट को। वह जो नहीं कहा जा सकता है, वह दिखाया।
विट्गिंस्टीन का बहुत प्रसिद्ध वचन है, देयर आर थिंग्स, व्हिच कैन नाट बी सेड, बट कैन बी शोड। विट्गिंस्टीन पश्चिम के आधुनिक मिस्टिक, आधुनिक रहस्यवादियों में कीमती आदमी था। कहता है, ऐसी चीजें हैं, जो नहीं कही जा सकतीं, लेकिन बताई जा सकती हैं। और अगर उसके वचन के लिए कोई गवाही है, तो वे कृष्ण हैं। क्योंकि जब नहीं कह सके वे, तो उन्होंने बताया कि अब तू देख ले।
लेकिन कितना अभागा है हमारा मन! कि कृष्ण जब शब्द का उपयोग करते हैं,
तब अर्जुन समझ नहीं पाता। और जब स्थिति का उपयोग करते हैं, सिचुएशन का, प्रकट कर देते हैं पूरा का पूरा, तब वह कहता है, बंद करो! बंद करो! रोको यह रूप। मन बहुत घबड़ाता है। मेरे प्राण बहुत कंपते हैं। इस विराट को वापस ले लो। यह अपनी आंख वापस लो! न सुनकर हम समझ पाते हैं, न देखकर हम समझ पाते हैं।
इसलिए कृष्ण जैसे व्यक्ति की करुणा अपरिसीम है। यह जानते हुए कि हम सुनकर भी नहीं समझ पाएंगे, हम देखकर भी नहीं समझ पाएंगे, फिर भी एक असंभव प्रयास कृष्ण जैसे लोग करते हैं। उनकी वजह से जिंदगी में थोड़ा नमक है, उनकी वजह से जिंदगी में थोड़ी रौनक है, जिन्होंने असंभव प्रयास किया। कहते हैं, सब कह दूंगा अर्जुन तुझे, सब! पूरा का पूरा कह दूंगा। बस, तू सुनने को राजी हो। और वह बात बताना चाहता हूं, जिसे जान लेने से सब जान लिया जाता है।
इसको भी थोड़ा-सा ख्याल में ले लें। क्योंकि इस भारत में हमने सर्वाधिक जिसकी खोज की है, वह इसी एक छोटी-सी बात की, जिसको जान लेने से सब जान लिया जाता है--मास्टर-की।
एक तो ऐसी कुंजी होती है कि एक ताले में लगती है। दूसरे ताले के लिए दूसरी कुंजी की जरूरत होती है। तीसरे ताले के लिए तीसरी कुंजी की जरूरत होती है। लेकिन एक मास्टर-की है, जो सब तालों में लगती है। एक कुंजी मिल गई, तो फिर किसी कुंजी की कोई जरूरत नहीं रहती। सब ताले खुल जाते हैं।
इस मुल्क ने मास्टर-की खोजने की कोशिश की है। पश्चिम भी कुंजियां खोजता है, लेकिन कुंजियां। हमने कुंजी खोजने की कोशिश की है। पश्चिम भी खोजता है। वह कहता है, यह ताला कैसे खुलेगा! तो फिजिक्स का ताला किसी और कुंजी से खुलता है। केमिस्ट्री का किसी और कुंजी से खुलता है। साइकोलाजी

का किसी और कुंजी से खुलता है। गणित का किसी और से। हजार कुंजियां खोज लीं उन्होंने।
अब तो हालत यह हो गई है कि कौन-सी कुंजी कौन-सी है, इसका हिसाब रखना मुश्किल हुआ जा रहा है। फिर एक-एक कुंजी को खोजने के बाद और हजार ताले मिल जाते हैं, तो फिर उसमें और सब-ब्रांचेज कुंजी की खोजनी पड़ती हैं। तो केमिस्ट्री कभी केमिस्ट्री थी, अब केमिस्ट्री में बायो-केमिस्ट्री भी है, आर्गेनिक केमिस्ट्री भी है। अब अलग कुंजियां हैं। और कितनी देर तक आर्गेनिक केमिस्ट्री आर्गेनिक रहेगी; उसमें और कुंजियां निकली आती हैं! अभी पश्चिम में एक बहुत होशियार बुद्धिमान आदमी ने, स्नो ने एक किताब लिखी, जिसमें उसने घोषणा की कि पश्चिम अपने ज्ञान के दबाव में मर सकता है। क्योंकि ज्ञान इतना हो गया, और उसके बीच कोई तालमेल नहीं है। सब के पास कुंजियां हैं, सब के पास ताले हैं। यह पता ही नहीं चलता कि कौन-सा ताला खोलें, कौन-सा न खोलें! कौन-सा क्यों खोलें! और सब तरफ से ताले खुल रहे हैं, और आदमी है कि बिल्कुल बंद है, और उसका कुछ खुलता हुआ मालूम नहीं पड़ता। ज्ञान बहुत; अज्ञान अपनी जगह कायम। ज्ञान का भार भारी।
आज जमीन पर जितना ज्ञान है, पृथ्वी पर कभी नहीं था। और अगर इसी मात्रा में ज्ञान बढ़ता है, तो जो लोग हिसाब-किताब लगाते हैं, वे कहते हैं, कुछ ही दिन में पृथ्वी के वजन से ज्यादा पुस्तकें हमारे पास हो जाएंगी। पृथ्वी क्या करेगी उस वक्त, यह अपने को अभी पता नहीं है। ऐसा होने देगी, यह भी पक्का पता नहीं है। लेकिन इसी रफ्तार से बढ़ता है। क्योंकि प्रति सप्ताह दस हजार नए ग्रंथ प्रकाशित हो जाते हैं। यह बोझ बढ़ता चला जाता है।
इसलिए अब सारी दुनिया में जहां बड़ी लाइब्रेरीज हैं, वे लोग चिंतित हैं कि इतनी बड़ी लाइब्रेरीज को अब बचाया नहीं जा सकता। इनको कैसे बचाएंगे? लोगों के लिए रहने की जगह नहीं है; किताबों के लिए कैसे जगह होगी? तो किताबों को माइक्रो बुक्स, छोटी किताबें करो। तो जितनी एक किताब की जगह में कम से कम एक लाख किताबें बन सकें, इतनी छोटी करो। फिर पर्दे पर उसको बड़ा करके पढ़ लो। छोटी-छोटी करो। क्योंकि इतनी किताबें अब नहीं रखी जा सकतीं।
इतना ज्ञान, और आदमी के अज्ञान का कोई हिसाब नहीं है! आदमी निपट अज्ञानी है। मास्टर-की की तलाश नहीं हुई है।
कृष्ण कहते हैं, मैं तुझे मास्टर-की दूंगा। मैं तुझे वह कुंजी दूंगा, जिसे पा लेने के बाद किसी कुंजी की कोई जरूरत नहीं। मैं तुझे वह कुंजी दूंगा कि ताले खोलने नहीं पड़ते, कुंजी को देखते हैं कि खुल जाते हैं। मैं तुझे वह बता दूंगा, जिसे जान लेने से सब जान लिया जाता है। वह एक तत्व मैं तुझे कह दूंगा। वह अनिर्वचनीय, वह एक परम, अल्टिमेट, वह आखिरी सत्य, वह बुनियाद का सत्य, वह अनादि, अनंत मैं तुझे कह दूंगा। उसे जान लेने पर फिर कुछ और जानने को शेष नहीं रह जाता।
शेष हम कल बात करेंगे।
लेकिन अभी उठेंगे नहीं। उस मास्टर-की का थोड़ा यहां प्रयोग करना है, इसलिए थोड़ा बैठेंगे। पांच मिनट कोई भी नहीं जाएगा। इतनी देर आप अपने मन से बैठे थे, पांच मिनट मेरे मन से।
कोई उठेगा नहीं। पांच मिनट हमारे संन्यासी कीर्तन करेंगे। वह भी एक मास्टर-की है। और कोई अगर उसमें भीतर पूरा प्रवेश कर जाए, तो ताले बिना चाबी लगाए खुलते हैं। आप भी बैठे-बैठे थोड़ा खोलने की कोशिश करें।
ताली भी बजाएं। गाएं भी। मस्त भी हों। आनंदित भी हों। पड़ोसी की फिक्र छोड़ दें। जिसको पड़ोसी की फिक्र है, उसको परमात्मा की फिक्र कभी नहीं होती।
पड़ोसी की फिक्र छोड़ दें। परमात्मा की थोड़ी फिक्र करें।
संन्यासी आनंदमग्न होंगे। आप भी पांच मिनट उनका प्रसाद लें। और फिर
हम विदा होंगे।

गीता दर्शन, भाग तीन
गीता दर्शन अध्याय 7
दूसरा प्रवचन

परमात्मा की खोज

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः।। 3।।
परंतु हजारों मनुष्यों में कोई ही मनुष्य मेरी प्राप्ति के लिए यत्न करता है, और उन यत्न करने वाले योगियों में भी कोई ही पुरुष मेरे परायण हुआ मेरे को तत्व से जानता है अर्थात यथार्थ मर्म से जानता है।

प्रभु की यात्रा सरल भी है और सर्वाधिक कठिन भी। सरल इसलिए कि जिसे पाना है, उसे हमने सदा से पाया ही हुआ है। जिसे खोजना है, उसे हमने वस्तुतः कभी खोया नहीं है। वह निरंतर ही हमारे भीतर मौजूद है, हमारी प्रत्येक श्वास में और हमारे हृदय की प्रत्येक धड़कन में। इसलिए सरल है प्रभु को पाना, क्योंकि प्रभु की तरफ से उसमें कोई भी बाधा नहीं है। इसे ठीक से ध्यान में ले लेंगे।
प्रभु को पाना सरल है, क्योंकि प्रभु सदा ही अवेलेबल है, सदा ही उपलब्ध है। लेकिन प्रभु को पाना कठिन बहुत है, क्योंकि आदमी सदा ही प्रभु की तरफ पीठ किए हुए खड़ा है। आदमी की तरफ से सारी कठिनाइयां हैं, प्रभु की तरफ से कोई भी कठिनाई नहीं है। उसके मंदिर के द्वार सदा ही खुले हैं, लेकिन हम उन मंदिर के द्वारों की तरफ पीठ किए हैं। पीठ ही नहीं किए हैं, पीठ करके भाग भी रहे हैं। भाग ही नहीं रहे हैं, अपना पूरा जीवन, अपनी पूरी शक्ति, अपनी पूरी सामर्थ्य, किस भांति उस मंदिर से दूर निकल जाएं, इसमें लगा रहे हैं।
यद्यपि हम निकल न पाएंगे। हजारों-हजारों जन्मों में दौड़कर भी उस मंदिर से हम दूर न जा पाएंगे। और जिस दिन भी हम पीठ फेरकर देखेंगे, पाएंगे कि वह मंदिर वहीं का वहीं मौजूद है--वहीं, जहां से हमने दौड़ना शुरू किया था।
आदमी की तरफ से बहुत कठिनाइयां हैं। इसलिए कृष्ण के इस सूत्र में उन्होंने कहा, करोड़ों में कोई एक प्रयास करता है। और प्रयास करने वाले करोड़ों में कोई कभी एक मुझे उपलब्ध होता है।
दो बातें। करोड़ों में कभी कोई एक प्रयास करता है। इसे समझें। और फिर प्रयास करने वाले करोड़ों में भी कभी कोई एक मुझे परायण हुआ, मुझे समर्पित हुआ, उपलब्ध होता है।
क्यों करोड़ों लोगों में कभी कोई एक प्रयास करता है उसे पाने के लिए, जिसे पाए बिना कोई चारा नहीं, जीवन में कोई अर्थ नहीं? क्यों करोड़ों में कोई एक प्रयास करता है उसे पाने के लिए, जिसे पाकर सब पा लिया जा सकता है? क्या होगा कारण? होना तो ऐसा चाहिए कि करोड़ों में कभी कोई एक प्रयास न करे, बाकी सारे लोग प्रयास करें। क्योंकि परमात्मा आनंद है, जीवन है, अमृत है। तो करोड़ों में कोई एक क्यों प्रयास करता है? इसके कारण को थोड़ा ठीक से समझ लेना जरूरी है, क्योंकि वह उपयोगी है।
सबसे पहला कारण तो यह है कि जो हमें मिला ही हुआ है, उसे पाने के लिए हम क्यों कर चेष्टा करें? सागर की मछली सब कुछ खोजती होगी, सागर को कभी नहीं खोजती है। सागर की मछली सब खोजों पर निकलती होगी, लेकिन सागर की खोज पर कभी नहीं निकलती है। उसी में पैदा होती है, उसी में जीती है, बड़ी होती है, श्वास लेती है, उसी में समाप्त होती है। उसे पता भी नहीं चलता कि सागर है।
मछली को भी सागर का तभी पता चलता है, जब उसे सागर के बाहर निकालो। अगर मछली सागर के बाहर न आए, तो उसे कभी भी पता नहीं चलता कि सागर है। असल में सागर के साथ इतनी एक है कि पता भी कैसे चले! पता चलने के लिए दूरी चाहिए। तो मछली तो कभी-कभी सागर के बाहर भी आ जाती है, आदमी तो परमात्मा के बाहर कभी नहीं आता है। मछली को तो कोई मछुवा कभी फांस भी लेता है जाल में और सागर के तट पर भी तड़फने को छोड़ देता है। आदमी के लिए तो ऐसा कोई तट नहीं

है, जहां परमात्मा मौजूद न हो। आदमी जहां भी जाए, वहां परमात्मा मौजूद है।
जो इतना ज्यादा मौजूद है, उसकी हम फिक्र छोड़ देते हैं, उसका हमें ख्याल भूल जाता है।
ध्यान रहे, हमारे ध्यान की जो धारा है, वह जो गैर-मौजूद है, उसकी तरफ बहती है। जैसे आपका एक दांत टूट जाए, तो जीभ उस दांत की तरफ चलने लगती है। जो दांत मौजूद हैं, उनकी तरफ नहीं चलती। और भलीभांति एक दफे पता लगा लिया कि टूट गया, खाली जगह छूट गई, फिर भी दिनभर जीभ वहीं दौड़ती रहती है! जहां अभाव है, वहां हम खोजते हैं। जिसका अति भाव है, जो एकदम मौजूद है घना होकर, वहां हम नहीं खोजते।
मन के गहरे नियमों में एक यह है कि जो हमें उपलब्ध है, उसकी हम विचारणा छोड़ देते हैं। जो हमें उपलब्ध नहीं है, उसकी हम खोज करते हैं। जो हमारे पास है, उसे हम भूल जाते हैं। जो हम से दूर है, उसकी हम स्मृति से भर जाते हैं। जिसे हम खो देते हैं, उसका पता चलता है; और जिसे हम कभी नहीं खोते, उसका पता भी नहीं चलता।
परमात्मा की खोज पर निकलने में जो सबसे बड़ी बाधा है, वह मन का यह नियम
है कि हमें उसका ही पता चलता है, जो नहीं है। निगेटिव का पता चलता है, पाजिटिव का पता नहीं चलता। टूट गया दांत, तो पता चलता है। वह दांत चालीस साल से आपके पास था, तब इस जीभ ने कभी उसकी फिक्र न की। आज नहीं है, तो उसकी तलाश है!
मन निगेटिविटी, मन जो है नकार की तरफ दौड़ता है। वैसे ही जैसे पानी गड्ढों की तरफ दौड़ता है, ऐसा ही मन अभाव की तरफ, एब्सेंस की तरफ, जो नहीं है, उसकी तरफ दौड़ता है। जो है, उसकी तरफ मन नहीं दौड़ता।
और परमात्मा सर्वाधिक है। टू मच। इतना ज्यादा है कि उसके सिवाय और कुछ भी नहीं है। वही वही है। सब तरफ वही है। आंख खोलें तो, आंख बंद करें तो; जागें तो, सो जाएं तो। सब तरफ वही वही है। सागर की तरह हमें घेरे हुए है। इसलिए करोड़ों में एक उसकी खोज पर निकलता है।
अगर परमात्मा की खोज पर निकलना हो, करोड़ों में एक बनना हो, तो इस सूत्र
से विपरीत चलेंगे तभी, अन्यथा कभी नहीं। जो आपके पास हो, उसका स्मरण रखें; और जो आपसे दूर हो, उसे भूल जाएं। जो दांत अभी मुंह में हो, उसे जीभ से टटोलें; और जो गिर जाए, उसे मत टटोलें। जो आज सुबह रोटी मिली हो, उसका आनंद लें; जो रोटी कल मिलेगी, उसके सपने मत देखें। जो नहीं है, उसे छोड़ दें; और जो है, उसे पूरे आनंद से जी लें। तो आप करोड़ों में एक बनना शुरू हो जाएंगे। क्योंकि ध्यान रखना, यात्रा सीधी परमात्मा की नहीं हो सकती, जब तक आपके मन का ढंग, आपके मन की व्यवस्था न बदले।
कभी आपने ख्याल किया कि आप सोचते हैं, एक मकान बना लें। जब तक नहीं बनाते, तब तक मन बिल्कुल आर्किटेक्ट हो जाता है। कितनी कल्पनाएं करता है! कितने नक्शे बनाता है! फिर मकान बन जाता है। फिर उसी मकान में जीने लगते हैं, और मकान को भूल जाते हैं। हां, रास्ते से जो निकलते होंगे, उनके मन में आपके मकान के लिए विचार आता होगा। आपको भर नहीं आता, जो उसके भीतर रहता है! पढ़ रहा था मैं, एक युवक का विवाह हो रहा है चर्च में। घंटियां बजी हैं,
और मोमबत्तियां जली हैं। और मित्र उपहार लाए हैं, और धन्यवाद दे रहे हैं। लेकिन तभी अचानक वह युवक उदास हो गया। तो चर्च के जिस पादरी ने विवाह करवाया था, उसने पूछा कि इतने उदास क्यों हो गए हो? तुम्हें तो खुश होना चाहिए, क्योंकि जिसे तुमने चाहा था, वह स्त्री तुम्हें मिल गई!
वह युवक कहने लगा, इसीलिए तो उत्साह एकदम क्षीण हो गया है। उत्साह एकदम क्षीण हो गया है। जिसे चाहा था, वह मिल गई, इसीलिए तो उत्साह एकदम क्षीण हो गया है। उस युवक ने कहा कि आज मैं सोचता हूं कि मजनू के रास्ते में जिन लोगों ने बाधाएं डालीं और लैला को न मिलने दिया, उन्होंने बड़ी कृपा की। क्योंकि मजनू लैला को याद तो करता रहा। जिन मजनुओं को उनकी लैलाएं मिल जाती हैं, वे और दूसरों की लैलाओं की भला फिक्र करें, अपनी लैलाएं भूल जाते हैं!
मन का नियम है, जो मिल जाता है, वह भूल जाता है। और परमात्मा तो मिला ही हुआ है। उसे तो याद करने की सुविधा भी नहीं बनती।

तो मन के नियम को बदलना पड़ेगा। मन का नियम अभी गड्ढों की तरफ दौड़ना है। मन को पर्वतों की तरफ दौड़ाना शुरू करना पड़ेगा। और कोई कठिनाई नहीं है। जिंदगी में बहुत कुछ मिला है, उसमें आह्लाद अनुभव करें। जो मिला है, उसमें प्रसन्न हों। जो है पास, उसमें संतुष्ट हों। जो पास है, उसके लिए प्रभु को धन्यवाद दें। जो है, उसे देखें; और जो नहीं है, उसे छोड़ें। बहुत शीघ्र आप पाएंगे कि आपकी परमात्मा की खोज शुरू हो गई।
इसलिए जिन लोगों ने परमात्मा की खोज में संतोष को अनिवार्य बताया है, उसका कारण भी आप समझ लें, वह इस सूत्र में छिपा हुआ है। संतोष में अपने आप कोई मूल्य नहीं है। संतोष अपने आप में कोई वेल्यू नहीं है; उसकी अपने आप में कोई कीमत नहीं है। क्योंकि मरा हुआ आदमी भी, मरा-मराया आदमी भी संतुष्ट दिखाई पड़ सकता है। ऐसा आदमी भी संतुष्ट मालूम पड़ सकता है, जिसमें जरा भी दौड़ने की हिम्मत नहीं है। कायर है, भयभीत है, चुनौती लेने से डरता है। नहीं; संतोष में अपने आप में मूल्य नहीं है, लेकिन संतोष का एक ही मूल्य है, वह परमात्मा की तरफ उन्मुख करने में कीमती है।
इसलिए मैं आपको कहता हूं कि संतोष का अब तक जो भी ख्याल दुनिया में दिया गया कि संतोषी सदा सुखी, वह सब बच्चों की बातें हैं। सच तो यह है कि संतोषी के जीवन में एक नया दुख पैदा होता है, वह दुख परमात्मा को पाने का दुख है। वह और किसी की जिंदगी में पैदा नहीं होता। हां, संतोषी की जिंदगी में आस-पास की चीजों से सुख हो जाता है। क्योंकि जो उसे है, वह उसमें प्रसन्न है। वह उसे भोग रहा है। वह परमात्मा के प्रति अनुगृहीत है। लेकिन इस संतोषी के जीवन में एक नई आग जलनी शुरू होती है, वह परमात्मा
की खोज है। क्योंकि जब वह पाता है कि साधारण से भोजन में जो मुझे उपलब्ध है, अगर मैं उस पर ध्यान देता हूं, तो इतना रस मिलता है; साधारण-सा झोपड़ा जो मुझे उपलब्ध है, जब मैं उस पर ध्यान देता हूं, तो इतना रस मिलता है; साधारण-सा जीवन जो मुझे उपलब्ध है, जब मैं उस पर ध्यान देता हूं, तो इतना रस मिलता है--तो वह जो जीवन का मूलाधार है, जो मेरे होने के पहले से मेरे पास है, और मेरे न हो जाने पर भी मेरे पास होगा, मेरी लहर बनेगी और मिटेगी, और वह रहेगा, उसे पा लेने से क्या होगा! उसको पा लेने की एक नई पीड़ा, एक नई प्रसव-पीड़ा शुरू होती है।
संतोष को योग ने एक अनिवार्य सूत्र माना है परमात्मा की तलाश के लिए। अगर आप सोचते हों कि संतोष केवल संसार की दौड़ से बच जाने की तरकीब है, तो आपको संतोष की कीमिया का कोई पता नहीं। वह तो बड़ी गौण बात है। महत्वपूर्ण बात यह है कि जो अपने चारों तरफ जो मौजूद है, उससे संतुष्ट हो जाता है, उसके भीतर उसकी खोज शुरू होती है, जो सबसे ज्यादा गहराई में सदा से मौजूद है। उसके रस की खोज शुरू हो जाती है।
करोड़ों में इसीलिए एक आदमी! वह जिसके पास पाजिटिव माइंड है।
हमारे सबके पास निगेटिव माइंड है, हमारे पास नकारात्मक मन है। हमें मित्र तब दिखाई पड़ता है, जब वह घर से जा चुका होता है। हमें सुख का भी तब पता चलता है, जब वह हाथ से छूट गया होता है। हमें प्रेम का भी तब पता चलता है, जब प्रेम का दीया बुझने लगता है। हमें पता ही तब चलता है, जब कोई चीज समाप्त होती है। जब कोई मरता है, तभी हमें पता चलता है कि वह था। जब तक वह था, तब तक हमें पता ही नहीं चलता।
पिता घर में मौजूद है, बेटे को बिल्कुल पता नहीं चलता कि है। जिस दिन मरेगा पिता, उस दिन पता चलेगा। उस दिन रोएगा, छाती पीटेगा। और जब तक पिता मौजूद था, तब कभी दो क्षण भी उसके पास नहीं बैठा था। बड़े आश्चर्य की बात है। तब तक कभी फुर्सत न मिली थी कि दो क्षण उसके पैरों पर हाथ रखकर बैठ जाए। अब मुर्दे की छाती पर सिर पटकेगा।
निगेटिव माइंड है। जो नहीं है, बस, वह हमारे लिए महत्वपूर्ण हो जाता है। जो है, वह गैर-महत्वपूर्ण हो जाता है।
इसीलिए दुनिया में कोई आदमी अमीर नहीं हो पाता। कितना ही धन मिल जाए, गरीबी नहीं मिटती। क्योंकि निगेटिव माइंड गरीब है। निगेटिव माइंड कभी अमीर नहीं हो सकता। क्योंकि जो भी मिल जाएगा, वह भूल जाएगा; और सदा मिलने को बाकी रहेगा, वह याद रहेगा।

भिखमंगे तो भिखमंगे होते ही हैं, अरबपति भी उतने ही भिखमंगे होते हैं। जहां तक भिखमंगेपन का सवाल है, भिखमंगे को जो उसके पास है, वह दिखाई नहीं पड़ता; अरबपति को भी, जो उसके पास है, वह दिखाई नहीं पड़ता। भिखमंगे को भी उसकी मांग रहती है, जो पास नहीं है; अरबपति को भी उसकी ही मांग रहती है, जो उसके पास नहीं है। फर्क क्या है?
इतना ही फर्क है कि भिखमंगे के पास जो है, वह कम है भूलने को; अरबपति के पास भूलने को ज्यादा है। लेकिन भूलने को ही ज्यादा है, और तो कुछ अर्थ नहीं है। भिखमंगा अपने भिक्षा के पात्र को भूलता है, अरबपति अपनी तिजोड़ी को भूलता है। लेकिन भूलने में आप तिजोड़ी भूलें कि भिक्षा का पात्र भूलें, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। न तो भिखमंगा अपने भिक्षा के पात्र का आनंद ले पाता है, न करोड़पति अपनी तिजोड़ी का आनंद ले पाता है।
जो है, वह हमें दिखाई नहीं पड़ता। और परमात्मा अतिशय है। एक इंचभर जगह नहीं है, जहां वह नहीं है। इसीलिए करोड़ में कभी कोई एक उसकी खोज पर निकलता है। पाजिटिव माइंड, एक विधायक चित्त ही परमात्मा की खोज पर जा सकता है। उसे देखना शुरू करें, जो है। उसे भूलना शुरू करें, जो नहीं है। खाली स्थानों में मत भटकें; भरे स्थानों में जीएं। और ध्यान रहे, हर आदमी के पास इतना है कि काश, वह देखने लगे, तो शायद इस जमीन पर गरीब आदमी खोजना मुश्किल है।
सुना है मैंने कि एक आदमी रो रहा है, छाती पीट रहा है। और एक फकीर उसके पास से निकला है और उसने पूछा कि तुम इतने परेशान हो रहे हो कि मुझे मालूम पड़ता है कि तुम बड़े गरीब आदमी हो। लेकिन मेरे गुरु ने कहा है कि इस जमीन पर कोई आदमी गरीब नहीं है। या तो मेरे गुरु गलत हैं, या तुम कुछ गलती समझे हो। उस आदमी ने कहा, मुझसे गरीब आदमी खोजना मुश्किल है। आज मैं दो दिन से भूखा हूं। मेरे पास कुछ भी नहीं है। उस फकीर ने कहा, लेकिन मेरे गुरु ने कुछ जांचने की तरकीबें बताई हैं; मैं पहले उनका प्रयोग कर लूं। उस आदमी ने कहा, तुम कब प्रयोग करोगे? मैं मरने के करीब हूं। मैं नदी में जा रहा हूं गिरने के लिए। आत्महत्या की तैयारी करके निकला हूं। अब मेरे पास कुछ भी नहीं है।
उस फकीर ने कहा, तुम थोड़ा समय मुझे दो। तुम थोड़ी देर बाद भी मर जाओगे,
तो दुनिया का कोई हर्ज होने वाला नहीं है। तुम मेरे साथ आओ। कम से कम मैं अपने गुरु की परीक्षा कर लूं।
उस आदमी को ले गया सम्राट के पास। और सम्राट से जाकर भीतर उसने कुछ बात की। लौटकर उस आदमी को ले गया और रास्ते में उससे कहा कि सम्राट से मैंने तय कर लिया है; तुम्हारी एक-एक आंख के लिए वह एक-एक लाख रुपया देने को तैयार है। तुम दोनों आंखें बेच दो। दो लाख रुपए तुम्हारे हाथ में पड़ते हैं। उस आदमी ने कहा, तुमने मुझे क्या पागल समझा हुआ है? मैं और आंखें बेच दूं! उस फकीर ने कहा, लाख रुपए मिल रहे हैं, अगर तुम्हारा इरादा कुछ और ज्यादा का हो, तो बोलो। उसने कहा, तुम करोड़ भी दो, तो मैं आंख नहीं बेच सकता।
क्योंकि जैसे ही ख्याल आया अंधे होने का, तब पता चला कि आंख है। जब तक आंख थी, तब तक थी; बेकार थी। वह मरने जा रहा था। मरने में आंख भी मिट जाती। और भी सब कुछ मिट जाता।
तो फकीर ने कहा, छोड़ो आंख को। हो सकता है, तुम्हें मरने जाना है नदी पर,
तो आंख की जरूरत पड़े। इतना रास्ता पार करना पड़े। लेकिन कई चीजें ऐसी हैं, जो बिल्कुल बेकार हैं; मरने के लिए जिनका कोई उपयोग नहीं है। कान ही बेच दो। हाथ ही बेच दो। कुछ तो बेच दो। क्योंकि मैं तुम्हारे लिए ग्राहक खोज लिया हूं। उस आदमी ने कहा कि तू आदमी किस तरह का है! मैं नहीं मरना चाहता हूं।
क्योंकि उस आदमी को पहली दफा ख्याल आया कि अगर हाथ भर कट जाए, तो कितनी कमी हो जाएगी। तो मौत कितनी बड़ी कमी होगी!
अगर मरने वालों को, स्युसाइड करने वालों को करने के बाद एक मौका और दिया जाए, तो वे सब पछताते हुए वापस लौटेंगे। लेकिन मौका नहीं मिलता, इसलिए नहीं लौटते हैं। इसलिए अगर आपको स्युसाइड करनी हो, तो जल्दी कर लेना; देर मत लगाना। क्योंकि पांच-सात मिनट भी रुक गए, फिर आप न कर पाएंगे।

उतनी देर में तो शायद अभाव का ख्याल आ जाएगा कि यह मैं क्या कर रहा हूं! सब मिट जाएगा।
इसलिए जो लोग भी आत्मघात करते हैं, वे तीव्र भावावेश में और क्षण में
कर लेते हैं। कंसीडर्ड, सोच-विचारकर कभी भी कोई आत्महत्या नहीं कर पाता। इस पृथ्वी पर कुछ बहुत विचारशील लोग हुए हैं, जिन्होंने आत्महत्या की तारीफ की है। उनमें यूनान का एक विचारक था, पिरहो। पिरहो कहता था कि आत्मघात एकमात्र करने जैसी चीज है, क्योंकि जिंदगी बेकार है। लेकिन वह नब्बे वर्ष का होकर मरा। और जब वह मर रहा था, तब किसी ने संदेह उठाया कि आश्चर्य कि कम से कम पचास साल से आप लोगों को समझा रहे हैं कि जिंदगी-मौत सब बराबर हैं। मर जाने के सिवाय कोई ठीक काम नहीं है। देअर इ.ज नो डिफरेंस बिटवीन लाइफ एंड डेथ। आप यह समझाते रहे, कोई अंतर नहीं जीवन और मृत्यु में। आप नब्बे साल तक कैसे जीए? आप मर क्यों न गए?
पिरहो ने आंख खोली और उसने कहा, बिकाज देअर इ.ज नो डिफरेंस, क्योंकि कोई अंतर नहीं है मरने-जीने में। मैंने बहुत सोचा और पाया, कोई अंतर नहीं है। तो मरने से भी क्या फायदा! तो मैंने कहा, ठीक है, जो होता है, होने देना। पिरहो बहुत विचारशील आदमी था। और जिंदगीभर मरने के संबंध में सोचता रहा। मरा नब्बे वर्ष का होकर!
बहुत सोच-विचार वाले लोग आत्मघात नहीं करते। तीव्र भाव के क्षण में घटना घट जाती है। क्योंकि उस भाव के क्षण में आप इतने आविष्ट होते हैं कि आपका निगेटिव माइंड सोच नहीं पाता कि कितना बड़ा गड्ढा पैदा होने जा रहा है। बस एक क्षण में हो जाता है।
कृष्ण कहते हैं, करोड़ में कोई एक कभी प्रभु की खोज पर निकलता है।
क्योंकि करोड़ में एक आदमी के पास विधायक चित्त है।
कल मैंने कहा था, संदेह से भरा चित्त। आज आपको और मैं संदर्भ बता दूं।
संदेह से भरा चित्त निगेटिव होगा, नकारात्मक होगा। श्रद्धा से भरा चित्त विधायक होगा, पाजिटिव होगा।
अगर संदेह से भरे चित्त वाले आदमी को हम कहें कि दुनिया के संबंध में कुछ वक्तव्य दो, तो वह जो वक्तव्य देगा, वे नकारात्मक होंगे। वह कहेगा, दुनिया बिल्कुल बेकार है। यहां दो अंधेरी रात के बीच में एक छोटा-सा उजाले का दिन होता है। दो अंधेरी रात बड़ी घटना मालूम होगी। अगर हम विधायक चित्त के व्यक्ति से पूछें, तो वह कहेगा, यह दुनिया बड़ी अदभुत है। यहां दो उजेले दिनों के बीच में एक छोटी-सी अंधेरी रात होती है!
अगर हम निषेधात्मक चित्त के व्यक्ति से पूछें, तो वह गुलाब के फूल के पास खड़े होकर सिवाय परमात्मा की निंदा के और कुछ न कर पाएगा। क्योंकि वह कहेगा, जहां इतने कांटे हैं, वहां मुश्किल से एक फूल खिलता है। फूल बेकार हो गया इतने कांटों की वजह से। अगर हम विधायक चित्त के आदमी से पूछें, तो वह कहेगा, आश्चर्य! प्रभु का धन्यवाद है। वह गुलाब के पास खड़े होकर घुटने टेककर प्रभु की प्रार्थना में लीन हो जाएगा। और वह कहेगा, अदभुत है तेरी लीला कि जहां इतने कांटे हैं, वहां भी फूल पैदा होता है। चमत्कार है, मिरेकल है।
तो विधायक चित्त जिस व्यक्ति के पास है, वह प्रभु की खोज पर निकलता है।
लेकिन कृष्ण फिर एक और बात कहते हैं कि करोड़ लोग प्रयत्न करें, तो कभी
एक मुझे उपलब्ध होता है।
इसका क्या अर्थ होगा? इसे भी ठीक से समझ लें।
जो लोग भी प्रभु की दिशा में यात्रा शुरू करते हैं, करोड़ में से एक ही समर्पण करता है। करोड़ में से एक यात्रा करता है। अगर करोड़ यात्रा करें, तो एक समर्पण करता है। बाकी लोग संकल्प करते हैं, समर्पण नहीं। बाकी लोग कहते हैं, हम प्रभु को पाकर रहेंगे। तू कहां है, हम खोजकर रहेंगे। हम अपनी पूरी ताकत लगाएंगे। जीवन लगा देंगे दांव पर, लेकिन तुझे पाकर रहेंगे।
कभी एक आदमी ऐसा होता है, जो कहता है कि मेरी क्या सामर्थ्य! मैं असहाय हूं। मेरी कोई शक्ति नहीं है। मैं तुझे कैसे खोज पाऊंगा! अगर तू ही मुझे खोज ले, तो शायद घटना घट जाए। मैं तुझे कैसे खोज पाऊंगा! मेरी शक्ति बड़ी छोटी है। एक छोटी-सी बूंद हूं। न मालूम किस रेगिस्तान में खो जाऊं! अगर

सागर ही मुझ तक आ जाए, तो ठीक। अन्यथा मैं सागर को खोज पाऊं, इसकी कोई संभावना नहीं है।
जो लोग प्रभु की खोज पर निकलते हैं, वे भी अस्मिता को, अहंकार को लेकर निकलते हैं। वे कहते हैं, हम प्रभु को पाकर रहेंगे। साधना करेंगे। योग करेंगे। आसन करेंगे। ध्यान करेंगे। लेकिन पीछे वह मैं खड़ा रहेगा।
जैन परंपरा में एक बहुत मीठी कथा है। ऋषभ के सौ पुत्र थे। अनेक पुत्रों ने ऋषभ से दीक्षा ले ली। वे संन्यास की यात्रा पर निकल गए। बाहुबली भी ऋषभ के एक पुत्र थे। उन्होंने जरा देर की दीक्षा लेने में; कुछ सोच-विचार किया। लेकिन तब तक बाहुबली से छोटे बेटे दीक्षित हो गए। और जब बाहुबली के मन में दीक्षा का ख्याल आया, तो उसके अहंकार को बड़ी पीड़ा हुई कि अपने छोटे भाइयों को संन्यास के जगत में तो मुझे प्रणाम करना पड़ेगा। क्योंकि वे मुझसे अग्रणी हो गए। उनके संन्यास की यात्रा बड़ी हो गई। अपने से छोटों को और मैं नमस्कार करूं, यह न हो सकेगा! तो उसने सोचा, ऐसी भी क्या जरूरत है। मैं खुद ही साधना क्यों न कर लूं!
बलशाली व्यक्ति था। कमजोर तो हारते ही हैं, कभी-कभी बलशाली बुरी तरह हारते हैं। बल ही उनके हारने का कारण हो जाता है।
तो बाहुबली एकांत में जाकर गहन तपश्चर्या में, सघन तपश्चर्या में लीन हुए। शायद इस पृथ्वी पर कम ही लोगों ने ऐसी तपश्चर्या की होगी और ऐसी साधना की होगी। सब कुछ दांव पर लगा दिया। सब कुछ। बस, एक छोटी-सी चीज छोड़कर; वह मैं पीछे खड़ा रहा।
उनकी तपश्चर्या की ख्याति कोने-कोने तक पहुंच गई। जहां भी लोग सोचते- समझते थे, वहां तक बाहुबली की खबर पहुंची। और लोग हैरान हुए कि इतना पवित्रतम व्यक्ति, इतना शुद्धतम व्यक्ति, सब कुछ दांव पर लगाए खड़ा है, फिर भी कोई दर्शन नहीं हो रहा है सत्य का! क्या बात है?
ऋषभ के पास भी खबर पहुंची। ऋषभ मुस्कुराए और उन्होंने बाहुबली की एक बहन को, जो दीक्षित हो गई थी, बाहुबली के पास भेजा और कहा, बस, जरा-सा तिनका अटका हुआ है। लेकिन वह तिनका पहाड़ों से भी भारी है। सब दांव पर लगा दिया है, सिर्फ मैं को बचा लिया है!
और आप कुछ भी दांव पर न लगाएं, सिर्फ मैं को दांव पर लगा दें, तो हल हो जाए। लेकिन सब दांव पर लगा दें--धन, दौलत, यश, शरीर, मन--लेकिन एक पीछे मैं बच जाए, तो सब बेकार है। वह दांव पर लगाने वाला पीछे बच जाए, तो आप परमात्मा से संघर्ष कर रहे हैं; आप परमात्मा से प्रार्थना नहीं कर रहे हैं। तो आप सत्य को भी विजय करने निकले हैं; सत्य के साथ एक होने नहीं निकले हैं। यह कोई प्रेम की यात्रा नहीं है; यह कोई युद्ध, आक्रामक चित्त की दशा है।
सब दांव पर है बाहुबली का। कुछ बचा नहीं लगाने को। वह भी चिंता में पड़ा, अब और क्या करने को बचा है? जितने उपवास कहे हैं तीर्थंकरों ने, सब पूरे कर डाले। जितने जागरण के लिए कहा है, उतनी रातें जागकर बिता दीं। कहा है खड़े रहो, तो महीनों खड़ा रहा हूं। कहा है कि चित्त को एकाग्र कर लो, तो चित्त एकाग्र है। सब शर्तें पूरी हैं। फिर कुछ हो तो नहीं रहा है। कहीं कोई कमी तो नहीं दिखाई पड़ती।
फिर ऋषभ के द्वारा भेजी गई बाहुबली की बहन ने--बाहुबली आंख बंद किए। विशालकाय व्यक्ति था। सुंदरतम शरीर वाला व्यक्ति था। गोमटेश्वर में बाहुबली की प्रतिमा है, कभी आपने चित्र देखे होंगे। विशालकाय! जिसमें शरीर पर बेलाएं चढ़ गई हैं। और पक्षियों ने कान में घोंसले बना लिए थे। और शरीर पर बेलाएं चढ़ गई थीं, उसका उन्हें पता भी नहीं था। क्योंकि वह तो अंतर के संघर्ष में इतना लीन था कि शरीर पर क्या घट रहा है, उसे पता भी नहीं था। बहन ने चारों तरफ से जाकर बाहुबली को देखा। इतना घोर तपस्वी तो कभी देखा नहीं गया! कान पर पक्षियों ने घोंसले बना लिए हैं; अंडे रख दिए हैं। सुरक्षित जगह है। बाहुबली हिलता भी नहीं। बेलाएं चढ़ गई हैं। बेलाओं में फूल आ गए हैं। न मालूम कब से बाहुबली ऐसा ही खड़ा है पत्थर की तरह। अब और क्या बाकी है?
और तब गहरे और गहरे घूमकर बहन ने भीतर तक झांकने की कोशिश की। और उसे दिखाई पड़ा कि भीतर बस एक चीज बाकी रह गई, वह मैं। तो एक गीत बाहुबली की बहन ने गाया कि सब कर चुके तुम, अब जरा सिंहासन से नीचे उतर आओ! बस, और कुछ न

करो, जरा सिंहासन से नीचे उतर आओ। यह हाथी की पालकी पर कब तक बैठे रहोगे! जरा नीचे उतर आओ।
और बाहुबली को यह सुनाई पड़ा कि हाथी की पालकी पर कब तक बैठे रहोगे! जरा नीचे उतर आओ। सब शुद्ध था। बस, वह एक पालकी अहंकार की भारी थी। और उसी क्षण घटना घट गई। इतनी बड़ी तपश्चर्या से जो न हुआ था, पालकी से उतरते ही हो गया। बाहुबली ने झुककर बहन को नमस्कार कर लिया। बात समाप्त हो गई। घटना घट गई। करोड़ लोग प्रयास करते हैं, एक पहुंचता है। क्योंकि वह एक ही अपनी अस्मिता को और अहंकार को खोता है।
इसलिए कृष्ण ने कहा, मुझको परायण हुआ, मेरी तरफ झुक गया, समर्पित हुआ, मेरे चरणों में आ गया!
यहां सवाल बड़ा यह नहीं है कि कृष्ण के चरणों में आ जाओ। बड़ा सवाल यह है
कि झुक जाओ। ध्यान रहे, असली सवाल है झुका हुआ मन, समर्पित, सरेंडर्ड। करोड़ में से एक करता है कोशिश। करोड़ कोशिश करते हैं, एक पहुंच पाता है। कोशिश करता है वह, जिसके पास विधायक मन है। लेकिन विधायक मन का खतरा है कि वह अहंकार को मजबूत कर दे। पहुंच पाता है वह, जो मैं को समर्पित कर देता है। तब फिर, तब फिर कोई बाधा नहीं रह जाती।
परमात्मा की तरफ से कोई बाधा नहीं है। आदमी की तरफ से दो बाधाएं हैं।
एक, नकारात्मक मन; और दूसरा, अस्मिता से भरा हुआ भाव, अहंकार से भरा हुआ भाव। इन दो दरवाजों को जो पार कर जाता है, कृष्ण कहते हैं, वह मुझको उपलब्ध हो जाता है।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।। 4।।
और हे अर्जुन, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तथा मन, बुद्धि और अहंकार भी, ऐसे यह आठ प्रकार से विभक्त हुई मेरी प्रकृति है।

इस सूत्र में दो-तीन बातें समझने जैसी हैं। पहली बात, कृष्ण ने प्रकृति को आठ हिस्सों में विभाजित किया। पंच महाभूत--पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश।
पहले तो पंच महाभूत को थोड़ा समझ लें, क्योंकि पंच महाभूत की धारणा के कारण भारतीय चिंतन को पश्चिम में बहुत धक्का पहुंच रहा है। इस मुल्क में भी जो लोग सुशिक्षित हैं, उनको भी बड़ी कठिनाई होती है। चूंकि अब तो पंच महाभूत का कोई सवाल न रहा। अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि एक सौ आठ तत्व हैं। फिर और थोड़े गहरे गए हैं, तो वे कहते हैं, एक ही तत्व है--एक सौ आठ तो उसके प्रकार हैं--वह है विद्युत।
कृष्ण जैसा व्यक्ति जब कहता है, पंच महाभूत, तो यह सिर्फ कोई लोकोक्ति नहीं हो सकती। लोग सदा ऐसा कहते रहे हैं, पांच महाभूत। मोटा हिसाब है कि इन पांच चीजों से सारा जगत बना हुआ है। लेकिन कृष्ण जब ऐसा वक्तव्य देते हैं, तो उस वक्तव्य के पीछे थोड़ा गहरे उतरना पड़ेगा। कृष्ण का वक्तव्य बहुत वैज्ञानिक है। और इसलिए इन पंच महाभूत की व्याख्या जैसी मैं देखता हूं, और जैसी आज के पूरे वैज्ञानिक चिंतन के बाद की जानी चाहिए, वह मैं आपसे कहना चाहता हूं।
पंच महाभूत केवल लोगों की प्रचलित शब्दावली का उपयोग है। और इसलिए भारत के भी जो लोग सिर्फ शब्दों को सोचते हैं, शास्त्रों को सोचते हैं, वे भी इस पंच महाभूत की धारणा में गहरे नहीं उतर सके।
अगर ठीक से समझें, तो पश्चिम में विज्ञान ने जो तत्वों की धारणा पैदा
की है, वह तो प्रयोगशालाओं में की गई है। और भारत ने जो पंच महाभूत की धारणा की है, वह प्रयोगशालाओं में नहीं, अंतस अनुभूति में की गई है। जो लोग भी अंतस जीवन की गहराइयों में उतरेंगे, उन्हें एक तत्व का साक्षात्कार जरूर ही होगा; वह है फायर, वह है अग्नि। जो लोग भी अपने भीतर गहरे में जाएंगे, अंततः उन्हें अग्नि का अनुभव होगा, विराट अग्नि का अनुभव होगा। इसीलिए जैसे-जैसे व्यक्ति ध्यान में भीतर प्रवेश करता है, प्रकाश, और ऐसे जैसे हजारों सूरज उतर आए हों, दिखाई पड़ने लगते हैं। ध्यान में प्रकाश का अनुभव अंतर्गमन की सूचना है। यह प्रकाश उस अंतर-अग्नि की बहुत दूर की

किरण है। जब हम बहुत गहरे में पहुंचेंगे, तभी हमें पूरी अग्नि का आभास होगा।
हां, अग्नि शब्द से सिर्फ आपके घर में जो आग जलती है, उससे ही कृष्ण का प्रयोजन नहीं है। अग्नि से अर्थ है, जीवन का समस्त रूप अग्नि का ही रूप है। अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि आपके भीतर भी जो जीवन चल रहा है, वह भी आक्सीडाइजेशन से ज्यादा नहीं है। पूरे समय हवाओं में से जाकर आक्सीजन आपके भीतर की जीवन-ज्योति को जला रही है।
अगर आप, एक दीया जल रहा हो और उसके ऊपर एक कांच का बर्तन ढांक दें, तब आपको पता चलेगा। कभी ऐसा हो जाता है कि तूफान जोर का होता है, तो घर में कोई कांच के गिलास को दीए पर ढांक दे। एक क्षण को तो लगेगा कि दीए को आपने बचा लिया तूफान से। लेकिन ध्यान रखना, तूफान में तो दीया बच भी सकता था, गिलास के भीतर दीया नहीं बचेगा। क्योंकि थोड़ी ही देर में आक्सीजन चुक जाएगी। और आक्सीजन के बिना दीया जल नहीं सकेगा। थोड़ी ही देर में ग्लास के भीतर जितनी हवा है, उसकी आक्सीजन जल जाएगी। और फिर तो कार्बन डाइ आक्साइड रह जाएगा, जो दीए को बुझा देगा। तूफान तो झेल सकता है दीया, लेकिन आक्सीजन की कमी नहीं झेल सकता। क्योंकि आक्सीजन ही फायर है, अग्नि है।
आप भी नहीं झेल सकते। आपकी भी श्वास बंद कर दी जाए; नाक तो छोड़िए, अगर नाक आपकी चलने भी दी जाए, और पूरे शरीर पर ठीक से डामर पोत दिया जाए; रोएं- रोएं सब बंद कर दिए जाएं, नाक चलने भी दी जाए, तो भी आप पंद्रह मिनट से ज्यादा जिंदा नहीं रह पाएंगे। क्योंकि आपका रोआं-रोआं श्वास ले रहा है। वह श्वास जाकर आपके भीतर की जीवन अग्नि को जला रही है। और अगर श्वास बंद कर दी जाए, तब तो आप अभी ही समाप्त हो जाएंगे। क्योंकि भीतर भी जीवन एक दीए की भांति है, जिसको पूरे समय आक्सीजन चाहिए।
जो अग्नि के जलने का नियम है, वही जीवन के जलने का नियम भी है। जीवन की गहराई में, समस्त तत्वों की गहराई में अग्नि है। अग्नि महाभूत है। आधारभूत है।
आज विज्ञान की खोज इलेक्ट्रिसिटी पर ले गई है। वे जिसे आज विद्युत कह रहे हैं, भारत के अंतर्मनीषी ने उसे अग्नि कहा था। और ठीक था, क्योंकि अग्नि उन दिनों सुपरिचित शब्द था। और उसी से बात प्रकट की जा सकती थी। विद्युत भी अग्नि का ही रूप है। तो अग्नि मूल तत्व है। पृथ्वी अग्नि
का एक रूप है, सालिड। अग्नि का ठोस रूप पृथ्वी है। अग्नि का दूसरा रूप है, जल, लिक्विड, प्रवाह। अग्नि का तीसरा रूप है, वायु।
विज्ञान कहता है, पदार्थ की तीन स्थितियां हैं, सालिड, लिक्विड और गैसीय। पदार्थ की तीन स्थितियां हैं, या तो ठोस, जैसे कि पत्थर है या पानी का बर्फ। फिर जलीय, द्रवीय, जैसे कि जल है। और फिर वायुवीय, जैसे कि पानी की भाप है। प्रत्येक अस्तित्ववान चीज तीन रूपों में प्रकट हो सकती है। पृथ्वी, जिसे आज विज्ञान कहता है, सालिड। उन दिनों पृथ्वी से सालिड और कोई चीज ख्याल में आ भी नहीं सकती थी। वह प्रतीक शब्द है। जल, जल से ज्यादा और प्रवाहवान कोई चीज ख्याल में नहीं आ सकती थी। और वायु; वायु से ज्यादा वाष्पीय, गैसीय और कोई तत्व ख्याल में नहीं आ सकता था।
हां, अग्नि है मूल तत्व। अग्नि जब प्रकट होती है, तो तीन रूपों में प्रकट होती है। पदार्थ का एक रूप ठोस, दूसरा रूप जलीय, तीसरा रूप गैसीय। और यह अग्नि के प्रकट होने के लिए जो जगह चाहिए, वह जगह है आकाश। आकाश
से अर्थ है, स्पेस। आकाश से अर्थ स्काई नहीं है। आकाश से, आपके ऊपर जो चंदोवा तना हुआ है, उससे प्रयोजन नहीं है। आकाश शब्द बहुत अदभुत है। आकाश का कुल अर्थ होता है, जिसमें अवकाश मिले, जिसमें जगह मिले, जिसके बिना कोई चीज न हो सके। जगह तो चाहिए। और जगह के दो प्रकार हैं।
अगर मैं आपसे कहूं कि हत्या हो गई; तो आप पूछेंगे, कहां और कब? आप दो शब्द पूछेंगे, कहां और कब? कहां का मतलब है, किस स्थान में, एक्जेक्ट प्लेस, कौन-सी जगह। अगर मैं कहूं, नहीं; जगह कोई भी नहीं है, सिर्फ फलां आदमी की हत्या हो गई है। तो आप कहेंगे कि गलत कह रहे हैं। क्योंकि बिना किसी जगह में हुए हत्या नहीं हो सकती। जगह तो चाहिए। लेकिन अकेली जगह में भी हत्या नहीं हो सकती, टाइम भी चाहिए। तो आप पूछते हैं, कब? व्हेन? किस समय हुई? अगर मैं कहूं, नहीं, समय में नहीं हुई। स्थान में तो हुई, समय में नहीं

हुई। तो आप कहेंगे, नहीं हो सकती है। किसी भी वस्तु को होने के लिए दो आयामों में स्थान चाहिए, समय और स्थान, क्षेत्र।
पूछा जा सकता है कि इस पंच महाभूत की धारणा में आकाश को तो गिनाया, स्पेस को; टाइम को, काल को क्यों नहीं गिनाया?
तो एक और मजे की बात आपसे कहना चाहता हूं कि आइंस्टीन के पहले तक ऐसा ख्याल था कि टाइम और स्पेस दो चीजें हैं, वैज्ञानिकों को। लेकिन आइंस्टीन ने यह सिद्ध करने का भगीरथ प्रयास किया, और बात सिद्ध हो गई, कि टाइम और स्पेस दो चीजें नहीं हैं। एक ही चीज है, टाइम-स्पेस या स्पेस-टाइम-कंटीनम। ये दो चीजें नहीं हैं। समय और स्थान एक ही चीज के दो पहलू हैं।
इसलिए कृष्ण के समय तक भी यह ख्याल था कि समय अलग नहीं है। समय भी स्थान का ही एक हिस्सा है। इसलिए अलग से उसे नहीं गिनाया गया। पंच महाभूत में अवकाश देने के लिए जरूरी--आकाश; अस्तित्व के लिए आधारभूत--अग्नि; और प्रकट अस्तित्व के तीन रूप--पृथ्वी, जल और वायु; इन पंच महाभूतों की धारणा है।
लेकिन कृष्ण जैसे व्यक्ति जब बात करते हैं, तो जिनसे बात करते हैं, उनके ही शब्दों का उपयोग करते हैं। यही उचित भी है। इसीलिए आज कठिनाई हो गई है। आइंस्टीन मजाक में कहा करता था कि मेरी बात को समझने वाले इस जमीन पर बारह लोगों से ज्यादा नहीं हैं। वह भी अनुमान था उसका कि बारह लोग इस जमीन पर हैं साढ़े तीन अरब आदमियों में, जो मेरी बात समझ सकते हैं। हालांकि उसकी पत्नी ने शक जाहिर किया है कि बारह लोग भी हो सकते हैं।
क्या बात है? आइंस्टीन की बात को समझने के लिए बारह लोग! आइंस्टीन जो भाषा बोल रहा है, उस भाषा में सारी कठिनाई है। वह गणित की भाषा है।
कृष्ण जो भाषा बोल रहे हैं, वह लोक-भाषा है। कृष्ण की बात सब की समझ में आ सकती है। लोक-भाषा में बोलने का एक खतरा है कि चीजें कभी बहुत तर्कबद्ध और सूक्ष्म नहीं हो सकतीं। लेकिन सूक्ष्म और तर्कबद्ध और गणित की भाषा में बोलने का दूसरा खतरा है कि चीजें किसी की समझ में नहीं आतीं; समझ के बाहर खो जाती हैं।
तो जिनकी दृष्टि केवल तत्व-अन्वेषण की है, वे तो गणित की भाषा भी बोल सकते हैं। इसलिए आइंस्टीन का ख्याल है कि भविष्य की विज्ञान की भाषा, आम भाषा नहीं रहेगी, सिर्फ गणित की भाषा हो जाएगी। अंकों में बात होगी, शब्दों में नहीं। क्योंकि शब्दों में गड़बड़ होती है। प्रतीकों में बात होगी, शब्दों में नहीं। क्योंकि शब्दों के अनेक अर्थ होते हैं।
लेकिन कृष्ण जो बोल रहे हैं, वह तत्व-अन्वेषण के लिए नहीं, तत्व-साधना
के लिए बोल रहे हैं। अर्जुन को समझ में आ सके, उस भाषा में बोल रहे हैं। तो उन्होंने लोक-प्रचलित पंच महाभूत की बात कही। लेकिन उस पंच महाभूत की बात में पूरी वैज्ञानिक दृष्टि है।
आधारभूत तो एक ही है, अग्नि, तेज। इसलिए अग्नि को देवता कहा। इसलिए सारे जगत में अग्नि की पूजा हुई। अभी भी पारसी अपने मंदिर में चौबीस घंटे अग्नि को जलाए हुए है। शायद उसे ठीक पता भी नहीं कि किसलिए जलाए हुए है। रीति है, प्रचलित है, जलाए हुए है। उसका मंदिर तो अग्नि का ही मंदिर है। लेकिन ख्याल नहीं है कि क्यों?
अग्नि जीवन का आधारभूत तत्व है; वही देवता है। उससे ही जीवन का सब रूप विकसित होता है। मंदिर में अग्नि जलाकर बैठने से कुछ हल न होगा। इस जीवन में सब तरफ अग्नि को ही जलते हुए देखने से अग्नि के देवता का दर्शन होता है।
जहां भी जो कुछ है, वह अग्नि का ही रूप है। और उस अग्नि के तीन रूप हैं प्रकट--ठोस, फिर जलीय, फिर वायवीय। और उसकी जगह जिसमें मिली है, समय और स्थान, उसका नाम आकाश है। इन पंच महाभूतों की कृष्ण ने बात कही। इनसे प्रकृति बनी है। और तीन और अंतर-रूपों की बात कही। और इन आठों को इकट्ठा गिनाया। तीन कहा--मन, बुद्धि, अहंकार।
सबसे ज्यादा पहली चीज कही, पृथ्वी। और सबसे अंतिम चीज कही, अहंकार। पृथ्वी सबसे मोटी और स्थूल चीज है। अहंकार सबसे सूक्ष्म और बारीक और डेलिकेट चीज है। इस जगत में जो सूक्ष्मतम अस्तित्व है, वह अहंकार है। और

जो स्थूलतम अस्तित्व है, वह पृथ्वी है। इसलिए इस तरह। और एक-एक के बाद। सबसे पहले भीतर की यात्रा में कहा, मन।
मन का अर्थ है, हमारे भीतर वह जो सचेतना है, वह जो कांशसनेस है। मन का अर्थ है, सचेतना। वह जनरलाइज्ड हमारे भीतर जो मनन की शक्ति है, उसका नाम मन है। मन का बहुत रूप जानवरों में भी है। जानवर भी मन से जीते हैं, लेकिन बुद्धि उनके पास नहीं है।
बुद्धि मन का स्पेशलाइज्ड रूप है। सिर्फ मनन नहीं, बल्कि तर्कयुक्त, तर्कसरणीबद्ध चिंतन का नाम बुद्धि है। और बुद्धि के भी पीछे जब कोई बहुत बुद्धि का उपयोग करता है, तभी भीतर एक और सूक्ष्मतम चीज का जन्म होता है, जिसका नाम अहंकार है, मैं।
ये आठ तत्वों से मैंने यह सारी प्रकृति रची है, कृष्ण कहते हैं।
यह किसलिए कहते हैं? यह वे इसलिए कहते हैं कि इन आठ तत्वों में तू प्रकृति को जानना। और जब इन आठ के पार चला जाए, तब तू मुझे जान पाएगा। इन आठ के भीतर तू जब तक रहे, तब तक तू जानना कि संसार में है; और जब इन आठ के पार हो जाए, तब तू जानना कि तू परमात्मा में है।
सर्वाधिक कठिनाई और आखिरी मुसीबत तो अहंकार के साथ होगी, क्योंकि बहुत ही बारीक है। हवा को तो मुट्ठी में हम बांध भी लें थोड़ा-बहुत, उसको मुट्ठी में बांधने का भी उपाय नहीं। हवा तो चलती है, तो उसका धक्का भी लगता है; अहंकार चलता है, तो उसका स्पर्श भी मालूम नहीं पड़ता।
इसीलिए तो दुरूह हो जाता है अहंकार से ऊपर उठना। क्योंकि इतना सूक्ष्म है कि आप कुछ भी करो, उसी में प्रवेश कर जाता है। आप त्याग करो, वह उसी के पीछे खड़ा हो जाता है। वह कहता है, मैंने त्याग किया! आप किसी के चरण छुओ, समर्पण करो। वह पीछे से कहता है कि देखो, मैं कितना विनम्र हूं! मैंने चरण छुए! आप प्रार्थना करो, परमात्मा के मंदिर में सिर पटको। वह कहता है कि देखो, मैं कितना धार्मिक हूं! मैंने प्रभु की प्रार्थना की। जब कि दूसरे अधार्मिक सड़कों से जा रहे हैं दूकानों की तरफ; मैं धार्मिक, प्रभु की प्रार्थना कर रहा हूं!
वह मैं आपकी प्रत्येक क्रिया के पीछे खड़ा हो जाता है। आप कुछ भी करो,
वह सदा पीछे है। वह इतना बारीक है कि आप कहीं से द्वार-दरवाजे बंद नहीं कर सकते, जहां वह न आ जाए। जहां भी आप होंगे, वहां वह पहुंच जाएगा। जब तक आप होंगे, तब तक वह पहुंच जाएगा।
तो कृष्ण ने यह विभाजन जो करके कहा, वह इसीलिए कहा है कि मोटी से मोटी चीज है पृथ्वी, और सूक्ष्म से सूक्ष्म चीज है अहंकार। पदार्थ से तो मुक्त होना ही है, अंततः अस्मिता से भी मुक्त होना है। क्योंकि अहंकार भी पदार्थ का ही सूक्ष्मतम रूप है।
अगर ठीक से समझें, तो मैंने जैसा कहा कि अग्नि के ही रूप हैं सब बाह्य पदार्थ, वैसे ही अग्नि के ही रूप हैं भीतर के पदार्थ। जिसको हम मनन कहते हैं, वह भी अग्नि का ही एक रूप है। और जिसे हम बुद्धि कहते हैं, वह भी अग्नि का ही एक रूप है।
और इसीलिए मैं आपसे कहूं कि अगर पश्चिम में आज सफलता मिल गई है कंप्यूटर बनाने में, और जो बुद्धि से आप काम करते थे, वह पेट्रोल या बिजली से चलने वाली मशीन करने लगी है, तो बहुत चकित होने की जरूरत नहीं। क्योंकि आप भी जो काम कर रहे हैं, वह भी सिर्फ नेचरल कंप्यूटर का है। आपके भीतर भी जो चल रहा है काम, वह भी अग्नि से ही चल रहा है। ठीक वैसी ही मशीन बाहर भी अग्नि से काम कर सकती है। और काम करने लगी है। और आदमी से ज्यादा कुशल काम करती है। क्योंकि उस मशीन के पास कोई अहंकार नहीं है, जो बीच में बाधा डाले। कोई अहंकार नहीं है; वह बिल्कुल कुशलता से काम करती रहती है। ठीक फ्यूल मिल जाए, ईंधन मिल जाए, मशीन काम करती रहती है।
आपकी बुद्धि का काम तो मशीन करने लगी है। आज नहीं कल, शायद हम किसी दिन ऐसी मशीन भी ईजाद करने में सफल हो जाएंगे... । अभी किसी वैज्ञानिक को सूझा नहीं है, और न उन लोगों को सूझा है, जो विज्ञान के संबंध में उपन्यास और कल्पनाएं लिखते हैं। लेकिन मैं कहता हूं, किसी दिन यह भी संभव हो जाएगा कि हम ऐसी मशीन बनाने में सफल हो जाएंगे, जिस मशीन को आप जरा पैर की चोट मार

दे, तो वह कहेगी, देखते नहीं; मैं कौन हूं! तो मशीन कह सकती है। क्योंकि अहंकार भी बहुत सूक्ष्म अग्नि है।
अगर हमने विचार पैदा कर लिया मशीन से, अगर हमने विचार का काम ले लिया मशीन से, अगर हमने बुद्धि का काम ले लिया मशीन से, तो बहुत देर नहीं लगेगी कि उसमें हम अस्मिता को भी जन्म दे दें। और मशीनें भी अकड़कर बैठ जाएं! कुछ मशीनें राष्ट्रपति हो जाएं, कुछ मशीनें प्राइम मिनिस्टर हो जाएं। कुछ कठिनाई नहीं है। मशीनें दावे करने लगें। मशीनें कभी न कभी दावे करेंगी; क्योंकि हमारे भीतर भी मशीनें दावे कर रही हैं। हमारे भीतर भी दावे मशीनों के हैं। लेकिन वह है मशीन, है पदार्थ, है प्रकृति।
सुना है मैंने, एक अदालत में एक आदमी पर, एक गरीब आदमी पर मुकदमा चल रहा है। और मजिस्ट्रेट उससे पूछता है कि क्या तुमने नेताजी को बदमाश कहा? गांव में कोई नेताजी हैं, सभी गांव में हैं। मानहानि का मुकदमा चल रहा
है उस आदमी पर। नेताजी ने मानहानि का मुकदमा चलाया है। कमजोर नेताजी रहे होंगे। नहीं तो नेता लोग मानहानि की फिक्र नहीं करते; चौबीस घंटे सहनी पड़ती है। जिसको मान चाहिए, उसे मानहानि सहनी ही पड़ेगी। जिसे सिंहासन पर चढ़ना है, उसे गालियों के रास्ते से गुजरना ही पड़ेगा। कोई उपाय नहीं है। कमजोर नेताजी रहे होंगे, या सिक्खड़, एमेच्योर। अभी नए-नए होंगे। मुकदमा चला दिया। गुस्से में आ गए।
मजिस्ट्रेट उस आदमी से पूछ रहा है--नेताजी सामने खड़े हैं--कि क्या तुमने नेताजी को बदमाश कहा? उसने कहा, जी हां। नेताजी सोचते थे, शायद मना करेगा। मजिस्ट्रेट भी सोचता था कि मना करेगा। मजिस्ट्रेट भी चौंका। कहा कि क्या तुमने चोर भी कहा? उस आदमी ने कहा, जी हां। कहा, तुमने डाकू भी कहा? उसने कहा, जी हां। कहा, तुमने हत्यारा भी कहा? उसने कहा, जी हां। मजिस्ट्रेट ने कहा, क्या तुमने गधा भी कहा? उसने कहा, कहना चाहता था। लेकिन माफ करिए, कहा नहीं। पूछा, क्यों? उसने कहा कि जब मैं कहने के करीब आया, तो तुझे ख्याल आया कि कहीं गधे नाराज न हो जाएं। क्योंकि न तो गधे चोर होते, न बेईमान होते, न बदमाश होते, न हत्यारे होते। पहले तो मैंने तय किया था कि कहूंगा। लेकिन पीछे मैं, माफ करिए, मैं छोड़ गया। कहा नहीं मैंने। आदमी जो भी कर रहा है, उसमें और पशुओं में बड़ा भेद नहीं है। सिर्फ थोड़ी-सी सूक्ष्मता का भेद पड़ता है, और कुछ भेद नहीं पड़ता। पशु उसे ही जरा अनगढ़ ढंग से करते हैं; आदमी गढ़कर करता है।
सब पशु की प्रवृत्तियां आदमी में सूक्ष्म हो जाती हैं, बस। सूक्ष्म होने से और जटिल हो जाती हैं। सूक्ष्म होने से और कनिंग, और चालाक हो जाती हैं। पशु में एक सरलता भी दिखाई पड़ती है, आदमी में वह भी खो जाती है। क्योंकि वह जटिलता का बिंदु भीतर, अस्मिता, अहंकार पैदा हो जाता है; वह सारी चीजों को उलझा देता है।
और जिसको परमात्मा की यात्रा पर जाना हो, उसे पदार्थ के उस सूक्ष्मतम रूप, अग्नि के उस सूक्ष्मतम खेल, प्रकृति के उस सूक्ष्मतम रहस्य के ऊपर जाना पड़ेगा।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, यह विभाजन है। यह मैंने रची प्रकृति। इस तरह आठ हिस्सों में मैंने इस प्रकृति को रचा है।
जोर यह है कि तू समझ ले कि यह प्रकृति है; यह तू नहीं है। और जोर यह है
कि तू समझ ले कि यह प्रकृति है; यह परमात्मा नहीं है। जो भी रचा जाता है, वह प्रकृति है; और जो भी रचा नहीं जाता है, वही परमात्मा है। जो भी बनता है, वह प्रकृति है; और जो कभी नहीं बनाया जाता, वही परमात्मा है। जो निर्मित होता है, वह प्रकृति है; और जो सदा अनिर्मित है और है--अनक्रिएटेड, अस्रष्ट--वही परमात्मा है।
अहंकार भी निर्मित होता है। बच्चों में अहंकार नहीं होता; धीरे-धीरे निर्मित होता है। बुद्धि भी निर्मित होती है। बच्चों में बुद्धि नहीं होती। और आप ऐसा सोचते हों कि आप बुद्धि लेकर पैदा हुए हैं, तो आप बड़ी गलती में हैं। सिर्फ आप संभावना लेकर पैदा होते हैं, बाद में सब निर्मित होता है। अगर आपको जंगल में भेड़ियों के पास रख दिया जाए और बड़ा किया जाए, तो आपके पास कोई बुद्धि नहीं होगी। हां, भेड़ियों के पास जितनी बुद्धि होती

है, उतनी बुद्धि आपके पास होगी। उससे ज्यादा नहीं। अगर आप सोचते हैं कि आपको एकांत में रखा जाए... ।
अकबर ने ऐसा प्रयोग किया। अकबर को किसी फकीर ने कहा कि आदमी वही हो जाता है, जो उसे बनाया जाता है। इसलिए बनाया हुआ आदमी झूठा है। हम तो उस आदमी की तलाश में हैं, जो अनबनाया है, जो अनबना है। अकबर ने कहा, मैं यह नहीं मान सकता कि आदमी में सब बनाया हुआ है। उस फकीर ने कहा, कौन-सी चीज आपको गैर-बनाई दिखती है? अकबर ने कहा कि जैसे आदमी की बुद्धि, विचार। ये आदमी के बनाए हुए नहीं हैं। ये तो भीतर से आते हैं।
सबको हमको ख्याल है कि भीतर से आते हैं। इसीलिए तो हम लड़ पड़ते हैं। कोई आदमी अगर कहे कि आपका विचार गलत, तो आप कहते हैं, मेरा विचार गलत! कभी नहीं। मेरा विचार! ऐसा लगता है, जैसे कि मेरे साथ। नहीं, सब विचार बाहर से भीतर डाले जाते हैं।
तो उस फकीर ने कहा, आप एक प्रयोग कर लें। एक बच्चे को, जन्मजात बच्चे को, अभी पैदा हुआ और उठाकर कारागृह में रखा गया। सब तरह उसकी सेवा की जाती; उसे दूध पहुंचाया जाता; सब किया जाता। लेकिन कहा गया पहरेदारों को कि वे बोलें न उस बच्चे के सामने कभी भी। उनके मुंह बंद, सी दिए गए।
वह बच्चा बड़ा हुआ। और अकबर मुसीबत में पड़ने लगा। जैसे-जैसे वह बड़ा हुआ, उसमें आदमी जैसा कुछ भी प्रकट न हुआ। न तो वह चलना सीख पाया, न वह बैठना सीख पाया, न वह बोलना सीख पाया। वह कुछ भी नहीं सीख पाया। वह दस साल का हो गया, उससे एक शब्द न फूटा। वह बारह साल का हो गया, उससे एक शब्द न फूटा। वह सत्रह साल का होकर मरा। और अकबर सत्रह साल तक उसकी प्रतीक्षा करता रहा। आखिर उसने कहा कि नहीं; उसमें कुछ न आया। वह सब बाहर से डाला गया है। वह सब बनावट है।
सब आदमी बनाए हुए हैं, मैन्युफैक्चर्ड। हां, कोई मेड इन इंडिया, कोई मेड इन जापान। वह अलग बात है। बाकी सब आदमी मैन्युफैक्चर्ड हैं। कोई हिंदू, कोई मुसलमान, कोई जैन--सब मैन्युफैक्चर्ड हैं। क्योंकि अहंकार तक जो भी है, वह सब प्रकृति है।
बुद्धि भी प्रकृति है, मन भी प्रकृति है। जैसे बाहर पड़ा हुआ पत्थर है, ऐसे ही भीतर पड़ा हुआ अहंकार है। इनमें कोई सूक्ष्म अंतर नहीं है। ये दोनों एक ही चीज हैं। यह सब बना-बनाया है।
इसके पार है वह, जो अस्रष्ट, अनक्रिएटेड है। इन सबके पार जाए कोई, तो उसका दर्शन है।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।। 5।।
सो यह आठ प्रकार के भेदों वाली तो अपरा है अर्थात मेरी जड़ प्रकृति है।
और हे महाबाहो, इससे दूसरी को मेरी जीवरूप परा अर्थात चेतन प्रकृति जान कि जिससे यह संपूर्ण जगत धारण किया जाता है।

यह जो आठ अंगों वाली प्रकृति है, यह अपरा है। अपरा का अर्थ होता है, निम्न, नीचे की, इस पार की। और इन आठ के पार मेरी वह प्रकृति है, जो परा है, दि बियांड, उस पार की। ये आठ विभाजन इस किनारे के हैं। और एक मैं हूं, उस पार, इन सबसे दूर और ऊपर उठकर--परा। इन सबके पार, इन सबको ट्रांसेंड कर जाता हूं। उस चैतन्य को, उस चेतना को, जो इन सबके पार है, तू इन सबको धारण करने वाली समझ।
वह जो पार है, क्या है? उस संबंध में थोड़ा-सा समझें। क्योंकि वही सबको धारण करने वाली है। वही धर्म है। वही सबको सम्हाले है। यह इतना विराट विस्तार उसकी ही छाती पर है, उस परा की। उस पार की चेतना। वह पार की चेतना क्या है? और हमारे भीतर उस पार की चेतना की तरफ जाने वाला द्वार कहां है? समस्त योग का सार, उस परा को पहचानने की प्रक्रिया, टेक्नीक है। स्वयं
के भीतर वह परा, वह बियांड कहां शुरू होता है?
शरीर में नहीं, क्योंकि शरीर पदार्थ है। मन में नहीं, क्योंकि मन भी बाहर से संगृहीत विचारों का जोड़ है। बुद्धि में नहीं, क्योंकि बुद्धि भी

सूक्ष्मतम अग्नि का रूप है। अहंकार में नहीं, क्योंकि अहंकार भी स्वनिर्मित धारणा है। फिर कहां? फिर किस में हम उस सेतु को पाएं, उस द्वार को, जहां से सबको धारण करने वाली चेतना का साक्षात और मिलन है?
इन सबके साक्षित्व में। मैं अपने शरीर का साक्षी हो सकता हूं। यह रहा मेरा हाथ; मैं इस हाथ को देख सकता हूं। यह हाथ मेरा काट दिया जाए, तो मैं इस हाथ की पीड़ा को देख सकता हूं। यह हाथ कट जाए, तो भी मैं देखूंगा कि मैं नहीं कटा, हाथ ही कटा है। इस हाथ के कट जाने के बाद भी मुझे जरा भी न लगेगा कि मेरे बीइंग, मेरे अस्तित्व में कुछ टुकड़ा अलग हो गया है। मैं उतना का उतना ही रहूंगा। मेरे होने की जो धारणा है, उसमें खंड जरा-सा भी अलग नहीं होगा। मैं उतना ही रहूंगा। मेरे पैर भी कट जाएं, तो भी मैं उतना ही रहूंगा। मेरी आंख भी फूट जाएं, तो मेरे शरीर में कमी पड़ती जाएगी, लेकिन मेरे होने में, मेरे अस्तित्व में कोई भेद न पड़ेगा।
सोचें ऐसा, आप रात सोए, रात आपकी आंख चली जाए नींद में। सुबह जब आपको पहली दफा पता चलेगा कि आप जाग गए हैं... क्या आपको पता चल सकेगा आंख बंद में कि आपकी आंख चली गई? अगर आपके भीतर कुछ कम हो गया हो, तो जरूर पता चलना चाहिए। लेकिन कुछ कम हुआ नहीं है, इसलिए पता नहीं चलेगा। आंख खोलेंगे, और जब कुछ न दिखाई पड़ेगा, तब पता चलेगा कि कुछ कमी हो गई। भीतर कोई कमी न होगी। बाहर के संबंध का एक द्वार टूट गया, भीतर आप पूरे के पूरे हैं। भीतर आपको कोई फर्क नहीं पड़ेगा।
अगर आपको बेहोश करके आपका पैर काट दिया जाए, और जब तक पैर का दर्द न चला जाए, तब तक आपको बेहोश और डीप फ्रीज में रखा जाए। फिर आपके पैर का दर्द जा चुका हो, आपको होश में लाया जाए। शरीर पर कंबल पड़ा हो। आपको भीतर से जरा भी पता नहीं चलेगा कि पैर कट गया है, जब तक कि कंबल न उठाया जाए, जब तक आप देखें न। जब तक आप चलें और गिर न पड़ें, तब तक आपको पता नहीं चलेगा कि पैर कट गया। क्योंकि भीतर कुछ कटता ही नहीं। तो भीतर पता कैसे चलेगा? पता तो तभी चलेगा, जब बाहर प्रयोग करेंगे शरीर का और कोई कमी मालूम पड़ेगी; तभी पता चलेगा, अन्यथा पता नहीं चलेगा।
शरीर के हम साक्षी हो सकते हैं, विटनेस हो सकते हैं। जान सकते हैं कि
यह मैं नहीं हूं। क्योंकि जिसको भी मैं देख पाता हूं, वह मैं नहीं हो सकता। जो भी दृश्य बन गया, वह मैं नहीं हो सकता। मैं आपको देख रहा हूं; एक बात पक्की हो गई कि वह जो आप वहां बैठे हुए हैं, वह मैं नहीं हूं। अन्यथा मैं आपको देख न पाता। देखने के लिए दूरी चाहिए; परसेप्शन के लिए पर्सपेक्टिव चाहिए, फासला चाहिए, नहीं तो मैं देख न पाऊंगा आपको।
आपको देख पाता हूं, क्योंकि मैं अलग हूं। दूर खड़ा हूं। मैं अपने शरीर
को भी देख पाता हूं। आप बच्चे थे, तब भी अपने शरीर को देखा। जवान हो गए, तब भी अपने शरीर को देखा। फिर भी आपको ख्याल न आया कि शरीर तो बिल्कुल बदल गया है, लेकिन आप? आप तो वही के वही हैं! आपके भीतर कुछ भी नहीं बदला, रत्तीभर। आप बूढ़े भी हो जाएंगे, तब भी आपके भीतर आप वही होंगे, जो बच्चे थे तब थे। भीतर, वह जो चेतना है, वह अछूती गुजर जाती है।
शरीर मैं नहीं हूं, यह हम शरीर के साक्षी होकर जान सकते हैं। फिर हम विचारों के भी साक्षी हो सकते हैं। आप भीतर देख सकते हैं कि यह क्रोध चल रहा है। आप भीतर देख सकते हैं, यह लोभ सरक रहा है। आप भीतर देख सकते हैं कि यह काम यात्रा कर रहा है।
विचार को आप देख सकते हैं वैसे ही, अपने भीतर के पर्दे पर, जैसे आप फिल्म को देखते हैं। उसके भी आप साक्षी हो सकते हैं। तो फिर आप उससे भी अलग हो गए। कठिनाई थोड़ी-सी पड़ेगी मैं को देखने में, क्योंकि वह सूक्ष्मतम है और हम उससे आइडेंटिफाइड हैं।
लेकिन मैं को भी आप देख सकते हैं। जब आप सड़क पर चलते हैं; एकांत सड़क; कोई भी नहीं है। फिर अचानक दो आदमी सड़क पर निकलते हैं, तब आपने ख्याल किया है कि कोई सांप आपके भीतर सरककर फन उठा लेता है। उसे जरा गौर से देखना। जब आप अकेले थे, तो आप कुछ और थे। अब दो आदमी सड़क पर आ गए, तो आप कुछ और क्यों हो गए? यह कुछ और क्या है? यह भीतर मैं का भाव खड़ा हो गया।
कोई आदमी आपको गाली देता है, तब जरा भीतर गौर से देखना कि कोई सांप फन उठाता है, जैसे फुफकारता हो, जैसे सोए सांप को चोट मार दी हो, कोई आपके भीतर

उठकर खड़ा हो जाता है। जरा उसे गौर से देखना। जब आप सुंदर कपड़े पहनकर निकलते हैं सड़क पर, तब आप वही नहीं होते, जब आप दीन-हीन कपड़े पहनकर निकलते हैं। भीतर थोड़ा-सा फर्क होता है।
आज मैं छोटी-सी कहानी एक मित्र को लिख रहा था। लिख रहा था कि एक हाथी
ने एक दिन एक चूहे को देखा। चूहे जैसा छोटा प्राणी हाथी ने कभी देखा नहीं था। इसलिए नहीं कि छोटे प्राणी नहीं हैं, बाकी हाथी जैसे प्राणी को कहां ये छोटे-छोटे प्राणी दिखाई पड़ें! चूहे को एक दिन देख लिया; ऐसे ही फुर्सत में रहा होगा, विश्राम में रहा होगा। चूहे को देखकर बड़ा हैरान हुआ। उसने कहा कि तुझसे क्षुद्र प्राणी मैंने अपने जीवन में नहीं देखा! बड़ी अकड़ से कहा कि तुझसे क्षुद्र प्राणी मैंने कभी नहीं देखा। क्षुद्रतम है तू। चूहे ने पता है क्या कहा? चूहे ने ऊपर हाथी को देखा और कहा, माफ करें। ऐसा मैं सदा नहीं होता। जरा मेरी तबियत खराब थी। यह मेरा सदा का रूप नहीं है। आई हैव बीन सिक। यह मेरी सदा की स्थिति नहीं है। जरा मैं बीमार पड़ गया था।
हाथी का होगा अहंकार, तो चूहे का भी है। वह भी अपने अहंकार को बचाने की कोशिश करेगा। हम सब कर रहे हैं। फर्क कुछ भी नहीं है। वही चूहे वाली बुद्धि है। इसको थोड़ा अगर जागकर देखते रहेंगे कि कब-कब खड़ा होता है! जब कोई आपसे कहता है कि अरे... । तब कई बार आपका मन भी ऐसा होता है न कहने का, कि यह मेरी सदा की हालत नहीं है, मैं जरा बीमार रहा!
वह जो भीतर मैं है, उसको जरा जागकर खोजते रहेंगे कि वह कहां-कहां खड़ा होता है, तो जल्दी आपकी उससे मुलाकात होने लगेगी; जगह-जगह मुलाकात होगी। आईने के सामने खड़े होंगे, तो शक्ल कम दिखाई पड़ेगी, अहंकार ज्यादा दिखाई पड़ेगा। किसी से हाथ मिलाएंगे, तो आप कम मिलते हुए मालूम पड़ेंगे, अहंकार ज्यादा मिलता हुआ मालूम पड़ेगा। किसी से बात करेंगे, तो आप संवाद करते हुए नहीं मालूम पड़ेंगे, अहंकार भीतर खड़ा हुआ मालूम पड़ेगा।
थोड़ा होश का प्रयोग करेंगे, तो धीरे-धीरे आपके और आपके अहंकार के बीच
एक गैप, एक फासला पैदा हो जाएगा। और आप देख पाएंगे, यह अहंकार है; यह रहा अहंकार।
और जिस दिन आप अहंकार को भी देख पाएंगे, उसी दिन, उसी दिन छलांग। उसी दिन आप इस आठ वाली प्रकृति से छलांग लगाकर उस भीतर की परा प्रकृति में पहुंच जाएंगे, जिसे कृष्ण कहते हैं, मेरा स्वरूप, मेरी चेतना।
और उसी चेतना ने सब धारण किया हुआ है। तब आप पाएंगे कि आपके शरीर को भी उसी ने धारण किया हुआ है। तब आप पाएंगे कि आपकी बुद्धि को भी उसी ने धारण किया हुआ है। तब आप पाएंगे कि आप कभी भीतर गए ही नहीं, उसको कभी आपने देखा ही नहीं, जो प्राणों का प्राण है। आपने उसे देखा ही नहीं, जो सारी परिधि का केंद्र है। आपने कभी मालिक को देखा ही नहीं; आप नौकरों से ही उलझे रहे। और अनेक बार आपने नौकरों को ही समझ लिया कि यह मैं हूं। आप मालिक तक कभी पहुंचे नहीं।
कृष्ण अर्जुन को उस मालिक की तरफ ले जाने की एक-एक कदम कोशिश कर रहे हैं। कहा, यह है आठ की प्रकृति अर्जुन। तू इसे ठीक से समझ ले। और फिर इसके पार होने के लिए मैं उस बात की तुझे खबर दूं, जो परा है, वह जो चैतन्य है, पीछे सबसे छिपा, जो सबका निर्माता, जो सबका आधार और जो सबको फिर अपने में आत्मसात कर लेता है।
आज इतना ही।
उठेंगे नहीं। पांच मिनट बैठे रहें। प्रसाद लेकर जाएं। हमारे संन्यासियों के पास कुछ और देने को आपके लिए नहीं है। इसलिए आप उठेंगे, तो उनके मन को पीड़ा होगी। बैठे रहें।
और सिर्फ बैठे न रहें। प्रसाद तभी मिल सकता है यह, अगर आप इसमें कोआपरेट करें, अन्यथा आप खाली हाथ चले जाएंगे। गीत गाएं। उनके धुन के साथ धुन गाएं। ताली बजाएं। बगल वाले की फिक्र छोड़ दें। वह बगल वाला क्या कहेगा, उसकी फिक्र छोड़ दें। थोड़े आनंदित हों। पांच मिनट इस आनंद को लेकर जाएं।
हो सकता है, इस कीर्तन की धुन में आप पूरे आनंदित हो जाएं, तो परा की तरफ थोड़ा-सा इशारा आपको दिखाई पड़े।

गीता दर्शन, भाग तीन
गीता दर्शन अध्याय 7
तीसरा प्रवचन

अदृश्य की खोज

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा।। 6।।
मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।। 7।।
और हे अर्जुन, तू ऐसा समझ कि संपूर्ण भूत इन दोनों प्रकृतियों से ही उत्पत्ति वाले हैं और मैं संपूर्ण जगत का उत्पत्ति तथा प्रलयरूप हूं, अर्थात संपूर्ण जगत का मूल कारण हूं।
हे धनंजय, मेरे सिवाय किंचितमात्र भी दूसरी वस्तु नहीं है। यह संपूर्ण जगत सूत्र में सूत्र के मणियों के सदृश मेरे में गुंथा हुआ है।

जगत प्रकट है, ऐसे ही जैसे माला के मनके प्रकट होते हैं। परमात्मा अप्रकट है, वैसे ही जैसे मनकों में पिरोया हुआ धागा अप्रकट होता है। पर जो अप्रकट है, उसी पर प्रकट सम्हला हुआ है। जो नहीं दिखाई पड़ता उसी पर, जो दिखाई पड़ता है, आधारित है।
जीवन के आधारों में सदा ही अदृश्य छिपा होता है। वृक्ष दिखाई पड़ता है, जड़ें दिखाई नहीं पड़ती हैं। फूल दिखाई पड़ते हैं, पत्ते दिखाई पड़ते हैं, जड़ें पृथ्वी के गर्भ में छिपी रहती हैं--अंधकार में, अदृश्य में। पर उन अदृश्य में छिपी जड़ों पर ही प्रकट वृक्ष की जीवन की सारी लीला निर्भर है। यदि हम ऊपर से ही देखें, तो शायद समझें कि फूलों में प्राण होंगे; तो शायद हम समझें कि पत्तों में प्राण होंगे; तो शायद हम समझें कि वृक्ष की शाखाओं में प्राण होंगे। ऊपर से जो देखेगा, उसे ऐसा ही दिखाई पड़ेगा। लेकिन प्राण तो उन जड़ों में हैं, जो नीचे अंधकार में, अदृश्य में छिपी और दबी हैं।
इसलिए कोई पत्तों को तोड़ डाले, फूलों को तोड़ डाले, शाखाओं को काट डाले--वृक्ष का अंत नहीं होता। फिर नए अंकुर फूट जाते हैं, फिर नए पत्ते आ जाते हैं, फिर नए फूल खिल जाते हैं। लेकिन कोई जड़ों को काट डाले, तो वृक्ष का अंत हो जाता है। फिर पुराने फूल भी मौजूद हों, तो थोड़ी ही देर में कुम्हला जाते हैं और पुराने पत्ते भी थोड़ी ही देर में पतझड़ को उपलब्ध हो जाते हैं।
जीवन का विराट रूप भी ऐसा ही है। जो दिखाई पड़ता है, जिसने भूल से यह समझ लिया कि वही प्राण है, वह अधार्मिक जीवन में डूब जाता है। जो दिखाई पड़ता है, उसके भीतर जिसने जड़ों को खोजा, अदृश्य को खोजा, मनकों के भीतर धागे को खोजा, वह जीवन में धर्म की यात्रा पर निकल जाता है।
अदृश्य की खोज धर्म है और दृश्य में उलझ जाना संसार है। जो दिखाई पड़ता है, उसको सब कुछ मान लेना संसार है। और जो नहीं दिखाई पड़ता है, उसे दिखाई पड़ने वाले का भी मूल आधार जानना धर्म है।
कृष्ण इसमें दो-तीन बातें कहते हैं। एक तो वे अपने अदृश्य रूप की बात करते हैं। वे कहते हैं, छिपा हुआ हूं मैं, दि हिडेन, गुप्त हूं मैं, प्रकट नहीं हूं। और जो प्रकट है, वह केवल प्रकृति है। और वह जो प्रकट है, वह जो मैंने अष्टधा, आठ तरह की प्रकृति की बात कही, उसका ही खेल है। वह सब मेरा बनाया हुआ खेल है। वे सब मनके मैंने निर्मित किए हैं, मैं तो धागा ही हूं। अदृश्य है परमात्मा, इस सत्य के ऊपर इस सूत्र में जोर दिया है। हम सब निरंतर पूछते हैं, कहां है परमात्मा? कैसा है परमात्मा? जब भी हम ऐसे सवाल उठाते हैं, तो हम गलत सवाल उठाते हैं। और जो भी इन गलत सवालों के जवाब देता है, वे जवाब सवालों से भी ज्यादा गलत होते हैं। ये जो हमने सारी प्रतिमाएं खड़ी कर रखी हैं परमात्मा की, ये हमारे प्रश्नों के जवाब हैं, जो हमने पूछे हैं, कहां है! तो हमने प्रतिमाएं बना ली हैं बताने को, कि यह रहा।

लेकिन ध्यान रखना, जो मूर्ति में उलझा, वह इस अदृश्य की खोज पर न निकल पाएगा। हां, अगर मूर्ति सिर्फ द्वार बनती हो अमूर्त का, अगर वृक्ष केवल जड़ों की सूचना बनता हो, और मनके अगर धागे की खबर लाते हों, तब तो ठीक है। अन्यथा मनकों में जो उलझा, वह धागे से वंचित रह जाएगा।
और मजे की बात यह है कि हर मनके में धागा मौजूद है। हर मूर्ति में भी अमूर्त मौजूद है। हर पत्थर में भी अमूर्त मौजूद है। वह जो दिखाई पड़ रहा है, सब जगह न दिखाई पड़ने वाला मौजूद है। लेकिन वह न दिखाई पड़ने वाला उसी को स्मरण में आएगा, जो दिखाई पड़ने वाले से थोड़ा भीतर प्रवेश करे।
दिखाई पड़ने वाला मैं नहीं हूं,
कृष्ण कहते हैं, जो दिखाई पड़ता है वह प्रकृति है।
दिखाई पड़ता है, इससे क्या अर्थ है? दिखाई पड़ने से अर्थ है, इंद्रियों
की पकड़ में आता है जो। चाहे आंख से दिखाई पड़े, चाहे कान से सुनाई पड़े, चाहे हाथ से स्पर्श हो जाए। जो भी इंद्रियों की पकड़ में आता है, वह, वह प्रकृति है। और जो इंद्रियों के पार रह जाता है, वह परमात्मा है। मनके वही हैं, जो इंद्रियों की पकड़ में आ जाते हैं; और धागा वही है, जो इंद्रियों की पकड़ के बाहर छूट जाता है।
क्या जीवन में हमने कोई ऐसी चीज जानी है, जो इंद्रियों की पकड़ के बाहर हो? कोई ऐसा स्वाद जाना है, जो जीभ से न लिया गया हो? अगर नहीं जाना, तो परमात्मा की हमें कोई खबर नहीं है। कोई ऐसा दृश्य देखा है, जो आंख से न देखा गया हो? अगर नहीं देखा, तो हमें उन जड़ों की कोई खबर नहीं है, जिनकी कृष्ण बात करते हैं। क्या कोई ऐसी ध्वनि सुनी है, जो कानों से न सुनी गई हो? ऐसी ध्वनि, जिसे बहरा भी सुन सके! अगर नहीं सुनी है ऐसी कोई ध्वनि, तो हमें धागे की कोई भी खबर नहीं है; हम मनकों से ही खेल रहे हैं।
और जब तक कोई आदमी मनकों से खेलता है, तब तक बचकाना है, जुवेनाइल है।
और जैसे ही उसे मनकों के भीतर छिपे हुए धागे के रहस्य का पता चल जाता है, उसी दिन प्रौढ़ होता है।
सिर्फ धार्मिक व्यक्ति ही मैच्योर होता है, प्रौढ़ होता है। अधार्मिक व्यक्ति बचकाने ही रह जाते हैं। इसलिए जिस समाज में जितना ज्यादा अधर्म होगा, उतना बचकानापन और चाइल्डिशनेस बढ़ जाएगी।
आज अगर अमेरिका में जुवेनाइल बच्चे पागल की तरह व्यवहार कर रहे हैं,
तो उसके लिए जिम्मेवार बच्चे नहीं हैं। अगर आज अमेरिका के बच्चे हिप्पी, और बीटल, और सब तरह की नासमझियों को उपलब्ध हो रहे हैं, तो उसके लिए बच्चे जिम्मेवार नहीं हैं। उसके लिए वे मां-बाप जिम्मेवार हैं, जिन्होंने प्रौढ़ होने का रास्ता ही तोड़ दिया है। क्योंकि प्रौढ़ होने का एक ही रास्ता है, मैच्योरिटी का इस जगत में, वह धर्म है। एक बार धर्म हट जाए, तो बूढ़े भी बचकाने होंगे। और एक बार जीवन में धर्म प्रवेश कर जाए, तो बच्चे में भी उतनी ही प्रज्ञा उत्पन्न होती है, जितनी वृद्धतम व्यक्ति को हो सके। लाओत्से के संबंध में कहा जाता है कि वह बूढ़ा ही पैदा हुआ। बड़ी अजीब-
सी बात है। कोई आदमी बूढ़ा कैसे पैदा होगा! लेकिन अजीब न लगेगी, अगर दूसरे छोर से सोचें। कई लोग बच्चे ही मर जाते हैं न! अगर कोई आदमी बच्चा ही मर जाता है, तो किसी आदमी के बूढ़े पैदा होने में अड़चन क्या है?
अनेक लोग जब अपनी कब्र में जाते हैं, तब अगर गौर से देखें, तो उनके हाथ में घुनघुने होते हैं, और कुछ भी नहीं। जिन चीजों से हम भी खेल रहे हैं, वे घुनघुनों से ज्यादा नहीं हैं। बच्चों के घुनघुने जरा ज्यादा रंगीन होते हैं, हमारे जरा कम रंगीन, पर उससे हम प्रौढ़ नहीं हो जाते हैं। और बच्चों के घुनघुने सुबह आते हैं और सांझ टूट जाते हैं। और हमारे घुनघुने जिंदगीभर चलते हैं, ज्यादा मजबूत होते हैं। इससे कोई भेद नहीं पड़ता है। लेकिन खेलते हम घुनघुनों से रहते हैं। अधिक लोग मरते वक्त वहीं होते हैं, जहां पैदा होते वक्त खटोले में थे। कब्र और खटोले में कोई विकास नहीं होता। लाओत्से की बात मजाक की तो है, लेकिन अर्थपूर्ण है। वह यही कहने को यह कहानी गढ़ी गई है कि अधिक लोग कब्र में जाते वक्त घुनघुने हाथ में रखते हैं और मुंह में उनके दूध की चूसनी होती है। इसलिए उलटी बात लाओत्से के लिए कही गई कि वह जन्म से ही बूढ़ा पैदा हुआ। और जब लोग लाओत्से से पूछते कि तुम्हारे जन्म से बूढ़े होने का क्या मतलब है? तो लाओत्से कहता कि जन्म से

ही मुझे, जो दिखाई पड़ता है, उसमें कोई रस नहीं है; जो नहीं दिखाई पड़ता, उसी में मेरा रस है।
तो कृष्ण कहते हैं, मैं छिपा हूं।
धर्म जो है, वह साइंस आफ दि हिडेन, छिपे हुए का विज्ञान है। विज्ञान जो है, वह प्रकट जगत की खोज है।
लेकिन जो भी प्रकट है, वह ऊपर है, सतह पर है; और जो अप्रकट है, वह गहरा है। खजाने तो छिपाकर ही रखे जाते हैं। आप भी अपनी तिजोड़ी कहां रखते हैं? द्वार पर नहीं रखते हैं। न ही सड़क पर रख देते हैं। न घर की दीवाल पर रखते हैं। न घर की फेंसिंग के पास रखते हैं। तिजोड़ी आप वहीं रखते हैं, जो घर का अंतरतम स्थान है।
जीवन की भी सारी संपदा अंतरतम स्थानों में छुपी होती है। जितनी बड़ी चीज खोदनी हो, उतने गहरे उतरना पड़ता है।
अगर परमात्मा को खोजना हो, तो बहुत गहरे उतरना पड़ेगा। और गहरे उतरने
का एक ही अर्थ है कि इंद्रियां जब तक हमें पकड़े हैं, तब तक हम गहरे नहीं जा सकते।
इंद्रियों की पकड़ की हालत वैसी है, जैसे कोई आदमी किसी नदी के किनारे
को पकड़े हो और कहता हो, मुझे नदी की गहराई की खोज करनी है। और किनारे को जोर से पकड़े हो, और कहता हो कि कहीं मैं डूब न जाऊं, इसलिए किनारा नहीं छोडूंगा। यद्यपि मुझे उन हीरों की खोज करनी है, जो मैंने सुने हैं कि नदी के अंतर्गर्भ में हैं, नदी की गहराई में पड़े हैं। मुझे वे हीरे खोजने हैं, लेकिन किनारा मैं न छोडूंगा। क्योंकि किनारा छोड़ दूं, तो कहीं मैं डूब न जाऊं! लेकिन किनारा छोड़ना ही पड़ेगा।
कबीर ने मजाक की है हम सबके बाबत। और कहा है, मैं बौरी खोजन गई, रही किनारे बैठ। गई तो खोजने, गई खोजने हीरों को, लेकिन पागल ऐसी कि किनारे पर बैठ रही।
कोई पूछ सकता है कि कबीर ने स्त्रीलिंग शब्द का क्यों प्रयोग किया? मैं बौरी खोजन गई, रही किनारे बैठ। क्यों न कहा कि मैं बौरा खोजन गया, रहा किनारे बैठ! कोई अड़चन न थी। मैं पागल खोजने गया और किनारे बैठ गया। कहते हैं, मैं पागल खोजने गई और किनारे बैठ रही।
कबीर जानते हैं कि परमात्मा के सिवाय पुरुष कोई भी नहीं है। क्योंकि पुरुष का ठीक-ठीक अर्थ यही है गहरे में कि जो मालिक है। तो मालिक तो कभी खोजने नहीं जाता; भिखारी खोजने जाते हैं। अगर मालिक ही होते, तो खोजने क्यों जाते? मालिक नहीं हैं, इसलिए खोजने गए।
इसलिए कबीर स्त्रीलिंग शब्द का प्रयोग करते हैं। वे कहते हैं, मैं बौरी खोजन गई। मालिक तो एक ही है, वह परमात्मा। पर पागल की तरह किनारे पर बैठ रही।
किनारे पर जो बैठ रहेगा, वह पागल ही है। क्योंकि किनारे पर बैठे आदमी
को हाथ में क्या लग सकता है ज्यादा से ज्यादा! हां, कभी-कभी नदी की छाती पर सफेद झाग हीरों का धोखा देती है। समुद्र के तट पर टकराकर पत्थरों से, पानी झाग बना लेता है। सूरज की किरणें कभी झाग से गुजरती हैं, तो रंग-बिरंगा हो जाता है। दूर से कभी बहुत प्यारा भी लगता है। पास जाकर हाथ-मुट्ठी में लो, तो सिवाय पानी के कुछ भी हाथ नहीं आता।
नदी के तट पर तो झाग ही हाथ लग सकती है, फोम। हां, हीरों का धोखा हो सकता है। नदी में गहरे उतरें, तो ही हीरे हाथ लग सकते हैं।
तो कृष्ण कहते हैं, इंद्रियों के पार जो है, वह मैं हूं। और इंद्रियों
से जो पकड़ में आता है, वह जगत है, जो मैंने तुझसे कहा आठ प्रकार का।
एक और बात कृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं। यह बात बहुत सोचने जैसी है। इसलिए भी सोचने जैसी है कि भारतीय प्रज्ञा ने ही इस बात की जगत में उदघोषणा की है। कहते हैं, मैंने ही बनाई है यह प्रकृति। मैंने ही रचा है यह सब। यह मुझसे ही स्रष्ट हुआ, और मुझमें ही प्रलय को उपलब्ध हो जाएगा।
परमात्मा की स्रष्टा की तरह धारणा तो जगत में सब जगह पैदा हुई, दि क्रिएटर। बट दि डिस्ट्रायर, विनाश करने वाले की तरह की धारणा भारत की अपनी अनूठी खोज है।

सारी दुनिया में परमात्मा को कहा जाता है, स्रष्टा, बनाने वाला। लेकिन इतने हिम्मतवर धार्मिक लोग पृथ्वी पर कहीं न हुए कि बनाने वाले के भीतर जो छिपा हुआ तर्क है, उसकी आत्यंतिक बात को भी स्वीकार कर लेते; क्योंकि जो बनाएगा, वही मिटाएगा भी। जो स्रष्टा होगा, वही विनाश भी कर सकेगा। और जिससे जगत पैदा होगा, उसी में लीन भी होगा। और जो जन्मदाता है, वही मृत्युदाता भी होगा।
दूसरी बात अप्रीतिकर है, इसलिए दुनिया में कहीं भी ख्याल में नहीं आई। पहली बात बड़ी प्रीतिकर है कि हे, तू पिता है, तू गोद है। लेकिन तू कब्र भी है, इसे कहने की हिम्मत! तूने जन्म दिया, तूने बनाया, तू दयालु है। लेकिन तू मिटाएगा भी, तू तोड़कर खंड-खंड करके विनष्ट भी कर देगा! और फिर भी कहने की हिम्मत की कि तू दयालु है, बड़ी मुश्किल है। बनाने वाला दयालु है, लेकिन मिटाने वाला? मिटाने वाले से हमें डर लगता है। जन्म दिया तूने, बड़ी कृपा की। लेकिन मृत्यु!
तो सारी दुनिया में मृत्यु के लिए लोगों ने दूसरा तत्व खोजा-- डेविल, शैतान, इबलीस, अलग-अलग नाम दिए। परमात्मा से विपरीत एक और शक्ति की कल्पना की, जो मिटाएगी। यह सिर्फ इस देश में एक ठीक, संगत विचार की व्यवस्था हुई, और वह यह कि जो बनाएगा, वही मिटाएगा।
लेकिन हमारी धारणा यह है कि बनाना भी उसकी कृपा है और मिटाना भी उसकी कृपा है। और जो बनाने में ही कृपा देखता है, वह धार्मिक नहीं है। जो मिटाने में भी कृपा देख पाता है, वही धार्मिक है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं कि सृजन भी मेरा, विनाश भी मेरा; निर्मित भी हुआ
सब मुझसे और प्रलय को भी उपलब्ध होगा मुझमें। सब मुझमें ही आता है और मुझमें ही खो जाता है।
इसमें बड़ा वैज्ञानिक दृष्टिकोण है। जीवन की सारी गति वर्तुलाकार है।
और चीजें जहां से शुरू होती हैं, वहीं समाप्त होती हैं। जैसे कि एक हम वर्तुल बनाएं, एक सर्किल बनाएं, तो जहां से हम बनाना शुरू करें, वहीं फिर दूसरी रेखा आकर जोड़ें, तब वर्तुल पूरा बने।
सारा जीवन वर्तुलाकार है। बचपन में जहां से हम यात्रा करते हैं, जवानी के बाद उसी दुनिया में वापस सीढ़ियां उतरते हैं। और जन्म जिस बिंदु पर घटित होता है, उसी बिंदु पर मृत्यु भी घटित होती है। वर्तुल पूरा हो गया। और मृत्यु जन्म से विपरीत नहीं है, बल्कि जन्म के साथ ही जुड़ा हुआ दूसरा कदम है। और विनाश, सिर्फ विश्राम है। इसे समझ लेना जरूरी है।
इस मुल्क में ही विनाश को विश्राम समझने की सामर्थ्य पैदा हुई। विनाश विश्राम है। सृष्टि तो श्रम है, और प्रलय? प्रलय विश्राम है। इसलिए सृष्टि को हमने कहा, ब्रह्मा का दिन। और प्रलय को हमने कहा, ब्रह्मा की रात्रि। श्रम हो गया। सुबह हम उठे। दौड़े, जीए, हारे, जीते, अज्ञानी-ज्ञानी बने, समझ-नासमझ झेली। और फिर सांझ आई। और अंधेरा उतरा। और सो गए। और फिर वापस वहीं खो गए, जहां से सुबह उठे थे।
दिन है श्रम, रात्रि है विश्राम। जीवन है श्रम, मृत्यु है विश्राम।
सृजन है श्रम, विनाश है विश्राम। विनाश को हमने कभी शत्रु की तरह नहीं देखा, मृत्यु को हमने कभी शत्रु की तरह नहीं देखा।
और ध्यान रहे, जिसने भी मृत्यु को शत्रु की तरह देखा, उसका जीवन नष्ट
हो जाएगा। यह बड़ी उलटी दिखाई पड़ेगी बात। पर ऐसा ही है।
जिसने भी मृत्यु को शत्रु की तरह देखा, वह जी न पाएगा; वह जिंदगीभर मृत्यु से डरेगा और बचेगा। जीना असंभव है। लेकिन जिसने मृत्यु को भी मित्र माना, वही जी पाएगा। क्योंकि जिसे मृत्यु भी दुख नहीं दे पाती, उसे जीवन कैसे दुख देगा! और जिसे मृत्यु भी मित्र है, उसे जीवन तो महामित्र हो जाएगा। और जिसे जीवन से विपरीत नहीं दिखाई पड़ती मृत्यु, बल्कि जीवन की ही पूर्णता दिखाई पड़ती है--जैसे कि वृक्षों पर फल पक जाते हैं, ऐसे ही जीवन पर मृत्यु पकती है--जिसे मृत्यु जीवन की ही परिपूर्णता दिखाई पड़ती है और प्रलय भी सृजन का अंतिम चरण मालूम होता है, उसका जीवन आह्लाद से भर जाए, तो कोई आश्चर्य नहीं है। और आह्लाद से न भरे जीवन, तो धर्म का हमें कोई भी पता नहीं है।

इसलिए कृष्ण जब कहते हैं, मैं ही हूं सृजन और मैं ही विनाश। इस तरह की हिम्मत की घोषणा कहीं भी नहीं की गई है। अगर कहीं घोषणाएं भी की गई हैं, तो कहा गया है कि मैं हूं स्रष्टा, और वह जो शैतान है, वह है दुष्ट। वह कर रहा है विनाश। तू उससे सावधान रहना।
लेकिन अमृत भी मैं और जहर भी मैं; इन दोनों की एक साथ स्वीकृति बड़ी अदभुत है। और सचाई है उसमें। क्योंकि जीवन के समस्त द्वंद्व संयुक्त होते हैं, अलग-अलग नहीं होते। अंधेरा और प्रकाश संयुक्त हैं। और अगर कोई परमात्मा कहता हो, प्रकाश हूं मैं और अंधेरा कोई और, तो वह परमात्मा भी बेईमान है। अंधेरा कौन होगा और? और अगर परमात्मा प्रकाश है और अंधेरा कोई और, तो इस जगत में शक्ति-विभाजन हो जाएगा। रात किसी और की, और दिन किसी और का।
सुना है मैंने कि एक आदमी मर रहा है, एक ईसाई मर रहा है। पादरी उसे आखिरी पश्चात्ताप करवाने और प्रार्थना करवाने आया है। पादरी उससे कहता है, बोल कि शैतान, अब मुझे तुझसे कोई वास्ता नहीं; अब मैं परमात्मा की शरण जाता हूं। हे दुष्ट शैतान, अब तुझसे मेरा कोई संबंध नहीं; अब मैं प्रभु की शरण जाता हूं।
लेकिन वह आदमी सुनता है और आंख बंद कर लेता है और कुछ बोलता नहीं। पादरी और जोर से कहता है कि शायद मृत्यु ज्यादा निकट है और उसे सुनाई नहीं पड़ रहा है। वह फिर भी सुन लेता है, फिर आंख बंद कर लेता है। पादरी और जोर से कहता है उसे हिलाकर। वह कहता है, हिलाओ मत। मैं अच्छी तरह सुन रहा हूं। तो पादरी पूछता है कि तू बोलता क्यों नहीं!
वह कहने लगा कि मरते वक्त किसी को भी नाराज करना ठीक नहीं। पता नहीं, किसकी शरण जाऊं! आखिरी वक्त में किसी की झंझट में मैं नहीं पड़ना चाहता। पता नहीं, सच में किसकी शरण जाऊं! इसलिए मुझे चुपचाप मर जाने दो। जिसकी शरण पहुंच जाऊंगा, उससे ही कह दूंगा। अगर शैतान के पास पहुंच गया, तो कह दूंगा कि हे ईश्वर, तुझसे मेरा कोई वास्ता नहीं। क्योंकि जिसके साथ रहना है, उसी के साथ दोस्ती बतानी उचित है। और अभी मुझे कुछ पता नहीं।
डिवाइडेड, अगर हम जगत को दो सत्ताओं में तोड़ दें, तो हमारी निष्ठा भी विभाजित होती है। और विभाजित निष्ठा कभी भी निष्ठा नहीं है। अविभाजित निष्ठा ही निष्ठा है, अनडिवाइडेड।
अगर पश्चिम में धर्म इस बुरी तरह नष्ट हुआ, तो उसके नष्ट होने का अकेला कारण नास्तिक नहीं है; उसका बहुत गहरा कारण पश्चिम में धर्म का विभाजित निष्ठा का नियम है।
दो के प्रति निष्ठा खतरनाक है; दो नावों पर यात्रा है। जीवन की कोई यात्रा दो नावों पर नहीं हो सकती। और जीवन के सभी द्वंद्व संयुक्त हैं। यहां जीवन और मृत्यु एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। और अंधेरा और प्रकाश भी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यहां, जिसे हम विरोध कहते हैं, वह विरोध भी विरोध नहीं है, केवल दूसरा अंग है।
इसलिए कृष्ण बड़ी सरलता से कह पाते हैं कि मैं ही हूं सृजन, मैं ही प्रलय। सब मुझसे ही पैदा होता और मुझमें ही लीन हो जाता है।
यहां हमने परमात्मा को अविभाजित, अनडिवाइडेड जाना है। और ध्यान रहे, अगर हम परमात्मा को अविभाजित न जानें, तो हमारे भीतर अविभाजित श्रद्धा होने की कोई संभावना नहीं है। और हमने एक बार जगत को दो हिस्सों में तोड़ा कि हमारे भीतर का हृदय भी दो हिस्सों में टूट जाएगा।
इसलिए पश्चिम में आज जो मनोवैज्ञानिकों के सामने सबसे बड़ी बीमारी है,
वह है, स्प्लिट पर्सनैलिटी, व्यक्तित्व का टूटा हुआ होना, विखंडित होना। लेकिन पश्चिम के मनोवैज्ञानिक को भी कोई ख्याल नहीं है कि मनुष्य का मन दो में क्यों टूट गया। और यह पश्चिम में ही विखंडित, स्प्लिट पर्सनैलिटी क्यों पैदा हुई? उसका कारण उसके ख्याल में नहीं है।
उसका कारण है कि निष्ठा जब दो में टूट जाए, और निष्ठा जब विभाजित हो,
तो भीतर हृदय भी दो में टूट जाता है और विभाजित हो जाता है। जब निष्ठा एक में हो और अविभाज्य हो, तो निष्ठावान हृदय भी अविभाजित हो जाता है और एक हो जाता है। एक परमात्मा, तो भीतर एक आत्मा का जन्म होता है। और अगर दो शक्तियां हमने स्वीकार कीं, तो भीतर भी चित्त डांवाडोल, और दो में टूट

जाता है। और आज तो हालत ऐसी है कि स्वीकृत हो गया है पश्चिम में कि हर आदमी खंड-खंड होगा।
एक आदमी तो एक मनोवैज्ञानिक के पास गया और उसने कहा कि कोई तरकीब करो
कि मेरी पर्सनैलिटी को स्प्लिट कर दो, मेरे व्यक्तित्व को दो हिस्सों में तोड़ दो। मनोवैज्ञानिक हैरान हुआ। उसने कहा, तुम पागल तो नहीं हो? क्योंकि हमारे पास तो जो लोग आते हैं, वे इसलिए आते हैं कि हम उनके व्यक्तित्व को इकट्ठा कैसे कर दें! तुम्हारा दिमाग ठीक तो है न! तुम यह क्या कह रहे हो कि तुम्हारे व्यक्तित्व को दो हिस्सों में तोड़ दें! तुम्हारा प्रयोजन क्या है?
उस आदमी ने कहा, मैं बहुत अकेलापन अनुभव करता हूं। दो हो जाऊंगा, तो कम
से कम कोई साथ तो होगा! आई फील टू मच लोनली, बहुत अकेला लगता हूं। तो मुझे दो हिस्सों में तोड़ दो। तो कम से कम मेरा एक हिस्सा तो मेरे साथ हो सकेगा! पश्चिम में दोनों घटनाएं घटी हैं। आदमी बिल्कुल अकेला है, और टूट गया है। और इस टूटने की जड़ उस विचार में है, जिसमें हमने जगत को ही दो हिस्सों में तोड़ दिया।
कृष्ण कहते हैं, दोनों ही मैं हूं। बुरा भी मैं हूं, भला भी मैं हूं।
अपने को भला कहने की बात तो बड़ी आसान है। अपने को महात्मा कहने की बात
तो बड़ी आसान है। लेकिन अपने को दुरात्मा कहने की हिम्मत बड़ी है।
कृष्ण कहते हैं, दोनों ही मैं हूं। वह जो तुम्हें अच्छा लगता है, वह भी मैं हूं। वह जो तुम्हें बुरा लगता है, वह भी मैं हूं। दोनों ही मैं हूं। जिसको यह समग्र स्वीकृति, यह टोटल एक्सेप्टेबिलिटी समझ में आ जाए, वही कृष्ण के तत्व-दर्शन को ठीक से समझ पाएगा।
इसलिए कृष्ण के साथ बहुत अन्याय भी हुआ है। क्योंकि कृष्ण का व्यक्तित्व समाहित, समग्र को इकट्ठा लिए हुए है। तो किसी को शक होता है कि कृष्ण दोनों काम कैसे कर पाते हैं! इनकंसिस्टेंट मालूम पड़ते हैं, असंगत मालूम पड़ते हैं। एक तरफ परमात्मा की बात करते हैं, दूसरी तरफ युद्ध में उतार देते हैं। परमात्मवादी को तो पैसिफिस्ट होना चाहिए, उसको तो शांतिवादी होना चाहिए। अशांति तो दुष्टों का काम है, युद्ध तो दुष्टों का काम है!
कृष्ण कैसे आदमी हैं! एक तरफ परमात्मा की बात, और दूसरी तरफ अर्जुन को युद्ध में जाने की प्रेरणा। ये दुनिया के जितने शांतिवादी हैं, उनको बड़ी बेचैनी होगी। वे तो कहेंगे, कृष्ण जो हैं, ठीक आदमी नहीं हैं। कृष्ण को तो मौका चूकना नहीं था। अर्जुन भाग रहा था, शांतिवादी बन रहा था। फौरन रास्ता बनाना था कि भाग जा। आगे-आगे दौड़ना था। लोगों से कहना था, हटो! अर्जुन को निकल जाने दो, यह शांतिवादी हो गया है।
कृष्ण बेबूझ हैं। क्योंकि कृष्ण कहते हैं, दोनों ही मैं हूं, युद्ध भी मैं और शांति भी मैं। दोनों ही मैं हूं, अंधेरा भी मैं, प्रकाश भी मैं। और जब दोनों की तरह तू मुझे देख पाएगा, तभी तू मुझे देख पाएगा। अगर तू बांटकर देखेगा, आधे को देखेगा, चुनकर देखेगा, तो तू मुझे कभी नहीं देख पाएगा। परमात्मा में चुनाव नहीं किया जा सकता। यू कैन नाट चूज। और अगर आपने चुनाव किया, तो वह परमात्मा आपके घर का होममेड परमात्मा होगा, घर का बनाया हुआ। वह परमात्मा असली नहीं होगा।
परमात्मा तो जैसा है, उसके लिए वैसे ही होने के लिए राजी होना पड़ेगा। अगर वह प्रलय है तो सही। अगर वह मृत्यु है तो सही। राजी हैं। अगर आपने कहा कि नहीं, हम तो जरा परमात्मा के चेहरे पर रंग-रोगन करेंगे। हम तो जरा शक्ल को सुंदर बनाएंगे। मेकअप में हर्ज भी क्या है? हम थोड़ा इसकी शक्ल को ठीक कर लें। अगर आपने ऐसा किया, तो जो आपके हाथ में लगेगा, वह आपके हाथ का बनाया हुआ परमात्मा होगा। उससे परमात्मा का कोई भी संबंध नहीं है।
धार्मिक आदमी दुस्साहसी है। दुस्साहस उसका यह है कि जैसा है, ऐज इट इ.ज, वह उसे स्वीकार करता है। वह कहता है, यह भी तेरा और यह भी तेरा। जन्म भी तेरा और मृत्यु भी तेरी। दोनों के लिए मैं राजी हूं।
इसलिए कृष्ण अर्जुन को कहते हैं, प्रलय भी मैं, सृजन भी मैं। दोनों ही मैं हूं।

विरोधों को आत्मसात करने की यह घोषणा वेदांत का सार है। अविरोध पैदा होता है फिर। और जब जीवन की दृष्टि अविरोध की होती है, तो आपके भीतर अविरोधी हृदय का जन्म होता है। जो आपके परमात्मा का रूप होगा, वही आपके हृदय का रूप बन जाएगा। आपका हृदय ढलता है उसी रूप में, जिस रूप में आप परमात्मा को स्वीकार करते हैं। तोड़कर नहीं, जोड़कर, इकट्ठा, सबको लिए हुए। और जब सुबह आपके पैर में कांटा गड़े, तो यह मत सोचना कि शैतान ने गड़ाया।
तब उसको भी सोचना कि परमात्मा ने गड़ाया; और परमात्मा ने आपको इस योग्य समझा कि कांटा गड़ाया, उसके लिए भी धन्यवाद दे देना।
और जिस दिन फूल के लिए ही नहीं, कांटे के लिए भी परमात्मा को कोई धन्यवाद दे पाता है, उस दिन उसे मंदिरों में जाने की जरूरत नहीं रह जाती। वह जहां है, वहीं मंदिर आ जाता है।

प्रश्नः ओशो, एक छोटा-सा प्रश्न है। यदि सत्य अद्वैत है, तो अपरा और परा को भिन्न कहने का क्या अर्थ है? और क्या अपरा और परा आपस में परिवर्तनशील हैं?

सत्य एक है, लेकिन जिन्हें पूरा सत्य दिखाई पड़ता है उन्हें। जिन्हें नहीं दिखाई पड़ता, उनके लिए एक नहीं है। उन्हें जो दिखाई पड़ता है, अंधों को जो दिखाई पड़ता है, उसका नाम, अपरा। हम जो नहीं जानते, हमें जो दिखाई पड़ता है, आधा-आधा। वृक्ष और जड़ तो एक हैं। आप कहीं वह रेखा न खींच पाएंगे, जहां आप कहें कि यहां से जड़ शुरू होती है, और यहां से वृक्ष शुरू होता है। कोई डिसकंटिन्यूटी नहीं है। दोनों के बीच सातत्य कहीं भी नहीं टूटता। कहां जड़ें समाप्त होती हैं और कहां वृक्ष शुरू होता है?
अगर कोई जोर से आपको पकड़ ले, तो आप मुश्किल में पड़ जाएंगे। ऐसे आप जानते हैं कि जड़ें अलग और वृक्ष अलग। वृक्ष ऊपर और जड़ें भीतर। लेकिन अगर कोई जिद्द करे और कहे कि ठीक-ठीक बताइए, कहां से होती है जड़ शुरू? और कहां से होता है वृक्ष शुरू? तो आप बहुत मुश्किल में पड़ जाएंगे। ऐसी कोई जगह आप न खोज पाएंगे। वृक्ष और जड़ एक है।
लेकिन जिस आदमी ने सिर्फ वृक्ष देखा और जड़ें नहीं देखीं, उससे कहना पड़ेगा कि यह जो तुझे दिखाई पड़ रहा है, यह ऊपर-ऊपर है। एक और भी है जो नीचे है, जो सबको सम्हाले हुए है, वह जड़ है।
न दिखाई पड़ने वाले आदमी से कहना पड़ता है कि जो तुझे दिखाई पड़ रहा है,
वह अपरा है, वह नीचे का जगत है, स्थूल जगत है, इंद्रियों का जगत है। और एक जगत है परा का, जो तुझे दिखाई नहीं पड़ रहा है। हम तुझे उस तरफ ले चलते हैं। लेकिन जिस दिन दिखाई पड़ेगा, उस दिन दोनों जगत एक हो जाएंगे। उस दिन दोनों के बीच एक सातत्य।
फिर जो फर्क है, वह ऐसा ही है जैसे वृक्ष के ऊपर होने का और जड़ों के नीचे होने का है। फिर भी फर्क तो है। फर्क तो है। अगर जड़ें उखाड़कर फेंक दें, तो वृक्ष न बचेगा। वृक्ष उखाड़कर फेंक दें, तो जड़ें बचेंगी, और जड़ों से फिर वृक्ष पैदा हो जाएगा।
फर्क नहीं है सातत्य में, लेकिन फर्क मूल शक्ति में है। जड़ें ज्यादा शक्तिशाली हैं; उनके पास जीवन की केंद्रीय ऊर्जा है। वृक्ष केवल फैलाव है। अगर ठीक से समझें, तो जड़ें एसेंशियल हैं, और वृक्ष नान-एसेंशियल है। क्योंकि जड़ों का होना वृक्ष के बिना भी हो सकता है, लेकिन वृक्ष का होना जड़ों के बिना नहीं हो सकता। फिर भी दोनों एक हैं। वह जो आखिरी पत्ता है वृक्ष का, वह भी जड़ का ही फैला हुआ हाथ है। वह भी जड़ ही है फैल गई आकाश तक। नहीं जानते हैं जो, अज्ञान में हैं जो, जिन्हें परमात्मा की समग्रता
का कोई भी पता नहीं, कृष्ण उनके लिए विभाजन कर रहे हैं। सब विभाजन बच्चों के लिए किए जाते हैं। सत्य तो अविभाज्य है। लेकिन अविभाज्य सत्य की कोई शिक्षा नहीं दी जा सकती। शिक्षा देने के लिए विभाजन करना पड़ता है। कहीं से तो शुरू करना पड़ेगा, वन हैज टु बिगिन समव्हेअर। और जहां से भी शुरू करेगा, वहीं से विभाजन करना पड़ेगा।
कहां से शुरू करें? तो ऊपर से ही शुरू करना उचित है, क्योंकि अर्जुन को पता है ऊपर का। वह समझेगा कि पृथ्वी क्या है, वह समझेगा कि जल क्या है, वह

समझेगा कि अग्नि क्या है। फिर धीरे-धीरे उसकी समझ बढ़ेगी। जैसे-जैसे समझ बढ़ेगी, भीतर की बात कृष्ण उससे कहेंगे। कहेंगे, बुद्धि क्या है, विचार क्या है, मन क्या है। कहेंगे, अहंकार क्या है। और जब उसे अहंकार की सूझ ख्याल में आ जाएगी, तब कहेंगे, इसके पार, बियांड दिस, परा का लोक है। इसके पार मैं हूं, इसके पार भागवत चैतन्य है।
लेकिन उस मैं तक लाने के लिए यह मिट्टी-पदार्थ से लेकर, पृथ्वी से लेकर आठ तत्वों की यात्रा कृष्ण को करवानी पड़ेगी। और भलीभांति जानते हुए कि सब जुड़ा है, सब इकट्ठा है।
सब इकट्ठा है। कहीं कुछ टूट नहीं गया है। सब संयुक्त है। निम्नतम, बाह्यतम वस्तु भी अंतरतम से जुड़ी है। निम्नतम श्रेष्ठतम का ही नीचे का फैलाव है। सब संयुक्त है। अस्तित्व संयुक्त है। लेकिन जिन्हें कुछ भी पता नहीं है, उनसे करनी है बात। और जिन्हें पता है, उनसे बात करने का कोई अर्थ नहीं है।
तो एक बात ध्यान में रख लेंगे और वह यह कि दो ज्ञानी अगर मिलें, तो बातचीत का कोई उपाय नहीं है। दो अज्ञानी मिलें, तो बातचीत बहुत होगी, हो बिल्कुल न पाएगी। दो ज्ञानी मिलें, बातचीत बिल्कुल न होगी, फिर भी हो जाएगी। दो अज्ञानी मिलें, बातचीत बहुत चलेगी, भारी चलेगी, हो न पाएगी बिल्कुल। फिर बातचीत कहां हो पाती है?
एक ज्ञानी और एक अज्ञानी के बीच बातचीत हो पाती है। लेकिन समझौते करने पड़ते हैं, कंप्रोमाइज करनी पड़ती है। ज्ञानी को ही करनी पड़ती है, क्योंकि अज्ञानी तो क्या करेगा, अज्ञानी कैसे करेगा? ज्ञानी को ही करनी पड़ती है। उसे ही अज्ञानी की भाषा में बोलना शुरू करना पड़ता है। इस आशा में कि धीरे-धीरे, क्रमशः, एक-एक कदम वह राजी कर लेगा, और उस जगत तक ले जाएगा, जहां शब्द के बिना कहने की संभावना है। उस परा तक इशारा कर पाएगा।
इसलिए सारी चर्चा, जब भी होती है--चाहे कृष्ण और अर्जुन के बीच, और चाहे बुद्ध और आनंद के बीच, और चाहे महावीर और गौतम के बीच, और चाहे जीसस और ल्यूक के बीच--सारी चर्चा एक ज्ञानी और एक अज्ञानी के बीच है।
और ध्यान रहे, अज्ञानी बिल्कुल समझौता नहीं करता। कोई उपाय भी नहीं है। वह समझौता करेगा किस बात के लिए! अज्ञानी तो डटकर अपने अज्ञान में खड़ा रहता है। वह तो कहता है, यही ठीक है। समझौता करना पड़ता है ज्ञानी को। वह नीचे उतरता है; अज्ञानी की जगह आता है। उसका हाथ पकड़ता है। यात्रा पर निकलता है। हाथ पकड़ता है, तो अज्ञानी की भाषा का उसे उपयोग करना पड़ता है। सब विभाजन अज्ञानी की भाषा है। ज्ञानी की भाषा में तो कोई विभाजन नहीं है, अद्वय है, एक है। लेकिन उस एक को कहने का कोई उपाय नहीं; मौन रह जाना ही काफी है।
अगर कृष्ण ज्ञानी की भाषा का उपयोग करते, तो चुप रह जाते। फिर गीता पैदा नहीं होती। तो अर्जुन की बुद्धि से चल रहे हैं। इसलिए बहुत स्थूल से शुरू किया, पृथ्वी; स्थूलतम। फिर सूक्ष्म के पास आए, अहंकार।
और अर्जुन का अहंकार भारी रहा होगा। क्षत्रिय था। क्षत्रिय तो जीता
ही अहंकार पर है। उसकी तो सारी चमक और रौनक अहंकार की है। उसकी तो सारी धार अहंकार की है। अगर एकदम से कह देते कि अहंकार, तो शायद वह नाराज ही होता, समझ न पाता। एकदम से कह देते कि यह अहंकार सब प्रकृति है; कुछ भी नहीं, सब बेकार है। तो अर्जुन और कृष्ण के बीच संवाद की संभावना टूटती, और कुछ न होता। क्रमशः!
और अहंकार तलाश में रहता है इस बात की कि मुझे चोट पहुंचा दो। खोज में रहता है। बहुत सेंसिटिव है। छुई-मुई। जरा-सा इशारा लगा दो, जरा-सा, जरा तिरछी आंख से देख दो, तो वह दिक्कत में पड़ जाता है। और दिक्कत में इसलिए पड़ जाता है कि उसके पास वस्तुतः कोई आधार तो हैं नहीं, हवाई किला है। ताश का घर है। जरा-सी फूंक, और सब गिर जाएगा।
सुना है मैंने, एक फकीर ठहरा था एक महानगरी के बाहर। अमावस की रात। महानगरी में विद्युत के दीए पूरे नगर में जल रहे थे, जैसे दीवाली हो। फकीर लेटा था अंधेरे में एक वृक्ष के तले। एक जुगनू उड़ती हुई आकर फकीर के पास बैठ गई। बैठकर उसने पंख बंद कर लिए। उसकी चमकती हुई रोशनी बंद हो गई। तभी

अचानक बिजली के कारखाने में कुछ गड़बड़ हुई होगी, और सारे नगर की बिजली चली गई।
उस जुगनू ने फकीर से कहा, एक्सक्यूज मी फार मेंशनिंग-- कहने के लिए क्षमा करें। बट डू यू सी इन व्हाट शेप दिस ग्रेट सिटी विल बी, इफ आई एम गान समव्हेयर एल्स--अगर मैं कहीं और चली जाऊं, तो इस बड़े नगर का क्या होगा, देखते हैं! कहने के लिए क्षमा करें। क्योंकि जुगनू ने सोचा कि चूंकि मैंने पंख बंद किए और मेरी चमक बंद हुई, सारा नगर अंधकार में डूब गया!
फकीर मन ही मन में हंसा, ऊपर नहीं, क्योंकि ऊपर हंसे, तो जुगनू से फिर बातचीत नहीं हो सकती। उसने कहा कि तेरी सूचना के लिए धन्यवाद। मैं तो सदा से ही ऐसा जानता था। तेरी बड़ी कृपा है कि तू इस नगर को छोड़कर नहीं जाती। नगर की तो बात दूर, अगर तू इस विश्व को छोड़कर चली जाए, तो आकाश में जो तारे टिमटिमा रहे हैं, ये भी एकदम बंद हो जाएं। ये भी एकदम बंद हो जाएं और बुझ जाएं। जुगनू पास सरक आई और उसने कहा, आदमी तुम काम के मालूम पड़ते हो। कुछ और बातें करें।
कहते हैं, सुबह तक जुगनू फकीर हो गई। मगर फकीर को जुगनू होने से शुरू करना पड़ा। रातभर चली बात; सुबह तक जुगनू फकीर हो गई।
ऐसा ही होने वाला है इस कथा में भी। यह अर्जुन बेचारा बचेगा नहीं। यह कृष्ण हो जाने वाला है। लेकिन अभी लंबी है दूरी। अभी वह सुबह है दूर। अभी तो जुगनू की भाषा में कृष्ण को बोलना है। उसके सिवाय कोई उपाय नहीं है।

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु।। 8।।
पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु।। 9।।
हे अर्जुन, जल में मैं रस हूं; चंद्रमा और सूर्य में प्रकाश हूं; संपूर्ण वेदों में ओंकार हूं तथा आकाश में शब्द और पुरुषों में पुरुषत्व हूं। तथा पृथ्वी में पवित्र गंध और अग्नि में तेज हूं, और संपूर्ण भूतों में उनका जीवन हूं अर्थात जिससे वे जीते हैं, वह मैं हूं, और तपस्वियों में तप हूं।

उस अदृश्य की ओर इशारा कृष्ण ने शुरू किया। दृश्य को बताया, और कहा, उस दृश्य में मैं कौन हूं। इशारा किया दृश्य की तरफ, और फिर भी इशारा किया अदृश्य की तरफ। कहा, जल में मैं रस।
जल में रस! रस को थोड़ा समझना पड़े।
रस बहुत अदभुत शब्द है, और बहुत सूक्ष्म और बहुत अदृश्य। दिखाई जो पड़ता है--कोई पेय आप पीते हैं, अमृत भी पीएं--तो जो दिखाई पड़ता है, जब आप पीते हैं, तो जो अनुभव में आता है, क्या वह वही है, जो दिखाई पड़ता था? जब पीते हैं, तो जो अनुभव में आता है, वह तो दिखाई बिल्कुल न पड़ता था। जो दिखाई पड़ता था, वह तो कुछ और दिखाई पड़ता था। और जो फिर अनुभव में आता है पीने पर, वह कुछ और ही है। वह जो अनुभव में आता है पीने पर, वह है रस। वह रस आंतरिक अनुभूति है।
ऐसा ही नहीं; जहां भी... । आपका प्रेमी आपके पास है, आप हाथ में हाथ लेकर बैठ गए हैं। हाथ तो प्रेमी का हाथ में है, लेकिन भीतर जो एक स्वाद उत्पन्न होता है प्रियजन के पास होने का, वह रस है। वह अगर हम वैज्ञानिक के पास दोनों के हाथ लेबोरेटरी में पहुंचा दें और कहें कि काट-पीटकर पता लगाओ कि इनको कैसा रस उपलब्ध हुआ! क्योंकि ये दोनों कह रहे थे कि जन्म-जन्म तक हम ऐसे ही हाथ में हाथ लिए बैठे रहें, कि चांद-तारे बुझ जाएं और हमारे हाथ अलग न हों! ये कुछ ऐसी बातें सुनी हैं इनकी हमने। जरा कृपा करके इन दोनों के हाथ का पता तो लगाओ खोजबीन कर कि इसमें रस कहां है?
खून मिलेगा बहता हुआ। पानी मिलेगा बहता हुआ। हड्डी, मांस, मज्जा, सब मिल जाएगी। रस नहीं मिलेगा। रस अदृश्य है। उन्हें जरूर मिल रहा था। उन्हें जरूर मिल रहा था। भ्रांत हो, सपना हो, उन्हें जरूर मिल रहा था। प्रत्येक वस्तु के भीतर जो आंतरिक अनुभव में उतरता है स्वाद, उसका नाम रस है।

तो कृष्ण कहते हैं, समस्त जलीय द्रव्यों में, समस्त पेय पदार्थों में,
वह जो तुम पीते हो, वह मैं नहीं हूं; वह जो तुम पीकर अनुभव करते हो, वह मैं हूं। रस हूं मैं।
रस अदृश्य है। सभी रस अदृश्य हैं। फूल है खिला गुलाब का। गए आप उसके पास। कहा, बहुत सुंदर है। लेकिन कोई पकड़ ले आपको, मिल जाए कोई तार्किक, और पूछे, कहां है सौंदर्य? जरा मुझे भी दिखाओ। तो आप पड़ेंगे कठिनाई में। कितना ही बताएंगे, नहीं बता पाएंगे। और जितना बताएंगे, उतना ही पाएंगे कि बताने में असमर्थ हैं। और आप हारेंगे। आपकी हार निश्चित है। वह तार्किक जीतेगा। उसकी जीत निश्चित है। क्योंकि उसने दृश्य को पकड़ा, और आपने अदृश्य की घोषणा की है, जिसको आप न बता पाएंगे।
सौंदर्य बताया नहीं जा सकता। असल में फूल में नहीं है सौंदर्य, फूल के अनुभव में आपके भीतर जो बोध पैदा होता है, उस रस में है। इसलिए फूल को तोड़कर अगर आप पता लगाने चलेंगे, तो हां, केमिकल्स मिलेंगे, रस न मिलेगा। रासायनिक मिल जाएंगी वस्तुएं, रस न मिलेगा। रंग मिल जाएंगे; सब कुछ मिल जाएगा। फूल की पूरी एनालिसिस हो जाएगी, पूरा विश्लेषण। और वैज्ञानिक एक-एक शीशी में अलग निकालकर रख देगा कि यह-यह, लेबल लगाकर। लेकिन कोई ऐसी शीशी न होगी, जिसमें वह एक लेबल लगाए कि यह रहा सौंदर्य। सौंदर्य के लेबल वाली शीशी खाली रह जाएगी। वह कहेगा, कोई सौंदर्य नहीं है।
असल में फूल में कोई सौंदर्य नहीं था। सौंदर्य तो आपको जो रस उपलब्ध हुआ फूल को देखकर, उसमें आया। वह आपका आंतरिक रस है। लेकिन मजे की बात है, फूल को भी तोड़कर देख लो, तो भी रस न मिलेगा; आपको तोड़कर देख लें, तो भी रस न मिलेगा। फिर रस कहां था? वह अदृश्य है। वह धागे की तरह भीतर मनकों के छिपा है। मनके पकड़ में आ जाएंगे और धागे का आपको कोई पता न चलेगा।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, पेय पदार्थों में मैं रस, जल में मैं रस। लेकिन उदाहरण लेते हैं जल का। वह अर्जुन को समझ में आएगा, और रस की तरफ इशारा हो सकेगा।
जीवन में जो भी हमारे गहरे अनुभव हैं, रस के अनुभव हैं। चाहे हो सौंदर्य, चाहे हो प्रेम, चाहे हो संगीत, जो भी हमारे अनुभव हैं, वे रस के अनुभव हैं। अनुभव रस रूप है। या ऐसा कहें कि समस्त अनुभवों का जो निचोड़ है, उसे हमने रस कहा है।
रस की धारणा भारत में अनूठी है। रस की धारणा ही अनूठी है। दुनिया में कोई भी रस के करीब इतना नहीं पहुंचा। सौंदर्य की उन्होंने व्याख्याएं कीं; लेकिन उनकी व्याख्याएं बड़ी ऊपरी हैं। पश्चिम ने सौंदर्य का बड़ा शास्त्र, एस्थेटिक्स पैदा किया। लेकिन उनकी सौंदर्य की परिभाषा बड़ी ऊपरी है।
सौंदर्य रस है। प्रेम रस है। आनंद रस है। और उपनिषद ने तो घोषणा की कि ब्रह्म रस है। ब्रह्म रस है!
वह कृष्ण वही घोषणा कर रहे हैं। जलों में मैं रस! फिर वे एक-एक उदाहरण लेते चलते हैं। कहते हैं, पृथ्वी में मैं गंध, पवित्र गंध।
यह भी थोड़ा कठिन होगा। रस से कम कठिन नहीं होगा। क्योंकि पवित्र कृष्ण न लगाते तो आसानी पड़ जाती। लेकिन गंध में पवित्र लगाने का क्या प्रयोजन? सुगंध काफी न था कहना? कहते हैं, पृथ्वी में पवित्र सुगंध। सुगंध काफी मालूम पड़ता है। लेकिन कृष्ण जैसे लोग तो बहुत टेलीग्रैफिक होते हैं। अगर एक भी शब्द जरूरी न होता, तो वे उपयोग करते न। लेकिन इससे बड़ी उलझन खड़ी हो गई है।
कहा, पवित्र सुगंध, तो इसका यह अर्थ हुआ कि अपवित्र सुगंध भी होती है।
और कहा, पवित्र सुगंध, तो इसका अर्थ हुआ कि पवित्र दुर्गंध, अपवित्र दुर्गंध, इनकी संभावना है क्या?
इनकी संभावना है। इसलिए जानकर लगाया, पवित्र सुगंध। सभी सुगंधें पवित्र नहीं होतीं। उस सुगंध को पवित्र कहा है कृष्ण ने, जिसकी भनक पड़ते ही जीवन की ऊर्जा ऊपर की तरफ प्रवाहित होती है।
ऐसी सुगंधें भी हैं, जिनकी भनक पड़ते ही जीवन की ऊर्जा नीचे की तरफ प्रवाहित होती है। जगत के कोने-कोने में अनुभवी वेश्याओं से पूछें आप। या पेरिस के बाजार में, जहां दुनियाभर की अपवित्र सुगंधें पैदा की जाती हैं,

परफ्यूम। और सब तरह की जांच-परख की जाती है कि कौन-सी परफ्यूम आदमी में सेक्सुअलिटी ज्यादा पैदा करेगी। सुगंध है वह। लेकिन आपके भीतर कामवासना को जगाने में कौन-सी सुगंध काम करेगी, उसके एक्सपर्ट हैं, उसके विशेषज्ञ हैं। वे खबर लाते हैं कि कौन-सी सुगंध वेश्या के द्वार पर हो, तो ग्राहक के आने में सुविधा बनेगी। कौन-सी सुगंध स्त्री के कपड़ों पर हो, तो स्त्री गौण हो जाएगी और पुरुष का मन सुगंध की वजह से आंदोलित होगा।
अपवित्र सुगंधें हैं। जो सुगंध जीवन ऊर्जा को नीचे की ओर ले जाती है, कामवासनाओं के मार्गों की ओर ले जाती है, वह अपवित्र है।
फिर पवित्र सुगंध कौन-सी है? अभी तक किसी बाजार में तो कहीं पैदा होती दिखाई नहीं पड़ती। कभी-कभी पवित्र सुगंध की घटना घटती है, वह मैं आपसे कहूं, तब आपको यह सूत्र समझ में आएगा। अन्यथा यह समझ में नहीं आएगा। और गीता पर हजारों टीकाएं लोगों ने लिखी हैं। लेकिन पवित्र सुगंध के बाबत कुछ ध्यान नहीं दिया है। कभी आती है वह।
महावीर के संबंध में कहा जाता है कि महावीर जहां खड़े हो जाएं, वहां एक सुगंध व्याप्त हो जाएगी। चलेंगे तो, उठेंगे तो, चारों तरफ की हवाओं में एक सुगंध चलेगी। महावीर का शरीर भी पृथ्वी का ही बना हुआ है, जैसा हमारा बना हुआ है। महावीर के शरीर से जो सुगंध उठती है, उस सुगंध का नाम है--पृथ्वी में मैं सुगंध हूं।
जरूरी नहीं है कि महावीर आपके पास से निकलें, तो आपको सुगंध का पता चले। क्योंकि जो दुर्गंध के आदी हैं, उन्हें सुगंध का पता चलना मुश्किल होता है। और जो अपवित्र सुगंध के आदी हैं, उनके पास से पवित्र सुगंध गुजर जाएगी, स्पर्श भी न होगा। क्योंकि खुले द्वार भी चाहिए। लेकिन जिनके द्वार खुले हैं, और जिनका हृदय संवेदनशील है, वे महावीर की सुगंध को पकड़ पाएंगे।
तो महावीर जैसे शरीर से जब सुगंध उठती है, उस सुगंध का नाम है, पृथ्वी में पवित्र सुगंध। मैं पृथ्वी में पवित्र सुगंध हूं अर्जुन।
कभी आपने ख्याल किया कि पृथ्वी में दुर्गंध-सुगंध सबकी अनंत संभावना है। एक ही बगीचा है आपके घर में छोटा-सा। एक छोटा-सा किचन गार्डन है। उसमें आप नीम का झाड़ लगा देते हैं। और हवाओं में चारों तरफ कड़वाहट फैलनी शुरू हो जाती है। वह नीम उस जमीन से ही रस लेती है। उसी के बगल में आप गुलाब का एक पौधा लगा देते हैं। वह गुलाब का पौधा भी उसी जमीन से रस लेता है। लेकिन गुलाब के फूल में सुगंध कोई और, और नीम के पत्तों में और नीम की बौरियों में सुगंध कुछ और। बात क्या है?
जमीन एक, सूरज एक, हवाएं एक, मालिक बगीचे का एक, माली एक, पानी एक, पृथ्वी एक। गुलाब का बीज कुछ और चुनाव करता है; नीम का बीज कुछ और चुनाव करता है। नीम का बीज उसी पृथ्वी में से कड़वाहट को इकट्ठा कर लेता है। गुलाब का बीज उसी पृथ्वी में से कुछ और इकट्ठा करता है।
शरीर हमारा भी वही, महावीर का भी वही, कृष्ण का भी वही, क्राइस्ट का भी वही। लेकिन जरूरी नहीं है कि हम सबके शरीर से जो गंध निकले, वह एक हो।
इस संबंध में और भी कुछ बातें आपसे कहूं। जिन लोगों ने कामवासना के संबंध में गहरी खोजबीन की है, वे कहते हैं कि जब संभोग के क्षण में स्त्री- पुरुष अति आकुल हो जाते हैं, तो दोनों के शरीर से विशेष दुर्गंध निकलनी शुरू हो जाती है। आपके अनुभव में भी आती है। तीव्र कामवासना के क्षण में शरीर से दुर्गंध निकलनी शुरू हो जाती है।
क्या हुआ? शरीर वही है। लेकिन कामवासना में आप और नीचे उतरे, नीम की तरफ गए। आपके शरीर का चुनाव बदल गया। उसकी अलग ग्रंथियां काम करने लगीं, और आपके शरीर से दुर्गंध फैलने लगी।
अगर कामवासना में शरीर से दुर्गंध निकल सकती है--इसके लिए फिजियोलाजिस्ट राजी हैं; इसके लिए शरीरशास्त्री सहमत हो गए हैं कि कामवासना में शरीर से दुर्गंध निकलती है--तो दूसरी बात के लिए राजी होने में बहुत देर नहीं है कि ध्यान की गहराइयों में शरीर से एक तरह की सुगंध निकलती है। क्योंकि तब ऊर्जा ऊपर की तरफ जाती है और शरीर की दूसरी ग्रंथियां काम करती हैं, जो बिल्कुल ही कामवासना से दूसरे छोर पर हैं।

तो महावीर जैसे व्यक्ति का जब पूरा जीवन का फूल खिलता है ध्यान का, तो आस-पास एक सुगंध फैलनी शुरू हो जाती है। यद्यपि उन्हीं को पता चलेगा, जो सौभाग्यशाली हैं।
अगर आपको महावीर के शरीर से सुगंध का पता चले, तो किसी और को मत बताना, नहीं तो वह कहेगा कि हमें नहीं पता चलता। गलत कहते हो। किसी भ्रम में पड़ गए हो। कोई इलूजन में आ गए हो। धोखा खा गए हो।
लेकिन एकाध आदमी को ही पता चलता हो, ऐसा नहीं है। महावीर के पास लाखों लोगों को पता चलता है। महावीर के निकट जो लोग रहते थे, वे कहते थे कि हम अगर दूर भी हों, अंधेरे में भी बैठे हों, और महावीर एक विशेष सीमा के भीतर आ जाएं, तो हम कह सकते हैं कि वे सीमा के भीतर आ गए। उनकी सुगंध उनके पहले ही चली आती है। सैकड़ों बार लोगों ने प्रयोग करके देखे।
जब कृष्ण कहते हैं, पृथ्वी में मैं पवित्र सुगंध, तो सिर्फ सुगंध नहीं कहते, नहीं तो गुलाब के फूल की सुगंध काम कर जाती। पवित्र सुगंध फूल में पैदा नहीं होती। पवित्र सुगंध तो मनुष्य नाम के फूल में पैदा होती है कभी- कभी। वही हूं मैं अर्जुन। बहुत रेयर फिनामिनन है। मुश्किल से कभी घटता है। लेकिन घटता है। और एक शरीर में घट सकता है, तो सब शरीर में घटने की खबर लाता है।
तो कहते हैं, पृथ्वी में मैं पवित्र सुगंध। चंद्र-ताराओं में, सूरज में, ग्रहों में--आभा, प्रकाश।
इसे भी थोड़ा ख्याल में ले लें। क्योंकि आप कहेंगे, प्रकाश तो बड़ी दृश्य बात है।
नहीं। प्रकाश बहुत अदृश्य घटना है। आप कहेंगे, सरासर कैसी बात मैं कह रहा हूं! आपने देखा है प्रकाश। अभी देख रहे हैं। सुबह सूरज निकलता है, आप प्रकाश देखते हैं। आपसे प्रार्थना करता हूं, पुनर्विचार करना। आपने प्रकाश अभी तक नहीं देखा है; केवल प्रकाशित चीजें देखी हैं। प्रकाश आपने कभी नहीं देखा। प्रकाश को देखना असंभव है। प्रकाश अदृश्य चीज है।
जब आप कहते हैं, प्रकाश है, तो उसका कुल मतलब इतना होता है कि चीजें दिखाई पड़ रही हैं। और कोई मतलब नहीं होता। और जब चीजें नहीं दिखाई पड़तीं, आप कहते हैं, अंधेरा है। आपको बल्ब दिखाई पड़ रहा है। बल्ब एक चीज है। मैं दिखाई पड़ रहा हूं। यह टेबल, कुर्सी, तख्त दिखाई पड़ रहा है; ये सब चीजें हैं। आपको प्रकाश नहीं दिखाई पड़ रहा है; केवल प्रकाशित चीजें दिखाई पड़ रही हैं। प्रकाश जिनके ऊपर आकर लौट रहा है, वे लोग दिखाई पड़ रहे हैं। प्रकाश आपको दिखाई नहीं पड़ रहा है। प्रकाश आज तक किसी मनुष्य को साधारणतः दिखाई नहीं पड़ा है, जिस तरह हम सोचते हैं। प्रकाश अदृश्य चीज है।
तो कृष्ण कहते हैं, सूर्यों, ताराओं, चंद्रों में मैं प्रकाश। सूरज नहीं, चांद नहीं, तारा नहीं; जो तुम्हें दिखाई पड़ता है, वह नहीं। मैं वह प्रकाश हूं, जिसके कारण तुम्हें दिखाई पड़ता है, लेकिन जो तुम्हें कभी दिखाई नहीं पड़ता। प्रकाश अदृश्य उपस्थिति है। सिर्फ प्रेजेंस है। कभी दिखाई नहीं पड़ता।
आप सोचते होंगे, अंधे को नहीं दिखाई पड़ता। मैं कह रहा हूं, आंख वालों
को भी प्रकाश नहीं दिखाई पड़ता। अंधे और आंख वालों में फर्क यह नहीं है कि एक को प्रकाश दिखाई पड़ता, और एक को प्रकाश नहीं दिखाई पड़ता। फर्क इतना है, एक को प्रकाशित चीजें दिखाई पड़ती हैं, एक को प्रकाशित चीजें नहीं दिखाई पड़तीं। प्रकाश तो दोनों को नहीं दिखाई पड़ता है।
प्रकाश तो उसे दिखाई पड़ता है, जो इन आंखों को छोड़कर भीतर की और भी अंतरतम की आंखें हैं, उनको खोलता है, उसे प्रकाश दिखाई पड़ता है। फिर चांद-तारे नहीं दिखाई पड़ते। यह भी बड़े मजे की बात है।
जब तक चांद-तारे दिखाई पड़ते हैं, तब तक प्रकाश दिखाई नहीं पड़ता; और जिस दिन प्रकाश दिखाई पड़ता है, उस दिन चांद-तारे दिखाई नहीं पड़ते। उस दिन यह सारा जगत प्रकाश ही रह जाता है। फिर कोई प्रकाशित वस्तु नहीं रह जाती; कोई आब्जेक्ट नहीं रह जाता। सिर्फ प्रकाश का सागर, सिर्फ अनंत प्रकाश। न कोई सूर्य जिससे निकलता है, न कोई और विषय जिस पर पड़ता है, सिर्फ प्रकाश ही प्रकाश रह जाता है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, चांद-ताराओं में, सूर्यों में अर्जुन, तू मुझे प्रकाश जान। चांद-तारे तुझे दिखाई पड़ते हैं, मैं तुझे दिखाई नहीं पड़ता।
तपस्वियों में तेज।
सोचने जैसा है, तपस्वियों में तेज! तपस्वी तो दिखाई पड़ते हैं सभी को।
और तपस्वी को देखना बहुत कठिन नहीं है। बड़ी छोटी परीक्षाएं हैं, उससे पता चल जाता है। आदमी उपवास कर रहा है; कि एक टांग पर खड़ा है; कि कांटे बिछाए है; कि शरीर को सता रहा है, धूप में खड़ा है; कि पानी में गला रहा है शरीर को। तपस्वी दिखाई पड़ जाता है। लेकिन कृष्ण कहते हैं, मैं तपस्वी नहीं हूं; तपस्वियों में तेज!
यह तेज क्या है? आमतौर से हम सबने अपनी-अपनी घरेलू व्याख्याएं कर रखी हैं। तेज से हम क्या मतलब समझते हैं? हम समझते हैं कि चेहरे पर कुछ रौनक दिखाई पड़े, तो तेज हो गया। कि स्वास्थ्य दिखाई पड़े, तो तेज हो गया। कि आदमी शक्तिशाली दिखाई पड़े, तो तेज हो गया।
जो आपको दिखाई पड़े, वह तो तेज होगा ही नहीं। क्योंकि कृष्ण बात कर रहे हैं अदृश्य की। तपस्वियों में तेज! इसकी खोज की विधि है।
अगर किसी तपस्वी में तेज देखना हो, तो तपस्वी पर ध्यान करना पड़ता है। महावीर बैठे हैं आपके सामने, आप भी उनके सामने बैठ गए हैं और महावीर को देखें। कि बुद्ध बैठे हैं। देखें, और देखते चले जाएं अपलक। एक ऐसी घड़ी आएगी कि महावीर खो जाएंगे, सिर्फ तेज-पुंज रह जाएगा। तभी आप समझना। अन्यथा नहीं। महावीर बचेंगे ही नहीं। कोई रूपरेखा न बचेगी। कोई शरीर, देह न दिखाई पड़ेगी। आदमी खो जाएगा बिल्कुल, सिर्फ तेज-पुंज रह जाएगा, सिर्फ आभा।
और ऐसी आभा, जिसमें स्रोत नहीं होता। दीए में आभा होती है, तो दीए में स्रोत होता है। उसके चारों तरफ आभा होती है, एक सेंटर होता है। तेज अगर महावीर में दिखाई पड़ेगा, तो उसमें कोई न दीया होगा, न तेल होगा, न बाती होगी, न कोई स्रोत होगा। सिर्फ केंद्ररहित परिधि होगी।
इसलिए हम महावीर, बुद्ध, कृष्ण और क्राइस्ट और नानक और कबीर के आस-पास सिर के वह जो गोल घेरा बनाते हैं, वह कोई कैमरे की पकड़ में आने वाली चीज नहीं है।
और बड़े मजे की बात है। हम जो भी करते हैं, वह गलत ही करते हैं। असल में
हम इतने गलत हैं कि हमसे ठीक कुछ हो नहीं सकता। अगर वह गोल घेरा बनाना हो, तो कृपा करके भीतर महावीर को खड़ा मत करो, सिर्फ गोल घेरा रहने दो। क्योंकि दोनों घटनाएं एक साथ कभी नहीं घटीं। जिनको महावीर दिखाई पड़े, उनको वह आभा नहीं दिखाई पड़ी। और जिनको आभा दिखाई पड़ी, उनको महावीर दिखाई नहीं पड़े। ये दोनों एक साथ नहीं घटतीं। यह असंभव है। ये कभी घटती ही नहीं। क्योंकि वह आभा दिखाई ही तब पड़ती है, जब आकार खो जाता है।
तो तपस्वियों में मैं तेज!
तपश्चर्या नहीं उन्होंने कहा। महात्माओं के साथ बड़ी ज्यादती कर दी। कहना चाहिए था, तपस्वियों में तपश्चर्या। लेकिन कहा, तपस्वियों में तेज। कितनी ही तपश्चर्या करो, अगर वह अनुभव की स्थिति नहीं आती, जहां कि मैं बिल्कुल खो जाता है और सिर्फ प्रकाश का पुंज रह जाता है। आपसे मैंने कहा, आप देखो महावीर को, यह तो आपकी बात है। आप तो कभी देखोगे, बहुत मेहनत करोगे, तब दिखाई पड़ेगा।
लेकिन जहां तक महावीर का संबंध है, जिस दिन से ज्ञान हुआ, कोई चालीस साल की उम्र में, उसके बाद वे चालीस साल और जिंदा थे। फिर चालीस साल वे जो जिंदा थे, उसमें वे शरीर नहीं थे। उसमें वे सिर्फ एक प्रकाशपुंज थे, जो चल रहा था, डोल रहा था; आ रहा था, जा रहा था; बोल रहा था, सो रहा था; उठ रहा था, बैठ रहा था। लेकिन उसमें फिर कोई शरीर नहीं था।
जिस दिन बुद्ध मरे, किसी ने उनसे पूछा कि मरने के बाद आप कहां होंगे?
तो बुद्ध ने कहा कि चालीस साल से मैं जहां था, वहीं। पर उन्होंने कहा कि नहीं, हम कैसे मानें! क्योंकि शरीर तो आपका खो जाएगा। और इस देह को तो हमें जला देना पड़ेगा, गड़ा देना पड़ेगा। यह तो मिट्टी हो जाएगी। तो बुद्ध ने कहा, मेरे लिए तो यह चालीस साल पहले खो चुकी है। चालीस साल से तो मैं सिर्फ एक शून्य की भांति, एक बातीरहित दीए की भांति, एक प्रकाश की भांति जी रहा हूं।

और अब मेरे मिटने का कोई उपाय नहीं, क्योंकि जो भी मिट सकता था, वह मिट चुका है। और अब तो मौत आए कि महामृत्यु, जो है, वह रहेगा।
तेज अमृतत्व है; शरीर मरणधर्मा है। तपस्वियों में तेज, उसका अर्थ है, तपस्वियों में वह, जो कभी नहीं मरता। लेकिन आपने अगर चेहरे पर रौनक देखी, वह तो मर जाएगी तपस्वी के साथ। अगर शरीर में थोड़ी लाली दिखाई पड़ी है, तो वह तो जरा इंजेक्शन लगाकर खून बाहर निकाल लो, तो निकल जाएगी। उससे तेज का कोई संबंध नहीं है।
तेज एक बहुत आकल्ट, एक गुप्त रहस्य है। और उसको देखने की विधियां हैं।
और जब तक वह न दिखाई पड़े, तब तक कोई तपस्वी नहीं है। तप कितना ही करे कोई। महावीर के पास भिक्षु आएंगे, साधक आएंगे; बुद्ध के पास आएंगे। बुद्ध उनको देखेंगे और कहेंगे कि तुम तपश्चर्या कर रहे हो, वह ठीक; लेकिन अभी तपस्वी नहीं हुए। क्या मापदंड है जानने का?
जानने का एक ही मापदंड है, बुद्ध जैसे आदमी, जैसे ही आंख किसी पर डालते हैं वे, तत्काल दिखाई पड़ता है कि तेज है या नहीं। वही तेज, जानने का माध्यम है। और कोई जानने का माध्यम नहीं है। और कोई मेजरमेंट का उपाय भी नहीं है कि किस आदमी को ज्ञान उपलब्ध हो गया।
बुद्ध कह देते हैं, फलां आदमी को ज्ञान उपलब्ध हो गया; फलां आदमी को ज्ञान उपलब्ध हो गया। लोग उनसे आकर पूछते हैं कि आपने उस आदमी को ज्ञान-उपलब्ध कह दिया! वह तो अभी छः दिन पहले आया था। मैं तो छः साल से तपश्चर्या कर रहा हूं। आपने मेरी अभी तक घोषणा नहीं की! तो बुद्ध कहते हैं, अभी तुम ठहरो, अभी तुम तपश्चर्या ही कर रहे हो। अभी तेज पैदा नहीं हुआ है।
उस तेज की बात है। कृष्ण कहते हैं, तपस्वियों में तेज।
एक-एक चीज में वे अदृश्य का इशारा करते हैं। कहते हैं, आकाश में शब्द। आकाश दिखाई पड़ता है, आकाश में सब चीजें दिखाई पड़ती हैं, सिर्फ एक शब्द दिखाई नहीं पड़ता। ख्याल किया आपने! आकाश दिखाई पड़ता है, विस्तार, एक्सपैंशन। और आकाश में सब चीजें दिखाई पड़ती हैं, शब्द दिखाई नहीं पड़ता। फिर भी आकाश शब्दों से भरा हुआ है; शब्द से भरा हुआ है। शब्द की तरंगों से भरा हुआ है।
अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि आज नहीं कल, कृष्ण ने जो गीता कही है, वह
हम फिर पकड़ लेंगे यंत्रों के द्वारा। क्योंकि अगर वह कभी भी कही गई है, तो शब्द कभी मरता नहीं; वह मौजूद है। हम उसको पकड़ लेंगे। जरा वक्त लगेगा। अगर दिल्ली से एक शब्द बोला जाता है रेडियो स्टेशन पर, और आठ सेकेंड
या दस सेकेंड बाद बंबई में पकड़ा जा सकता है। अगर दस सेकेंड बाद पकड़ा जा सकता है, तो दस साल बाद पकड़ने में कोई वैज्ञानिक बाधा नहीं है, दस करोड़ साल बाद पकड़ने में कोई वैज्ञानिक बाधा नहीं है। चाहे हम अभी जल्दी यंत्र बना पाएं या न बना पाएं। दिल्ली में बोला गया शब्द या लंदन में बोला गया शब्द अगर एक क्षण के बाद भी बंबई में पकड़ा जाता है, तो उसका मतलब यह है कि शब्द जब पैदा होता है, उसके बाद मर नहीं जाता; होता है। और जब वह आपके बंबई से गुजर गया, तब भी मर नहीं जाता; तब भी मौजूद होता है। सूक्ष्म होता चला जाता है; सूक्ष्म होता चला जाता है; सूक्ष्म होता चला जाता है।
यह सारा अस्तित्व शब्दों की पर्तों से भरा हुआ है। अदृश्य पर्तें हैं। इस जगत में जो भी शब्द कभी बोला गया है, वह रिकार्डेड है। वह रिकार्ड के बाहर कभी नहीं जा सकता।
इसलिए धर्म कहता है, ऐसा कोई बुरा शब्द मत बोलना, जो तुम्हारा रिकार्ड
बन जाए। क्योंकि वह अनंत यात्रा तक तुम्हारा रिकार्ड होगा। उससे बच नहीं सकते हो फिर। उससे बचने का कोई उपाय नहीं है। वह आपकी कथा है। कोई खाता-बही लिए हुए नहीं बैठा है परमात्मा कि उसमें लिख रहा है कि फलां आदमी ने क्या बोला। यह अस्तित्व शब्द को विनाश नहीं करता। अस्तित्व शब्द को पी जाता है और समाहित कर लेता है।
कृष्ण कहते हैं, आकाश में मैं शब्द।
सर्वाधिक आकाश में व्याप्त जो वस्तु है, वह शब्द है और सबसे कम दिखाई पड़ती है। इसलिए गलत बोलने से तो बेहतर है, चुप रह जाना, न बोलना। तो न बोलना रिकार्ड में रहेगा कि यह आदमी मौन था। जरूरी नहीं है कि मौन में जो आदमी

था, वह अच्छा ही आदमी रहा हो। लेकिन इतना तो कम से कम पक्का है कि सक्रिय रूप से बुरा नहीं था।
सुना है मैंने कि एक जहाज पर जो आदमी पहरेदारी का काम करता था, नया-नया आदमी, वह पहरेदारी कर रहा था। पहरेदारी के बाद दूसरे दिन उसने देखा, तो कैप्टन ने जहाज के उसके रिकार्ड में लिखा हुआ है कि यह आदमी आज शराब पीए हुए था। रिकार्ड सारा खराब हो गया।
आठ दिन बाद--वह आदमी चुपचाप रहा--आठ दिन बाद कैप्टन ड्यूटी पर था, तो उस आदमी ने जाकर रिकार्ड की किताब में लिखा कि आज कैप्टन शराब नहीं पीए हुए है। आज कैप्टन शराब नहीं पीए हुए है! लिखा तो यही कि नहीं पीए हुए है, लेकिन पता उससे सिर्फ इतना ही चलता है कि बाकी छः दिन पीए रहा होगा।
आप चुप हैं, इससे कुछ पक्का पता नहीं चलता कि आप अच्छे ही आदमी हैं। छः दिन पता नहीं क्या रहे हों! बुरे होने की वजह से ही चुप रहे हों। लेकिन एक बात तय है कि कम से कम निष्क्रिय हैं।
शुभ शब्दों को बोलने के लिए बड़े प्रयास किए गए हैं। मुझे अपने बचपन की
एक स्मृति है, जो कभी नहीं भूलती। मेरे गांव में जिस आदमी का मुझे सबसे पहला स्मरण है, और शायद मरते वक्त सबसे आखिरी स्मरण रहेगा; उस आदमी का मुझे नाम भी पता नहीं; क्योंकि बहुत छोटा था, तभी वह आदमी मर गया। एक ही बात स्मरण है कि वह आदमी अपने घर से नदी तक स्नान करने सुबह जाता था, तो घर से नदी तक का फासला पैदल चलने में मुश्किल से पांच मिनट का था। लेकिन उसको नदी तक पहुंचने में दो घंटे लगते थे। नदी में स्नान करने में मुश्किल से, वह जिस ढंग से स्नान करता था, पांच मिनट से ज्यादा लगने की कोई जरूरत न थी। लेकिन नदी में उसको स्नान करने में दो घंटे लगते थे। घर लौटने में पांच मिनट का फासला था, लेकिन फिर दो घंटे लगते थे। असल में उस आदमी की जिंदगी सुबह और शाम नहाने में जाती थी। सुबह छः घंटे नहाने में, और शाम छः घंटे नहाने में! मामला क्या था?
मामला यह था कि वह आदमी घर से निकला कि बस, बच्चों की और लोगों की भीड़ उसके चारों तरफ! और लोग चिल्ला रहे हैं, राधेश्याम! राधेश्याम! और वह पत्थर फेंक रहा है। नाराज हो रहा है। चिल्ला रहा है। दौड़ रहा है। राधेश्याम का दुश्मन था। कहता कि कहो, राम! और लोग चिल्लाते, राधेश्याम! बस, दो घंटे उसको नदी तक जाने में लगते।
तो वह नहा रहा है, और लोग चिल्ला रहे हैं। और वह बीच-बीच में निकलकर आ रहा है, आधा नहाया हुआ। वह कपड़ा धो रहा है, और लोग चिल्ला रहे हैं। और भीड़ लगी है, और वह भाग रहा है! न वह कपड़ा धो पाता है, न वह नहा पाता है। उसकी मुझे याद है।
मैं भी उसके पीछे बहुत बार नदी तक उसे छोड़ने गया हूं, और नदी से उसको वापस घर तक लाया हूं। उसके पीछे मेरे भी छः घंटे बहुत दफे खराब हुए हैं। लेकिन धीरे-धीरे मुझे ख्याल आना शुरू हुआ कि वह आदमी हाथ में पत्थर भी उठाता है, मारने को दौड़ता भी है, लेकिन जब भी राधेश्याम कहो, तो उसकी आंखों में कोई चमक आ जाती है। तब मुझे शक पैदा हुआ।
गांवभर में खबर थी कि वह राम का भक्त है। वह गया था एक दिन नदी। मैं अपने टेंपटेशन को रोककर--क्योंकि उस आदमी को नदी तक पहुंचाना बड़ा टेंपटेशन था--किसी तरह रोककर, वह नदी गया; मैं चोरी से उसकी दीवाल को छलांग लगाकर उसके घर में गया। अपने घर में वह किसी को कभी घुसने नहीं देता था। कहते हैं, जिस दिन वह मरा, उसी दिन लोग उसके घर में घुसे। वर्षों से उसके दरवाजे से किसी ने भीतर प्रवेश नहीं किया था।
मैंने जाकर उसके घर के भीतर देखा, तो राधाकृष्ण की मूर्ति उसके घर में रखी है, और फूल चढ़े हैं! फिर मैं वहीं बैठा रहा। उस आदमी ने आकर दरवाजा खोला। मुझे भीतर देखकर तो एकदम पागल हो गया। उसने कहा, भीतर कैसे आए? क्योंकि मेरे घर में कभी मैंने किसी को प्रवेश नहीं करने दिया। मैंने उससे कहा कि अब तो मैं भीतर आ गया। और अब चाहें तो बाहर निकाल दें। लेकिन राज मेरे हाथ में आ गया है।
उस आदमी की आंखों में आंसू आ गए। उसने कहा, इस गांव में इतने लोग हैं, लेकिन किसी ने कभी मेरे हृदय में भीतर प्रवेश करके नहीं देखा। मैं सिर्फ इसीलिए नाराज होता हूं कि लोग राधेश्याम का नाम ही ले लें। मेरी जिंदगी

इसी में बीत रही है। लेकिन मैं प्रसन्न हूं। क्योंकि मैं जानता हूं कि शब्द के जगत में मैंने बहुत-से राधेश्याम की ध्वनियों को संगृहीत करवा दिया है। और कोई मुझे चिढ़ाने को ही नाम लेता होगा राधेश्याम का, तो भी लेता तो राधेश्याम का ही नाम है। अभी चिढ़ाता रहेगा, चिढ़ाता रहेगा, चिढ़ाता रहेगा; किसी दिन... । आखिर तुम भी तो चिढ़ाते-चिढ़ाते नदी छोड़कर-छोड़कर एक दिन मेरे घर के भीतर आ गए हो।
वह आदमी जिस दिन मरा, उसी दिन गांव को पता चला। लेकिन उसने मुझसे प्रार्थना की, और मेरे पैर पकड़कर प्रार्थना की। मैं तो बहुत छोटा था, वह तो बूढ़ा था। उसने पैर पकड़कर प्रार्थना की कि तुम आ गए, सो ठीक। जब भी आना हो, दीवाल कूदकर आ जाना। लेकिन किसी को बताना मत कि मेरे घर में राधेश्याम की प्रतिमा है। नहीं तो गांव में खबर हो गई, तो मुझे कोई चिढ़ाएगा नहीं। बात ही समाप्त हो जाएगी। इस राज को राज ही रहने देना, जब तक मैं मर न जाऊं!
बुद्ध कहते थे अपने भिक्षुओं से कि प्रार्थना शुरू करना, जगत के मंगल
की कामना के साथ। प्रार्थना पूरी करना, जगत के मंगल की कामना के साथ। शायद प्रार्थना तो बेकार चली जाए, लेकिन मंगल का जो उदघोष है, वह रिकार्ड हो जाएगा। क्योंकि प्रार्थना तो बेकार जा सकती है, उसको तो करने वाले की सामर्थ्य चाहिए, लेकिन मंगल का उदघोष तो कोई भी कर सकता है।
आकाश में मैं शब्द। सूक्ष्मतम जो आकाश में संगृहीत होता है रूप-- अदृश्य, अरूप कहना चाहिए--वह है शब्द, वह मैं हूं।
वेदों में ओंकार।
वेद में कितना क्या है! कहा जाए, करीब-करीब सब कुछ है। जो जगत में धर्म
की दिशा में जो भी खोजा गया है, करीब-करीब सब है। लेकिन उस सबको छोड़कर कृष्ण कहते हैं, वेदों में ओंकार, सिर्फ ओम। बस, उतना हूं मैं। बाकी मैं नहीं हूं। बाकी तो सब जगत है। सिर्फ ओम!
अगर कृष्ण से पूछा जाए, तो वे कहेंगे, सब शास्त्र नष्ट हो जाएं, अकेला
ओम बच जाए, तो सब शास्त्र बच गए। और सब शास्त्र बच जाएं, अकेला ओम खो जाए, तो सब शास्त्र खो गए।
और बड़े मजे की बात है, यह ओम बिल्कुल ही अर्थहीन शब्द है, मीनिंगलेस। इसमें कोई अर्थ नहीं है। इसमें कोई फिलासफी, कोई दर्शन नहीं है। यह शब्द एक अर्थ में बिल्कुल एब्सर्ड है; इसमें कुछ अर्थ नहीं है। और कृष्ण इतना मोह दिखलाते हैं कि वेदों में ओंकार! बस, वेद में मैं ओम हूं! क्यों? बहुत पूरी प्रक्रिया है। थोड़ी-सी बात आपसे कह दूं।
इस एक छोटे-से शब्द में, ओम में, भारत ने समस्त मंत्र-योग की साधना को बीज की तरह बंद कर दिया। जैसे आइंस्टीन का रिलेटिविटी का फार्मूला है, छोटा-सा, दो-तीन शब्द, दो-तीन अक्षर--पूरा हो जाता है। ऐसे भारत ने जो भी अंतर-जीवन में अनुभव किया है, और जितनी विधियां मनुष्य ने विकसित की हैं सत्य की तरफ यात्रा करने की, वे सब की सब बीज-मंत्र की तरह ओम में रख दी हैं।
यह ओम अ, उ और म, इन तीन मूल ध्वनियों का जोड़ है। सारे शब्दों का विस्तार ओम का विस्तार है। सब वेदों में ओम। ओम होगा, तो सब वेद पुनः निर्मित हो सकते हैं। सीक्रेट-की आपके हाथ में है। ये तीन अ, उ और म, अगर ये तीन हों, तो जगत के सब शास्त्र निर्मित हो सकते हैं। लेकिन सब शास्त्र बच जाएं और कुंजी खो जाए, तो सब शास्त्र बेकार हो जाएंगे। ताले रह जाएंगे, चाबी खो गई।
विज्ञान भैरव में शिव ने पार्वती को कहा है कि तू ज्यादा न पूछ। ज्यादा में तुझे अड़चन होगी। थोड़े में तुझे कह दूं। अ उ म--यह जो ओम है, इसमें तू अ को भी भूल जा; इसमें तू म को भी भूल जा; वह जो बीच में बचता है, ओम के बीच में; अ भी छूट जाए, म भी छूट जाए, वह जो बीच में बचता है उ, उस उ में तू डूब जा। तो मैं तुझे उपलब्ध हो जाऊंगा।
यह तो टेक्नीक की बात है। अगर आप उ में डूब सकें... । आप कभी जोर से कहें
उ, तो आपको पता चलेगा कि पूरी नाभि भीतर सिकुड़ गई। जितने जोर से उ कहेंगे, उतने ही जोर से नाभि पर जोर पड़ेगा। और नाभि जीवन का मूल ऊर्जा-स्रोत है। उसको ठीक टैप करना जिसको आ जाए... । ओम, उसको ही हैमर, उसको ही चोट पहुंचाने की तरकीब है। और उस पर जो विधिवत चोट पहुंचा दे, वह जीवन की ऊर्जा उठनी

शुरू हो जाती है। कुंडलिनी जागने लगती है। ऊपर की यात्रा पर आदमी निकल जाता है।
सुना है मैंने कि एक छोटे-से गांव में एक बहुत बड़े कारखाने में एक नई मशीन लगाई गई। महीनेभर ठीक चली और फिर अचानक बंद हो गई। कोई खराबी भी न थी। कोशिश करके हार गए इंजीनियर उस कारखाने के, लेकिन कोई रास्ता न निकला। फिर तो बड़े शहर से, राजधानी से विशेषज्ञ को बुलाना पड़ा। हजार रुपया उसके आने- जाने का खर्च हुआ।
वह विशेषज्ञ आया; एक छोटी-सी हथौड़ी उसने अपनी पेटी में से निकाली और मशीन को तीन जगह, ठक ठक ठक--तीन जगह उसने किया; मशीन चल पड़ी।
मालिक ने कहा कि बड़ी कृपा आपकी। आपका बिल क्या हुआ? उसने लिखा, एक हजार रुपया। मालिक ने कहा, मजाक तो नहीं कर रहे आप? तीन जगह ठक ठक ठक करने का एक हजार रुपया? आइटमवाइज बिल बनाइए। आपने और तो कुछ किया भी नहीं। ठक ठक ठक! इसमें पहली ठक का कितना रुपया, दूसरी ठक का कितना रुपया, तीसरी ठक का कितना रुपया? आंख से मैं देख रहा हूं।
उस आदमी ने बिल बनाया। उसने लिखा कि तीन ठकों का एक रुपया, टैपिंग-- रुपी वन। एंड नोइंग व्हेयर टु टैप--रुपीज नाइन हंड्रेड नाइनटी नाइन। कहां--उसके नौ सौ निन्यानबे रुपए; और जहां तक ठोंक का सवाल है, एक रुपए से चल जाएगा। और उसने नीचे लिखा कि अगर आपको ज्यादा तकलीफ हो रही हो, तो टैपिंग का आप छोड़ भी सकते हैं। वह एक रुपया न भी दें। बाकी नोइंग व्हेयर टु टैप... ।
ओम जो है, वह सीक्रेट है समस्त वेदों का। वह व्यक्ति के भीतर जो परमात्मा की ऊर्जा बीज में छिपी है, उसको टैप करने की तरकीब है; उसको चोट करने की तरकीब है।
तो कृष्ण कहते हैं, वेदों में ओंकार। ऐसा मैं अदृश्य हूं। ऐसे दृश्य में तू मुझ अदृश्य को खोज।
आज इतना ही।
लेकिन कोई उठेगा नहीं। थोड़ी टैपिंग! थोड़ी आपके भीतर छिपी ऊर्जा को यह संकीर्तन करके थोड़ा चोट पहुंचाएं। आप से नौ सौ निन्यानबे रुपए नहीं लिए जाएंगे। वे भी छोड़ दिए जाते हैं। रुपया तो छोड़ा ही, नौ सौ निन्यानबे भी छोड़ते हैं। लेकिन आप बैठे रहें पांच मिनट।
और बैठे न रहें; ताली बजाएं। गाएं। डोलें। आनंदित हों।

गीता दर्शन, भाग तीन
गीता दर्शन अध्याय 7
चौथा प्रवचन

आध्यात्मिक बल

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्।। 10।।
बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम्।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।। 11।।
हे अर्जुन, तू संपूर्ण भूतों का सनातन कारण मेरे को ही जान। मैं बुद्धिमानों की बुद्धि और तेजस्वियों का तेज हूं।
और हे भरत श्रेष्ठ, मैं बलवानों का आसक्ति और कामनाओं से रहित बल अर्थात सामर्थ्य हूं, और सब भूतों में धर्म के अनुकूल अर्थात शास्त्र के अनुकूल काम हूं।

परमात्मा स्वयं अपना परिचय देना चाहे, तो निश्चित ही बड़ी कठिन बात है। आदमी भी अपना परिचय देना चाहे, तो कठिन हो जाती है बात। और परमात्मा अपना देना चाहे, तो और भी कठिन हो जाती है।
एक तो इसलिए कठिन हो जाती है कि परमात्मा भी अपना स्वयं परिचय दे, तो सदा ही अधूरा होगा; पूरा नहीं हो सकता। अस्तित्व इतना विराट है, और शब्द इतने छोटे पड़ जाते हैं। परमात्मा भी कहना चाहे, तो कहकर पाएगा कि जो कहना था, वह नहीं कहा जा सका है। कहना चाहा था, वह छूट गया है। और जो कहा गया है, वह बहुत दूर की खबर लाता है।
कृष्ण को भी वैसी ही कठिनाई है। और जब भी किसी व्यक्ति के भीतर से परमात्मा ने स्वयं को अभिव्यक्त किया है, तब सदा ही ऐसी ही कठिनाई हुई है। कृष्ण की पीड़ा हम समझ सकते हैं। वे जो उदाहरण ले रहे हैं, वे जिन बातों के सहारे समझाने चल रहे हैं, वे बातें बहुत साधारण हैं। लेकिन इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं, कोई विकल्प नहीं। आदमी से बात करनी हो, तो आदमी की भाषा में ही बात करनी पड़ेगी।
इशारे करते हैं। इशारों से ज्यादा नहीं है यह बात। और जो आदमी इशारे
को पकड़ लेगा, वह भटक जाएगा। और हम सबकी आदत इशारों को पकड़ने की है। हम मील के पत्थरों को छाती से लगाकर बैठ जाते हैं, यह सोचकर कि यह मंजिल हुई। हालांकि हर मील का पत्थर, केवल एक तीर का इशारा है आगे की तरफ, कि मंजिल आगे है।
और मैं चांद को अंगुली से बताऊं, तो बहुत डर है कि अंगुली पकड़ ली जाए
और चांद समझ ली जाए। यद्यपि अंगुली चांद नहीं है; लेकिन अंगुली चांद की तरफ इशारा कर सकती है। लेकिन यह इशारा उसी की समझ में आएगा, जो अंगुली को छोड़ दे और भूल जाए, और चांद की तरफ देखे। और मैंने अंगुली उठाई चांद की तरफ, और आपने सोचा कि शायद मैं अंगुली उठा रहा हूं, तो अंगुली में कुछ होगा। और आप मेरी अंगुली से अटक गए, तो आप चांद तक कभी भी न पहुंच पाएंगे।
अंगुली चांद को बताती है, चांद नहीं है। उसे छोड़ ही देना पड़ेगा। उसे भूल ही जाना पड़ेगा। उसे तो बिल्कुल पीछे छोड़कर जब आंख आकाश की तरफ उठेगी, वहां तो कोई अंगुली न होगी, वहां तो चांद होगा।
तो कृष्ण ये जो बातें कह रहे हैं, वे अंगुलियां हैं। अधूरे इशारे हैं, आंशिक। उनमें सूचना है। जो उनको पकड़ लेगा, वह खतरे में पड़ेगा। जो उनको छोड़ देगा, उनके ऊपर उठेगा, पार जाएगा, वह इशारे को समझने में समर्थ हो सकता है। कल रात्रि भी उन्होंने कुछ इशारे किए। उसमें एक इशारा छूट गया था, वह
भी हम बात कर लें।
उन्होंने कहा, पुरुषों में मैं पुरुषत्व हूं।
पुरुषों में पुरुषत्व, पुरुष नहीं। पुरुषत्व क्या है? यह संस्कृत का शब्द बहुत कीमती है। और इस शब्द की थोड़ी-सी पर्तों को उघाड़ना जरूरी है। हम सभी जानते हैं कि पुर कहते हैं नगर को, बस्ती को। जिन्होंने पुरुष शब्द का उपयोग किया है, उन्होंने कहा है कि यह आदमी तो एक नगर है, एक पुर

है। और इसके भीतर एक मालिक बस रहा है, वह पुरुष है। इस नगरी के भीतर जो छिपा है, वह।
तो पुरुष से अर्थ, स्त्री के विपरीत जो है, वैसा नहीं है। पुरुष का अर्थ मेल नहीं है। पुरुष तो स्त्री के भीतर भी है। स्त्री और पुरुष, जैसा हम प्रयोग करते हैं, ये तो नगर की खबर देते हैं। स्त्री की बस्ती अलग है, उसका शरीर अलग है। और जिसे हम पुरुष कहते हैं, उसकी भी बस्ती अलग है और शरीर अलग है। लेकिन भीतर जो बस रहा है पुरुष, उस नगर के बीच में जो बस रहा है मालिक, वह एक है।
इसलिए कई को यह ख्याल हो सकता है कि कृष्ण ने स्त्रियों की जरा भी बात
न कही। कुछ तो कहना था कि स्त्रियों में मैं कौन! ज्यादती मालूम पड़ती है। सबकी बात कर रहे हैं, और स्त्री कोई छोटी घटना नहीं है कि उसकी बात छोड़ी जा सके। जिसे हम पुरुष कहते हैं, उससे तो थोड़ी बड़ी ही घटना है। क्योंकि जीवन के इस सृजन में पुरुष तो सांयोगिक है, एक्सिडेंटल है; स्त्री आधारभूत है। लेकिन कृष्ण ने स्त्री की बात नहीं की, जानकर, क्योंकि पुरुष में स्त्री सम्मिलित हो गई है। अगर नगर की बात करते, तो फासला था स्त्री और पुरुष का। वे तो उसकी बात कर रहे हैं, जो नगर के बीच में बसा है। स्त्री के भीतर भी वह पुरुष है; पुरुष के भीतर भी वह पुरुष है।
फिर भी पुरुष की बात नहीं कर रहे हैं। कह रहे हैं, पुरुषों में पुरुषत्व। जैसे कि हजारों फूल को निचोड़कर हम थोड़ा-सा इत्र बना लें। ऐसा ही समस्त पुरुष जहां-जहां हैं, उनके भीतर जो पुरुषत्व है, वह जो निचोड़ है, वह जो इत्र है, वह मैं हूं।
यह भी सोचने जैसा है। क्योंकि जब हम कहते हैं पुरुष, तो एक पर्टिक्युलर, एक विशेष व्यक्तित्व का ख्याल आता है। जब हम कहते हैं पुरुषत्व, तो युनिवर्सल, सार्वभौम सत्य का ख्याल आता है। जब हम कहते हैं पुरुष, तो सीमा बनती है; और जब हम कहते हैं पुरुषत्व, तो असीम हो जाता है। यूनान में प्लेटो ने जिसे आइडिया कहा है, प्रत्यय कहा है। पुरुषत्व
एक प्रत्यय है, एक आइडिया है। जब हम कहते हैं प्रेमी, तो एक सीमा बन जाती है। लेकिन जब हम कहते हैं प्रेम, तो सब सीमाएं टूट जाती हैं, तब असीम हो जाता है सब। जब हम कहते हैं पुरुष, तो एक रेखा खिंच जाती है चारों ओर। जब हम कहते हैं पुरुषत्व, तो विराट आकाश की तरह सब विस्तीर्ण हो जाता है। पुरुषत्व की कोई सीमा नहीं है। पुरुष आएंगे और जाएंगे, पुरुष बनेंगे
और मिटेंगे। पुरुषत्व तो शाश्वत है। शक्लें बदलेंगी, घर बदलेंगे, नगर बसेंगे और उजड़ेंगे। आज आपका एक नाम है, पिछले जन्म में दूसरा था, अगले जन्म में और तीसरा होगा। कितने-कितने पुरुष होने का आपको ख्याल पैदा होगा कि मैं यह हूं, मैं यह हूं, मैं यह हूं। लेकिन भीतर वह जो निर्गुण, वह जो भीतर निराकार है, वह एक है।
इसलिए भी कहा पुरुषत्व। जब हम लहरों की बात करते हैं, तो अक्सर डर होता है कि सागर कहीं भूल न जाए। कृष्ण यह कह रहे हैं कि लहरों में मैं सागर। लहर भला दिखाई पड़ती हो, लेकिन सिर्फ दिखाई पड़ती है, एपियरेंस है, सिर्फ एक आभास है। सत्य तो सागर है, जो नीचे है।
बड़ी मजे की बात है, सागर के किनारे जाएं, तो लहरें ही दिखाई पड़ती हैं, सागर कभी दिखाई नहीं पड़ता। अक्सर आप कहते हैं कि मैं सागर के दर्शन करके आ रहा हूं। लेकिन गलत कहते हैं। कहना चाहिए, लहरों के दर्शन करके आ रहा हूं। सागर तो दिखाई नहीं पड़ता। दिखाई तो लहरें पड़ती हैं। फिर भी आप कहते हैं कि सागर का दर्शन करके आ रहा हूं। इसी ख्याल से कि लहर की क्या गिनती करनी! लहर तो आप देख भी नहीं पाए और मिट गई होगी, और दूसरी बन गई। जो मिट गई लहर, उसमें भी जो था, और जो बन गई लहर, उसमें भी जो है--हालांकि वह आपको दिखाई नहीं पड़ा है। लेकिन आप खबर यही देते हैं कि मैं सागर के दर्शन करके आ रहा हूं।
तो कृष्ण लहरों की बात नहीं कर रहे हैं; वे सागर की बात कर रहे हैं। वे पुरुषों की बात नहीं कर रहे, पुरुषत्व की बात कर रहे हैं। जिसके ऊपर सारा खेल निर्मित होता है। एक रूप, दूसरा रूप, हजार रूप वह पुरुषत्व लेता चला जाता है; और फिर भी अरूप है। न मालूम कितने आकार बनते हैं और विसर्जित होते हैं, फिर भी वह निराकार है।

तो पुरुषों में मैं पुरुषत्व हूं!
इस सूत्र में भी उन्होंने कुछ बातें कही हैं, और कुछ कीमती बातें कही हैं। कहा है, वासना से रहित, काम से रहित वीरों का वीर्य हूं। वासना से रहित, कामना से रहित वीरत्व हूं, वीरता हूं।
आदमी वासना में डूबकर बड़े वीरता के कार्य कर सकता है। लेकिन कृष्ण कह रहे हैं कि मनुष्य के भीतर वह जो वीर्य की ऊर्जा घटित होती है, मैं तब वह हूं, जब वहां काम न हो, वासना न हो।
आपको ख्याल दिलाना चाहूंगा। महावीर का जन्म का नाम वर्द्धमान था। बाद में दिया गया नाम, महावीर। और महावीर नाम दिया गया, उस वीरता की वजह से, जिसकी कृष्ण चर्चा कर रहे हैं। महावीर किसी से लड़े नहीं। लड़ने की बात दूर, पांव फूंककर रखा कि कोई चींटी न दब जाए। किसी से कोई स्पर्धा न की, किसी से कोई प्रतियोगिता न की। कैसी वीरता है उनकी?
अगर महावीर को हम देखेंगे, तो उनके चारों तरफ कोई भी तो घटना घटती हुई मालूम नहीं पड़ती, जिसमें कि वीरता का पता चलता हो। न युद्ध के मैदान पर लड़ते हैं, न तलवारों-भालों के बीच में खड़े होते हैं। कैसे वीर होंगे! लेकिन इस मुल्क ने उनको महावीर कहा। इस मुल्क ने इस सूत्र की वजह से महावीर कहा। वासना बिल्कुल नहीं है, फिर एक वीर्य का नव उदय हुआ है। उस वीर्य को हम थोड़ा पहचानें कि वह कैसा है।
महावीर साधना में लगे। कठोर तपश्चर्या में डूबे। भूल गए जगत को, याद रखा अपने को ही। नग्न खड़े होते थे गांव के बाहर। लोग सताने लगे।
एक दिन सुबह ऐसी घटना हुई। एक ग्वाले ने आकर अपनी गायों को वहां चराने
के लिए छोड़ा। फिर उसे कुछ काम आ गया, तो उसने खड़े हुए महावीर से कहा कि सुनो! जरा मेरी गायों को देखते रहना, मैं अभी लौटकर आता हूं। जल्दी में था; उसने यह भी फिक्र न की कि यह नग्न खड़ा हुआ साधु कुछ बोला नहीं। या सोचा होगा कि मौन सम्मति का लक्षण है; चला गया।
दोपहर जब वापस लौटा, तो महावीर तो अपने दूसरे ही लोक में थे। लौटा, तब
तक गाएं चरती हुई दूर निकल गई थीं। महावीर से बहुत पूछा, वे कुछ न बोले। आंख बंद किए खड़े थे, खड़े रहे। सोचा कि या तो यह आदमी पागल है, या चालाक है। गाएं या तो चोरी चली गईं; इस आदमी का हाथ है कुछ। और या फिर यह आदमी पागल है, या गूंगा है, या बहरा है।
वह गायों को ढूंढ़ने गया, जंगलभर में घूम आया, लेकिन गाएं न मिलीं। और
जब सांझ महावीर के पास से निकलता था, तो गाएं चरकर लौट आई थीं और महावीर के पास वापस बैठी हुई थीं। तब तो पक्का शक हो गया। सोचा कि यह आदमी बेईमान है। मुझे धोखा दिया। गायों को छिपाए रहा। अब रात में लेकर निकल जाएगा।
उसने महावीर को गालियां दीं। मारा। कान में लकड़ियों की खूंटियां ठोंक दीं। क्योंकि यह देखकर कि तू समझ रहा है कि तू बहरा है; सुनता नहीं। तो हम तेरे बहरेपन को पूरा किए देते हैं! कान में उसने खूंटियां ठोंक दीं। खून, लहूलुहान, महावीर के कान से खून बहने लगा। वह खूंटियां ठोंककर अपनी गायों को लेकर चला गया।
मीठी कथा है कि देवता पीड़ित और परेशान हुए। और इंद्र ने आकर महावीर से कहा कि क्षमा करें! हमें आज्ञा दें, ताकि हम आपकी रक्षा कर सकें। ऐसा दुबारा न हो, अन्यथा बदनामी हमारी होगी कि भले लोग जमीन पर थे और महावीर के कान में खूंटियां ठोंक दी गईं! हमें आज्ञा दें।
महावीर ने आंख खोली और कहा, वह ग्वाला भी अपने ढंग से मुझे विचलित करने आया था; तुम अपने ढंग से मुझे विचलित करने आए हो। मुझे छोड़ दो मुझ पर। जो भी होना है, मुझ अकेले पर होने दो। जन्मों-जन्मों बहुत तरह के साथ मैंने लिए, सब साथ व्यर्थ गए। अब मैं अकेला हूं। जन्मों-जन्मों न मालूम कितने कंधों पर हाथ रखे, और सोचा कि वे साथी बनेंगे; कोई साथी कभी बना नहीं। अब मैं अकेला हूं।
अब यह वीर्य, यह वीरता दिखाई नहीं पड़ेगी बाहर किसी युद्ध के मैदान में। लेकिन युद्धों में जो वीर हैं, वे बच्चे हैं। महावीर की वीरता यह है कि वे कहते हैं, अब संगी और साथी न बनाऊंगा। अब अकेला काफी हूं। जन्मों- जन्मों बहुत संगी-साथी बनाए, सब व्यर्थ हो गए। पाया आखिर में कि अकेला

हूं। अब मुझे तुम अकेला ही होने दो। और एक तरह से वह विचलित करने आया था; तुम दूसरी तरह से विचलित करने आए हो।
इंद्र ने कहा, आप हमें गलत न समझें। हम आपको विचलित करने नहीं; सिर्फ रक्षा करने आए हैं।
महावीर ने कहा कि जिन्होंने भी मेरे लिए सदा वचन दिए रक्षा करने के और जिन्होंने कहा, हम रक्षा करेंगे, वे ही थोड़े दिन में मेरे कारागृह बन गए। जिन्होंने भी कहा था कि हम रक्षा करेंगे, जिन्होंने भी कहा था कि हम साथ देंगे, संगी बनेंगे, दुख से बचाएंगे, आखिर में मैंने पाया कि वे ही मेरे दुख के कारण बने, और वे ही मेरे कारागृह की दीवालें बने। अब नहीं। अब मैं अकेला काफी हूं। अब सुख हो कि दुख, मैं अकेला काफी हूं। तुम मुझे मुझ पर छोड़ दो।
महावीर ने कहा है, एक ही वीरता है इस पृथ्वी पर, अकेले होने का साहस--दि करेज टु बी अलोन।
बहादुर से बहादुर आदमी भी अकेला नहीं हो सकता। कम से कम तलवार तो साथ में रखता ही है। इसलिए जिसके हाथ में तलवार देखें, समझ लेना कि भीतर कायर छिपा है। नहीं तो तलवार किसके लिए! महावीर नग्न खड़े हैं; हाथ में एक लकड़ी का टुकड़ा भी नहीं है।
कृष्ण कहते हैं, जिसकी वासना हट गई, जिसका काम हट गया, उसमें मैं वीर्य हूं। उसमें मैं बल हूं। उसका मैं बल हूं।
इसमें एक बात और समझ लेने जैसी है। जहां भी कामवासना है, वहां वीर होना उसी तरह आसान है, जैसे किसी आदमी को शराब पिला दी जाए और लड़ने को भेज दिया जाए। नशे में बहादुर हो जाना आसान है, क्योंकि नशे में आदमी मूर्च्छित होता है। इसलिए हाथियों को जब युद्ध पर भेजते हैं, तो शराब पिलाकर भेजते हैं। क्योंकि मरने का ख्याल ही नहीं रह जाता; होश ही नहीं रह जाता।
कामवासना भी एक जहर है, एक इंटाक्सिकेंट है। और जब आप कामवासना से भरते हैं, तो कामवासना से भरा हुआ आदमी आग लगे मकान में प्रवेश कर सकता है। तुलसीदास की कहानी हम सबने सुनी है। कामवासना से भरा हुआ आदमी नदी में मुर्दे को हाथ का सहारा लगाकर पार हो गया। उसे पता न चला कि मुर्दा है! उसने समझा कि कोई लकड़ी का टुकड़ा है, इसके सहारे मैं पार हो जाऊं। तुलसीदास बरसा की अंधेरी रात में छज्जे से लटके हुए सांप को रस्सी समझकर ऊपर चढ़ गए! रस्सी दिखाई पड़ी; सांप दिखाई न पड़ा। आंखें अंधी थीं। वासना ही क्या जो अंधा न कर जाए!
कोई कह सकता है कि बड़े बहादुर रहे होंगे तुलसीदास। सांप को पकड़कर चढ़ गए; कम बहादुर हैं! लेकिन तुलसीदास नहीं चढ़े सांप को पकड़कर। सांप को पकड़कर वासना चढ़ी। और वासना अंधी है। उसमें कोई बहादुरी नहीं होती। तुलसीदास नहीं चढ़े सांप को पकड़कर। तुलसीदास को सांप दिख जाता, तो भाग खड़े होते। वह दिखाई नहीं पड़ा। आंखें अंधी थीं। जब आंखें खुलीं, तब पता चला कि क्या किया है!
तीव्र वासना के क्षण में आप मूर्च्छित होते हैं, बेहोश होते हैं। बेहोशी में बल का कोई अर्थ नहीं है। पागल होते हैं। पागलपन में बल का कोई अर्थ नहीं है।
इसलिए कृष्ण उसे काट देते हैं। वे कहते हैं, कामवासना को छोड़कर, बलवानों का मैं बल हूं।
और भी एक बात कहते हैं, इसी संदर्भ में। यह भी कहते हैं कि जो धर्म से भरा है, उसकी मैं कामवासना भी हूं। ये उलटे दिखाई पड़ेंगे वक्तव्य। बलवान के लिए कहा, जो कामवासना से रहित है, उसका मैं बल हूं। लेकिन तब सवाल उठ सकता है कि फिर यह कामवासना का क्या होगा? कृष्ण कहते हैं, कामवासना भी मैं हूं, उसकी, जो धर्म से भरा है। इसका क्या अर्थ होगा? धर्म से भरी कामवासना का क्या अर्थ होगा?
जैसे ही व्यक्ति के जीवन में धर्म उतरता है, वैसे ही कामवासना वासना नहीं रह जाती। वैसे ही काम, सेक्स, यौन, यौन नहीं रह जाता। इसे थोड़ा समझना जरूरी है।

कुछ ऐसा है कि जिस व्यक्ति के जीवन में धर्म का अवतरण हुआ, उस व्यक्ति
के जीवन का सभी कुछ धार्मिक हो जाता है। धर्म इतना डुबाने वाला है कि सिर्फ आपकी बुद्धि को ही डुबाएगा, ऐसा नहीं; सिर्फ आपके हृदय को ही डुबाएगा, ऐसा नहीं; आपके शरीर को भी डुबा लेगा। धर्म इतनी बड़ी घटना है कि घटे तो आप पूरे के पूरे उसमें डूब जाएंगे। आपकी कामवासना कहां बचेगी! वह भी उसमें डूब जाएगी। कहना चाहिए कि धर्म का अमृत ऐसा है कि अगर जहर की बूंद भी उसमें पड़ जाए, तो अमृत हो जाएगी।
हमें समझना बहुत कठिन होगा। हमारी सामान्य समझ तो यह कहती है कि वह सारा का सारा अमृत जहर हो जाएगा, अगर एक बूंद जहर की पड़ गई। क्योंकि जहर से ही हम परिचित हैं; अमृत से हम परिचित नहीं हैं। हमने जहर ही जाना है; हमने अमृत जाना नहीं है। सच बात तो यह है कि अमृत की कसौटी और परीक्षा ही यही है कि वह जहर को अमृत बना पाए। अन्यथा उसकी कोई कसौटी नहीं, कोई परीक्षा नहीं।
धर्म की कसौटी ही यही है कि आपके भीतर जो जहर है, वह अमृत हो जाए। आपके भीतर जो यौन है, जो वासना है, कामना है, वह भी राम-अर्पित हो जाए, वह भी प्रभु-समर्पित हो जाए। वह ऊर्जा भी ब्रह्म की ऊर्जा बन जाए।
क्या होता होगा? जब कोई व्यक्ति धर्म से भरता होगा, तो उसकी कामवासना
की गति क्या होती होगी? उसकी कामवासना की गति आमूल बदल जाती है।
अभी आप कामवासना से भरते हैं अचेत होकर, मूर्च्छित होकर, विक्षिप्त होकर। निर्णय करते हैं हजार बार कि कामवासना से बचूंगा, बचूंगा, बचूंगा! और आप निर्णय करते रहते हैं, और भीतर वासना संगृहीत होती चली जाती है। और एक क्षण आता है, आपके निर्णय का पत्थर उठाकर फेंक दिया जाता है और वासना का झरना फूट पड़ता है। फिर कल से आप पछताएंगे और फिर पछताकर यही करेंगे कि फिर वासना को दबाकर इकट्ठा करेंगे। और फिर वह वक्त आएगा कि आपका संकल्प तोड़कर वासना पुनः बह उठेगी।
अभी वासना का हम पर हमला होता है, वी आर दि विक्टिम्स। अगर इसे ठीक से समझें, तो हम वासना के मालिक नहीं हैं, शिकार हैं। वासना हमें पकड़ लेती है भूत-प्रेत की भांति; और हमसे कुछ करा डालती है, जो कि शायद हमने अपने होश में कभी न किया होता। और जब हम होश में आते हैं, तो पछताते हैं, दुखी और पीड़ित होते हैं कि हमने ऐसा सोचा, ऐसा किया! लेकिन फिर वही होता है।
हम वासना के हाथ में धागे बंधी हुई गुड्डियों की तरह हैं, जो नाचते हैं। प्रकृति हम से काम लेती है। हम प्रकृति के गुलाम हैं। प्रकृति आज्ञा देती है, और हम काम में लग जाते हैं।
धर्म से भरे हुए व्यक्ति को प्रकृति आज्ञा देना बंद कर देती है। असल में जो व्यक्ति धर्म को उपलब्ध होता है, प्रकृति की आज्ञा-सीमा के बाहर हो जाता है। प्रकृति उसे कोई भी आज्ञा नहीं दे सकती। और एक नई घटना घटती है कि धर्म को उपलब्ध व्यक्ति प्रकृति को आज्ञा देने लगता है। एक आमूल रूपांतरण होता है।
जब तक हम अधर्म में जीते हैं, तब तक प्रकृति हमें आज्ञा देती है; हम गुलामों की तरह होते हैं। हम चलाए जाते हैं, चलते नहीं। हम खींचे जाते हैं, चलते नहीं। हम धकाए जाते हैं, हम चलते नहीं। हमारी जिंदगी हमारी वृत्तियों का जबर्दस्ती दबाव है। न तो आपने कभी क्रोध किया है; क्रोध करवाया गया है। न आपने कभी कामवासना की है; कामवासना करवाई गई है। आप सिर्फ एक विक्टिम हैं, एक शिकार हैं। चारों तरफ से आपको धक्के दिए जा रहे हैं।
जैसे हवा में पत्ता कंपता है। बाएं हवा बहती है, तो बाएं; और दाएं बहती है, तो दाएं। वह पत्ता भी शायद मन में सोचता होगा कि अब बाएं बहुत थक गया, अब जरा दाएं बहूं। जब हवा दाएं चलने लगती है, तब वह सोचता होगा, अब दाएं चलूं। वैसे ही आप सोचते हैं कि मैं क्रोध कर रहा हूं; कि मैं वासना से भर रहा हूं।
नहीं; आप सिर्फ भरे जाते हैं। आप बिल्कुल हेल्पलेस विक्टिम, असहाय शिकार हैं।
धर्म से भरा हुआ व्यक्ति प्रकृति के ऊपर उठता है, वह प्रकृति को आज्ञा देना शुरू करता है। वैसे व्यक्ति के जीवन में कामवासना वासना नहीं रह

जाती। हां, वैसे व्यक्ति के जीवन में यदि काम की कोई घटना भी घटे--जैसे कि कुछ घटनाएं घटी हैं--तो उनके कारण बहुत ही दूसरे होते हैं।
जैसे जीसस के बाबत कहा जाता है कि वह क्वांरी मरियम से पैदा हुए। यह उदाहरण मैं दे रहा हूं, ताकि आपकी समझ में आ सके कृष्ण की बात। जीसस के बाबत कहा जाता है, वे क्वांरी मरियम से, वर्जिन मैरी से पैदा हुए। अब क्वांरी लड़की से कोई कैसे पैदा होगा?
लेकिन हो सकता है। अगर कृष्ण के सूत्र को समझें, तो हो सकता है। मैरी,
वह जीसस की मां, किसी कामवासना से भरकर अगर संभोग में न उतरी हो, वरन जीसस की आत्मा को जन्म देने के लिए ही अपने शरीर की प्रकृति को उसने आज्ञा दी हो, तो वह क्वांरी है।
और आपसे मैं कहूं कि आप जब किसी बच्चे को जन्म देते हैं, तब भी आपको पता नहीं होता कि उस बच्चे की आत्मा आपके चारों तरफ मंडरा रही है और आपको प्रेरित कर रही है कि आप उसे जन्म दें। लेकिन आप बेहोश हैं। उसके लिए प्रकृति आपको धक्के दिलाती है और बच्चे का जन्म करवाती है।
लेकिन कामवासना जिस दिन धर्म से रूपांतरित होती है, उस दिन आप सचेत रूप से एक आत्मा से बात कर पाते हैं, जो आपके द्वारा जन्म लेना चाहती है। और अगर आप जन्म देना चाहते हैं, तो आप अपने शरीर को आज्ञा देते हैं कि वह वासना में उतरे, वह काम-कृत्य में उतरे। लेकिन यह आज्ञा होती है। और इसलिए इसमें बुनियादी फर्क है।
जब आप कामवासना में उतरते हैं, तो आप बेहोश होते हैं। और जब ऐसा व्यक्ति कभी कामवासना में उतरता है, तो बिल्कुल होश में होता है। वह अपने शरीर का उपयोग एक उपकरण, एक यंत्र की भांति कर रहा होता है। मालिक होता है। शरीर उसका उपयोग नहीं कर रहा होता है।
तो कृष्ण कहते हैं, मैं कामवासना भी हूं, लेकिन उनकी, जो धर्म से भरे हैं।
जीवन ने बहुत-से सत्य खोज लिए थे, जो धीरे-धीरे बार-बार खो जाते हैं, उनमें से एक सत्य यह भी था। इस संदर्भ में एक बात आपको कहना चाहूंगा।
आज सारी पृथ्वी पर संतति निरोध का आंदोलन है। सब जगह, किसी भी तरह आने वाले बच्चों को रोकना है। लेकिन एक ही उपाय मालूम पड़ता है और वह यह कि हमारे शरीर में कुछ फर्क किया जाए। और कोई उपाय नहीं मालूम पड़ता। एक ही उपाय मालूम पड़ता है कि हमारे शरीर की ग्रंथियां काट डाली जाएं, या शरीर में ऐसे रासायनिक द्रव्य डाले जाएं, या ऐसा इंतजाम किया जाए, कि आने वाली आत्मा जो हमारे भीतर प्रवेश करती है, वह अवसर न पा सके और प्रवेश न कर पाए। यह बड़ी असहाय स्थिति है। इससे अन्यथा नहीं हो सकता क्या? लेकिन आदमी
को देखकर नहीं कहा जा सकता है कि हो सकता है। दूसरी बात भी हो सकती है। कृष्ण के इस सूत्र से वह बात दूसरी निकलती है। हम व्यक्तियों को इतना सचेतन बना सकते हैं--शरीर को बदलकर नहीं, उनकी चेतना को बदलकर--कि जब कोई आत्मा उनसे निवेदन करे कि वे जन्म देने वाले बनें, तो वे इनकार कर सकें; या जरूरत हो, तो जन्म दे सकें।
इस संबंध में मैं आपसे यह भी कहना चाहता हूं कि हजारों वर्ष तक भारत
ने इसका प्रयोग किया है। इस बात के सैकड़ों प्रमाण हैं। इस बात का प्रयोग किया गया है। इस प्रयोग की पूरी की पूरी साइंस विकसित की गई थी।
जैसे कि आपने अगर महावीर या बुद्ध का जीवन पढ़ा हो, तो इस मुल्क ने एक पूरा का पूरा ड्रीम एनालिसिस, एक स्वप्न-विज्ञान निर्मित किया था। फ्रायड ने तो अभी-अभी स्वप्न के लक्षणों को समझना शुरू किया है। वह भी समझ अभी बहुत बालपन की है। वह अभी बहुत गहरी नहीं है।
लेकिन जैन परंपरा कहती है कि जब तीर्थंकर किसी मां के गर्भ में प्रवेश करता है, तो इस-इस तरह के स्वप्न इस-इस समय पर उस मां को आने शुरू होते हैं। वह इस बात की खबर है कि तीर्थंकर की कोटि की आत्मा उस मां के गर्भ में प्रवेश करना चाहती है। वे स्वप्न सूचनाएं हैं। उन स्वप्नों से खबर मिलती है कि कोई एक विराट आत्मा मां के भीतर प्रवेश करना चाहती है। वे स्वप्न जो हैं, सिंबालिक मैसेजेस हैं।
और यह बड़े मजे की बात है कि जैनों के चौबीस तीर्थंकर बहुत लंबे फासले
पर हुए; अंदाजन कम से कम दस हजार साल का फासला--कम से कम; इससे ज्यादा हो

सकता है--लेकिन उनकी माताओं को आने वाले स्वप्नों का क्रम एक है। वे स्वप्न सूचक हैं। वे इस बात की खबर दे रहे हैं कि इनकार मत कर देना। क्योंकि जो व्यक्ति पैदा होने वाला है, वह तुम्हें सिर्फ मार्ग बना रहा है, लेकिन इस जगत के लिए बहुत काम का है, उसको इनकार मत कर देना। वह कोई साधारण आत्मा नहीं, जो तुमसे आ रही है।
और बुद्ध के मामले में तो यह भी जाहिर था कि बुद्ध जिससे भी जन्म लेंगे, वह मां जन्म देकर तत्काल मर जाएगी; जी न सकेगी। क्योंकि बुद्ध जैसे व्यक्तित्व को जन्म देना!
हम जानते हैं, साधारण बच्चे को जन्म देने में कितनी प्रसव-पीड़ा होती है। साधारण बच्चे को जन्म देने में कितनी प्रसव-पीड़ा होती है। लेकिन शरीर को ही पीड़ा होती है। बुद्ध जैसे व्यक्ति को जन्म देने में आत्मा तक प्रसव-पीड़ा का प्रवेश होता है। वह कोई छोटी घटना नहीं है। एक बहुत महान घटना, एक विराट घटना घट रही है शरीर के भीतर।
तो यह जाहिर थी बात कि बुद्ध की मां जन्म देने के बाद बचेगी नहीं। फिर
भी बुद्ध की मां राजी थी। क्योंकि बुद्ध जैसा व्यक्ति पैदा होता है, यह सौभाग्य छोड़ने जैसा नहीं है। और कहा जाता है कि देवताओं ने बुद्ध की मां को न मालूम कितनी-कितनी तरह से राजी किया। और कहा कि इनकार मत कर देना। क्योंकि जो व्यक्ति आ रहा है, वह करोड़ों के जीवन को प्रकाशमान कर देगा। उसके लिए इतना कष्ट झेलने की तैयारी रखना।
बुद्ध ने घोषणा की है कि दो हजार साल बाद मैं पुनः एक नए रूप में, मैत्रेय के रूप में पृथ्वी पर उतरूंगा। दो हजार साल पूरे हो गए, लेकिन मैत्रेय को ठीक गर्भ नहीं मिल पा रहा है। इसलिए एक अड़चन खड़ी हो गई है।
इसलिए जो लोग जीवन की गहराइयों से संबंधित हैं, उनकी इस वक्त सबसे बड़ी बेचैनी यही है कि कोई मां मैत्रेय को ग्रहण करने के लिए तैयार हो जाए। लेकिन कोई मां पृथ्वी पर दिखाई नहीं पड़ती है।
बुद्ध का वचन खाली न जाए, इसलिए और तरह के प्रयोग भी किए गए। वे भी असफल हो गए। कोई गर्भ देने वाली मां नहीं मिलती है, तो कोशिश यह की गई कि किसी व्यक्ति के शरीर में, जीवित व्यक्ति के शरीर में ही बुद्ध की आत्मा को प्रवेश करा दिया जाए। और एक ही शरीर से दोनों आत्माएं काम कर लें। यह आत्मा जो मौजूद है, सिकुड़ जाए और उस आत्मा को जगह दे दे। वे प्रयोग भी सफल नहीं हो सके। कृष्णमूर्ति के साथ भी वही प्रयोग किया गया था; वह सफल नहीं हो सका।
एक और गहरे तल पर गर्भ का विज्ञान सोचा, समझा और पहचाना गया था। कृष्ण उसी की बात कर रहे हैं। वे कह रहे हैं कि जिस दिन धर्म से भरा हुआ होता है चित्त, उस दिन काम की वासना भी मैं ही हूं।

प्रश्नः भगवान श्री, बुद्धिमानों में बुद्धि और संपूर्ण भूतों का सनातन कारण, इसे भी स्पष्ट करने की कृपा करें।

संपूर्ण भूतों का सनातन कारण!
कारण दो तरह के होते हैं। एक तो, जिन्हें हम कारण कहते हैं। हम कहते हैं, पानी भाप बन गया। कारण? क्योंकि गर्मी मिल गई। हम कहते हैं, आदमी मर गया। क्यों? कारण? क्योंकि हृदय की धड़कन बंद हो गई। ये कारण नहीं हैं वस्तुतः। ये तो अस्थायी, ऊपर, सतह पर घटने वाली घटनाओं का तारतम्य हैं। यह वैसा ही झूठ है, जैसे कि कोई आदमी दो घड़ियां अपने घर में लगा ले... ।
डेविड ह्यूम, एक अंग्रेज विचारक, इसकी बात हमेशा किया करता था। क्योंकि वह कार्य-कारण के सिद्धांत के बड़े खिलाफ था। वह कहता था कि तुम कहते हो, पानी गर्म करने से भाप बन गया, मेरी समझ में नहीं आता! मैंने तुम्हें गर्म करते भी देखा, आग जलाते भी देखा, पानी को भाप बनते भी देखा, लेकिन मैं यह अभी तक नहीं देख पाया कि गर्म करने से पानी कब भाप बना! गर्मी देखी, आग देखी, भाप बनते देखा पानी। लेकिन पानी गर्मी से कब भाप बना, यह मैंने देखा नहीं अभी तक।
आप कहते हैं, हृदय की धड़कन बंद हो गई, इसलिए यह आदमी मर गया। ह्यूम कहेगा कि यह भी हमने देखा कि धड़कन बंद हो गई, और यह भी हमने देखा कि आदमी मर

गया। लेकिन फिर भी मैंने वह घटना नहीं देखी कि हृदय की धड़कन बंद होने से मर गया। उन दोनों के बीच का संबंध मैंने नहीं देखा।
ह्यूम कहा करता था कि एक आदमी अपने घर में दो घड़ियां बना सकता है। ऐसी घड़ियां बना सकता है कि एक घड़ी में बारह बजे और दूसरी घड़ी में बारह का घंटा बजे। इसमें कोई कठिनाई तो नहीं है। एक घड़ी में सात बजे, दूसरे में सात का घंटा बजे। एक में आठ बजे और दूसरे में आठ का घंटा बजे। फिर कोई आदमी, जो घड़ी को न जानता हो, पीछे से वह उस घर में आ जाए, तो वह सोचेगा कि जब इस घड़ी में सात बजते हैं, तो सात बजने के कारण उस घड़ी में सात का घंटा बजता है। जब कि उनमें कोई भी संबंध नहीं है ऊपर से। हम जिनको कारण कहते हैं, वे ऐसे ही ऊपर से जुड़ी हुई घटनाएं हैं।
इसलिए कृष्ण ने इतना ही नहीं कहा कि सब भूतों का कारण; कहा, सनातन कारण--दि अल्टिमेट काज--आखिरी, प्रथम, अंतिम, अनादि।
अगर हम एक-एक कारण को खोजने जाएं, तो जगत में अनंत कारण हैं। हर चीज के अनंत कारण हैं। और एक चीज भी एक कारण से नहीं होती, मल्टी-काजल होती है, अनेक कारण से होती है।
आप सड़क पर जा रहे हैं और एक कार आपसे आकर टकरा गई, तो आप जानते हैं, कितने कारण होते हैं? हजार कारण होते हैं।
आप रास्ते पर जिस भांति जा रहे थे, अगर घर से पत्नी से लड़कर न चले होते,
तो शायद इस भांति न चल रहे होते, जैसे चल रहे थे। लेकिन पत्नी आपसे न लड़ती, अगर बच्चा स्कूल से वक्त पर घर आ गया होता। बच्चा स्कूल से वक्त पर घर आ सकता था, लेकिन रास्ते में मित्र मिल गए।
वह जो आदमी चलाकर आ रहा है कार और आपसे टकरा गया है, वह भी शायद न टकराता, लेकिन किसी ने उसे शराब पिला दी है। मित्रों ने आग्रह किया। मित्र आग्रह करने से नहीं बच सकते थे, क्योंकि यह मित्र पहले उनको कई दफा आग्रह करके पिला चुका था।
और आप पीछे हटते चले जाएं, तो शायद सड़क पर जो आज आपको एक कार आकर टकराकर लग गई है, इसके पीछे आपको उतने ही कारण मिल जाएंगे, जितने जगत में हो सकते हैं, सब। इस छोटी-सी घटना के पीछे यह पूरा जगत कारणों का एक जाल बिछाकर खड़ा होगा। अगर आप थोड़ा भीतर उतरते जाएं, उतरते जाएं, तो आप घबड़ा जाएंगे, और आप कहेंगे कि बस, अब खोज करनी बेकार है। इस खोज का कहीं अंत नहीं हो सकता। यह तो कारणों का जाल है।
कृष्ण इन कारणों की बात नहीं कर रहे। वे कह रहे हैं, एक कारण, सनातन कारण। सनातन कारण का अर्थ होता है, यह सब मुझसे निकला और मुझमें लीन होगा। यह सब मुझसे आया और मुझमें वापस लौट जाएगा--सब। सनातन कारण का अर्थ होता है, मेरे बिना कुछ भी नहीं हो सकता है। अगर मैं नहीं हूं, तो कुछ भी नहीं है। मैं हूं, तो सब है। मेरे हटते ही सब शून्य हो जाएगा। मेरी नजर फिरी कि सब शून्य हो जाएगा। सब मेरा खेल है। सनातन कारण का अर्थ होता है, जिससे सब चीजें आती हैं, और जिसमें वापस लौट जाती हैं। बीच में जो कारणों का जाल है, उससे कोई संबंध नहीं है।
हम सब ऊपर के कारणों को देखते हैं, इसलिए मुश्किल में पड़ते हैं। अर्जुन भी ऊपर के कारण देखने वाला है। वह कह रहा है, मैं इनको छुरा मारूंगा, तो ये मर जाएंगे।
कृष्ण कहते हैं, तू फिक्र मत कर, क्योंकि मैं जानता हूं। ये मेरी वजह
से जी रहे हैं। और जब तक मैं जी रहा हूं, ये कोई मर सकते नहीं। तू बेफिक्री से युद्ध कर। मैं तुझे सनातन कारण कहता हूं। तेरे छुरे मारने से ये मरने वाले नहीं हैं; और न तेरे छुरे के बचने से ये बचने वाले हैं। इनका होना और न होना मुझ पर निर्भर है, मैं सनातन कारण हूं।
अगर यह बात ठीक से समझ ली जाए कि परमात्मा सभी चीजों का सनातन कारण है,
तो आप कर्ता बनने के मोह से गिर जाएंगे। वह कर्ता बनने का मोह फिर न रह जाएगा। आप कहेंगे, ठीक है। जो हो रहा है, ठीक है। जो हो जाए, ठीक है। जो न हो, ठीक है। और जिस दिन आप इतनी सरलता से सब स्वीकार कर लेंगे, उस दिन आपके भीतर अहंकार को खड़े होने की कोई जगह न रह जाएगी।
परमात्मा सनातन कारण है, ऐसा बोध आपके कर्तापन को गिरा जाएगा, मिटा जाएगा, धूल में डाल जाएगा। और कर्तापन का बोध गिर जाए, तो ही हम परमात्मा

की दिशा में एक कदम ऊपर उठते हैं। और ध्यान रहे, आलसी हम ऐसे हैं कि परमात्मा अगर कहे कि एक कदम जरा-सा उठा लो, तो भी हम कदम नहीं उठाते।
सुना है मैंने, एक गांव में एक आदमी से गांव परेशान हो गया था। परेशान इसलिए हो गया था कि न तो वह कमाता, न कुछ पैदा करता। फिर गांव यह भी नहीं देख सकता था कि वह भूखा मरता रहे। तो गांव को उसे देना पड़ता था। वह अपने वृक्ष के नीचे, या अपने झोपड़े में पड़ा रहता था। वृक्ष के नीचे भी मुहल्ले के लोग उसे ले आते थे, तो आ जाता था। और वृक्ष के पास से, बाहर से उसको झोपड़े के भीतर लोग ले जाते थे, तो चला जाता था। अगर किसी दिन पड़ोस के लोग उसको झोपड़े के बाहर न निकालते, तो वह झोपड़े के भीतर से ही नाराजगियां जाहिर करता था।
फिर गांव परेशान हो गया, और गांव ने सोचा कि इस आदमी को कब तक ढोएंगे? फिर अकाल पड़ा और गांव ने सोचा कि अब तो इसको जिंदा या मुर्दा दफना देना चाहिए। वैसे इसके जीने से कोई फर्क भी नहीं पड़ता। पर उन्होंने सोचा, क्या वह राजी होगा? उन्होंने कहा, चलकर हम देख लें।
वे गांव के लोग उसके पास गए और उससे पूछा कि हमने यह तय किया है कि हम तुम्हें दफना दें। क्योंकि तुम्हारे होने, न होने से कोई फर्क नहीं पड़ता। एक दिन तो दफनाना ही पड़ेगा, जब तुम मरोगे। लेकिन हमारे लिए तुम मरे ही जैसे हो। और तुम्हारे लिए भी, जीते हुए हो, ऐसा हमारा अनुभव नहीं। क्या तुम राजी हो?
उसने कहा, मैं राजी हो सकता हूं। लेकिन मरघट तक ले कौन चलेगा? मुझे कोई दिक्कत नहीं है। बाकी ले जाना तुम्हीं को पड़ेगा। उन्होंने कहा, हमने तो यह सोचा भी नहीं था कि तुम इतने जल्दी राजी हो जाओगे!
उन्होंने अर्थी बनाई। उस आदमी को अर्थी पर रखा। वे उसको लेकर चले। वह आदमी अर्थी में लेट गया। थोड़े वे भी चिंतित हुए। इतना भरोसा न था उसका। गांव में कोई परदेशी आया हुआ था। उसे यह खबर मिली कि गांव में कौन-सी घटना घट रही है कि जिंदा आदमी को लोग ले जा रहे हैं दफनाने! उसने बीच रास्ते पर आकर रोका कि भाइयो, यह क्या कर रहे हो? उन्होंने कहा, हम परेशान हो गए हैं। अब और कोई उपाय नहीं बचा। हम इसे जिंदा ही दफनाने जा रहे हैं। हमारे पास न दाना है इसको देने को, न अनाज है। उस आदमी ने कहा, रुको। अगर तुम मेरी मानो, तो मैं सालभर के लिए अनाज इसको दिए देता हूं। तुम इसे छोड़ दो।
इसके पहले कि गांव के लोग कुछ बोलते, अर्थी से आवाज आई कि पहले बात साफ
हो जानी चाहिए। अनाज साफ-सुथरा है न? नहीं तो पीछे कौन झंझट करेगा! पहले कुछ निर्णय करें गांव के लोग, अर्थी से आवाज आई, साफ कर लेना। अनाज साफ-सुथरा है? एक, और दूसरी बात कि ये लोग मुझे यहीं छोड़कर चले जाएंगे, तो मुझे घर कौन पहुंचाएगा?
जिस आदमी के बाबत यह कहानी है, वह एक सूफी फकीर था। वह कोई साधारण आदमी नहीं था। जब उसकी अर्थी नीचे उतारी और अजनबी आदमी ने जब उसकी यह बात सुनी, तो उसने सोचा कि आदमी तो असाधारण है, उसके दर्शन करने चाहिए। उसको देखा तो उस अजनबी ने कहा, हैरान करते हो तुम मुझे!
तो उस आदमी ने कहा कि तुम थोड़ा मेरी आंखों में झांककर समझ पा रहे हो, इसलिए मैं तुमसे राज की बात कहता हूं। ये सारे लोग समझते हैं कि मैं आलसी हूं। लेकिन मैं उस यात्रा पर निकल गया, जो कठिनतम है। और ये सारे लोग समझते हैं कि बड़े श्रमी हैं। लेकिन ये जो भी कर रहे हैं, दो कौड़ी का कर रहे हैं। तुम सोचते होगे कि मैं एक कदम घर जाने को राजी नहीं। मैं तुमसे कहता हूं, ये भी कोई अपने असली घर जाने को एक कदम राजी नहीं। और जिस घर तुम मुझे ले जा रहे हो, वह मेरा कोई असली घर नहीं है। इसलिए मैं कब्र में भी जाने को राजी हूं। क्योंकि मेरे लिए कब्र और वह घर बराबर है। और जिस शरीर को बचाने की तुम बात कर रहे हो, इसलिए मैंने पूछा कि अनाज साफ-सुथरा है न! क्योंकि इसको बचाने के लिए इतनी मेहनत करने की मैं कोई जरूरत नहीं समझता। लेकिन मैं एक और घर को बचाने में लगा हूं। और मैं तुमसे कहता हूं कि तुम सब अलाल हो। और तुम सब समझते हो कि मैं अलाल हूं। और ध्यान रखो, तुम मुझे जिंदा दफना रहे हो। जब तुम दफना दिए जाओगे, तब मैं तुम्हें बताऊंगा। तब तुम मुझसे मिलना। और तब मैं तुम्हें बताऊंगा कि असली आलसी कौन था।

पता नहीं, उस गांव के लोग समझे या नहीं समझे, लेकिन आपसे मैं कहता हूं,
एक कदम भी हम उस दिशा में उठाने की हिम्मत नहीं करते हैं।
तो कृष्ण कह रहे हैं, सनातन हूं मैं कारण। इसीलिए कह रहे हैं ताकि आपको बस एक ही कदम उठाने को बाकी रह जाए। वह एक कदम, कि आप कर्ता नहीं हैं, परमात्मा कारण है। अगर आप सब छोड़ पाएं उस सनातन कारण पर... ।
लेकिन हम सनातन कारण पर नहीं छोड़ते। किसी आदमी ने गाली दे दी, तो हम क्रोध से भर जाते हैं। जरा पैर में चोट लग गई, तो हम परेशान हो जाते हैं। अगर हम सनातन कारण को देख पाएं--जो उस पत्थर के पीछे भी है, और मेरे पीछे भी; और जो गाली देने वाले के भी पीछे है, और मेरे पीछे भी; और कांटे के पीछे है, और मेरे दर्द के पीछे भी; अगर हम उस सनातन कारण को देख पाएं, जो सुख के पीछे भी है और दुख के पीछे भी; जन्म में भी और मृत्यु में भी; सम्मान में और अपमान में भी--अगर वह सनातन हमें दिख जाए, तो हमारी उत्तेजना का जगत तत्काल शांत हो जाए। फिर उत्तेजना का कोई कारण नहीं है।
उत्तेजना के सब कारण तात्कालिक हैं। जिसे अनुत्तेजना के जगत में प्रवेश करना है शांति के, उसे सनातन कारण को स्मरण कर लेना चाहिए।
और कृष्ण कहते हैं, बुद्धिमानों की मैं बुद्धि।
बुद्धिमानों की बुद्धि! सभी बुद्धिमानों में बुद्धि नहीं होती। अधिक बुद्धिमानों में तो केवल संग्रह होता है सूचनाओं का, शास्त्रों का। जरूरी नहीं कि बुद्धिमान में बुद्धि भी हो।
एक मित्र को कल ही पत्र लिख रहा था। तो उसे मैंने एक कहानी लिखी है, वह मैं आपसे कहूं।
उसे मैंने लिखा है, एक सम्राट का बेटा था, जो मूढ़ था। और सम्राट परेशान
हो गया। बुद्धिमानों से सलाह ली, तो उन्होंने कहा कि यहां तो कोई उपाय नहीं है। दूर देश किसी और राजधानी में एक विश्वविद्यालय है, वहां भेजो। भेज दिया गया।
वर्षों की शिक्षा के बाद बेटे ने खबर भेजी कि अब मैं बिल्कुल निष्णात
हो गया, दीक्षित हो गया। सब शिक्षा मैंने पा ली। अब मुझे वापस लौटने की आज्ञा दे दी जाए। सम्राट ने उसे वापस बुला लिया। सम्राट भी खुश हुआ। वह सभी शास्त्रों का ज्ञाता होकर आ गया। वह ज्योतिष भी जानता है। वह भविष्यवाणी भी कर सकता है। वह लोगों के पीछे अतीत में भी देख सकता है। उन दिनों जो-जो विज्ञान था, वह सब जानकर आ गया।
सम्राट बहुत खुश हुआ। उसने देश के सभी बुद्धिमानों को स्वागत के लिए बुलाया। अपने बेटे के स्वागत का समारंभ किया। बड़े-बड़े बुद्धिमान आए। एक बूढ़ा भी आया। उस बूढ़े ने उस बेटे से कई सवाल पूछे। पूछा कि तुमने क्या-क्या अध्ययन किया? तो वह करिक्युलम लाया था अपने विश्वविद्यालय का। उसने निशान लगा रखे थे कि मैंने क्या-क्या पढ़ा। उसने सब बताया।
परीक्षा के लिए बूढ़े ने--क्योंकि उसने कहा कि मैं अदृश्य चीजों को भी देख पाता हूं, उनका भी अंदाज लगा पाता हूं, उनका भी अनुमान कर पाता हूं--उस बूढ़े ने बातचीत करते-करते अपने हाथ का छल्ला निकालकर अपनी मुट्ठी में अंदर कर लिया। बंद मुट्ठी उस लड़के के सामने की और कहा कि मुझे बताओ, इस मुट्ठी के भीतर क्या है?
उस लड़के ने एक सेकेंड आंख बंद की और कहा कि एक ऐसी चीज है जो गोल है और जिसमें बीच में छेद है। बूढ़ा हैरान हुआ। बूढ़े ने समझा कि लड़का सचमुच ही बुद्धिमान होकर लौट आया है। सब शास्त्र उसने जान लिए हैं। फिर भी उसने एक सवाल और पूछा कि कृपा करके उस चीज का नाम भी तो बताओ!
तो उस युवक ने आंखें बंद कीं, बहुत देर तक नहीं खोलीं। और फिर कहा कि मैंने जो शास्त्रों का अध्ययन किया, उसमें नाम बताने का कहीं भी कोई आधार नहीं मिलता है। फिर भी मैं अपने कामन सेंस से, अपनी बुद्धि से कहता हूं कि आपके हाथ में गाड़ी का चाक होना चाहिए।
वह जो बेचारा पहले बताया था, वह शास्त्र था। अब जो बता रहा है, वह खुद है!
उस बुद्धिमान ने अपने मन में ही सोचा, उसने अपने मन में ही कहा कि यू कैन एजुकेट ए फूल, बट यू कैन नाट मेक हिम वाइज--मूढ़ को भी शिक्षित किया जा सकता है, लेकिन बुद्धिमान नहीं बनाया जा सकता।

सभी बुद्धिमानों में बुद्धि होती है, इस भ्रम में मत पड़ना। अधिक बुद्धिमानों में बुद्धि का सिर्फ धोखा होता है; उधार होता है।
कृष्ण कहते हैं, बुद्धिमानों में बुद्धि!
यह जो बुद्धि है, जिसके लिए कृष्ण जोर देते हैं, जिसे विजडम कहते हैं, प्रज्ञा। जरूरी नहीं है कि बुद्धिमान बहुत कुछ जानता हो। यह जरूरी नहीं है। क्योंकि बहुत कुछ जानने वाला जरूरी रूप से बुद्धिमान नहीं होता। लेकिन बुद्धिमान जो जानता है, वह उसके जीवन को एक फूल की तरह खिला जाता है। एक और इस तरह की कहानी आपसे कहूं, जो ख्याल में आ जाए। एक वृद्ध बुद्धिमान के संबंध में बड़ी खबर थी। एक विश्वविद्यालय के दो युवकों ने सोचा--पिछली कहानी में विश्वविद्यालय के युवक की परीक्षा बूढ़े ने की; इस कहानी में बूढ़े की परीक्षा दो विश्वविद्यालय के युवकों ने की। उन्होंने सुना है कि उस आदमी के पास जाओ, तो वह कुछ भी बता देता है। आपका नाम भी बता देता है। जैसे मुट्ठी में बंद चीज को बूढ़े ने जानना चाहा था, खबर थी कि वह बूढ़ा भी बता देता है; वह बड़ा बुद्धिमान है।
तो वे दोनों युवक एक कबूतर को अपने कोट के भीतर छिपाकर आए हैं। और उस बूढ़े के सामने आकर कहा, क्या आप बता सकते हैं कि हमारे कोट के भीतर क्या है? उसने कहा, मैं बता सकता हूं। वे तैयारी करके आए थे। हाथ भीतर रखा था। उन्होंने पूछा, क्या आप बता सकते हैं कि वह जिंदा है या मुर्दा?
उन्होंने सोचा था कि अगर वह कहे जिंदा, तो अंदर ही गर्दन मरोड़कर बाहर निकालना है। अगर वह कहे मुर्दा, तो जिंदा बाहर निकाल देना है। गर्दन पर हाथ था मजबूत।
बूढ़े ने एक क्षण आंख बंद की और कहा, इट डिपेंड्स। उसने कहा कि यह कई बातों पर निर्भर करेगा कि वह जिंदा है कि मुर्दा। उन्होंने कहा, क्या मतलब? उस बूढ़े ने कहा कि अगर मैं कहूं, वह जिंदा है, तो गर्दन दबाई जा सकती है। अगर मैं कहूं, वह मुर्दा है, तो उसे ऐसे ही बाहर निकाला जा सकता है। लेकिन तुम्हारी मैं फिक्र छोड़ता हूं; कबूतर की फिक्र करता हूं। मैं कहता हूं, वह मुर्दा है। बाहर निकालो। क्योंकि कबूतर न मर जाए नाहक। बूढ़े ने कहा कि मेरी तुम फिक्र छोड़ो। कबूतर की फिक्र करता हूं। मैं कहता हूं, वह मुर्दा है। बाहर निकालो।
यह विजडम है। यह बहुत और बात है। यह बुद्धि और बात है। यह केवल जानकारी नहीं है; यह जीवन के रहस्य का बोध है। यह केवल संग्रह नहीं है ऊपर से; यह भीतर से आया हुआ आविर्भाव है। यह अंतःजागरण है, अंतःस्फूर्ति है। यह कुछ ऐसा नहीं है कि कल जो मैंने जाना था, उस पर निर्भर है। बल्कि आज भी मेरी चेतना जाग रही है और देख रही है; और जो कहेगी, वह मैं जानूंगा। बुद्धिमान, तथाकथित बुद्धिमान, अतीत के ज्ञान पर निर्भर होते हैं-- दूसरों के, खुद के। वस्तुतः बुद्धि सदा सजग वर्तमान में जीती है--अभी, जागरूक, जैसे दर्पण। जो सामने आ जाता है, दिखाई पड़ जाता है।
कृष्ण कहते हैं, बुद्धिमानों की बुद्धि हूं मैं।
बुद्धिमत्ता नहीं, बुद्धिमानी नहीं, नालेज नहीं, ज्ञान नहीं--बुद्धि, इंटेलिजेंस। इंटलेक्ट नहीं, इंटेलिजेंस; सिर्फ बुद्धि। हम जो-जो जानकारियां भर लेते हैं... । फर्क समझ लें, थोड़ा बारीक है।
एक कमरा है आपके पास। उसमें आप फर्नीचर भर लेते हैं। कभी आपने ख्याल किया कि जितना फर्नीचर भरते जाते हैं, कमरा उतना छोटा होता जाता है! क्योंकि कमरे का मतलब ही जगह है। अंग्रेजी का शब्द अच्छा है, रूम। उसका मतलब होता है, जगह, स्थान। तो जितना आप फर्नीचर भरते जाते हैं, कमरा कम होता चला जाता है। इसलिए बड़े आदमियों के कमरे दिखाई ही बड़े पड़ते हैं, होते गरीबों से भी छोटे हैं। चीजें तो बढ़ती जाती हैं।
मैं अभी एक बहुत अमीर के घर में ठहरा हुआ था। तो उन्होंने कमरे में इतनी चीजें भर दी हैं कि वे उसमें कैसे अंदर आते-जाते हैं, मुझे कुछ पता नहीं। मुझे उसमें प्रवेश कराने लगे, मैंने कहा कि आप मुझे बाहर ही रहने दो। इतनी चीजें हैं! यह रूम तो है ही नहीं। यह तो कबाड़खाना है। जो भी आता है, खरीदकर ले आते हैं और रखते चले जाते हैं! पैसा पास है। पैसे के साथ बुद्धि जरूरी रूप से आती हो, ऐसा नहीं है। तो जितने माडल हो सकते हैं फर्नीचर के, सब उसी कमरे में इकट्ठे हैं!

कमरे में आप जब फर्नीचर भर देते हैं, तो कमरा छोटा हो जाता है। बुद्धि में जितनी आप सूचनाएं भर देते हैं, बुद्धि छोटी हो जाती है। बुद्धि तो रूम है, बुद्धि तो एक स्पेस है, खाली जगह है।
बुद्धिमान वह है, जो अपनी बुद्धि को सदा खाली, और ताजी, और सजग रखता है। भर नहीं लेता सिर्फ। भरकर तो सब बासा हो जाता है। कुछ नहीं भरता; खाली रखता है; ताजी रखता है; खुली रखता है। सूचनाएं जितनी इकट्ठी हो जाती हैं भीतर, उतनी ही बुद्धि की कम जरूरत पड़ने लगती है। क्योंकि आप सूचनाओं से ही काम चला लेते हैं।
कृष्ण कहते हैं, बुद्धिमानों में मैं बुद्धि हूं।
वह खाली जगह, वह स्पेस। उपनिषदों में जिसे इनर स्पेस आफ दि हार्ट कहा है--हृदय की अंतर्जगह, अंतर्गुहा। हृदय में एक जगह है, जो बिल्कुल खाली है।
और जो व्यक्ति उस खाली जगह में खड़ा हो जाए, वह परमात्मा के मंदिर में प्रवेश कर जाता है।
तो यहां बुद्धि से मतलब इंटलेक्ट का नहीं है। यहां बुद्धि से मतलब चालाकी का नहीं है। यहां बुद्धि से मतलब दो और दो चार जोड़ लेने का नहीं है।
यहां बुद्धि से मतलब है, उस भीतर के अंतर-आकाश में खड़े हो जाने का, जो बिल्कुल खाली है, शून्य है। उस शून्य में जो खड़ा है, वही बुद्धिमान है।
क्योंकि उस शून्य में खड़े होकर ही सत्य का दर्शन उपलब्ध होता है।
कृष्ण कहते हैं, बुद्धिमानों में मैं बुद्धि हूं।

प्रश्नः भगवान श्री, एक छोटा-सा प्रश्न है। कल आपने दिव्य व्यक्तित्व में अर्थात योगी में मैं तेजस हूं, इसकी चर्चा की। पिछले श्लोक में कहे गए, मैं तपस्वियों में तप हूं, इसका भी अर्थ स्पष्ट करने की कृपा करें।

मैं तपस्वियों में तप हूं। तपश्चर्या नहीं। शब्द तो दोनों एक से हैं। लेकिन तपश्चर्या का जोर होता है कृत्य पर, एक्ट पर। और तप का जोर होता है आंतरिक उपलब्धि पर।
एक तपस्वी है, तपश्चर्या कर रहा है। जो वह तपश्चर्या करता है, वह तो बाहरी कृत्य है, वह तो बाह्य कृत्य है--कि उपवास करता है, कि प्राणायाम करता है, कि आसन करता है, कि धूप में खड़ा होता है, कि शीत में खड़ा होता है-- वह तो बाहरी कृत्य है, एक्ट है। और यह भी हो सकता है कि वह यह सब करता रहे, और भीतर कोई भी तप फलित न हो। क्योंकि यह कोई अज्ञानी भी कर सकता है, कोई अहंकारी भी कर सकता है, कोई एक्जीबिशनिस्ट, जिसको प्रदर्शन का शौक है, वह भी कर सकता है।
और अगर आप अपने तपश्चर्या करने वाले लोगों में खोजबीन करने जाएं, तो
सौ में से नब्बे एक्जीबिशनिस्ट मिलेंगे, जो अपने प्रदर्शन को उत्सुक हैं। और जब भी प्रदर्शन करना हो, तो इस तरह के काम बहुत अच्छे होते हैं।
राबर्ट रिप्ले ने एक घटना लिखी है। कि रिप्ले युवक था, और प्रसिद्ध होना चाहता था। लेकिन प्रसिद्ध होने के लिए उसके पास कोई सीढ़ी न थी। न तो वह किसी मिनिस्टर का रिश्तेदार था; न किसी धनी का भाई-भतीजा था; न किसी यूनिवर्सिटी में प्रवेश के लिए पैसे थे उसके पास। उसके पास कुछ भी नहीं था; लेकिन प्रसिद्ध होना था।
तो उसने गांव के एक बहुत कुशल विज्ञापनदाता से जाकर पूछा कि मुझे प्रसिद्ध होना है, मैं क्या करूं? कोई ऐसी सरल तरकीब बताओ, क्योंकि मेरे पास कोई सहारा नहीं है, कोई सीढ़ी नहीं है, सीधा प्रसिद्ध हो जाऊं। उसने कहा, इसमें कौन-सी बड़ी बात है! तू इधर आ, मेरे पास आ। वह अंदर गया और एक उस्तरा उठाकर लाया। और उसने रिप्ले की आधी खोपड़ी के बाल छांट दिए। आधे बाल अलग कर दिए। रिप्ले ने कहा, यह आप क्या कर रहे हैं? उसने कहा, तू घबड़ा मत। दो दिन में तुझे प्रसिद्ध किए देता हूं। उसने कहा, लेकिन आप कर क्या रहे हैं?
आधे बाल उसने साफ कर दिए और आधी खोपड़ी पर लिख दिया राबर्ट रिप्ले! तेरा नाम, तू जा। पूरे गांव में घूम आ। पर उसने कहा, इसमें बड़ा डर लगता है। उसने कहा, डर मत। अगर तू इतना भी नहीं कर सकता, तो फिर अब मैं क्या करूं! तुझे मैं मिनिस्टर का भतीजा नहीं बना सकता। किसी धनपति से अचानक तेरा कोई

रिश्ता जुड़वा नहीं सकता। यूनिवर्सिटी में दाखिला मैं करवा नहीं सकता। पर तू मेरी मान।
रिप्ले ने लिखा है कि पहले तो बड़ी हिम्मत जुटाई। फिर किसी तरह निकला। लेकिन सच, दो दिन में सब अखबारों में मेरे फोटो छप गए। और जहां से निकल जाता, वहां लोग काम-धंधा बंद करके बाहर आ जाते। और दो दिन में पूरे गांव में लोग मुझे जान गए। न केवल गांव में, बल्कि गांव के बाहर खबरें पहुंचने लगीं। राजधानी तक खबरें पहुंचने लगीं। और कुछ मैंने किया नहीं था, सिर्फ बाल काट लिए थे।
फिर रिप्ले ने कहा, फिर तो ट्रिक मेरे हाथ लग गई। फिर तो मैं जिंदगीभर ऐसे ही काम करता रहा।
उसने पूरे अमेरिका की यात्रा उलटे चलकर की। सारी दुनिया में खबर हुई
और कहा गया कि इतिहास का पहला मनुष्य है, जिसने अमेरिका की यात्रा उलटे चलकर की। एक आईना बांध लिया सामने और चल पड़ा! जुलूस चलता था साथ में। रिप्ले ने लिखा है, लेकिन मेरी जिंदगी बेकार में गई; भीड़ को इकट्ठा करने में गई। एक्जीबिशनिस्ट माइंड! प्रदर्शनकारी मन!
तो तपश्चर्या बहुत कुछ तो प्रदर्शन होती है। अगर आप किसी तपस्वी की बहुत पूजा वगैरह करते हों, तो जरा पूजा वगैरह पंद्रह दिन के लिए हालीडे पर छोड़ दें, बंद कर दें। पंद्रह दिन में तपस्वी भाग जाएगा। क्योंकि जब देखेगा, कोई पूछता नहीं, कोई फिक्र नहीं करता, कोई पैर नहीं दबाता, कोई फूल नहीं चढ़ाता, कोई कुछ नहीं करता। अब क्या मतलब है! भागो इस गांव से; कहीं और जाओ।
तपश्चर्या तो अहंकार की तृप्ति भी हो सकती है। तप क्या है? तप तो सारभूत है। कृत्य नहीं है, आत्मा है। तप का अर्थ है, जब कोई व्यक्ति दुख को दुख नहीं मानता। और ध्यान रखना, दुख को दुख न मानना बहुत बड़ा तप नहीं है। दूसरी बात आपसे कहता हूं, जब कोई व्यक्ति सुख को सुख नहीं मानता है।
दुख को दुख न मानना बहुत बड़ी बात नहीं है, क्योंकि हम सभी चाहते हैं कि दुख दुख न हो। लेकिन सुख को भी जो सुख नहीं मानता। दुख को दुख नहीं मानता; सम्मान को सम्मान नहीं मानता; अपमान को अपमान नहीं मानता; जीवन को जीवन नहीं मानता; मृत्यु को मृत्यु नहीं मानता--तब उसके भीतर एक नए जीवन का संचार शुरू होता है। उसके भीतर तप नाम का तत्व पैदा होता है। उसके भीतर क्रिस्टलाइजेशन--गुरजिएफ ने जो शब्द प्रयोग किया है, क्रिस्टलाइजेशन--कि वह क्रिस्टल बन जाता है उसके भीतर एक।
तप का ठीक अर्थ वही है। तप का अर्थ है, वह व्यक्ति पहली दफे भीतर आत्मवान बनता है। जब तक दुख आपको हिला देता है, आप दुख से कमजोर हैं। सुख हिला देता है, सुख से कमजोर हैं। कोई एक फूल की माला गले में डाल देता है और आप कंप जाते हैं, तो आप फूल की माला से कम कीमती हैं। आपकी कीमत बहुत ज्यादा नहीं है।
मैंने सुना है कि एक करोड़पति एक तालाब में गिर गया था। अनेक लोग खड़े होकर देख रहे थे। एक अजनबी आदमी भी भीड़ में था, वह चिल्लाया कि तुम खड़े होकर क्यों देख रहे हो? आदमी मर रहा है! उसे कुछ पता नहीं था कि वह आदमी कौन है। वह बेचारा कूद पड़ा। उस करोड़पति को, बड़ी मुश्किल से, अपनी जान को जोखिम में डालकर, बचाकर बाहर लाया। जब वह होश में आया धनपति, तो उसने कहा, बहुत-बहुत धन्यवाद। खीसे में उसने हाथ डालकर कुछ खोजा, फिर एक नया पैसा निकालकर उस आदमी को भेंट किया।
सारी भीड़ चिल्लाने लगी कि इसीलिए तो हममें से कोई कूदकर नहीं बचा रहा था। आदमी देखते हैं! एक नया पैसा! उस आदमी ने जिंदगी, जान लगा दी; जोखम में डाला अपने को; और यह एक पैसा उसको इनाम दे रहा है!
एक और आदमी, एक फकीर इस बीच उस भीड़ के पास आकर खड़ा हो गया था। उसने कहा, नाराज मत होओ। नो वन नोज दि वेल्यू आफ हिज लाइफ मोर दैन हिमसेल्फ, उसकी जिंदगी की कीमत उसके सिवाय और किसको ज्यादा मालूम हो सकती है! वह बिल्कुल ठीक दे रहा है। एक नया पैसा! वह अपनी जिंदगी की कीमत ही चुका रहा है। और किसी की जिंदगी का कोई सवाल नहीं है। अगर मर जाता, तो एक नए पैसे का नुकसान हो रहा था दुनिया में। और तो कोई खास नुकसान नहीं था।

उस फकीर ने कहा, नाराज मत होओ। उसके सिवाय कोई भी नहीं जानता कि उसकी जिंदगी की असली कीमत कितनी है। वह ठीक आंक रहा है।
असल में हमारे भीतर हमारी कोई कीमत ही क्या है? असल में हम ही कहां हैं? बीइंग कहां है? हमारे भीतर आत्मा जैसी चीज कहां है?
गुरजिएफ जब कहता है क्रिस्टलाइज्ड, तो उसका मतलब है कि भीतर कुछ पैदा हुआ। और वह पैदा तभी होता है, जब सुख और दुख की संवेदनाएं छूती नहीं। वह पैदा तभी होता है, जब अनुकूल-प्रतिकूल बराबर हो जाता है। वह पैदा तभी होता है, जब द्वंद्वों के बीच में थिरता और समता आती है। समत्व ही तप है।
कठिन है। तपश्चर्या बहुत आसान है; तप बहुत कठिन है।
कृष्ण कहते हैं, तपस्वियों में तप।
वे अनेक-अनेक मार्गों से खबर दे रहे हैं कि मुझे तू कहीं से भी पहचान,
और कहीं से भी खोज। बहुत हैं द्वार मेरे। बहुत हैं मार्ग। लेकिन अगर तू कहीं से भी दृश्य को छोड़कर अदृश्य में उतर सके--तपश्चर्या दृश्य है, तप अदृश्य है--अगर तू कहीं से भी दृश्य को छोड़कर अदृश्य में उतर सके; अगर कहीं से भी रूप को छोड़कर अरूप में; आकार को छोड़कर निराकार में; व्यर्थ को छोड़कर सारभूत में अगर तू जा सके कहीं से भी... ।
तो सब तरफ से वे बात कर रहे हैं। वे कह रहे हैं, कहीं से भी तेरी समझ में आ जाए।
फिर देअर आर मोमेंट्स, कुछ क्षण होते हैं जीवन में, जब समझ पकड़ में आती है। सदगुरु जो है, उसे निरंतर ख्याल रखना पड़ता है कि कभी-कभी ऐसा क्षण आता है।
क्योंकि हमारा चित्त फ्लक्चुएशन में है। हमारा चित्त कभी एक जगह नहीं है। कभी नीचे खाई छूता है, कभी ऊपर शिखर छू लेता है। हमारा चित्त पूरे वक्त नीचे-ऊंचे होते जा रहा है। हमारा चित्त कभी एक तल में नहीं है। सुबह हम नर्क में होते हैं; सांझ हम स्वर्ग में हो जाते हैं। घड़ीभर पहले हम रोते हैं; घड़ीभर बाद हंसी के फूल खिल जाते हैं। हमारा चित्त पूरे वक्त नीचे- ऊंचे हो रहा है।
कृष्ण जैसे व्यक्ति को स्मरण रखना पड़ता है। बहुत-बहुत बार वही-वही बात कहनी पड़ती है, अलग अलग रूपों में। पता नहीं अर्जुन का चित्त कब पीक पर हो, कब शिखर पर हो! और जब वह शिखर पर हो, तभी बात छुएगी। जब वह नीचे घाटी में होगा, तब कोई बात छुएगी नहीं, बात ऊपर से निकल जाएगी। इसलिए बहुत पुनरुक्ति भी करनी पड़ती है।
अनेक लोग गीता के इस हिस्से को पढ़ते हैं, तो वे सोचते हैं कि यह कृष्ण क्या कहे चले जा रहे हैं! यह एक या दो दफे कह देना काफी था। यह बार-बार क्या कह रहे हैं कि मैं इसमें यह, और उसमें वह। एक दफा कह देते कि मैं सनातन कारण हूं; बात तो पूरी हो गई। यह क्यों बार-बार कहे चले जा रहे हैं!
यह बार-बार इसलिए कहे चले जा रहे हैं कि पता नहीं वह क्षण अर्जुन के मन
का कब हो, जब प्रवेश मिल जाए। द्वार सदा बंद होते हैं, कभी खुले होते हैं। और जब खुले होते हैं, तब प्रवेश हो जाता है। कब खुले होते हैं, कहना कठिन है। एकदम कठिन है।
इसलिए पुराने गुरु अपने शिष्यों को सदा पास रखने की कोशिश करते थे। पता नहीं कब, किस क्षण में... ।
एक सूफी फकीर बायजीद तो कभी दिन में शिक्षा ही नहीं देता था। रात जब
सब शिष्य सो जाते, तब वह घूमता रहता। शिष्यों के पास आकर उनकी हृदय की धड़कनें सुनता। शायद उनके सपनों में झांकता। शायद उनके विचारों की पर्तों में उतरता। और जब कभी पाता कि कोई शिष्य उस गहराई में है या उस ऊंचाई में, जहां बात प्रवेश कर सकती है, तो तत्काल उसे उठा लेता और कहता, सुन! और सुनाना शुरू कर देता।
उसके शिष्य कई बार कहते भी उससे कि आप भी क्या पागलपन करते हैं! हम दिनभर बैठे रहते हैं तुम्हारे पास। और यह क्या हिसाब आपने निकाला है कि कभी रात दो बजे उठा लिया! कभी रात तीन बजे उठा लिया!
तो बायजीद कहता कि मैं जानता हूं कि कब तुम सुन पाओगे! कब! तुम जब बैठे होते हो, तब जरूरी नहीं कि तुम वहां मौजूद भी हो। तुम जब मुझे देखते होते हो, तब जरूरी नहीं कि तुम भीतर भी मुझे ही देख रहे हो। किसी और को देखते

होओ! तुम्हारे कान जब मेरी तरफ लगे होते हैं, तब जरूरी नहीं कि तुम मुझे सुनो। तुम न मालूम क्या सुन रहे होओ! मैं उस क्षण की तलाश में होता हूं, जब मैं पाऊं कि हां, ठीक! अब उस जगह तुम हो, जहां मेरी बात तुम तक पहुंच पाएगी। एक तो रास्ता यह है जो बायजीद का है। दूसरा रास्ता कृष्ण का है। युद्ध
के मैदान पर इसका तो कोई उपाय नहीं था जो बायजीद ने किया। तो कृष्ण बहुत बार, बहुत बार, वही-वही बात, अलग-अलग ढंग, अलग-अलग मार्ग से कहे चले जाते हैं। इस आशा में कि कहीं से द्वार खुला मिल जाए। बाएं नहीं मिलता हवा को मार्ग, चलो दाएं घूमें। दाएं न मिले, तो और कहीं घूमें। आगे से नहीं मिलता, तो पीछे के द्वार से मिल जाए।
कृष्ण की हवा अर्जुन के घर के चारों तरफ घूम रही है कि कहीं कोई द्वार, कहीं कोई खिड़की, कहीं कोई रंध्र भी मिल जाए, तो प्रवेश कर जाए। इसलिए वे बार-बार कहे चले जाते हैं।
आज इतना ही।
पर उठेंगे नहीं, क्योंकि इतनी देर में हो सकता है कोई रंध्र, कोई खिड़की आपके भीतर थोड़ी-सी खुली हो। तो एकदम जल्दी न उठ जाएं, नहीं तो बंद हो जाएगी।
इधर ये कीर्तन हमारे संन्यासी करेंगे, तो आपकी खिड़की को जरा थोड़ी देर, पांच मिनट, जितना खुला रख सकें, रखें। शायद यह हवा आपके भीतर जाए, और जो कृष्ण अर्जुन को कह रहे थे, वह आपको भी सुनाई पड़ सके।
और बैठे ही न रहें। ताली बजाएं। धुन में साथ दें। डोलें। आनंदित हों।

गीता दर्शन, भाग तीन
गीता दर्शन अध्याय 7
पांचवां प्रवचन

प्रकृति और परमात्मा

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि।। 12।।
और भी जो सत्व गुण से उत्पन्न होने वाले भाव हैं और जो रजोगुण से तथा तमोगुण से होने वाले भाव हैं, उन सबको तू मेरे से ही होते हैं ऐसा जान, परंतु वास्तव में उनमें मैं और वे मेरे में नहीं हैं।

प्रकृति परमात्मा में है, लेकिन परमात्मा प्रकृति में नहीं है। यह विरोधाभासी, पैराडाक्सिकल सा दिखने वाला वक्तव्य अति गहन है। इसके अर्थ को ठीक से समझ लेना उपयोगी है।
कृष्ण कहते हैं, सत्व, रज, तम, तीनों गुणों से बनी जो प्रकृति है, वह मुझमें है। लेकिन मैं उसमें नहीं हूं।
ऐसा करें कि एक बड़ा वर्तुल खींचें अपने मन में, एक बड़ा सर्किल। उसमें
एक छोटा वर्तुल भी खींचें। एक बड़ा वर्तुल खींचें, और उसके भीतर एक छोटा वर्तुल खींचें, तो छोटा वर्तुल तो बड़े वर्तुल में होगा, लेकिन बड़ा वर्तुल छोटे वर्तुल में नहीं होगा।
प्रकृति तो हमें दिखाई पड़ती है कि असीम है, बहुत विराट; ओर-छोर का कुछ पता नहीं चलता; लेकिन परमात्मा के ख्याल से प्रकृति ना-कुछ है। बहुत छोटा वर्तुल है, बहुत सीमित घटना है। ऐसी अनंत प्रकृतियां परमात्मा में हो सकती हैं, होती हैं; बनती हैं, बिखर जाती हैं। परमात्मा के भीतर ही सब कुछ घटित होता है। इसलिए यह ठीक है कहना, सब कुछ मुझमें है, लेकिन मैं उस सब कुछ में नहीं हूं।
विराट क्षुद्र में नहीं होता, क्षुद्र तो विराट में होता ही है। लहर सागर में होती है, तो सागर कह सकता है, सब लहरें मुझमें हैं, लेकिन मैं लहरों में नहीं हूं। क्योंकि लहरें न रहें तो भी सागर रहेगा, लेकिन सागर न रहे तो लहरें न बचेंगी। हम सोच सकते हैं, सागर का होना बिना लहरों के, लेकिन लहरों का होना नहीं सोच सकते बिना सागर के। लहरें सागर में ही उठती हैं, सागर में ही होती हैं, फिर भी इतनी छोटी हैं कि उस सागर में उठकर भी सागर को घेर नहीं पातीं। घेर भी नहीं सकती हैं।
इस वक्तव्य को देने के कुछ कारण हैं। और साधक के लिए बहुत अनिवार्य है।
कृष्ण जब कहते हैं, यह सारी प्रकृति मुझमें है, फिर भी मैं इस प्रकृति में नहीं हूं, तो दो बातें ध्यान में रख लेने जैसी हैं। एक तो यह कि जो परमात्मा में प्रवेश कर जाए, उसमें प्रकृति होगी। लेकिन जो प्रकृति में ही खड़ा रहे, उसमें परमात्मा नहीं होगा।
जैसे कि कृष्ण को भी भूख लगती है, और कृष्ण को भी नींद आती है, और कृष्ण
के भी पैर में चोट लगती है, तो दर्द और पीड़ा होती है। कृष्ण की मृत्यु हुई; पैर में तीर लगने से हुई। प्रकृति अपना पूरा काम करती है--कृष्ण में भी, महावीर में भी, बुद्ध में भी, जीसस में भी। जब जीसस को सूली पर लटकाया गया, तो प्रकृति ने पूरा काम किया।
हम में भी प्रकृति काम करती है। हम भी खाना खाते हैं, हमारे पैर में भी दर्द होता है, पीड़ा होती है। हमें भी कोई सूली पर लटका दे, तो हम भी मर जाएंगे। लेकिन हमारा सूली पर लटकना और क्राइस्ट के सूली पर लटकने में बुनियादी फर्क होगा। क्योंकि जब क्राइस्ट से प्रकृति छूट रही होगी, तब क्राइस्ट परमात्मा में प्रवेश कर रहे होंगे। और जब हमसे प्रकृति छूट रही होगी, तो हम कहीं प्रवेश नहीं कर रहे होंगे, सिर्फ प्रकृति छूट रही होगी। इसलिए तो मरते समय हम इतने पीड़ित और परेशान हो जाते हैं। क्योंकि प्रकृति के अतिरिक्त हमने कुछ और जाना नहीं। और जब शरीर छूटता है, तो प्रकृति छूट रही है। हम मरे, हम मिटे।

जब क्राइस्ट की प्रकृति छूट रही है, वह छोटा वर्तुल छूट रहा है, तो क्राइस्ट भयभीत नहीं हैं, आनंदित हैं, क्योंकि वे बड़े वर्तुल में प्रवेश कर रहे हैं। लहर मिट रही है, और सागर में प्रवेश हो रहा है। जब हमारी लहर मिटती है, तो सिर्फ लहर मिटती है; सागर का हमें कुछ पता नहीं है। सागर में कोई प्रवेश नहीं होता।
जब आपको भूख लगती है, तो आपको भूख लगती है। और जब कृष्ण को भूख लगती है,
तो प्रकृति को भूख लगती है। और जब आपके पैर में पीड़ा होती है, तो आपको पीड़ा होती है। और जब कृष्ण के पैर में पीड़ा होती है, तो प्रकृति को पीड़ा होती है। कृष्ण तो साक्षी ही होते हैं।
जिस व्यक्ति ने परमात्मा को जाना, वह प्रकृति का साक्षी मात्र रह जाता है। वह छोटा वर्तुल उसे दिखाई पड़ता है, लेकिन वह स्वयं बड़े वर्तुल के साथ एक हो जाता है। लेकिन जिसने परमात्मा को नहीं जाना, उसे तो छोटा वर्तुल ही सब कुछ दिखाई पड़ता है। उसके पार कुछ भी नहीं है। और जब हमारा ध्यान प्रकृति में अतिशय लग जाता है, तो अतिशय लग जाने के कारण ही परमात्मा की तरफ ध्यान जाना मुश्किल हो जाता है।
अठारह सौ अस्सी में यूरोप में अल्तामिरा की गुफाएं खोजी गईं और उन गुफाओं की खोज के वक्त एक बहुत मजेदार घटना घटी। एक बहुत बड़े जमींदार डान मार्शिलानो की जमीन पर अचानक पहाड़ियों में ये गुफाएं मिल गईं। एक कुत्ता भूल से गुफा के भीतर कूद गया। वर्षा में कुछ मिट्टी गलकर गिर गई; गड्ढा हो गया; और कुत्ता उसके अंदर चला गया, फिर निकल न पाया। वहां उसने बहुत शोरगुल मचाया। तब मार्शिलानो के किसान, मजदूर जाकर किसी तरह खोदकर कुत्ते को निकाले। कुत्ता तो निकल आया, साथ में गुफाओं का आविष्कार हो गया। बड़ी गहरी और बड़ी अदभुत गुफाएं थीं। मनुष्य के पूरे इतिहास की दृष्टि उन गुफाओं ने बदल दी।
मार्शिलानो को पता चला, तो वह इतिहास का विद्यार्थी था, उसने तत्काल
सब इंतजाम किया। विशेषकर वह मनुष्य की हड्डियों का अध्ययन कर रहा था वर्षों से। तो उसने सोचा कि ये गुफाएं न मालूम कितनी पुरानी होंगी, तो हड्डियां, कीमती हड्डियां इसमें मिल सकती हैं, और किसानों ने खबर दी कि बहुत अस्थिपंजर हैं।
तो मार्शिलानो ने सर्चलाइट लेकर गुफाओं को खुदवाया और उनमें प्रवेश किया। छः दिन तक रोज घंटों वह सरककर गुफाओं में जाता, एक-एक हड्डी पर नजर रखता। हड्डियां खोजीं उसने बहुत। सातवें दिन उसकी छोटी लड़की ने, जो सात-आठ साल की लड़की थी, उसने कहा, मैं भी अंदर चलना चाहती हूं। वह लड़की को ले गया। आप जानकर हैरान होंगे कि अल्तामिरा की असली गुफाएं उस लड़की ने खोजीं सात साल की। सर्चलाइट लेकर वह जो इतिहासज्ञ पिता था, वह नहीं खोज पाया। बड़ी अदभुत घटना घटी। जब वह लड़की को लेकर गया, तो वह अपना सरककर अपनी हड्डियों की जांच-पड़ताल में लग गया कि जमीन में एक हड्डी भी चूक न जाए; सर्चलाइट पास था। अचानक लड़की चिल्लाई, पिताजी, पिताजी, ऊपर देखिए!
छः दिन से वह जा रहा था रोज, लेकिन उसने ऊपर आंख ही नहीं उठाई थी। वह नीचे हड्डियां बीनने में इतना व्यस्त था कि गुफाओं के ऊपर सीलिंग पर क्या है, उसने नजर न डाली थी। सीलिंग पर तो इतने अदभुत चित्र थे, जैसे कल रंगे गए हों। और ठेठ बीस हजार साल पुराने चित्र निकले।
अल्तामिरा की गुफाएं सारे जगत में प्रसिद्ध हो गईं उन चित्रों के कारण। इतने अदभुत चित्र थे कि जिसने भी उन्हें बनाया होगा, पिकासो से कम सामर्थ्य का चित्रकार नहीं था। तो सारा इतिहास बदलना पड़ा। क्योंकि ख्याल था कि पुराने जमाने में तो किसी आदमी के पास इतनी बड़ी कला नहीं हो सकती। लेकिन पाया यह गया कि वे जो अल्तामिरा की गुफाओं पर जो जानवरों के चित्र हैं, सांड के चित्र हैं, वे इतने कलात्मक हैं और इतने अदभुत हैं कि आज भी कोई चित्रकार उनका मुकाबला नहीं कर सकता।
हैरान हुआ मार्शिलानो कि वह छः दिन से रोज सर्चलाइट लेकर आ रहा था, लेकिन सर्चलाइट उसका जमीन पर लगा था। वह हड्डियां खोज रहा था कि कोई हड्डी चूक न जाए। तो ऊपर नजर नहीं गई।
यह मैं इसलिए कह रहा हूं कि हम सब भी जब तक प्रकृति में हड्डियां खोजते रहते हैं... । बड़ा सर्चलाइट हमारे पास है। लेकिन ऊपर सीलिंग की तरफ

नहीं उठ पाता, वह परमात्मा की तरफ नहीं उठ पाता। टू मच आक्युपाइड जमीन पर सरकने में और प्रकृति में खोज करने में। हड्डियों की ही खोज है; कुछ और बहुत खोज नहीं है। जब आप कामवासना में खोज रहे हैं, तो हड्डियों से ज्यादा कुछ भी नहीं खोज रहे हैं। और जब आप सिंहासनों पर चढ़ने में खोज कर रहे हैं, तब भी हड्डियों से ज्यादा कुछ नहीं खोज रहे हैं। हड्डियों को ही चढ़ा रहे हैं सिंहासनों पर। जब आप धन खोज रहे हैं, तो सिर्फ हड्डियों की सुरक्षा खोज रहे हैं; और कुछ भी नहीं खोज रहे हैं। जब आप शक्ति खोज रहे हैं, तो हड्डियों के लिए केवल इंतजाम कर रहे हैं सिक्योरिटी का; और कुछ भी नहीं कर रहे हैं।
प्रकृति में उलझा हुआ मन ऊपर की तरफ नहीं उठ पाता। उसे नहीं देख पाता
वह, जो वृहत वर्तुल है, वह जो ग्रेटर सर्किल है। जिसकी कृष्ण बात कर रहे हैं, मुझमें है प्रकृति, लेकिन मैं प्रकृति में नहीं हूं। उस तरफ नजर नहीं उठ पाती है।
तो जो प्रकृति में उलझा है, वह कृष्ण के वचन से ठीक से समझ ले, क्योंकि
इस बात की भ्रांति है कि अगर कृष्ण यह कहते कि मैं प्रकृति में हूं और प्रकृति मुझमें है, तो भी गलत नहीं था। क्योंकि छोटा वर्तुल अगर बड़े वर्तुल में है, तो बड़ा वर्तुल भी किसी न किसी अर्थ में छोटे वर्तुल में है। अगर लहर सागर में है, तो सागर कितने ही क्षुद्रतम अर्थों में, लहर के भीतर है। तर्क किया जा सकता है। क्योंकि यह असंभव है कि बड़ा वर्तुल छोटे वर्तुल में न हो, तो छोटा वर्तुल बड़े वर्तुल में कैसे हो सकेगा? माना कि पूरा बड़ा वर्तुल छोटे वर्तुल में नहीं हो सकेगा, अंश ही होगा; लेकिन होगा तो ही। लेकिन कृष्ण उस तर्क को मद्दे-नजर कर रहे हैं, जानकर। क्योंकि एक बार आदमी को यह पता चल जाए और यह ख्याल में आ जाए कि प्रकृति में परमात्मा है और परमात्मा में प्रकृति है, तो शायद हम प्रकृति से ऊपर नजर उठाने को कभी राजी न हों। कभी राजी न हों। क्योंकि हम कहें कि जब प्रकृति में ही परमात्मा है--खाने-पीने में, कपड़े पहनने में, मकान बनाने में--तो फिर और परमात्मा की खोज की जरूरत क्या है? जब इस शरीर में ही परमात्मा है, तो फिर शरीर ही परमात्मा हो जाएगा। हम तत्काल इस बात को अपने मतलब की तरफ झुका लेंगे।
और आदमी बड़ा कुशल है, वह सब चीजों के अर्थ अपनी तरफ झुका लेता है। क्योंकि दो ही रास्ते हैं। या तो अर्थ की तरफ आप झुकिए, या तो सत्य की तरफ आप झुकिए; या सत्य को अपनी तरफ झुका लीजिए। अन्यथा बेचैनी अनुभव होगी। जिस दिन कोई जानेगा बड़े वर्तुल को, परमात्मा को, उस दिन वह शायद यह भी जान ही लेगा कि प्रकृति भी उसमें ही है, वह भी प्रकृति में है। लेकिन हमसे यह कहना, यह सत्य कहना, खतरनाक है। कहना इसलिए खतरनाक है कि अगर हमें यह बात पक्की हो जाए कि हम जो कर रहे हैं, उसमें भी परमात्मा है, तो फिर शायद परमात्मा की तरफ नजर उठाने का ख्याल ही मिट जाए। जरूरत भी नहीं रह जाती। इसलिए कृष्ण बहुत सोच-विचारकर कहते हैं, प्रकृति मुझमें है अर्जुन, लेकिन मैं प्रकृति में नहीं हूं। तो तू प्रकृति में कितना ही खोजता रहे, मुझे न पा सकेगा। हां, मुझे पा ले, तो प्रकृति तो पाई ही हुई है।
यह भी बहुत मजे की बात है। कोई आदमी कितना ही धन खोजे, धनी नहीं हो पाता। लेकिन कोई आदमी परमात्मा को खोज ले, तो दरिद्रता भी धन हो जाती है। जीसस का वचन है, सीक यी फर्स्ट दि किंगडम आफ गॉड, देन आल एल्स विल बी एडेड अनटु यू। खोज लो पहले प्रभु के राज्य को, और फिर सब--सब--साथ में मिल जाएगा।
लेकिन हम सबको खोजने चलते हैं, प्रभु को छोड़कर। तब प्रभु तो मिलता ही नहीं, सबमें से भी कुछ नहीं मिलता है। सिर्फ दौड़-धूप; और आखिर में राख हाथ में लगती है--सपनों की राख, आशाओं की राख। यश कोई कितना ही खोजे, यश हाथ लगेगा नहीं। और कोई परमात्मा को खोज ले, तो यशस्वी हो जाता है, तत्क्षण। कोई कितना ही प्रेम खोजे, प्रेम मिलेगा नहीं। और कोई प्रार्थना को खोज ले, तो जीवन प्रेम की सुगंध से भर जाता है; ऐसी सुगंध से, जो फिर कभी चुकती नहीं।
हम कुछ भी खोजें प्रकृति में, हमारे हाथ में कुछ लगेगा नहीं; मिट्टी- पत्थर ही लगेंगे। यद्यपि प्रत्येक मिट्टी-पत्थर के भीतर परमात्मा छिपा

है। लेकिन जो प्रकृति में खोजने चला है, वह परमात्मा के प्रति अंधा होता है। वह नैरोड, उसकी कांशसनेस तो हड्डियों में अटकी रहती है, नीचे। वह ऊपर की तरफ नहीं उठ पाता है।
कितनी निकट थीं अल्तामिरा की वे चित्रावलियां! जरा-सा तो सर्चलाइट ऊपर उठाना था। सर्चलाइट हाथ में था। जरा तो आंख ऊपर करनी थी। लेकिन जो नीचे खोजने में लगा है, उसकी आंख ऊपर नहीं उठ पाती।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, सत्व, रज, तम, सब मुझमें हैं अर्जुन, लेकिन मैं उनमें नहीं हूं।
बड़ी मजेदार बात है। अगर कोई आदमी परमात्मा के बिना सात्विक भी हो जाए,
तो भी धार्मिक नहीं हो सकता। अगर कोई व्यक्ति परमात्मा के बिना सात्विक भी हो जाए, परम सात्विक हो जाए, तो भी धार्मिक नहीं हो सकता। और कोई व्यक्ति कितना ही तामसिक और कितना ही राजसिक हो, अगर परमात्मा में प्रवेश कर जाए, तो तत्काल सात्विक हो जाता है।
अगर आदमी अपने ही बल से सात्विक हो जाए, तो सिवाय अहंकार के और कुछ निर्मित नहीं होता। पायस, पवित्र अहंकार निर्मित होता है। और कोई व्यक्ति कितना ही बुरा हो, दीन हो, हीन हो, पापी हो, और परमात्मा में छलांग लगा जाए, तो तत्काल, जैसे आग में कचरा जल जाए, ऐसे परमात्मा की आग में सब पाप जल जाते हैं।
और परमात्मा में जब कुछ जलता है, तो अहंकार नहीं बचता, वह भी जल जाता है। और आदमी जब कुछ भी जलाए, कुछ भी मिटाए, कुछ भी बनाए, एक चीज पीछे बची रह जाती है--मैं पीछे बचा रह जाता है।
इसलिए सात्विक से सात्विक व्यक्ति भी एक सूक्ष्म अहंकार से पीड़ित रहता है। और परमात्मा तभी उपलब्ध होता है, जब अहंकार की पतली से पतली, बारीक से बारीक दीवाल भी बीच में न रह जाए। और कोई बाधा नहीं है।
कृष्ण का भी मतलब वही है, जो क्राइस्ट का है, कि पहले तू परमात्मा को खोज।
अर्जुन क्या कह रहा है? अर्जुन यह कह रहा है कि मुझे इस युद्ध से जाने दो। यह तामसिक, राजसिक मालूम पड़ता है। मैं सात्विक होना चाहता हूं। मुझे हट जाने दो। यह सब बात बड़ी गड़बड़ मालूम पड़ती है। यह लोगों को मारना--यश के लिए, धन के लिए, राज्य के लिए--क्षुद्र मालूम पड़ता है। यह मेरे सात्विक मन को प्रीतिकर नहीं लगता; यह श्रेयस्कर नहीं है। मुझे जाने दो कृष्ण, मुझे हट जाने दो, इस युद्ध से। इससे तो बेहतर भीख मांगकर जी लेना होगा। इससे तो बेहतर भिखारी हो जाना होगा। इससे तो बेहतर किसी वृक्ष के नीचे, किसी अरण्य में बैठ जाऊंगा, प्रार्थना में डूब जाऊंगा। यह सब मैं नहीं करना चाहता हूं। यह बड़ा तामसिक मालूम पड़ता है।
कृष्ण कहते हैं, सत्व, रज, तम, सब मुझमें हैं, लेकिन मैं उनमें नहीं हूं। इसलिए अगर तू सात्विक भी हो जाए मेरे बिना, मुझे समर्पित हुए बिना, तो तेरे सत्व से भी कुछ हल न होगा। अगर तू अपने ही हाथ से स्वर्ग में भी पहुंच जाए, तो तेरा अहंकार साथ होगा और सब स्वर्ग नर्क हो जाएंगे। क्योंकि असली नर्क तेरे पीछे ही चलता रहेगा; तेरे साथ ही चलता रहेगा। तू पहले मुझे पा ले और फिर तू बात करना सत्व, रज और तम की; फिर तू बात करना प्रकृति की। पहले तू मुझे पा ले।
धर्म की और नीति की यही बुनियादी दूरी है। नीति कहती है, सात्विक हो जाओ। धर्म कहता है, धार्मिक हो जाओ। नीति कहती है, पहले अपने कर्म बदलो, आचरण बदलो। धर्म कहता है, पहले प्रभु में प्रवेश कर जाओ। क्योंकि तुम क्या आचरण बदलोगे और तुम्हारा बदला हुआ आचरण तुम्हारा ही बदला हुआ होगा। वह तुमसे बड़ा नहीं हो सकता। तुम क्या सदाचरण करोगे? वह तुमसे ही निकलेगा। वह तुमसे महत्वपूर्ण नहीं हो सकता। जैसे कोई आदमी अपने जूते के बंद पकड़कर खुद को नहीं उठा सकता, ऐसे ही कोई आदमी अपने ही द्वारा सदाचरण को उपलब्ध नहीं हो सकता। आप ही तो सदाचरण करेंगे--आप ही। यह थोड़ा समझने जैसा है।
एक आदमी चोर है। और वह चोर कहता है कि मैं कोशिश कर रहा हूं कि अचोर हो जाऊं, चोरी छोड़ दूं। अब चोर ही तो चोरी छोड़ने की कोशिश करेगा! चोर ही कोशिश करेगा चोरी छोड़ने की। यह जूते के बंद पकड़कर अपने को उठाने से भी कठिन काम

है। यह होने वाला नहीं है। क्योंकि अगर चोर इस योग्य होता कि चोरी उससे न होती होती, तब तो बात ही और थी, लेकिन यह बात नहीं है।
चोर चोर है। और कसम खा रहा है कि मैं चोरी नहीं करूंगा। वह अपने साथ भी चोरी कर जाएगा।
एक आदमी क्रोधी है और वह कह रहा है, मैं क्रोध नहीं करूंगा। लेकिन उसे पता नहीं है कि जो यह कह रहा है, नहीं करूंगा, यह भी उसका क्रोधी स्वभाव है, जो कसम ले रहा है, जो संकल्प बांध रहा है कि मैं क्रोध नहीं करूंगा। सौ में सौ ही मौके इस बात के हैं कि यह क्रोध ही बोल रहा हो कि मैं क्रोध नहीं करूंगा। अब वह दिक्कत में पड़ेगा।
जैसे कभी-कभी कुत्ते को आपने देखा हो कि अपनी पूंछ पकड़ने की दिक्कत में पड़ जाता है। जोर से छलांग लगाता है। पूंछ बिल्कुल पास मालूम पड़ती है। जरा सा मुंह पास पहुंच जाए, तो पूंछ पकड़ में आ जाए। लेकिन बेचारे कुत्ते को पता नहीं; कुत्ते को क्या, हमारे तथाकथित तपस्वियों, नैतिक साधकों को भी पता नहीं, तो कुत्ते का तो कोई कसूर नहीं है।
जब पूंछ बिल्कुल करीब दिखाई पड़ती है, तो कुत्ता सोचता है कि जरा ही मुंह बढ़ा लूं, तो पूंछ पकड़ में आ जाए। मुंह बढ़ाता है, लेकिन तब तक पूंछ हट जाती है। क्योंकि वह मुंह से ही पीछे जुड़ी है, यह उसे पता नहीं है। जब छूटती है, तो और जोर से कूदता है। सोचता है कि शायद थोड़ा कम कूदा, इसलिए पूंछ पकड़ में नहीं आ सकी। पर जितने जोर से कूदता है, पूंछ भी उतने ही जोर से कूदती है। अब एक विसियस सर्किल, एक दुष्टचक्र पैदा होता है, जिसमें कुत्ता दिक्कत में पड़ेगा, थकेगा, परेशान होगा; कभी पूंछ पकड़ में आएगी नहीं।
जब कोई हिंसक आदमी कहता है कि अब मैं अहिंसक होने की कोशिश करूंगा, तब
वह आदमी कुत्ते के तर्क पर चल रहा है। नहीं; आप अपने में बदलाहट न ला सकेंगे। क्योंकि लाएगा कौन बदलाहट? आप ही!
इसलिए कृष्ण कहते हैं, या क्राइस्ट कहते हैं, कि परमात्मा की तरफ पहले नजर उठा लो, फिर बदलाहट आ जाएगी। क्योंकि तब तुम परमात्मा के हाथ में होओगे, और उसके हाथ में पड़ते ही बदलाहट शुरू हो जाती है। उसकी तरफ आंख उठाते ही बदलाहट शुरू हो जाती है, क्योंकि आप दूसरे ही आदमी हो जाते हैं। उसकी तरफ नजर पड़ते ही सब कुछ बदल जाता है। क्योंकि जैसे ही विराट दिखाई पड़ता है, वैसे ही हमारी क्षुद्रताएं गिर जाती हैं, कि हम भी कैसे पागल थे! हम खोज क्या रहे थे? हम पाने की कोशिश क्या कर रहे थे?
बुद्ध के पास एक स्त्री सुबह-सुबह आई है। उसका लड़का मर गया है और बुद्ध गांव में रुके हैं। तो वह छाती पीटती हुई आई और उसने कहा कि मैं तुम्हारी बातें तभी सुनूंगी, जब तुम मेरे लड़के को जिंदा कर दो। लोग कहते हैं, तुम भगवान हो। तो भगवान ने तो इतना बड़ा जगत बनाया, तुम मेरे इस लड़के को ही जिंदा कर दो।
बुद्ध के संन्यासी, भिक्षु मुश्किल में पड़ गए। अब क्या होगा! बुद्ध ने कहा, कर दूंगा सांझ तक। एक छोटा-सा काम तू पहले मेरे लिए कर ला। गांव में जा--मैं इसे जिंदा करने की दवाई बुला रहा हूं--और किसी भी घर से सरसों के बीज ले आ, उस घर से, जिसमें कोई कभी मरा न हो। जा, सांझ तक लेकर आ जाना। बस, तू सरसों के बीज ले आना उस घर से जिसमें कोई कभी न मरा हो; मैं इसे सांझ जिंदा कर दूंगा।
औरत खुशी से भागी पागल होकर, जरूर किसी न किसी के घर में सरसों के बीज मिल जाएंगे, और उसका बेटा जिंदा हो जाएगा। लेकिन एक-एक घर के द्वार पर उसने दस्तक दी। जिस घर में भी गई, वहीं लोगों ने कहा, सरसों के बीज तो हैं। अभी- अभी फसल कटी है। तो बुद्ध ने कोई बड़ी कठिन दवाई नहीं मांगी है। लेकिन हमारे घर के सरसों के बीज काम न पड़ेंगे। हमारे घर में तो बहुत लोग मरे हैं। सांझ तक एक-एक घर छान डाला। और सांझ तक हर घर पर यही बात सुनकर कि हर घर में कोई मरा है, और मृत्यु जीवन का नियम है, वह स्त्री सुबह रोती हुई आई थी, सांझ हंसती हुई आई।
बुद्ध ने कहा, ले आई सरसों के बीज? उस स्त्री ने कहा, सरसों के बीज तो नहीं लाई, लेकिन बड़ी बुद्धिमत्ता लेकर आई हूं। बच्चे को लौटा दें। मैं अपनी प्रार्थना वापस लेती हूं। उसे जिंदा करने की कोई जरूरत नहीं। बुद्ध ने कहा, इतनी जल्दी कैसे तू बदल गई?

उस स्त्री ने कहा कि जिस तथ्य की तरफ मेरी कभी आंख ही न उठी थी, उस तथ्य
का दर्शन होते ही सब बदल गया। जब सभी मरते हैं, और जब सभी को मरना है, तो मेरे बेटे के साथ भी अपवाद कैसे हो सकता है! नहीं; अब मैं दुखी नहीं हूं। और अब मैं लड़के को जिलाने की प्रार्थना वापस लेने आई हूं। और आपसे यह भी प्रार्थना करने आई हूं कि आज से मैं भी समझिए कि मर गई, क्योंकि मर ही जाऊंगी। मरने के पहले जीवन को जानने की कोई विधि हो, तो मुझे बताएं। अब सदा जीने की कोई आकांक्षा नहीं है, क्योंकि मृत्यु तथ्य है; इसलिए अब मृत्यु का कोई भय भी नहीं है। लेकिन जब तक जी रही हूं, तब तक जीवन को जानने की कोई विधि हो, तो मुझे बताएं।
बुद्ध ने कहा, दिनभर में तेरी इतनी बड़ी बदलाहट! वह तो सांझ संन्यासिनी
हो गई। उसने बुद्ध से उसी सांझ दीक्षा ली।
किस बात से यह बदलाहट हुई? एक तथ्य की तरफ दृष्टि उठी--एक बड़े तथ्य की तरफ--कि मृत्यु जीवन का हिस्सा है।
जिस दिन परमात्मा की तरफ दृष्टि उठेगी, कि प्रकृति परमात्मा का हिस्सा है; जिस दिन ऊपर की तरफ देखेंगे, उस विराट की तरफ, जिसमें सारी प्रकृति समाई हुई है; उस दिन आप दूसरे आदमी हो जाएंगे। उस दिन चोरी असंभव होगी। उस दिन क्रोध असंभव होगा। उस दिन बेईमानी मुश्किल हो जाएगी। उस दिन बेईमानी ऐसी ही होगी, जैसे कोई आदमी अपने एक खीसे से रुपए चुराकर दूसरे खीसे में रख ले। बस! ऐसे कुछ लोग हैं कि अपने ही एक खीसे से चुराकर अपने ही दूसरे खीसे में रख लेते हैं। सभी लोग ऐसे हैं, अगर सत्य दिखाई पड़े तो। क्योंकि आपका खीसा भी सिर्फ थोड़ी दूर, मेरा ही खीसा है।
जिस दिन परमात्मा दिखाई पड़े, उस दिन चोरी असंभव है, क्योंकि सबमें ही परमात्मा दिखाई पड़ेगा। अपनी ही चोरी कौन करता है? वह तो चोरी हम करते इसलिए हैं कि दूसरा दूसरा है। और जिस दिन परमात्मा दिखाई पड़े, उस दिन सब मालकियत का ख्याल खो जाता है। क्योंकि जब असली मालिक का पता चल गया, तो हमें पता चल जाता है कि हम मालिक नहीं हैं, और हम मालिक नहीं हो सकते। जब मालकियत ही नहीं हो सकती, तो क्या चोरी? क्योंकि चोरी तो मालकियत की व्यवस्था है, किसी तरह मालकियत कायम करने की चेष्टा है।
कृष्ण कहते हैं, मुझमें तो सारी प्रकृति है, लेकिन मैं प्रकृति में नहीं हूं। तू मुझे खोज ले, तो पूरी प्रकृति तुझे मिल जाए। और तूने प्रकृति खोजी, तो तू मुझे न पा सकेगा। इसलिए तू सत्व गुण की बात मत कर। तू यह तम और रज की निंदा मत कर। ये तीनों मुझमें हैं। पर तू मेरी बात कर; तू मेरी शरण आ। टुकड़ों की बात मत कर; पूरे की बात कर। खंडों की बात मत कर; पूर्ण की बात कर। खंडों में पूर्ण है, लेकिन पूर्ण में खंड नहीं है। यह आध्यात्मिक गणित का एक कीमती सूत्र है। कहां से शुरू करनी है यात्रा, उसे स्मरण दिलाने के लिए कृष्ण ने ऐसा कहा है।
एक छोटी-सी घटना मुझे याद आती है। सुना है मैंने कि कनफ्यूसियस के जमाने में चीन में दो चीनियों ने आमने-सामने दुकान खोली, होटल। एक का नाम था यिन और दूसरे का नाम था यांग; उन दोनों ने दुकानें खोलीं। दोनों की दुकानें अच्छी चलने लगीं, बहुत जोर से चलने लगीं। धन इकट्ठा होने लगा, तिजोड़ी भरने लगी। लेकिन दोनों का दुख भी बड़ा होने लगा, जैसा कि अक्सर होता है। सफलता के साथ न मालूम कैसी गहरी उदासी आने लगती है। क्योंकि आप अकेले ही सफल नहीं होते, दूसरा भी सफल हो रहा होता है।
दोनों परेशान हो गए। दोनों की दुकान अच्छी चलती है। भीड़-भड़क्का होता है। ग्राहक काफी आते हैं। लेकिन दोनों परेशान हो गए। दोनों का हृदय-चाप बढ़ गया। दोनों की नींद हराम हो गई। अनिद्रा पकड़ गई। दोनों चिकित्सकों का चक्कर लगाने लगे, लेकिन कोई रास्ता न सूझे। धन बढ़ता गया और बेचैनी बढ़ती चली गई। बेचैनी यह थी कि दोनों अपने-अपने काउंटर पर बैठकर देखते थे कि दूसरे की दुकान में कितने ग्राहक जा रहे हैं, उनकी गिनती करते थे। रात परेशान होते थे कि इतने ग्राहक चूक गए; अपने पास भी आ सकते थे। चिकित्सकों ने कहा कि हम तुम्हारा इलाज न कर पाएंगे, क्योंकि यह बीमारी शारीरिक नहीं है। तुम कनफ्यूसियस के पास चले जाओ। उन्होंने कहा, कनफ्यूसियस इसमें क्या करेगा? वह उपदेश देगा। उपदेश से कुछ होने वाला नहीं है। सवाल असल यह है कि दूसरे की दुकान पर ग्राहक बहुत जा रहे हैं, और

उन्हें हम देखते हैं। आंख बंद कर नहीं सकते हैं। सामने ही दुकान है। छाती पर चोट लगती है। हर बार एक आदमी भीतर प्रवेश करता है, फिर छाती पर चोट लगती है। नींद न जाएगी, तो होगा क्या!
फिर भी, चिकित्सकों ने कहा, तुम कनफ्यूसियस के पास जाओ। वह आदमी होशियार है, और वह आदमी की गहरी बीमारियों को जानता है।
वे दोनों गए। कनफ्यूसियस ने तरकीब बताई और वह काम कर गई और दोनों स्वस्थ हो गए। बड़ी मजेदार तरकीब थी। शायद ही इस जमीन पर किसी और होशियार आदमी ने ऐसी तरकीब कभी बताई हो।
कनफ्यूसियस ने कहा, पागलो। बड़ा सरल-सा इलाज है। दुकानें चलने दो, तुम एक-दूसरे के काउंटर पर बैठने लगो। यिन यांग के काउंटर पर बैठे, यांग यिन के काउंटर पर बैठे, तब तुम दोनों का चित्त बड़ा प्रसन्न होगा। दूसरे की दुकान में जो घुस रहे हैं, वे अपनी ही दुकान में जा रहे हैं! तुम ऐसा कर लो।
और कहते हैं, उन दोनों ने ऐसा कर लिया और उस दिन से उनकी सब बीमारियां समाप्त हो गईं। वे दिनभर बैठे मजा लेते रहते कि ठीक! काफी लोग जा रहे हैं अपनी दुकान में! वह दूसरे की दुकान अपनी हो गई अब।
जिस दिन कोई परमात्मा को झांक लेता है, उस दिन सब दुकानें अपनी हो जाती हैं, सब कुछ अपना हो जाता है। उस दिन भीतर की प्रफुल्लता का कोई अंत नहीं है। उस दिन फूल खिलते हैं भीतर के। सहस्र पंखुड़ियों वाला फूल उस दिन खिलता है भीतर का, क्योंकि उस दिन हम परम आनंद में विराजमान हो जाते हैं। सब अपने हैं। सब अपना है। सारा विराट अपना है।
लेकिन जो प्रकृति में खोजने जाएगा, वह न खोज पाएगा इसे। इसे तो परमात्मा में कोई खोजने जाएगा, तो प्रकृति में भी पा लेगा।
टेनिसन ने कहा है, एक वृक्ष के पास से निकलते हुए, एक दीवाल के पास से निकलते हुए, जिसमें एक छोटा-सा घास का फूल खिला है; निकलते वक्त उसने कहा है कि अगर मैं इस छोटे-से फूल के राज को समझ लूं, तो मुझे सारी दुनिया का राज समझ में आ जाए।
लेकिन अगर वह कृष्ण से पूछे, तो कृष्ण कहेंगे, तू कभी इस फूल के राज को
न समझ पाएगा। अगर तुझे सारी दुनिया का राज समझ में आ जाए, तो इस फूल का राज समझ में आ सकता है।
धर्म की दृष्टि पूर्ण से नीचे की तरफ यात्रा करती है। अधर्म की दृष्टि खंड से ऊपर की तरफ यात्रा करती है। धर्म अवतरण है पूर्ण से नीचे की ओर। और हमारी सब सोच-समझ, हमारी तथाकथित सांसारिक समझ, नीचे से ऊपर की तरफ चढ़ाव है--एक-एक कदम, एक-एक सीढ़ी।
ध्यान रहे, पर्वत से उतरना सदा आसान है; पर्वत पर चढ़ना बहुत कठिन है। सबसे बड़ी कठिनाई तो यही होती है पर्वत पर चढ़ने में कि जिस कदम पर आप खड़े होते हैं, वहां आपने जो इकट्ठा कर लिया होता है, वही अगले कदम उठाने में बाधा बनता है। और हर कदम पर आप कुछ इकट्ठा करते चले जाते हैं। यश, धन, मान, सम्मान, मित्र, प्रियजन इकट्ठा करते हैं हर कदम पर। फिर हर अगले कदम पर यही फांसी बन जाते हैं; यही बोझ की तरह चारों तरफ लटक जाते हैं। ये कहते हैं, कहां जाते हो? हमें छोड़कर कहां जाते हो? ये सब तिजोड़ियां छाती से अटक जाती हैं।
ऊपर से नीचे की तरफ उतरना बड़ा ही सुगम है, जैसे सूरज की किरण उतरती है। नीचे से ऊपर की तरफ जाना बहुत कठिन है।
कृष्ण यह कह रहे हैं कि प्रकृति की तरफ अगर तूने ध्यान दिया, तो तू मुझ
तक न आ पाएगा। यद्यपि प्रकृति मुझमें है, फिर भी तू मुझ तक न आ पाएगा, क्योंकि मैं छिपा हूं। और जो तुझे दिखाई पड़ेगा, वह मैं नहीं हूं; जो नहीं दिखाई पड़ेगा, वह मैं हूं। हां, तू मुझे देख ले, अदृश्य को; जब तू अदृश्य को देख लेगा, तो दृश्य में देख लेना तो बहुत सरल है।
जब कोई आदमी ध्वनिरहित ध्वनि को सुन ले, तो फिर ध्वनि को सुनना कठिन नहीं है। और जब कोई शब्दरहित शब्द को जान ले, तो फिर शब्दों को पहचानना कठिन नहीं है। और जब कोई विराट को देख ले, तो क्षुद्र को देखने में क्या अड़चन है!
इसलिए कृष्ण का तर्क, या कृष्ण की पद्धति पूर्ण से शुरू करने की है। समस्त धर्म की पद्धति पूर्ण से शुरू करने की है। समस्त विज्ञान की पद्धति

खंड से, टुकड़े से शुरू करने की है, फ्राम दि पार्ट। और धर्म की पद्धति, फ्राम दि होल। वही विज्ञान और धर्म की पद्धतियों का बुनियादी भेद है। विज्ञान शुरू करता है एटम से, अणु से। और अणु से छोटी चीज मिले, तो उससे। और भी छोटी चीज मिल जाए, तो उससे। जितनी क्षुद्र मिल जाए, विज्ञान उससे शुरू करेगा। क्योंकि जितनी क्षुद्र हो, आदमी अपने हाथ में उसे उतनी ही आसानी से ले सकता है। जितनी क्षुद्र हो, उतना ठीक से विश्लेषण हो सकता है। जितनी क्षुद्र हो, प्रयोगशाला में प्रयोग हो सकता है। जितनी क्षुद्र हो, आदमी उसका मालिक हो सकता है।
और धर्म शुरू करता है विराट से। निश्चित ही फर्क पड़ेगा। विराट को आप अपने हाथ में नहीं ले सकते। अगर विराट को जानना है, तो आपको स्वयं ही विराट के हाथों में गिर जाना होगा। क्षुद्र को आप अपने हाथ में ले सकते हैं। प्रयोगशाला की परखनली में जांच सकते हैं। काट-पीट कर सकते हैं। क्षुद्र के आप मालिक हो सकते हैं। लेकिन विराट के मालिक आप नहीं हो सकते हैं। विराट को ही आपको अपना मालिक बना लेना होगा।
इसलिए पूर्ण से जब धर्म शुरू होता है, तो समर्पण उसकी विधि हो जाती है। और चूंकि विज्ञान क्षुद्र से शुरू होता है, इसलिए संघर्ष उसकी विधि होती है। इसलिए विज्ञान सोचता है इन टर्म्स आफ कांकरिंग, जीतने की भाषा में। और धर्म सोचता है हारने की भाषा में, आदमी कैसे हार जाए परमात्मा के चरणों में।
इसलिए कृष्ण कहते हैं कि मैं तो छिपा हूं इस सब क्षुद्र में भी, लेकिन
तू मुझसे शुरू कर।

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम्।। 13।।
गुणों के कार्यरूप सात्विक, राजस और तामस, इन तीनों प्रकार के भावों
से यह सब संसार मोहित हो रहा है, इसलिए इन तीनों गुणों से परे मुझ अविनाशी को तत्व से नहीं जानता।

प्रकृति के मोह में सारे ही लोग हैं। अलग-अलग कारण होंगे मोह के, अलग-अलग बहाने होंगे। बस, बहाने ही अलग-अलग होते हैं, मोह का परिणाम एक ही होता है।
बड़ा क्रांतिकारी सूत्र है! सत्व, रज, तम, तीनों से ही जो मोहित हैं, वे मेरे तत्व को न जान पाएंगे, क्योंकि मैं बियांड हूं, मैं पार हूं तीनों के। इसको समझना पड़ेगा। क्योंकि हमें लगता है, चोर नहीं जान पाएगा, बेईमान नहीं जान पाएगा; लेकिन हमें लगता है, सज्जन तो जान लेगा! सज्जन तो सत्व से मोहित है। हम कहते हैं, वह आदमी नहीं जान पाएगा, जो सिर्फ धन कमा रहा है। वह आदमी तो जान लेगा, जो जाकर मरीजों की सेवा कर रहा है! हम कहते हैं, वह आदमी भला न जान पाए, जो आदमी सिर्फ राजनीति की सीढ़ियां चढ़ रहा है। लेकिन वह आदमी तो जान लेगा, जो दीन-दुखियों के पैर दाब रहा है।
कृष्ण कहते हैं, सत्व, रज, तम, तीनों ही! वह जो बुरा दिखाई पड़ता है, वह
तो मोहित है ही। वह जो भला दिखाई पड़ता है, वह भी मेरी ही प्रकृति के सत्व गुण से हिप्नोटाइज्ड है, वह भी मोहित है। यह बड़े मजे का है, और कठिन है थोड़ा; और थोड़ा जटिल है जानना।
समझिए कि आप अपनी दुकान पर बैठे हैं, और आज अगर ग्राहक न आए, तो आप दुखी होते हैं। लेकिन आपको पता है कि किसी सेवक को अगर कोई सेवा करवाने वाला न मिले, तो आपसे कम दुख नहीं होता। इतना ही दुख हो जाता है। फर्क क्या हुआ? माना कि वह काम अच्छा कर रहा था, लेकिन परिणाम तो एक ही है।
अगर समाज इतना सुखद हो जाए, इतना मंगल को उपलब्ध हो जाए कि किसी व्यक्ति को समाज में समाज-सुधार के काम करने का मौका न मिले, तो आप जानते हैं, समाज-सुधारकों की कैसी हालत हो जाए! बड़ी मुश्किल में पड़ जाएं, बड़ी बेचैनी में। वह बेचैनी ठीक वैसी ही होगी, जैसे अचानक धंधा डूब जाए; ग्राहक न आएं; फैशन बदल जाए; आपकी दुकान की चीजें बिकनी बंद हो जाएं। वह पीड़ा उतनी ही होगी।

सत्व भी, अच्छा काम भी बिना परमात्मा को समर्पित हुए सिर्फ एक मोह है,
और उससे भी अहंकार ही निर्मित होता है। इसलिए जिनको हम सात्विक लोग कहते हैं, वे भी अपने ढंग से अपनी अस्मिता को मजबूत करने में लगे रहते हैं। परमात्मा के अतिरिक्त--वह जो पार है, वह जो परा है प्रकृति के ऊपर, उसके अतिरिक्त--सभी सम्मोहन है। सभी मोह के आधार बन जाते हैं; सभी मन को पकड़ लेते हैं, और सभी मन को मूर्च्छित कर देते हैं।
कृष्ण को यह कहने की जरूरत क्या है अर्जुन से? अर्जुन सत्व से मोहित
हो रहा है, इसलिए कहने की जरूरत है।
बुद्ध के पास एक आदमी आया है एक सुबह और बुद्ध के चरणों में सिर रखकर उसने कहा, मुझे कुछ बताएं कि मैं दुनिया का कल्याण कर सकूं। बुद्ध ने उसकी तरफ नीचे देखा और कहा कि तू अपना ही कर ले, तो काफी है। तू दुनिया को क्यों मुसीबत में डालना चाहता है! तू अपना ही कर ले तो काफी है। तेरा कल्याण हो चुका? उसने कहा कि मैं कोई स्वार्थी आदमी नहीं हूं। मुझे मेरी फिक्र ही नहीं है; मुझे तो दुनिया की फिक्र है। बुद्ध ने कहा, जिसका खुद का दीया बुझा हो, वह किसके दीए जला सकेगा!
मगर वह आदमी कह रहा है, मैं स्वार्थी नहीं हूं, मुझे दुनिया की फिक्र है। लेकिन यह आदमी अगर कल्याण करने जाए, तो किसी के जले दीए और बुझा देगा। इससे कल्याण हो नहीं सकता।
परमात्मा के सिवाय कल्याण हो नहीं सकता। आदमी कैसे कल्याण करेगा? आदमी होना ही एक बीमारी है, एक डिसीज। और वह कहता है कि नहीं, मेरी उत्सुकता मुझमें, अपने आपमें नहीं है। मेरी उत्सुकता तो यह है कि दूसरों का भला कैसे हो!
बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को कहा कि देखो, यह एक पवित्र अहंकारी है। इसको यह भी अहंकार है कि यह स्वार्थी नहीं है। तो बुद्ध ने कहा, पहले तू अपना स्वार्थ तो साध ले। तू पहले स्वयं को तो जान ले। उसने कहा कि इन सब बातों में मुझे मत डालें। दुनिया में बड़ी तकलीफ चल रही है और मुझे सब बदलना है और सब ठीक कर देना है।
ये ठीक करने वाले हजारों साल से ठीक कर रहे हैं, दुनिया की तकलीफ बढ़ती जाती है, कम नहीं होती। अब तो ऐसा लगने लगा है कि किसी तरह समाज का समाज-सुधारकों से छुटकारा हो जाए, तो थोड़ी राहत मिले।
असल में दूसरे को बदलने और ठीक करने का भी एक रस है। और सारी दुनिया को ठीक कर देने में भी एक बड़ी मौज है, बड़ा रस है। और हरेक इस ख्याल से जीता है कि मैं सारी दुनिया को ठीक कर दूंगा।
खुद को ठीक करना बहुत मुश्किल पाकर लोग दुनिया को ठीक करने निकल जाते हैं! खुद से बचने के लिए लोग हजार उपाय खोज लेते हैं। खुद की बीमारियां दिखाई न पड़ें, खुद की परेशानियां दिखाई न पड़ें, खुद की परेशानियों से पलायन हो जाए, तो दूसरे की परेशानियों में लग जाते हैं। भुलाने की तरकीबें हैं; लेकिन सात्विक हैं बातें, इसलिए मजा भी है।
चोर को तो आप कह भी दें कि तू बुरा काम कर रहा है, नष्ट कर रहा है अपने को। साधु को कैसे कहिएगा? वह तो सेवा कर रहा है। वह तो कोई बुरा काम कर नहीं रहा है। वह तो स्कूल खोल रहा है; धर्मशाला बना रहा है; अस्पताल बना रहा है। कोई बुरा काम नहीं कर रहा है। कोढ़ियों की मालिश कर रहा है; कोई बुरा काम नहीं कर रहा है।
लेकिन कृष्ण कहते हैं, सत्व, रज, तम, तीनों! चाहे कोई ऐसा कृत्य, जो बुरा हो; और चाहे कोई ऐसा कृत्य, जो भला हो; और भले और बुरे की तरफ दौड़ने की जो प्रवृत्ति है, वे तीनों ही प्रकृति हैं। और अर्जुन, तू ठीक से समझ ले कि जब तक इन तीन से कोई मोहित हुआ जी रहा है, तब तक वह मुझ पार को, वह जो अतीत है, वह जो अतिक्रमण कर जाता है, उसको उपलब्ध नहीं हो सकेगा।
इसका अर्थ? इसकी निष्पत्ति?
इसकी निष्पत्ति यह हुई कि परमात्मा को पाने के लिए बुरे के तो ऊपर उठना ही पड़ता है, भले के भी ऊपर उठ जाना पड़ता है। परमात्मा को पाने के लिए असदवृत्तियों को तो छोड़ ही देना पड़ता है, सदवृत्तियों को भी छोड़ देना पड़ता है। असल में उस परम स्वतंत्रता के लिए लोहे की जंजीरें तो तोड़नी ही पड़ती हैं, सोने की जंजीरें भी तोड़ देनी पड़ती हैं।

और ध्यान रहे, लोहे की जंजीरों से अक्सर ही सोने की जंजीरें ज्यादा जंजीरें सिद्ध होती हैं। क्योंकि लोहे की जंजीर को तो तोड़ने का मन भी होता है; सोने की जंजीर को बचाने का भी मन होता है। सोने की जंजीर आभूषण मालूम पड़ने लगती है। इसलिए बुराई से तो कोई आदमी उठने की तैयारी दिखलाता है, लेकिन भलाई से तो उठने की तैयारी भी नहीं दिखलाता।
तो कृष्ण कहते हैं, तू सत्व की बातों में मत पड़ अर्जुन। तू यह साधुता
की बातें मत कर। क्योंकि मुझे पाए बिना कोई भी साधु नहीं है। उसके पहले सिर्फ धोखा है मन का। कुछ लोग बुरे ढंग से अपने को धोखा देते हैं, कुछ लोग भले ढंग से अपने को धोखा देते हैं। कुछ लोग दूसरों को नुकसान करके अपने को धोखा देते हैं, कुछ लोग दूसरों को लाभ पहुंचाकर अपने को धोखा देते हैं। लेकिन धोखा तब तक जारी रहता है, जब तक कोई प्रकृति के गुणों के ऊपर न उठ जाए।
नहीं; चित्त ऐसी अवस्था में चाहिए जहां न बुरा खींचता हो, न भला खींचता हो। न आकर्षित करती हों बीमारियां--क्रोध, काम, लोभ; न आकर्षित करते हों तथाकथित फूल--सेवा, सदभाव, मंगल, कल्याण। नहीं; कोई भी आकर्षित न करता हो।
और जब दोनों में से कोई भी आकर्षित नहीं करता, तो चित्त ठहर जाता है। नहीं तो दौड़ता रहता है। कभी बुरे के लिए, कभी भले के लिए; कभी साधु होने के लिए, कभी असाधु होने के लिए; दौड़ जारी रहती है। चित्त तो रुकता ही तब है, जब दोनों से मुक्त हो जाता है। और जब चित्त दोनों से मुक्त होता है, तब एक नए आयाम में यात्रा शुरू होती है, अंतर्यात्रा या ऊर्ध्वयात्रा शुरू होती है। तब व्यक्ति प्रकृति के ऊपर उठकर परमात्मा को अनुभव कर पाता है। इसलिए हमने इस देश में साधु को वह मूल्य नहीं दिया, जो संत को दिया। साधु और असाधु ठीक है; एक ही दुनिया के रहने वाले लोग हैं। एक के हाथ में लोहे की जंजीरें हैं। एक के हाथ में सोने की जंजीरें हैं। एक बुरे कामों में उलझा है, लेकिन व्यस्त है उसी तरह, जैसा दूसरा भले कामों में उलझा है और व्यस्त है, आक्युपाइड है। लेकिन दोनों की नजरें जमीन पर लगी हैं। दोनों में से कोई आकाश की तरफ नहीं देख रहा है।
हमने उसे संत कहा है, जो न भले में उलझा है, न बुरे में। जो उलझा ही नहीं है; जिसने जमीन से नजर ऊपर उठा ली; जिसने आकाश को देखा है; जिसने परमात्मा को पहचाना है।
इसका यह मतलब नहीं है कि परमात्मा को पहचानने के बाद वह साधु नहीं होगा। वह साधु होगा। वही साधु होगा। लेकिन बुनियादी अंतर पड़ जाएंगे। जिसने परमात्मा को नहीं पहचाना, उसकी साधुता असाधुता के खिलाफ एक संघर्ष होती है, एक सतत संघर्ष। असाधु भीतर मौजूद रहता है। वह तमस भीतर मौजूद रहता है। सत्व की लड़ाई चलती रहती है।
साधु का मतलब है, जिसने क्रोध को भीतर दबाया है; अक्रोधी हुआ। जिसने चोरी को भीतर दबाया; अचोर हुआ। जिसने परिग्रह को दबाकर छोड़ा; अपरिग्रही हुआ। जिसने अहंकार को दबाया, और विनम्र हुआ। लेकिन वे सब भीतर बीमारियां कतारबद्ध मौजूद हैं, और प्रतीक्षा कर रही हैं कि कब आप विश्राम करिएगा! कब! कब थोड़ा-सा अवकाश लेंगे अपने संघर्ष से!
इसलिए साधु रात सोने तक में डरते हैं, क्योंकि सोने में विश्राम हो जाता है। और जिस-जिस को दिन में दबाया है, वह सब सपना बनकर छाती पर घूमने लगता है। इसलिए साधु जरा भी विश्राम लेने में डरते हैं कि कहीं भी जरा विश्राम लिया और वह संघर्ष अगर थोड़ा भी शिथिल हुआ, तो मालूम है उन्हें भलीभांति कि दुश्मन मौजूद है।
सब साधु अपने भीतर असाधु को दबाए हुए हैं। और जब तक असाधु मौजूद है, साधु सिर्फ सतह है। भीतर तो सब उबल रहा है लावे की तरह। ज्वालामुखी की तरह भीतर आग लगी है। अभी धुआं दिखाई नहीं पड़ रहा; अभी ज्वालामुखी फूटा नहीं; लेकिन इससे ज्वालामुखी नहीं है, ऐसा कहने की कोई जरूरत नहीं। ज्वालामुखी भीतर तैयारी कर रहा है।
संत हम उसे कहते हैं, जो असाधुता से लड़कर साधु नहीं है। संत हम उसे कहते हैं, जिसने परमात्मा को देखा, और परमात्मा को देखने से साधु हो गया। कोई संघर्ष नहीं है। किसी को दबाया नहीं, किसी से लड़ा नहीं। इसलिए संत

विश्राम से नहीं डरेगा। डरने का कोई सवाल ही नहीं है। उसे विपरीत की संभावना ही नहीं है। उसके भीतर से, परमात्मा को देखने से, असाधुता गिर गई। संत वह है, जिसकी असाधुता गिर गई; और साधुता पनपी, प्रकट हुई। और साधु
वह है, जिसने असाधुता को दबाया, और साधुता को कल्टिवेट किया, साधुता का अभ्यास किया; साधुता को थोपा, आरोपित किया। साधु की तरह अपने को नियोजित किया, संयमित किया; अपने को बनाया, तैयार किया। साधु की तरह जिसने अपने ऊपर मेहनत की। इसमें आदमी की मेहनत है। आदमी की मेहनत ज्यादा दूरगामी नहीं हो सकती। आदमी हमेशा प्रकृति से हार जाएगा। आदमी प्रकृति से बहुत कम है। मैंने आपसे कहा, अब मैं एक और छोटा वर्तुल आपसे बनाने को कहता हूं। मैंने कहा, एक बड़ा वर्तुल खींचें, वह परमात्मा है। उसमें एक छोटा वर्तुल खींचें, वह प्रकृति है। उसमें और एक छोटा-सा वर्तुल खींचें, वह आदमी है। मैंने आपसे कहा कि प्रकृति परमात्मा में है, लेकिन परमात्मा प्रकृति में नहीं है। अब मैं आपसे दूसरी बात कहता हूं। आदमी प्रकृति में है, लेकिन प्रकृति आदमी में नहीं है। वह आदमी और छोटा वर्तुल है।
तो आदमी प्रकृति के खिलाफ लड़ेगा अगर, तो हारेगा। प्रकृति से लड़ नहीं सकता; वह बड़ी है, उससे विराट है। प्रकृति आदमी में है, छिपी पूरी भीतर, गहरे में। आदमी उसका छोटा-सा हिस्सा दबाए हुए है। इसलिए आप रोज प्रकृति से हारते हैं, लेकिन आपको ख्याल नहीं आता कि आप अपने से बड़ी शक्ति से लड़ रहे हैं; हारेंगे ही।
जब आप क्रोध से हारते हैं, तो आपको पता है, आप किससे लड़ रहे हैं? आप सोचते हैं कि क्रोध छोटी-मोटी चीज है। क्रोध छोटी-मोटी चीज नहीं है; प्रकृति का हिस्सा है। उसकी जड़ें गहरी हैं; आपके खून से ज्यादा गहरी; आपकी हड्डियों से ज्यादा गहरी; आपकी बुद्धि से ज्यादा गहरी। इसलिए आप हजार दफे तय कर लेते हैं बुद्धि से कि अब क्रोध नहीं करूंगा, और जब क्रोध आता है, तो पता नहीं बुद्धि कहां फिंक जाती है, और क्रोध आ जाता है। क्रोध गहरा है। आप ऊपर-ऊपर निर्णय करते रहते हैं, भीतर प्रकृति आपकी फिक्र नहीं करती।
अगर प्रकृति से आपने अपने ही भरोसे जीतने की कोशिश की, तो आप रोज हारेंगे। कभी-कभी साधु मालूम पड़ेंगे, फिर असाधुता प्रकट हो जाएगी। फिर साधु बनेंगे, फिर असाधुता प्रकट हो जाएगी। प्रकृति आपको हराती ही रहेगी। अगर प्रकृति को हराना है, तो आदमी के भरोसे नहीं, बड़े वर्तुल, परमात्मा के भरोसे हराया जा सकता है। आदमी के भरोसे नहीं। तब सहारा उसका लें; उस बड़े वर्तुल के साथ सहारा लें। उसके साथ तत्काल जीत हो जाती है। उसके साथ प्रकृति उसी तरह हार जाती है, जैसे आपके साथ प्रकृति से आप हार जाते हैं।
प्रकृति से आप लड़ेंगे, तो आप हारेंगे। अगर परमात्मा को लड़ाएंगे, तो प्रकृति हारी ही हुई है; कोई सवाल नहीं है। कोई सवाल नहीं है, क्योंकि परमात्मा और भी प्रकृति के गहरे में है।
आप, जैसा मैंने कहा, सागर, सागर पर उठी लहरें, लहरों पर तैरता हुआ एक तिनका, ऐसा समझ लें। सागर परमात्मा, लहरें प्रकृति, और आप एक छोटे-से तिनके हैं लहरों के ऊपर। आप लहरों से भी नहीं लड़ सकते हैं। लहर से भी हार जाएंगे। आप कितना ही निर्णय करें कि हम तो लहर के ऊपर रहेंगे; लहर की मर्जी कि कब नीचे गिरा दे। लेकिन सागर का सहारा ले लें, तो फिर लहर कुछ भी नहीं है। क्योंकि सागर के सामने लहर की क्या औकात! क्या वश!
परमात्मा में निष्ठा का अर्थ, या परमात्मा के प्रति परायण होने का अर्थ, या परमात्मा में समर्पित होने का इतना ही अर्थ है कि प्रकृति से मनुष्य की सीधी लड़ाई असंभव है। हम परमात्मा में समर्पित होते हैं, समर्पित होते ही लड़ाई समाप्त हो जाती है। परमात्मा को देखते ही प्रकृति शांत हो जाती है--देखते ही।
यह करीब-करीब ऐसा ही घटित होता है, जैसे कि स्कूल के क्लास के बच्चे खेल रहे हैं, शोरगुल कर रहे हैं, और शिक्षक भीतर आया, और सब शांति हो गई। बच्चे अपनी जगह बैठ गए हैं; उन्होंने किताबें खोल लीं; अपना काम करने लगे।
अभी शोरगुल था, अब सब शांत हो गया।
ठीक ऐसे ही परमात्मा की तरफ आंख उठते ही प्रकृति एकदम शांत हो जाती है। मालिक आ गया। प्रकृति का कोई उपाय नहीं रह जाता। लेकिन आप! आप तो

प्रकृति के एक छोटे-से टुकड़े हैं, तिनके, और प्रकृति से लड़ने की कोशिश कर रहे हैं।
सात्विक होने की चेष्टा बिना धार्मिक हुए, बिना परमात्मा में समर्पित हुए, प्रकृति से लड़ने की चेष्टा है। इन तीनों के पार है प्रभु। जब आपके चित्त में तीन चीजें न हों, तब आपका चित्त परमात्मा की तरफ उठेगा; सत्व न हो, तम न हो, रजस न हो। इनको थोड़ा-सा समझ लें कि कैसी स्थिति होगी, जब ये तीनों न होंगे।
बुरा करने की भावना न हो, भला करने की भावना न हो, जब ये दोनों भावनाएं नहीं होतीं, तो वह जो करने वाली ऊर्जा है, वह जो रजस है, वह जो शक्ति है... । ये दो काम करने के केंद्र बिंदु हैं। वह जो शक्ति है, जो करती है, जब ये दोनों नहीं रहते--बुरा करने का भाव नहीं, भला करने का भाव नहीं--तब वह जो शक्ति है, वह कहां जाए? और शक्ति तो कहीं जाएगी ही। अगर आप मार्ग न देंगे, तो भी जाएगी। अब न बुरे की तरफ जा सकती है, न भले की तरफ जा सकती है, तो अब कहां जाए?
जब दोनों दिशाएं बंद हो जाती हैं, तो शक्ति ऊपर की तरफ, तीसरे, थर्ड डायमेंशन में, तीसरी यात्रा पर उठने लगती है। और वह तीसरी यात्रा पर परमात्मा है, जहां न शुभ है, न अशुभ है। जहां दोनों नहीं, जहां द्वंद्व नहीं; जहां अद्वय है, जहां अद्वंद्व है, जहां अद्वैत है। उसकी एक झलक, और सारी प्रकृति शांत हो जाती है।
फिर कृष्ण कहते हैं कि तू उस झलक को पा ले और फिर तू बात करना साधुता की। करने की जरूरत न रहेगी; तू साधु हो जाएगा। तू साधु हो ही जाएगा। उसकी नजर पड़ी, कि तू बदला; तेरी नजर उस पर पड़ी, कि तू बदला। एक दफा उस दर्शन को... । यह दर्शन शब्द बड़ा अदभुत है। इसका अर्थ है, एक दफा उसका दीदार, उसका दर्शन, एक दफे वह दिख जाए, बस। और उसे देखने के लिए इन तीन के ऊपर जाना जरूरी है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, मैं इन तीनों के पार हूं। इन तीनों तक प्रकृति है, ऐसा तू जानना। और जब इन तीनों के पार उठे, तब तू मुझे देख, और जान पाएगा।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।। 14।।
यह अलौकिक अर्थात अति अदभुत त्रिगुणमयी मेरी योगमाया बड़ी दुस्तर है, परंतु जो पुरुष मेरे को ही निरंतर भजते हैं, वे इस माया का उल्लंघन कर जाते हैं अर्थात संसार से तर जाते हैं।

दुस्तर है, कठिन है, आर्डुअस है, अलौकिक है, बड़ी शक्ति है प्रकृति की, क्योंकि है तो परमात्मा की ही शक्ति। कठिन है, क्योंकि हम उसी शक्ति से निर्मित हैं, हमारा सब कुछ। सिर्फ हमारे भीतर जो परमात्मा है, उसे छोड़कर। हमारा शरीर, हमारा मन, हमारी बुद्धि, हमारा सब कुछ प्रकृति से ही निर्मित है। जब हम मिट्टी से लड़ते हैं, तो हम मिट्टी को ही लड़ा रहे हैं। हम प्रकृति से ही प्रकृति को लड़ा रहे हैं। तो हम न जीत पाएंगे। बहुत दुस्तर हो जाएगी बात।
कृष्ण कहते हैं, विचित्र है, अदभुत है, अलौकिक है, असाधारण है यह शक्ति! क्योंकि शक्ति तो आखिर परमात्मा की ही है। माना कि कितनी ही छोटी लहरें हों, फिर भी हैं तो सागर की। यह सोचकर कि लहरें हैं, उनसे जूझ मत जाना। हमें डुबाने को तो वे लहरें भी काफी हैं। क्योंकि हम तो लहरों में भी और छोटी लहर हैं। कठिन है, अगर आदमी अपने बलबूते लड़े। कठिन है, अगर अपने पर ही भरोसा रखकर लड़े। अगर सोचता हो कि मैं ही पार कर लूंगा, तो कठिन है। लेकिन कृष्ण कहते हैं, कठिन नहीं भी है, संभव भी है, अगर कोई मेरा सहारा ले ले। अगर कोई दिन-रात मुझे ही भजे, अगर कोई दिन-रात मुझको ही समर्पित रहे, अगर कोई मेरे ही हाथ में सारी बात छोड़ दे और कहे कि ठीक, अब तुम्हीं नाव को खेओ। अब मैं छोड़ता हूं; अब तुम मुझे ले चलो, जहां ले चलना हो। अगर कोई मुझ पर भरोसा कर सके, ट्रस्ट कर सके, तो बड़ी सरल है।

विराट शक्ति के साथ भरोसा हो, तो लड़ाई बहुत आसान है। खुद आदमी लड़ने की कोशिश करे, तो लड़ाई बहुत कठिन है; जीतना करीब-करीब असंभव है; हारना ही सुनिश्चित है। विराट के साथ हार असंभव है; विराट के साथ जीत सुनिश्चित है। लेकिन विराट के हाथों में अपने को छोड़ने के लिए कृष्ण कहते हैं, दिन-रात मुझे ही भजे। क्या मतलब होगा दिन-रात भजने का? क्या कोई आदमी कृष्ण-कृष्ण, कृष्ण-कृष्ण कहता रहे? कई लोग कह रहे हैं। कुछ दिखाई नहीं पड़ता कि कुछ हुआ हो।
नहीं; भजना इतनी साधारण बात नहीं है। इसका यह मतलब भी नहीं है कि कोई कृष्ण-कृष्ण न कहे। भजना बहुत भाव की दशा है। भजने का अर्थ है, एक अंतःस्मरण। जहां भी, जो भी दिखाई पड़ जाए, उसमें कृष्ण का ही स्मरण। फूल दिखे, तो पहले फूल का ख्याल न आए, पहले ख्याल कृष्ण का आए। फिर कृष्ण फूल में खिल जाए; फिर फूल कृष्णरूप हो जाए। भोजन को बैठें, तो पहले ख्याल भोजन का न आए, कृष्ण का आए। पेट में भूख लगे, तो पहले ख्याल यह न आए कि मुझे भूख लगी है; पहले ख्याल आ जाए, कृष्ण को भूख लगी है। ऐसा रोएं-रोएं में, उठते- बैठते, चलते-सोते; सांझ जब रात बिस्तर पर गिरने लगें, तो ऐसा ख्याल न आए कि मैं सोने जा रहा हूं; ऐसा ख्याल आए कि मेरे भीतर वह जो कृष्ण है, अब विश्राम को जाता है।
और यह शब्द से नहीं, यह भाव से। मैं तो आपसे कहूंगा, तो शब्द से ही कहूंगा। लेकिन यह भाव से ख्याल आए। घर में आपके एक बच्चा पैदा हो, तो ऐसा न लगे कि बच्चा पैदा हुआ है; ऐसा लगे कि कृष्ण आए, या परमात्मा आया। कोई भी नाम से कोई अंतर नहीं पड़ता, क्योंकि सभी नाम उसी के हैं। लेकिन भाव यह हो कि परमात्मा है। सभी स्थितियों में--सुख में, दुख में, विपदा में, संपदा में--सभी स्थितियों में उसका ही स्मरण बना रहे। सभी कुछ उसको ही समर्पित हो जाए।
ऐसा जो दिन-रात भजे कोई, तो विराट से सम्मिलन शुरू हो जाता है। क्योंकि हमारी चेतना उसी तरफ बहने लगती है, जिस तरफ हमारी स्मृति होती है।
स्मृति चेतना के लिए चैनेलाइजेशन है।
जैसे हम नहर बनाते हैं नदी में। नहर नहीं बनाते, तो नदी बहती है, जहां उसे बहना होता है। नहर बना देते हैं, तो फिर नदी नहर से बहती है। और जहां हमें ले जाना होता है, नदी वहां पहुंच जाती है।
स्मरण या जिसे संतों ने स्मृति कहा है, सुरति कहा है, बुद्ध ने राइट माइंडफुलनेस कहा है, सम्यक स्मृति; या और कोई सुमिरन या और भी नाम हैं हजार। भाव में प्रवेश कर जाए यह बात। सुबह जब नींद खुले, तो ऐसा न लगे कि मैं जग रहा हूं; ऐसा लगे कि मेरे भीतर परमात्मा जागा। और यह शब्द से नहीं; ऐसा आप सुबह उठकर कहें कि मेरे भीतर परमात्मा जागा, उससे बहुत अर्थ नहीं है। क्योंकि कहने का मतलब ही यह है कि आपको भाव पैदा नहीं हो रहा है। भाव पैदा हो, तो कहने की जरूरत नहीं है।
भाव और शब्द में फर्क है। शब्द धोखा देते हैं। एक आदमी बार-बार किसी
से कहता है, मैं बहुत प्रेम करता हूं; मैं बहुत प्रेम करता हूं। तब वह धोखा देने की कोशिश कर रहा है। क्योंकि जब प्रेम होता है, तो प्रेम शब्द-शून्य होता है; कहने की भी जरूरत नहीं होती पूरे प्राणों से प्रकट होता है; रोएं- रोएं से प्रकट होता है।
मां बच्चे से कह भी नहीं सकती कि मैं तुझे प्रेम करती हूं। कैसे कहेगी! बच्चा भाषा भी नहीं जानता। फिर भी बच्चा पहचानता है। रोएं-रोएं से, मां के चारों तरफ, प्रेम बहने लगता है। कोई भाषा नहीं है।
और बड़े मजे की बात है, मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अगर बच्चे को मां के पास बड़ा न किया जाए, तो फिर वह जिंदगी में किसी को भी प्रेम न कर पाएगा-- किसी को भी। और मजा यह है कि मां कभी बच्चे से कहती नहीं कि मैं तुझे प्रेम करती हूं, क्योंकि वह तो भाषा भी नहीं जानता; उससे कहने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन उसे छाती से लगा लेती है। भाव की कोई धारा दोनों की छातियों के बीच आदान-प्रदान हो जाती है। उसकी आंखों में झांकती है। भाव की कोई धारा एक-दूसरे की आंख से उतर जाती है। उसका हाथ हाथ में लेती है, और भाव की कोई धारा हाथ-हाथ के पार चली जाती है। शब्द नहीं।

इसलिए मनोवैज्ञानिक यह भी कहते हैं कि कोई भी व्यक्ति अपनी पत्नी से तृप्त नहीं हो पाएगा। उसका कारण है कि प्रत्येक व्यक्ति उस प्रेम को खोज रहा है, जो उसने मां से पाया था। मनोवैज्ञानिक इसको ऐसा कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी पत्नी में अपनी मां को खोज रहा है, जो कि बहुत मुश्किल मामला है। मिल नहीं सकता! इसलिए कभी तृप्ति नहीं हो सकती।
वह जो अनूठा प्रेम था--शब्दहीन, निःशब्द, मौन; जाना था जिसे, किसी ने कहा नहीं था कभी; किसी ने दावा नहीं किया था; लेकिन फिर भी बहा था और पहचाना था--उसी प्रेम की तलाश चल रही है जिंदगीभर। वह प्रेम फिर दुबारा नहीं मिलेगा, इसलिए बेचैनी है, इसलिए कठिनाई है, इसलिए अड़चन है।
मां की खोज चल रही है। वह नहीं मिलती। वह नहीं पकड़ में आती फिर कभी। वह कहां मिलेगी? वह कैसे मिल सकती है? उसका उपाय भी न के बराबर है। फिलहाल तो नहीं है। पर उसने तो कभी कहा नहीं था। पत्र नहीं लिखे थे; कोई प्रेम-पत्र नहीं लिखे थे, बड़े दावे नहीं किए थे। लेकिन फिर दावे करने वाले लोग आते हैं। दावे बहुत होते हैं, और भीतर कुछ भी नहीं होता।
सुना है मैंने कि एक प्रेमी अपनी प्रेमिका से कह रहा है कि अगर आग भी बरसती हो, तो भी तुझे बिना देखे मैं नहीं रह सकता। अगर प्रलय भी आ जाए, तो भी तुझे बिना देखे मैं नहीं रह सकता। अगर एटम बम भी बरसता हो, तो भी मैं तुझे देखे बिना नहीं रह सकता। फिर उसकी प्रेयसी ने, जब वह विदा हो रहा था, उससे पूछा कि कल आने वाले हो या नहीं? उसने कहा कि देखो; अगर सांझ वर्षा न हुई, तो मैं जरूर आ जाऊंगा।
वह जो बेचारा कह रहा था, प्रलय आ जाए, आग बरसती हो, वह कह रहा है, कल अगर वर्षा न हुई, तो जरूर आ जाऊंगा! दावे हैं फिर, लेकिन दावों के पीछे कोई भाव नहीं है।
यह जो स्मरण है, यह जो प्रभु-परायण होने की बात है, यह जो कृष्ण कहते हैं, मुझे ही जो भजे चौबीस घंटे, इसका अर्थ? इसका अर्थ है, जो भाव से मुझमें जीए। उठे-बैठे कहीं भी, भाव से मुझमें रहे। चले-फिरे कहीं भी, भाव से मुझमें रहे। करे कुछ भी, भाव से मुझमें रहे। एक अंतर्धारा भाव की मेरी तरफ बहती रहे, बहती रहे, बहती रहे। धीरे-धीरे वह नहर खुद जाती है, जिससे व्यक्ति और परमात्मा के बीच सेतु बन जाता है।
और एक बार वह सेतु निर्मित हो जाए, फिर इस प्रकृति से ज्यादा निर्बल कोई चीज नहीं है। यह बहुत निर्बल है। बहुत दीन है प्रकृति। लेकिन जब तक वह सेतु न बने, महाशक्तिशाली है प्रकृति। क्योंकि ये सब तुलनात्मक वक्तव्य हैं। हमारी तुलना में प्रकृति बहुत शक्तिशाली है। परमात्मा की तुलना में कोई सवाल ही नहीं उठता। कोई प्रश्न ही नहीं है।
इसलिए आदमी अगर अपने पर भरोसा करे, तो उलझाएगा अपने को। और जब से आदमियत ने, पूरी आदमियत ने अपने पर भरोसा करना शुरू किया है, और जब से ऐसा लगा है कि ईश्वर को बीच में आने की कोई भी जरूरत नहीं है, हम काफी हैं; मैन इ.ज इनफ, पर्याप्त है आदमी; तब से हमने आदमी की समस्याएं करोड़ गुना गहरी और गहन कर दी हैं। और सुलझाव कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। रोज उलझाव बढ़ता चला जाता है।
एक समस्या सुलझाते हैं, तो सुलझाने में पच्चीस नई समस्याएं खड़ी कर लेते हैं। उनको सुलझाने जाते हैं कि और हरेक समस्या से पच्चीस समस्याएं खड़ी होती हैं। सारा मनुष्य एक समस्या हो गया है; सिर्फ एक समस्या; जिसे कहीं से भी छुओ, और समस्या! जैसे सागर को कहीं से भी चखो, और नमकीन, नमक। ऐसे आदमी को कहीं से भी छुओ, और समस्याएं निकल आती हैं। कुछ भी करो, और समस्याएं। सब तरफ समस्याएं फैल गई हैं। क्या बात हो गई है?
असल में प्रकृति से लड़कर हम जो कर रहे हैं, उससे यही होना निश्चित था। प्रकृति दुस्तर है, उससे लड़ा नहीं जा सकता। उससे लड़कर हम सिर्फ अपने ऊपर मुसीबत बुला सकते हैं। हां, थोड़ी देर हम अपने को भ्रम में रख सकते हैं कि हम लड़ रहे हैं, और जीत जाएंगे। हम थोड़ी देर आशाएं बांध सकते हैं। लेकिन सब आशाएं धूल-धूसरित हो जाती हैं; सब मिट्टी में मिल जाती हैं।
फिर भी आदमी अजीब है, अब तक उसे ख्याल नहीं आया। और हम एक-दूसरे को हिम्मत बढ़ाए चले जाते हैं। बाप बेटे को कहता है, कोई फिक्र नहीं; मैं नहीं जीता, तू जीत जाएगा। जरा परिस्थितियां ठीक न थीं। शिक्षक विद्यार्थी को

कहे जाता है, कोई फिक्र नहीं। हम नहीं जान पाए कि सत्य क्या है, लेकिन तुम जान लोगे, क्योंकि अब ज्ञान और काफी विकसित हो गया है।
सुना है मैंने, एक आदमी एक रास्ते से गुजर रहा है, एक गरीब गधे को लिए हुए है। उसके ऊपर सामान काफी लादा हुआ है। जितना गरीब गधा हो, उतना ज्यादा सामान लाद देते हैं लोग! लेकिन रास्तेभर के लोग बड़े हैरान हैं, क्योंकि वह चिल्ला-चिल्ला कर कई नाम ले रहा है, और गधा एक है। कभी कहता है, शाबाश कल्लू! कभी कहता है, शाबास हीरा! कभी कहता है, शाबास माणिक! गधा एक है, और नाम इतने ले रहा है!
एक आदमी का आखिर धीरज टूट गया और उसने जाकर पास पूछा कि माफ करना, इस गधे का नाम क्या है? उसने कहा, इसका नाम कल्लू है। तो इतने नाम क्यों ले रहे हो? उसने कहा, ताकि इसको भरोसा बना रहे कि और भी गधे लदे हैं। और सब चल रहे हैं, तो मैं भी क्यों परेशान! चलता रहूं। उस कुम्हार ने कहा कि जरा मास-साइकोलाजी का उपयोग कर रहा हूं, भीड़ का मनोविज्ञान।
अगर गधे को पता चले कि अकेले कल्लू ही चल रहे हैं, तो बहुत मुश्किल में
पड़ जाएंगे। वे बैठ जाएं, कि नहीं चलते! कोई दुनिया में नहीं चल रहा है, हम ही क्यों परेशान हों! लेकिन चारों तरफ गधे चल रहे हैं--माणिक भी, हीरा भी-- सब चल रहे हैं, तो कल्लू भी चल रहे हैं। वे प्रसन्न हैं, क्योंकि अकेले तो लदे नहीं; सब लदे हैं। और जरूर कहीं पहुंच जाएंगे।
कहीं पहुंचना नहीं है। कहीं पहुंचना नहीं है।
अरब में एक छोटी-सी कहावत है। एक बूढ़े ऊंट से किसी ने पूछा कि तुम पहाड़
पर जाते वक्त ज्यादा आनंद अनुभव करते हो कि पहाड़ से नीचे जाते वक्त? उसने कहा, ये दोनों बातें फिजूल हैं। असली सवाल यह है कि मेरे ऊपर बोझ है या नहीं। ऊपर-नीचे का कोई सवाल नहीं है। मेरा दोनों वक्त एक ही काम रहता है। चाहे पहाड़ के नीचे जाऊं, तो बोझ ले जाता हूं। चाहे पहाड़ के ऊपर जाऊं, तो बोझ ले जाता हूं। उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। सदा बोझ ही ढोता हूं।
लेकिन हमें फर्क लगता है। कभी हम जब सफलता की तरफ जा रहे होते हैं, तो बोझ हम आसानी से ढोते हैं, क्योंकि हमें लगता है, पहाड़ उतार पर है। जल्दी पहुंच जाते हैं। पर हमें पता नहीं कि पहाड़ के नीचे जाकर करना क्या है? फिर नया बोझ लादना है, फिर पहाड़ पर चढ़ना है!
हर सफलता नई असफलता का बोध देगी। हर सफलता नई सफलता के लिए यात्रा बनेगी। हर सफलता पड़ाव होगी, मंजिल तो नहीं। मगर जब सफल होता है मन, तो हम ज्यादा बोझ ढो लेते हैं; और जब असफल होता है, तो जरा पीड़ित अनुभव करते हैं। लेकिन हम जिंदगीभर करते क्या हैं? शाबाश कल्लू! शाबास हीरा! शाबास माणिक! और चले जा रहे हैं।
यह जो हमारी, आदमी की आज की दशा है। और हम सब एक-दूसरे को कहे चले जाते हैं कि बढ़े जाओ, मंजिल बहुत पास है। बढ़े जाओ, मंजिल बहुत पास है। न हमें कोई मंजिल मिली है; न जिनसे हम कह रहे हैं, उन्हें कोई मिलेगी; लेकिन चलाए चले जाते हैं।
कृष्ण कह रहे हैं, मुझको परायण को उपलब्ध हो जा, मेरे प्रति समर्पित
हो जा। इस दौड़ से बच। ये तीन प्रकृति के गुण और यह प्रकृति का पूरा का पूरा सम्मोहन का जाल, यह मेरी योगमाया है। यह मेरे हिप्नोसिस, यह मेरे सम्मोहन की शक्ति है। और इस सब में सारा जगत चल रहा है और दौड़ा चला जा रहा है। शाबास कल्लू! और दौड़े चले जा रहे हैं। रुक। और तू मेरे स्मरण में लग। अगर तुझे सम्मोहन के बाहर आना है, तो परमात्मा के स्मरण में लग।
परमात्मा का सम्मोहन डी-हिप्नोटाइजिंग है; वह सम्मोहन को तोड़ता है,
वह एंटीडोट है। देखें, उदाहरण के लिए मैं आपको कहूं कि वह कैसे एंटीडोट है।
रास्ते पर एक खूबसूरत स्त्री आपको दिखाई पड़ी। आपने अपने मन में कहा, शाबाश कल्लू! और चले। चल पड़े आप। उस वक्त थोड़ा स्मरण करें। स्मरण करें कि वह जो स्त्री है सामने, वहां भी कृष्ण हैं। और स्मरण करें अपने भीतर कि वहां जो, जिसको आप कल्लू कह रहे हैं, वहां भी कृष्ण हैं। और फिर देखें कि बीच में वह जो सम्मोहन पैदा हुआ था वासना का, वह एकदम गिर जाता है या नहीं! फौरन गिर जाएगा। अचानक आप पाएंगे कि कोई अंधेरा बीच से उठ गया; कोई पर्दा बीच से हट गया। कोई चीज बीच से टूट गई, सरक गई, तत्काल।

एक आदमी ने आपको गाली दी है और आपके भीतर क्रोध का धुआं उठा। वह सम्मोहन है प्रकृति का। बटन दबा दी उसने आपकी। बस, अब आपका पंखा भीतर चलने लगा। उस वक्त जरा स्मरण करें, उस ओर भी कृष्ण हैं, इस ओर भी कृष्ण हैं। और तब आप अचानक पाएंगे कि भीतर क्रोध जो पंख फैलाता था उड़ने के लिए, उसने पंख सिकोड़ लिए।
डी-हिप्नोटाइजिंग है स्मरण। परमात्मा का स्मरण सम्मोहन- तोड़क है। और अगर परमात्मा को भूले और अपना ही स्मरण रखा कि मैं ही सब कुछ हूं, तो यह मैं जो है, यह बहुत मादक है। और यह सम्मोहन को गहन करता है, और मूर्च्छित करता है, बेहोश करता है। फिर हम दौड़े चले जाते हैं। यह तीन का खेल चलता रहता है चारों तरफ। यह प्रकृति की तीन की लीला चलती रहती है; ट्राएंगल; हम दौड़ते रहते हैं उसमें।
इससे कब ऊपर उठेंगे? इससे उठने का द्वार कहां है? इससे उठने का द्वार है, प्रभु-स्मरण। कहीं से भी स्मरण मिलता हो! कहीं से भी स्मरण मिलता हो! लेकिन हमारी तो बड़ी अजीब हालतें हैं। यहां कुछ संन्यासी मेरे नाम के साथ भगवान लगाकर चिल्ला देते हैं। मैं चुप रह जाता हूं यह सोचकर कि आज नहीं कल वे मेरा नाम भी छोड़ देंगे और सिर्फ भगवान का नाम ही उच्चारित करेंगे। क्योंकि उसमें भगवान शब्द झूठ नहीं है, उसमें मेरा नाम ही झूठ है। लेकिन मेरे पास चिट्ठियां आती हैं लोगों की कि आप लोगों को मना क्यों नहीं करते कि भगवान लगाना बंद करें; सिर्फ रजनीश कहें; आचार्य रजनीश कहें; भगवान लगाना बंद करें। लोगों की चिट्ठियां आती हैं! वे समझते हैं बहुत होशियार लोग हैं, जो मुझे चिट्ठियां भेजते हैं।
एक आदमी ने चिट्ठी नहीं भेजी कि वह कहता कि रजनीश कहना बंद कर दें, क्योंकि दोनों बात एक साथ नहीं हो सकतीं। जब तक रजनीश हूं, तब तक भगवान होना मुश्किल। जब भगवान हो जाऊं, तो रजनीश होना मुश्किल। ये दोनों कंट्राडिक्टरी हैं।
लेकिन वे चिट्ठियां, होशियार लोग जो हैं--होशियार का मतलब कि जिनके पास कोई यूनिवर्सिटी का कागज का टुकड़ा वगैरह है--वे फौरन चिट्ठी भारी... । मुझे कई चिट्ठियां, दस-पांच चिट्ठियां आईं कि फौरन बंद करवाइए! यह क्या हो रहा है?
अक्ल के तो हम जैसे दुश्मन हैं। लट्ठ लेकर अक्ल के पीछे पड़े हुए हैं। चलो, यही बहाना अच्छा; भगवान का ही तो नाम ले लेते हैं। खूंटी मेरी भी सही, तो क्या हर्जा! खूंटी तुड़वा लेंगे। खूंटी कोई बड़ी चीज नहीं है। भगवान जैसा भजन रखोगे, खूंटी कितनी देर बचेगी! खूंटी गिर ही जाएगी। लेकिन नहीं; जिनको यह तकलीफ होती है, उनकी तकलीफ का कारण है। स्मरण जैसी चीज का उन्हें कोई पता नहीं है।
एक और मजे की बात है कि मैं सदा आपके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता रहा। तब किसी ने मुझे चिट्ठी लिखकर नहीं भेजी कि हमको आप परमात्मा क्यों कहते हैं? किसी आदमी ने चिट्ठी लिखकर नहीं भेजी मुझे कि आप हमको परमात्मा क्यों कहते हैं? मैंने बहुत दिन कहकर देख लिया। मैंने सोचा कि वह कुछ सुनाई नहीं पड़ता आपको। मैंने बंद कर दिया।
अब यह दूसरे छोर से इन लोगों ने शुरू कर दिया। यह छोर दूसरा है; बात वही है। लेकिन अब उनको बड़ी बेचैनी हो रही है। उन्हीं सज्जनों को, जिनको कि मैं निरंतर कहता रहा कि आपके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। उन्होंने बड़े मजे से स्वीकार किया था। उनको अब बड़ी अड़चन हो रही है कि ये भगवान का नाम क्यों ले रहे हैं?
स्मरण का हमें कोई पता नहीं है। अच्छा ही है, इस बहाने आपके कान में पड़ गया।
कल तो एक मित्र ने आकर कहा कि अगर अब दोबारा इन्होंने लिया, तो मैं सुनने ही नहीं आऊंगा। बहुत मजेदार है। वे मुझे सुनने आते हैं। कहते हैं, सुनना मुझे प्रीतिकर है। आपकी बात ठीक लगती है। लेकिन यह भर नहीं होना चाहिए, यह भगवान का नाम।
भगवान से ऐसी क्या दुश्मनी है? मुझसे तो दुश्मनी नहीं मालूम पड़ती उनकी। क्योंकि कहते हैं, आपको सुनने में अच्छा लगता है। हम रोज आना चाहते हैं। भगवान से दुश्मनी मालूम पड़ती है।

मत आएं। बिल्कुल न आएं। और पिछली दफे भी जो आए हों, उसको बिल्कुल भूल जाएं। क्योंकि वह बेकार है। क्योंकि मैं जो बोल रहा हूं, वह सिर्फ इसलिए बोल रहा हूं कि मुझमें ही नहीं सब जगह, जहां भी कभी कुछ दिखाई पड़े, भगवान ही दिखाई पड़े; उसके लिए बोल रहा हूं। और मुझे सुनने का कोई प्रयोजन नहीं है। आप बिल्कुल मत आएं। क्या जरूरत है? यहां कोई शाबाश कल्लू, आपको कोई दौड़ तो लगवानी नहीं है मुझे।
आज इतना ही।
लेकिन उठना मत। जो उठ जाएगा मैं समझूंगा, शाबाश कल्लू! आप बैठे रहेंगे अपनी जगह। थोड़ा हम भगवान का स्मरण करते हैं। उसमें आनंदित हों।

गीता दर्शन, भाग तीन
गीता दर्शन अध्याय 7
छठवां प्रवचन

जीवन अवसर है

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः।। 15।।
चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।। 16।।
माया द्वारा हरे हुए ज्ञान वाले और आसुरी स्वभाव को धारण किए हुए तथा मनुष्यों में नीच और दूषित कर्म करने वाले मूढ़ लोग तो मेरे को नहीं भजते हैं।
और हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन, उत्तम कर्म वाले अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी अर्थात निष्कामी, ऐसे चार प्रकार के भक्तजन मेरे को भजते हैं।

कौन करता है प्रभु का स्मरण, इस संबंध में कृष्ण ने कुछ बातें कही हैं।
मनुष्य जाति को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। और जब दुनिया
से सारे वर्ग मिट जाएंगे, तब भी वही विभाजन अंतिम सिद्ध होगा।
बहुत तरह से आदमी को हम बांटते हैं। धन से बांटते हैं; गरीब है, अमीर है। शिक्षा से बांटते हैं; शिक्षित है, अशिक्षित है। चमड़ी के रंगों से बांटते हैं; गोरा है, काला है। हजार तरह से आदमी को हम बांटते हैं। लेकिन जो परम विभाजन है, जो अंतिम विभाजन है, वह न तो चमड़ी से तय होता, न धन से तय होता, न यश से तय होता, न शिक्षा से तय होता। ये सब बातें बहुत ऊपर और बहुत बाहर हैं, बहुत सतह पर। अंतिम विभाजन तो एक ही है, वे जो प्रभु-उन्मुख हैं, और वे जो प्रभु-उन्मुख नहीं हैं। वे जिनकी आंखें परमात्मा की तरफ उठ गई हैं; और वे जो पीठ किए हुए परमात्मा की तरफ खड़े हुए हैं।
कृष्ण कहते हैं, मूढ़जन मुझे नहीं भजते हैं।
कठिन लगेगा यह शब्द। और कृष्ण किसी को मूढ़ कहें, तो लगेगा, गाली दे रहे हैं। लेकिन जहां तक कृष्ण का संबंध है, वे केवल एक तथ्य की सूचना कर रहे हैं। एक फैक्ट। और मूढ़ कहना गाली नहीं है, मूढ़ कहना केवल एक तथ्य की घोषणा है।
सच ही वह आदमी मूढ़ है, जो परमात्मा की तरफ पीठ किए खड़ा है। इसलिए नहीं
कि इससे परमात्मा की कोई हानि है और इसलिए कृष्ण नाराज होकर उसे मूढ़ कह रहे होंगे। बल्कि इसलिए कि वह अपना ही घात कर रहा है, आत्मघात कर रहा है। मूढ़ किसे कहते हैं? मूढ़ विशेष शब्द है। मूढ़ का अर्थ सिर्फ मूर्ख नहीं होता। इसे थोड़ा समझ लेना पड़ेगा। मूढ़ पारिभाषिक शब्द है। अगर मनसविद से पूछेंगे, तो मनसविद जिसे ईडियट कहता है, उसे संस्कृत में म.ूढ कहा जाता है। उसका मतलब फुलिश नहीं है, उसका मतलब मूर्ख नहीं है। क्योंकि मूर्ख और बुद्धिमान में जो अंतर होता है, वह गुणात्मक होता है, डिग्री का होता है। जिसको आप मूर्ख कहते हैं, वह थोड़ा कम बुद्धिमान है; बस। और जिसको आप बुद्धिमान कहते हैं, वह थोड़ा कम मूर्ख है; बस। उन दोनों के बीच जो अंतर है, वह मात्रा का है, गुण का नहीं है। क्वालिटी का नहीं है, क्वांटिटेटिव है। फिर दो शब्द और हैं, एक जिसको हम कहते हैं मूढ़; और दूसरा, जिसको हम कहते हैं मेधावान। उनके बीच जो अंतर है, वह क्वालिटी का है, गुण का है, क्वांटिटी का नहीं है।
मूढ़ से मतलब है, ऐसा आदमी, जो जिस शाखा पर बैठा हो, उसी को काटता हो। कालिदास की कथा हमने पढ़ी है। वे मूढ़ के प्रतीक हैं। बैठे हैं वृक्ष पर, शाखा को काट रहे हैं। और जिस शाखा को काट रहे हैं, उसी पर बैठे हुए हैं। गिरेंगे ही। और कोई और जिम्मेवार न होगा। खुद ही शाखा को काट रहे हैं। और जितनी शाखा कटती है, कालिदास उतने प्रसन्न हो रहे होंगे, क्योंकि सफलता

मिल रही है। हालांकि सफलता कुल इसमें मिल रही है कि वे थोड़ी देर में गिरेंगे और हाथ-पैर तोड़ लेंगे।
मूढ़ से मतलब है, ऐसा व्यक्ति, जो आत्मघात में लगा हो; स्युसाइडल। मेहनत भी करता हो, तो अपने को ही नुकसान पहुंचाता हो। श्रम भी करता हो, तो अपना ही घात करता हो।
निश्चित ही, परमात्मा के खिलाफ जो पीठ करके खड़े हैं, उनसे बड़ा मूढ़ कोई
भी नहीं हो सकता। क्योंकि शाखाओं पर से कोई काटकर गिर भी पड़े, तो कितना नुकसान होने वाला है! लेकिन परमात्मा की तरफ पीठ करके खड़ा हुआ आदमी तो सब भांति के नुकसान में पड़ जाएगा।
इसलिए कृष्ण जब मूढ़ कहते हैं, तो आप मत सोचना कि गाली दे रहे हैं। वे केवल सूचना दे रहे हैं कि ऐसे व्यक्ति को हम मूढ़ कहते हैं। क्योंकि परमात्मा है हमारी परम संपदा। उसके बिना हम दरिद्र ही रहेंगे, चाहे हम कितनी ही संपत्ति इकट्ठी कर लें। और परमात्मा है परम यश। उसके बिना हम पदहीन ही रहेंगे, क्योंकि वह है परम पद, चाहे हम कितने ही बड़े पदों पर पहुंच जाएं। और परमात्मा के बिना हम कहीं भी नहीं पहुंच सकते हैं, चाहे हम कितनी ही यात्रा करें। हम आखिर में पाएंगे कि हम वहीं खड़े हैं, जहां जन्म ने हमें खड़ा किया था। मौत के वक्त हम वहीं खड़े हुए मिलेंगे। हमारी सब दौड़ व्यर्थ जाने वाली है।
असल में परम शक्ति को इनकार करना वैसा है, जैसा मैंने सुना है कि एक बेल एक भवन पर चढ़ती थी। लेकिन एक दिन एक नास्तिक से उस बेल का मिलना हो गया और उस नास्तिक ने कहा कि यह तेरी मजबूरी है कि तुझमें फूल आते हैं। यह कोई तेरा गौरव नहीं है।
बेल को तो पता ही न था। वह तो फूल खिलते थे, तो आनंद से नाचती थी; पक्षियों को निमंत्रण देती थी। सूरज की किरणें आती थीं, तो सुगंध बिखेरती थी। उस नास्तिक ने कहा, पागल, यह तेरी कोई गरिमा और कोई गौरव नहीं है। तू तो मजबूर है बढ़ने को। फूल खिलाने के लिए मजबूरी है तेरी। यह तेरी गुलामी है। तू चाहे तो भी फूल खिलना रुक नहीं सकता।
जैसा कि सार्त्र ने कहा है। सार्त्र का प्रसिद्ध वचन है, मैन इ.ज कंडेम्ड टु बी फ्री। शायद स्वतंत्रता के साथ कंडेम्ड का प्रयोग दुनिया में किसी दूसरे आदमी ने इसके पहले नहीं किया था। सार्त्र कह रहा है, मनुष्य स्वतंत्र होने के लिए बाध्य है। या कहना चाहिए, मनुष्य स्वतंत्र होने के लिए निंदित है। उसे स्वतंत्र होना ही पड़ेगा। स्वतंत्रता उसकी गुलामी है। कोई उपाय नहीं है; स्वतंत्र होना ही पड़ेगा। जबर्दस्ती स्वतंत्र किया जा रहा है।
ऐसा उस नास्तिक ने कहा, यू आर कंडेम्ड टु ग्रो एंड टु फ्लावर। तुम निंदित हो कि तुममें फूल खिलें और तुम बढ़ो। इसमें तुम्हारा कोई गौरव नहीं है।
निश्चित ही, बेल को बड़ी तकलीफ हुई। फूल तो उसकी छाती पर अब भी खिले थे, लेकिन बेकार हो गए। पहली बार अहंकार जागा। और उसने आकाश की तरफ सिर उठाकर परमात्मा से कहा कि बस, अब मैं बढ़ने से इनकार करती हूं। अब मैं इनकार करती हूं; ठीक से सुन लो कि अब मैं नहीं बढूंगी। और अब मैं इनकार करती हूं कि अब मैं फूल नहीं खिलाऊंगी। और अब मैं इनकार करती हूं कि मुझमें फल नहीं लगेंगे।
परमात्मा ने कहा, जैसी तेरी मर्जी। क्योंकि प्रेम का अर्थ ही यह है कि
वह आपको अपनी मर्जी पर पूरी तरह छोड़ दे। प्रेम का अर्थ ही यह है कि वह अपनी मर्जी आपके ऊपर न थोपे। परमात्मा ने कहा, जैसी तेरी मर्जी।
लेकिन उसी दिन से बेल बड़ी बेचैन हो गई। क्योंकि भीतर तो प्राणों की ऊर्जा बढ़ना चाहती थी। भीतर तो रस चल रहा था। जमीन से रस अपशोषित किया जा रहा था। सूरज से किरणें पीयी जा रही थीं। हवाओं से आक्सीजन लिया जा रहा था। पानी की धार भीतर बह रही थी। यह सब जारी था। और बेल ने कहा, मैं बढूंगी नहीं।
समझ सकते हैं, मुसीबत शुरू हो गई। भीतर से बढ़ने का धक्का प्राणों में,
और बेल अपने को बाहर से रोके। भीतर तो सुगंध जमीन से इकट्ठी होने लगी और फूल खिलने को मचलने लगे, और बेल ने इनकार किया कि फूल मैं खिलने न दूंगी।

जिस बेल में बड़ी बढ़ती होती थी और जो आकाश की तरफ उठती थी, वह जमीन की तरफ झुक गई। उसमें गांठें पड़ गईं। जो शक्ति बीज बन सकती थी, वह गांठ बन गई। और जिससे फूल पैदा होते, उससे बेल सिर्फ बेचैन, परेशान हो गई। रात की नींद खो गई, सुबह का आनंद खो गया। पक्षी अब भी गीत गाते, तो बेल को बुरे मालूम पड़ते। क्योंकि पक्षियों के गीत वसंत की याद दिलाते, जब फूल खिलते थे। और जब सूरज निकलता, तो बेल बेचैन होती, उसे याद आती उन दिनों की, जब बेल बढ़ती थी। और जब आकाश में बादल घूमते, तो बेल कष्ट पाती, क्योंकि इन बादलों से उस सब की याद जुड़ी थी, जब इनसे बरसा होती थी और बेल तृप्त होती थी।
अब बेल बिल्कुल पागल हो गई। एक दिन घबड़ाकर उसने परमात्मा से कहा कि मैं बिल्कुल पागल हुई जा रही हूं। परमात्मा ने कहा, जैसी तेरी मर्जी। मैंने तुझे कभी पागल होने को नहीं कहा। तू अपने ही हाथ से और तू अपने ही आंतरिक स्वभाव से लड़ रही है। क्योंकि परमात्मा से लड़ना, अपने ही स्वभाव से लड़ना है।
जब भी कोई आदमी परमात्मा के खिलाफ खड़ा होता है, तो किसी गहरे अर्थों में अपने खिलाफ खड़ा हो जाता है। वह उन्हीं शाखाओं को काटने लगता है, जो उसके प्राण हैं। और जब भी कोई व्यक्ति परमात्मा के विपरीत पीठ करता है, तो वह अपने से ही अजनबी हो जाता है। क्योंकि वह अपने ही तरफ पीठ कर रहा है। परमात्मा ने कहा कि तू अपने हाथ से मुसीबत में पड़ गई है। ये जो गांठें तुझे दर्द दे रही हैं, ये तेरे भीतर बीज बन सकती थीं। और ये जो पत्ते कुम्हलाकर जमीन की तरफ झुक गए हैं, ये आकाश में खिले हुए फूल बन सकते थे। और आज पक्षियों के गीत कष्ट देते हैं, और सुबह की सूरज की किरणें भी प्राणों में भालों की तरह छिद जाती हैं। और आकाश में बादल उठते हैं, पहले भी उठते थे, तब तू नाचती थी मोरों के साथ; लेकिन अब तू नाचती नहीं, तू अपने को सम्हालकर खड़ी रहती है। तू अपने ही खिलाफ हो गई है! यह अपने से विरोध छोड़। क्योंकि परमात्मा से विरोध अपने से ही विरोध है।
कृष्ण कह रहे हैं, वह आदमी मूढ़ है।
इस बेल की तरह है वह आदमी, जो परमात्मा का भजन नहीं कर रहा है। भजन का अर्थ है, जो परमात्मा और अपने बीच कोई सेतु नहीं बना रहा है; जो परमात्मा की शक्ति को अपनी शक्ति नहीं मान रहा है; जो परमात्मा और अपने बीच किसी तरह का विरोध और रेजिस्टेंस खड़ा कर रहा है, वह आदमी मूढ़ है। क्योंकि वह किसी और से नहीं लड़ रहा है, वह अपने से ही लड़ रहा है। और हारेगा, क्योंकि बड़ी विराट ऊर्जा से लड़ रहा है। लहर सागर से लड़ने चल पड़ी!
तो कृष्ण एक तथ्य की बात कहते हैं। कहते हैं, मूढ़ है वह आदमी। मूढ़ मुझे नहीं भजते हैं।
इसमें कई दफे पढ़कर ऐसा लगता है कि जो कृष्ण को नहीं भजता है, कृष्ण उसको गाली दे रहे हैं कि तुम मूढ़ हो। नहीं, ऐसा नहीं है। नहीं भजते हो, इसलिए मूढ़ हो, ऐसा नहीं। मूढ़ हो, इसलिए नहीं भजते हो। और इस मूढ़ता में आत्मघात छिपा है, अपना ही विनाश छिपा है। सेल्फ-डिस्ट्रक्टिव, आत्मविनाश की वृत्ति छिपी है। और हम सबके भीतर आत्मविनाश की वृत्ति है।
फ्रायड ने तो अपने जीवन के अंतिम दिनों में, मनुष्य के भीतर एक डेथ विश, मृत्यु की आकांक्षा भी है, इसकी खोज की है। फ्रायड ने जिंदगीभर एक ही चीज की बात की थी, वह थी ईरोज, कामवासना, जीवन की इच्छा। लेकिन अंत में उसे लगा कि यह अधूरी बात है। आदमी के भीतर मरने की इच्छा भी छिपी हुई है। उसे उसने थानाटोस, डेथ विश, मृत्यु की आकांक्षा कहा। उसने कहा कि आदमी के भीतर कोई ऐसा तत्व भी है, जो स्वयं को भी नष्ट करने के लिए आतुर रहता है।
इस खोज ने सारे पश्चिम में हैरानी पैदा कर दी थी। लेकिन पूरब इसे सदा
से जानता है। सदा से जानता है कि आदमी के भीतर जीवन की आकांक्षा भी है, और मरने की आकांक्षा भी है। स्वस्थ आदमी वह है, जो जीवन की आकांक्षा पर यात्रा करता है। अस्वस्थ, रुग्ण आदमी वह है, जो मृत्यु की आकांक्षा पर यात्रा करने लगता है।
ध्यान रहे, जो आदमी जीवन की आकांक्षा से जीता है, वह परमात्मा की तरफ उन्मुख हो जाता है; और जो आदमी मृत्यु की आकांक्षा से भर जाता है, वह परमात्मा की तरफ विमुख हो जाता है।

यह जो फ्रायड ने बहुत गहरी खोज की, और फ्रायड को खुद भी मुसीबत पड़ी। क्योंकि जिंदगीभर से कहता था, आदमी जीने के लिए आतुर है। लेकिन बुढ़ापे में उसे समझ में आया कि सिर्फ जीने के लिए आतुर नहीं है। क्योंकि आदमी हजार ऐसे काम कर रहा है, जो गवाही देते हैं कि आदमी मरने को भी आतुर है। आदमी कभी-कभी मरना भी चाहता है। आप अपने ही तरफ सोचेंगे, तो समझ में आएगा। मनोवैज्ञानिक कहते हैं, ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जो जिंदगी में दस-पांच बार स्वयं की हत्या का विचार न करता हो। यह दूसरी बात है कि आप हत्या न करते हों, क्योंकि हत्या करने के लिए और सब इंतजाम चाहिए, जो आपके पास न हो। हिम्मत चाहिए, जो न हो। लेकिन हत्या का विचार आदमी करता है। और ऐसा नहीं कि बूढ़े ही करते हैं। छोटे-से बच्चे को बाप जोर से डांट दे और बच्चा अपने भीतर सोचता है, इससे तो मर ही जाऊं। छोटा-सा बच्चा, अभी जो जीवन की यात्रा पर निकला भी नहीं है; उसके भीतर भी मरने का भाव पकड़ता है। वह भी सोचता है, खतम कर दो अपने को, नष्ट कर दो।
अगर मनुष्य के भीतर कोई मरने की वृत्ति न हो, तो इतनी जल्दी मरने का ख्याल नहीं आ सकता है। और जो गहरे खोजते हैं, वे कहते हैं कि हम दूसरे को भी मारने के लिए इसलिए उत्सुक हो जाते हैं, क्योंकि हमें डर है कि अगर हम दूसरे को न मारें, तो कहीं अपने को मारना शुरू न कर दें। यह बहुत उलटा लगेगा।
नीत्से से किसी ने पूछा कि तुम सदा हंसते रहते हो, बात क्या है? नीत्से
ने कहा, सिर्फ इसलिए हंसता रहता हूं कि कहीं रोने न लगूं। क्योंकि दो के सिवाय कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ता। या तो हंसूं, या रोऊं। दो के बीच कोई जगह नहीं है, जहां आदमी खड़ा हो जाए। खड़े होने के लिए जगह नहीं है। या तो हंसूं या रोऊं। तो मैं हंसता ही रहता हूं, कि अगर हंसना रोका, तो फिर रोना पड़ेगा। रोने पर विकल्प बदल जाएगा।
इसलिए हर आदमी दूसरे की हत्या का विचार करता रहता है कि कहीं अपनी हत्या का विचार न करने लगे। और हर आदमी दूसरे को नुकसान पहुंचाने की धारणा बनाता रहता है, ताकि अपने को नुकसान न पहुंचाने लगे। हर आदमी आक्रामक है, ताकि कहीं आत्महिंसा में न लग जाए।
और यह बड़े मजे की बात है, जो लोग आक्रमण छोड़ देते हैं, या जो लोग चेष्टा करके दूसरे की हिंसा छोड़ देते हैं, वे आत्महिंसा में फौरन लग जाते हैं। इसलिए तथाकथित अहिंसा के साधक आत्म-हिंसा में लग जाते हैं, वे अपने को सताने लगते हैं।
यह बहुत मजे की बात है कि जो आदमी दूसरे को सताना छोड़ता है, वह फौरन अपने को सताने के उपाय करने लगता है। दो में से कोई और रास्ता दिखाई नहीं पड़ता।
कृष्ण उसे मूढ़ कहते हैं, जो अपने को सता रहा है। और अपने को सताने के लिए सबसे बड़ी विधि अगर जगत में कोई है, तो वह प्रभु को भूल जाना है।
आप कहेंगे, यह कैसी विधि? छाती में छुरा भोंक लो, ज्यादा तकलीफ होगी। कांटों पर लेट जाओ। जहर पी लो।
नहीं। परमात्मा के विस्मरण से बड़ी तकलीफ इस जगत में कोई भी नहीं हो सकती है। परमात्मा के विस्मरण से बड़ी तकलीफ इसलिए नहीं हो सकती है, क्योंकि परमात्मा के विस्मरण के साथ ही जीवन के सब आनंद की धाराएं अवरुद्ध हो जाती हैं। आदमी जीता भी है मरा हुआ। ध्यान रहे, मर जाना उतना बुरा नहीं है, जितना मरे हुए जीना बुरा है।
सुना है मैंने, ईरान के एक बादशाह का वजीर एक जुर्म में पकड़ा गया। और जुर्म यह था कि उसने कानून के खिलाफ तीन विवाह कर लिए थे और तीनों औरतों को धोखा दिया था। एक ही विवाह कर सकता था, तीन विवाह कर लिए थे और हर स्त्री को धोखा दिया था कि मैं अविवाहित हूं।
यह बात पकड़ गई और सम्राट ने उस वजीर को कहा कि यह तो बहुत ही खतरनाक जुर्म है। अपने न्यायाधीशों से कहा, कठिन से कठिन सजा खोजो। अगर यह भी सजा हो कि इसको फांसी देनी पड़े, तो फांसी दो। लेकिन न्यायाधीशों ने एक सप्ताह विचार किया और कहा कि नहीं, फांसी देने को हम बड़ी कठिन सजा नहीं मानते। हमने और दूसरी सजा खोजी है। बादशाह ने कहा, हैरान करते हो मुझे तुम। फांसी

से और कठिन सजा क्या हो सकती है? उन्होंने कहा कि तीनों औरतों के साथ इस आदमी को इकट्ठा रहने दो। तीनों औरतों को साथ रहने दो इसके साथ।
कहते हैं, इक्कीसवें दिन उस आदमी ने आत्महत्या कर ली। और वह चिट्ठी लिखकर रख गया कि यह सजा मुझे तो दी, लेकिन कभी अब किसी और को मत देना। इससे तो फांसी बेहतर थी।
मौत इतनी बुरी नहीं है, जीवन जितना बुरा हो सकता है। जीवन के बुरे होने की संभावना बहुत ज्यादा है। मौत के बुरे होने की संभावना बहुत ज्यादा नहीं है। मौत तो सिर्फ द्वार का बंद हो जाना है।
जीवन, प्रभु से हीन, ऐसा जीवन है, जिसमें चारों तरफ हमारे सब तरह के दुश्मन इकट्ठे हो जाते हैं। उसके पास तो तीन औरतें थीं; हमारे पास तीन हजार औरतें इकट्ठी हो जाती हैं। औरतों का मतलब, क्रोध इकट्ठा हो जाता है, बेईमानी इकट्ठी हो जाती है, चोरी इकट्ठी हो जाती है, हिंसा इकट्ठी हो जाती है, सब उपद्रव इकट्ठे हो जाते हैं। और उनके बीच हमें जीना पड़ता है।
एक प्रभु का साथ छूटा कि चारों तरफ जीवन में सिवाय उपद्रव के और कुछ नहीं बचता। क्योंकि जो आदमी प्रभु की तरफ पीठ करेगा, उसने अपने आप अंधेरे की तरफ आंखें कर लीं। अब वह अंधेरे में, और अंधेरे में, और अंधेरे में उतरेगा। जिसने प्रभु का साथ छोड़ा, उसने अपने हाथ से दुर्गुणों को निमंत्रण दिया। जिसने प्रभु का साथ छोड़ा, उसने अपने हाथ से गड्ढों में, पतन में और नर्कों में उतरने का इंतजाम किया।
तो कृष्ण कहते हैं, मूढ़ हैं जगत में ऐसे, दुष्टजन हैं वे, नासमझ हैं, असात्विक भावनाओं से भरे हुए हैं, वे मेरी प्रार्थना नहीं करते।
लेकिन आपसे मैं एक बात कह दूं। इससे आप यह मत समझना कि जो-जो प्रार्थना करते हैं, वे इन मूढ़ों में नहीं हैं। क्योंकि जरूरी नहीं है कि आप प्रार्थना करते वक्त प्रार्थना ही कर रहे हों। प्रार्थना करनी बड़ी कठिन है। इसलिए आप एकदम निश्चिंत होकर मत बैठ जाना कि यह किसी और की बात हो रही है, मैं तो रोज मंदिर जाता हूं। मैं तो प्रार्थना करता हूं। जरूरी नहीं है, आपकी प्रार्थना प्रार्थना हो।
मैंने सुना है, एक स्त्री के पास एक तोता था, नर तोता; लेकिन वह गाली- गलौज सीख गया था। जिससे खरीदा था, वह एक होटल थी और वहां सब तरह के लोग आते- जाते थे। वह गाली-गलौज सीख गया था। वह स्त्री बड़ी परेशान थी, क्योंकि घर में मेहमान आते और वह बेहूदी बातें बोल देता। उसने अपने पड़ोस के पादरी को, चर्च के पादरी को कहा कि कुछ उपाय करो। तुम तो सब कुछ जानते हो। आदमियों तक को बदल देते हो, तो यह तो तोता है। फिर से दोहराऊं, उसने कहा, आदमियों तक को बदल देते हो, तो यह तो तोता है। इसे थोड़ा उपदेश दो कि यह बदल जाए।
पादरी ने कहा, यह तो मेरी भाषा न समझेगा, लेकिन मेरे पास एक मादा तोता है। वह दिन-रात प्रार्थना किया करती है। चौबीस घंटे चर्च में उसकी प्रार्थना गूंजती रहती है। तुम इसे ले आओ; दोनों को सत्संग में रख दें। सत्संग का असर तो पड़ता ही है। निश्चित पड़ता है। लेकिन किस तरफ से पड़ेगा, कहना मुश्किल है। गुरु शिष्य को ले जाएंगे स्वर्ग की तरफ, कि शिष्य गुरु को ले जाएंगे नर्क की तरफ, कहना मुश्किल है! प्रभाव तो जरूर पड़ता है। खैर, स्त्री को बात जंच गई। वह अपने नर तोते को ले आई। एक ही पिंजरे में दोनों को बंद कर दिया। दोनों दूर बैठ गए; देखें कि क्या चर्चा चलती है! मादा तोता थोड़ी देर चुपचाप बैठी रही; नर तोता भी थोड़ी देर चुपचाप बैठा रहा। फिर उस नर तोते ने कहा, क्या ख्याल है? हे डियर बेबी, व्हाट डू यू थिंक अबाउट लविंग--प्रेम के बाबत क्या ख्याल है? उस मादा तोते ने कहा, इट इ.ज ओ के किड। बिल्कुल ठीक। व्हाट डू यू थिंक, आई वाज प्रेइंग फार आल दीज इयर्स? क्या सोचते हो तुम, मैं प्रार्थना किसलिए कर रही थी इतने वर्षों से? एक तोता मिल जाए।
यह प्रार्थना जो वर्षों से चल रही थी चर्च में उस मादा तोते की, वह यही प्रार्थना थी कि कहीं से एक तोता मिल जाए। चर्च का पादरी धोखे में था। अधिक चर्चों के पादरी धोखे में है कि जो लोग प्रार्थना करने आते हैं, वे किसलिए आ रहे हैं।
असली सवाल यह नहीं है कि आप प्रार्थना करते हो; असली सवाल यह है कि किसलिए करते हो। अगर परमात्मा के अतिरिक्त और कोई भी मांग बीच में है, तो

वह प्रार्थना परमात्मा की प्रार्थना नहीं है। अगर बीच में धन है, पद है, यश है, स्वास्थ्य है, सुख है, तो आपको परमात्मा से कोई भी प्रयोजन नहीं है। आपको प्रयोजन अपने सुख से है। प्रार्थना करते हैं कि शायद परमात्मा से मिल जाए, तो परमात्मा को भी एक इंस्ट्रूमेंट, एक साधन--सच, परमात्मा से भी थोड़ी सेवा लेने की उत्सुकता है, और कुछ भी नहीं है।
प्रार्थना कर लेने से प्रार्थना नहीं हो जाती। तो इसलिए जरूरी नहीं
है कि मूढ़ लोग प्रार्थना न करते हों। मूढ़ लोग प्रार्थना करते हैं, लेकिन प्रार्थना कभी नहीं करते। कुछ मांग ही होगी उनकी, छोटी-मोटी, क्षुद्र। और कभी सोचेंगे भी नहीं कि क्या मांगने परमात्मा के सामने खड़े हैं!
असल में कुछ भी मांगने अगर कोई परमात्मा के सामने खड़ा है, तो प्रार्थना नहीं होगी; क्योंकि प्रार्थना मांग नहीं है। प्रार्थना का अर्थ ही है, बिना मांगा धन्यवाद; मांग नहीं है। प्रार्थना बड़ी उलटी चीज है। वह किसी चीज की मांग नहीं है; बल्कि जो परमात्मा ने दिया है, उसके लिए धन्यवाद है, अनुग्रह का भाव है, ग्रेटिट्यूड है। जितना दिया है, वह इतना ज्यादा है कि उसे धन्यवाद देने की बात है, वह थैंक्स गिविंग।
लेकिन उसको धन्यवाद देने हम कभी नहीं जाते कि तूने हमें इतना दिया है। हम जाते हैं कहने कि क्या मारे डाल रहा है! कुछ भी नहीं है पास। लड़के की नौकरी नहीं लग रही। लड़की की शादी नहीं हो रही। परीक्षा में फेल हुए जा रहे हैं। धंधा बिगड़ा जा रहा है। सब इस तरह की बातें लेकर हम परमात्मा के सामने जाते हैं।
मूढ़ भी प्रार्थना करता है, लेकिन कृष्ण उसकी प्रार्थना को प्रार्थना नहीं मानते। क्योंकि वह परमात्मा को नहीं भजता, वह परमात्मा के बहाने जगत की चीजों को ही भजता है; वह जगत को ही भजता है।
कठिनाई है। हमारा चित्त जैसा है, वह केवल सांसारिक वस्तुओं को ही भज पाता है। कभी देखा, एक आदमी एक नई कार खरीदने की सोचता है, तो रातभर नींद नहीं आती। करवटें बदलता है, फिर कार दिखाई पड़ने लगती है। फिर करवट बदलता है, फिर कार दिखाई पड़ने लगती है। हजार रंग दिखाई पड़ते हैं, हजार ढंग दिखाई पड़ते हैं। महीनों सो नहीं पाता।
यह जो चित्त है, अगर इसको आप मंदिर में ले जाएं, तो प्रार्थना तो जरूर करेगा, लेकिन इसे दिखाई कार ही पड़ेगी। इसे कुछ और दिखाई नहीं पड़ सकता। चित्त की भाषाएं हैं।
सुना है मैंने, एक आदमी ने एक घोड़ा खरीदा। बेचने वाले ने बहुत दाम बताए। आदमी ने पूछा, इतने दाम की बात क्या है? उसने कहा, यह घोड़ा बहुत अदभुत है। एक तो, यह तूफान की चाल से चलता है। और इससे भी बड़ी बात यह है कि-- इसकी चाल तो तेज है ही, तो अक्सर सवार गिर जाता है--अगर कभी तुम गिर जाओ, तो यह तुम्हें वहीं स्थान पर सुलाकर, डाक्टर को भी बुला लाता है। उस आदमी ने कहा, चमत्कार! उसके दिल में भी बहुत दिन से घोड़ा तो लेने का इरादा था। उसने घोड़ा खरीद लिया। दाम भी चुकाए। और उसने सोचा कि पहले दिन प्रयोग करके भी देख लें।
घोड़े पर बैठा। घोड़ा सचमुच तूफान की तरह दौड़ा। और दौड़ा, तो उसने जाकर
एक गड्ढे में उस आदमी को गिराया। जब वह आदमी गिरा, तो उसने सोचा कि आधी बात तो पूरी हो गई, अब आधी देखें। घोड़ा उसे गिराकर फौरन वापस लौटा। उसने सोचा, हैरानी की बात है! और थोड़ी देर में घोड़ा डाक्टर को लेकर आ गया।
फिर दो-दिन बाद जब उस आदमी को होश आया, तो घोड़े का मालिक उसके पास आया
और उसने कहा, कहो भाई, संतुष्ट तो हो? उसने कहा, संतुष्ट तो बहुत हूं। हाथ-पैर टूट गए। पर, उसने कहा कि देखा, घोड़ा डाक्टर को बुलाकर लाया। उसने कहा कि बिल्कुल लाया। लेकिन एक ही गलती हो गई। वेटरनरी डाक्टर को बुला लाया। उसने कहा, घोड़ा तो घोड़ा ही है। उसको आदमियों के डाक्टर का कोई भी पता नहीं है। वह घोड़ों के डाक्टर को लिवा लाया। तो यह तो तुम्हें पहले ही समझ लेना था! उस बेचने वाले ने कहा, यह तो साफ ही है।
वह जो हम सबकी भाषाएं हैं। घोड़ा ठीक ही है कि वेटरनरी डाक्टर को बुला लाए। वह हमारा जो चित्त है, वह जब प्रार्थना करने जाएगा, तो उसकी अपनी भाषा है; वह वेटरनरी डाक्टर को बुला लाएगा। वह परमात्मा तक नहीं पहुंचेगा। वह

उन चीजों तक पहुंच जाएगा, जिन चीजों से उसके संबंध रहे हैं, जिन चीजों से उसका परिचय है, जिन चीजों को उसने चाहा है।
अगर परमात्मा भी मिल जाए अचानक हमारे चित्त को, तो हम वही चीजें मांगेंगे, जो हम मांगते रहे हैं। उस मौके को भी हम खो देंगे। अगर ठीक परमात्मा... । सोचें जरा अपने मन में कि आज रात परमात्मा आपके बिस्तर के पास आकर खड़ा होकर जगाए कि उठिए। क्या चाहिए? तो जरा सोचें अपने मन में। आपको फौरन पता चल जाएगा कि आप क्या मांगेंगे। परमात्मा को कोई मांगेगा, इसमें बहुत संदेह है। क्योंकि जिसने कभी नहीं मांगा उसे, वह अचानक आज रात नहीं मांग पाएगा।
कृष्ण कहते हैं, मूढ़ है वह व्यक्ति। मूढ़ मुझे नहीं भजते हैं। फिर मुझे कौन भजता है? जिज्ञासु, मुमुक्षु, वे सात्विक लोग, वे सदाचरण वाले लोग, बुद्धिमान मुझे भजते हैं।
सच में ही, वही आदमी बुद्धिमान है, जो इस जगत के अवसर का उपयोग प्रभु
की झलक पाने में कर ले। उसके अलावा कोई भी बुद्धिमान नहीं है। वही आदमी बुद्धिमान है, जो इस जीवन के अवसर का उपयोग जीवन के परम सत्य की खोज में कर ले। बाकी कोई आदमी बुद्धिमान नहीं है। बाकी सभी बुद्धिहीन हैं।
जीवन उन चीजों को इकट्ठा करने में भी गंवाया जा सकता है, जिन चीजों को पाकर कुछ भी नहीं मिलता। और हम सब वैसा ही गंवाते हैं। जीवन उन चीजों की खोज में नष्ट किया जा सकता है, जिन्हें हम न पाएंगे, तो भी दुखी होंगे; और पा लेंगे, तो भी दुखी होंगे।
सिकंदर जीत ले सारी दुनिया, तो भी सुखी नहीं हो पाया। क्योंकि सारी दुनिया को जीतने से सुख का कोई भी संबंध नहीं है। न जीते, तो दुखी हो। जीतने की कोशिश करे, तो परेशान हो। और फिर जीत ले, तो जीत से कुछ न पाए। सब मिल जाए--जो हमारा मन चाहता है, सब मिल जाए--तो भी हम अचानक पाएंगे कि भीतर सब कुछ खाली रह गया है। कुछ मिला नहीं। जीवन के गहरे मूल्य तृप्त नहीं हुए। और जीवन की गहरी प्यास, प्यास ही रह गई; और जीवन की असली भूख, भूख ही रह गई, और प्राण अब भी पुकार रहे हैं किसी वर्षा के लिए। बादल बहुत बरसे, बहुत गर्जन हुआ, बिजलियां चमकीं, सागर भर गए नीचे। लेकिन वह अमृत नहीं बरसा, जिसकी तलाश थी।
परमात्मा के अतिरिक्त वह अमृत कहीं और नहीं है। परमात्मा से क्या मतलब?
परमात्मा से मतलब है, जीवन का जो गहनतम सत्य है, वही। जन्म के पहले भी
जो मेरे भीतर था, और मृत्यु के बाद भी जो मेरे भीतर होगा, वही। जब मैं जागता हूं, तब भी जो मेरे भीतर है; और जब मैं सो जाता हूं, तब भी मेरे भीतर होता है--वही। जब मैं बच्चा हूं तब, और जब मैं जवान हूं तब, और जब बूढ़ा हो जाऊंगा तब, तब भी जो नहीं बदलता मेरे भीतर--वही। वह जो सारे परिवर्तन के बीच शाश्वत है; वह जो सारी उथल-पुथल के बीच स्थिर है; वह जो सारी गतियों के बीच, सारी आंधियों के बीच अडिग है; वह जो सब जीवन और मृत्यु के बीच सदा एक-सा है--उस एक की खोज परमात्मा की खोज है।
निश्चित ही, बुद्धिमान वही है, वाइज वही है, मेधावी वही है, जो इस जीवन
से उसे पा ले।
हम करीब-करीब ऐसे लोग हैं कि सागर के तट पर गए हों, अवसर मिला हो, और सागर में हीरे पड़े हों, लेकिन हम किनारे पर रेत में जो सीप और चमकदार पत्थर पड़े रहते हैं, उनको बीनने में बिता रहे हैं। वह हम सब बीनकर इकट्ठा ढेर कर लेंगे। जीवन हाथ से खो जाएगा! ढेर वहीं पड़ा रह जाएगा।
क्या खोज रहे हैं हम? हमारी खोज वैसी है, रामकृष्ण कहा करते थे कि चील अगर आकाश में भी उड़ रही हो, तब भी तुम यह मत सोचना कि वह आकाश में उड़ती है। उसकी नजर तो नीचे कचरेघरों में कोई मांस का टुकड़ा पड़ा हो, कोई हड्डी पड़ी हो, उस पर लगी रहती है। आकाश में उड़ती चील के धोखे में मत आ जाना कि वह आकाश में उड़ रही है, इसलिए आकाश में उड़ रही होगी। उसका चित्त तो किसी हड्डी पर लगा रहता है, जो किसी कचरेघर पर पड़ी होगी।
जीवन का विराट आकाश मिलता है हमें, जिसमें हम परमात्मा के आलिंगन को उपलब्ध हो सकते हैं। बड़ी संपदा हमारी हो सकती है, जिसका कोई अंत नहीं। कुबेर के खजाने चुक-चुक जाएं और सोलोमन के खजाने छोटे पड़ जाएं। सीपियां

सिद्ध होते हैं। नदी के किनारे बीने गए कंकड़-पत्थर रंगीन, बच्चों के खिलौने! लेकिन एक और संपदा है, जिसे पाते ही जीवन उस रौनक को उपलब्ध होता है, जिसका कोई अंत नहीं है; जिसे मृत्यु नहीं बुझाती; जिसे अंधेरा नहीं मिटाता; जिसे दुख नहीं मिटाता; जिसे पीड़ा नहीं छूती; जो अस्पर्शित रह जाती है। उस संपदा को पाया जा सकता है इसी जीवन में।
निश्चित ही, जो उस दिशा में न चले, उसे कृष्ण कैसे बुद्धिमान कहें? वे कहेंगे, बुद्धिमान हैं वे, वे ही हैं बुद्धिमान, जो मुझे भजते हैं।
यह भजने का, प्रभु को स्मरण करने का इतना आग्रह! क्या चाहते हैं? क्या इशारा है उनका? एक छोटी-सी कहानी से समझाने की कोशिश करूं।
सुना है मैंने, एक संन्यासी को उसके गुरु ने कहा कि तू अब यहां न सीख पाएगा। हम जो सिखा सकते थे, सिखाया; लेकिन उसके लिए तू बहरा है। तू यहां से जा और देश की राजधानी में सम्राट के पास पहुंच जा। अगर कुछ सीख सकता है, तो अब वहीं।
वह संन्यासी यात्रा करके सम्राट के द्वार पर पहुंचा। बड़ी मुश्किल में पड़ा। सम्राट को देखा। रात हो गई थी। दरबार भरा था। नर्तकियां नाचती थीं। अर्धनग्न स्त्रियां नाचती थीं। शराब ढाली जा रही थी। सम्राट बीच में बैठा था। उस संन्यासी ने कहा, यहां मुझे सीखने भेजा है! अपने मन में सोचा, अच्छा फंसा! अब कहां भागकर जाऊं? अब इस रात कहां ठहरूंगा?
सम्राट ने कहा, इतने चिंतित मत होओ। इतने बेचैन मत होओ। ठीक जगह ही भेजे गए हो। आओ, विश्राम करो रात। जल्दी क्या है लौट जाने की? दो दिन बाद लौट जाना। वह बहुत घबड़ाया। उसने कहा, मैंने तो आपसे कुछ कहा नहीं! सम्राट ने कहा कि कहने से ही कुछ सुनाई पड़ता हो, ऐसा कहां! तेरे गुरु ने कितना तुझसे कहा, तूने कुछ न सुना। जब कहने से सुनाई न पड़े, तो न कहने से भी सुनाई पड़ सकता है। तू बैठ। तू जल्दी मत कर।
रात भोजन करवाया। भोजन के बाद फिर उस संन्यासी ने कहा, एक बात तो कम से
कम बता दें! सम्राट ने कहा, जल्दी क्या है? कल सुबह पूछ लेना। उसने कहा कि नहीं; रातभर नींद न आएगी। यह क्या मजा है! मेरे गुरु ने आपके पास भेज दिया; शराबी के पास। नाच-गान चल रहा है। यह सब क्या उपद्रव है! मैं संन्यासी, मैं ब्रह्मचारी। मुझे यहां कहां भेज दिया! आपके पास किसलिए भेजा है? और आप मुझे क्या खाक सिखाएंगे? अभी खुद ही तो सीखे नहीं!
उस सम्राट ने कहा कि मैं तो भजन करता रहता हूं। उसने कहा, क्या खाक भजन होता होगा! यह भजन हो रहा है? शराब ढल रही है; प्याले सरक रहे हैं; स्त्रियां नाच रही हैं--यह भजन हो रहा है? तुम मुझे अभी चले जाने दो। ऐसा भजन मुझे नहीं सीखना। सम्राट ने कहा कि यह तो भजन नहीं है। लेकिन भजन जारी है। खैर, कल सुबह हम बात कर लेंगे।
बहुत सुंदर बिस्तर पर उसे सुलाया, जैसे पर वह कभी न सोया हो। बहुत सुखद इंतजाम किया। सब सुविधा की; जो सम्राट के पास श्रेष्ठतम था।
सुबह जब उठा संन्यासी, सम्राट ने पूछा, प्रसन्न तो हैं। कोई अड़चन, कोई तकलीफ तो न थी? उस संन्यासी ने कहा, तकलीफ तो कोई न थी, आराम तो पूरा था। लेकिन नींद नहीं लगी। नींद क्यों नहीं लगी? कहा कि आप भी अजीब आदमी हैं। अच्छा बिस्तर दिया। सब दिया। यह ऊपर एक नंगी तलवार एक धागे से काहे के लिए बांधकर लटका दी? तो रातभर प्राण संकट में रहे। आंख बंद करूं, तो तलवार दिखाई पड़े। पता नहीं धागा कब टूट जाए! और पतला धागा! करवट लूं, तो प्राण संकट में, कि पता नहीं, वह तलवार कब टूट जाए। रातभर एक पल सो नहीं सका। सम्राट ने कहा, मैं तुझे कहता हूं कि इसे ऐसा कह कि रातभर तूने तलवार
का भजन किया। बिस्तर लुभा न सके। चारों तरफ इत्र की खुशबुएं थीं, वे सुला न सकीं। कुछ सुला न सका। तलवार का भजन जारी रहा। तुझसे मैं कहता हूं, स्त्रियां नाचती थीं, माना कि वे अर्धनग्न थीं; शराब ढलकाई जाती थी, माना कि लोग शराब पी रहे थे; लेकिन तुझे मैं कहता हूं, ठीक तलवार की तरह मौत मेरे ऊपर लटकी है। तेरे ऊपर ही कल रात लटकी थी, ऐसा नहीं; सबके ऊपर लटकी है; कच्चे धागे में ही लटकी है। तुझे दिखाई पड़ रही थी, क्योंकि मैंने प्रत्यक्ष लटका दी थी। मौत की तलवार दिखाई नहीं पड़ती; सबके ऊपर लटकी है।

पर, उसने कहा, इससे भगवान के भजन का क्या मतलब? जिस तरह मैं तलवार का भजन करता रहा रातभर, अगर आपको मौत इस तरह लटकी हुई दिखाई पड़ती है, तो आप मौत का भजन कर रहे होंगे?
उस सम्राट ने कहा, नहीं; जिस दिन मौत प्रतिपल दिखाई पड़ने लगे, जिस दिन मौत चारों तरफ दिखाई पड़ने लगे, जिस दिन शरीर का सब कुछ मरेगा, यह दिखाई पड़ने लगे; जिस दिन पदार्थ के जगत में सब विनष्ट होगा, यह दिखाई पड़ने लगे--उस दिन उसका स्मरण शुरू हो जाता है, जो विनष्ट नहीं होता, जो अमृत है। मौत तो तलवार की तरह लटकी है, लेकिन मेरे हृदय में अब मौत का स्मरण नहीं है, क्योंकि मौत तो है। अब मेरे मन में उसका स्मरण है, जो मौत के भी पार है, और जो मौत से भी नष्ट नहीं होता; जो मौत के बीच से भी गुजर जाता है, अस्पर्शित। प्रभु-स्मरण का अर्थ है, अमृतत्व का स्मरण, चैतन्य का स्मरण, परम सत्ता का स्मरण।
और वह स्मरण ऐसा नहीं है कि आप पांच क्षण को घर में बैठकर दोहरा लें और
हो गया। वह स्मरण ऐसा है कि आपके रोएं-रोएं में, श्वास-श्वास में, हृदय की धड़कन-धड़कन में प्रवेश कर जाए। उठें, तो उस भजन में; सोएं, तो उस भजन में; चलें, तो उस भजन में--तो बुद्धिमत्ता है।
कृष्ण कहते हैं, दो तरह के लोग हैं इस जगत में। मूढ़जन हैं, जो मेरी तरफ आंख नहीं उठाते, जब कि मैं उन्हें निहाल कर दूं। बुद्धिमान हैं, जो मेरे अतिरिक्त और कहीं नजर नहीं ले जाते। क्योंकि मेरी तरफ नजर उठी कि फिर और कोई जगह देखने योग्य नहीं रह जाती। मेरी तरफ नजर उठी कि फिर और कुछ पाने योग्य नहीं रह जाता। मुझे जिन्होंने पा लिया, उन्होंने सब पा लिया है।
यह कृष्ण कह रहे हैं अर्जुन से कि अर्जुन समझे, कि मूढ़ के जगत से यात्रा करे बुद्धिमान के जगत की तरफ।
कोई मूढ़ ऐसा नहीं है कि बुद्धिमान न हो सके; और कोई बुद्धिमान ऐसा नहीं है कि कभी न कभी मूढ़ न रहा हो। सब संतों का अतीत है, और सब पापियों का भविष्य है। और पाप से गुजरे बिना कोई संतत्व तक नहीं पहुंचा है। और संतत्व तक जो भी पहुंचा है, पाप की अग्नि से निकला है।
इसलिए कभी ऐसा मन में सोचकर मत बैठ जाना कि मैं तो मूढ़ हूं। दुनिया में कोई मेधा नहीं है, जो मूढ़ता से न गुजरी हो। वह अनिवार्य शिक्षा है। और दुनिया में कोई ऐसा मूढ़ नहीं है, जिसके भीतर वह बीज न छिपा हो, जो मेधा बन जाए, प्रतिभा बन जाए; खिल जाए और बुद्धिमानी हो जाए। फर्क सिर्फ रूपांतरण का है, एक छलांग का। एक अबाउट टर्न, एक पूरा घूम जाना। जिस तरफ मुंह है, उस तरफ पीठ; और जिस तरफ पीठ है, उस तरफ मुंह हो जाना। बस, इतने में ही मूढ़ बुद्धिमान हो जाता है। इतनी-सी घटना से मूढ़ बुद्धिमान हो जाता है। जड़ता गिर जाती है, और चैतन्य का जन्म हो जाता है। पर्दे हट जाते हैं, और रहस्य के द्वार खुल जाते हैं।
लेकिन हम हिप्नोटाइज्ड हैं, हम बिल्कुल सम्मोहित हैं चीजों से। हम इस बुरी तरह से सम्मोहित हैं, जिसका कोई हिसाब नहीं! हाथ कुछ नहीं लगता; अनुभव तक नहीं लगता हाथ। जिंदगीभर इस उपद्रव के बाद अनुभव भी हाथ नहीं लगता। सुना है मैंने कि एक आदमी ने नई-नई किसी के साथ साझेदारी की। कोई पूछता था कि फिर कोई साझेदार मिल गया तुम्हें? क्योंकि वह आदमी कई साझेदारों को धोखा दे चुका है। फिर कोई साझेदार मिल गया तुम्हें? उसने कहा, फिर कोई साझेदार मिल गया। जमीन पर नासमझों की कोई कमी नहीं है। लेकिन कोई भी साझेदार मेरे साथ रहकर नुकसान में कभी नहीं पड़ता। उस आदमी ने कहा, यह तुम क्या कह रहे हो! हमने तो अब तक यही सुना कि जो भी तुम्हारे साथ रहता है, नुकसान में पड़ता है।
उसने कहा, तुम समझो, फिर तुम कभी ऐसा न कहोगे। अब यह जो नया साझीदार है, पूरी पूंजी लगा रहा है। पूरी पूंजी वह लगा रहा है, पूरा अनुभव मैं लगा रहा हूं। फिफ्टी-फिफ्टी समझो। आधा मेरा है, आधा उसका। अनुभव मेरा, धन उसका। और तुमसे मैं कहता हूं कि पांच साल में अनुभव उसके पास होगा और धन मेरे पास। लेकिन तुम समझते हो कि मैं ही फायदे में रहूंगा, वह फायदे में नहीं रहेगा? अनुभव!
लेकिन हम जिंदगी में कई बार जीवन का धन गंवा चुके और अब तक उस अनुभव को उपलब्ध नहीं हुए, जो वह साझीदार कह रहा था कि पांच साल में मेरा मित्र हो

जाएगा। हमने न मालूम जीवन के धन को कितनी बार गंवाया है। हम किसी अनुभव को उपलब्ध नहीं हुए। हम फिर वही करते हैं। हम फिर वही करते हैं। हम फिर वही करते चले जाते हैं। जैसे अनुभव जैसी कोई चीज हमारे जीवन में पैदा ही नहीं होती। कल भी वही किया, परसों भी वही किया। पिछले वर्ष भी वही किया था। आने वाले वर्षों में भी आप वही करेंगे। क्या मतलब है इसका? कहीं कोई चीज है, जैसे बिल्कुल हम विक्षिप्त की तरह सम्मोहित हैं संसार के साथ। बिल्कुल बंधे हैं पागल की तरह; आब्सेस्ड हैं। नजर नहीं हटती, जैसे किसी ने नजर बांध दी हो; वशीकरण हो गया हो।
इसलिए कृष्ण कहते हैं कि मेरी माया में डूबे हुए, मेरे सम्मोहन में डूबे हुए; प्रकृति की दुस्तर माया में डूबे हुए मूढ़जन, मेरा भजन नहीं कर पाते हैं। हिप्नोटाइज्ड बाई नेचर। बिल्कुल हिप्नोटाइज्ड हैं; प्रकृति के गुणों से सम्मोहित हो गए हैं। और मेरा स्मरण नहीं कर पाते। बस, प्रकृति का ही स्मरण करते हैं। उन्हें कुछ मिलने वाला नहीं है। लेकिन अगर अनुभव भी मिल जाए, तो बहुत। और जिसे अनुभव मिल जाता है, वह तत्काल रूपांतरित हो जाता है।
एक मित्र मेरे पास आए थे, वे कह रहे थे कि दूसरी शादी करने का विचार कर रहा हूं। मैंने उनसे कहा कि जहां तक मुझे याद आती है, तुम छः महीने पहले भी आए थे, जब तुम्हारी पत्नी जिंदा थी, तब तुम तलाक देने का सोचते थे। उन्होंने कहा, हां, इस स्त्री को तो तलाक देने की सोचता था, ऊब गया था। और मैंने कहा, जहां तक मुझे याद है, तुमने कहा था कि अगर मेरा किसी तरह इस स्त्री से तलाक हो जाए, तो मैं संन्यास ही ले लूं। लेकिन अब यह स्त्री अपने आप विदा हो गई। अब तुम दूसरी शादी की क्यों सोच रहे हो?
तो मैंने उन्हें कहा कि किसी मनोवैज्ञानिक से भी कोई यही पूछ रहा था,
तो उसे मनोवैज्ञानिक ने कहा कि इससे मालूम पड़ता है, यह अनुभव के ऊपर आशा की विजय है। अनुभव के ऊपर आशा की विजय!
अनुभव तो यही है। वह आदमी कह रहा है कि अब मैं बचना चाहता हूं किसी तरह
उस कलह से, जिसका नाम शादी था; उस उपद्रव से। लेकिन फिर करने का मन हो रहा है। अनुभव के ऊपर आशा जीत रही है फिर। इस आशा में कि शायद दुबारा वैसा न हो।
इसी आशा में हम हजारों जन्म गंवा देते हैं। फिर खोजेंगे धन; शायद इस बार धन मिल जाए। फिर खोजेंगे पद; शायद इस बार पद मिल जाए। फिर खोजेंगे मकान; शायद इस बार मकान मिल जाए। लेकिन कभी मकान नहीं मिलता, मौत मिलती है, कब्र मिलती है। और कभी धन नहीं मिलता; ढेर जरूर लग जाता है धन का; भीतर आदमी निर्धन का निर्धन रह जाता है। कभी पद नहीं मिलता; सब पद मिल जाते हैं; भीतर की हीनता उतनी की उतनी रह जाती है; उसमें कहीं कोई अंतर नहीं पड़ता। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि राजनीतिज्ञ जितने ज्यादा इनफीरिआरिटी कांप्लेक्स से, हीनता की ग्रंथि से पीड़ित होते हैं, इतना कोई भी पीड़ित नहीं होता है। सच तो यह है कि हीनता की ग्रंथि से पीड़ित होते हैं, इसीलिए पदों की तलाश पर निकलते हैं।
लेनिन के पैर, कुर्सी पर बैठता था, साधारण कुर्सी पर, तो जमीन तक नहीं पहुंचते थे। ऊपर का हिस्सा बड़ा था, नीचे का हिस्सा छोटा था। मनोवैज्ञानिक कहते हैं--विशेषकर एडलर--कि लेनिन यह दिखाने के लिए कि मैं कुछ हूं... ! वह जो छोटे पैर थे, उनकी हीनता मन में उसको भारी थी।
हिटलर ना-कुछ था। फौज में एक साधारण से सिपाही की तरह उसे निकाला गया था। वह दिखाने को उत्सुक हो गया कि मैं भी कुछ हूं।
जिन लोगों के भीतर बहुत हीनता की ग्रंथि है, वे किसी बड़े पद पर खड़े होकर दुनिया को दिखाना चाहते हैं, हम कुछ हैं, समबडी। लेकिन उससे कोई अंतर नहीं पड़ता। हीनता की ग्रंथि भीतर रहती है, सोना ऊपर सज जाता है; पद ऊपर हो जाते हैं; रेशम लग जाता है; मखमल लग जाती है; गोटा-सितारा लग जाता है। वह भीतर जो हीन आदमी था, हीन का हीन बना रह जाता है।
लेकिन कितने ही अनुभव के बाद भी हमारे हाथ अनुभव की संपदा नहीं लगती। क्योंकि अनुभव की संपदा लग जाए, तो वह जो सम्मोहन है प्रकृति का, वह तत्काल टूट जाता है। और प्रकृति का सम्मोहन टूटा कि आपकी आंखें उस तरफ उठती हैं, जिस ओर प्रभु है।

सम्मोहन से बंधे रहना मूढ़ता है। प्रभु की ओर आंखों का उठ जाना, उसका भजन शुरू हो जाए, उसका नर्तन शुरू हो जाए, उसका कीर्तन भीतर जग उठे, जीवन एक नृत्य बन जाए--प्रभु को समर्पित, उसके चरणों में झुका हुआ--तो परम आनंद की उपलब्धि होती है। लेकिन वह सम्मोहन टूटे, तभी संभव है।

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः।। 17।।
उनमें भी नित्य मेरे में एकीभाव से स्थिति हुआ अनन्य प्रेम भक्ति वाला ज्ञानी अति उत्तम है, क्योंकि मेरे को तत्व से जानने वाले ज्ञानी को मैं अत्यंत प्रिय हूं और वह ज्ञानी मेरे को अत्यंत प्रिय है।

एकी रूप से, अनन्य भाव से, तत्व को समझकर, मुझे जो प्रेम करता है, वह ज्ञानी उत्तम है।
दो बातें। एकीभाव से; जरा भी फासला नहीं रखता जो मेरे और अपने बीच; किंचित मात्र भेद नहीं मानता जो अपने और मेरे बीच। यह बड़ी कठिन बात है। इसे थोड़ा समझना होगा।
क्या कभी आपने ख्याल किया कि प्रेम जिससे भी हमारा होता है, हम उससे कुछ भी नहीं छिपाते! अगर कुछ भी छिपाते हैं, तो वह मतलब यही हुआ कि प्रेम नहीं है; पूरा नहीं है। और पूरा ही प्रेम होता है; अधूरा तो कोई प्रेम होता नहीं।
प्रेम का अर्थ है, जिस व्यक्ति से मेरा प्रेम है, उसके साथ मैं ऐसे ही रहूंगा, जैसे मैं अपने ही साथ हूं। उससे मैं कुछ भी छिपाऊंगा नहीं। न मेरा कोई पाप, न मेरा कोई झूठ, न मेरी कोई वृत्ति। उससे मैं कुछ भी न छिपाऊंगा। उसके सामने मैं उघड़कर बिल्कुल नग्न हो जाऊंगा, मैं जैसा हूं।
क्या परमात्मा के सामने कभी आप उघड़कर पूरे नग्न हुए हैं?
ईसाइयत ने, क्रिश्चियनिटी ने कन्फेशन ईजाद किया इसी सिद्धांत के आधार पर। आधार यही है कि तब तक प्रार्थना पूरी नहीं हो सकती, जब तक कि किसी ने अपने पापों को स्वीकार न कर लिया हो, अन्यथा पाप का छिपाना ही फासला रहेगा, डिस्टेंस रहेगा।
एक आदमी खड़ा है भगवान के मंदिर में जाकर और वह जान रहा है कि मैंने चोरी की है। पुलिस से तो छिपा रहा है; घर के लोगों से छिपा रहा है; गांव के लोगों से भी छिपा रहा है; भगवान से भी छिपा रहा है! खड़ा है चंदन-तिलक वगैरह लगाकर। और उस चंदन-तिलक के पीछे चोर खड़ा है। और भगवान की प्रार्थना कर रहा है बड़े जोर-शोर से! तो फासला भारी है।
इसलिए ईसाइयत ने सच में कीमती तत्व विश्व के धर्म में जोड़ा, और वह तत्व था, कन्फेशन, स्वीकारोक्ति। पहले अपने पाप का स्वीकार, फिर पीछे प्रार्थना। ताकि कोई फासला न रह जाए। तुम नग्न और उघड़कर एक हो जाओ। कम से कम परमात्मा से तो पूरी बात कह दो। कम से कम उसके सामने तो वही हो जाओ, जो तुम हो!
सारी दुनिया में तो धोखा हम चलाते हैं। जो हम नहीं होते, वैसा दिखाते हैं। कमजोर आदमी सड़क पर अकड़कर चलता है। हालांकि सब अकड़ कमजोर आदमी की गवाही देती है। ताकतवर आदमी क्यों अकड़कर चलेगा? किससे अकड़कर चलेगा? कमजोर आदमी अकड़कर चलता है। निर्बल आदमी साहस की बातें करता है। कुरूप आदमी सौंदर्य के प्रसाधनों का उपयोग करता है। इसलिए दुनिया जितनी कुरूप होती जाती है, उतने सौंदर्य के साधन की ज्यादा जरूरत पड़ती है। क्योंकि वह कुरूपता को छिपाना है सब तरफ से।
स्त्रियों को कुरूपता का बोध ज्यादा भारी है। क्योंकि शरीर का बोध थोड़ा पुरुष से ज्यादा है; बाडी कांशसनेस थोड़ी ज्यादा है। तो वे अपने बैग में ही सब सामान लिए हुए हैं। वहीं उनका सारा सौंदर्य उस बैग में बंद है। जरा मौका मिला कि उनको फिर अपने को तैयार कर लेना है! अपने पर जरा भरोसा नहीं है। वह जो बैग में थोड़ा-सा सामान पड़ा है, उस पर सारा भरोसा है। एक पतली पर्त है सौंदर्य की, जिसके पीछे कुरूपता अपने को ओट में लेती है।
हम दुनिया को तो धोखा दे रहे हैं। पर यह धोखा क्या परमात्मा के पास भी
ले जाइएगा? क्या वहां भी इसी धोखे की शक्ल को, इसी मास्के, इसी मुखौटे को

लेकर खड़े होंगे? क्या वहां भी परमात्मा को दिखलाने की कोशिश करेंगे वह, जो कि आप नहीं हैं? तो फिर एकीभाव न रहा। फिर प्रेम नहीं है, प्रार्थना नहीं है।
कृष्ण कहते हैं, एकीभाव को उपलब्ध हुआ, जो छिपाता ही नहीं कुछ।
जैसे छोटा बच्चा बगल के मकान से फल चुराकर खा आया है और दौड़ता चला आ रहा है अपनी मां को कहने, कि देखा, आज पड़ोसी के घर में घुस गया और फल खाकर चला आ रहा हूं! ऐसा सरल, इतना इनोसेंट, जो परमात्मा के सामने अपने को बिल्कुल प्रकट कर देता है, तो एकीभाव निर्मित होता है; नहीं तो एकीभाव निर्मित नहीं होता।
एक आदमी अपने विवाह का पच्चीसवां वर्ष-दिन मना रहा था; पच्चीस वर्ष पूरे हो गए थे। एक मित्र ने उससे पूछा कि पच्चीस वर्ष तुम पति और पत्नी दोनों इतनी शांति से साथ रहे हो; तुम दोनों के बीच भी कुछ ऐसी बातें हैं क्या, जो तुम्हारी पत्नी तुम्हारे बाबत न जानती हो, और तुम तुम्हारी पत्नी के बाबत न जानते हो?
उस आदमी ने कहा कि ऐसी बहुत-सी बातें हैं, जो पत्नी सोचती है कि उसके बाबत मुझे पता नहीं हैं, हालांकि मुझे पता हैं। और इसीलिए मैं सोचता हूं, ऐसी भी बहुत-सी बातें जरूर होंगी, जो मैं सोचता हूं, मेरी पत्नी को पता नहीं हैं, लेकिन उसे पता हैं। अगर तुम सच ही पूछ रहे हो, तो ये पच्चीस साल हम साथ रहे, यह कहना कठिन है। हम इन पच्चीस सालों में अपने-अपने मुखौटों को सम्हालने में लगे रहे। हम एक-दूसरे को वह दिखाने की कोशिश करते रहे हैं, जो हम नहीं हैं। और यही हमारा दुख है, यही हमारी पीड़ा है, यही हमारी परेशानी है।
हालांकि पच्चीस साल जिसके साथ रहो, वह सब जान लेता है; मुखौटे के पीछे
जो छिपा है, उसको भी जान लेता है। क्योंकि कभी नींद में मुखौटा उखड़ जाता है। कभी क्रोध में उतर जाता है। कभी बाथरूम से एकदम जल्दी से बाहर निकल आए; ख्याल न रहा, मुखौटा नहीं होता चेहरे पर। कभी मौके-बेमौके जिसके हम साथ रहते हैं, वह झांक ही लेता है कि पीछे कौन आदमी है! लेकिन फिर भी कोशिश चलती है।
बाप बेटे के सामने नहीं खुलता। पत्नी पति के सामने नहीं खुलती। मित्र मित्र के सामने नहीं खुलता। सारी पृथ्वी एक बड़ा डिसेप्शन, एक बड़ा जाल है। और इसीलिए हम इतने परेशान, इतने चिंतित और बोझिल हैं, क्योंकि सारी दुनिया हमारे खिलाफ है और हम अकेले लड़ रहे हैं। एक-एक आदमी इतनी बड़ी दुनिया के खिलाफ लड़ रहा है। इतनी बड़ी दुनिया को धोखा देने में लगा हुआ है, तो लड़ाई भारी है।
परमात्मा के पास तो वही पहुंच सकेगा, जो अपने सब धोखे, अपने मुखौटे, अपनी शक्लें मंदिर के बाहर छोड़ जाए, भीतर जाकर नग्न खड़ा हो जाए और कह दे कि मैं ऐसा हूं।
एकीभाव बहुत वैज्ञानिक बात है। जब किसी से मैं कुछ भी नहीं छिपाता, तो एकीभाव उत्पन्न होता है। जब तक छिपाता हूं, तब तक दूजापन, दुई, द्वैत, दूसरापन मौजूद रहता है। एक।
दूसरा, कृष्ण कहते हैं कि ऐसा एकीभाव, अनन्य भाव और तत्व को समझकर, जो ज्ञानी मेरे पास आता है, मुझे प्रेम करता है, उसे मैं भी प्रेम करता हूं। तत्व को समझकर! क्योंकि बहुत बार ऐसा हो जाता है कि कुछ लोग बिना तत्व को समझे... ।
बिना तत्व को समझे! तत्व का अर्थ है, बिना जीवन के रहस्य को समझे, बिना किसी गहरी अंडरस्टैंडिंग, बिना किसी समझ के, धर्म की यात्रा पर निकल जाते हैं, तब बड़ी कठिनाई होती है। ऐसे अप्रौढ़ चित्त, ऐसे जुवेनाइल, बचकाने चित्त, जिनमें अभी कोई प्रौढ़ता न थी और जो धर्म की यात्रा पर निकल जाते हैं, वे धर्म को तो उपलब्ध होते नहीं, सिर्फ धर्म को ही अप्रौढ़ बनाने में सफल हो पाते हैं।
ऐसा हुआ है चारों तरफ। सारी दुनिया में ऐसा हुआ है। कई बार तो आप जीवन
के सत्य को समझकर धर्म की तरफ नहीं जाते; बल्कि धार्मिक बातें आपको प्रलोभनपूर्ण लगती हैं, इसलिए चले जाते हैं। इसका फर्क आप समझ लें। तत्व को समझकर जाने वाले और प्रलोभन से जाने वाले का क्या फर्क है?

मैंने आपसे बात कही कि परमात्मा को पाना परम आनंद है। आपके मन में ग्रीड पकड़ी, लोभ पकड़ा। आपको लगा कि अरे, परमात्मा को पाना परम आनंद है, तो हम भी पा लें! आपने सोचा कि ठीक है। बुद्ध भी कहते हैं, महावीर भी कहते हैं, कृष्ण भी कहते हैं, क्राइस्ट भी, मोहम्मद भी, सब कहते हैं कि उसे पा लेना परम आनंद है। आपके मन में लोभ जगा।
लेकिन आपको पता नहीं कि वे सब कहते हैं कि लोभ जिसके मन में है, वह उसे
न पा सकेगा। अब बड़ी कठिनाई हो गई। और आप चले मंदिर की तरफ, मस्जिद की तरफ। आपने सोचा कि चलो आनंद मिलता है, तो हम इसको भी पा लें।
महावीर एक गांव में ठहरे हैं। उस गांव का सम्राट श्रेणिक महावीर से मिलने आया। और उसने महावीर के चरणों पर सिर रखा और उसने कहा कि आपकी कृपा से... ।
झूठ बोल रहा था वह यह। महावीर के पास ऐसा झूठ नहीं बोलना चाहिए। क्योंकि वही मैं कह रहा हूं, एकीभाव नहीं है। वह बोला, आपकी कृपा से! हालांकि उसकी आंखें, उसका सिर कह रहा था कि मेरे सामर्थ्य से। लेकिन वह कह रहा था, आपकी कृपा से। फार्मल। महावीर के पास फार्मेलिटी लेकर नहीं जाना चाहिए; औपचारिकता।
महावीर ने कहा, क्षमा करो। तुम क्या कहने जा रहे हो! मैंने तो तुम पर कभी कोई कृपा नहीं की! उसने कहा कि नहीं-नहीं, आपकी बिना कृपा के क्या हो सकता है! यह सब राज्य-वैभव सब आपकी कृपा से मिला है। महावीर ने कहा, मुझे मत घसीटो। क्योंकि तुमने न मालूम कितने लोगों की हत्याएं की हैं, मेरा कोई इससे लेना-देना नहीं है। तुम न मालूम कितने लोगों का लहू पी गए हो। इससे मेरा क्या संबंध है!
नहीं, वह बोला, बिना आपकी कृपा के क्या हो सकता था! सब आपकी कृपा से हुआ है। लेकिन अभी-अभी मुझे पता चला कि यह सब बेकार है, जब तक ध्यान का आनंद न मिल जाए। तो मैं आपसे पूछने आया हूं कि कितना खर्च पड़ेगा? मैं खरीद लूं। ध्यान का आनंद खरीद लेंगे। ऐसी क्या चीज है, जो मैं नहीं खरीद सकता हूं? महावीर को कैसी मुसीबत हुई होगी, हम समझ सकते हैं। ऐसी मुसीबत महावीर जैसे लोगों को रोज होती है। वह बेचारा कुछ गलत नहीं कह रहा है। वही वेटरनरी डाक्टर की भाषा है। वह सब चीजें खरीदता रहा है। जो भी चीज चाहिए, खरीद लेता है। सोचा कि ध्यान, सामायिक। महावीर का ध्यान के लिए शब्द है, सामायिक। सामायिक कैसे मिल जाए? मैंने बड़ी तारीफ सुनी है कि बड़ा आनंद है। इसको भी खरीद लेंगे!
महावीर ने कहा, ऐसा करो। बड़ा कठिन है मामला। सौदा बहुत मुश्किल है। लेकिन फिर अब तुम कहते हो, खरीद लोगे, तो तुम ऐसा करो कि तुम्हारे गांव में एक मेरा भक्त रहता है। एक बहुत गरीब आदमी का नाम महावीर ने लिया कि वह तुम्हारे गांव में रहता है; बहुत गरीब आदमी है। वह ध्यान को उपलब्ध हो गया है; वह थोड़ा-सा ध्यान तुम्हें बेच देगा। तुम चले जाओ; कीमत पूछ लो।
वह गया कि कोई हर्जा नहीं है। ध्यान क्या, मैं उस पूरे आदमी को ही खरीदकर महल लिए जाता हूं। उसकी क्या बात है, उठवा लेंगे घर पूरे आदमी को ही। उसने उस पूरे आदमी को घर उठवा लिया! आदमी तो आ गया। उसने कहा कि बोल भाई, क्या लेगा तू तेरे ध्यान का? जो तुझे लेना हो, ले जा।
उस आदमी ने कहा कि आप बिल्कुल नासमझ हैं। आप कुछ समझे नहीं। ध्यान कहीं खरीदा जा सकता है! और मैं बेचना भी चाहूं, तो कैसे बेचूं! यह तो मेरी भीतरी दशा है।
उसने कहा, यह बातचीत छोड़ो। ऐसी कौन-सी चीज है, जो मैं नहीं खरीद सकता? मैंने तुझे ही उठवा लिया, तो तेरे ध्यान का क्या वश है, जो नहीं आएगा। तेरा ध्यान क्या घर पड़ा रह गया? तू जाकर वापस उठाकर ला। तू जो कहे, मैं देने को तैयार हूं। तू फिक्र मत कर। लाख, दो लाख, दस लाख, करोड़--कितना तुझे चाहिए? तू बोल, और ले ले; और ध्यान दे जा।
उस आदमी ने कहा कि तुम मेरी जान ले लो; ध्यान बेचना मुश्किल है। क्योंकि तुम समझ ही नहीं पा रहे कि ध्यान क्या है। उसने कहा, कुछ भी हो, इससे मुझे मतलब नहीं। लोग कहते हैं कि ध्यान मिलने से बड़ा आनंद मिलता है; हमें आनंद से मतलब है। जाने दे ध्यान; ध्यान से तुझे जो आनंद मिला है, वह कोई और तरकीब से मिल सकता हो, तो मुझे बता दे।

हम में से अधिक लोग धर्म की तरफ लोभ के कारण उत्सुक होते हैं। एक। सुनते हैं खबर समाधि की, कि खिलते हैं फूल परम; सुनते हैं खबर ध्यान की, कि भीतर हो जाता है मौन आत्यंतिक; सुनते हैं, कि मृत्यु भी थक जाती है उसके सामने, जो स्वयं को जान लेता है, हार जाती है। मन में लोभ पकड़ता है, हम भी क्यों न पा लें?
पर ध्यान रखना, लोभी नहीं पा सकेगा। इसलिए कृष्ण कहते हैं, तत्व को समझकर।
परमात्मा में आनंद मिलता है, ऐसा जानकर जो चलेगा, वह लोभ से जा रहा है। संसार में दुख है, ऐसा समझकर जो जा रहा है, वह तत्व को जानकर जा रहा है। इस फर्क को आप समझ लेना।
संसार व्यर्थ है, ऐसा जानकर जो जा रहा है, वह तत्व को जानकर जा रहा है।
और जो मान रहा है कि संसार तो बिल्कुल ठीक है, परमात्मा को और जोड़ लें इसी में थोड़ा-सा; उसका सुख भी ले लें। यह तो मिल ही रहा है, उसे भी ले लें। वह आदमी सिर्फ प्रलोभन से जा रहा है; तत्व को जानकर नहीं जा रहा है।
दुनिया में अधिक लोग प्रभु के मंदिर की तरफ प्रलोभन से जाते हैं या भय
के कारण जाते हैं, जो कि प्रलोभन के सिक्के का दूसरा पहलू है। भय के कारण, या लोभ के कारण।
मौत पास आती है, तो बूढ़ा आदमी घबड़ाने लगता है। वह सोचता है, अब मरे! अब क्या होगा? अब होगा क्या? अब तो यह मौत चली आ रही है। अब कोई बचा नहीं सकेगा। अब कितने ही लोग मुझे वोट दे दें, तो भी मामला हल होगा नहीं। वह वोट पड़ी रह जाएगी, मैं मर जाऊंगा। अब कितनी ही तिजोड़ी मेरी बड़ी हो, अब वह किसी काम की नहीं है; अब मेरी मुट्ठी उसको बांध नहीं पाएगी। अब मैं मरा। अब कोई बचा नहीं सकेगा। अब बेटे, जिनके लिए मैंने जिंदगी गंवाई, अब मुझे बचा न सकेंगे। मित्र, जिनके लिए मैंने सब लगाया, अब मुझे बचा न सकेंगे। समाज, जिससे मैं डरता था, अब मुझे बचा न सकेगा। अब इस भय की थर्राहट की हालत में आदमी सोचता है, चलो, भगवान का सहारा ले लें। अब वही बचा सकेगा।
भयभीत आदमी भगवान की तरफ चला जाता है। इसलिए मंदिरों-मस्जिदों में, गिरजों में बूढ़े, वृद्ध इकट्ठे हो जाते हैं--भय के कारण। भय के कारण। ये वे ही लोग हैं, जो जवान थे, तब नहीं आए। और ये वे ही लोग हैं, जो अपने घर के जवानों को भी अभी कह रहे होंगे कि अभी क्या जरूरत है तुम्हें जाने की। अभी तो जवानी है।
आज एक वृद्ध महिला मेरे पास आई थी। उसकी लड़की ने संन्यास ले लिया, तो वृद्ध महिला बहुत परेशान है। वह कह रही है कि अभी तो इसकी उम्र--अभी तो यह जवान है! मैंने उससे कहा कि यह जवान है, लेकिन तू तो बूढ़ी हो गई! तेरा इरादा कब संन्यास का है? इसका संन्यास रुकवाने आई थी वह कि इसका संन्यास रोको; इसको संन्यास नहीं लेना है। यह तो अभी जवान है। मैंने कहा, तेरा क्या इरादा है? तुझे तो संन्यास ले लेना चाहिए। तू तो बूढ़ी हो गई! उसने कहा, वह तो मैं सोचूंगी। लेकिन इसका तो छुड़वा दो।
तो बूढ़े लोग जवानों को कहते हैं कि तुम तो अभी जवान हो, तुम्हें धर्म
से क्या लेना-देना! क्योंकि धर्म को उन्होंने सिर्फ भय की भाषा में समझा है। सिर्फ भय। जब भय पकड़ ले और पैर कंप जाएं, और हाथ-पैर हिलने लगें, और मौत धक्के देने लगे, तब आखिरी वक्त राम-राम कह लेना।
इसलिए तो हम, जब आदमी मर जाता है, तो राम-राम कहकर उसको मरघट तक ले जाते हैं! बेचारा खुद नहीं कह पाया; हम कह रहे हैं! उनको तो मौका नहीं मिला। अब हम तो कम से कम इतना तो उनको साथ दें, कि उनको मरघट तक पहुंचा आएं राम-राम कहकर। जिंदगी उनकी चूक गई; उन्होंने कभी राम-राम न कहा। अब मर गए हैं, तो अब हम उनको राम-राम कहने जा रहे हैं!
मगर एक लिहाज से अच्छा है, क्योंकि आप भी जब मरेंगे, तो दूसरे आपको भी... ! एक म्युचुअल कांसपिरेसी चल रही है, पारस्परिक शड्यंत्र, कि हम तुम्हें भेज आएंगे, तुम हमें भेज आना। राम-राम कह देना आखिरी वक्त। अगर कहीं कोई परमात्मा होगा, तो सुन लेगा कि बड़ा भक्त मर गया। देखो, राम-राम की आवाज आ रही है! जिंदगीभर जिनके हृदय से राम नहीं निकला, मरी-मराई लाश के चारों तरफ राम-राम कर रहे हैं!

मरते दम तक धर्म का ख्याल आना शुरू होता है--भय के कारण, तत्व की समझ से नहीं। क्योंकि तत्व की समझ का फिर जवानी, बुढ़ापे और बचपन से कोई संबंध नहीं है। तत्व की समझ बड़ी और बात है, उसका उम्र से कोई लेना-देना नहीं है। इसलिए कृष्ण कहते हैं, वे हैं मेरे प्यारे, जो तत्व को समझकर मेरी ओर आते हैं। उन्हें मैं ज्ञानी कहता हूं। भय से, लोभ इत्यादि से जो आ जाते हैं, उनका कुछ मतलब नहीं है। और वे मुझे प्रेम करते हैं, मैं भी उन्हें बहुत प्रेम करता हूं।
इसका क्या मतलब होगा? क्या कृष्ण का प्रेम भी सशर्त है, कंडीशनल है, कि
जब आप उनको प्रेम करेंगे, तभी वे आपको प्रेम करेंगे? क्या परमात्मा भी कोई शर्तबंदी करता है कि तुम मेरा नाम भजोगे, तो मैं तुम्हें प्रेम करूंगा? तुम तत्व को समझकर आओगे, तो मैं तुम्हें प्रेम करूंगा? क्या परमात्मा भी इस तरह की शर्त रखता है? तब तो प्रेम बड़ा छोटा हो जाएगा।
नहीं, कृष्ण का यह मतलब नहीं है कि जो मुझे प्रेम करते हैं, मैं उन्हें प्रेम करता हूं। मतलब यह है कि परमात्मा का प्रेम तो सबके ऊपर बरसता है। लेकिन जो परमात्मा को प्रेम नहीं करते, उन्हें उस प्रेम से कभी संबंध नहीं हो पाता, मिलन नहीं हो पाता।
जैसे एक उलटा घड़ा रखा है और बरस रही है वर्षा आकाश से। बादल घनघोर बरस रहे हैं, उलटा घड़ा रखा है। रखा रहे। कोई ऐसा नहीं है कि उलटे घड़े पर बादल नहीं बरस रहे हैं। उस पर भी बरस रहे हैं; लेकिन वह भरेगा नहीं। सीधे घड़े रखे होंगे, वे भर जाएंगे। फिर मेघ कह सकते हैं कि जो सीधे घड़े हैं, उन्हें मैं भर देता हूं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि उलटे घड़ों पर बरसता नहीं पानी। लेकिन उलटे घड़े खुद ही उलटे बैठे हैं; उसमें कोई क्या कर सकता है! और पक्की जिद्द करके बैठे हैं कि हम तो उलटे ही बैठे रहेंगे; हम कभी सीधे न होंगे!
प्रभु को जो प्रेम करता है, उसे प्रेम मिलता है, उसका कुल मतलब इतना ही
है कि उसे ही पता चलता है कि मिल रहा है। जो प्रेम ही नहीं करता, उसे कभी पता नहीं चलता कि मिल रहा है।
इसलिए जब हम कहते हैं, प्रभु की कृपा, तो ऐसा मत सोचना कि किसी पर होती
है और किसी पर नहीं होती है। प्रभु की कृपा तो ऐसे ही बरस रही है, जैसे सूरज निकला हो, और सभी घरों पर किरणें बरस रही हैं। लेकिन कुछ लोग अपने दरवाजे बंद किए बैठे हैं। किन्हीं के दरवाजे भी खुले हैं, तो वे इतने होशियार हैं कि आंख बंद किए बैठे हैं! क्या करिएगा? सूरज क्या करे? इनकी आंखों की पलकें खोले? खोले, तो ये नाराज होंगे। पुलिस में रिपोर्ट लिखवाएंगे कि हम सो रहे थे, नाहक सूरज ने हमारी आंखें खोल दीं। क्या करे सूरज, इनके दरवाजे तोड़े? पुलिस में रिपोर्ट लिखवा देंगे कि सूरज चोर हो गया; हमारे दरवाजे खोलकर भीतर घुसने लगा। सूरज बाहर खड़ा रहेगा; जब आप दरवाजा खोलेंगे, आ जाएगा। जब आप आंख खोलेंगे, तो किरण भीतर पहुंच जाएगी।
परमात्मा का प्रेम तो सब पर बरस रहा है समान। लेकिन इसका यह मतलब नहीं
कि आपको समान मिलता है। समान आपको मिलता नहीं, क्योंकि आप लेते ही नहीं। बरसता समान है, मिलता अलग-अलग है। मिलता अपनी-अपनी पात्रता से है। मिलता अपनी-अपनी उन्मुखता से है।
अब जो आदमी लोभ के कारण परमात्मा की तरफ गया, उसका घड़ा उलटा रहेगा। वह कितनी ही प्रार्थना करे, कितनी ही प्रार्थना करे, उसे प्रेम परमात्मा का मिलेगा नहीं। जो भय के कारण परमात्मा की तरफ गया, उसका घड़ा उलटा रहेगा। वह कितना ही चीखे-चिल्लाए, उसकी चीख-चिल्लाहट परमात्मा के लिए नहीं है, भय की वजह से है।
लेकिन जो जीवन के तत्व को समझकर गया कि ठीक है। यह जीवन, यह सारा खेल,
यह सारा नाटक दो कौड़ी का है, इसका कोई मूल्य नहीं है। अब मैं उसकी तलाश में चलूं, जो इस जीवन के पार है। इस जीवन के किसी प्रलोभन की वजह से नहीं; यह जीवन, टोटल, पूरा का पूरा बेकार हुआ, इसलिए; नाटक हुआ, व्यर्थ हुआ, इसलिए; यह सारा अनुभव सारहीन हुआ, इसलिए अब मैं हटूं और उस तरफ खोजूं। क्या है वहां? कौन है वहां? कौन-सी संपदा है वहां? खोजूं!
इस जिज्ञासा से जो गया ज्ञानी, तत्व को जानकर, एकीभाव को उपलब्ध हुआ, अनन्य होकर मुझे प्रेम करता है, मैं भी उसे प्रेम करता हूं।

आज इतना ही।
लेकिन जाएंगे नहीं। थोड़ी देर आपके घड़े को सीधा करने की कोशिश करें।
ये नाचेंगे फकीर हमारे; थोड़ा आपके घड़े में भी गिर जाए, इसका ख्याल रखें।
उलटे न बैठे रहें। उलटे बैठे का मतलब है कि बैठे हैं अकड़कर कि कहीं कोई चीज भीतर न चली जाए।
ताली बजाएं। धुन में साथ दें। बैठे-बैठे आनंदित होकर मगन हों। ये पांच मिनट का पूरा आनंद लेकर जाएं।

गीता दर्शन, भाग तीन
गीता दर्शन अध्याय 7
सातवां प्रवचन

मुखौटों से मुक्ति

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्।। 18।।
बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।। 19।।
यद्यपि ये सब ही उदार हैं अर्थात श्रद्धासहित मेरे भजन के लिए समय लगाने वाले होने से उत्तम हैं, परंतु ज्ञानी तो साक्षात मेरा स्वरूप ही है, ऐसा मेरा मत है, क्योंकि वह स्थिर बुद्धि ज्ञानी भक्त अति उत्तम गति- स्वरूप मेरे में ही अच्छी प्रकार स्थित है। और जो बहुत जन्मों के अंत के जन्म में तत्वज्ञान को प्राप्त हुआ ज्ञानी, सब कुछ वासुदेव ही है, इस प्रकार मेरे को भजता है, वह महात्मा अति दुर्लभ है।

प्रभु को जो जानता है, वह उस जानने में ही उसके साथ एक हो जाता है। सब दूरी अज्ञान की दूरी है। सब फासले अज्ञान के फासले हैं। परमात्मा को दूर से जानने का कोई भी उपाय नहीं है, परमात्मा होकर ही जाना जा सकता है। इसलिए कृष्ण कहते हैं, जो मुझे जान लेता है, वह ज्ञानी, वासुदेव ही हो गया, वह भगवान ही हो गया, वह कृष्ण ही हो गया, वह मैं ही हो गया।
लेकिन कैसा ज्ञानी कृष्ण को जानता है? दो बातें कही हैं। कहा है, युक्त आत्मा, जिसकी आत्मा युक्त हो गई, इंटिग्रेटेड हो गई।
हम सबकी आत्मा खंड-खंड है, अयुक्त है, टुकड़े-टुकड़े है। हम एक आदमी नहीं हैं; बहुत आदमी हैं एक साथ। नाम हमारा एक है, इससे भ्रम पैदा होता है। एक नाम के लेबिल के पीछे बहुत निवासी हैं। क्षण-क्षण में हमारे भीतर बदलते रहते हैं लोग। हम एक भीड़ हैं, एक समूह--प्रत्येक आदमी--क्योंकि बहुत खंड हैं हमारे। खंड ही हैं, ऐसा नहीं, विपरीत खंड भी हमारे भीतर हैं। जो हम एक हाथ से करते हैं, उसे ही दूसरे हाथ से मिटा देते हैं।
एक क्षण हम प्रेम से भर जाते हैं, दूसरे क्षण घृणा से भर जाते हैं। वह
जो प्रेम में मंदिर बनाया था, घृणा में मिट्टी में मिल जाता है। एक क्षण क्रोध में जलते हैं, और फिर क्षमा से भर जाते हैं। वह जो आग जलाई थी अपने ही प्राणों की, उसे अपने ही प्राणों के पानी से बुझाते हैं। क्षण-क्षण हमारे भीतर बदलता रहता है सब कुछ। हम एक प्रवाह हैं।
युक्त पुरुष इससे विपरीत होता है। युक्त पुरुष का अर्थ है, वह जो भीतर
एक ही है। कहीं से चखो उसे, स्वाद उसका एक। कहीं से बजाओ उसे, आवाज उसकी एक। कहीं से खोजो उसे, वही मिलेगा। किसी द्वार से, किसी दरवाजे से, किसी स्थिति में, वही मिलेगा।
यहां जरा-सी धूप बदल जाती है और छाया हो जाती है, तो हम बदल जाते हैं। यहां जरा-सा अंतर पड़ता है परिस्थिति में, और हमारे भीतर का आदमी दूसरा हो जाता है। खीसे में पैसे हों थोड़े, तो हृदय की धड़कन और कुछ होती है। खीसे में पैसे थोड़े कम हो जाएं, हृदय की धड़कन और कुछ हो जाती है। हम हैं, ऐसा कहना ही शायद ठीक नहीं है।
गुरजिएफ के पास कोई जाता था और कहता था कि मुझे आत्मा को खोजना है, तो गुरजिएफ पूछता था, आत्मा तुम्हारे पास है? बड़ा अजीब सवाल पूछता था। पूछता था, डू यू एक्झिस्ट--तुम हो भी? कोई भी कहेगा कि मैं हूं, नहीं तो आता कौन! गुरजिएफ कहता, जो घर से निकला था, वही पहुंचा है मेरे पास कि रास्ते में बदल गया?
अनेकों को उसकी बात समझ में न आती थी। जो भी बात समझने योग्य है, वह बहुत कम लोगों की समझ में आती है। जो नहीं समझने योग्य है, वह सबकी समझ में आ जाती है। सिर्फ नासमझी ही सबकी समझ में आती है।
तो गुरजिएफ कहता था, पहले तुम सोचकर खोजकर आओ कि तुम हो भी! अन्यथा मैं मेहनत करूं और तुम बदल जाओ! ऐसे कैनवास पर चित्र बनाने का तो कोई मतलब नहीं

है, कि हम चित्र बना न पाएं और कैनवास बदल जाए! ऐसे पत्थर में तो मूर्ति तोड़ने का कोई प्रयोजन नहीं है, कि हम पत्थर में मूर्ति तोड़ भी न पाएं कि पत्थर बदल जाए।
आदमी के साथ करीब-करीब मेहनत ऐसी ही खराब होती है। जो आदमी के साथ मेहनत करते हैं, वे जानते हैं कि किस बुरी तरह खराब होती है। सुबह जिसके साथ मेहनत की थी, वह सांझ मिलता नहीं खोजे से कि कहां गया। चेहरे हैं। लेकिन एक मजे की बात है कि हमारे पास एक चेहरा हो, तो भी ठीक। झूठा ही सही; एक हो, तो भी ठीक। झूठे चेहरे हैं, वे भी बहुत हैं। और कितनी कुशलता से हम उन्हें बदलते हैं कि हमें कभी पता नहीं चलता कि हमने चेहरा बदल लिया। क्षणभर में बदल जाता है।
सुना है मैंने कि फकीर नसरुद्दीन के गांव में उस देश का सम्राट आने वाला था। तो गांव में कोई इतना बुद्धिमान आदमी नहीं था, जितना कि नसरुद्दीन। तो लोगों ने कहा कि तुम्हीं गांव की तरफ से उनसे मिल लेना, क्योंकि दरबारी शिष्टता, सदाचार का हमें कुछ पता नहीं। नसरुद्दीन ने कहा, मुझे ही कहां पता है! अधिकारियों ने कहा, घबड़ाओ मत, हम राजा को प्रश्न भी समझा देंगे कि वह तुमसे क्या पूछे और तुम्हें जवाब भी समझा देते हैं कि तुम क्या जवाब दो; फिर कोई दिक्कत न रहेगी। नसरुद्दीन ने कहा कि बिल्कुल ठीक है।
सब बना हुआ खेल था। राजा को समझा दिया गया था कि गरीब गांव है, बेपढ़े- लिखे लोग हैं। एक नसरुद्दीन भर है, जो थोड़ा-सा लिख-पढ़ लेता है। तो यही सवाल पूछना, क्योंकि इसी के जवाब उसने तैयार कर रखे हैं। और कोई सवाल मत पूछना। लेकिन बड़ी गड़बड़ हो गई। सम्राट ने पूछा... नसरुद्दीन को सिखाया था कि तेरी उम्र कितनी है? नसरुद्दीन की जितनी उम्र थी, साठ वर्ष, उसने तय कर रखा था। सम्राट को पूछना था कि तू कितने दिन से धर्म के अध्ययन और साधना में लगा है? तो पंद्रह वर्ष, उसने याद कर रखा था। लेकिन सब गड़बड़ हो गया। सम्राट ने पूछा, तेरी उम्र कितनी है? नसरुद्दीन ने कहा, पंद्रह वर्ष। थोड़ा सम्राट हैरान हुआ। साठ साल का बूढ़ा था, लेकिन पंद्रह वर्ष कह रहा था। फिर उसने पूछा कि और तुम धर्म की साधना में कितने दिन से लगे हो? नसरुद्दीन ने कहा, साठ वर्ष। सम्राट ने कहा कि तुम पागल तो नहीं हो? नसरुद्दीन ने कहा, वही मैं सोच रहा हूं कि आप पागल तो नहीं हैं! क्योंकि मुझे जिस क्रम में समझाया गया था, मालूम होता है कि तुम्हें किसी और क्रम में समझाया गया है। तुम भी रटे-रटाए सवाल पूछ रहे हो, मैं भी रटे-रटाए जवाब दे रहा हूं। बीच का आदमी गड़बड़ कर गया।
बड़ी मुश्किल हो गई। पूरा गांव इकट्ठा था। दरबारी इकट्ठे थे। अब क्या हो? नसरुद्दीन ने कहा, ऐसा करें, तुम यह राजा होने का जरा नकाब उतार लो, और मैं बुद्धिमान होने का नकाब उतार लूं। फिर हम दोनों बैठकर दिल खोलकर बात करें, तो कुछ मजा आए। यह चेहरा तुम जरा अलग कर दो सम्राट होने का, और मैं भी चेहरा अलग कर दूं बुद्धिमान होने का। इसी में सब गड़बड़ हो गई। ये चेहरे दिक्कत दे रहे हैं।
पता नहीं, वह सम्राट समझा या नहीं। नसरुद्दीन तो मजाक कर रहा था। वह
सच में ही बुद्धिमान लोगों में से एक था। नसरुद्दीन ने कहा कि अच्छा न हो कि हम आदमी आदमी की तरह बैठकर बात कर लें! ये चेहरे अलग कर दें। सम्राट को बड़ा कठिन पड़ा होगा। सम्राट जैसा चेहरा उतारना बड़ा मुश्किल होता है। सम्राट का चेहरा उतारना तो दूर है, भिखारी को भी अपना चेहरा उतारना मुश्किल होता है; फिक्स्ड हो जाता है सब; बंध जाता है।
अमेरिका में एक बहुत बड़ा अरबपति था, रथचाइल्ड। एक दिन एक भिखारी भीतर घुस गया उसके मकान के और जोर-शोर से शोरगुल करने लगा कि मुझे कुछ मिलना ही चाहिए। बिना लिए मैं जाऊंगा नहीं। जितना दरबानों ने अलग करने की कोशिश की, उतनी उछलकूद मचा दी। आवाज उसकी इतनी थी कि रथचाइल्ड के कमरे तक पहुंच गई। वह निकलकर बाहर आया। उसने उसे पांच डालर भेंट किए और कहा कि सुन, अगर तूने शोरगुल न मचाया होता, तो मैं तुझे बीस डालर देने वाला था।
मालूम है उस भिखमंगे ने क्या कहा? उसने कहा, महानुभाव, अपनी सलाह अपने पास रखिए। आप बैंकर हो, मैं आपको बैंकिंग की सलाह नहीं देता। मैं जन्मजात भिखारी हूं, कृपा करके भिक्षा के संबंध में मुझे कोई सलाह मत दीजिए।

रथचाइल्ड ने अपनी आत्मकथा में लिखवाया है कि उस दिन मैंने पहली दफा देखा कि भिखारी का भी अपना चेहरा है। वह कहता है, जन्मजात भिखारी हूं! मैं कोई छोटा साधारण भिखारी नहीं हूं ऐसा ऐरा-गैरा, कि अभी-अभी सीख गया हूं। जन्मजात हूं। और तुम बड़े बैंकर हो, मैं तुम्हें सलाह नहीं देता बैंकिंग के बाबत। कृपा करके तुम भी मुझे भीख मांगने के बाबत सलाह मत दो। मैं अपनी कला अच्छी तरह जानता हूं।
रथचाइल्ड ने लिखा है अपनी आत्मकथा में कि उस दिन मैंने उस भिखारी को गौर से देखा और मैंने पाया कि सम्राटों के ही चेहरे नहीं होते; भिखारियों के भी अपने चेहरे हैं।
लेकिन भिखारी भी एक ही चेहरा लेकर नहीं चलता। जब वह अपनी पत्नी के पास पहुंचता है, तो चेहरा बदलता है। जब अपने बेटे के पास जाता है, तो चेहरा बदल लेता है। जब पैसे वाले के पास से निकलता है, तो चेहरा और होता है। जब गरीब के पास से निकलता है, तो चेहरा और होता है। जिससे मिल सकता है, उसके पास चेहरा और होता है। जिससे नहीं मिल सकता है, उसके पास चेहरा और होता है। उसके पास भी एक फ्लेक्सिबल, एक लोचपूर्ण व्यक्तित्व है, जिसमें वह चेहरे अपने बदलता रहता है।
ये चेहरे हमें बदलने इसलिए पड़ते हैं, क्योंकि हमारे भीतर अपना कोई चेहरा नहीं है, कोई ओरिजिनल फेस नहीं है।
कृष्ण कहते हैं, युक्त आत्मा, स्थिर बुद्धि हुई जिसकी, ऐसा व्यक्ति ही मुझे जान पाता है।
परमात्मा के पास झूठे चेहरे लेकर नहीं जाया जा सकता। हां, कोई चाहे तो बिना चेहरे के भला पहुंच जाए; लेकिन झूठे चेहरों के साथ नहीं जा सकता। पर बिना चेहरे के वही जा सकता है, जिसके पास भीतर एक युक्त आत्मा हो। तब शरीर के चेहरों की जरूरत नहीं रह जाती।
लेकिन बड़े मजे की बात है कि हम सब झूठे चेहरे लगाकर जीते हैं। हमें अच्छी तरह पता है कि हम झूठे चेहरे लगाकर जिंदगी में जीते हैं। और हमारे पास कई चेहरे हैं, हमारे पास एक व्यक्तित्व नहीं, एक आत्मा नहीं।
महावीर ने कहा है, मल्टी-साइकिक, बहुचित्तवान है आदमी। बहुत चित्त हैं उसके भीतर। यह मल्टी-साइकिक शब्द तो अभी जुंग ने विकसित किया, लेकिन महावीर ने पच्चीस सौ साल पहले जो शब्द उपयोग किया है, वह ठीक यही है। वह शब्द है, बहुचित्तवान। बहुत चित्त वाला है आदमी।
कृष्ण भी वही कह रहे हैं कि जब वह एक चित्त वाला हो जाए, तभी मुझ तक आ सकता है; उसके पहले मुझे न जान पाएगा।
हम दूसरे को तो धोखा देते हैं, लेकिन बड़ा मजा तो यह है कि हमें कभी यह ख्याल नहीं आता है कि दूसरे भी ऐसे ही चेहरे लगाकर हमें धोखे दे रहे हैं। और हम चेहरों के एक बाजार में हैं, जहां आदमी को खोजना बहुत मुश्किल है। जब हम हाथ बढ़ाते हैं, तो हमारा एक चेहरा हाथ बढ़ाता है; दूसरी तरफ से भी जो हाथ आता है, वह भी एक चेहरे का हाथ है। सिर्फ इमेजेज, प्रतिमाएं मिलती हैं; आदमी नहीं मिलते। मुलाकात अभिनय में होती है; मुलाकात प्राणों की नहीं होती। बातचीत दो यंत्रों में होती है--सधे-सधाए, रटे-रटाए जवाब-सवालों में। भीतर की आत्मा का सहज आविर्भाव नहीं होता। लेकिन हम खुद अपने को धोखा देते-देते इतने धोखे में डूब गए होते हैं कि यह ख्याल ही नहीं होता कि दूसरे लोग भी ऐसा ही धोखा दे रहे हैं।
सुना है मैंने कि एक गांव में बड़ी बेकारी के दिन थे। अकाल पड़ा था और लोग बहुत मुश्किल में थे। एक सर्कस गुजर रहा था गांव से। स्कूल का एक मास्टर नौकरी से अलग कर दिया गया था। उसने सर्कस वालों से प्रार्थना की कि कोई काम मुझे दे दो। सर्कस के लोगों ने कहा कि सर्कस का तुम्हें कोई अनुभव नहीं है। उसने कहा, बहुत अनुभव है। स्कूल सिवाय सर्कस के और कुछ भी नहीं है। मुझे जगह दे दो। कोई और जगह तो न थी, लेकिन एक जगह सर्कस वालों ने खोज ली, उसे जगह दे दी गई। और काम यह था कि उसके शरीर पर शेर की खाल चढ़ा दी, पूरे शरीर पर; और उसे एक शेर का काम करना था। एक रस्सी पर उसे चलना था शेर की तरह।
चल जाता, कोई कठिनाई न आती। लेकिन जब वह पहले ही दिन बीच रस्सी पर था, तभी उसे दिखाई पड़ा कि उसके स्कूल के दस-पंद्रह लड़के सर्कस देखने आए हैं और

उसे गौर से देख रहे हैं। नर्वस हो गया। मास्टर लड़कों को देखकर एकदम नर्वस हो जाते हैं। घबड़ा गया और गिर पड़ा। गिर पड़ा नीचे, जहां कि चार-आठ दूसरे शेर गुर्रा रहे थे, और चिल्ला रहे थे, और गरज रहे थे, और घूम रहे थे नीचे के कठघरे में। जब शेरों के बीच में घुसा, गिरा, तो घबड़ा गया। भूल गया कि मैं शेर हूं। याद आया कि मास्टर हूं। दोनों हाथ ऊंचे उठाकर चिल्लाया कि मरा, अब बचना मुश्किल है!
जनता उसके उस चमत्कार से उतनी चमत्कृत नहीं हुई थी, रस्सी पर चलने से, जितनी इससे चमत्कृत हुई कि शेर आदमी की तरह बोल रहा है दोनों हाथ उठाकर! बाकी एक शेर, जो पास ही गुर्रा रहा था, उसने धीरे से कहा कि मास्टर, घबड़ा मत। तू क्या सोचता है, तू ही अकेला बेकार है गांव में? घबड़ा मत। तू अकेला ही थोड़े बेकार है गांव में, और लोग भी बेकार हैं। वे जो चार शेर नीचे घूम रहे थे, वे भी आदमी ही थे!
हम सबकी हालत वैसी ही है। आप ही झूठा चेहरा लगाकर घूम रहे हैं, ऐसा नहीं है। आप जिससे बात कर रहे हैं, वह भी घूम रहा है। आप जिससे मिल रहे हैं, वह भी घूम रहा है। आप जिससे डर रहे हैं, वह भी घूम रहा है। आप जिसको डरा रहे हैं, वह भी घूम रहा है।
आप ही अकेले नहीं हैं, यह पूरा का पूरा समाज, चेहरों का समाज है। इतने चेहरों की जरूरत इसलिए पड़ती है कि हमें अपने पर कोई भरोसा नहीं। हम भीतर हैं ही नहीं। अगर हम इन चेहरों को छोड़ दें, तो हम पैर भी न उठा सकेंगे, एक शब्द न निकाल सकेंगे। क्योंकि भीतर कोई है तो नहीं मजबूती से खड़ा हुआ, कोई क्रिस्टलाइज्ड बीइंग, कोई युक्त आत्मा तो भीतर नहीं है। तो हमें सब पहले से तैयारी करनी पड़ती है।
हमें सब पहले से तैयारी करनी पड़ती है। नाटक में ही रिहर्सल नहीं होता, हमारी पूरी जिंदगी रिहर्सल है। पति घर लौटता है, तो तैयार करके लौटता है कि पत्नी क्या पूछेगी और वह क्या जवाब देगा। पत्नी भी तैयार रखती है कि पति क्या जवाब देगा और किस तरह से उसके जवाबों को गड़बड़ करेगी। सब तैयार है। और रोज यह हो रहा है, और रोज यह होगा।
जिंदगी में भी रिहर्सल! पहले से तैयार करना पड़ता है कि मैं क्या जवाब दूंगा। क्या पूछा जाएगा, फिर मैं क्या कहूंगा। फिर क्या बचाव निकालूंगा। देर तो हो गई है रात घर लौटने में। अब क्या-क्या मुसीबत आने वाली है, वह सब जाहिर है। वह सब तैयार है।
भीतर हमारे पास कोई ऐसी चेतना नहीं है क्या, जो स्पांटेनियस, सहज हो सके! जब सवाल उठे, तब जवाब दे सके! और जब मुसीबत आए, तब हमारे भीतर से उत्तर आ सके! और जब घटना घटे, तब हमारे भीतर से कर्म पैदा हो सके! और जब जैसी जरूरत हो, हमारे प्राण वैसा कर सकें!
लेकिन हमें भरोसा नहीं है कि भीतर कोई है। हमें तैयारी करनी पड़ती है; चित्त में ही तैयारी करनी पड़ती है।
कृष्ण कहते हैं, युक्त आत्मा, थिर हो गई जिसकी चेतना, जिसकी लौ चेतना
की ठहर गई, वही केवल मुझे उपलब्ध हो पाता है। जो एक हो गया भीतर, जो यूनि- साइकिक हो गया, मल्टी-साइकिक नहीं रहा; बहुचित्त न रहे, एक चेतना का जन्म हो गया; एक विराट चेतना ने उसे सब ओर से घेर लिया--वैसा व्यक्ति मेरे पास आ पाता है। और वैसे व्यक्ति को कृष्ण ने कहा है ज्ञानी। और वैसे व्यक्ति को कहा है कि ऐसा व्यक्तित्व पाने में अनेक-अनेक जन्म लग जाते हैं अर्जुन!
न मालूम कितने जन्मों की यात्रा के बाद आदमी को यह अनुभव उपलब्ध हो पाता है कि मैं कब तक धोखा देता रहूंगा? मैं आथेंटिक, प्रामाणिक कब बनूंगा? मैं वही कब घोषणा कर दूंगा जगत के सामने, जो मैं हूं? कब तक मैं छिपाऊंगा? कब तक मैं प्रवंचना दूंगा? और मैं किसको धोखा दे रहा हूं? सब धोखा अपने को ही धोखा देना है; सब वंचनाएं आत्मवंचनाएं हैं।
लेकिन अनंत जन्मों के बाद भी याद आ जाए, तो जल्दी याद आ गई। अनंत जन्मों के बाद भी आ जाए, तो जल्दी आ गई याद। क्योंकि अनंत जन्म हम सबके हो चुके हैं। वह याद अब तक आई नहीं है। कहीं से कोई पीका नहीं फूटता भीतर से, कि वह हमें कहे कि उतार फेंको इस सब धोखेधड़ी को, जिसे तुमने जिंदगी बना रखा है। उतार दो इन नकली चेहरों को; अलग कर दो इनको, जो तुमने पहन रखे हैं। हटा दो यह सब जाल अपने आस-पास से, जो बेईमानी का है। बेईमानी का, जिसमें कि हम

दूसरों को धोखा दिए जा रहे हैं वह होने का, जो हम नहीं हैं। दूसरे भी हमें दिए चले जा रहे हैं।
धार्मिक आदमी वह है, जो एक छलांग लगाकर इस सब उपद्रव के बाहर हो जाता
है और जिंदगी जैसी है, उसकी सहज स्वीकृति की घोषणा कर देता है। उस स्वीकृति के साथ ही भीतर आत्मा युक्त हो जाती है। जिस व्यक्ति ने भी अपने होने को अंगीकार कर लिया, जैसा है स्वीकार कर लिया; जैसा है, बुरा-भला, स्वीकार कर लिया।
इसका यह मतलब नहीं है कि बुरा आदमी अपने को स्वीकार कर लेगा, तो बुरा
ही रह जाएगा। यह बड़ी अदभुत घटना घटती है। जैसे ही कोई व्यक्ति, जैसा है, अपने को स्वीकार कर लेता है, तत्क्षण उसके जीवन में वह क्रांति घटित हो जाती है, जिसमें सब बुराइयां जल जाती हैं।
बुराइयां बचती हैं चेहरों की आड़ में, नग्नता में कोई बुराई नहीं बच सकती। जब कोई आदमी प्रकट अपने को, सहज जैसा है, जाहिर कर देता है सब भय छोड़कर... । क्योंकि सब भय ही तो है कि हम चेहरे लगाए फिरते हैं। डर ही तो है कि कोई क्या कहेगा, तो हम लगाए फिरते हैं।
संन्यासी मैं उसी को कहता हूं, जो इस बात की घोषणा कर दे जीवन के प्रति
कि अब मैं धोखा नहीं दूंगा अपने चेहरे से; मास्क, कोई मुखौटा नहीं लगाऊंगा। जैसा हूं, हूं; उसकी खबर कर दूंगा। मैं जैसा हूं, वैसा होने की तैयारी करता हूं। ऐसा व्यक्ति एक दिन युक्त आत्मा को उपलब्ध हो जाता है। युक्त आत्मा परमात्मा के साथ एक हो जाती है। यह दूसरी बात इसमें समझने जैसी है। जो अपने साथ एक हुआ, वह सर्व के साथ एक हो जाता है। जिसने इस भीतर के एक के साथ एकता बांधी, उसकी बाहर की, विराट यह जो ऊर्जा का विस्तार है, इससे भी एकता सध जाती है। जो अपने भीतर टूटा है, वही परमात्मा से टूटा रहता है।
इसलिए भक्त भगवान को जब जानता है, तो भक्त नहीं रहता, भगवान ही हो जाता है। कोई संधि नहीं बचती बीच में, जरा-सा कोई सेतु नहीं बचता। सब टूट जाता है। कोई फासला नहीं रह जाता। फासला है भी नहीं। हमने फासला बनाया है, इसलिए दिखाई पड़ता है। झूठा फासला है। हमारा बनाया हुआ फासला है।
कृष्ण कहते हैं, वह वासुदेव ही हो जाता है।
बड़े हिम्मत के लोग थे। आदमी को भगवान बनाने की इतनी सहज बात! आदमी प्रभु को भजे और प्रभु ही हो जाए! जो जानते थे, वही कह सकते हैं ऐसा। हमारा मन मानने को राजी नहीं होता। नहीं होता इसीलिए कि हमने सिवाय अपनी क्षुद्रता के और कुछ भी नहीं देखा है। हमारे भीतर वह जो विराट का बीज छिपा है, वह छिपा ही पड़ा है। तो जब भी हम सोचते हैं कि आदमी, और भगवान हो जाएगा, तो हमें भरोसा नहीं आता। क्योंकि हम अपने भीतर जिस आदमी को जानते हैं, वह शैतान तो हो सकता है, भगवान नहीं हो सकता।
हम अपने को अच्छी तरह जानते हैं। हमें पक्की तरह पता है कि अगर कोई कहे कि आदमी शैतान है, तो हमारी समझ में आता है। लेकिन कोई कहे, आदमी भगवान है, तो समझ में बिल्कुल नहीं आता। क्योंकि हमारे पास जो नापने का आयोजन है, वह अपने से ही तो नापने का आयोजन है। हम अपने से ही तो नाप सकते हैं। और हम जब अपनी तरफ देखते हैं, तो सिवाय शैतान के कुछ भी नहीं पाते।
लेकिन मैं आपसे कहता हूं--और सारे धर्मों का यही कहना है--कि वह जो आपको अपने भीतर शैतानियत दिखाई पड़ती है, वह आप नहीं हैं। वह शैतानियत केवल इसीलिए है कि जो आप हैं, उसका आपको पता नहीं है। जिस क्षण आपको अपने असली होने का पता चलेगा, उसी दिन आप पाएंगे कि शैतानियत कहां खो गई! कभी थी भी या नहीं, या कि मैंने कोई सपना देखा था!
बुद्ध को जब ज्ञान हुआ है, और कोई उनसे पूछता है कि अब आप क्या कहते हैं कि इतने दिनों तक आप अज्ञान में कैसे भटके? तो बुद्ध कहते हैं, आज तय करना मुझे मुश्किल है कि वह जो अनंत जन्मों का भटकाव था, वह असली में घटा या मैंने कोई लंबा सपना देखा! कोई लंबा सपना! क्योंकि आज मैं तय ही नहीं कर पाता कि वह घट सकता है। वह असलियत में घट कैसे सकता है? क्योंकि आज मैंने जिसे अपने भीतर जाना है, उसे देखकर अब मैं मान नहीं सकता कि वह कभी भी घट सकता है।

जैसे ही हम उस भीतर के विराट को जानते हैं, वैसे ही सब क्षुद्रताएं उसमें खोकर ऐसे ही शुद्ध हो जाती हैं, जैसे कितनी ही गंदी नदी सागर में आकर गिर जाए और शुद्ध हो जाए। सागर चीख-पुकार नहीं करता कि गंदी नदी मुझमें मत डालो, गंदा हो जाऊंगा। और सागर में गिरते ही गंदगी कहां खो जाती, नदी कहां खो जाती, कुछ पता नहीं चलता। विराट ऊर्जा में जब भी हमारे क्षुद्र मन की बीमारियां गिरती हैं, तो ऐसे ही खो जाती हैं, जैसे सागर में नदियां खो जाती हैं।
बड़ी शक्ति छोटी शक्ति को पवित्र करने की सामर्थ्य रखती है। लेकिन हमें बड़े का कोई पता ही नहीं है। हम तो छोटे में ही जीते हैं। हम बड़ी छोटी पूंजी से काम चलाते हैं। सच बात यह है कि जितनी जीवन ऊर्जा से शरीर चलता है, हम उतने को ही अपनी आत्मा समझते हैं। और शरीर को चलाने के लिए तो जीवन ऊर्जा का अत्यल्प, छोटा-सा अंश काफी है। शरीर को चलाने के लिए तो सुई काफी है, तलवार की कोई जरूरत नहीं पड़ती। और शरीर जितनी जीवन ऊर्जा से चलता है, उसके साथ ही हम तादात्म्य कर लेते हैं कि यह मेरी आत्मा है। फिर शैतान पैदा हो जाता है।
क्षुद्र के साथ संबंध शैतान को पैदा कर देता है; विराट के साथ संबंध भगवान को पैदा कर देता है। संबंध पर निर्भर करता है कि आप कौन हैं। अगर आपने क्षुद्र से संबंध बांधा, तो शैतान। अगर विराट से संबंध बांधा, तो भगवान। आप वही हो जाते हैं, जिससे आप संबंध बांधते हैं; वही हो जाते हैं, जिसके साथ जुड़ जाते हैं।
कृष्ण कहते हैं, जो मुझे जान लेता है, वह वासुदेव ही हो जाता है। वह मैं ही बन जाता है। जो ब्रह्म को जान लेता है, वह ब्रह्म ही हो जाता है।
यह जानना भी बहुत अदभुत है, जिसमें जानने से आदमी एक हो जाता है उससे,
जो ज्ञेय है।
हमने बहुत चीजें जानी हैं। आपने गणित जाना है, लेकिन आप गणित नहीं हो गए। आपने भूगोल पढ़ी है, लेकिन आप भूगोल नहीं हो गए। आप हिमालय को देखकर जान आएंगे, लेकिन हिमालय नहीं हो जाएंगे। अगर कोई आकर कहे कि मैंने हिमालय को देखा और मैं हिमालय हो गया, तो आप उसे पागलखाने में बंद कर देंगे।
हम जिंदगी में जो भी जानते हैं, उसमें जानना दूर रहता है; हम कभी जानने वाली चीज के साथ एक नहीं हो पाते। इसलिए हमें कृष्ण के इस वचन को समझने में बड़ी कठिनाई पड़ेगी। क्योंकि हमारे अनुभव में यह कहीं भी नहीं आता कि जो भी हम जानें, उसके साथ एक हो जाएं। हमारा सब जानना, द्वैत का जानना है। हम दूर ही खड़े रहते हैं।
इसलिए अगर कृष्ण से पूछें, तो कृष्ण कहेंगे, जिसे तुम जानना कह रहे हो,
वह जानना नहीं है, केवल परिचय है। वह नोइंग नहीं है, सिर्फ एक्वेनटेंस है। हमारा सब जानना, मात्र परिचय है-- ऊपरी, बाहरी।
जैसे किसी के घर के बाहर से हम उसका घर घूमकर देख आएं और सोचें कि हमने उसके घर को जान लिया। और उसके भीतर हमारा कोई प्रवेश नहीं हुआ। जैसे हम सागर के किनारे खड़े होकर सोचें कि हमने सागर को जान लिया। और सागर के भीतर हमारा कोई प्रवेश नहीं हुआ। यह जानना जानना नहीं है, यह एक्वेनटेंस है, सिर्फ परिचय मात्र है--थोथा, ऊपरी, बाह्य।
ज्ञान हमारी जिंदगी में कोई है नहीं। और अगर आपकी जिंदगी में कोई ज्ञान है, तो आप कृष्ण की बात समझ पाएंगे। तो मैं दो-तीन आपसे बात कहूं, शायद किसी की जिंदगी में वैसा ज्ञान हो, तो उसकी उसको झलक मिल सकती है। वानगाग, एक बहुत बड़ा चित्रकार, आरलीज में एक खेत में खड़े होकर चित्र बना रहा है। कैनवास पर अपना ब्रुश लेकर काम में लगा है। दोपहर है, सूरज ऊपर सिर पर जल रहा है। वह भरी दोपहर का चित्र बना रहा है। उसकी जिंदगी में एक लालसा थी कि मैं सूर्य के जितने चित्र बना सकूं, बनाऊं। उसने जितने सूर्य के चित्र बनाए, किसी और आदमी ने नहीं बनाए।
कोई किसान गुजरता है और वानगाग से पूछता है, तुम कौन हो? वानगाग कहता है, मैं? मैं सूर्य हूं। वह सूर्य बना रहा है। किसान अपना सिर पीटकर चला जाता है। सोचता है कि दिमाग खराब होगा। और ऐसा किसान ही सोचता है, ऐसा नहीं। सालभर तक वानगाग सूर्य के चित्र बनाता रहा। और फिर उसे पागलखाने में लोगों ने रख दिया। क्योंकि वह सूर्य के साथ आत्मसात हो गया। लोग उसकी

चिकित्सा में लग गए। मित्र चिंतित हो गए। एक साल उसे पागलखाने में रखा कि उसका इलाज करें।
काश, उसके मित्रों को कृष्ण की इस बात का पता होता या वानगाग को पता होता, तो यह दुर्घटना बच सकती थी। निश्चित ही, पागल हो गया; कहता है, मैं सूर्य हूं! लेकिन अगर सालभर वानगाग की तरह किसी ने सूर्य को देखा हो, जाना हो, पहचाना हो, सूर्य की किरणों में उतरा हो, सूर्य की किरणों में नाचा हो, सूर्य की किरणों को पीया हो, तो कुछ आश्चर्य नहीं है कि इतना तादात्म्य बन जाए कि वानगाग को लगे कि मैं सूर्य हूं।
अगर आपने कभी किसी को प्रेम किया है, तो किन्हीं-किन्हीं क्षणों में आपको लगता है कि आप वही हो गए, जिसे आपने प्रेम किया है। और अगर आपको ऐसा नहीं लगा, तो आपने कभी प्रेम नहीं किया है। किन्हीं क्षणों में आपको लगता है कि आप वही हो गए, जिसे आपने प्रेम किया है। और अगर ऐसा न लगा हो, तो आप प्रेम के नाम पर परिचय को ही जान रहे हैं। अभी प्रेम की नोइंग, प्रेम का ज्ञान अभी घटित नहीं हो पाया।
यह जो हमारी जानने की दुनिया है, वहां परिचय ही जानना समझा जाता है।
कृष्ण तो उस बात को उठा रहे हैं, जहां होना ही ज्ञान है; टु बी इ.ज टु नो।
उसके अतिरिक्त कोई ज्ञान नहीं है।
मैं एक कहानी निरंतर कहता रहा हूं। मैं कहता रहा हूं कि जापान का एक चित्रकार बांसों का एक झुरमुट बना रहा है, वंशीवट बना रहा है; एक झेन फकीर। लेकिन उसका गुरु कभी-कभी पास से निकलता है और कहता है कि क्या बेकार! और वह बेचारा अपने बनाए हुए चित्रों को फेंक देता है। फिर एक दिन वह गुरु के पास जाता है कि मैं कितना ही सुंदर बनाता हूं, लेकिन तुम हो कि कह ही देते हो कि बेकार! और मुझे फाड़ना पड़ता है। मैं क्या करूं?
उसके गुरु ने कहा, पहले तू बांस हो जा, तब तू बांस का चित्र बना पाएगा। उसने कहा कि यह कैसे हो सकता है कि मैं बांस हो जाऊं? उसके गुरु ने कहा, तू जा। आदमी की दुनिया को छोड़ दे; बांसों की दुनिया में चला जा। उन्हीं के पास बैठना, उन्हीं के पास सोना; उनसे बात करना चीत करना, उन्हें प्रेम करना; उनको आत्मसात करना, इंबाइब करना, उनको पी जाना, उनको खून और हृदय में घुल जाने देना। उसने कहा कि मैं तो बातचीत करूंगा, लेकिन बांस? उसने कहा, तू फिक्र तो मत कर। आदमी भर बोले, वृक्ष तो बोलने को सदा तैयार हैं। लेकिन इतने सज्जन हैं कि अपनी तरफ से मौन नहीं तोड़ते। तू जा।
गया। एक वर्ष बीता। दो वर्ष बीते। तीन वर्ष बीते। गुरु ने खबर भेजी कि जाकर देखो, उसका क्या हुआ? ऐसा लगता है कि वह बांस हो गया होगा। आश्रम के अंतेवासी खोज करने गए। बांसों की एक झुरमुट में वह खड़ा था। हवाएं बहती थीं। बांस डोलते थे। वह भी डोलता था। इतना सरल उसका चेहरा हो गया था, जैसे बांस ही हो। उसके डोलने में वही लोच थी, जो बांसों में है। जैसे हवा का तेज झोंका आता और बांस झुक जाते, ऐसे ही वह भी झुक जाता। कोई रेसिस्टेंस, कोई विरोध, कोई अकड़, जो आदमी की जिंदगी का हिस्सा है, नहीं रह गई थी। बांस जमीन पर गिर जाते, जोर की आंधी आती, तो वह भी जमीन पर गिर जाता। आकाश से बादल बरसते और बांस आनंदित होकर पानी को लेते, तो वह भी आनंदित होकर पानी को लेता।
लोगों ने उसे पकड़ा और कहा, वापस चलो। गुरु ने स्मरण किया है। अब तुम वह बांस के चित्र कब बनाओगे?
उसने कहा, लेकिन अब चित्र बनाने की जरूरत भी न रही। अब तो मैं खुद ही बांस हो गया हूं। फिर उसे लाए और गुरु ने उससे कहा कि अब तू आंख बंद करके भी लकीर खींच, तो बांस बन जाएंगे। उसने आंख बंद करके लकीरें खींचीं और बांस बनते चले गए। और गुरु ने कहा कि अब आंख खोल और देख। तूने पहले जो बनाए थे, बड़ी मेहनत थी उनमें, लेकिन झूठे थे वे, क्योंकि तेरा कोई जानना नहीं था। अब तुझसे बांस ऐसे बन गए हैं, जैसे बांस की जड़ से बांस निकलते हैं, ऐसे ही अब तुझसे बांस निकल रहे हैं।
एक ज्ञान है, जहां हम एक होकर ही जान पाते हैं।
यह मैंने आपको उदाहरण के लिए कहा। यह उदाहरण भी बिल्कुल सही नहीं है।
क्योंकि जिसकी बात कृष्ण कर रहे हैं, उसके लिए कोई उदाहरण काम नहीं देगा।
वह अपना उदाहरण खुद ही है। और कोई चीज का उदाहरण काम नहीं करेगा। लेकिन यह

ख्याल में अगर आपको आ जाए कि एक ऐसा जानना भी है, जहां होना और जानना एक हो जाते हैं, तो ही आप ब्रह्मतत्व को समझने में समर्थ हो पाएंगे।
कृष्ण कहते हैं, फिर वह ज्ञानी, वह मुझे भजने वाला, वह युक्त चित्त हुआ, वह स्थिर बुद्धि हुआ भक्त, वासुदेव हो जाता है। वह भक्त नहीं रहता, भगवान हो जाता है।
और एक क्षण को भी आपको अपने भगवान होने का स्मरण आ जाए, तो आपकी सारी जिंदगी, अनंत जिंदगियां स्वप्नवत हो जाएंगी।
इसे आप व्यवस्था भी दे सकते हैं। अभी आप जिस जिंदगी में जीते हैं, अगर उसे आप स्वप्नवत मानकर जीने लगें, तो दूसरे छोर से यात्रा हो सकती है। या तो परमात्मा के साथ एक होने के अनुभव की यात्रा पर निकलें, तो यह जिंदगी स्वप्नवत हो जाएगी। या इस जिंदगी को स्वप्नवत मानकर जीना शुरू कर दें, तो आप अचानक पाएंगे कि आप परमात्मा के साथ एक हो गए हैं।
लेकिन इसे आप सिर्फ बुद्धि से समझने चलेंगे, तो समझ तो जाएंगे, लेकिन
वह समझ नासमझी से ज्यादा न होगी। समझ तो जाएंगे, लेकिन एक न हो पाएंगे। और जब तक एक न हो जाएं, तब तक मत मानना कि वह समझ है।
मैंने पहले दिन आपको श्वेतकेतु की कथा कही, कि पिता ने कहा कि तू उसको जानकर लौट, जिसे जानने से सब जान लिया जाता है। श्वेतकेतु वापस चला गया। वर्षों के बाद वह जानकर लौटा। अब वह बिल्कुल दूसरा आदमी होकर आ रहा था। पिता ने अपने झोपड़े की खिड़की से झांककर देखा, श्वेतकेतु चला आ रहा है। पिता ने अपनी पत्नी को कहा, उस बेटे की मां को कहा श्वेतकेतु की, कि अब मैं भाग जाता हूं पीछे के दरवाजे से, क्योंकि श्वेतकेतु ब्रह्म को जानकर लौट रहा है। पत्नी ने कहा कि तुम क्यों भागते हो? तुम्हीं ने तो उसे भेजा था जानने को कि उसे जानकर आ, जिसे जान लेने से सब जान लिया जाता है। अब वह आ रहा है।
पहली बार जब आया था, तो अकड़ से भरा था। शास्त्रों का दंभ था। अस्मिता थी, अहंकार था। अकड़ रही होगी। नशा है शास्त्रों का भी। जानकारी का भी नशा है। और जब नशा पकड़ जाता है, तो बड़ी दिक्कतें देता है। देख लिया था दूर से, अकड़कर आ रहा है।
अब तो वह ऐसे आ रहा था, जैसे हवा का एक झोंका हो। चुपचाप आ जाए घर के भीतर और किसी को पता न चले। पैरों के पदचाप भी न हों, ऐसा चला आता था। जैसे एक छोटा-सा सफेद बादल का टुकड़ा हो, तैर जाए चुपचाप, किसी को पता न चले। या जैसे कि कभी आकाश में कोई चील पर तौलकर पड़ी रह जाती है; हिलती भी नहीं, उड़ती है, उड़ती नहीं, पंख नहीं हिलाती; तिर जाती है। ऐसा चला आता था, शांत। उसके पैरों में चाप नहीं रह गई, क्योंकि जब अहंकार नहीं रह जाता, तो पैर चाप खो देते हैं।
पिता ने कहा कि मैं भाग जाता हूं पीछे के दरवाजे से, तू तेरे बेटे को सम्हाल। तो उसने कहा कि आप क्यों भाग जाते हैं? आपने ही तो भेजा था। उसके पिता ने कहा--अदभुत लोग थे, इसलिए कहता हूं--उसके पिता ने कहा कि नहीं, अब मुझे पीछे से चले जाना चाहिए। क्योंकि मैंने अभी ब्रह्म को नहीं जाना, और श्वेतकेतु को आकर मेरे पैर पड़ने पड़ें, तो यह उचित न होगा। मैं भाग जाऊं पीछे के दरवाजे से, तू सम्हाल। अब तो मैं जब तक न जान लूं, तब तक श्वेतकेतु के सामने आना उचित नहीं है, क्योंकि वह बेटा होने की वजह से पैर में झुकेगा। अब तो वह ब्रह्म हो गया, क्योंकि ब्रह्म को जानकर लौट रहा है। पिता भाग गया। जब तक मैं न जान लूं, तब तक अब बेटे के सामने खड़े होने का कोई मुंह भी तो नहीं रहा।
ऐसे पिता थे, तो दूसरे ही ढंग के बेटे भी दुनिया में पैदा होते थे। आज सभी पिता शिकायत कर रहे हैं बेटों की, बिना इस बात की फिक्र किए कि पिता कैसे हैं। यह ख्याल पिता को, कि उसे पैर में झुकना पड़ेगा, अब तो वह ब्रह्म होकर लौट रहा है, अनुचित हो जाएगा। या तो मैं उसके पैर पडूं, तो वह पड़ने न देगा; और या वह मेरे पैर पड़े, जो कि उचित नहीं है। अब मैं भाग जाऊं। अब तो मैं तभी उसके सामने आऊं, जब मैं भी जान लूं।
वह जो ज्ञान की किरण है, जब उतरती है, तो भीतर ज्ञानी नहीं बचता, ज्ञान
ही बचता है। वह जब परमात्मा का साक्षात्कार होता है, तो साक्षात्कार करने

वाला नहीं बचता, परमात्मा ही बचता है। मिट जाता है वह, जो खोजने निकला था।
वही बचता है, जिसे खोजा है।
लेकिन शास्त्र, जानकारी, परिचय, इनसे कुछ भी नहीं मिटता; बल्कि आप और घने हो जाते हैं, और मजबूत हो जाते हैं।
सुना है मैंने कि एक रात एक घर में कुछ मित्र बैठकर शराब पीते रहे। और कुछ शराब फर्श पर पड़ी छूट गई। रात एक चूहा बाहर आया; शराब की सुगंध उसको पकड़ी। थोड़ा उसने शराब को चखकर देखा। फिर रस आया। फिर और चखा। थोड़ी देर में नशे से भर गया। दोनों पिछले पैरों पर खड़ा हो गया और चिल्लाकर उसने कहा कि लाओ उस बिल्ली की बच्ची को, कहां है?
चूहा! लेकिन शराब! कई दिन से दिल में रहा होगा कि एक दफा बिल्ली की बच्ची को मजा दिखाया जाए। आज मौका आ गया। आज चूहे ने अपने को समझा होगा कि न मालूम वह क्या है! वह नशा है।
मैंने सुना है कि ख्रुश्चेव को किसी ने कुछ कोई कीमती कपड़ा भेंट किया
था; जब प्रधान मंत्री था ख्रुश्चेव। उसने मास्को में बड़े-बड़े दर्जियों को बुला भेजा। उन्होंने कहा कि नहीं, पूरा सूट न बन सकेगा। या तो पैंट बनवा लो, या कोट बनवा लो, लेकिन पूरा सूट नहीं बनता। पर जिसने भेजा था, सोच-समझकर भेजा था। ख्रुश्चेव ने उसे सम्हालकर रख लिया। कीमती कपड़ा था, सूट बने तो ही मतलब का था, नहीं तो बेजोड़ हो जाए।
फिर ख्रुश्चेव इंगलैंड घूमने आया था, तो कपड़ा साथ ले आया। और लंदन के
एक दर्जी को उसने बुलाकर कहा कि तुम कपड़ा बनवा दो। उसने कहा कि तैयार हो जाएगा आठ दिन बाद पूरा सूट। ख्रुश्चेव ने कहा, लेकिन आश्चर्य! मास्को में कोई भी दर्जी पूरा सूट बनाने को तैयार न हुआ। कहते थे, या तो पैंट बनेगा या कोट। तुम कैसे बना सकोगे? उस दर्जी ने कहा, मास्को में आप जितने बड़े आदमी हैं, उतने बड़े आदमी आप लंदन में नहीं हैं। साइज! मास्को में आपकी साइज बहुत ज्यादा है। उधर पैंट भी बन जाता, तो बहुत मुश्किल है। यहां तो बन जाएगा। और आप चाहो, तो एकाध-दो और आपके मित्रों का भी बनवा दूं।
वह जो हमारे भीतर नशा है, बहुत तरह का है। पद का भी होता है, ज्ञान का
भी होता है, त्याग का भी होता है। सब शराब बन जाती है, भीतर आदमी अकड़कर खड़ा हो जाता है। वह अकड़ अगर है, तो परमात्मा से मिलन न होगा। और परमात्मा से मिलन हुआ, तो वह अकड़ तो बह जाती है। उस अकड़ की जगह, परमात्मा ही शेष रह जाता है। लहरें खो जाती हैं और सागर ही बचता है।

प्रश्नः भगवान श्री, पिछले श्लोक में कृष्ण चार प्रकार के भक्तों की बात कहते हैं। अर्थार्थी--सांसारिक पदार्थों के लिए भजने वाला। आर्त-- संकट निवारण के लिए भजने वाला। जिज्ञासु और ज्ञानी भक्त। इनके अर्थ संक्षिप्त में कहें। और पहले दो लोगों को भक्त कैसे कहा, इस पर भी कुछ कहें।

कृष्ण चार विभाजन करते हैं भक्तों के।
अर्थार्थी--जो अर्थ के लिए, सांसारिक वस्तुओं के लिए प्रार्थना में
रत होते हैं। अधिक लोग। अधिक लोग लोभ से, कुछ पाने के लिए प्रार्थना में रत होते हैं।
फिर आर्त--दुख से, पीड़ा से, भय से, कठिनाइयों से परेशान होकर अधिक लोग परमात्मा की प्रार्थना में रत होते हैं।
तीसरे जिज्ञासु--जो जानना चाहते हैं; कुतूहल है जिन्हें; उत्सुकता है, क्यूरिआसिटी है। जैसे कि दार्शनिक, सारी दुनिया के दार्शनिक, पता लगाना चाहते हैं कि क्या है? अल्टिमेट काज क्या है दुनिया का? यह दुनिया कहां से आई, कहां जा रही है? क्यों चल रही है, क्यों नहीं चल रही है? प्रश्न जिनके मन में भारी हैं, लेकिन जिज्ञासा मात्र है। स्वयं को बदलने का सवाल नहीं है। जानने भर का सवाल है।
और चौथे ज्ञानी--जो सिर्फ जानने के लिए नहीं, बल्कि होने के लिए आतुर हैं। परमात्मा को जानने की जिनकी उत्सुकता सिर्फ कुतूहल नहीं है। ऐसा कुतूहल नहीं, जैसा बच्चों में होता है, कि दरवाजा लगा है, तो उसे खोलकर देख लें कि उस तरफ क्या है! कोई और प्रयोजन नहीं है। बस, दरवाजा लगा है, तो मन

होता है कि खोलकर देख लें कि उस तरफ क्या है! कीड़ा चला जा रहा है, तो टांग तोड़कर भीतर देख लें कि कौन-सी चीज चला रही है! बच्चों जैसा कुतूहल, तो जिज्ञासु है।
लेकिन ज्ञानी का अर्थ है, जो सिर्फ मात्र कुतूहल से नहीं, बल्कि जीवन
को आमूल रूपांतरित करने की प्रेरणा से भरा है। जिसके लिए जानना कुतूहल नहीं है, जीवन-मरण का सवाल है। न तो धन के लिए, न किसी दुख के कारण, न किसी कुतूहल से, बल्कि जीवन के सत्य को जानने की जिसके प्राणों की आंतरिक पुकार है, प्यास है। जिसके बिना नहीं जी सकेगा। जान लेगा, तो ही जी सकेगा। ऐसे चार भक्त कृष्ण ने कहे।
मन में सवाल उठ सकता है कि पहले दो तरह के या पहले तीन तरह के लोगों को क्यों भक्त कहा! भक्त तो आखिरी ही होना चाहिए, चौथा ही।
नहीं; तीनों को भी भक्त सिर्फ शब्द के कारण कहा। वे भी भक्ति करते हैं। भक्त नहीं हैं, यह तो कृष्ण जाहिर करते हैं, लेकिन वे भी भक्ति करते हैं।
महावीर ने भी इसी तरह ध्यान करने वालों के चार वर्ग किए। उनमें जो आदमी आर्त ध्यान कर रहा है... । जब आप क्रोध में होते हैं, तब आपका ध्यान एकाग्र हो जाता है। उसको भी कहा, वह भी ध्यानी है, आर्तध्यानी। क्योंकि क्रोध में मन एकाग्र हो जाता है। लोभ में मन एकाग्र हो जाता है। कामवासना में मन एकाग्र हो जाता है। तो उसको कहा, वह भी ध्यानी है; कामवासना का ध्यान कर रहा है। लेकिन अंतिम ध्यान, शुक्ल ध्यान ही असली ध्यान है; जब कि बिना प्रयोजन के, बिना कारण के, बिना कुछ पाने की आकांक्षा के, कोई ध्यान करता है।
इसलिए कृष्ण ने चार भक्तों की बात कही।
याद मुझे आता है, एक गांव में बड़ी तकलीफ है। भूख है, बीमारी है, परेशानी है। लोगों के पास दवा नहीं, खाना नहीं, कपड़े नहीं। गांव के चर्च का जो पादरी है, उसने कभी परमात्मा से कोई ऐसी प्रार्थना नहीं की, जिसमें कुछ मांगा हो। वह सत्तर साल का बूढ़ा है। गांवभर की तकलीफ; और चर्च में बड़ी भीड़ होती है। फटे-चीथड़े पहनकर, भूखे बच्चे और भूखे बूढ़े इकट्ठे होते हैं। और वे रोते हैं। उनके आंसू देखकर एक रात वह रातभर नहीं सोया। और उसने परमात्मा से प्रार्थना की, मैंने कभी तुझसे कुछ मांगा नहीं। एक बात मांगता हूं, वह भी अपने लिए नहीं; मेरे गांव के लोगों की हालत सुधार दे। स्वभावतः, चूंकि उसने कभी कुछ नहीं मांगा था, इसलिए उसकी प्रार्थना में बड़ा बल था। और स्वभावतः, क्योंकि उसने अपने लिए प्रार्थना नहीं की थी, इसलिए भी बड़ा बल था।
कहानी कहती है कि परमात्मा ने उसकी प्रार्थना सुन ली। और सुबह जब नगर
के लोग उठे, तो चमत्कृत रह गए। जहां झोपड़े थे, वहां महल हो गए। जहां बीमारियां थीं, वहां स्वास्थ्य आ गया। वृक्ष फलों से लद गए। फसलें खड़ी हो गईं। सारा गांव धनधान्य से परिपूर्ण हो गया।
यह तो चमत्कार हुआ; पूरे गांव ने देखा। इससे भी बड़ा चमत्कार पादरी ने देखा, कि चर्च में सदा भीड़ होती थी, वह बिल्कुल बंद हो गई; कोई चर्च में नहीं आता। पादरी दिनभर बैठा रहता है बाहर, कोई चर्च में नहीं आता। कभी कोई नमस्कार नहीं करता। कभी कोई निमंत्रण नहीं भेजता। प्रार्थना के लिए कोई आता नहीं। चर्च गिरने लगा। ईंटें खिसकने लगीं। पलस्तर टूटने लगा। एक साल, दो साल; लोग गांव के भूल गए कि चर्च भी है।
दो साल बाद उस बूढ़े फकीर ने एक रात फिर परमात्मा से प्रार्थना की कि
हे प्रभु, एक प्रार्थना और पूरी कर दे। परमात्मा ने कहा कि अब तेरी क्या कमी रह गई! और तूने जो चाहा था, सब कर दिया। उसने कहा, अब एक ही प्रार्थना और है कि मेरे गांव के लोगों को वैसा ही बना दे, जैसे वे पहले थे। उन्होंने कहा, तू यह क्या कह रहा है!
उसने कहा कि मैं तो सोचता था कि वे चर्च में परमात्मा की प्रार्थना के लिए आते हैं, वह मेरा गलत ख्याल सिद्ध हुआ। कोई अर्थ के कारण आता था। कोई दुख के कारण आता था। कोई लोभ के कारण, कोई भय के कारण। अब उनका लोभ भी पूरा हो गया; उनके भय भी दूर हो गए; उनके दुख भी दूर हो गए। तब मैंने यह न सोचा था कि परमात्मा को वे इतनी सरलता से भूल जाएंगे।

तो तीन तरह के लोग हैं। अर्थार्थी को अर्थ मिल जाए, धन मिल जाए, भूल जाएगा। दुखी को, कातर को, आर्त को, दुख दूर हो जाए, भूल जाएगा। जिज्ञासु को उसके प्रश्न का उत्तर मिल जाए, समाप्त हो जाएगा। असली भक्त तो चौथा ही है। कुछ भी मिल जाए, वह तृप्त नहीं होगा। जब तक कि वह स्वयं परमात्मा ही न हो जाए, इसके पहले कोई तृप्ति नहीं है।
लेकिन उन तीन को भक्त केवल शब्द की वजह से कहा। और उनकी गिनती करा देनी उचित है, क्योंकि वही तीन तरह के भक्त हैं जमीन पर; चौथी तरह का तो कभी-कभी, शायद ही कभी, चौथी तरह का आदमी पैदा होता है। अगर चौथे की ही बात करनी हो, तो बिल्कुल बेकार हो जाए, क्योंकि असली भीड़ तो इन तीन की है। ये नियम हैं; वह चौथा तो अपवाद है। इसलिए गिनती कर लेनी उचित समझी कि इनकी गिनती कर ली जाए। यद्यपि पीछे कह दिया जाएगा कि ये तीनों सिर्फ धोखे के भक्त हैं; दिखाई ही पड़ते हैं, हैं नहीं।
और कई बार बिल्कुल उलटी घटना घटती है। वह चौथा जो है, शायद दिखाई न पड़े, और हो। और ये तीन दिखाई पड़ें, और हों न। क्योंकि वह चौथा क्यों दिखाई पड़ेगा! वह कोई सड़क पर खड़े होकर चिल्ला नहीं देगा। वह किसी मंदिर में हाथ जोड़कर खड़ा होगा, जरूरी नहीं है। हो भी सकता है, न भी खड़ा हो। क्योंकि उसके तो प्राणों में रम जाएगी बात; उसके श्वास-श्वास में समा जाएगी बात।
एक मुसलमान फकीर हुआ है। सत्तर साल तक मस्जिद जाता रहा। एक दिन न चूका। बीमार हो, परेशान हो, बरसा होती हो, धूप जलती हो, पांच नमाज पूरी मस्जिद में करता रहा। एक दिन अचानक सुबह की नमाज में नहीं आया; मस्जिद के लोगों ने समझा कि शायद मर गया। इसके सिवाय कोई सोचने का कारण ही न था। क्योंकि किसी भी हालत में वह आया था। इन पचास वर्षों में जितने लोग उसे जानते थे, वह नियमित आया था। गांव में कुछ भी हुआ हो, वह पांच बार मस्जिद में आया था; आज नहीं आया।
सारी मस्जिद नमाज के बाद भागी हुई फकीर के घर पहुंची। वह अपने दरवाजे
पर बैठकर खंजड़ी बजा रहा था! उन्होंने कहा कि क्या दिमाग खराब हो गया या मरते वक्त नास्तिक हो गए! क्या कर रहे हो यह? नमाज चूक गए! सत्तर साल का बंधा हुआ क्रम तोड़ दिया? आज मस्जिद क्यों न आए?
उस फकीर ने कहा कि जब तक नमाज करनी न आती थी, तब तक मस्जिद में आता था।
अब नमाज करनी आ गई। अब यहीं बैठे हो गई। अब कहीं जाने की कोई जरूरत नहीं। सच तो यह है, उस फकीर ने कहा कि अब करने की भी कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि अब करने वाला भी कहां बचा; नमाज ही बची। भीतर प्रार्थना ही रह गई है; अब प्रार्थना करने वाला भी नहीं है।
तो बहुत संभावना तो यह है कि वे तीन ही तरह के भक्त आपको दिखाई पड़ेंगे; चौथा तो शायद दिखाई नहीं पड़ेगा। लेकिन वह चौथा ही है। वे तीन तो सिर्फ नाम मात्र को, फार नेम्स सेक, भक्त हैं। कृष्ण ने उनको गिना दिया कि कहीं वे नाराज न हो जाएं! क्योंकि बड़ी भीड़ उन्हीं की है। वह एक तो अपवाद है; उसे पीछे से गिना दिया है।

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः।
तं तं नियमास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया।। 20।।
और हे अर्जुन, जो विषयासक्त पुरुष हैं, वे तो अपने स्वभाव से प्रेरे हुए तथा उन-उन भोगों की कामना द्वारा ज्ञान से भ्रष्ट हुए, उस-उस नियम को धारण करके अन्य देवताओं को भजते हैं अर्थात पूजते हैं।

यह भी कहा कृष्ण ने कि वे जो कामासक्त हैं, विषयासक्त हैं, भोगों की आकांक्षाओं से भरे हैं, भोग से सम्मोहित हैं, वे ज्ञान से च्युत होकर मेरा स्मरण नहीं करते, अन्य-अन्य देवताओं का स्मरण करते हैं।
इसमें दो बातें हैं।
एक तो यह कि जो व्यक्ति भी कामासक्त हुआ, विषयासक्त हुआ, वह ज्ञान से च्युत होता है। वह जो भीतर ज्ञान की धारा है, जैसे ही जरा-सा भी विषय की तरफ मन दौड़ा कि वह धारा पतित होती है, स्खलित होती है। एक क्षण को भी मन किसी विषय के प्रति प्रेरित हुआ, कि इसे पा लूं, यह मेरा हो जाए, इसे भोग लूं; जैसे ही भोग का कोई ख्याल आया कि वह भीतर की जो चेतन-धारा है, वह जो करंट है

चेतना की, वह तत्काल डांवाडोल होकर अधोगति की यात्रा करने लगती है। हर विषयासक्ति चेतना की धारा को पतित करती है।
एक बात तो यह इसमें ख्याल ले लेने जैसी है।
जरा-सा, जरा-सा भी ख्याल! रास्ते पर गुजरते हैं, और दुकान पर दिख गई कोई चीज, और ख्याल आया--मिल जाए, मेरी हो जाए, मैं मालिक हो जाऊं। जरा-सी झलक, एक जरा-सी किरण वासना की, और आप जरा रुककर खड़े होकर वहीं देखना कि आपके भीतर अज्ञान घना हो गया और ज्ञान फीका हो गया। इसे आप अनुभव करेंगे, तो ख्याल में आएगा। जरा-सी वासना, और आप अचानक पाएंगे कि मूर्च्छा घिर गई, बेहोशी आ गई, अज्ञान भर गया, और ज्ञान क्षणभर को जैसे बिल्कुल खो गया।
लेकिन हम तो चौबीस घंटे विषय की कामना से भरे हुए हैं। शायद इसीलिए हमें पता भी नहीं चलता कि हमारी ज्ञानधारा पतित होती है। क्योंकि पतित होने का पता तो उन्हें चले, जो ज्ञानधारा में थोड़े-बहुत कभी भी होते हों, तो पतित होने का पता चले। जिनके पास धन है, उन्हें दिवालिया होने का पता चलता है। भिखारियों को तो दिवालिया होने का पता नहीं चलता। जो कभी थोड़ा ऊपर जीते हैं, उन्हें नीचे आने का पता चलता है। लेकिन जो नीचे ही जीते हैं, घाटियों को जिन्होंने अपनी जिंदगी बना लिया, शिखरों की तरफ जो कभी उठकर भी नहीं देखते, उनको तो फिर पतन का भी पता नहीं चलता। अंधेरा ही जिनका घर है, उन्हें कैसे पता चलेगा कि उजेला थोड़ा फीका हो गया, कि दीए की लौ थोड़ी कम हो गई।
लेकिन अगर फिर भी थोड़ा स्मरणपूर्वक खोज करें, तो जब भी मन को कोई वासना तीव्रता से पकड़े, तब आप जरा अपने भीतर देखना कि आपके ज्ञान की जो क्वालिटी है, आपके ज्ञान का जो गुण है, क्या वह बदला? क्या वह निम्न हुआ? क्या वह नीचे गिरा?
इसलिए हर वासना, चाहे तृप्त ही क्यों न हो जाए, एक सूक्ष्म विषाद में छोड़ जाती है। क्योंकि वह आपको पतित कर जाती है। हर वासना, चाहे मिल ही क्यों न जाए, मिल जाते ही आपके मुंह में एक कड़वा स्वाद छूट जाता है। वह कड़वा स्वाद इस बात का होता है कि भीतर आपकी चेतना-धारा पतित हुई। आपने जो पाया, वह तो ना-कुछ; लेकिन जो गंवाया, वह बहुत कुछ; एट ए वेरी ग्रेट कास्ट। वह जो कृष्ण कह रहे हैं, वह यह कह रहे हैं कि तुम पाओगे क्या?
एक आदमी सड़क पर चला जा रहा है, और देखता है कि एक अच्छा कपड़ा पहने हुए कोई गुजरा; वे कपड़े मुझे चाहिए! कपड़े की मांग, बड़ी छोटी-सी मांग है। लेकिन उसे पता नहीं कि इस मांग ने उसकी चेतना को कितना नीचे गिरा दिया, तत्काल! जैसे टेंपरेचर नीचे गिर गया हो थर्मामीटर में; उसके भीतर ज्ञान की धारा नीचे गिर गई।
इसलिए वासना से भरे हुए व्यक्ति अक्सर छोटे बच्चों, नासमझों जैसा व्यवहार करने लगते हैं। कभी आपने ख्याल किया कि जब आप वासना में होते हैं, तो आप जो व्यवहार करते हैं, वह करीब-करीब स्टुपिडिटी का होता है; करीब-करीब मूढ़ता का होता है!
अगर हम दो प्रेमियों को आपस में बातचीत करते देखें, जो वासनातुर हैं,
तो उनकी बातचीत हमें कैसी मालूम पड़ेगी! उनका एक-दूसरे से व्यवहार देखें, तो वह कैसा मालूम पड़ेगा! स्टुपिड, एकदम मूर्खतापूर्ण। लेकिन उन्हें नहीं मालूम पड़ रहा है। वे तो बड़े स्वर्ग में जी रहे हैं! वे भी अगर लौटकर देखें, तो उन्हें भी मूढ़ता दिखाई पड़ेगी। असल में जैसे ही हम कामातुर और वासना से भरते हैं, किसी भी विषय की आसक्ति से, वैसे ही हमारे भीतर की चेतना-धारा नीचे गिर जाती है।
सुना है मैंने, एक फकीर, नाम था उसका फरीद, शेख फरीद। कोई लोग उसके पास आते। समझो, कोई आदमी उससे मिलने आया। वह आकर बैठा नहीं कि फरीद जाएगा उसके पास, उसका सिर हिला देगा जोर से। कई दफे तो लोग घबड़ा जाते। और वह आदमी कहता कि आप यह क्या कर रहे हैं? तो फरीद हंसने लगता। कभी बैठा रहता पास में, डंडा उठाकर उसके पेट में इशारा कर देता। वह आदमी चौंक जाता। वह कहता, आप यह क्या कर रहे हैं! वह हंसने लगता।
बहुत बार लोगों ने पूछा कि आप यह करते क्या हो? तो फरीद बोला कि एक दफा मैं यात्रा पर गया था। बहुत-से खच्चर साथ थे। बड़ा सामान था। बहुत बड़ा

कारवां था। वह जो खच्चरों का मालिक था, बड़ा होशियार था। जब कभी कोई खच्चर अड़ जाता और बढ़ने से इनकार कर देता... ।
और खच्चर अड़ जाए, तो बढ़ाना बहुत मुश्किल है। बढ़ता रहे, उसकी कृपा। अड़ जाए, तो फिर बढ़ाना बहुत मुश्किल। क्योंकि न उन्हें बेइज्जती का कोई डर, क्योंकि वे खच्चर हैं। उन्हें कोई अड़चन नहीं है। उन्हें आप गालियां दो, उन्हें कोई मतलब नहीं।
फरीद ने कहा, लेकिन वह बड़ा कुशल मालिक था। कभी कोई खच्चर अड़ जाए, तो एक सेकेंड न लगता था चलाने में। तो मैंने उससे पूछा कि तेरी तरकीब क्या है? तो उसने मुझे बताया कि वह थोड़ी-सी मिट्टी उठाकर खच्चर के मुंह में डाल देता है। खच्चर उस मिट्टी को थूक देता है और चल पड़ता है! तो फरीद ने पूछा, मैं समझा नहीं कि मिट्टी उसके मुंह में डालने और खच्चर के चलने का संबंध क्या है?
तो उस आदमी ने कहा कि मैं ज्यादा तो नहीं जानता, मैं इतना ही समझता हूं
कि मुंह में मिट्टी डालने से उसके भीतर की जो विचारों की धारा है, वह टूट जाती है; वह जो अंडर करंट है! खच्चर सोच रहा है, खड़े रहेंगे! अब मुंह में मिट्टी डाल दी। इतनी बुद्धि तो नहीं है कि इन दोनों को फिर से जोड़ सके। मुंह में मिट्टी डाल दी, तो वे भूल गए जाने-आने की बात। मुंह की मिट्टी साफ करने में लग गए, तब तक उसने हांक दिया; वह चल पड़ा। उसने कहा, जहां तक मैं समझता हूं... । ज्यादा मैं नहीं जानता, क्योंकि खच्चर के भीतर क्या होता है, पता नहीं। अनुमान मेरा यह है कि उसकी विचारधारा खंडित हो जाती है, गड़बड़ हो जाती है। बस, उसी में वह चक्कर में आ जाता है; चल पड़ता है। बाकी यह दवा मेरी कारगर है।
लोग कहते, आपने हमें खच्चर समझा है क्या? फरीद कहता कि बिल्कुल खच्चर समझा है। अभी तुझे मैंने देखा। तू भीतर आया, तब मैंने देखा कि तेरे भीतर क्या चल रहा था।
कठिन नहीं है देखना कि दूसरे के भीतर क्या चल रहा है। शिष्टतावश अनेक लोग, जो जानते भी हैं कि दूसरे के भीतर क्या चल रहा है, कहते नहीं हैं। लेकिन दूसरे के भीतर क्या चल रहा है, यह जानना बड़ी ही सरल बात है। जब आप भीतर आते हैं, तो आपके भीतर क्या चल रहा है, उसके साथ आपके चारों तरफ रंग, और आपके चारों तरफ गंध, और आपके चारों तरफ विचार का एक वातावरण भीतर प्रवेश करता है।
तो फरीद कहता, जैसे ही मैं देखता हूं, इसके भीतर कोई वासना चल रही है, उचककर मैं उसकी गर्दन को जोर से हिला देता हूं। वही खच्चर वाला काम कि शायद करंट... ! और अक्सर मेरा अनुभव है कि करंट टूट जाती है। वह चौंककर पूछता है, क्या कर रहे हैं? कम से कम वहां से चौंक जाता है; दूसरी यात्रा पर ले जाया जा सकता है।
बहुत-से धर्म की जो विधियां हैं, वे सारी विधियां ऐसी हैं कि किसी तरह आपकी जो वासना की तरफ दौड़ती हुई स्थाई हो गई धारा है, वह तोड़ी जा सके।
आप मंदिर जाते हैं। आपने घंटा लटका हुआ देखा है मंदिर के सामने। कभी ख्याल नहीं किया होगा कि घंटा किसके लिए बजाया जाता है। आप सोचते होंगे, भगवान के लिए; तो आप गलती में हैं। वह आपके खच्चर के लिए है। वह जो घंटनाद है, भगवान से उसका कोई लेना-देना नहीं है। वह आपकी खोपड़ी में जो चल रहा है, जोर का घंटा बजेगा, मिट्टी थूककर आप मंदिर के भीतर चले जाएंगे।
वह अंतर-धारा जो चल रही है, वह एक झटके में टूट जाए। टूटती है, अगर समझ हो, तो बराबर टूट जाती है।
कहते हैं, मंदिर स्नान करके चले जाओ; ऐसे ही मत चले जाना। वह अंतर-धारा तोड़ने के लिए जो भी हो सकता है, कोशिश की जाती है। बाहर ही जूते निकाल दो; वह अंतर-धारा तोड़ने के लिए। आपके जितने एसोसिएशन हैं, वह तोड़ने की कोशिश की जाती है। जाकर मंदिर में लेट जाओ चरणों में परमात्मा के साष्टांग, सब अंग जमीन को छूने लगें; सिर जमीन पर पटक दो। वह जो अकड़ा हुआ सिर है, चौबीस घंटे अकड़ा रहता है। शायद... । वही खच्चर वाला काम किया जा रहा है। आपके भीतर वह जो अंडर करंट है, शायद... ।
लेकिन कई बड़े कुशल खच्चर हैं; उन खच्चरों का मुझे पता नहीं। कितना ही घंटा बजाओ, उनके भीतर कुछ भी नहीं बजता। कुछ बजता ही नहीं!

लेकिन मनुष्य को सहायता पहुंचाने के लिए जिनकी आतुरता रही है, उन्होंने बहुत-सी व्यवस्थाएं हैं।
कृष्ण कह रहे हैं, एक बात तो यह कि च्युत हो जाता है वासना की धारा में दौड़ता हुआ चित्त ज्ञान से।
ज्ञान स्वभाव है।
इसे ऐसा समझें, तो ठीक होगा, हम आमतौर से कहते हैं कि वासना को छोड़ दो,
तो ज्ञान मिल जाएगा। कहना चाहिए, वासना को पकड़ा है, इसलिए ज्ञान खो गया है। ज्यादा एक्जेक्ट और सही जो कहना होगा। यह कहना उतना ठीक नहीं है कि वासना को छोड़ दो, तो ज्ञान मिल जाएगा। इसमें ऐसा लगता है कि वासना हमारा स्वभाव है, छोड़ेंगे, तो ज्ञान, कोई उपलब्धि हो जाएगी। असलियत उलटी है। ज्ञान हमारा स्वभाव है, वासना को पकड़कर हमने उसे खोया है। वासना हट जाए, वह हमें फिर मिल जाएगा।
और इसीलिए वासना कभी तृप्त नहीं होगी, क्योंकि वासना हमारा स्वभाव नहीं है, हमारा पतन है। हम कितने ही दौड़ते रहें, पतन से हम कभी राजी न हो पाएंगे, तृप्त न हो पाएंगे। पतन विषाद ही बनेगा, पतन हमें पीड़ा ही देगा, संताप ही देगा, नर्क ही देगा। और एक न एक दिन नर्क की पीड़ा से हमें लौट आना पड़ेगा। और उस शिखर की तरफ देखना पड़ेगा, जो हमारे प्राणों का आंतरिक शिखर है, कैलाश।
कैलाश हिमालय में नहीं है। जाते हैं लोग; सोचते हैं, वहां होगा। कैलाश हृदय के उस शिखर का नाम है, ज्ञान के उस शिखर का नाम है, जहां से कभी भगवान च्युत नहीं होता। आपके भीतर का भगवान भी कभी च्युत नहीं होता जहां से। जिस दिन उस शिखर पर हम पहुंच जाते हैं भीतर के--सब घाटियों को छोड़कर, घाटियों की वासनाओं को छोड़कर--उस दिन ऐसा नहीं होता कि हमें कुछ नया मिल जाता है। ऐसा ही होता है कि जो हमारा सदा था, उसका आविष्कार, उसका उदघाटन हो जाता है। हम जानते हैं, हम कौन थे। और हम जानते हैं कि हम किस तरह च्युत होते रहे, किस तरह भटकते रहे। किस कीमत पर हमने अपने को गंवाया और क्षुद्र चीजों को इकट्ठा किया। कंकड़-पत्थर बीने और आत्मा बेची।
तो एक बात तो कृष्ण यह कहते हैं। दूसरी बात यह कहते हैं कि वे जो और अर्थार्थी, और आर्त, और जिज्ञासु, उस तरह के जो लोग हैं, वे मेरी नहीं, और देवताओं की पूजा में संलग्न होते हैं। क्यों?
ठीक परमात्मा की प्रार्थना में वे लोग संलग्न नहीं होते, क्योंकि परमात्मा की प्रार्थना की शर्त ही वे लोग पूरी नहीं करते। शर्त ही यह है कि सब वासनाएं छोड़कर आओ। ब्रह्म को पाने की शर्त तो यही है कि सब वासनाएं छोड़कर आओ, तब प्रार्थना पूरी होगी। वे वहां कैसे जाएंगे?
तो वे छोटे-मोटे अपने देवी-देवता निर्मित कर लेते हैं, जो उनसे शर्त नहीं बांधते। बल्कि शर्त ऐसी बांधते हैं, जो सस्ती होती हैं; पूरी कर देते हैं। कोई देवता मांगता है कि नारियल चढ़ा दो। कोई देवता मांगता है कि फूल-पत्ती रख दो। कोई देवता मांगता है कि ऐसा कर दो, बलि चढ़ा दो, या यज्ञ कर दो, या हवन कर दो। सस्ती मांग वाले भी देवता हैं। सस्ती दुकानें भी हैं।
तो कृष्ण कहते हैं, फिर उस तरह के लोग मेरी तरफ नहीं आते, क्योंकि मेरी शर्त उनसे पूरी नहीं होती। वे खुद ही अपने देवता गढ़ लेते हैं।
यह बहुत मजे की बात है। हमने बहुत देवता हमारे गढ़े हुए हैं। अपनी जरूरतों के अनुसार हमने उन्हें गढ़ा है। जिस चीज की जरूरत होती है, हम गढ़ लेते हैं।
सारा आविष्कार तो जरूरत से होता है न! देवताओं का आविष्कार भी जरूरत
से होता है। आवश्यकता कोई वैज्ञानिक खोजों की ही जननी नहीं है, देवताओं की भी जननी है। इसलिए तो इतने देवता! हिंदुस्तान में तैंतीस करोड़ आदमी थे, तो तैंतीस करोड़ देवता। अब आदमी तो थोड़े ज्यादा बढ़ गए हैं, देवता भी हमें बढ़ाने चाहिए। नहीं तो बहुत मुश्किल पड़ जाएगी; कुछ लोग बिना देवताओं के पड़ जाएंगे।
हरेक अपना देवता खड़ा कर लेता है, जो उसकी जरूरत है, उसके मुताबिक। और फिर उस देवता से प्रार्थना करने लगता है।
कृष्ण कहते हैं, वे दूसरे देवताओं के पास चले जाते हैं।
परमात्मा तो एक है और हम उसे गढ़ नहीं सकते।

मोहम्मद ने अगर काबा की तीन सौ पैंसठ मूर्तियां हटवाईं, तो सिर्फ इसलिए कि वे देवताओं की मूर्तियां थीं। मोहम्मद कोई परमात्मा की प्रतिमा को मनुष्य के हृदय से नहीं हटाना चाहते थे। लेकिन बड़ी गलत-समझी पैदा हो गई। मोहम्मद कोई परमात्मा की प्रतिमा को नहीं हटाना चाहते थे। परमात्मा की प्रतिमा मनुष्य के हृदय में स्थापित हो, इसलिए देवताओं की जो तथाकथित प्रतिमाएं थीं काबा के मंदिर में--हर दिन के लिए अलग देवता था, तीन सौ पैंसठ देवता थे एक-एक दिन के लिए, हर दिन अलग देवता पर पूजा होती थी-- मोहम्मद ने हटवा दिया, फिंकवा दिया, कि हटा दो इन्हें।
क्योंकि इन देवताओं की वजह से जो लोग आते हैं, वे कृष्ण के तीन वर्ग पहले जो हैं, वही लोग होंगे--आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु--वही आएंगे। वह जो चौथा है, वह तो उस परम एक की तरफ ही जाता है। लेकिन उस एक की तरफ जाने की शर्त पूरी करनी पड़ती है। वह शर्त महंगी है, कठिन है, दुर्धर्ष है, दुस्तर है। क्योंकि स्वयं को ही दांव पर लगाना पड़ता है, नारियल को नहीं।
हालांकि आपने कभी ख्याल किया हो या न किया हो, आदमी बड़ा होशियार है। नारियल, आपने कभी ख्याल किया, आदमी की खोपड़ी की शक्ल की चीज है। आंख भी होती है, नाक भी होती है, खोपड़ी भी होती है! जोर से पटको, तो खोपड़ी की तरह फूटता भी है। आपने कभी ख्याल किया कि नारियल किन लोगों ने खोजा? आदमी की खोपड़ी की शक्ल में खोजा गया है।
अपने को चढ़ाना पड़ता है परमात्मा के दरवाजे पर; अपनी गर्दन काटनी पड़ती है। प्रतीकात्मक अर्थों में, सिंबालिकली, अपनी ही गर्दन काटकर चढ़ानी पड़ती है। अपने को नहीं काटेगा, वह क्या चढ़ाएगा! वह क्या परमात्मा को पाएगा!
पर होशियार है आदमी; उसने सोचा, गर्दन वगैरह तो बहुत महंगी पड़ती है। पांच आने में नारियल मिलता है; बिल्कुल आदमी की खोपड़ी जैसा लगता है। आंख भी हैं; सब हिसाब-किताब पूरा है। फिर असली भी खरीदने की जरूरत नहीं है, सड़ा- सड़ाया भी मिल जाता है।
हर मंदिर के सामने दुकान होती है। और करीब-करीब मैंने सुना है कि मंदिर के पास जो दुकान होती है, जो नारियल उन्होंने पहली दफे खरीदे थे, उनसे ही काम चलता चला जाता है। क्योंकि अंदर जाकर चढ़ जाते हैं, पुजारी रात को बेच जाता है। सुबह फिर मंदिर में चढ़ने लगते हैं, रात फिर लौट आते हैं। इसलिए दुनियाभर में नारियल के दाम बढ़ जाएं, मंदिर की दुकान वाला नारियल पुराने दाम से भी चलता है; कोई हर्जा नहीं! उसके भीतर कुछ बचा भी है, यह संदिग्ध है। सब सड़ चुका होगा कभी का।
लेकिन आदमी कितना कुशल है! उसने नारियल खोजा; उसने सिंदूर खोजा। सिंदूर--खून। खून अपने प्राणों का जो लगाए; वह प्रतीक है कि अपने खून को जो चढ़ा दे। तो उसने देखा, खून से मिलती-जुलती चीज बाजार में कोई मिलती है? मिलता है। सिंदूर मिल गया। उसने सिंदूर लगा दिया। नारियल चढ़ा दिया। दो- चार-आठ आने में निपटाकर वह अपने घर वापस आया।
निश्चित, यह पूजा परमात्मा तक नहीं पहुंचती। यह पूजा सिर्फ हमारी वासनाओं की सेवा है। और यह आपको कहूं कि इसमें कभी-कभी परिणाम आते हैं, इसलिए और कठिनाई है। ऐसा नहीं है कि यह चूंकि बिल्कुल थोथी है, इसमें कभी परिणाम नहीं आते। इसमें परिणाम आते हैं। उसी से तो झंझट है। अगर परिणाम बिल्कुल न आते होते, तो आदमी कभी का ऊब गया होता। परिणाम आते हैं।
परिणाम इसलिए आते हैं कि जब भी आप किसी देवता की पूजा शुरू करते हैं,
या कोई देवता निर्मित कर लेते हैं... । अक्सर देवता इस तरह निर्मित होते हैं, कोई आदमी मरा, कोई संत मरा, कोई फकीर मरा, कोई महात्मा मरा; वेदी बन गई; मूर्ति बन गई। कुछ आस-पास पूजा-प्रार्थना शुरू हो गई। देवता निर्मित हो गया।
कभी जब ऐसा कोई देवता निर्मित हो जाता है, तो परिणाम भी आते हैं। क्योंकि बहुत-से अच्छे लोग, जिनकी आत्माएं आस-पास भटकने लगती हैं, अशरीरी हो जाती हैं, आपके द्वारा की गई प्रार्थनाओं में सहायता पहुंचा सकते हैं।
वह सहायता उनकी दया से निकलती है। लेकिन आपको मिल जाती है सहायता, तो आप सोचते हैं कि देवता ने सहायता की, तो प्रार्थना करता चला जाऊं, करता चला जाऊं।

आपके हर देवता के आस-पास ऐसी आत्माएं मौजूद हैं, जो आपको सहायता कर सकती हैं। भले लोगों की आत्माएं हैं।
देखें, एक आदमी परेशान आया है, उसकी लड़की की शादी नहीं हो रही है। कोई मूर्ति सहायता नहीं करेगी, कोई नारियल सहायता नहीं करेगा। लेकिन उस मूर्ति और उस मंदिर के वातावरण में निवास करने वाली कोई भली आत्मा सहायता कर सकती है। और वह सहायता आपको मिल जाए, तो आपका तो गणित पूरा हो गया कि मेरी मांग पूरी हुई, मेरी प्रार्थना पूरी हुई, देवता सच्चा है। अब तो इसको कभी छोड़ना नहीं है। फिर आप उसको पकड़े चले जाते हैं।
तो देवता के पीछे से घटनाएं घटती हैं, इसमें कोई शक नहीं है। लेकिन उसके घटने का कारण बहुत दूसरा है। वह दया है किन्हीं शुभ आत्माओं की। लेकिन कृष्ण जिस परम उपलब्धि की बात कर रहे हैं, उसके लिए तो देवताओं
के पास जाने से नहीं होगा। क्योंकि कोई कितनी ही शुभ आत्मा क्यों न हो, किसी को परमात्मा नहीं दिला सकती।
हां, धन दिला सकती है। वह कोई बड़ी कठिन बात नहीं है। नौकरी दिला सकती है। किसी की शादी करवा सकती है। किसी की बीमारी ठीक करवा सकती है। वह कोई कठिन बात नहीं है। जो आदमी कर सकता है, वही अच्छी आत्मा भी कर सकती है, सरलता से।
लेकिन परमात्मा से कोई अच्छी आत्मा आपको मिलवा नहीं सकती। परमात्मा
से मिलने तो आपको ही जाना पड़ेगा। और चौथे तरह के ज्ञानी होकर जाना पड़ेगा, तो ही आप पहुंच पाएंगे।
वासनाओं से हटे चित्त, आसक्तियों से टूटे चित्त, ज्ञान में थिर हो, समर्पित एकीभाव से प्रभु की तरफ भजन करे, दौड़े, गति करे, तो एक दिन भक्त भगवान हो जाता है।
सब भक्त भगवान हैं। उन्हें पता हो, न पता हो। फर्क पता होने का और न पता होने का है। लेकिन कोई भक्त भगवान से वंचित नहीं है। प्रत्येक भक्त भगवान है।
आज इतना ही।
लेकिन उठेंगे नहीं पांच मिनट। यह प्रार्थना किसी आर्त कारण से नहीं
की जा रही है। ये संन्यासी किसी दुख में नहीं हैं। और न ये किसी लोभ और किसी मांग के लिए परमात्मा से प्रार्थना कर रहे हैं। एक इनका आनंद का भाव है उसे धन्यवाद देने के लिए। आप भी उसमें सम्मिलित हो जाएं। और प्रार्थना में भी जो कंजूसी करे, उससे कंजूस आदमी खोजना बहुत मुश्किल है। थोड़ी कंजूसी न करें।

गीता दर्शन, भाग तीन
गीता दर्शन अध्याय 7
आठवां प्रवचन

श्रद्धा का सेतु

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्।। 21।।
स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान्।। 22।।
जो-जो सकामी भक्त जिस-जिस देवता के स्वरूप को श्रद्धा से पूजना चाहता है, उस-उस भक्त की मैं उस ही देवता के प्रति श्रद्धा को स्थिर करता हूं।
तथा वह पुरुष उस श्रद्धा से युक्त हुआ उस देवता के पूजन की चेष्टा करता है और उस देवता से मेरे द्वारा ही विधान किए हुए उन इच्छित भोगों को निःसंदेह प्राप्त होता है।

प्रभु की खोज में किस नाम से यात्रा पर निकला कोई, यह महत्वपूर्ण नहीं है; और किस मंदिर से प्रवेश किया उसने, यह भी महत्वपूर्ण नहीं है। किस शास्त्र को माना, यह भी महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण सिर्फ इतना है कि उसका भाव श्रद्धा का था। वह राम को भजता है, कि कृष्ण को भजता है, कि जीसस को भजता है, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता। वह भजता है, इससे फर्क पड़ता है। किस बहाने से वह प्रभु और अपने बीच सेतु निर्मित करता है, वे बहाने बेकार हैं। असली बात यही है कि वह प्रभु-मिलन के लिए आतुर है; वह श्रद्धा ही सार्थक है।
इसे ऐसा समझें कि यदि परमात्मा का सवाल भी न हो, और कोई व्यक्ति परम श्रद्धा से आपूरित हो; किसी के प्रति भी नहीं, सिर्फ श्रद्धा का उसके हृदय में आविर्भाव होता हो, श्रद्धा उसके हृदय से विकीर्णित होती हो; किसी के चरणों में भी नहीं, लेकिन उसके भीतर से श्रद्धा का झरना बहता हो, तो भी वह परमात्मा को उपलब्ध हो जाएगा। नास्तिक भी पहुंच सकता है वहां, अगर उसके हृदय से श्रद्धा के फूल झरते हैं। और आस्तिक भी वहां नहीं पहुंच पाएगा, अगर उसके जीवन में श्रद्धा का झरना नहीं है।
तो श्रद्धा को थोड़ा इस सूत्र में ठीक से समझ लेना जरूरी है।
श्रद्धा से क्या अर्थ है? श्रद्धा से अर्थ, विश्वास नहीं है, बिलीफ नहीं है।
यह बहुत मजे की बात है कि जो लोग भी विश्वास करते हैं, वे अविश्वासी होते हैं। उनके भीतर अविश्वास छिपा होता है। उसी अविश्वास को दबाने के लिए वे विश्वास करते हैं। भीतर अविश्वास होता है, उसे दबाने के लिए, उसे झुठलाने के लिए, भुलाने के लिए, मिटाने के लिए, वे विश्वास करते हैं। लेकिन भीतर का अविश्वास और गहरे उतर जाता है, मिटता नहीं है।
विश्वासी कभी भी अविश्वास को नहीं मिटा पाता। क्योंकि विश्वास होता
ही किसी अविश्वास के खिलाफ है। विश्वास की जरूरत ही इसलिए पड़ती है कि भीतर अविश्वास है।
श्रद्धा बड़ी और बात है। श्रद्धा विश्वास नहीं है, अविश्वास का अभाव है।
इस बात को ठीक से समझ लें।
श्रद्धा विश्वास नहीं है, अविश्वास का अभाव है। जिसके हृदय में अविश्वास नहीं है, वह विश्वास भी नहीं करता, क्योंकि विश्वास किसलिए करेगा! एक आदमी जब कहता है कि मैं ईश्वर में विश्वास करता हूं, तब वह जितना जोर लगाकर कहता है कि मैं विश्वास करता हूं, जानना कि उतना ही ताकतवर अविश्वास भीतर बैठा है। वह उसी अविश्वास को इतना जोर लगाकर दबाता है। अन्यथा अविश्वास न हो, तो विश्वास करने का कोई कारण नहीं रह जाता।
आप कभी भी ऐसा नहीं कहते कि मैं सूरज में विश्वास करता हूं। लेकिन आप कहते हैं, मैं ईश्वर में विश्वास करता हूं। आप कभी नहीं कहते कि यह आकाश, जो चारों तरफ है मेरे, इसमें मैं विश्वास करता हूं। लेकिन आप कहते हैं, मैं

ईश्वर में विश्वास करता हूं। और अगर कोई आदमी आकर कहे कि मैं सूरज में विश्वास करता हूं, तो क्या उसका विश्वास इस बात की खबर न होगा कि वह आदमी अंधा है! सिर्फ अंधे ही सूरज में विश्वास कर सकते हैं। जिनके पास आंख है, उनकी सूरज में श्रद्धा होती है। श्रद्धा का अर्थ है, अविश्वास नहीं होता। आप सूरज में विश्वास नहीं करते हैं, आप जानते हैं कि सूरज है। संदेह
ही नहीं किया कभी, तो विश्वास करने का कोई सवाल नहीं है। बीमार ही नहीं हुए कभी, तो किसी दवा लेने की कोई जरूरत नहीं है।
विश्वास जो है, एंटीडोट है डाउट का। वह जो संदेह भीतर बैठा है, उसको दबाने का इंतजाम है विश्वास। इसलिए आदमी कहता है, मैं ईश्वर में विश्वास करता हूं। लेकिन कभी नहीं कहता कि मैं पदार्थ में विश्वास करता हूं। पदार्थ में कोई अविश्वास ही नहीं है, इसलिए विश्वास की कोई जरूरत नहीं पड़ती है। और अगर कोई कहता हो, तो उसे शक होगा कि वह आदमी अंधा है। आंख वाला आदमी सूरज में विश्वास नहीं करता, श्रद्धा करता है।
इस फर्क को आप ठीक से समझ लें।
श्रद्धा का अर्थ है, अविश्वास उठता ही नहीं। विश्वास का अर्थ है, अविश्वास मौजूद है। किसी भय के कारण, किसी लोभ के कारण, वह जो अविश्वास मौजूद है, उसे हम दबा लेना चाहते हैं, छिपा लेना चाहते हैं, झुठला देना चाहते हैं, भुला देना चाहते हैं।
धर्म की यात्रा पर विश्वास से काम नहीं चलता। विश्वास सब्स्टीट्यूट
है श्रद्धा का; लेकिन इमिटेशन, नकली; उससे काम नहीं चलता। इसीलिए तो दुनिया में इतने विश्वासी लोग हैं, फिर भी धर्म कहीं दिखाई नहीं पड़ता। विश्वासियों की कोई कमी है? सच पूछा जाए, तो अधिकतम लोग विश्वासी हैं। वे जो अविश्वास करते हुए मालूम पड़ते हैं, वे भी विश्वासी हैं। सिर्फ उनके विश्वास नकारात्मक हैं।
पृथ्वी विश्वासियों से भरी है, लेकिन धर्म की कोई रोशनी नहीं दिखाई पड़ती। मंदिर, मस्जिद और चर्चों में विश्वासी प्रार्थना कर रहे हैं, लेकिन प्रार्थना का आनंद कहीं विकीर्णित होता नहीं दिखाई पड़ता। वह हरियाली जो प्रार्थना से हमारे हृदय पर छा जानी चाहिए, नहीं छाती दिखाई पड़ती। हम रूखे के रूखे, सूखे के सूखे, मरुस्थल रह जाते हैं। कहते हैं कि प्रार्थना कर आए, लेकिन मरुस्थल का मरुस्थल रह जाता है, कोई वर्षा नहीं होती उस पर। विश्वास धोखा है श्रद्धा का, लेकिन धोखे से कुछ काम नहीं चलेगा।
एक व्यक्ति संध्या अपने घर लौटा है। उसकी पत्नी का जन्मदिन है। आते
ही उसने कहा कि देखती हो, हीरे की अंगूठी लाया हूं तुम्हारे लिए। पत्नी ने कहा, हीरे पर इतना खर्च क्यों किया? इतने दिन से हम सोचते थे, अच्छा होता कि तुम एक कार ही खरीद लाते और मुझे भेंट कर देते। उस आदमी ने आंख बंद कर ली और फिर सिर ठोंका, और उसने कहा कि क्या करूं, इमिटेशन कार मिलती नहीं; नकली कार मिलती नहीं। नकली हीरा मिल जाता है। नकली कार मिलती होती, तो वह ले आता।
श्रद्धा की जगह जिसने भी विश्वास को पकड़ा है, वह नकली हीरे को पकड़े हुए है। असली हीरे का उसे पता ही नहीं है। इसलिए विश्वासी बहुत डरता है कि कोई उसके विश्वास का खंडन न कर दे; कोई विपरीत तर्क न दे दे; कोई उलटी बात न कह दे; कहीं विश्वास डगमगा न जाए।
ध्यान रहे, विश्वास डगमगाता ही रहेगा, क्योंकि विश्वास की कोई जड़ ही नहीं है। श्रद्धा नहीं डगमगाती। इसलिए श्रद्धा से ज्यादा अभय, फियरलेस, इस जगत में कोई भी चीज नहीं है। खुद भगवान भी आकर किसी श्रद्धावान हृदय को कहे कि भगवान नहीं है, तो वह कहेगा कि रास्ते से हटो! लेकिन आपके विश्वास को तो एक छोटा-सा बच्चा डिगा सकता है। एक छोटा-सा बच्चा तर्क उठा दे, और आपके विश्वास मिट्टी में लोट जाते हैं।
इसलिए कोई आदमी अपने विश्वासों की चर्चा नहीं करना चाहता। क्योंकि विश्वास की चर्चा करनी खतरनाक है। उसके नीचे कोई जड़ नहीं है। ऊपर-ऊपर है सब। जरा में गिर जाएगा।
कृष्ण कहते हैं, श्रद्धा जो करता है। फिर वे कहते हैं कि वह श्रद्धा चाहे किसी कामना से प्रेरित होकर किसी देवता में ही क्यों न करता हो। और यहां एक बहुत कीमती बात वे कहते हैं! कहते हैं, किसी कामना से प्रेरित होकर

ही, अर्थार्थी, किसी वासना से प्रेरित होकर ही किसी देवता में श्रद्धा क्यों न करता हो, मैं उसकी श्रद्धा नहीं मिटाता। मैं उसकी श्रद्धा को परिपुष्ट और मजबूत करता हूं।
दो रास्ते संभव हैं।
कृष्ण भलीभांति जानते हैं कि देवता की श्रद्धा मुक्ति तक, सत्य तक, परम सत्य तक नहीं ले जाएगी। यह भी भलीभांति जानते हैं कि कामना से प्रेरित होकर जो आदमी श्रद्धा कर रहा है, उसकी श्रद्धा बड़ी सांसारिक है। उसके लगाव में परमात्मा की तरफ बहाव कम है, संसार में ही बहने के लिए परमात्मा की सहायता की अपेक्षा ज्यादा है। यह भलीभांति जानते हैं।
दो रास्ते हैं। या तो कृष्ण कह सकते हैं कि छोड़ो कामवासना, छोड़ो वासनाएं, हटाओ वासनाओं को, और छोड़ो देवताओं को, क्योंकि देवताओं से परम मुक्ति नहीं होगी। आओ मेरे पास, सब वासनाओं को छोड़कर, परम ऊर्जा के पास। वही मुक्ति है, वही स्वातंष्य है, वही अमृत है। एक रास्ता तो यह है।
लेकिन कृष्ण भलीभांति जानते हैं कि ऐसा कहकर इस बात की तो सौ में एक
ही संभावना है कि कोई देवताओं को और वासनाओं को छोड़कर कृष्ण के पास आए। सौ में निन्यानबे संभावना यह है कि कृष्ण के पास तो आए ही नहीं, देवता के पास भी जाना बंद कर दे। इसकी संभावना सौ में निन्यानबे है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, मैं उसके ही देवता में उसकी श्रद्धा को स्थापित करता हूं। क्योंकि श्रद्धा आज देवता में स्थापित हो जाए, तो कल एक कदम आगे उसे और बढ़ाया जा सकता है। कृष्ण कहते हैं, वह कामवासना से भरे व्यक्ति को भी मैं एकदम से नहीं कहता कि तेरी कामवासना गलत है। मैं कहता हूं कि ठीक है। मेरी शक्ति तेरी वासनाओं की पूर्ति में भी सहयोगी बनेगी। इतने भरोसे के साथ उसकी कामवासना में भी सहायता देने की जो बात है, वह सोचने जैसी है, उसमें कुछ राज है। उसमें राज यह है कि तू अपनी कामवासना पूरी कर ले। पूरी करके तू पाएगा कि कुछ पूरा नहीं हुआ। तू अपनी वासनाओं को पूरा कर ले। पूरा करके तू पाएगा कि तूने व्यर्थ की मांग की। पूरा करके तू पाएगा कि परमात्मा की जो शक्ति तेरी वासनाओं की पूर्ति के लिए मिली, उस शक्ति से तो स्वयं तू परमात्मा हो सकता था। तूने उसे व्यर्थ गंवाया है। इस भरोसे के साथ, कृष्ण कहते हैं, मैं उसकी श्रद्धा को मजबूत करता हूं उसी देवता में, जिसकी तरफ उसका लगाव है। और उसी वासना के लिए कहता हूं कि ठीक। चलो, यही सही। शायद परमात्मा की शक्ति मिलनी शुरू हो। आपने भला किसी और चीज के लिए मांगी हो, लेकिन जब वह मिलेगी और उसके आनंद की चारों तरफ वर्षा होने लगेगी, तो वह घटना भी घट सकती है कि जिसके लिए आपने मांगा था, वह आप ही भूल जाएं, और जो बरस रहा है, वही स्मरण में रह जाए, और उसी तरफ यात्रा शुरू हो जाए।
दो रास्ते हैं। एक रास्ता तो यह है कि पहले आपसे गलत छुड़ाया जाए और तब आपको सही दिया जाए। दूसरा रास्ता यह है कि आपको सही दिया जाए, ताकि गलत आपसे छूटे। कृष्ण सही को देने के लिए अति आतुर हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि सही मिलना शुरू हो, तो गलत छूटना शुरू होता है।
और गलत छुड़वाना बहुत मुश्किल है, क्योंकि जिनके हाथ में सही नहीं है,
वे गलत के सहारे जीते हैं। अगर हम उनसे उनका गलत छुड़वाना शुरू करें, तो इसकी बहुत कम संभावना है कि वे गलत को छोड़ें और सही की यात्रा पर निकलें। इस बात की ही संभावना ज्यादा है कि वे हमारी बात सुनना बंद कर दें, और अपने गलत को पकड़े रहें। या यह भी डर है कि वे गलत को भी छोड़ दें, और सही की यात्रा पर भी न निकलें। तब एक त्रिशंकु की हालत में, बीच में, अधर में लटक जाएं। जैसा कि आज करीब-करीब पश्चिम में हुआ है।
इन पिछले तीन सौ वर्षों में पश्चिम के विचारकों ने क्या गलत है, इस पर इतनी चर्चा की कि गलत तो छूट गया; क्या सही है, उसका कुछ पता नहीं रहा। पश्चिम में तीन सौ साल के अच्छे लोगों का परिणाम यह हुआ है कि आज पश्चिम का मन, एंटी आल एंड प्रो नथिंग, हर चीज के खिलाफ और किसी चीज के पक्ष में नहीं रह गया है।
जो लोग कृष्णमूर्ति को सुनते रहे हैं, उनकी स्थिति भी ऐसी ही बन जाती है--एंटी आल, प्रो नथिंग। हर चीज के विरोध में, हर चीज के निषेध में। यह भी

गलत, यह भी गलत, यह भी गलत; और सही क्या है, उसकी कोई किरण उतरती नहीं। तब व्यक्ति बीच में अटका रह जाता है।
कृष्ण की पद्धति बिल्कुल दूसरी है। वे कहते हैं कि तुम गलत हो, गलत होओगे ही। क्योंकि जब तक परमात्मा न मिले, तब तक सही हो भी कैसे पाओगे? तुम कंकड़-पत्थर पकड़े हो, स्वाभाविक है। क्योंकि जब तक हीरे न मिलें, कंकड़-पत्थर छोड़ोगे कैसे? तुम मिट्टी के घर बना रहे हो, स्वाभाविक है। क्योंकि जब तक तुम्हें अमृत का घर न मिल जाए, तुम और करोगे क्या?
कृष्ण की करुणा अपरिसीम है। वे कहते हैं कि ठीक है, तुम बच्चे हो, इसलिए सीप और पत्थर इकट्ठे कर रहे हो। ठीक है। मैं तुमसे सीप नहीं छीनता; मैं तुम्हें प्रौढ़ करने की कोशिश करूंगा, ताकि एक दिन तुम्हारे हाथ से सीपें छूट जाएं, और तुम हीरों की खदान को खोदने में लग जाओ।
ध्यान रहे, कृष्ण की विधि पाजिटिव है, विधायक है। इधर इन तीन सौ वर्षों में सारी दुनिया की बुद्धि नकारात्मक ढंग से सोचने की आदी बनी है। और हमें ऐसा लगता है कि हम अंधेरे को मिटा दें, तो प्रकाश आ जाएगा। जब कि बात उलटी है। प्रकाश आ जाए, तो अंधेरा मिटता है।
एक आदमी अंधेरे में बैठकर अब दीया जलाने की कोशिश कर रहा है; अंधेरे में ही करेगा, क्योंकि दीया अभी जला नहीं। और अंधेरे में जो कोशिश होंगी, भूल-चूक से भरी होंगी, यह निश्चित है। कभी बाती ठीक जगह न लगेगी, कभी तेल ढुल जाएगा, कभी माचिस ढूंढ़ने निकलेगा और नहीं मिलेगी, क्योंकि अंधेरा है, दीया जला हुआ नहीं है।
अंधेरे में भूल-चूक बिल्कुल स्वाभाविक है। अगर हम भूल-चूक पर बहुत नाराज हो जाएं और उस आदमी से कहें कि बंद करो। पहले अंधेरे को मिटा लो, फिर दीए को जलाना; तब भूल-चूक बिल्कुल नहीं होगी।
होगी तो नहीं बिल्कुल भूल-चूक, लेकिन अंधेरे को मिटाया नहीं जा सकता,
और दीए को जलाया नहीं जा सकता। अंधेरे में टटोलकर, भूल-चूक करते हुए ही दीया जलता है। यद्यपि दीया जल जाए, तो भूल-चूक बंद हो जाती है।
जीवन को पाजिटिवली, जीवन को विधायक दृष्टि से देखने का रुख यह है। इसलिए कृष्ण गलत को भी समर्थन दे रहे हैं। भलीभांति जानते हुए कि वासनाओं से भरा हुआ चित्त गलत है। यह भी जानते हुए कि देवताओं की शरण में गया चित्त वासनाओं की पूर्ति के लिए ही जाता है। यह भी जानते हुए कि जो आदमी देवताओं के चरणों में बैठ रहा है, उस आदमी की अभी परम खोज शुरू नहीं हुई। और यह भी जानते हुए कि वह जो मांगने आया है, वह बहुत बच्चों जैसी चीज है; देने योग्य भी नहीं है। लेकिन कृष्ण कहते हैं, वह हम तुझे देंगे। तेरे ही देवता में तेरी प्रतिष्ठा कर देंगे। तेरा और लगाव बढ़ाएंगे तेरे ही देवता में। तेरे देवता में भी मेरी शक्ति प्रवाहित होकर, तेरे देवता से ही तुझे मिल जाएगी, ताकि तू अपनी श्रद्धा में दृढ़ हो जाए।
और आदमी एक-एक कदम अगर श्रद्धा में दृढ़ होता जाए, तो एक दिन वह अनिर्वचनीय घटना भी घटती है, वह विस्फोट भी, जब श्रद्धा पूर्ण होती है, जब कोई संदेह की रेखा भी नहीं रह जाती भीतर। उस निस्संदिग्ध श्रद्धा में परम की यात्रा अपने आप हो जाती है।
इस कमजोर आदमी को देखकर दिया गया यह वक्तव्य है।
कृष्णमूर्ति जैसे व्यक्ति कमजोर आदमी की जरा भी फिक्र करते हुए मालूम नहीं पड़ते हैं। उनके वक्तव्य उनके लिए हैं, जो कभी भूल नहीं करते। लेकिन जो कभी भूल नहीं करते, उनके लिए किसी के वक्तव्य की कोई भी जरूरत नहीं है। वे जो भूल करते हैं, वे जो अंधेरे में खड़े हैं, उनके लिए वे वक्तव्य खतरनाक हैं। खतरनाक इसलिए हैं कि उस तरह की बातें उन्हें बौद्धिक रूप से स्मरण हो जाएंगी। वे रट लेंगे उन बातों को। वे कहेंगे कि दीए को जलाया नहीं जा सकता, जब तक अंधेरा है। क्योंकि अंधेरे में जो भी दीया जलाया जाएगा, वह गलत होगा।
कृष्णमूर्ति कहते हैं, यू कैन नाट टेक एनी स्टेप इन कनफ्यूजन, बिकाज ए स्टेप टेकेन इन कनफ्यूजन मस्ट बी कनफ्यूज्ड। कनफ्यूजन में आप कोई कदम नहीं उठा सकते, भ्रमित दशा में, क्योंकि भ्रमित दशा में उठाया गया कोई भी कदम और भ्रम में ही ले जाएगा। वही बात, अंधेरे में आप दीया नहीं जला सकते, क्योंकि अंधेरे में जो आप दीया जलाएंगे, अंधेरे में भूल-चूक हो ही जाएगी।

लेकिन सब दीए अंधेरे में जलाए जाते हैं; और दुनिया में सब कदम कनफ्यूजन में ही उठाए जाते हैं।
(अब वर्षा की कुछ बूंदें प्रवचन स्थल पर गिरने लग गई हैं। ओशो बोलना जारी रखते हैं।)
घबड़ाएं न। थोड़ा पानी गिरेगा, तो इतने घबड़ा न जाएं। कृष्ण की बात सुनने
आए हों, तो थोड़ा-सा इतना परेशान न हों कि दो-चार बूंदें आपके कपड़े पर गिरेंगी, तो आप मिट जाएंगे, कि मर जाएंगे, कि समाप्त हो जाएंगे। दो-चार बूंदें गिरती हैं, उन्हें गिर जाने दें। इतने कमजोर लोगों को गीता सुनने नहीं आना चाहिए।
वे कृष्ण समझा रहे हैं कि आग से जलती नहीं आत्मा। आपकी तरफ देखेंगे,
तो उनको बड़ी निराशा होगी कि पानी से गल जाती है! अभी कोई दो-चार बूंद! अभी कोई पानी भी नहीं आ गया। अभी सिर्फ आसार हैं पानी के। बादल थोड़ी आवाज दे रहे हैं, आपको देखने के लिए कि आदमी किस तरह के इकट्ठे हैं यहां!
तो अपनी जगह बैठे रहें। कोई भी आदमी उठे, तो पास के लोग उसे पकड़कर नीचे बिठाल दें। क्योंकि नाहक इतने लोग उसको देखेंगे कि इतना कमजोर आदमी है। उस पर थोड़ी दया करें, उसे पकड़कर वहीं के वहीं बिठा दें। कुछ कहने की जरूरत नहीं; उसे चुपचाप बिठा दें।
पानी गिरेगा, कृष्ण की बात का पता चल जाएगा, कि आत्मा गलती है कि नहीं गलती है। नहीं गले, तो समझना कि कृष्ण ठीक कहते हैं। और गल जाए, तो समझना कि कृष्ण गलत कहते हैं। तो आज प्रयोग करके ही चलेंगे। पानी को गिरने दें। देखें कि गलते हैं कि नहीं गलते हैं।
बच्चों जैसे काम न करें। और बच्चों जैसे काम करने हों, तो जगत में जो थोड़े-से बुद्धिमान हुए हैं, उन लोगों की बातें सुनने नहीं आना चाहिए। कृष्ण की करुणा उन लोगों पर है, जो हर तरह से भूल से भरे हैं; हर तरह से जिनसे गलत ही होने का डर है; जिनसे सही न हो पाएगा। कहते हैं, तुम्हारी गलती को भी मैं स्वीकार कर लूंगा। तुम भूल से जाओगे मंदिर में, वह भी मैं मान लूंगा। तुम नासमझी से प्रार्थना करोगे, वह भी मैं स्वीकार कर लूंगा। बिठा दें; जो भी आपके पास भागता हो, उसे पास के लोग पकड़कर बिठा दें। और
आप घबड़ाएं नहीं। मैं यहां मंच पर बैठा हुआ हूं, तो यहां पानी नहीं गिर रहा है। बाथरूम में जाकर खड़ा हो जाऊंगा कपड़े पहने आधा घंटा, आपकी तरफ से। तो उसको झेल लूंगा। आप परेशान न हों। एक पांच मिनट में पानी चला जाएगा और आनंद दे जाएगा।
तो दूसरा सूत्र पढ़ो, हूं।
प्रश्नः भगवान श्री, पिछले श्लोक में कृष्ण कहते हैं कि व्यक्ति वासनाओं की पूर्ति के लिए जिन देवताओं को पूजते हैं, वे देवता मेरे द्वारा विधान किए हुए फलों को प्रदान करते हैं। मेरे द्वारा विधान किए हुए फलों को, कृपया इसका अर्थ स्पष्ट करें।

प्रश्नः ओशो, पिछले श्लोक में कृष्ण कहते हैं कि व्यक्ति वासनाओं की पूर्ति के लिए जिन देवताओं को पूजते हैं, वे देवता मेरे द्वारा विधान किए हुए फलों को प्रदान करते हैं। मेरे द्वारा विधान किए हुए फलों को, कृपया इसका अर्थ स्पष्ट करें।

इस जगत में कुछ भी ऐसा नहीं होता है, जो परमात्मा के विधान से विपरीत हो। ऐसा कुछ भी नहीं होता है, जो उसके नियम के बाहर हो। ऐसा कुछ भी हो नहीं सकता है, जो उसकी शक्ति से ही, उसकी ऊर्जा से ही संचालित न होता हो।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, जो भी देवता मनुष्यों की वासनाओं से भरी चित्त दशा में भी, उनकी प्रार्थनाओं को पूरा करते हैं, वे भी मेरे ही द्वारा किए हुए विधान के माध्यम से! मैं ही, मेरी शक्ति ही, उस सारे विधान के पीछे सक्रिय होती है।
अब बैठे रहे हैं। अब तो भागने से भी कुछ न होगा। आप भीग ही गए हैं। अब भागने से कुछ भी ज्यादा होने का नहीं है। अब बैठे रहें।
कीर्तन कर लेते हैं आनंद में, और फिर बंद कर देते हैं। कल बात कर लेंगे।

गीता दर्शन, भाग तीन
गीता दर्शन अध्याय 7
नौवां प्रवचन

निराकार का बोध

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि।। 23।।
परंतु उन अल्पबुद्धि वालों का वह फल नाशवान है तथा वे देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं और मेरे भक्त मेरे को ही प्राप्त होते हैं।

कामनाओं से प्रेरित होकर की गई प्रार्थनाएं जरूर ही फल लाती हैं।
लेकिन वे फल क्षणिक ही होने वाले हैं; वे फल थोड़ी देर ही टिकने वाले हैं।
कोई भी सुख सदा नहीं टिक सकता, न ही कोई दुख सदा टिकता है। सुख और दुख लहर की तरह आते हैं और चले जाते हैं।
देवताओं की पूजा से जो मिल सकता है, वह क्षणिक सुख का आभास ही हो सकता है। वासनाओं के मार्ग से कुछ और ज्यादा पाने का उपाय ही नहीं है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, लेकिन जो मेरे निकट आता है--और उनके निकट आने की शर्त है, वासनाओं को छोड़कर, विषयासक्ति को छोड़कर--वह उसे पाता है, जो नष्ट नहीं होता, जो खोता नहीं, जो शाश्वत है। इसलिए उन्होंने दो बातें इस सूत्र में कही हैं। अल्पबुद्धि वाले लोग!
अल्पबुद्धि वाले लोग कौन हैं? अल्पबुद्धि वाले लोग वे हैं, जो कि अपने
ही हाथों, बहुत बड़े मूल्य पर बहुत छोटी चीज खरीदने को राजी हो जाते हैं। बहुत बड़े मूल्य पर बहुत छोटी चीज खरीदने को राजी हो जाते हैं। प्रार्थना से तो मिल सकता है परम सत्य, लेकिन वे मांग लेते हैं कुछ क्षुद्र वस्तुएं। प्रार्थना से मिल सकता है परम जीवन, लेकिन वे मांग लेते हैं शरीर की कुछ जरूरतें।
निश्चित ही, अल्पबुद्धि हैं इस कारण। और इसलिए भी अल्पबुद्धि हैं कि
जो भी वे मांगते हैं, वह मिल भी जाए, तो भी मांग का कोई अंत नहीं होता। जो वे पाना चाहते हैं, पा लें, तब भी वे उतने ही अतृप्त, उतने ही दीन और उतने ही अधूरे होते हैं, जितना मिलने के पहले थे।
मांगना ही हो, तो उसे मांग लेना चाहिए, जिसे मांगकर फिर और कोई मांग शेष न रह जाए। पाना ही हो, तो उसे पा लेना चाहिए, जिसे पाकर तृप्ति हो जाती है, और पाने की दौड़ समाप्त हो जाती है। लेकिन अल्पबुद्धि लोग दूर तक नहीं देख पाते। विस्तीर्ण, जीवन के पूरे पहलू को नहीं समझ पाते। क्षणिक उनकी बुद्धि होती है। अभी जो लगता है जरूरी, वह मांग लेते हैं।
बुद्धिमान वही है, जो जीवन की परम आवश्यकता को मांगता है।
सुनी है हम सबने कथा, बहुत प्यारी और मधुर है। नचिकेता अपने पिता के पास बैठा है। पिता ने किया है बड़ा यज्ञ। ब्राह्मणों को दान कर रहे हैं वे। पिता ने नचिकेता से कहा है, मैं अपना सब दान कर दूंगा। छोटा बच्चा है, और छोटे बच्चों से कभी-कभी जो सवाल उठते हैं, वे बड़े गहरे और आत्यंतिक होते हैं। वह बैठा हुआ है पास में, जब ब्राह्मणों को दान दिया जा रहा है। और नचिकेता का पिता पुरानी बूढ़ी गाएं दे रहा है, जिनसे दूध मिलने को नहीं। इस तरह की चीजें दे रहा है, जिनकी अब कोई जरूरत नहीं रही। तो नचिकेता बार-बार पूछता है कि मैं भी तो आपका हूं न, तो मुझे कब दान देंगे? मुझे किसे दान देंगे? क्योंकि कहा आपने कि मैं अपना सब कुछ दे डालूंगा। मैं भी तुम्हारा बेटा हूं न!
पिता को क्रोध आ जाता है। वह क्रोध में कहता है कि तुझे भी दे दूंगा; घबड़ा मत। लेकिन तुझे मृत्यु को, यम को दे दूंगा।
नचिकेता, मानकर कि यम को दान कर दिया गया, यम के द्वार पर पहुंच जाता है। लेकिन यम घर के बाहर है। तो वह तीन दिन भूखा बैठा रहता है, फिर यम आते हैं। उसका तीन दिन भूखा बैठा रहना, उस छोटे-से बच्चे का, और इतनी सरलता से मृत्यु के द्वार पर स्वयं आ जाना! क्योंकि यम का अनुभव तो यही है कि वह

जिसके द्वार पर जाता है, वही घर छोड़कर भागता है। यम के द्वार पर आने वाला यह पहला ही व्यक्ति है, जो खुद खोजबीन करके आया। और फिर यह देखकर कि यम घर पर नहीं है, भूखा-प्यासा बैठा है। तो यम कहते हैं कि तू कुछ मांग ले, तू वरदान ले ले। मैं तुझ पर प्रसन्न हुआ हूं। मैं तुझे हाथी-घोड़े, धन-दौलत, सुंदर स्त्रियां, राज्य--सब तुझे दूंगा।
नचिकेता कहता है, लेकिन जो धन आप देंगे, उससे मुझे तृप्ति मिल पाएगी, ऐसी, जो कभी नष्ट न हो? वह यम उदास होकर कहता है, ऐसी तो कोई तृप्ति धन से कभी नहीं मिलती, जो समाप्त न हो। वे जो स्त्रियां आप मुझे देंगे, उनका सौंदर्य सदा ठहरेगा? यम कहता है कि कुछ भी इस जगत में सदा ठहरने वाला नहीं है। वह जो आप मुझे लंबी उम्र देंगे, क्या उसके बाद फिर आप मुझे लेने न आएंगे? तो यम कहता है, यह तो असंभव है। कितनी ही हो लंबी उम्र, अंत में तो मैं आऊंगा ही। वह जो बड़ा राज्य आप मुझे देंगे, क्या उसे पाकर मैं वह पा लूंगा, ऋषियों ने जो कहा है कि जिसे पा लेने से सब पा लिया जाता है? यम कहता है, उससे तो कुछ भी नहीं मिलेगा, क्योंकि बड़े-बड़े सम्राट वह सब पा चुके हैं और फिर भी दीन-हीन मरे हैं। तो नचिकेता कहता है, ये चीजें फिर मैं न लूंगा। मुझे तो इतना ही बता दें कि मृत्यु का राज क्या है, ताकि मैं अमृत को जान सकूं।
नचिकेता को बहुत समझाता है यम। यम बहुत बुद्धिमान है। मृत्यु से ज्यादा बुद्धिमान शायद ही कोई हो। अनंत उसका अनुभव है जीवन का। हर आदमी की नासमझी का भी मृत्यु को जितना पता है, उतना किसी और को नहीं होगा। क्योंकि जिंदगीभर दौड़-धूप करके हम जो इकट्ठा करते हैं, मृत्यु उसे बिखेर जाती है।
और एक बार नहीं, हजार बार हमारा इकट्ठा किया हुआ मौत बिखेर देती है। हम फिर दुबारा मौका पाकर, फिर वही इकट्ठा करना शुरू कर देते हैं।
आदमी की नासमझी का जितना पता मौत को होगा, उतना किसी और को नहीं है। इतने लोगों की नासमझी से गुजरकर मौत समझदार हो गई हो, तो आश्चर्य नहीं। लेकिन यह बच्चा बहुत अडिग है। वह कहता है कि मुझे तो वही बता दें, जिससे अमृत को जान लूं। मृत्यु को समझा दें मुझे। और आप तो मृत्यु को जानते ही हैं, आप मृत्यु के देव हैं। आप नहीं बताएंगे, तो मुझे कौन बताएगा! बुद्धिमान होगा नचिकेता, कृष्ण के अर्थों में। हम बुद्धिमान नहीं हो सकते; हम अल्पबुद्धि हैं। ख्याल रखें, कृष्ण कह रहे हैं, अल्पबुद्धि; बुद्धिहीन भी नहीं कह रहे हैं। बुद्धिहीन भी नहीं कह रहे हैं, अल्पबुद्धि।
अगर मनुष्य बिल्कुल बुद्धिहीन हो, तब तो कोई संभावना नहीं रह जाती। बुद्धि तो है; बहुत छोटी है। बड़ी हो सकती है, विकसित हो सकती है। जो बीज की तरह है, वह वृक्ष की तरह हो सकती है। जो आज बहुत छोटी है, वह कल विराट बन सकती है।
कहते हैं, अल्पबुद्धि है आदमी। दुख तो नहीं चाहता आदमी, नहीं तो बुद्धिहीन होता। सुख चाहता है, लेकिन अल्पबुद्धि है। क्योंकि ऐसा सुख चाहता है, जो अंत में दुख ही लाता है, और कुछ लाता नहीं।
अल्पबुद्धि कहना प्रयोजन से है। और अगर इस बात को हम ठीक से समझें, तो
हम सभी अल्पबुद्धि मालूम पड़ेंगे। हमने जो भी चाहा, जो भी मांगा, जो भी खोजा, जीवन के मंदिर में हमने जो भी प्रार्थनाएं की हैं, वे हमारी सब ऐसी प्रार्थनाएं हैं, जैसे कोई रेत पर मकान बनाए; ताश के पत्तों का घर बनाए; कागज की नावें बनाएं, और सोचे कि सागर में यात्रा पर निकल जाएगा। कागज की नाव पर कोई बैठकर सागर की यात्रा पर जा रहा हो, तो हम उसे क्या कहेंगे? कृष्ण वही हमसे कह रहे हैं। हम सब कागज की नावों पर जीवन में यात्रा करते हैं। हमारी नावें सपनों से ज्यादा नहीं। और हमारे भवन ताश के पत्तों के घर हैं। और सब, रेत पर हमारे हस्ताक्षर हैं। हवा के झोंके आएंगे और सब बुझ जाएगा, और सब मिट जाएगा।
अल्पबुद्धि हैं हम। पर बुद्धि हम में है, अल्प ही सही। बीज ही सही, पोटेंशियलिटी ही सही। हम इतना तो तय है कि सुख चाहते हैं। हां, इतना तय नहीं है कि सुख क्या है, वह हम नहीं समझ पाए हैं।
सुख चाहते हैं, यह तय है। सुख चाहकर भी दुख पाते हैं, यह हमारा अनुभव है। लेकिन सुख की चाह हमारे भीतर है, वह बुद्धिमानी की सूचक है। लेकिन

अत्यल्प बुद्धि की सूचक है। क्योंकि फिर जो हम करते हैं, उससे दुख हाथ में आता है। शायद हम ठीक से नहीं देख पाते कि सुख क्या है और दुख क्या है।
यह बहुत मजे की बात है। जो व्यक्ति भी थोड़ी दूर तक सोचेगा, वह हमेशा ऐसे सुख को चुन लेगा, जो बाद में दुख बन जाए। और जो व्यक्ति दूर तक सोचेगा, वह ऐसे दुख को चुनेगा, जो बाद में सुख बन जाए।
भोग और तपश्चर्या का इतना ही फर्क है। भोगी, आज जो सुख मालूम पड़ता है, उसे चुन लेता है; कल वह दुख हो जाता है। तपस्वी, आज जो दुख मालूम पड़ता है, उसे चुनता है, लेकिन कल वह सुख हो जाता है।
और यह बड़े मजे की बात है, जो दुख को चुन सकता है आज, वह कल सुख का मालिक
हो सकता है। और जो सुख को ही चुन सकता है आज, कल वह सिवाय दुख के गड्ढों के और किन्हीं चीजों को उपलब्ध नहीं होगा। सुख पर जिसकी नजर है, वह दुख में पड़ जाएगा। उसकी नजर बहुत ओछी है, बहुत पास ही वह देखता है। इतने पास देखता है कि आगे के रास्ते का कुछ पता नहीं चलता। दूर-दृष्टि चाहिए; दूर तक देखने की सामर्थ्य चाहिए। और अगर हम जरा भी दूर देख पाएं, तो हम जिन्हें सुख मानकर चलते हैं, उनकी खोज में हम अपने जीवन को नष्ट नहीं करेंगे।
सुना है मैंने कि एक अमेरिकी फिल्म निर्माता नई अभिनेत्री की तलाश में था। अपने एक कवि मित्र को पकड़ लाया, जिसकी सौंदर्य के संबंध में बड़ी सुरुचि थी, जो सौंदर्य का पारखी था, और जिसने सुंदरतम स्त्री को खोजकर विवाह किया था। सौंदर्य पर उसने कविताएं लिखी थीं और सौंदर्य पर शास्त्र लिखे थे। एस्थेटिक्स पर उसकी बड़ी प्रसिद्ध किताबें थीं। उस फिल्म निर्माता ने सोचा कि इस मित्र कवि को ले चलूं; वह एक नई अभिनेत्री की तलाश में था।
एक विश्व सौंदर्य प्रतियोगिता हो रही थी, जहां दुनियाभर से कोई तीन दर्जन सुंदर युवतियां पुरस्कार लेने आई थीं। तो उसने कहा अपने मित्र को कि तुम बैठकर एक-एक स्त्री को ठीक से देखते जाना और जो स्त्री तुम्हें ठीक जंच जाए, मुझे इशारा कर देना, तो मैं उसे अपनी नई फिल्म के लिए प्रमुख पात्र बना लूं।
लेकिन फिल्म निर्माता बड़ी मुश्किल में पड़ गया। पहली ही सुंदर युवती आई; सभी स्त्रियां एक से एक ज्यादा सुंदर थीं; एक-एक राष्ट्र से चुनकर भेजी गई थीं। पहली स्त्री सामने आई--बगल में कवि बैठा था--अर्धनग्न, करीब-करीब नग्न। कवि ने उसे देखा और कहा, फूः। वह बहुत हैरान हुआ; निर्माता बहुत हैरान हुआ। उसने इतनी सुंदर स्त्री देखी नहीं थी। पर कवि ने कहा, फूः। वह स्त्री चली गई, दूसरी स्त्री आई। और भी सुंदर थी। पर कवि ने कहा, फूः। वे तीन दर्जन स्त्रियां सामने से जो गुजरती गईं और वह एक ही काम करता रहा, फूः! फूः!
वह चित्र निर्माता तो बहुत घबड़ा गया। और जब तीनों दर्जन स्त्रियां निकल गईं, तो उसने पूछा, आश्चर्य, मैं तो तुम्हें लाकर बड़ी मुश्किल में पड़ गया। कोई भी स्त्री पसंद नहीं पड़ी! जो भी स्त्री तुमने देखी, कहा, फूः। तो क्या मतलब है तुम्हारा? क्या चाहते हो तुम? क्या मापदंड है तुम्हारा?
उस कवि ने कहा, यू हैव मिसअंडरस्टुड मी सर; आप मुझे गलत समझे। आई वा.ज नाट सेइंग फूः-फूः टु दीज गर्ल्स। आई वा.ज सेइंग फूः टु माई वाइफ। यह मैं इन लड़कियों के लिए फूः-फूः नहीं कह रहा था; यह तो मैं अपनी पत्नी के लिए फूः-फूः कर रहा था।
पर उसने कहा कि पत्नी का इससे क्या संबंध? तो उसने कहा, जब मैंने पत्नी
को पहली दफा देखा था, तो वह भी ऐसी ही अतीव सुंदरी मालूम पड़ी थी। फिर जैसे- जैसे पास आई, सब फूः-फूः सिद्ध हो गया। तो मैं जानता हूं कि यह सब जो रूपरेखा दिखाई पड़ रही है, यह पीछे फूः-फूः सिद्ध हो जाने वाला है। अब इस जगत में दुबारा शरीर की रेखाएं मुझे आकर्षित न कर पाएंगी। अब दुबारा शरीर का अनुपात मेरे लिए सौंदर्य न बन सकेगा। एक ही अनुभव ने मुझे बहुत कुछ कह दिया है।
निश्चित ही, यह कवि सौंदर्य का पारखी रहा हो या न रहा हो, अल्पबुद्धि नहीं था। अल्पबुद्धि होता, तो सोचता कि एक पत्नी सुंदर दिखाई पड़ी, फिर सुंदर नहीं सिद्ध हुई, तो जरूरी तो नहीं है कि दूसरी स्त्री सुंदर दिखाई

पड़े और सुंदर सिद्ध न हो। दूसरी स्त्री सुंदर सिद्ध हो सकती है। यही हमारा तर्क है।
अल्पबुद्धि का तर्क यही है कि कोई फिक्र नहीं, एक मकान सुख न दे पाया,
तो दूसरा देगा। कोई फिक्र नहीं, एक पद पर शांति न मिली, तो और दूसरे पद पर मिलेगी। कोई फिक्र नहीं, छोटी तिजोड़ी भर गई पूरी, फिर भी मन न भरा; शायद बड़ी तिजोड़ी भर जाए, तो मन भर जाए।
अल्पबुद्धि का तर्क है कि वह एक अनुभव को जीवन की चिरस्थायी निधि नहीं बना पाता। वह अपने को धोखा दिए चला जाता है। वह कहता है, नहीं, कोई बात नहीं; यह अनुभव गलत हुआ, दूसरा अनुभव ठीक होगा, तीसरा अनुभव ठीक होगा, चौथा अनुभव ठीक होगा।
लेकिन इस जगत में एक अनुभव, उससे मिलते-जुलते सारे अनुभव की खबर दे जाता है। पर उसके लिए बहुत दूर तक देखने वाली दृष्टि, मेधा चाहिए। अल्पबुद्धि नहीं, गहरी दृष्टि चाहिए, महाबुद्धि चाहिए। तब एक अनुभव समस्त अनुभवों के लिए मार्ग बन जाता है, द्वार बन जाता है।
लेकिन बहुत कठिन है। अगर आपके हाथ में एक रुपया आया और आपके हाथ में कुछ न आया, तो आप यह मानने को कभी राजी न होंगे कि दूसरा आएगा और कुछ न आएगा, तीसरा आएगा और कुछ न आएगा। आपका मन धोखा दिए चला जाएगा। वह कहेगा, एक से नहीं मिला; तो वह कहेगा, दूसरा पाने की शीघ्रता करो। दूसरे से नहीं मिला, तो तीसरा पाने की शीघ्रता करो। बस, मन इतना ही कहेगा, और तेजी से दौड़ो, और तेजी से दौड़ो; कभी तो वह दिन आ जाएगा, जब उतने रुपए हाथ में होंगे, जब तृप्ति हो जाए।
लेकिन कभी लौटकर इतिहास में भी तो लोगों से पूछें कि वह तृप्ति कभी आई?
अशोक युद्ध पर गया था। अल्पबुद्धि आदमी नहीं था। कलिंग के युद्ध पर लड़ा। एक लाख आदमी मारे गए। अशोक के पहले भी सम्राट लड़े हैं, बाद में भी लड़ते रहे हैं, सदा लड़ते रहेंगे। लेकिन जो अशोक को दिखाई पड़ा, वह पहले के सम्राटों को भी कभी दिखाई नहीं पड़ा, बाद के सम्राटों को भी कभी दिखाई नहीं पड़ा।
अशोक कलिंग के युद्ध से वापस लौटा, जीतकर लौटा था, लेकिन उदास लौटा। जीतकर दुनिया में बहुत कम लोग हैं, जो उदास लौटते हैं। जीतकर तो आदमी प्रसन्न होकर लौटता है, अल्पबुद्धि का लक्षण है वह। जब कोई जीतकर प्रसन्न होकर लौटे, तो समझना कि वह अल्पबुद्धि है। और जब कोई हारकर प्रसन्न लौट आए, तो समझना कि वह अल्पबुद्धि नहीं है। जीतकर कोई उदास लौटे, तो समझना कि वह अल्पबुद्धि नहीं है। और जीतकर कोई हंसता हुआ लौटे, तो समझना कि वह अल्पबुद्धि है।
अशोक उदास लौट आया। उसे नाम ही उसके माता-पिता ने अशोक इसलिए दिया था
कि वह कभी उदास नहीं होता था; सदा प्रफुल्लित था, चियरफुल था। उसे नाम ही इसलिए दिया था कि वह सदा आनंदित और प्रफुल्लित रहता था। लेकिन इतने बड़े राज्य को जीतकर लौटा है, कलिंग की विजय करके लौटा है, और उदास लौटा आया है! चिंता फैल गई है। उसके मित्रों ने पूछा, इतने उदास हो जीतकर! हार जाते तो क्या होता? स्वभावतः, अल्पबुद्धि के लिए यह सवाल उठा होगा। जीतकर इतने उदास हो, हार जाते तो क्या होता!
अशोक ने कहा, युद्ध अब असंभव है, एक अनुभव काफी सिद्ध हुआ। अब नहीं युद्ध कर सकूंगा, अब नहीं जीतने जा सकूंगा। क्योंकि कितनी कामना की थी कि कलिंग को जीत लूंगा, तो इतना आनंद मिलेगा। लेकिन कलिंग हाथ में आ गया, आनंद तो हाथ में नहीं आया। हालांकि मेरा मन फिर धोखा दे रहा है कि अभी और भी जीतने को जगह पड़ी है, उनको भी जीत लो। लेकिन इस मन की अब दुबारा नहीं मानूंगा। मानकर देख लिया एक बार; एक लाख आदमियों की लाशें बिछा दीं। सिर्फ खून बहा; हाथ में खून के दाग लगे। करुण चीत्कारें सुनाई पड़ीं; रोना; और न मालूम कितने घरों के दीए बुझ गए। और इस मन ने मुझे कहा था, आनंद मिलेगा; वह मैं भीतर खोज रहा हूं, वह मुझे कहीं मिला नहीं। लाखों लोग मर गए, लाखों परिवार उजड़ गए, और जिस सुख के लिए इस मन ने मुझे कहा था, उसकी रेखा भी मुझे दिखाई नहीं पड़ती। युद्ध समाप्त हो गया; मेरे लिए अब कोई युद्ध नहीं है।

और उसी दिन से अशोक ने भिक्षु की तरह रहना शुरू कर दिया। उसने कहा कि
जब युद्ध मेरे लिए नहीं है, तो अब सम्राट होने का कोई अर्थ नहीं रहा। वह तो युद्ध के साथ जुड़ा हुआ भाव था--सम्राट होने का।
एच.जी.वेल्स ने विश्व इतिहास में लिखा है कि दुनिया में बहुत सम्राट हुए, लेकिन अशोक जैसा चमकता हुआ तारा विश्व के इतिहास में दूसरा नहीं है। कारण है उसका। महाबुद्धि है। और उसके महाबुद्धि होने की बात क्या है? राज क्या है? राज यह है कि युद्ध के एक अनुभव ने उसे मन का पूरा रहस्य समझा दिया।
आपने कितनी बार क्रोध किया है, लेकिन क्रोध का रहस्य आप समझ पाए? कितनी बार कामवासना में उतरे हैं, कामवासना का रहस्य समझ पाए? कितनी बार प्रेम किया है, प्रेम का रहस्य समझ पाए? कितनी बार घृणा की है, घृणा का रहस्य समझ पाए?
नहीं, रोज वही करते रहे हैं, लेकिन हाथ में कोई भी निष्पत्ति, कोई भी कनक्लूजन नहीं है। हाथ खाली का खाली है, और कल आप फिर बच्चे जैसा ही व्यवहार करेंगे। अल्पबुद्धि है चित्त।
कृष्ण कहते हैं, अल्पबुद्धि लोग सुख की मांग करते हैं देवताओं से। देवताओं से ही की जा सकती है मांग सुख की। सुख भी उन्हें मिल जाते हैं, लेकिन क्षणभंगुर सिद्ध होते हैं। हां, जो मेरे पास आता है, परम ऊर्जा के द्वार पर जो आता है, वह अनंत आनंद का मालिक हो जाता है।
अगर प्रभु के द्वार पर ही जाना हो, तो क्षुद्र वासना लेकर मत जाना। वासना पूरी भी हो जाए, तो भी कुछ हाथ नहीं लगने वाला है। प्रभु के द्वार पर तो खाली होकर जाना, बिना कोई वासना लिए। प्रभु से तो यही कहते जाना कि जो तूने दिया है, वह जरूरत से ज्यादा है।
सुना है मैंने कि एक भिखारी एक वृद्ध महिला के सामने हाथ फैलाकर भीख मांग रहा है। लंगड़ा है, घसिट रहा है। उस वृद्ध महिला को बहुत दया आ गई है और उसने कहा कि दुख होता है तुम्हें देखकर; पीड़ा होती है तुम्हें देखकर। परमात्मा न करे, कोई लंगड़ा हो। लेकिन फिर भी मैं तुमसे कहती हूं कि लंगड़े ही हो न, परमात्मा को धन्यवाद दो, क्योंकि अंधे होते तो और मुसीबत होती। उस आदमी ने कहा कि आप ठीक कहती हैं। जब मैं अंधा होता हूं, तो लोग नकली सिक्का मेरे हाथ में पकड़ा देते हैं!
लंगड़ा होना भी उसके लिए एक काम था, अंधा होना भी एक काम था। उसने कहा,
आप बिल्कुल ठीक कहती हैं। अंधे होने में बड़ी मुसीबत होती है, लोग नकली सिक्के पकड़ा देते हैं। इसीलिए तो मैंने अंधा होना बिल्कुल बंद कर दिया। अब मैं लंगड़े होने से ही काम चलाता हूं।
उस वृद्ध स्त्री को ख्याल भी न रहा होगा, कल्पना भी न रही होगी। उसने
तो कहा था इस ख्याल से कि वह आदमी शायद अपने लंगड़ेपन में भी प्रभु को धन्यवाद दे पाए। लंगड़ा भी प्रभु को धन्यवाद दे सकता है। काश, जो उसे मिला है, वह दिखाई पड़ जाए।
लेकिन हम सब उस भिखारी जैसे ही हैं। जो हमें मिला है, उसके लिए हम धन्यवाद नहीं दे पाते। जो नहीं मिला है, उसकी शिकायत कर पाते हैं। उस आदमी ने कहा कि ठीक कहती है तू; क्योंकि जब मैं अंधा होता हूं, तो लोग नकली सिक्के हाथ में रख देते हैं!
नकली भी कोई हाथ में रखता है, इसका भी धन्यवाद हो सकता है। पर उसके लिए बड़ी दूर-दृष्टि, उसके लिए बड़ी महाबुद्धि चाहिए। इतना भी क्या कम है कि किसी ने नकली सिक्का भी आपके हाथ में रखा! यह भी कहां जरूरी था? इसकी भी शिकायत करने कहां जा सकते हैं? उसने हाथ पर खाली हाथ भी रखा, तो भी क्या कम है! क्योंकि वह न रखता तो कोई सवाल तो न था।
लेकिन जिंदगी हमारी ऐसी ही है। जो हमें मिला है, उसका हमें कोई भी स्मरण नहीं है। जो हमें नहीं मिला है, उसका हमें बहुत तीव्र बोध है। वह कांटे की तरह छाती में चुभता रहता है। धार्मिक आदमी ऐसी प्रार्थना करने नहीं जाता मंदिर में, जिसमें कुछ मांगता हो। इस बात का धन्यवाद देने जाता है कि जो तूने दिया है, वह मेरी सामर्थ्य से भी ज्यादा है।
और जो उसने दिया है, उसका हमने उपयोग क्या किया है? कभी आपने सोचा? आपको आंखें दी हैं, आंखों से आपने ऐसा क्या देखा है, जो आप न देखते तो कुछ

हर्जा हो जाता? कभी इस पर सोचा है! परमात्मा ने आपको आंखें दी हैं। आपने इन आंखों से ऐसा क्या देखा है, जो न देखते तो कुछ हर्जा हो जाता? शायद ही आपको याद आए। उसने आपको कान दिए हैं। ऐसा क्या सुना है, जो न सुनते तो कोई हर्जा हो जाता? उसने आपको हाथ दिए हैं। ऐसा आपने क्या स्पर्श किया है, जो स्पर्श न किया होता तो कुछ आप खो देते? उसने आपको पैर दिए हैं। आपने ऐसी कौन सी तीर्थयात्रा की है, जो कि अगर पैर न होते और आप न कर पाते, तो प्राणों में कसक रह जाती?
नहीं, पैर किसी तीर्थ तक नहीं पहुंचे, आंखें किसी दृश्य को नहीं देख पाईं, कान ने कोई अमृत नहीं सुना। और ऐसा नहीं है कि अमृत चारों तरफ मौजूद नहीं है, और ऐसा भी नहीं है कि तीर्थ बहुत दूर है, और ऐसा भी नहीं है कि वह दृश्य दिखाई न पड़ जाए, जिसे देख लेने पर आंखें सार्थक हो जाती हैं; वह भी निकट है।
पर जो हमें मिला है, हम उसकी तरफ ध्यान ही नहीं देते, उपयोग की तो बात दूर है। उपयोग का तो कोई सवाल नहीं है। हम उस पर ध्यान ही नहीं देते। हम उसे मांगते चले जाते हैं, जो नहीं मिला है। हमारी सारी प्रार्थनाएं, जो नहीं मिला है, उसकी मांग है। पूरी हो जाएंगी वे मांग, कृष्ण कहते हैं, लेकिन फिर भी वह अल्पबुद्धि है आदमी, क्योंकि थोड़ी ही देर में वह फिर पाएगा कि वे सब सुख जो पाए थे, खो गए।
प्रार्थना तो वही सार्थक है, जो वहां पहुंचा दे, जिसे मिलने पर फिर खोना नहीं है; जिसके मिलन में फिर विछोह नहीं है। पर वह देवताओं की पूजा से नहीं, वह तो परम सत्ता की तरफ समर्पण से संभव है।

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्।। 24।।
नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्।। 25।।
बुद्धिहीन पुरुष मेरे अनुत्तम अर्थात जिससे उत्तम और कुछ भी नहीं है, ऐसे अविनाशी परम भाव को अर्थात अजन्मा अविनाशी हुआ भी अपनी माया से प्रकट होता हूं, ऐसे प्रभाव को तत्व से न जानते हुए मन-इंद्रियों से परे मुझ सच्चिदानंदघन परमात्मा को मनुष्य की भांति जन्म कर व्यक्तिभाव को प्राप्त हुआ मानते हैं।
तथा अपनी योगमाया से छिपा हुआ मैं सबके प्रत्यक्ष नहीं होता हूं। इसलिए ये अज्ञानी मनुष्य मुझ जन्मरहित अविनाशी परमात्मा को तत्व से नहीं जानते हैं।

दो बातें इस सूत्र में कृष्ण कह रहे हैं। एक, साकार शरीर में मैं खड़ा हूं, आकार लिया है। जो नहीं जानते हैं, वे सोचते हैं, मेरा आकार ही मैं हूं। वे मेरे भीतर छिपे निराकार को नहीं देख पाते हैं। रूप लिया है मैंने। जिनके पास देखने की आंखें नहीं हैं, सोचने के लिए मेधा नहीं है, वे मेरे रूप को ही देख पाते हैं। उस अरूप को, जो भीतर छिपा है, उससे अपरिचित रह जाते हैं। मेरा वह सच्चिदानंद रूप है जो, मेरा वह जो सच्चिदानंद स्वभाव है, वह उनकी आंखों से ओझल रह जाता है।
इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है।
पहली बात, परमात्मा जब भी प्रकट होगा, तब रूप में प्रकट होगा, आकार में प्रकट होगा। प्रकट होने का अर्थ है, रूपायित होना, टु बी इन दि फार्म। प्रकट होने का अर्थ ही होता है, रूप लेना। प्रकट होने का अर्थ ही होता है, आकार लेना। प्रकट होने का अर्थ होता है, सीमा में खड़े होना। प्रकट होने का अर्थ है, पृथ्वी पर, शरीर में, देह में अभिव्यक्त होना। लेकिन हमें बड़ी कठिनाई होती है।
यह बल्ब है बिजली का, जलता है। बिजली प्रकट नहीं हो सकती है बिना इस बल्ब के। बल्ब का तो रूप होगा, आकार होगा; बिजली का कोई रूप और आकार नहीं है। वह आदमी नासमझ है, जो बल्ब को बिजली समझ ले। लेकिन वह नासमझ भी तर्क दे सकता है। वह डंडा उठाकर ट्यूब के ऊपर पटक दे, तो ट्यूब फूट जाए और बिजली

बंद हो जाए। तो वह कहे कि देखो, मैंने कहा था न कि यह बल्ब ही बिजली है। मारा डंडा, टूट गया बल्ब; नहीं बची बिजली।
फिर भी हम जानते हैं कि बल्ब बिजली नहीं है। बल्ब पूरी तरह बना रहे और बिजली जा सकती है; और बल्ब पूरी तरह मिट जाए, तो भी बिजली रहती है। बल्ब केवल अभिव्यक्त होने की व्यवस्था है, मैनिफेस्टेशन है। जब भी किसी शक्ति को प्रकट होना हो, तो रूप और आकार के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है।
कृष्ण कहते हैं, जो नासमझ हैं, वे मेरी देह को ही समझ लेते हैं कि यह मैं हूं।
इन नासमझों में दो तरह के लोग हैं। एक तो वे नासमझ, जो कृष्ण को प्रेम करने लगेंगे, लेकिन वे कृष्ण की देह को ही प्रेम करते चले जाएंगे। वे कृष्ण को, वह जो अरूपी भीतर छिपा है, उसको नहीं देख पाएंगे। और एक वे नासमझ, जो दुश्मन हो जाएंगे। वे कहते रहेंगे कि यह आदमी तो शरीरधारी है, यह भगवान कैसे हो सकता है? यह आदमी उठता है, बैठता है, सोता है, भूख लगती है, खाना खाता है। यह भगवान कैसे हो सकता है?
उन दोनों की बुद्धि में बहुत भेद नहीं है। जो कृष्ण को प्रेम करेंगे,
वे इस शरीर को ही भगवान मान लेंगे। फिर वे कृष्ण की मूर्ति बना लेंगे, फिर वे उस कृष्ण की मूर्ति को सुबह दातुन कराएंगे, पानी पिलाएंगे, स्नान करवाएंगे, फिर वे उस कृष्ण की मूर्ति को शयन करवाएंगे; दोपहर को द्वार बंद करके बिस्तर पर लिटाएंगे; फिर उस मूर्ति को कपड़े पहनाएंगे।
फिर यह सब चलेगा। इस बात को भूल जाएंगे कि जिस कृष्ण का हमने आविर्भाव देखा था, वह यह मूर्ति नहीं है। वह आविर्भाव तो अमूर्त का था; इस मूर्ति से हुआ था, इस रूप में हुआ था। इस मूर्ति का उपयोग किया जा सकता है। इस मूर्ति के प्रति श्रद्धा भी प्रकट की जा सकती है। लेकिन इसी मूर्ति के आस-पास जो घूमने लगे, और अमूर्त को भूल जाए, वह नासमझ है।
एक तो नासमझी यह है, जो प्रेमी कर लेता है। दूसरी नासमझी यह है कि लोग पूछेंगे कि भगवान कैसे हैं! धूप पड़ती है, तो पसीना आता है; दौड़ें, तो सांस चढ़ जाती है; थक जाते हैं, तो इन्हें भी नींद आती है। हम आदमियों जैसे ही हैं। इसलिए हम कैसे स्वीकार करें कि ये भगवान हैं? वह एक दूसरा वर्ग है जो कहेगा, हम स्वीकार नहीं कर सकते। उसकी भी नासमझी वही है, जो उस भक्त की है, जो आकार में देख रहा है। वह भी आकार में देख रहा है।
कृष्ण कहते हैं, निराकार को जो देख पाए, वही बुद्धिमान है। असल में बुद्धि की परीक्षा ही यही है कि वह निराकार को देख पाए। आकार को तो निर्बुद्धि भी देख पाता है। आकार को देखने में कोई बुद्धिमत्ता नहीं है। आकार तो सभी को दिखाई पड़ता है। वह जो नहीं दिखाई पड़ता है, वह जो पीछे छिपा खड़ा है, उसे जो देख पाए, उसे जो पहचान पाए, वही बुद्धिमान है। लेकिन कृष्ण में ही कोई निराकार को देख लेगा, यह संभव नहीं है, जब तक वह सब जगह निराकार को देखना शुरू न कर दे।
जब आप एक वृक्ष को देखते हैं, तो आपको आकार ही दिखाई पड़ता है। आपको वह जीवन ऊर्जा, जो वृक्ष के भीतर बहती है और आकार लेती है, वह आपको दिखाई नहीं पड़ती। जब एक फूल खिलता है, तो आकार ही दिखाई पड़ता है। उस फूल के भीतर जो ऊर्जा खिलती है और पंखुड़ियों में फैलती है, और जिस शक्ति के कारण पंखुड़ियां बंद थीं और खुल जाती हैं, उस शक्ति को आप नहीं देख पाते। जब एक बीज टूटता है, तो आप बीज को देखते हैं; लेकिन जो उसके भीतर भरा था और टूटना चाहता था, और तोड़ दिया बीज को और बाहर आया, वह आपको नहीं दिखाई पड़ता।
हम देखते ही आकार को हैं सब तरफ। जब हम सब तरफ आकार को देखते हैं, तो यह संभव नहीं है कि विशेष रूप से कृष्ण या क्राइस्ट या मोहम्मद के संबंध में हम आकार को न देखें और निराकार को देख लें। आकार को देखने की हमारी जड़बद्ध आदत है। हम जो चौबीस घंटे देखते हैं, वही हम कृष्ण में भी देख पाएंगे। हम दूसरी बात न देख पाएंगे।
सुना है मैंने, एक जहाज पर, पानी के जहाज पर बहुत-से यात्री हैं और एक जादूगर भी है। और एक तोता भी है एक आदमी के पास। वह जादूगर समय काटने के लिए जहाज के यात्रियों को बिठाकर कुछ ट्रिक्स, कुछ अपना काम दिखाता है, कुछ हाथ की सफाइयां दिखाता है। लेकिन वह तोता भी उसी जादूगर के गांव का है और जादूगर के घर के सामने का ही है। जब भी वह जादूगर कुछ दिखाता है, तो वह

तोता जोर से चिल्लाता है, फोनी फोनी; सब झूठ है, सब झूठ है; सब तरकीब है, सब हाथ की सफाई है। जब भी जादूगर कभी कुछ दिखाता है, वह तोता जरूर चिल्लाता है कि सब हाथ की सफाई है, सब धोखा है। सावधान!
फिर जहाज डूब जाता है। एक बड़ा तूफान आया और जहाज डूब गया। संयोग की बात, एक लकड़ी के पटिए को जादूगर पकड़कर अपने को बचाने की कोशिश करता है। वह तोता भी उसी लकड़ी के पटिए पर आकर बैठ गया है। अब वे दोनों ही समुद्र में चलते हैं। दो दिन तक जादूगर भी गुस्से में उससे नहीं बोला, क्योंकि वह उससे दुश्मनी कर रहा था रोज। और तोता भी दो दिन तक नहीं बोला। क्योंकि उसकी भी हिम्मत न पड़ी कहने की। लेकिन दो दिन बाद उसने कहा जादूगर से, अच्छी बात है। माना कि तुम बड़े बुद्धिमान हो। लेकिन जरा यह तो बताओ कि उस जहाज का तुमने क्या किया?
वह समझा कि कोई ट्रिक की है; इसी की शरारत है। उस तोते ने समझा कि इसी
की कोई शरारत है, हरकत है। लेकिन दो दिन तक उसने देखा कि ऐसी कैसी ट्रिक कि दो दिन हो गए, अभी तक वह जहाज नहीं लौटा! उसने कहा कि माना कि तुम बड़े बुद्धिमान हो, लेकिन कृपा करके अब इतना तो बता दो कि उस जहाज का क्या किया? चौबीस घंटे, वर्षों से वह तोता जादूगर के घर के सामने उसके हाथ की सफाइयां देख रहा था। उसके सोचने का एक ढंग बना। फिर जहाज पर भी वह हाथ की सफाइयां देख रहा था। उसके सोचने का एक ढंग निश्चित हो गया था। वह यह सोच ही नहीं पाया तोता कि जहाज डूब गया। उसने समझा कि इसी की शरारत है। इसी ने कोई ट्रिक, कोई हाथ की सफाई दिखलाई है। इसलिए दो दिन तक वह चुप रहा कि कब तक यह हाथ की सफाई दिखलाता रहेगा। आखिर थोड़ी-बहुत देर में जहाज प्रकट होगा, तब मैं चिल्लाऊंगा, फोनी! फोनी! सब झूठा है। लेकिन वह मौका आया नहीं दो दिन में।
हम सब के भी मन की आदतें हैं, सोचने के ढंग हैं। बंध जाते हैं। जब पत्थर में नहीं दिखता कुछ, तो मूर्ति में नहीं दिखेगा। पत्थर में दिखे, तो मूर्ति में भी दिख जाएगा। कोई कहता हो कि पत्थर में तो मुझे पत्थर ही दिखता है और मूर्ति में भगवान दिखते हैं, तो झूठ कहता है। कोई अगर कहता हो कि मेरे बेटे में तो मुझे शरीर ही दिखता है, मेरी पत्नी में मुझे शरीर दिखता है, मेरे पिता में मुझे शरीर दिखता है और राम में मुझे भगवान दिखते हैं, तो गलत कहता है। यह नहीं हो सकता। यह संभव नहीं है। क्योंकि एक बार राम के शरीर में अगर निराकार दिखाई पड़ जाए, तो सभी शरीरों में दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा।
दिखाई पड़ जाए, तो बात खुल गई। वह हमारा पुराना तर्क टूट गया। वह हमारे पुराने देखने का ढांचा, व्यवस्था मिट गई। अब हमने नए ढंग से चीजों को देखा। अब हमें आकार दिखाई पड़ेगा, लेकिन आकार के पीछे निराकार सदा ही छिपा हुआ मालूम पड़ेगा। उसका एहसास होगा, उसकी एक छाया हर आकार का पीछा करेगी। किसी व्यक्ति को हम गले मिलाएं, हड्डियां ही गले मिलेंगी, लेकिन फिर
हम भीतर से जानेंगे कि कुछ और निराकार भी मिल रहा है। तब वह आत्मा का मिलन बन जाएगा।
कृष्ण कहते हैं, बुद्धिहीन जो हैं, वे मेरे शरीर को ही देख पाते, रूप
को ही देख पाते, आकार को ही देख पाते। वे मेरी निराकार विभूति का अनुभव नहीं कर पाते। और उस निराकार में ही मैं छिपा हूं; वही मैं हूं।
अब यह कठिनाई है। अभिव्यक्त होने की कठिनाइयां हैं। सबसे बड़ी कठिनाई
यह है कि अभिव्यक्त होते ही आकार लेना पड़ेगा। आकार के बिना कोई अभिव्यक्ति संभव नहीं है।
अगर मुझे बोलना है, तो शब्द का उपयोग करना पड़ेगा। लेकिन शब्द का उपयोग करते ही डर यह है कि अर्थ आपके पास पहुंचे ही नहीं, सिर्फ शब्द पहुंच जाए। जैसा कि रोज होता है; शब्द ही पहुंच जाते हैं, अर्थ नहीं पहुंचता। अर्थ तो पीछे पड़ा रह जाता है। अर्थ निराकार है; शब्द साकार है।
जब मैं एक शब्द बोलता हूं, आपके पास शब्द जाकर आपकी मेमोरी में, आपकी स्मृति के बैंक में जमा हो जाता है। आप समझे कि समझ गए; शब्द पास आ गया; अब आप उसका उपयोग कर सकते हैं। कोई चाहे तो आप बता सकते हैं कि मैं क्या-क्या बोला।

आप बता भी दें कि मैं क्या-क्या बोला, तब भी जरूरी नहीं है कि आप वह समझ
गए हों, जो मैंने बोला है। क्योंकि वह अर्थ है, वह पीछे छिपा पड़ा है। उस अर्थ को जानने के लिए निराकार की पकड़ चाहिए।
अब बोलना है, तो शब्द का उपयोग करना पड़ेगा; और जो बोलना है, वह निःशब्द है। कठिनाई है, अड़चन है, मुसीबत है। लेकिन ऐसा तथ्य है; जीवन का ऐसा तथ्य है। यहां सभी चीजें जब भी प्रकट होंगी, रूप लेंगी। रूप लेते ही रूप दिखाई पड़ेगा, अरूप छिप जाएगा। वह अरूप नहीं दिखाई पड़े, तो हमारे जीवन में भागवत चैतन्य का कोई संस्पर्श नहीं हो पाता है।
कृष्ण कहते हैं, मुझ सच्चिदानंद को जानना हो, तो रूप से आंखें उठानी पड़ें, आकार से ऊपर उठना पड़े, शरीर के पार झांकने की कोशिश करनी पड़े। यह कहीं से भी शुरू की जा सकती है। जरूरी नहीं है कि कोई कृष्ण के पास ही जाए, क्योंकि अब कैसे जाएंगे कृष्ण के पास! कहीं से भी शुरू कर सकते हैं। एक गेस्टाल्ट है मस्तिष्क में। हम जिस ढंग की देखने की आदत से बंध गए हैं, उसी तरह देखे चले जाते हैं। हमें दूसरी चीज दिखाई नहीं पड़ती।
हम सब कंडीशंड हैं। एक मजबूत यंत्र की तरह हमारा मन काम करता है। कृष्ण इस यंत्र को तोड़ने के लिए कह रहे हैं। वे कह रहे हैं कि कोई भी प्रेमी, कोई भी भक्त, जो मुझे जानना चाहता हो, उसे मेरे सच्चिदानंद रूप की, अरूप की, निराकार की दिशा में खोज करनी चाहिए। मेरे रूप पर मत रुक जाना। मेरे शब्द पर मत रुक जाना। मेरे शरीर पर मत ठहर जाना। थोड़ा हटना, ट्रांसेंड करना, पार, थोड़े ऊपर उठकर जाने की कोशिश करना।
बुद्ध मर रहे हैं; आखिरी क्षण है। कोई उनसे पूछता है कि आप मरने के बाद कहां जाएंगे? तो बुद्ध कहते हैं, तो फिर तुम मुझे समझ नहीं पाए। क्योंकि मैं जीते जी ही कहीं नहीं गया। निश्चित ही, कठिनाई हो गई होगी पूछने वाले को। उसने कहा, कैसी आप बात करते हैं! कई गांव तो मैं आपके पीछे गया हूं! कई यात्राओं पर तो मैं सम्मिलित रहा हूं। बुद्ध ने कहा, तू भला गया हो, लेकिन मैं तुझसे कहता हूं कि मैं अपने जीवन में कहीं नहीं गया। यात्रा मैंने कभी की ही नहीं।
मजाक समझी होगी, कि बुद्ध मजाक कर रहे हैं। उनके चेहरे की तरफ देखा होगा। लेकिन वे मजाक नहीं कर रहे हैं। बुद्ध ने कहा, मैं हंसता नहीं। मजाक नहीं करता। मैं अपने जीवन में कहीं गया नहीं। और जो गया, वह मैं नहीं हूं। यह शरीर चलता था; तूने इसी को देखा है। इसके भीतर एक अचल भी बैठा हुआ है; जो बिल्कुल नहीं चलता, वह तूने नहीं देखा है।
जापान में एक फकीर हुआ, रिंझाई। उसने एक दिन सुबह--बुद्ध का भक्त है, रोज बुद्ध की प्रार्थना करता है, पूजा करता है, फूल चढ़ाता है, मूर्ति के सामने सिर टेकता है--एक दिन सुबह अपने भिक्षुओं को इकट्ठा करके कहा कि मैं तुमसे कहता हूं कि यह बुद्ध नाम का आदमी कभी हुआ ही नहीं। चौंके वे। समझे कि कुछ मस्तिष्क में खराबी तो नहीं आ गई! तीस साल से देखते हैं इस आदमी को बुद्ध के चरणों में सिर रखते; आज अचानक इसको क्या हो गया! उन्होंने कहा, क्या कहते हैं आप?
रिंझाई ने कहा, बुद्ध नाम का आदमी न कभी हुआ, न इस जमीन पर कभी चला, न कभी बोला। ये सब शास्त्र झूठे हैं। उन्होंने कहा, हमें थोड़ा समझाएं, अन्यथा हम मुश्किल में पड़ गए हैं। रिंझाई ने कहा कि मैं तुमसे कहता हूं, मैं भी कभी नहीं हुआ। मैं भी कभी नहीं बोला। मैं भी कभी नहीं चला। ये सब बातें झूठी हैं। तब उन्हें थोड़ा-सा भरोसा आया कि वह आदमी क्या कह रहा है। तो उन्होंने पूछा कि आप कहना क्या चाहते हैं?
रिंझाई ने कहा कि आज मुझे पता चला कि चलना केवल शरीर का है, बोलना केवल शरीर का है। भूख, प्यास, नींद शरीर की है। वह जो भीतर है, उसे कभी भूख नहीं लगती, नींद नहीं आती। वह कभी चलता नहीं, बैठता नहीं, उठता नहीं। वह कभी जन्म नहीं लेता, वह कभी मरता नहीं। वह इन सारी घटनाओं के पार है। ये सारी घटनाएं आकार के भीतर हैं और वह निराकार है।
दूसरे दिन सुबह वह फिर बुद्ध के चरणों में सिर रखे पड़ा था। तो उन भिक्षुओं ने पूछा कि अब आप यह क्या कर रहे हैं? जो कभी हुआ ही नहीं, उसके चरणों में सिर क्यों रखे हुए हैं? रिंझाई ने कहा कि कहां का सिर? कौन रखे

हुए है? वह भी नहीं हुआ कभी, जो सामने है; और यह जो सामने पड़ा हुआ है, यह भी कभी नहीं हुआ।
अरूप की खोज करनी पड़ेगी। और सबसे सरल है कि अपने भीतर शुरू करें। दूसरे के पास जाकर अरूप को खोजना बहुत कठिन होगा। अपने भीतर आसानी से खोज हो सकती है। कभी आंख बंद करके भीतर देखने की कोशिश किया करें कि क्या मैं शरीर के रूप में बंधा हूं? कभी आंख बंद करके कोशिश करें कि मेरी सीमा क्या है? और आप बहुत हैरान हो जाएंगे। अगर आप तीन महीने एक छोटा-सा प्रयोग करें, तो यह सूत्र आपको खुल जाएगा। तीन महीने आधा घंटा रोज आंख बंद करके यही केवल सोचें कि मेरी सीमा कहां है?
आज सोचेंगे तो आपको शरीर ही अपनी सीमा मालूम पड़ेगी। लेकिन पंद्रह दिन
से ज्यादा नहीं लगेगा कि आपको एक अदभुत अनुभव होना शुरू हो जाएगा। कभी शरीर बहुत बड़ा होता हुआ मालूम पड़ेगा, कभी बहुत छोटा होता हुआ मालूम पड़ेगा, सिर्फ पंद्रह दिन के भीतर। कभी लगेगा, शरीर पहाड़ जैसा हो गया और सीमा बड़ी हो गई। और कभी लगेगा, शरीर चींटी जैसा हो गया, सीमा बड़ी छोटी हो गई। घबड़ा मत जाना, क्योंकि बहुत घबड़ाहट का अनुभव होता है।
जब पहली दफा सीमा का भाव टूटता है, तो फ्लक्चुएशन होता है। कभी लगता है, बहुत बड़ा हो गया; कभी लगता है, बिल्कुल छोटा हो गया। अगर आप पीछे पड़े ही रहे, तो एक महीना पूरा होते-होते अचानक कभी-कभी ऐसे क्षण आ जाएंगे, जब लगेगा कि शरीर है ही नहीं--न छोटा, न बड़ा। और तब आपको पहली दफा पता चलेगा कि मेरी कोई सीमा नहीं। मैं हूं, और सीमा कोई भी नहीं है। अपने ही भीतर अगर तीन महीने इस प्रयोग को करें, तो आप असीम की और निराकार की छोटी-सी झलक को पा लेंगे।
और जिस दिन आप अपने भीतर जान लेंगे, उस दिन आप दूसरे के भीतर भी जान लेंगे। क्योंकि हम दूसरे के भीतर जो भी जानते हैं, वह अनुमान है, इनफरेंस है। ज्ञान तो अपने भीतर होता है, दूसरे की तरफ तो अनुमान होता है।
आपको पता है कि जब आप क्रोध में होते हैं, तो आंखें लाल हो जाती हैं, मुट्ठी भिंच जाती है। तो दूसरा आदमी अगर क्रोध में न भी हो--जैसा कि फिल्म का एक्टर या नाटक का पात्र क्रोध में नहीं होता--आंखें लाल कर लेता है, मुट्ठी भींच लेता है; आप समझ जाते हैं कि यह क्रोध में है। भीतर क्रोध बिल्कुल नहीं होता।
क्योंकि आपको पता है कि जब आप मुट्ठी बांधते हैं और आंखें मींचते हैं,
और दांत दबाते हैं, और लहू उतर आता है, चेहरा लाल हो जाता है, तब आप जानते हैं कि आप क्रोध में हैं। फिल्म का अभिनेता या नाटक का पात्र वही करके दिखला रहा है; आप समझ जाते हैं कि वह क्रोध में है। क्रोध आपका अनुमान है। वह है नहीं क्रोध में। लेकिन जो-जो घटना क्रोध में घटती है, वह घट रही है; आप अनुमान कर लेते हैं।
दूसरे के बाबत हम अनुमान करते हैं। ज्ञान तो अपने ही बाबत होता है।
अपने भीतर निराकार की थोड़ी-सी खोज हो... । कई तरह से हो सकती है। जैसे मैंने कहा कि शरीर की सीमा का चिंतन करें, मनन करें, मेडिटेट आन इट; ध्यान करें। तीन महीने में आपकी सीमा खो जाएगी और आपके असीम का अनुभव हो जाएगा। अगर इसमें कठिनाई मालूम पड़े, तो शरीर की उम्र, अपनी उम्र का भीतर अनुभव करें कि मेरी उम्र कितनी है? तो अभी आज आप बैठेंगे, तो पता लगेगा कि चालीस साल है, तो चालीस साल है। लेकिन यह असली पता नहीं है। यह तो सिर्फ आदत है रोज की कि आप चालीस साल के हैं। पंद्रह दिन बैठकर देखने पर आप डांवाडोल होने लगेंगे। कभी लगेगा कि छोटा बच्चा हो गया, और कभी लगेगा कि बिल्कुल बूढ़ा हो गया, यह फ्लक्चुएशन शुरू हो जाएगा।
एक महीना पूरा होते-होते आपके भीतर यह सफाई हो जाएगी कि न मैं बच्चा हूं, न मैं बूढ़ा हूं, न मैं जवान हूं। तीन महीने प्रयोग करने पर आप पाएंगे कि आप अजन्मा हैं; आपका कभी कोई जन्म नहीं हुआ। और आप अमृत हैं; आपकी कोई मृत्यु नहीं हो सकती।
कहीं से भी शुरू करें, किसी भी आकार से शुरू करें, और धीरे-धीरे आप निराकार में उतर जाएंगे। ध्यान का अर्थ है, आकार से निराकार की तरफ यात्रा।

कृष्ण वही कह रहे हैं। ज्ञान का अर्थ है, आकार से निराकार की तरफ यात्रा।
जो बुद्धिहीन है, वह आकार में अटक जाता है। जो बुद्धिमान है, वह निराकार में डुबकी लगा लेता है। और एक बार निराकार की झलक मिल जाए, तो इस जगत में सब आकार मिट जाते हैं और निराकार ही रह जाता है। और जहां निराकार है, वहां आनंद है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, वह मेरा सच्चिदानंद स्वरूप है, वहां सत, चित, आनंद, तीनों का वास है।
लेकिन निराकार में है। आकार में अगर खोजने जाएंगे, तो आकार में सत नहीं मिलेगा, मिलेगा असत।
सत का अर्थ होता है, एक्झिस्टेंस, अस्तित्व। असत का अर्थ होता है, आभास; दिखता है कि है, और नहीं है। अगर आकार में खोजने जाएंगे, तो चित नहीं मिलेगा। चित का अर्थ होता है, कांशसनेस, चैतन्य। आकार में खोजने जाएंगे, तो जड़ मिलेगा, चैतन्य नहीं मिलेगा। और तीसरा तत्व है, आनंद। आकार में खोजने जाएंगे, तो सुख मिलेगा, दुख मिलेगा, आनंद नहीं मिलेगा। आनंद तो निराकार में मिलेगा।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, मेरे सच्चिदानंद स्वरूप को वे बुद्धिमान जान पाते हैं, जो मेरे आकार और आकृति में नहीं उलझ जाते। जो पेनिट्रेट कर जाते हैं, जो पार चले जाते हैं, गहरे उतर जाते हैं और निराकार को खोज लेते हैं। यह निराकार हमारे चारों तरफ सब तरह से मौजूद है; यहीं मौजूद है। लेकिन
हम सबको आकार दिखाई पड़ते हैं। हमारी सिर्फ आदत है देखने की।
इसे ऐसा समझें कि एक आदमी अपने घर के भीतर बैठा है। कभी घर के बाहर नहीं गया। खिड़की से आकाश को देखता है। तो उसे आकाश निराकार दिखाई पड़ेगा कि साकार?
उसे साकार दिखाई पड़ेगा। क्योंकि खिड़की का ढांचा आकाश पर बैठ जाएगा।
वह जो खिड़की का पैटर्न है, वह जो खिड़की का चौखटा है, आकाश उतना ही मालूम पड़ेगा, जितना खिड़की का चौखटा है। और अगर वह आदमी अपने घर के बाहर कभी न गया हो, तो क्या वह सोच सकेगा कि यह जो चौखट दिखाई पड़ रही है, मेरे मकान की है, आकाश की नहीं! कभी नहीं सोच सकेगा। इसके लिए बाहर जाना जरूरी है।
हम अपने मकान के बाहर कभी नहीं गए। शरीर के भीतर हैं। और हर चीज पर चौखट है। हमारी आंख की चौखट चीजों को आकार दे देती है। कान की चौखट चीजों को आकार दे देती है। हमारी इंद्रियां आकार का निर्माण करती हैं। और हम अपने शरीर के बाहर कभी नहीं गए। शरीर के भीतर से ही सब चीजें देखते हैं। और इंद्रियां आकार देती हैं हरेक चीज को। एक दफा हम शरीर के बाहर जाकर देख लें, तो भी काम हो जाए।
तो आपको एक दूसरा प्रयोग भी कहता हूं। वह भी अगर संभव हो सके, तो जैसे मैंने दो प्रयोग आपको कहे, एक प्रयोग और आपको कहता हूं। वह भी एक रास्ता है कि आप घर के बाहर जाकर देख लें।
आप पंद्रह दिन तक आधा घंटा रोज, पड़ जाएं जमीन पर मुर्दे की भांति और एक
ही बात सोचते रहें कि मैं मर गया। कठिन पड़ेगा। खुद ही को डर लगेगा। बीच में एकाध दफे कह देंगे कि नहीं-नहीं; ऐसा नहीं; मैं जिंदा हूं!
नहीं, ऐसा नहीं चलेगा। कहते रहें, मैं मर गया, मैं मर गया। इसको मंत्र
की तरह भाव करते रहें। पंद्रह दिन में आप अचानक पाएंगे कि कई बार आपको ऐसा लगेगा कि थोड़ा-सा आप शरीर के बाहर गए। कभी बाहर निकल गए हैं, कभी भीतर आ गए हैं। कभी बाहर गए हैं, कभी भीतर आ गए हैं।
एक महीना पूरा होते-होते आप इस स्थिति में आ जाएंगे कि आपको कई बार अपने शरीर को बाहर से देखने का मौका मिल जाएगा। एक क्षण को आप देखेंगे कि शरीर पड़ा है मुर्दे की तरह। आप पड़े हैं। घबड़ाकर आप फिर भीतर चले जाएंगे। तीन महीने आप प्रयोग करते रहें और आप उस स्थिति में आ जाएंगे कि बराबर बाहर खड़े होकर अपने शरीर को देख पाएं कि यह पड़ा है शरीर।
और एक दफा आप अगर अपने शरीर के बाहर होकर अपने शरीर को देख पाएं, उस वक्त जरा लौटकर चारों तरफ देखना, सब निराकार दिखाई पड़ेगा, कहीं कोई आकार नहीं है। क्योंकि सब आकार शरीर की इंद्रियों के चौखटों का आकार है।

आंख का आकार है, इसलिए आंख निराकार नहीं देख सकती। कान का आकार है, इसलिए कान निराकार को नहीं सुन सकता। हाथ का आकार है, इसलिए हाथ निराकार को कैसे स्पर्श करे!
शरीर के बाहर, आउट आफ दि बाडी एक्सपीरिएंस, आपको खबर दिलाएगा कि सब निराकार है। उस दिन के बाद आपकी जिंदगी दूसरी हो जाएगी।
कृष्ण जो भी ये कह रहे हैं, ये योग के गहरे प्रयोगों की तरफ इशारे हैं।
निराकार को जो देख ले, वही बुद्धिमान है। आकार में जो उलझा रह जाए, वह बुद्धिहीन है।

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन।। 26।।
और हे अर्जुन, पूर्व में व्यतीत हुए और वर्तमान में स्थित तथा आगे होने वाले सब भूतों को मैं जानता हूं, परंतु मेरे को कोई भी श्रद्धा- भक्तिरहित पुरुष नहीं जानता है।

मैं जानता हूं, कृष्ण कहते हैं, वह जो पीछे हुआ वह, जो अभी हो रहा है वह,
जो आगे होगा वह--मैं सब जानता हूं।
इस सब जानने का अर्थ यह है--यह थोड़ी-सी कठिन बात है, थोड़ी समझ लेनी चाहिए--इस सब जानने का अर्थ यह है कि कृष्ण जैसी निराकार चेतना के समक्ष समय जैसी कोई चीज नहीं होती। वर्तमान, अतीत और भविष्य हम लोगों की धारणाएं हैं। जैसे ही कोई निराकार को जान लेता है, समय की सब सीमाएं गिर जाती हैं। और एक इटरनल नाउ, सब चीजें अभी हो जाती हैं। न कोई अतीत होता है, न कोई भविष्य होता है, न कोई वर्तमान होता है। समय का क्षण ठहर जाता है।
अगर ठीक से समझें, तो हम निरंतर कहते हैं कि समय जा रहा है, समय बीत रहा है। स्थिति उलटी है। समय तो अपनी जगह खड़ा है, हम जा रहे होते हैं, हम चल रहे होते हैं। हमारी स्थिति करीब-करीब वैसी है, जैसी ट्रेन में कभी छोटा बच्चा पहली दफा बैठता है, तो उसे लगता है कि पास के वृक्ष पीछे जा रहे हैं। ट्रेन चलती है आगे की तरफ, बच्चा ही आगे जा रहा है, लेकिन खिड़कियों से पीछे की तरफ भागते हुए वृक्ष दिखाई पड़ते हैं। और पता लगता है कि वृक्ष पीछे जा रहे हैं।
हम सब कहते हैं कि समय जा रहा है। लेकिन असलियत बिल्कुल उलटी है। हम
जा रहे हैं; समय अपनी जगह खड़ा है। इसे थोड़ा समझना पड़ेगा।
समय अपनी ही जगह खड़ा है। समय कहीं नहीं जाता। समय जाएगा कैसे? जाएगा कहां? कल निकल गया, अब वह कहां जाएगा? कहीं अस्तित्व में कोई जगह होनी चाहिए न! कल जो बीत गया, वह कहां इकट्ठा होगा? और कल जो अभी नहीं आया है, वह कहां से आ रहा है? आने के लिए उसे कहीं होना चाहिए; और जाने के लिए भी कहीं पहुंच जाना चाहिए। इसका तो मतलब यह होगा कि पीछे एक अतीत इकट्ठा हो रहा है करोड़ों, अरबों, खरबों वर्षों का। सब इकट्ठा होगा वहां। और आगे, भविष्य आगे है, वह चला आ रहा है।
यह नहीं हो सकता। न तो भविष्य आ रहा है, न अतीत चला गया है। सिर्फ हम गुजर रहे हैं। जैसे एक आदमी रास्ते से गुजर रहा है। लेकिन ट्रैफिक, वन वे ट्रैफिक है। क्योंकि हम समय में पीछे नहीं जा सकते हैं, इसलिए हमें लगता है कि जो चला गया, वह खो गया। चूंकि हम समय में आगे छलांग नहीं लगा सकते हैं, इसलिए हमें लगता है कि भविष्य अभी आया नहीं है। भविष्य आ चुका है उतना ही; भविष्य मौजूद है।
मैं निकल रहा हूं एक रास्ते से। आगे का मकान मुझे दिखाई नहीं पड़ रहा
है अभी, लेकिन वह अपनी जगह मौजूद है। थोड़ी देर बाद मैं उसके सामने पहुंचूंगा। वह मुझे दिखाई पड़ेगा। पीछे का मकान, जो थोड़ी देर पहले मुझे दिखाई पड़ता था, अब दिखाई नहीं पड़ रहा; वह खो गया। लेकिन खो कहीं नहीं गया; वह अपनी जगह मौजूद है।
समय चलता नहीं, समय की चलने की धारणा ट्रेन में गुजरने जैसी धारणा है, जैसे वृक्ष चलते हुए मालूम पड़ते हैं। आदमी चलता है, समय नहीं चलता है।

इसलिए कृष्ण जब कहते हैं, मैं सब जानता हूं, वह जो पीछे, वह जो आगे, वह
जो अभी; उसका कुल मतलब यह है कि कृष्ण जैसे आदमी को उस परम चेतना की स्थिति में, उस समाधि की दशा में, वर्तमान, अतीत, भविष्य का फासला गिर जाता है। समझें कि मैं एक बहुत बड़े दरख्त पर ऊपर बैठ गया हूं। आप दरख्त के नीचे बैठे हैं। मैं आपसे चिल्लाकर कहता हूं कि एक बैलगाड़ी रास्ते पर आ रही है। आप कहते हैं, मुझे नहीं दिखाई पड़ती; भविष्य में होगी। लेकिन मुझे दिखाई पड़ती है। मैं थोड़ा आपसे ऊंचाई पर बैठा हुआ हूं। मैं कहता हूं, भविष्य में नहीं है, वर्तमान में है। बैलगाड़ी आ गई है रास्ते पर। आप कहते हैं, कहीं नहीं दिखाई पड़ती। अभी नहीं आई है; भविष्य में है।
फिर थोड़ी देर में बैलगाड़ी आपके सामने आ जाती है। आप कहते हैं, आ गई। वर्तमान हो गई। फिर थोड़ी देर बाद बैलगाड़ी आगे निकल जाती है। आप कहते हैं, अतीत हो गई; अब दिखाई नहीं पड़ती। लेकिन मैं आपसे ऊपर के दरख्त से कहता हूं कि अभी भी वर्तमान है; दिखाई पड़ती है।
जितनी चेतना की ऊंचाई होगी, उतना ही वर्तमान, अतीत और भविष्य का फासला गिरता जाएगा। और जिस दिन कृष्ण जैसी परम ऊंचाई होती है चेतना की, उस दिन सब चीजें जो हो गईं, दिखाई पड़ती हैं; सब चीजें जो होने वाली हैं, दिखाई पड़ती हैं; सब चीजें जो हो रही हैं, दिखाई पड़ती हैं।
इस अनुभव के आधार पर ही समस्त ज्योतिष का विकास हुआ था। लेकिन अब तो बाजार में कोई चार आने देकर ज्योतिषी को दिखा रहा है। वह बेचारा कुछ बहुत नहीं बता सकता। उसे कुछ पता नहीं है।
ज्योतिष का सारा विकास समाधिस्थ चेतना से हुआ था। उन लोगों को, जिनको समय के सब फासले मिट गए थे, जिन्हें सब दिखाई पड़ रहा था। ज्योतिष ज्योतिर्मय चेतना के अनुभव से निकला था।
कृष्ण कहते हैं, मुझे सब दिखाई पड़ता है। लेकिन जो अज्ञानी हैं, वे मुझे नहीं देख पा रहे हैं, मैं उन सबको देख रहा हूं।
अब कृष्ण को भलीभांति दिखाई पड़ रहा है कि कौरव हार जाएंगे। यह बैलगाड़ी कृष्ण के लिए सामने आ गई है। अर्जुन को दिखाई नहीं पड़ रहा है कि कौरव हार जाएंगे कि पांडव जीत जाएंगे। यह दुर्योधन को भी नहीं दिखाई पड़ रहा है कि कौरव हार जाएंगे और पांडव जीत जाएंगे। अब यह अर्जुन भी डरा है कि पता नहीं हम हार न जाएं! अभी कौरव भी इस ख्याल में हैं कि हम जीत लेंगे, क्योंकि शक्ति हमारे पास ज्यादा है। एक आदमी वहां मौजूद था, उस महाभारत के युद्ध में, जिसे पता था कि क्या होने वाला है और क्या होगा।
कृष्ण का अर्जुन से यह कहना कि तू भाग मत, बहुत दूर की जानकारियों से जुड़ा हुआ है। कृष्ण का यह कहना कि तू सोच रहा है, जिन्हें तू मारेगा, मैं तुझसे कहता हूं, समय ने उन्हें पहले ही मार डाला है। मैं उनकी लाशें देख रहा हूं। तुझे नहीं दिखाई पड़ता, मैं देख रहा हूं कि वे युद्ध के मैदान पर लाश होकर पड़े हैं। दो दिन बाद तुझे भी दिखाई पड़ेगा; बैलगाड़ी तेरे सामने आ गई होगी। तू समझता है, तू मारेगा। मैं कहता हूं कि विधि ने उन्हें समाप्त कर दिया है; तू केवल निमित्त होगा।
कृष्ण कहते हैं, मैं देख रहा हूं दूर तक, चारों तरफ, आगे और पीछे, लेकिन फिर भी मेरे आस-पास सैकड़ों लोग हैं, जो मुझे नहीं देख रहे हैं।
पहाड़ की ऊंचाई से नीचाइयों की तरफ देखना आसान है, नीचाइयों से ऊंचाइयों की तरफ देखना कठिन है। जितने हम नीचे होते हैं, उतनी हमारी चेतना नैरोड, संकीर्ण हो जाती है; जितने हम ऊंचे होते हैं, उतनी विस्तीर्ण हो जाती है।
तो कृष्ण को तो देखना आसान है कि वे देख लें सबको। लेकिन सब को देखना कठिन है कि वे कृष्ण को देख लें। हां, जो कृष्ण की थोड़ी-सी भी झलक देख ले, वह समर्पण के लिए राजी हो जाएगा। क्योंकि वह देखेगा कि पास में एक विराट खड़ा है। और तब वह अपने छोटे-से अहंकार और अपनी छोटी-सी बुद्धि से नहीं जीएगा; तब वह समर्पण करके जीना शुरू कर देगा। और जब वह समर्पण करके जीएगा, तब वह जानेगा; तब वह जानेगा कि जो कहा गया था, वही हुआ है। जो कहा गया था, वही हो रहा है। अन्यथा कुछ होता नहीं है। अन्यथा कुछ भी नहीं होता है।
जीसस को जिस रात पकड़ा गया, तो जीसस के मित्रों ने कहा, हमें खबर मिली
है कि दुश्मन पकड़ने आ रहे हैं। अच्छा हो कि हम यहां से भाग जाएं। तो जीसस

मुस्कुराए। वह मुस्कुराहट अब तक समझ के बाहर है। क्योंकि जीसस किसलिए मुस्कुराए होंगे? मैं कहता हूं, इसलिए कि जीसस जानते हैं, पकड़ा जाना जरूरी है; होने ही वाला है; इसलिए भागने का कोई अर्थ नहीं है। मुस्कुराए होंगे इसलिए कि ये जो मित्र बेचारे चिंता से कह रहे हैं, इन्हें कुछ पता नहीं है। जो होने वाला है, होगा।
फिर जीसस पकड़े गए। तो मित्रों ने कहा, हमने कहा था, आपने न सुना। फिर
वे मुस्कुराए। क्योंकि उन्हें पता है कि जो होने वाला है, वह हो रहा है। कहना भी तुम्हारा जरूरी था; मेरा सुनना भी जरूरी था; और यह पकड़ा जाना भी जरूरी था।
फिर उनमें से एक ने कहा कि चाहे जान रहे, चाहे जाए, मैं तो आपके साथ रहूंगा। जीसस ने कहा, तुझे पता नहीं; सुबह सूरज के उगने के पहले तक तू तीन दफे मुझे इनकार कर चुका होगा। अभी आधी रात है, सूरज के उगने तक तू तीन दफे मुझे इनकार कर चुका होगा। उसने कहा, आप कैसी बातें करते हैं! मैं अपनी जान लगा दूंगा आपके लिए। मैं इनकार करूंगा?
जीसस मुस्कुराए। क्योंकि उस बेचारे को पता नहीं उसका भी कि वह क्या
कर सकता है सुबह तक। लेकिन जीसस को दिखाई पड़ रहा है कि वह क्या करेगा।
फिर जीसस को पकड़कर दुश्मन ले चले। बाकी शिष्य तो भाग गए; वह एक शिष्य पीछे हो लिया, जिसने कहा था, मैं आखिरी दम तक साथ रहूंगा। दुश्मनों ने देखा कि कोई एक अजनबी आदमी साथ में है। कौन है यह? उन्होंने अपनी मशालें उसके चेहरे की तरफ कर दीं। उसको पकड़ लिया और कहा कि तू कौन है? तू जीसस का साथी तो नहीं है? उसने कहा, कौन जीसस! मैं तो पहचानता ही नहीं।
जीसस ने पीछे की तरफ देखा, मुस्कुराए और कहा, अभी सूरज नहीं उगा। और ऐसा तीन बार हुआ। फिर थोड़ी देर बाद रास्ते पर वे आए। और सैनिक आए और उन्होंने कहा, यह आदमी कौन है, जो बीच में चल रहा है? अजनबी मालूम पड़ता है। फिर उन्होंने उसे पकड़ा। उसने कहा, मुझे क्यों पकड़ते हो? मैं परदेसी हूं। तुम जीसस के साथी हो? उसने कहा, कौन जीसस! मैं पहचानता भी नहीं। जीसस फिर मुस्कुराए और उन्होंने जोर से कहा, देख! अभी सुबह नहीं हुई। ऐसा तीन बार रात में उसने इनकार किया।
जीसस को पता है, क्या होने वाला है, क्या होगा। इसलिए जो बहुत गहरे जीसस को पहचानते हैं, वे जीसस की मृत्यु को कहते हैं, क्राइस्ट ड्रामा। वे कहते हैं, उसको कोई ज्यादा गंभीरता से लेने की जरूरत नहीं है; जीसस के लिए तो वह नाटक से ज्यादा नहीं था। क्योंकि जब पहले से ही पता हो, तो मामला नाटक हो जाता है।
कृष्ण के लिए भी युद्ध नाटक से ज्यादा नहीं था। इसलिए कई लोगों को कठिनाई होती है कि इस युद्ध में वे इतनी प्रेरणा दे रहे हैं! अर्जुन को रोकते नहीं!
गांधीजी को बड़ी तकलीफ थी, कि इतना बड़ा युद्ध, इतनी हिंसा करवा देंगे! गांधी को बहुत प्रेम था गीता से, लेकिन फिर भी गीता पचती नहीं थी उनके मन को कहीं। गहरे में तो चोट लगती थी, क्योंकि है तो युद्ध का मामला। अहिंसा तो नहीं है कहीं भी। और हिंसा की इतनी सहज स्वीकृति किसी दूसरे आदमी ने कभी दी नहीं है। तो फिर गांधी के पास एक ही उपाय था, या तो गीता को छोड़ दें, या गीता की ऐसी व्याख्या कर लें कि मन में जम जाए।
तो उन्होंने एक तरकीब निकाल ली। और वह तरकीब उन्होंने यह निकाल ली कि
यह युद्ध कभी हुआ नहीं। यह तो प्रतीकात्मक, सिंबालिक युद्ध है; यह कभी हुआ नहीं। यह तो आदमी में बुरी शक्तियों और अच्छी शक्तियों का युद्ध है। कुरुक्षेत्र पर कभी कोई युद्ध हुआ नहीं। तब उनके मन को थोड़ी राहत मिली। यह तो आसुरी और सदवृत्तियों का संघर्ष है। सच में कभी युद्ध हुआ नहीं। जब गांधी को यह व्याख्या पकड़ ली उन्होंने मन में, तब उनको राहत मिली।
लेकिन यह बात झूठ है। यह युद्ध हुआ है। इस युद्ध के होने के ऐतिहासिक प्रमाण हैं। और यह युद्ध प्रतीकात्मक नहीं है, यह युद्ध वास्तविक तथ्य है। फिर कृष्ण कैसे इस वास्तविक युद्ध में अर्जुन को धक्का दे रहे हैं? असल में अर्जुन को जो नहीं दिखाई पड़ता है, वह कृष्ण को दिखाई पड़ता है।
यह युद्ध होकर रहेगा। यह युद्ध नियति है, यह डेस्टिनी है। इस युद्ध से बचा नहीं जा सकता; यह होगा ही। सारी ऐतिहासिक शक्तियां जिस जगह ले आई हैं, वहां

यह युद्ध होकर रहेगा। इसलिए अब सवाल यह नहीं है कि युद्ध हो या न हो। सवाल यह है कि युद्ध पर अर्जुन जाए, तो किस भाव को लेकर जाए। वह परमात्मा के प्रति समर्पित होकर युद्ध करे कि अहंकार से भरा होकर युद्ध करे, असली सवाल इतना ही है।
कृष्ण कहते हैं, मुझे तो सब दिखाई पड़ता है, लेकिन जो नहीं जानते, उन्हें मैं बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ता हूं।
वहीं लोग खड़े होंगे, जो कृष्ण को सारथी से ज्यादा न समझते रहे होंगे। सारथी थे ही वे, जहां तक आकार का संबंध है। अर्जुन के घोड़ों को सांझ जाकर नदी पर पानी पिलाकर, उनकी सफाई कर लाते थे। घोड़ों को दिनभर हांकते थे, सांझ उनकी सेवा करते थे। सारथी तो वे थे ही। उस युद्ध में बहुत सारथी थे। उनसे कुछ विशेष स्थान उनका न रहा होगा। जो नहीं देख सकते थे, उनको तो सारथी ही दिखाई पड़ा होगा।
लेकिन जो देख सकते थे, उनको तो, उनको जो दिखाई पड़ा होगा, वह निराकार है। जो देख सकते थे, उन्हें वे परम परमात्मा दिखाई पड़े। जो नहीं देख सकते थे, अंधे थे, उन्हें तो ठीक है, एक आदमी थे। आदमी थे ही, आकार था। आकार था निश्चित।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, आंख हो निराकार को खोजने की, तो ही मुझे कोई देख पाता है।
शेष हम कल बात करेंगे।
लेकिन उठेंगे नहीं। कीर्तन हम करें। क्योंकि कीर्तन से संभावना है कि आकार थोड़ा टूटे और निराकार की थोड़ी दृष्टि उपलब्ध हो।
कोई उठेगा नहीं। थोड़ा पानी गिरेगा, उसको आनंद से लें। परमात्मा थोड़ा पानी भेजता है, उसको आनंद से लें।

गीता दर्शन, भाग तीन
गीता दर्शन अध्याय 7
दसवां प्रवचन

धर्म का सारः शरणागति

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत।
सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परंतप।। 27।।
येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः।। 28।।
हे भरतवंशी अर्जुन, संसार में इच्छा और द्वेष से उत्पन्न हुए सुख-दुख आदि द्वंद्व रूप मोह से संपूर्ण प्राणी अति अज्ञानता को प्राप्त हो रहे हैं। परंतु निष्काम भाव से श्रेष्ठ कर्मों का आचरण करने वाले जिन पुरुषों का पाप नष्ट हो गया है, वे रागद्वेषादि द्वंद्व रूप मोह से मुक्त हुए और दृढ़ निश्चय वाले पुरुष मेरे को सब प्रकार से भजते हैं।

प्रभु का स्मरण भी उन्हीं के मन में बीज बनता है, जो इच्छाओं, द्वेषों
और रागों के घास-पात से मुक्त हो गए हैं। जैसे कोई माली नई जमीन को तैयार करे, तो बीज नहीं बो देता है सीधे ही। घास-पात को, व्यर्थ की जड़ों को उखाड़कर फेंकता है, भूमि को तैयार करता है, फिर बीज डालता है।
इच्छा और द्वेष से भरा हुआ चित्त इतनी घास-पात से भरा होता है, इतनी व्यर्थ की जड़ों से भरा होता है कि उसमें प्रार्थना का बीज पनप सके, इसकी कोई संभावना नहीं है।
यह मन की, अपने ही हाथ से अपने को विषाक्त करने की जो दौड़ है, यह जब तक समाप्त न हो जाए, तब तक प्रभु का भजन असंभव है।
सुना है मैंने, एक चर्च में एक फकीर बोलने आया था। कोई एक हजार लोग उसे सुनने को इकट्ठे थे। उसने उन एक हजार लोगों से पूछा कि मैं तुमसे पूछना चाहूंगा, तुममें से कोई ऐसा है जिसने घृणा के ऊपर विजय पा ली हो? क्योंकि जिसने अभी घृणा पर विजय नहीं पाई, वह प्रार्थना करने में समर्थ न हो सकेगा। इसके पहले कि मैं तुम्हें प्रार्थना के लिए कहूं, मैं यह जान लूं कि तुममें से कोई ऐसा है, जिसने घृणा पर विजय पा ली हो!
हजार लोगों में से कोई उठता हुआ नहीं मालूम पड़ा, लेकिन फिर एक आदमी उठा। एक सौ चार वर्ष का एक बूढ़ा आदमी खड़ा हुआ।
उस पादरी ने कहा, खुश हूं, प्रसन्न हूं, आनंदित हूं, क्योंकि हजार में
भी एक आदमी ऐसा मिल जाए, जिसने घृणा पर विजय पा ली है, तो थोड़ा नहीं। और अगर एक आदमी भी इस चर्च में ऐसा है, जिसने घृणा पर विजय पा ली है, तो हम प्रभु को इस चर्च में उतारने में सफल हो जाएंगे। तुम्हारी अकेले की प्रार्थना पर्याप्त होगी, इन सबके जीवन में भी प्रकाश डालने के लिए। मैं तुमसे प्रार्थना करूंगा, उस फकीर ने कहा कि तुम इन लोगों को भी बताओ कि तुमने अपनी घृणा पर विजय कैसे प्राप्त की?
और उस बूढ़े आदमी ने कहा, बड़ी सरलता से। क्योंकि वे सब दुष्ट, जिन्होंने मुझे सताया था, और वे सब मूढ़, जिन्होंने मुझे परेशान किया था और जिनसे मुझे घृणा थी, वे सब मर चुके हैं। अब कोई बचा ही नहीं, जिसे मैं घृणा करूं। आप ही बताइए मैं किसको घृणा करूं?
एक सौ चार वर्ष उसकी उम्र है; करीब-करीब वे सारे लोग मर चुके हैं, जिनसे जिंदगी में कोई कलह, कोई संघर्ष था। कहने लगा, अब कोई घृणा की जरूरत ही न रही। ऐसे तो सभी के जीवन से राग-द्वेष चला जाता है; सभी के जीवन से। शरीर शिथिल होने लगता है, कामवासना शिथिल हो जाती है। जिंदगी की दौड़ उतरकर मौत के करीब पहुंचने लगती है, तो बहुत-से वेग अपने आप शिथिल हो जाते हैं। प्रतिस्पर्धा, जैसे-जैसे आदमी मौत के करीब पहुंचता है, कम होने लगती है। लेकिन इस भांति भी अगर कोई सोचता हो कि प्रार्थना में सफल हो जाएगा, तो संभव नहीं है।
ऊर्जा हो पूरी, शक्ति हो पूरी, अवसर पूरा का पूरा ऐसा हो, जहां कि द्वेष जन्मता हो और द्वेष न जन्मे; जहां घृणा पैदा होती हो और घृणा पैदा न

हो; जहां राग का जन्म होता है और राग न जन्मता हो; जहां सारी प्रतिकूल परिस्थिति हो और मन, जीवन की जो सहज पाशविक वृत्तियां हैं, उनकी तरफ न दौड़ता हो, तो ही जीवन में प्रार्थना का बीज अंकुरित हो पाता है।
लेकिन हम सारे ऐसे लोग हैं कि हम चाहते तो हैं कि जीवन में प्रार्थना खिल जाए, और प्रभु का मिलन हो जाए, और आनंद घटित हो। और हम उन पर्वत शिखरों को देखने में समर्थ हो जाएं, जिन पर प्रकाश कभी क्षीण नहीं होता; और हम उन गहराइयों को जान लें अनुभव की, जहां अमृत निवास करता है; उन मंदिरों में प्रवेश कर जाएं, जहां परम प्रभु विराजमान है--ऐसी हम आकांक्षा करते हैं। लेकिन चौबीस घंटे घृणा के बीज को पानी देते हैं, द्वेष को सम्हालते हैं, शत्रुता को पालते हैं। और सब तरह से जमीन जिस तरह खराब की जा सकती है, वह सब करते हैं। और फिर हम सोचते हों कि कभी भगवत-भजन का फूल खिल सके, तो वह संभव नहीं है।
कृष्ण कहते हैं, जो नासमझ हैं, जो अज्ञानीजन हैं, वे इच्छा और द्वेष में ही अपने जीवन को समाप्त कर देते हैं। उनके पास न तो शक्ति बचती है, न समय बचता है, न चेतना बचती है कि मेरी ओर प्रवाहित हो सके। लेकिन जो ज्ञानीजन हैं... ।
और ज्ञानी कौन है? ज्ञानी वही है, जो अपने जीवन को निरंतर आनंद की दिशा में प्रवाहित करने में समर्थ है।
और अज्ञानी वही है, जो अपने ही हाथों नर्क की यात्रा करता है। जो अपने साथ अपना नर्क लेकर चलता है। कहीं भी पहुंच जाए, तो वह नर्क को निर्मित कर लेगा। उसके पास बिल्ट-इन-प्रोग्रेम है। उसके पास हमेशा तैयार है फार्मूला नर्क बनाने का। वह कहीं भी पहुंच जाए, ज्यादा देर न लगेगी, वह नर्क निर्मित कर लेगा।
अज्ञानी वही है, जो अपने चारों तरफ नर्क की समस्त संभावनाओं को लेकर चलता है। और ज्ञानी वही है, जो अपने चारों तरफ स्वर्ग की समस्त संभावनाओं को लेकर चलता है। स्वर्ग की बड़ी से बड़ी संभावना प्रभु का स्मरण है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, वह ज्ञानी जिसने अपने मन को निष्काम कर डाला, पवित्र कर डाला, जिसके जीवन में पुण्य की गंध पैदा हुई, जिसने व्यर्थ के घास-पात को उखाड़कर फेंक दिया, राग-द्वेष में जो अब जीता नहीं, जो अब भगवत-भजन की दिशा में निरंतर चल रहा है; उठता है, बैठता है, चलता है, डोलता है, कुछ भी करता है, प्रत्येक कृत्य जिसका प्रभु के लिए समर्पित है और प्रत्येक क्षण, वैसा व्यक्ति मुझे उपलब्ध होता है।
दो बातें स्मरणीय हैं।
अभी इस घटना का उपयोग करूं। अभी वर्षा पड़ रही है। हमारी दृष्टि पर सब निर्भर है। अगर हम सोचते हैं कि बहुत बड़ा दुख हमारे ऊपर गिर रहा है, तो हमारी दृष्टि शत्रुता की हो जाती है। अगर हम सोचते हैं कि प्रभु की अनुकंपा बरस रही है, तो हमारी दृष्टि मित्रता की हो जाती है। और तब यह पड़ती हुई बूंद, पानी की बूंद नहीं रह जाएगी, यह पड़ती बूंद भगवत चेतना की बूंद हो जाती है।
हम कैसे लेते हैं जीवन को, इस पर सब निर्भर करता है। हमें पता ही नहीं
है कि काश, हमें जिंदगी को जीने का ख्याल होता, तो हम जब आकाश से बादल बरसते हों और पानी नीचे गिर रहा हो, तो हम नाच भी सकते हैं खुशी में। मोर नाचते हैं, और कभी आदमी भी नाचता था, लेकिन अब आदमी सिर्फ बचता है। सूरज निकला हो, तो उसकी रोशनी में हम सिर्फ धूप भी अनुभव कर सकते हैं, और जीवन भी। अंधेरा घिरा हो, तो हम आने वाली सुबह की यात्रा भी देख सकते हैं उसमें, और सिर्फ मृत्यु का अंधकार भी।
हमारे ऊपर निर्भर करता है कि हम जीवन को कैसे देखते हैं। वर्षा रुकेगी नहीं आपके देखने से। पानी बंद नहीं होगा, बादल आपकी फिक्र न करेंगे। लेकिन आपके दृष्टिकोण का अंतर, आपके एटिट्यूड का जरा सा बदल जाना, और सब बदल जाता है।
सुना है मैंने कि केलिफोर्निया के एक मोटेल में एक यात्री मेहमान है। सुबह सूरज निकल रहा है और पक्षी गीत गा रहे हैं। तो मोटेल के मैनेजर ने उस यात्री को कहा कि आप कृपा करके बाहर आएं। सूरज निकला है, पक्षी गीत गा रहे

हैं, आकाश बहुत सुंदर है। उस आदमी ने कहा, वह तो ठीक है। बट फर्स्ट लेट मी नो हाउ मच इट विल कास्ट--पहले मुझे बता दो कि कीमत क्या चुकानी पड़ेगी!
हम जिस दुनिया में जीते हैं, वह बाजार की दुनिया है। वहां हर चीज को हम मूल्य से आंकते हैं। अगर किसी दिन ऐसा हो जाए कि वर्षा मुश्किल हो जाए, तो निश्चित ही हम पैसे चुकाकर शावर के नीचे खड़े होंगे। और जिन मुल्कों में सूरज नहीं निकलता, जब सूरज निकल आता है, तो छुट्टी हो जाती है। अंग्रेजी में संडे के दिन छुट्टी का कारण है, क्योंकि वह सन-डे है, वह सूरज का दिन है। आकाश घिरा रहता है बादलों से; सूरज का कोई दर्शन नहीं होता। जब सूरज निकल आए, तो आनंद से प्रफुल्लित होकर लोग सूरज की धूप लेने के लिए लेट जाते हैं।
जो न्यून हो जाए, और जिसके लिए हमें पैसा देना पड़े, फिर हमें लगता है, उसमें कुछ आनंद है। लेकिन जो हमें मुफ्त में मिल जाए, अगर परमात्मा भी मुफ्त हम पर बरसता हो, तो हम द्वार-दरवाजे बंद करके भीतर हो जाएंगे। (वर्षा शुरू हो गई है और भगवान श्री अपना बोलना जारी रखते हैं।)
मैं कहता हूं, इधर थोड़ी देर हम बैठेंगे ही। मुझे लगता है, कोई इनमें से जाने वाला नहीं है। जो जाने वाले थे, वे आए ही नहीं हैं। वर्षा भी रुकेगी नहीं। वर्षा भी आपसे डरेगी नहीं। वर्षा भी जारी रहेगी। बादल अपने आनंद में मग्न रहेंगे। अब इतनी देर घंटेभर हमें यहां रहना है। आपकी दृष्टि पर निर्भर करेगा।
मैं चाहूंगा कि थोड़ा-सा ख्याल करें कि प्रत्येक बूंद परमात्मा का आशीष है। और यहां से जाते वक्त आपका शरीर ही नहीं गीला होगा, आपकी आत्मा भी भीग गई होगी। और वह आत्मा का भीग जाना ही प्रभु का भजन है। उसके भजन किन्हीं मंदिरों के कोने में बैठकर नहीं किए जाते हैं; उसके भजन जीवन के हर कोने में और जीवन की हर दिशा में और हर आयाम में किए जाते हैं।
कृष्ण कहते हैं, जिनके मन में काम-द्वेष नहीं है, जो किसी के लिए घृणा
से नहीं भरे हैं, वे सरलता से ही मेरे भजन में लीन हो पाते हैं। और उन ज्ञानियों को मैं उपलब्ध होता हूं।
(वर्षा जारी है और भगवान श्री अपना बोलना जारी रखते हैं।)
इधर घंटेभर अज्ञानी मत बनें। घंटेभर के लिए कम से कम ज्ञानी बन जाएं।
और एक क्षण के लिए भी कोई ज्ञान का आनंद ले ले, तो दुबारा अज्ञानी होने की उसकी तैयारी न होगी। वह हर जगह प्रभु के स्मरण को खोज पाएगा।
बूंद आपके ऊपर गिर रही है, वह सिर्फ पानी नहीं है, वह परमात्मा भी है। क्योंकि परमात्मा के सिवाय इस जगत में कुछ भी नहीं है। जब बूंद आपके सिर पर गिरे और आपकी आंखों से नीचे उतरे, तो जानना कि परमात्मा अपनी पूरी शीतलता को लेकर आपके ऊपर गिरा है और नीचे उतरा है। और आप पाएंगे कि यहां बैठे-बैठे इस वर्षा के क्षण में भी एक प्रार्थना की गहराई आपके हृदय तक पहुंच गई है। और वह गहराई काम की हो जाएगी। ये कपड़े तो सूख जाएंगे, उस गहराई का सूखना मुश्किल है।

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम्।। 29।।
और जो मेरे शरण होकर जरा और मरण से छूटने के लिए यत्न करते हैं, वे पुरुष उस ब्रह्म को तथा संपूर्ण अध्यात्म को और संपूर्ण कर्म को जानते हैं।

जो मेरी शरण होकर!
इस छोटे-से शब्द शरण में, धर्म का समस्त सार समाया हुआ है। यह शरण इस पूरब में खोजी गई समस्त साधनाओं की आधारभूत बात है।
जो मेरी शरण होकर!
शरण होने का अर्थ है, जो अपने को इतना असहाय पाता है, इतना हेल्पलेस।
और जो पाता है, मेरे किए कुछ भी न हो सकेगा। और जो पाता है, मेरे किए कभी कुछ हुआ नहीं। और जो पाता है कि मैं हूं न होने के बराबर, नहीं ही हूं। जो पाता है, मैं कुछ भी नहीं हूं। न श्वास मेरे कारण चलती है, न खून मेरे कारण बहता है; न बादल मेरे कारण इकट्ठे होते हैं, न वर्षा मेरी वजह से होती है।

अज्ञात, अनंत शक्ति सब किए चली जाती है। मैं व्यर्थ अपने को बीच में क्यों लिए फिरूं! मैं अपने को छोड़ दूं; मैं बह जाऊं। इस अनंत के साथ संघर्ष छोड़ दूं; इस अनंत के साथ सहयोगी हो जाऊं; इस अनंत के चरणों में अपने को डाल दूं और कह दूं, जो तेरी मर्जी।
एक बार भी अगर कोई पूर्ण हृदय से कह पाए, जो तेरी मर्जी, उसके जीवन से दुख विदा हो जाता है। मेरी मर्जी दुख है; उसकी मर्जी कभी भी दुख नहीं है। ऐसा नहीं कि फिर पैर में कांटे न गड़ेंगे, और ऐसा भी नहीं कि फिर कोई बीमारी न आएगी, और ऐसा भी नहीं कि फिर मृत्यु न आएगी। लेकिन मजे की बात यह है कि कांटे तो फिर भी पैर में गड़ेंगे, लेकिन कांटे नहीं मालूम पड़ेंगे। बीमारी तो फिर भी आएगी, लेकिन आप अछूते रह जाएंगे। मौत तो फिर भी घटेगी, लेकिन आप नहीं मर सकेंगे। घटनाएं बाहर रह जाएंगी, आप पार हो जाएंगे।
असल में मैं के अतिरिक्त इस जगत में और कोई दुख नहीं है, और कोई पीड़ा नहीं है। और हम इतने मैं से भरे हैं कि अगर परमात्मा हमारे भीतर प्रवेश भी करना चाहे, तो जगह न मिल सकेगी। रोएं-रोएं से मैं बोल रहा है। वह मैं ही हमें समर्पित नहीं होने देता। वह मैं ही हमें कहीं शरण, सिर नहीं रखने देता। वह मैं कहता है कि तुम, और सिर झुकाओगे? वह मैं कहता है, सारी दुनिया से हम ही सिर झुकवा लेंगे।
मैं नेपोलियन बोनापार्ट के बचपन की कुछ किताबें देखता था। नेपोलियन बोनापार्ट जब पढ़ता था, तो अपनी एक स्कूल की एक्सरसाइज कापी में, एक छोटी-सी कापी में उसने एक वाक्य लिखा है। भूगोल के बाबत जानकारी ले रहा था। किसलिए? भूगोल के बाबत जानकारी ले रहा था कि सारी दुनिया जीतनी है, तो भूगोल तो जानना ही पड़ेगा। बचपन से ही नेपोलियन के दिमाग में सारी दुनिया को जीतने का ख्याल था, तो भूगोल की जानकारी जरूरी थी। एक बड़ी मजेदार घटना घटी। और इस जिंदगी में बड़ी मजेदार घटनाएं घटती ही हैं। जिंदगी बड़ी गहरी मजाक है।
सेंट हेलेना का छोटा-सा द्वीप है, बहुत छोटा। तो नक्शे पर नेपोलियन बोनापार्ट ने उसके चारों तरफ एक गोल लकीर खींच दी और लिख दिया, यह इतनी छोटी जगह है कि इसे जीतने की कोई जरूरत नहीं। और मजे की बात यह है कि नेपोलियन जब हारा, तो सेंट हेलेना के द्वीप में ही बंद किया गया, कैदी किया गया। जिस जगह को उसने जीतने के लिए छोड़ रखा था कि बेकार है; एक छोटा-सा द्वीप है, जिस पर कुछ नहीं, घास ही उगती है। इसको नहीं जीतने की कोई जरूरत है।
सारी दुनिया जीतनी चाही थी उसने! लेकिन कभी-कभी जिंदगी बड़े मजाक करती है। सारी दुनिया तो हार गया, आखिर में सेंट हेलेना का द्वीप ही बचा। और उस पर ही कैदी होकर नेपोलियन आखिरी वक्त में था। शायद उसे ख्याल भी न आया होगा कि कभी मैंने भूगोल की किताब पर निशान लगाया था कि सेंट हेलेना बिल्कुल बेकार है। आखिर में वहीं शरण मिली। जो बिल्कुल बेकार मालूम पड़ा था, वही शरण बना। सारी जमीन छिन गई हाथ से, वह सेंट हेलेना का द्वीप ही छोटा-सा, कुल जमा शरण थी।
जिंदगी में ऐसा रोज होता है। जिस परमात्मा को हम सदा छोड़े रहते हैं कि पाने योग्य नहीं है, और जिस परमात्मा को हम सदा बाहर रखते हैं जिंदगी के, वही परमात्मा अंत में पता चलता है कि शरण होने योग्य था--वही परमात्मा। (पानी की बूंदें पड़ने लगी हैं, कुछ लोगों ने छाता खोल लिए हैं। और भगवान श्री अपना कहना जारी रखते हैं।)
एक काम कुछ भी करें, या तो छाता खोले ही रखें, नहीं तो बादल आपसे मजाक जारी रखेंगे; आप खोले ही रखें। और या फिर बंद ही कर लें। या तो बादलों से कह दें कि अब तुम बेफिक्र रहो, हम अब खोलने वाले नहीं। और या फिर उनसे कह दें कि अब तुम बेफिक्र रहो, हम अब खोले ही रखेंगे। दो में से कुछ एक कर लें; दोनों न करते रहें, अन्यथा बेकार समय जाया होगा।
और जब भीग ही रहे हैं, तो पूरे ही भीग जाएं; इतनी कंजूसी भी क्या! कितना बचाएंगे! कितना बचाएंगे छाता-वाता लगाकर; कुछ बचेगा? सिर्फ वहम है आदमी का कि हम बचा लेंगे! क्या, बचा क्या पाएंगे? भीग जाएंगे पूरी तरह, भीग ही जाएंगे न! हो क्या जाएगा? तो भीग जाएं। छाते बंद करके नीचे रख दें। इसमें न

भीगने का मजा ले पाएंगे, न सूखने का मजा ले पाएंगे। दोनों तरफ से जाएंगे, न दीन के न दुनिया के, न घर के न घाट के हो जाएंगे।
शरण बड़ा अदभुत शब्द है। शरण का अर्थ है कि मैं कहता हूं अब मैं नहीं हूं, तू ही है। और अब तू जो करेगा, जो करवाएगा, उससे मैं राजी हूं, स्वीकार करता हूं। मेरी एक्सेप्टेबिलिटी है।
जीसस मर रहे हैं, आखिरी क्षण में सूली पर लटके हैं। एक क्षण को उनके मन में, ऐसे ही आ गया होगा भाव, जैसे आपके मन में छाता खोलने का आता है, आ गया एकदम एक क्षण को भाव, कि मैं परमात्मा के लिए जिंदगीभर जीया और आखिर मुझे सूली लग रही है! एक क्षण को कहीं बुद्धि ने सवाल उठा दिया होगा। और एक क्षण को जीसस ने आकाश की तरफ देखकर कहा कि यह तू क्या करवा रहा है? छोटी-सी शिकायत थी, बहुत बड़ी नहीं, कि यह तू क्या करवा रहा है?
लेकिन तत्काल फिर ख्याल आया कि यह तो शिकायत हो गई, यह तो सलाह हो गई परमात्मा को। यह तो मैं सलाह देने लगा कि तू क्या करवा रहा है! इसका अर्थ तो यह हुआ कि मेरी इच्छा कुछ और थी, जो होना चाहिए, और तू कुछ और करवा रहा है। यह तो मेरी इच्छा खड़ी हो गई!
उनकी आंख से दो आंसू के बूंद टपक पड़े। और उन दो बूंदों ने उन्हें वहां पहुंचा दिया, जिसको कृष्ण शरण कह रहे हैं। दो बूंद उनकी आंखों में आ गए। और उन्होंने जोर से कहा कि नहीं, नहीं, मुझे क्षमा कर; दाय विल बी डन--तेरी ही इच्छा पूरी हो। मैं कौन हूं! मुझे माफ कर दे। मुझसे भूल हो गई। मुझसे गलती हो गई। यह मैंने क्या कहा तुझसे कि यह तू क्या करवा रहा है!
इतनी-सी शिकायत जीसस के लिए बाधा थी। तो मैं निरंतर कहता हूं कि इस आखिरी क्षण तक भी जीसस क्राइस्ट नहीं थे। इस आखिरी क्षण तक वे जीसस ही थे। लेकिन यह आखिरी वक्तव्य, एक सेकेंड में सब दुनिया बदल गई। वह आंख से दो आंसू का गिर जाना और जीसस का कहना, दाय विल बी डन, तेरी मर्जी पूरी हो। और फिर प्रसन्न हो जाना और उस सूली पर ऐसे झूल जाना, जैसे वह झूला हो। वह जीसस, क्राइस्ट हो गए उसी क्षण। उसी क्षण वे मनुष्य न रहे, परमात्मा हो गए।
जिस क्षण कोई व्यक्ति अपने को परमात्मा की शरण में छोड़ देता है, उसी क्षण परमात्मा के साथ एक हो जाता है।
अब यह जिंदगी का पैराडाक्स है कि जब तक हम अपने को बचाते हैं, अपने को खोते हैं; और जिस दिन अपने को खो देते हैं, उस दिन हम अपने को बचा लेते हैं। और जब तक हम अपने को बचाएंगे, कुछ हमारे हाथ में आएगा नहीं; खाली होगी मुट्ठी। और जिस दिन हम खोल देंगे, उस दिन यह सारी संपदा, यह सारा जगत, यह सब कुछ, यह सब कुछ हमारा है। लेकिन जब तक मैं है भीतर, तब तक यह सब हमारा नहीं हो सकता है। यह मैं ही हमारा दुश्मन है, लेकिन मैं हमें मित्र मालूम पड़ता है।
एक बहुत अदभुत आदमी हुआ है, इकहार्ट। उसने मजाक में एक दिन परमात्मा
से सुबह प्रार्थना की है। लेकिन उसकी प्रार्थना कीमती है और मन में रख लेने जैसी है। इकहार्ट ने एक दिन सुबह प्रार्थना की परमात्मा से कि हे प्रभु, मेरे दुश्मनों से तो मैं निपट लूंगा, मेरे मित्रों से तू निपट ले। मेरे दुश्मनों से मैं निपट लूंगा। उनकी तू फिक्र छोड़। मैं काफी हूं। लेकिन मेरे मित्रों से तू निपट ले; उनसे मैं बिल्कुल नहीं निपट पाता। इकहार्ट का शिष्य साथ में था। उसने यह प्रार्थना सुनी। वह बड़ा हैरान हुआ। हैरान इसलिए हुआ कि सवाल तो दुश्मनों से ही होता है निपटने का; मित्रों से तो कोई सवाल नहीं होता! और यह इकहार्ट क्या पागलपन की बात कह रहा है। कहीं गलती तो नहीं हो गई शब्दों की जमावट में! कहना चाहता हो कि मेरे मित्रों से मैं निपट लूंगा, दुश्मनों से तू निपट ले। कहीं भूल तो नहीं हो गई!
इकहार्ट जैसे ही प्रार्थना के बाहर हुआ, मित्र ने हाथ पकड़ा और कहा कि मालूम होता है, तुम कुछ भूल कर गए। यह तुमने क्या कहा! मित्रों से निपटने की कोई जरूरत ही नहीं है। और तुमने परमात्मा से कहा कि शत्रुओं से तो मैं निपट लूंगा, मेरे मित्रों से तू निपट ले।
इकहार्ट ने कहा कि मैं तुझसे कहता हूं कि जिन-जिन को हमने मित्र समझा है, वे ही हमारे शत्रु हैं, और उनसे निपटना बड़ा मुश्किल है। और उनमें सबसे बड़ा मित्र है मैं, ईगो। यह बहुत मित्र मालूम पड़ता है। हम इसी को तो

जिंदगीभर बचाते हैं। यही है जहर, क्योंकि यही मैं शरण न जाने देगा। यही मैं सिर न झुकाने देगा। यही मैं छोड़ने न देगा आपको कि आप लेट गो में पड़ जाएं। कह दें कि ठीक।
कभी देखें। कभी देखें, जमीन पर ही लेट जाएं। किसी मंदिर में जाने की उतनी जरूरत नहीं है। जमीन पर ही लेट जाएं चारों हाथ-पैर छोड़कर, और कह दें परमात्मा से कि अब घंटेभर तू ही है, मैं नहीं। और पड़े रहें घंटेभर। अपनी तरफ से कोई बाधा न दें। सिर्फ पड़े रहें, जैसे कि मुर्दा पड़ा हो या कोई छोटा बच्चा अपनी मां की गोद में सिर रखकर सो गया हो। करते रहें, करते रहें। एक पंद्रह-बीस दिन के भीतर आपको शरण का क्या अर्थ है, वह पता चलेगा। यह शब्द नहीं है, यह अनुभव है।
जमीन पर पड़ जाएं; अपने कमरे को भी बंद कर लें, जमीन पर पड़ जाएं चारों हाथ-पैर छोड़कर। सिर रख लें जमीन पर, पड़ जाएं, और कह दें, प्रभु, घंटेभर के लिए तू है, अब मैं नहीं हूं। पड़े रहें। विचार चलते रहेंगे, भाव चलते रहेंगे। दो-चार-आठ दिन में विचार, भाव विलीन हो जाएंगे। पंद्रह दिन में आपको लगेगा कि वह जमीन, जिस पर आप पड़े हैं, और आप अलग नहीं हैं; एक हो गए; किसी गहरी इकाई में जुड़ गए। एक महीना पूरा होते-होते आपको पता चलेगा कि शरण का क्या अर्थ है। आपके भीतर प्रभु की किरणें सब तरफ से प्रवेश करने लगेंगी। क्योंकि शरण का अर्थ है, ओपनिंग।
इंडोनेशिया में एक आंदोलन चलता है, कीमती आंदोलन है। इस जमीन पर जो दो-चार कीमती बातें आज चल रही हैं, उनमें इंडोनेशिया में मोहम्मद सुबुद के द्वारा चलता हुआ एक छोटा-सा ध्यान का आंदोलन भी है। उस आंदोलन का नाम है सुबुद। उस आंदोलन की प्रक्रिया में कोई और विशेषता नहीं है, बस, इतनी ही प्रक्रिया है कि वे व्यक्ति को राजी करते हैं कि तू अपने को छोड़ दे परमात्मा के हाथों में। इसको वे कहते हैं, ओपनिंग। इसको कृष्ण कहते हैं, सरेंडरिंग। इसको वे कहते हैं, खुले अपने सब दरवाजे छोड़ दें। परमात्मा से कोई बचाव तो नहीं करना है, इसलिए खिड़की-दरवाजे सब खुले छोड़ दें। और ऐसा पड़ जाएं, जैसे परमात्मा है और हम उसकी गोद में पड़े हैं।
और एक तीन सप्ताह में परिणाम गहरे होने लगते हैं। जैसे ही आप अपने को खुला छोड़ते हैं... । रेसिस्टेंस छोड़ने में थोड़ा वक्त लगता है। दो-चार दिन तो आप कहेंगे, लेकिन छोड़ न पाएंगे। धीरे-धीरे धीरे-धीरे छोड़ पाएंगे। जिस दिन भी छोड़ना हो जाएगा, उसी दिन आप पाएंगे, आपके भीतर कोई विराट ऊर्जा प्रवेश कर रही है। आपकी मांसपेशियों में कोई और नई चीज बहने लगी। आपकी हड्डियों के आस-पास किसी नई चीज ने प्रवाह लिया। आपके हृदय की धड़कनों के पास कोई नई शक्ति आ गई। आपके खून में कुछ और भी बह रहा है। आपकी श्वासों में कोई और भी तिर रहा है। और आप एक तीन महीने के अनुभव में पाएंगे कि आप नहीं बचे, परमात्मा ही बचा है। फिर तो यह भी कहने की जरूरत न रहेगी कि मैं शरण आता हूं। क्योंकि फिर इतना भी आप न बचेंगे कि कह सकें कि मैं शरण आता हूं।
बुद्ध के पास एक युवक आया। उसने सुन रखा था कि बुद्ध लोगों से कहते हैं, अप्प दीपो भव! अपने प्रकाश स्वयं बनो; बी ए लाइट अनटु योरसेल्फ। फिर जब वह युवक बुद्ध के पास आया, तो उसे बड़ी बेचैनी हुई। वहां उसने देखा कि लोग कह रहे हैं, बुद्धं शरणं गच्छामि, बुद्ध की शरण जाते हैं। उस युवक को तो बड़ी परेशानी हुई। वह तो सुनकर आया था कि बुद्ध कहते थे कि अपने दीए स्वयं बनो। तो यह तो बात बड़ी उलटी मालूम पड़ती है, बुद्ध की शरण जाओ! अपने दीपक बनना है, तो किसी की शरण मत जाओ, यही उसने मतलब लिया था।
स्वभावतः, हमारा अहंकार इसी तरह के मतलब लेता है। वह मतलब की बातें पकड़ लेता है। वह कहता है, किसी की शरण मत जाओ। तो वह कहता है, ठीक, यही तो हम कहते हैं, किसी की शरण जाने की कोई जरूरत नहीं है।
उस युवक ने देखा कि यह क्या हो रहा है! हजारों भिक्षु, और वे बुद्ध के चरणों में सिर रखते हैं, और कहते हैं, बुद्धं शरणं गच्छामि, बुद्ध की शरण जाता हूं। उस युवक ने बुद्ध के पास आकर कहा, माफ करिए! आप तो कहते हैं, अप्प दीपो भव; अपने प्रकाश स्वयं बनो; खुद खोजो सत्य को। और ये लोग क्या कर रहे हैं! ये कहते हैं, बुद्धं शरणं गच्छामि; हम बुद्ध की शरण जाते हैं!

तो बुद्ध ने कहा, तू पहले शरण जा, तभी तो तू हो पाएगा। अभी तू है ही नहीं। अभी जिसे तूने समझा है मैं, वही तो तेरे होने में बाधा है। उस मैं को हम तोड़ दें। हां, उस दिन मैं तुझे मना कर दूंगा कि अब शरण मत जा, जिस दिन तेरे भीतर कोई शरण जाने को न बचे। उस दिन मैं कहूंगा, अब शरण जाने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन जब तक तेरे भीतर कोई शरण जाने के लिए बचा है, तब तक तू शरण जा। इन दोनों बातों में बुद्ध ने कहा, कोई विरोध नहीं है।
कृष्ण ने कहा है, शरण। कृष्ण की पूरी गीता का सार है, शरणागति।
महावीर ने ठीक उलटी बात कही है। महावीर ने कहा है, अशरण; किसी की शरण
मत जाना। शब्द बिल्कुल उलटे मालूम पड़ते हैं। लेकिन महावीर कहते हैं, अशरण तभी पूरा होगा, जब मैं न बचे। लेकिन मैं अगर भीतर है, तो अशरण कभी पूरा नहीं हो सकता।
तो कृष्ण भी यही कहते हैं, शरणागति से मैं मिट जाएगा। और तब तो शरण जाने को कोई नहीं बचता। किसकी जाओगे? कौन जाएगा? दोनों खो जाते हैं। बूंद सागर में गिर जाती है और एक हो जाती है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, जो शरण चला जाता है, वह सब कुछ पा लेता है।

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः।। 30।।
और जो पुरुष अधिभूत और अधिदैव के सहित तथा अधियज्ञ के सहित सब का आत्मरूप मेरे को जानते हैं, वे युक्तचित्त वाले पुरुष अंतकाल में भी मुझको ही जानते हैं अर्थात प्राप्त होते हैं।

छोटा-सा सूत्र; आखिरी और बहुत कीमती।
कृष्ण कहते हैं, जो सब भूतों में मुझे ही जानते हैं, वे अंधकार में भी मुझे ही जानते हैं।
हम सबने सुना है कि परमात्मा प्रकाश-स्वरूप है। हम सबने सुना है कि परमात्मा जीवन-स्वरूप है। हम सबने सुना है कि परमात्मा आनंद-स्वरूप है। कृष्ण यहां कहते हैं, लेकिन जो मुझे सबमें देख लेता है, वह अंधकार में भी मुझे ही देखता है। वह दुख में भी मुझे ही देखता है, वह मृत्यु में भी मुझे देखता है।
और ध्यान रहे, जब तक मृत्यु में भी परमात्मा न दिखे, तब तक अमृत उपलब्ध नहीं होता है। और ध्यान रहे, जब तक दुख में भी परमात्मा न दिखे, तब तक आनंद उपलब्ध नहीं होता है। और ध्यान रहे, जब तक अंधकार भी प्रकाश न हो जाए, तब तक परमात्मा उपलब्ध नहीं होता है।
यह तो हम नासमझों की मांग है कि हे प्रभु, हमें अंधकार से प्रकाश की तरफ ले चल। यह तो हम नासमझों की मांग है। क्योंकि हम जिंदगी को दो हिस्सों में तोड़कर देखते हैं। हम कहते हैं, हे प्रभु, हमें मृत्यु से अमृत की ओर ले चल। हम कहते हैं, हे प्रभु, हमें भय से अभय की ओर ले चल। दुख से सुख की ओर ले चल, आनंद की ओर ले चल। ये तो हमारी प्रार्थनाएं हैं, उनकी प्रार्थनाएं, जिन्हें कुछ भी पता नहीं है, जो जिंदगी को दो टुकड़ों में तोड़ लेते हैं। कृष्ण का वचन बड़ा अदभुत है। हम सबने सुना है ऋषि का वचन, अंधकार से प्रकाश की ओर ले चल। और कृष्ण कहते हैं, जो सब भूतों में मुझे देखते हैं, वे अंधकार में भी मुझे ही देखते हैं।
अगर ठीक प्रार्थना हो, तो वह ऐसी होगी कि हे प्रभु, अंधकार में भी मुझे
तू दिखाई पड़े। दुख में भी तू मुझे दिखाई पड़े। मृत्यु में भी तू मुझे दिखाई पड़े। अमृत की मेरी चाह नहीं मृत्यु में भी तू मुझे दिखाई पड़े। आनंद की मेरी चाह नहीं; दुख में भी तू ही मुझे मिले। प्रकाश की मेरी मांग नहीं; अंधकार भी मेरे लिए प्रकाश हो।
यह मांग पहली मांग से ज्यादा गहरी है; और कृष्ण जो कहते हैं, उसके अनुकूल है। क्योंकि जगत में तत्व एक है, दो नहीं। और जिसे हम अंधकार कहते हैं, वह केवल प्रकाश का एक रूप है। और जिसे हम मृत्यु कहते हैं, वह अमृत का एक रूपांतरण है। और जिसे हम दुख कहते हैं, जिसे हम दुख जानते हैं, जिसे हम पीड़ा कहते हैं, संताप कहते हैं, वे भी आनंद की यात्रा के पड़ाव हैं। लेकिन

यह हमें तब दिखाई पड़े, जब हम पूरे जीवन को कांप्रिहेंसिवली, इकट्ठा देख सकें।
हम तो खंड-खंड करके जीवन को देखते हैं। हमारी बुद्धि हर चीज को खंड-खंड कर देती है। बुद्धि का एक ही काम है, चीजों को तोड़ना। जोड़ना बुद्धि नहीं जानती। बुद्धि के पास जोड़ने का कोई भी उपाय नहीं है।
आज से एक हजार साल पहले सेलवीसियस नाम का एक ईसाई, कैथोलिक फकीर हिंदुस्तान आया। सेलवीसियस बहुत अदभुत आदमियों में से एक था। और बाद में वह कैथोलिक चर्च का पोप बना, हिंदुस्तान से लौटने के बाद। और जितने पोप बने हैं, उनमें सेलवीसियस का मुकाबला नहीं है। सेलवीसियस ने हिंदुस्तान के बहुत-से राज समझने की कोशिश की और हिंदुस्तान की धार्मिक साधना में गहरा उतरा। हिंदुस्तान के फकीरों ने उसे बहुत-सी चीजें भेंट दीं कि तुम ले जाओ।
एक फकीर ने उसे एक चीज भेंट दी, एक तांबे का बना हुआ आदमी का सिर भेंट दिया। वह सिर बहुत अदभुत था। एक बड़ी से बड़ी रहस्य और मिस्ट्री उस सिर के साथ जुड़ी है। उस सिर से कोई भी जवाब हां और न में लिया जा सकता था। उससे कुछ भी पूछें, वह हां या न में जवाब दे देता था। वह था तो सिर्फ तांबे का सिर, आदमी की एक खोपड़ी पर चढ़ाया हुआ। वह अदभुत था। सेलवीसियस ने हजारों तरह के सवाल पूछे और सदा सही जवाब पाए। पूछा कि यह आदमी मर जाएगा कल कि बचेगा? उसने कहा, हां, मर जाएगा, तो मरा। उसने कहा कि नहीं, तो नहीं मरा। न मालूम क्या-क्या पूछा और सही पाया।
सेलवीसियस बड़ी मुश्किल में पड़ गया। उस फकीर ने कहा था, लेकिन एक ख्याल रखना, बुद्धि की मानकर कभी इस सिर को खोलकर मत देखना कि इसके भीतर क्या है। लेकिन जैसे-जैसे सेलवीसियस को उत्तर मिलने लगे, वैसे-वैसे उसका मन बेचैन होने लगा। उसकी रात की नींद खो गई। उसको दिनभर चैन न पड़े। कब इसको खोलकर देख लें, तोड़कर, इसके भीतर क्या है!
वह बामुश्किल हिंदुस्तान से जा पाया। रोम पहुंचते ही उसने पहला काम
यह किया कि उसको तोड़कर, उसको खोलकर देख लिया। उसके भीतर तो कुछ भी न था। एक साधारण खोपड़ी थी। कुछ भी न मिला।
सेलवीसियस बहुत दुखी और परेशान हुआ। आज भी उस सिर के टुकड़े, टूटे हुए, वेटिकन के पोप की लाइब्रेरी में नीचे दबे पड़े हैं; आज भी। और भी बहुत-सी चीजें वेटिकन की लाइब्रेरी में दबी पड़ी हैं, जो कभी बड़ी काम की सिद्ध हो सकती हैं। सेलवीसियस बहुत रोया, बहुत पछताया, बहुत जोड़ने की कोशिश की। सब जोड़ा-जाड़ा। लेकिन जवाब फिर न आया।
बुद्धि तत्काल चीजों को तोड़कर देखना चाहती है कि भीतर क्या है। लेकिन भीतर जो भी है, वह सिर्फ जुड़े हुए में होता है, टूटे में नहीं होता। जिस चीज को भी हम तोड़ लेते हैं, उसकी होलनेस, उसकी पूर्णता नष्ट हो जाती है। और जीवन के सब रहस्य उसकी पूर्णता में हैं।
इसलिए विज्ञान कभी जीवन के परम रहस्य को उपलब्ध न हो पाएगा। क्योंकि विज्ञान की पूरी प्रक्रिया तोड़ने की है, एनालिसिस की है, विश्लेषण की है। चीजों को तोड़ते चले जाओ। इसलिए एटम तो मिल गया; आत्मा नहीं मिलती। एटम मिल जाएगा; वह तोड़ने से मिलता है। आत्मा नहीं मिलती; वह जोड़ने से मिलती है। विद्युत के कण मिल जाएंगे, इलेक्ट्रांस मिल जाएंगे, लेकिन परमात्मा नहीं मिलेगा। इलेक्ट्रांस तोड़ने से मिलते हैं; परमात्मा जोड़ने से मिलता है। कृष्ण बड़े से बड़े जोड़ की बात कर रहे हैं। वे कह रहे हैं, अंधेरा और प्रकाश मैं ही हूं। जीवन और मृत्यु मैं ही हूं। सृष्टि और प्रलय मैं ही हूं। और जो सब भूतों में मुझे देखता है, वह एक दिन अंधकार में--उसमें भी, जो अप्रीतिकर मालूम पड़ता है--मुझे देख पाएगा।
और जिस दिन अप्रीतिकर में भी परमात्मा दिखाई पड़ता है, उस दिन क्या अप्रीतिकर बचता है? मेरा यह हाथ किसी को सुंदर मालूम पड़ सकता है। इस हाथ को तोड़कर सड़क पर डाल दें, फिर यह बिल्कुल सुंदर नहीं मालूम पड़ेगा; बहुत कुरूप हो जाएगा। आपकी आंख किसी को सुंदर मालूम पड़ सकती है; निकालकर टेबल पर रख दें, तो दूसरा आदमी आंख बंद कर लेगा कि यह न करिए।

क्या, बात क्या है? आंख सुंदर होती है, जब शरीर की पूर्णता में होती है; अलग होकर कुरूप हो जाती है। हाथ सुंदर होता है, जब शरीर की पूर्णता में होता है; अलग होकर सिर्फ गंदगी और दुर्गंध फैलाता है।
यह पूरी जिंदगी, यह पूरा विराट एक है। और जब कोई इसे एक की तरह देख पाता है, तो वह परम सौंदर्य के अनुभव को उपलब्ध होता है। वही परम सौंदर्य भागवत सौंदर्य है। वही डिवाइन ब्यूटी है।
लेकिन हम तो सब टुकड़ों में देखते हैं; हम पूरे में तो कुछ नहीं देख पाते। वृक्ष को हम देखते हैं, तो सूरज को नहीं देख पाते, हालांकि सूरज और वृक्ष जुड़े हुए हैं। सूरज को देखते हैं, तो जमीन को नहीं देख पाते; हालांकि जमीन और सूरज जुड़े हुए हैं। रात देखते हैं, तो दिन को नहीं देख पाते; हालांकि दिन और रात एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। प्रकाश देखते हैं, तो अंधेरा खो जाता है। अंधेरा देखते हैं, तो प्रकाश नहीं होता; हालांकि दोनों एक-दूसरे के पहलू हैं।
आदमी कितना कमजोर है, कभी आपने ख्याल किया है! एक छोटे-से नए पैसे को हाथ में लेकर कभी आपने कोशिश की कि दोनों पहलू एक साथ देख लें? तब आपको पता चलेगा, आदमी कितना कमजोर है। एक छोटे-से सिक्के के एक पैसे के दोनों पहलू आप एक साथ नहीं देख सकते। जब एक पहलू दिखाई पड़ता है, तब दूसरा खो जाता है। जब दूसरा दिखाई पड़ता है, तो पहला खो जाता है।
इसलिए जो बहुत तर्क में गहरे उतरते हैं, वे कहते हैं कि जब किसी ने आज
तक देखे ही नहीं दो पहलू एक साथ, तो यह कहना कहां तक उचित है कि पैसे में दो पहलू होते हैं? क्या पता, नीचे का पहलू बचा हो अब तक न बचा हो! क्या पक्का है? अनुमान है सिर्फ कि नीचे भी पहलू होगा। होगा या नहीं होगा, क्या पता! आदमी की बुद्धि पूरे को नहीं देख पाती; दि होल, वह जो पूर्ण है, नहीं देख पाती। आदमी की बुद्धि खंड-खंड करके देखती है। खंड-खंड में सब सौंदर्य खो जाता है, खंड-खंड में सब चेतना खो जाती है, खंड-खंड में सब सत्य खो जाता है। असत्य के टुकड़े ही हाथ में लगते हैं--असुंदर, कुरूप।
कृष्ण कहते हैं, जो सब भूतों में मुझे देखेगा।
सब भूतों में देखना शुरू करें। वर्षा में, बादल में, सूरज में, पानी में, दुख में, सुख में, मित्र में, शत्रु में--देखना शुरू करें। शब्द में, मौन में--एक को ही देखना शुरू करें। और तब एक दिन जरूर वह घटना घटती है कि विपरीत नहीं रह जाता, द्वैत नहीं रह जाता, दो नहीं बचते, एक ही बचता है।
और जिस दिन प्राणों के सामने एक ही बचता है, उस दिन ऐसी छलांग लगती है
कि एक नए आयाम में, एक नए जगत में प्रवेश हो जाता है। फिर आप वही नहीं होते, जो आप कल तक थे। सब कुछ वही होता है, फिर भी सब बदल जाता है। आप दूसरे ही आदमी हो जाते हैं। आपका नया जन्म, आप रि-बॉर्न, पुनर्जन्म को उपलब्ध हो जाते हैं। यह पुनर्जन्म शरीर का नहीं, आत्मा का। यह आत्मा नई होकर प्रकट होती है।
यह कृष्ण ने पूरा का पूरा विज्ञान आत्मा के नए जन्म को देने के लिए कहा है। आखिरी में शरण को याद रखना कि परमात्मा पर छोड़ देना है सब।
और दूसरी बात, अनुकूल में तो दिखाई ही पड़ेगा परमात्मा, प्रतिकूल में
भी परमात्मा को देखने की खोज जारी रखना। जो खोजता है, वह पा लेता है। सिर्फ वे ही वंचित रह जाते हैं, जो कभी खोज पर ही नहीं निकलते हैं। और कृष्ण जो कह रहे हैं, जितना कहने से कहा जा सकता है, उतना वे कह रहे हैं। लेकिन कुछ है, जो चुप होकर ही जाना जा सकता है।
दस दिन तक निरंतर मैं आपसे बात कर रहा था। अब मैं चाहूंगा कि दस दिन कम
से कम एक घंटे--दस दिन मैंने आपसे बात की--दस दिन आप इस गीता ज्ञान यज्ञ को और जारी रखना अपने घर पर। एक घंटा रोज अब आप चुप बैठ जाना। और जो मैंने आपको कहकर समझाया है, और समझ में न आया होगा, वह उस एक घंटे की चुप्पी में आपकी समझ में उतरेगा और गहरा होगा।
यह गीता ज्ञान यज्ञ आज समाप्त नहीं होता। आज सिर्फ गीता ज्ञान यज्ञ शब्द से समाप्त होता है, मौन से शुरू होता है। कल से आप दस दिन कम से कम एक घंटा मौन में बिता देना।
सुना है मैंने, एक अमेरिकन यात्री एक पहाड़ की यात्रा पर गया था। बड़ी मुश्किल में पड़ गया। गांव में कई लोगों से उसने बात करने की कोशिश की,

लेकिन किसी ने कोई जवाब न दिया। सांझ को कुछ लोग एक कुएं की पाट पर बैठे थे, तो वह भी जाकर बैठ गया। उसने दो-चार दफे बात चलाने की कोशिश की। लोगों ने देखा, लेकिन चुप ही रहे। फिर उसने पूछा कि क्या मामला है? क्या इस गांव में कोई कानून है बोलने के खिलाफ? बोलते क्यों नहीं हो? इ.ज देअर एनी ला अगेंस्ट स्पीकिंग?
फिर भी थोड़ी देर चुप रहे लोग। फिर एक बूढ़े ने उससे धीरे से उसके कान में कहा, देअर इ.ज नो सच ला हियर, बट अप हियर पीपुल स्पीक ओनली व्हेन दे फील दैट बाई स्पीकिंग दे कैन इम्प्रूव अपान साइलेंस। तभी बोलते हैं, जब उन्हें लगे कि बोलने से मौन के ऊपर कुछ कहा जा सकता है; अन्यथा नहीं बोलते। हमने कभी ख्याल ही नहीं किया है। तो यहां तो समाप्त हो जाएगा। आप दस दिन मौन में बैठना एक घंटा, और उस घंटे में मैं फिर आपसे बोल सकूंगा; लेकिन वह बोलना बहुत गहरा हो जाएगा। और उस दस दिन के मौन में आप वह जान पाएंगे, जो शायद शब्द से न जान पाए हों।
शब्द से बहुत थोड़ा कहा जा सकता है; मौन से बहुत ज्यादा कहा जा सकता है। शब्द से बहुत कम समझा जा सकता है; मौन से बहुत ज्यादा समझा जा सकता है। क्योंकि शब्द बुद्धि का उपकरण है; और बुद्धि तोड़ देती है। और मौन अखंड है; तोड़ता नहीं, जोड़ देता है।
ये थोड़ी-सी बातें। अभी उठेंगे नहीं। और आज तो मैं चाहूंगा कि--छाते बंद कर लें--आखिरी दिन है, हम सब कीर्तन में खड़े होकर सम्मिलित हो जाएं। हम ताली बजाकर कीर्तन कर लें और विदा हो जाएं।
नहीं; कोई भी जाए न! छाते बंद कर लें, और पानी बरस रहा है तो और भी आनंद नाचने में आएगा। दस दिन आपने दूसरों को नाचते देखा। उससे पता नहीं चलेगा कि क्या है नाच। आप नाचें और देखें।